॥ णमो सुअस्स ॥

श्री आचाराङ्ग सूत्रम्

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेत हिन्दी-भाषा-टीकासहित च

व्याख्याकार

जैन धर्म दिवाकर, जैनागमरत्नाकर

आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

सम्पादक

जैन धर्म दिवाकर, ध्यानयोगी

आचार्य सम्राट् डॉ॰ श्री शिवमुनि जी महाराज

प्रकाशक

आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति (लुधियाना)

भगवान महावीर मैडीटेशन एण्ड रिसर्च सैंटर ट्रस्ट (दिल्ली)

आगम : **श्री आचाराङ्ग सूत्रम्**

व्याख्याकार : आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

दिशानिर्देश : गुरुदेव बहुश्रुत श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

सपादक : आचार्य सम्राट् डॉ॰ श्री शिवमुनि जी म॰ सा॰

सपादन सहयोग : उपाध्याय श्री रमेश मुनि जी महाराज 'शास्त्री'
श्रमण सघीय मत्री श्रमणश्रेष्ठ कर्मठयोगी साधुरत्न श्री शिरीष मुनि जी म॰ सा॰
श्रमणीरत्ना उपप्रवर्तिनी महासाध्वी श्री कौशल्या जी महाराज की सुशिष्या
आगम ज्ञाता सरल आत्मा साध्वी श्री प्रमिला जी महाराज

प्रकाशक : आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति लुधियाना
भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेटर ट्रस्ट, नई दिल्ली

अवतरण : नवम्बर 2003

प्राप्ति स्थल :
1. भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट
द्वारा श्री आर॰ के॰ जैन
सी - 55, शक्ति नगर एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110 052
दूरभाष 011-27138164, 32030139
2. श्री विनोद कोठारी
3, श्री जी कृपा, प्रभात कॉलोनी, 6 वा मार्ग, शान्ताक्रुज (वेस्ट)
मुम्बई-महाराष्ट्र
3. श्री चन्द्रकान्त एम मेहता, ए-7, मोन्टवर्ट-2 पाषाण
सुस मार्ग, पूना 411021 दूरभाष 020 5862045

अक्षर सयोजक : स्वतन्त्र जैन, 21-ए, जैन कॉलोनी, जालन्धर
दूरभाष : 0181-2208436

मुद्रण व्यवस्था : कोमल प्रकाशन,
विनोद शर्मा
म॰ न॰ 2087/7, गली न॰ 20, निकट शिव मदिर,
प्रेम नगर, (निकट बलजीत नगर) नई दिल्ली-8
दूरभाष · 25873841, 9810765003

प्रथम सस्करण · महावीराब्द 2490 विक्रमाब्द 2021 ईस्वी सन् 1964

द्वितीय सस्करण : महावीराब्द 2530 विक्रमाब्द 2060 ईस्वी सन् 2003

मूल्य : चार सौ रूपये मात्र

स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज

जन्म माघवदी दसवीं सं० 1868, स्वर्गवास ज्येष्ठ सुदी द्वादसी सं० 1937

श्री पार्वती जैन महिला मण्डल

श्रीमती सुनीता ओसवाल	श्रीमती विनोद जैन
अध्यक्ष	मंत्री

प्रकाशकीय

परम श्रद्धेय स्व० आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी म० के व्यक्तित्व से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो श्रद्धेय आचार्य श्री जी की ज्ञान ज्योति से अपरिचित रहा हो। वह ज्ञान दिवाकर जब तक इस भूतल पर उदित रहा तब तक जन-जन के अज्ञान तम को दूर करके उनके जीवन के कण-कण मे ज्ञान की ज्योति जगाता रहा, भूले-भटके पथिको को साधना का पथ बताता रहा। आज वह ज्योतिर्धर महापुरुष भौतिक शरीर की अपेक्षा से हमारे मध्य मे नहीं रहा, परन्तु उनके आगम की ज्योति हमारे सामने है, जो कि युग-युग तक मानव-मन को ज्योतित करती रहेगी।

श्रद्धेय आचार्य देव ने अपने जीवन काल मे अठारह आगमो पर बृहद् व्याख्याए लिखकर आगमो को सर्वगम्य बनाया था। श्रद्धेय श्री के व्याख्यायित कई आगम उनके जीवन काल मे भी प्रकाशित हुए, कई उनके देवलोक गमन के पश्चात् भी प्रकाशित हुए। परन्तु आचार्य श्री का व्याख्यायित और सृजित साहित्य आज तक समग्र रूप से प्रकाशित नहीं हो पाया है। आचार्य देव के पौत्र शिष्य एव उन्हीं के पाट पर विराजित आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी महाराज ने आचार्य देव के समस्त आगम और आगमेतर साहित्य को प्रकाशित करा कर सर्वसुलभ बनाने का महान सकल्प लिया है। आचार्य श्री के उसी सकल्प की फलश्रुति के रूप मे श्री उपासकदशाग सूत्रम्, श्री उत्तराध्ययन सूत्रम्, भाग-१-२-३, श्री अनुत्तरौपपातिक सूत्रम्, श्री दशवैकालिक सूत्रम्, श्री अन्तकृद्दशाग सूत्रम्, श्री आचाराङ्ग सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्कध) आदि आगम हम प्रकाशित कर चुके हैं। भविष्य मे हम द्रुतगति से अपने पथ पर आगे बढते रहेगे एव आचार्य भगवन श्री शिवमुनि जी म० के दिशा निर्देशन मे आराध्य आचार्य देव श्री आत्माराम जी म० के समग्र साहित्य को सर्व सुलभ बनाएगे, ऐसा हमारा विनम्र सकल्प है।

आचार्य देव ध्यान योगी श्री शिवमुनि जी म० का मगलमय आशीर्वाद हमारे सकल्प का प्राण है। साथ ही असख्य सहयोगी हाथ हमारे महद् कार्य को सरल बनाने मे हमारे साथ जुड चुके हैं एव निरतर जुडते जा रहे हैं। समस्त सहयोगियो के हम हार्दिक आभारो हैं।

प्रकाशक

आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम

प्रकाशन समिति (लुधियाना)

एव

भगवान महावीर रिसर्च एण्ड मेडिटेशन

सेटर ट्रस्ट (नई दिल्ली)

संपादकीय

विश्ववन्द्य आराध्य देव श्रमण भगवान महावीर की वाणी आगम साहित्य मे सुरक्षित है, इसीलिए जैन परम्परा मे आगम साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। आगम साहित्य को हम आध्यात्मिक विज्ञान के ग्रन्थ भी कह सकते हैं। इनमे उन विधियो का सकलन है जिनके द्वारा आत्मा परमात्मा हो सकता है। अनन्त अतीत से अनन्त आत्माए आगम साहित्य के स्वाध्याय, आराधन और आचरण से अपने परम लक्ष्य को साधती आ रही हैं। वर्तमान मे भी अनेक साधक आगमो के स्वाध्याय, चिन्तन, मनन और आराधन द्वारा अपने साध्य-पथ पर अग्रसर हैं। भविष्य मे भी आगम साधको के लिए परमाधार होगे।

आगम साहित्य मे अध्यात्म-विज्ञान का सूक्ष्म और विशद विश्लेषण हुआ है। विश्लेषण विशद होने पर भी उसका विषय अति गूढ है। प्रत्येक साधक के लिए उसे समझ पाना सरल नहीं है। उसके लिए साधक मे अपराभूत जिज्ञासिता, स्वाध्यायशीलता और अटूट धैर्य अपेक्षित है। साधक मे उक्त गुण आने पर आगम सरल बन जाते हैं।

हमारे आराध्यदेव श्रमण सघ के प्रथम पट्टधर आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज उपरोक्त गुणो और अन्यान्य गुणो के अक्षय सागर थे। यही कारण है कि बत्तीसो आगम उनकी प्रज्ञा मे प्राणवन्त बने थे। बत्तीसो आगम उनके आचार, विचार और व्यवहार मे साकार बने थे।

करुणा के अमर देवता आराध्य देव पूज्य श्री ने आगमो को सर्वगम्य बनाने के लिए सकल्प किया और वे आगम व्याख्या लेखन साधना मे साधनाशील बन गए। जब तक उनकी देह रही वे लिखते रहे और अपने निर्देशन मे लिखवाते रहे। अपने जीवन काल मे उन्होने अठारह आगमो पर विशाल व्याख्याए लिखीं। आचार्य श्री के उस लेखन की मौलिकता और विशिष्टता यह रही कि उससे आगम सर्वसाधारण के लिए सरल और सुगम बन गए। आचार्य श्री का यह विश्व पर महान् उपकार है जो सदा-सदा स्मरणीय रहेगा।

आचार्य श्री ने अपने जीवन काल मे आगमो की व्याख्या सहित लगभग साठ ग्रन्थ लिखे। ये सभी ग्रन्थ आगमो के आधार पर ही लिखे गए हैं। तथा जैन सस्कृति की अमूल्य धरोहर स्वरूप हैं।

आचार्य श्री के जीवन काल मे ही उन द्वारा व्याख्यायित और सृजित कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए। उनके देवलोक के पश्चात् भी कुछ ग्रन्थ प्रकाश में आए। परन्तु खेद का विषय है कि पूज्य श्री का सम्पूर्ण साहित्य आज तक प्रकाश मे नहीं आ पाया है। उत्तर और दक्षिण भारत के सुदूर अचलो मे विचरण करते हुए मैंने पाया कि सभी स्थानो पर आचार्य श्री के आगमो के असख्य जिज्ञासु पाठक मौजूद हैं। परिणाम स्वरूप मैंने यह सकल्प अपने मन मे सजोया कि आचार्य श्री के व्याख्यायित और सृजित साहित्य को जन-सुलभ बनाया जाए। जैन जगत के अग्रगण्य श्रावको ने मेरे सकल्प को गद्गद् भाव से स्वीकार किया और "आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति" का गठन किया। इस समिति के तत्वावधान मे आगम प्रकाशन का कार्य द्रुतगति से प्रारभ हुआ। विगत एक वर्ष मे श्री उपासकदशाग, श्री उत्तराध्ययन सूत्रम्-भाग- १-२-३, श्री अनुत्तरौपपातिक सूत्रम्, श्री अन्तकृद्दशांग सूत्रम्, श्री दशवैकालिक सूत्रम् और श्री आचाराङ्ग सूत्रम (प्रथम श्रुतस्कध) आगम प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत श्री आचाराङ्ग सूत्रम् (द्वितीय

जैन धर्म दिवाकर जैनागम रत्नाकर ज्ञान महोदधि
आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

श्रुतस्कध) के प्रकाशन के पश्चात् श्री विपाकसूत्रम्, श्री दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रम्, श्री नन्दी सूत्रम् आदि आगम शीघ्र प्रकाश में आने सभाव्य हैं। कार्य की इस द्रुतगामिता में आचार्य देव का शुभाशीष और श्रावक समाज का समर्पण ही मूल कारण रहा है।

मुनिवर श्री शिरीष जी का एकनिष्ठ समर्पण भी इस कार्य की सतत सफलता का एक प्रमुख कारण रहा है। उनके अतिरिक्त उपाध्याय श्री रमेश मुनि जी म०, प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म० आदि वरिष्ठ मुनिराजो का सहयोग तथा उप० प्र० श्री कौशल्या जी म०, उप० प्र० श्री सरिता जी म०, उप० प्र० श्री रविरश्मि जी म० आदि श्रमणी मण्डल का सहयोग भी विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। विश्रुत पण्डित श्री ज० प० त्रिपाठी तथा विनोद शर्मा का भी मूल प्रति पठन, प्रूफ पठन तथा प्रकाशन मे पूर्ण समर्पण रहा है।

समस्त व्यक्त-अव्यक्त सहयोगियो को साधुवाद।

– आचार्य शिवमुनि

निर्भीक आत्मार्थी एवं पंचाचार की प्रतिमूर्ति :
आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी म.

व्यक्ति यह समझता है कि मेरी जाति का बल, धन-बल, मित्र-बल यही मेरा बल है। वह यह भूल जाता है कि यह बल वास्तविक बल नहीं है, वास्तव मे तो आत्मबल ही उसका बल है। लेकिन भ्राति के कारण वह उन सारे बलो को बढाने के लिए अनेक पाप-कर्मो का उपार्जन करता है, अनत अशुभ कर्म-वर्गणाओ को एकत्रित करता है, जिससे कि उसका वास्तविक आत्मबल क्षीण होता है। जाति, मित्र, शरीर, धन इन सभी बलो को बढा करके भी वह चितित और भयभीत रहता है कि कहीं मेरा यह बढाया हुआ बल क्षीण न हो जाए, उसका यह डर इस बात का सूचक है कि जिस बल को उसने बढाया है वह उसका वास्तविक बल नहीं है।

सर्वश्रेष्ठ बल– वास्तविक बल तो अपने साथ अभय लेकर आता है। आत्मबल जितना बढता है उतना ही अभय का विकास होता है। अन्य सारे बल भय बढाते हैं। व्यक्ति जितना भयभीत होता है, उतना ही वह सुरक्षा चाहता है। बाहर का बल जितना ही बढता है उतना ही भय भी बढता है और भय के पीछे सुरक्षा की आवश्यकता भी उसे महसूस होती है। इस प्रकार जितना वह बाह्य-रूप से बलवान बनता है उतना ही भयभीत बनता है और उतनी ही सुरक्षा की आवश्यकता अनुभव करता है। भगवान अभय मे जीवन को जीए, उन्होने आत्मबल की साधना की। वह चाहते तो किसी का सहारा ले सकते थे लेकिन उन्होने किसी का सहारा, किसी की सुरक्षा नहीं ली, क्योकि वे जानते थे कि बाह्य बल बढाने से आत्मबल का जागरण नही होता। इसलिए वे सारे सहारे छोडकर आत्मबल-आश्रित और आत्मनिर्भर बन गए। जैसे कहा जाता है कि श्रमण स्वावलम्बी होता है अर्थात् वह किसी दूसरे के बल पर, व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के बल पर नहीं खडा अपितु स्वय अपने बल पर खडा हुआ है। जो दूसरे के बल पर खडा हुआ है वह सदैव दूसरो को खुश रखने के लिए प्रयत्नरत रहता है। जिस हेतु पापकर्म या माया का सेवन भी वह कर लेता है। आत्मबल बढाने के लिए सत्य, अहिसा और साधना का मार्ग है। 'भगवान् का मार्ग वीरो का मार्ग है।' वीर वह है जो अपने आत्मबल पर आश्रित रहता है। यह भ्रान्ति अधिकाश लोगो की है कि बाह्यबल बढने से ही मेरा बल बढेगा। इसलिए अनेक बार साधुजन भी ऐसा कहते हैं कि मेरा श्रावक बल बढेगा, मेरे प्रति मान, सम्मान एव भक्ति रखने वालो की वृद्धि होगी तो मेरा बल बढेगा। फिर इस हेतु से अनेक प्रपच भी बढेगे। यही अज्ञान है। वास्तविकता यह है कि बाह्य बल बढाने से, उस पर आश्रित रहने से आत्मबल नहीं बढता अपितु क्षीण होता है। लेकिन आत्मबल का विकास करने से सारे बल अपने आप बढते हैं।

साधु कौन ?– साधु वही है जो बाह्यबल का आश्रय छोडकर आत्मबल पर ही आश्रित रहता है। अत आत्मबल का विकास करो। उसके लिए भगवान के मार्ग पर चलो। चित्त मे जितनी स्थिरता और समाधि होगी उतना ही आत्मबल का विकास होगा और उसी से समाज-श्रावक इत्यादि बल आपके साथ चलेगे। बिना आत्मबल के दूसरा कोई बल साथ नहीं देगा।

बहुश्रुत, पंजाब केसरी, गुरुदेव
श्री ज्ञान मुनि जी महाराज

असंयम किसे कहते है ?– इन्द्रियों के विषयो के प्रति जितनी आसक्ति होगी उतनी ही उन विषयो की पूर्ति करने वाले साधनो (धन, स्त्री, पद, प्रतिष्ठा आदि) के प्रति आसक्ति होगी। साधनो के प्रति रही हुई इस आसक्ति के कारण वह निरन्तर उसी ओर श्रम करता है, उनको पाने के लिए श्रम करता है, इस श्रम का नाम ही असयम है।

संयम क्या है ?– इन्द्रिय निग्रह के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है वह सयम है और विषयो को जुटाने के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है वह असयम है।

साधु पद में गरिमायुक्त आचार्य पद– साधुजन स्वय की साधना करते हैं और आवश्यकता पडने पर सहयोग भी करते हैं। लेकिन आचार्य स्वय की साधना करने के साथ-साथ (अपने लिए उपयुक्त साधना ढूढने के साथ-साथ) यह भी जानते हैं और सोचते हैं कि सघ के अन्य सदस्यो को कौन-सी और कैसी साधना उपयुक्त होगी। उनके लिए साधना का कौन-सा और कैसा मार्ग उपयुक्त है। जैसे माँ स्वय ही खाना नहीं खाती अपितु किसी को क्या अच्छा लगता है, किसके लिए क्या योग्य है यह जान-देखकर वह सबके लिए खाना बनाती भी है, इसी प्रकार आचार्य देव जानते हैं कि शुभ आलम्बन मे एकाग्रता के लिए किसके लिए क्या योग्य है और उससे वैसी ही साधना करवाते हैं। इस प्रकार आचार्य पद की एक विशेष गरिमा है।

पचाचार की प्रतिमूर्ति– हमारे आराध्य स्वरूप पूज्य गुरुदेव श्री शिवमुनि जी म दीक्षा लेने के प्रथम क्षण से ही तप-जप एव ध्यान योग की साधना मे अनुरक्त रहे हैं। आपकी श्रेष्ठता, ज्येष्ठता और सुपात्रता को देखकर ही हमारे पूर्वाचार्यों ने आपको श्रमण सघ के पाट पर आसीन कर जिन-शासन की महती प्रभावना करने का सकल्प किया। जिनशासन की महती कृपा आप पर हुई।

यह सक्रमण काल है, जब जिनशासन मे सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। भगवान महावीर के २६००वे जन्म कल्याणक महोत्सव पर हम सभी को एकता, सगठन एव आत्मीयता-पूर्ण वातावरण मे आत्मार्थ की ओर अग्रसर होना है। आचार्य सघ का पिता होता है। आचार्य जो स्वय करता है वही चतुर्विध सघ करता है। वह स्वय पचाचार का पालक होता है तथा सघ को उस पथ पर ले जाने मे कुशल भी होता है। आचार्य पूरे सघ को एक दृष्टि देते हैं जो प्रत्येक साधक के लिए निर्माण एव आत्मशुद्धि का पथ खोल देती है। हमारे आचार्य देव पचाचार की प्रतिमूर्ति है। पचाचार का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

ज्ञानाचार– आज ससार मे जितना भी दुख है उसका मूल कारण अज्ञान है। अज्ञान के परिहार हेतु जिनवाणी का अनुभवगम्य ज्ञान अति आवश्यक है। आज ज्ञान का सामान्य अर्थ कुछ पढ लेना, सुन लेना एव उस पर चर्चा कर लेना या किसी और को उपदेश देना मात्र समझ लिया गया है। लेकिन जिनशासन में ज्ञान के साथ सम्यक् शब्द जुडा है। सम्यक् ज्ञान अर्थात जिनवाणी के सार को अपने अनुभव से जानकर, जन-जन को अनुभव हेतु प्रेरित करना। द्रव्य श्रुत के साथ भावश्रुत को आत्मसात् करना। हमारे आराध्यदेव ने वर्षों तक बहुश्रुत गुरुदेव की ज्ञानमुनि जी म सा , उपाध्याय प्रवर्तक श्री फूलचद जी म सा 'श्रमण' एव अनेक उच्चकोटि के सतो से द्रव्य श्रुत का ज्ञान ग्रहण कर अध्यात्म साधना के द्वारा

भाव श्रुत मे परिणत किया एव उसका सार रूप ज्ञान चतुर्विध सघ को प्रतिपादित कर रहे हैं एव अनेक आगमो के रहस्य जो बिना गुरुकृपा से प्राप्त नहीं हो सकते थे, वे आपको जिन शासन देवो एव प्रथम आचार्य भगवत श्री आत्माराम जी म० की कृपा से प्राप्त हुए हैं। वही अब आप चतुर्विध सघ को प्रदान कर रहे हैं। आपने भाषाज्ञान की दृष्टि से गृहस्थ मे ही डबल एम ए किया एव सभी धर्मों मे मोक्ष के मार्ग की खोज हेतु शोध ग्रन्थ लिखा और जैन धर्म से विशेष तुलना कर जैन धर्म के राजमार्ग का परिचय दिया। आज आपके शोध ग्रन्थ, साहित्य एव प्रवचनो द्वारा ज्ञानाचार का प्रसार हो रहा है। आप नियमित सामूहिक स्वाध्याय करते हैं एव सभी को स्वाध्याय की प्रेरणा देते हैं। अत. प्रत्येक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ज्ञानाचारी बनकर ही आचार्यश्री की सेवा कर सकता है।

दर्शनाचार– दर्शन अर्थात् श्रद्धा, निष्ठा एव दृष्टि। आचार्य स्वय सत्य के प्रति निष्ठावान होते हुए पूरे समाज को सत्य की दृष्टि देते हैं। जैन दर्शन मे सम्यक् दृष्टि के पाच लक्षण बताए हैं– १ सम अर्थात् जो समभाव मे रहता है। २ सवेग– अर्थात् जिसके भीतर मोक्ष की रुचि है उसी ओर जो पुरुषार्थ करता है, जो उद्वेग मे नहीं जाता। ३ निर्वेद– जो समाज-सघ मे रहते हुए भी विरक्त है, किसी मे आसक्त नहीं है। ४ आस्था– जिसकी देव, गुरु, धर्म के प्रति दृढ श्रद्धा है, जो स्व मे खोज करता है, पर मे सुख की खोज नहीं करता है तथा जिसकी आत्मदृष्टि है, पर्यायदृष्टि नहीं है। पर्याय-दृष्टि राग एव द्वेष उत्पन्न करती है। आत्म-दृष्टि सदैव शुद्धात्मा के प्रति जागरूक करती है। ऐसे दर्शनाचार से सपन्न हैं हमारे आचार्य प्रवर। चतुर्विध सघ उस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए ऐसे आत्मार्थी सद्गुरु की शरण मे पहुँचे और जीवन का दिव्य आनन्द अनुभव करे।

चारित्राचार– *आचार्य भगवन् श्री आत्माराम जी म* चारित्र की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि चयन किए हुए कर्मो को जो रिक्त कर दे उसे चारित्र कहते हैं। जो सदैव समता एव समाधि की ओर हमे अग्रसर करे वह चारित्र है। चारित्र से जीवन रूपान्तरण होता है। जीवन की जितनी भी समस्याएँ हैं सभी चारित्र से समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए कहा है 'एकान्त सुही मुणी वियरागी'। वीतरागी मुनि एकान्त रूप से सुखी हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष रूपी शत्रुओ को दूर करने के लिए आप वर्षो से साधनारत हैं। आप अनुभव गम्य, साधना जन्य ज्ञान देने हेतु ध्यान शिविरो द्वारा द्रव्य एव भाव चारित्र की ओर समग्र समाज को एक नयी दिशा दे रहे हैं। आप सत्य के उत्कृष्ट साधक हैं एव प्राणी मात्र के प्रति मगल भावना रखते हैं एव प्रकृति से भद्र एव ऋजु हैं। इसलिए प्रत्येक वर्ग आपके प्रति समर्पित है।

तपाचार– गौतम स्वामी गुप्त तपस्या करते थे एव गुप्त ब्रह्मचारी थे। इसी प्रकार हमारे आचार्य प्रवर भी गुप्त तपस्वी हैं। वे कभी अपने मुख से अपने तप एव साधना की चर्चा नहीं करते हैं। वर्षों से एकान्तर तप उपवास के साथ एव आभ्यतर तप के रूप मे सतत स्वाध्याय एव ध्यान तप कर रहे हैं। इसी ओर पूरे चतुर्विध सघ को प्रेरणा दे रहे हैं। सघ मे गुणात्मक परिवर्तन हो, अवगुण की चर्चा नहीं हो, इसी सकल्प को लेकर चल रहे हैं। ऐसे उत्कृष्ट तपस्वी आचार्य देव को पाकर जिनशासन गौरव का अनुभव कर रहा है।

वीर्याचार– सतत अप्रमत्त होकर पुरुषार्थ करना वीर्याचार है। आत्मशुद्धि एवं सयम में स्वय

जैन धर्म दिवाकर ध्यान योगी
आचार्य सम्राट् डा० श्री शिवमुनि जी महाराज

पुरुषार्थ करना एव करवाना वीर्याचार है।

ऐसे पचाचार की प्रतिमूर्ति हैं हमारे श्रमण सघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य श्री शिवमुनि जी म । इनके निर्देशन में सम्पूर्ण जैन समाज को एक दृष्टि की प्राप्ति होगी। अतः हृदय की विशालता के साथ, समान विचारो के साथ, एक धरातल पर, एक ही सकल्प के साथ हम आगे बढे और शासन प्रभावना करे।

निर्भीक आचार्य– हमारे आचार्य भगवन् आत्मबल के आधार पर साधना के क्षेत्र में आगे बढ रहे हैं। सघ का सचालन करते हुए अनेक अवसर आये जहा पर आपको कठिन परीक्षण के दौर से गुजरना पडा। किन्तु आप निर्भीक होकर धैर्य से आगे बढते गए। आपश्री जी श्रमण सघ के द्वारा पूरे देश को एक दृष्टि देना चाहते हैं। आपके पास अनेक कार्यक्रम हैं। आप चतुर्विध सघ मे प्रत्येक वर्ग के विकास हेतु योजनाबद्ध रूप से कार्य कर रहे हैं।

पूज्य आचार्य भगवन् ने प्रत्येक वर्ग के विकास हेतु निम्न योजनाएँ समाज के समक्ष रखी हैं–

१ बाल सस्कार एव धार्मिक प्रशिक्षण के लिए गुरुकुल पद्धति के विकास हेतु प्रेरणा।

२ साधु-साध्वी, श्रावक एव श्राविकाओ के जीवन के प्रत्येक क्षण मे आनन्द पूर्ण वातावरण हो, इस हेतु सेवा का विशेष प्रशिक्षण एव सेवा केन्द्रो की स्थापना।

३ देश-विदेश मे जैन-धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु स्वाध्याय एव ध्यान साधना के प्रशिक्षक वर्ग को विशेष प्रशिक्षण।

४ व्यसन-मुक्त जीवन जीने एव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे आनद एव सुखी होकर जीने हेतु शुद्ध धर्म-ध्यान एव स्वाध्याय शिविरो का आयोजन।

इन सभी कार्यों को रचनात्मक रूप देने हेतु आप श्री जी के आशीर्वाद से नासिक मे 'श्री सरस्वती विद्या केन्द्र' एव दिल्ली मे 'भगवान महावीर मेडीटेशन एड रिसर्च सेटर ट्रस्ट' की स्थापना की गई है। इस केन्द्रीय सस्था के दिशा निर्देशन मे देश भर मे त्रिदिवसीय ध्यान योग साधना शिविर लगाए जाते हैं। उक्त शिविरो के माध्यम से हजारो-हजार व्यक्तियो ने स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। अनेक लोगो को असाध्य रोगो से मुक्ति मिली है। मैत्री, प्रेम, क्षमा और सच्चे सुख को जीवन मे विकसित करने के ये शिविर अमोघ उपाय सिद्ध हो रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी के प्रारभ मे ऐसे महान् विद्वान् और ध्यान-योगी आचार्यश्री को प्राप्त कर जैन सघ गौरवान्वित हुआ है।

– शिरीष मुनि

आगम स्वाध्याय विधि

जैन आगमो के स्वाध्याय की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। वर्तमान-काल मे आगम लिपिबद्ध हो चुके हैं। इन आगमो को पढने के लिए कौन साधक योग्य है और उसकी पात्रता कैसे तैयार की जा सकती है इसका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

आगम ज्ञान को सूत्रबद्ध करने का सबसे प्रमुख लाभ यह हुआ कि उसमे एक क्रम एव सुरक्षितता आ गई लेकिन उसमे एक कमी यह रह गई कि शब्दो के पीछे जो भाव था उसे शब्दो मे पूर्णतया अभिव्यक्त करना सभव नही था। जब तक आगम-ज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा आ रहा था तब तक वह ज्ञान पूर्ण रूप से जीवन्त था। यह ऐसा था जैसे भूमि मे बीज को बोना। गुरु पात्रता देखकर ज्ञान के बीज बो देते थे और वही ज्ञान फिर शिष्य के जीवन मे वैराग्य, चित्त-स्थैर्य, आत्म-परिणामो मे सरलता और शाति बनकर उभरता था। आगम-ज्ञान को लिपिबद्ध करने के पश्चात् वह प्रत्यक्ष न रहकर किचित् परोक्ष हो गया। उस लिपिबद्ध सूत्र को पुन प्राणवान बनाने के लिए किसी आत्म-ज्ञानी सद्गुरु की आवश्यकता होती है।

आत्म-ज्ञानी सद्गुरु के मुख से पुन वे सूत्र जीवन्त हो उठते हैं। ऐसे आत्म-ज्ञानी सद्गुरु जब कभी शिष्यो मे पात्रता की कमी देखते है तो कुछ उपायो के माध्यम मे उस पात्रता को विकसित करते हैं। यही उपाय पूर्व मे भी सहयोग के रूप मे गुरुजनो द्वारा प्रयुक्त होते थे, हम उन्हीं उपायो का विवरण नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं-

तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित शासन की प्रभावना मे अनेकानेक दिव्य शक्तियो का सहयोग भी उल्लेखनीय रहा है। जैसे प्रभु पार्श्वनाथ की शासन रक्षिका देवी माता पद्मावती का सहयोग शासन प्रभावना मे प्रत्यक्ष होता है। उसी प्रकार आदिनाथ भगवान की शासन रक्षिका देवी माता चक्रेश्वरी देवी का सहयोग भी उल्लेखनीय है।

इन सभी शासन-देवो ने हमारे महान् आचार्यों को समय-समय पर सहयोग दिया है। यदि आगम अध्ययन किसी सद्गुरु की नेश्राय मे किया जाए एव उनकी आज्ञानुसार शासन रक्षक देव का ध्यान किया जाए तब वह हमे आगम पढने मे अत्यन्त सहयोगी हो सकता है। ध्यान एव उपासना की विधि गुरूगम से जानने योग्य है। सक्षेप मे हम यहा पर इतना ही कह सकते हैं कि तीर्थकरो की भक्ति से ही वे प्रसन्न होते हैं।

आगम पढने मे चित्त स्थैर्य का अपना महत्व है और चित्त स्थैर्य के लिए योग, आसन, प्राणायाम एव ध्यान का सविधि एव व्यवस्थित अभ्यास आवश्यक है। यह अभ्यास भी गुरु आज्ञा मे किसी योग्य मार्गदर्शक के अन्तर्गत ही करना चाहिए।

आसन प्राणायाम और ध्यान का प्रमुख सहयोगी तत्त्व है। शरीर की शुद्धि की षड्क्रियाए हैं। इन क्रियाओ का विधिपूर्वक अभ्यास करने से साधना के बाधक तत्त्व, शारीरिक व्याधिया, दुर्बलता, शारीरिक अस्थिरता, शरीर मे व्याप्त उत्तेजना इत्यादि लक्षण समाप्त होकर आसन स्थैर्य, शारीरिक और मानसिक समाधि एव अन्तर मे शान्ति और सात्त्विकता का आविर्भाव होता है तथा इस पात्रता के आधार पर प्राणायाम और ध्यान की साधना को गति मिलती है।

अपने सद्‌गुरु देवो की भक्ति, उनका ध्यान एव प्रत्यक्ष सेवा यह ज्ञान उपार्जन का प्रत्यक्ष एव महत्त्वपूर्ण उपाय है। शिष्य की भक्ति ही उसका सबसे बडा कवच है।

अनेक साधक स्वाध्याय का अर्थ केवल विद्वता कर लेते हैं। लेकिन स्वाध्याय का अन्तर्हृदय है, आत्म समाधि और इस आत्म-समाधि के लिए सात्विक भोजन का होना भी एक प्रमुख कारण है।

प्रतिदिन मगलमैत्री का अभ्यास और आगम पठन केवल इस दृष्टि से किया जाए कि इससे मुझे कुछ मिले, मेरा विकास हो, मैं आगे बढ़ू, तब तो वह स्व-केन्द्रित साधना हो जाएगी, जिसका परिणाम अहकार एव अशाति होगा। ज्ञान--साधना का प्रमुख आधार हो कि मेरे द्वारा इस विश्व मे शाति कैसे फैले, मैं सभी के आनन्द एव मगल का कारण कैसे बनू , मैं ऐसा क्या करू कि जिससे सबका भला हो, सबकी मुक्ति हो। यह मगल भावना जब हमारे आगम ज्ञान और अध्ययन का आधार बनेगी तब ज्ञान अहम् को नहीं प्रेम को बढाएगा। तब ज्ञान का परिणाम विश्व प्रेम और वैराग्य होगा, अहकार और अशाति नहीं।

– शिरीष मुनि

द्वितीय श्रुतस्कंध गणधर कृत है ?

आगम साहित्य मे आचाराङ्ग सूत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि, आचार जीवन का, साधना का मूलाधार है। इसी के सहारे मानव मुक्ति पथ को तय करता है । यही कारण है कि अतीत मे जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, उन सब ने सर्व प्रथम आचार का उपदेश दिया और अनागत मे जितने भी तीर्थंकर होगे वे सब सर्व प्रथम आचार का उपदेश देगे तथा वर्तमान मे महाविदेह क्षेत्र मे जो तीर्थंकर विद्यमान हैं, वे भी अपने शासनकाल मे सर्व प्रथम आचार का उपदेश देते हैं। इससे इसकी महत्ता स्वत सिद्ध होती है और इसकी प्राचीनता भी स्पष्टत परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत सूत्र साध्वाचार का पथ प्रदर्शक है। वस्तुत पचाचार की नींव पर आचाराङ्ग सूत्र का भव्य भवन स्थित है। श्रमण साधना से सम्बद्ध कोई भी बात एसी नहीं है, जिसका वर्णन आचाराङ्ग सूत्र मे नहीं आया हो। इसी विशेषता के कारण इसे आचाराङ्ग भगवान कहा गया है। यह आगम दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध का विषय गूढ एव गम्भीर है। वर्णन शैली प्राचीन होते हुए भी सुन्दर एव अनुपम है। भाषा प्राञ्जल एव प्रवाहमय होते हुए भी विषय के अनुरूप क्लिष्ट भी है। परन्तु, क्लिष्टता के साथ लालित्य भी है और छोटे-छोटे सूत्रो मे इतना विशाल अर्थ भर दिया है कि मानो गागर मे सागर ठाठे मार रहा हो।

भाषा एव भावो की दृष्टि से प्रथम श्रुतस्कन्ध जितना गम्भीर एव कठिन है, द्वितीय श्रुतस्कन्ध उतना ही सुगम, सरल एव सुबोध है। सीधी-सादी भाषा भावो को स्वत स्पष्ट करती जाती है। उसे समझने के लिए साधक को अधिक गहराई मे नही उतरना पडता है। थोडे से प्रयत्न से ही उसे आचार का नवनीत प्राप्त हो जाता है। वस्तुत सुगम पथ पर प्रत्येक पथिक सुगमता से चल सकता है। दुर्गम पथ को पार करने वाले विरले ही महापुरुष होते हैं। आचाराङ्ग सूत्र की भी यही स्थिति है। पहला श्रुतस्कन्ध भाव, भाषा एव विषय की दृष्टि से गहन, गम्भीर एव कठिन है, तो द्वितीय श्रुतस्कन्ध सरल एव सुगम है। जिसे हृदयगम करने के लिए मस्तिष्क को अधिक श्रम नही करना पडता है।

समवायाङ्ग सूत्र मे बताया है कि प्रथम श्रुतस्कन्ध के नव अध्ययन हैं और ये नव अध्ययन ५१ उद्देशको मे विभक्त हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे १६ अध्ययन है और उनके ३४ उद्देशक हैं। पूरे आचाराङ्ग सूत्र के २५ अध्ययन हैं और ये सब ८५ उद्देशको से सयुक्त हैं। इसमे अठारह सहस्त्र पद हैं।[१]

ऐसा ही पाठ श्री नन्दी सूत्र मे भी मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि आचाराङ्ग भगवान का भव्य भवन ८५ स्तम्भो पर खडा है। आगम मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है- ''नव ब्रह्मचर्यों के ५१ उद्देशक हैं''[२]

---

१ से ण अगट्ठयाए पढ़मे अगे दो सूयखदा- पणवीस्स अज्झयणा, पचासीइ उद्देसण काला, पच्चासी समुद्देसण काला, अट्ठारस्स पद सहस्साइ पदग्गेण।

आयारस्स भगवतो स चूलिआगस्स अट्ठारस्स पय सहस्साइ पन्नाइ। -समवायाङ्ग, द्वादशाङ्गी अधिकार।

२ नवण्ह बभचेराण एकावन्न उद्देसण काला प०। - समवायाङ्ग सूत्र, ५१

प्रस्तुत आगम के प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययनो का नाम ब्रह्मचर्य है। आगे कहा गया है कि "आचाराङ्ग भगवान के चूलिका के साथ पच्चीस अध्ययन कहे गए हैं, जैसे शस्त्र-परिज्ञा इत्यादि।[१]" प्रस्तुत पाठो से उपरोक्त बात परिपुष्ट होती है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह द्वितीय श्रुतस्कन्ध भी प्रामाणिक एव गणधर कृत है। इन पाठो से सपूर्ण आचाराङ्ग सूत्र की विशिष्टता, प्रामाणिकता एव गणधर कृतत्व झलक उठता है।

आचाराङ्ग सूत्र के कर्ता–

जैन विचारको की यह मान्यता है कि द्वादशागी– अग शास्त्र के प्रणेता तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर भगवान अपने शासनकाल में द्वादशागी का अर्थ रूप से उपदेश देते हैं। उस अर्थ रूप वाणी को गणधर सूत्र में ग्रथित करते हैं। अत. अर्थ रूप से द्वादशागी के उपदेष्टा या प्रणेता तीर्थंकर होते हैं और गणधर उसे सूत्र रूप मे ग्रथित करते हैं। गणधर कृत सूत्रो का मूलाधार तीर्थंकरो की अर्थ रूप वाणी होने से हम उसे तीर्थंकर या सर्वज्ञ कृत ही कहते हैं। इस दृष्टि से द्वादशागी सर्वज्ञ प्रणीत कहलाती है। आचाराङ्ग सूत्र का द्वादशागी मे प्रथम स्थान है, अत आचाराङ्ग सूत्र सर्वज्ञ प्रणीत माना जाता है।

द्वितीय श्रुतस्कध के रचयिता– गणधर है या स्थविर ?

इसमे कोई दो मत नहीं हैं कि आचाराङ्ग का प्रथम श्रुतस्कन्ध गणधर कृत है। परन्तु, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सम्बन्ध मे कुछ विचार भेद है। कई विचारक एव तत्त्ववेत्ता द्वितीय श्रुतस्कन्ध को गणधर कृत नहीं, प्रत्युत स्थविर कृत मानते हैं। चूर्णिकार का अभिमत है कि आचाराङ्ग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध स्थविरो द्वारा रचा हुआ है[२]। जर्मन विद्वान भी हरमन जेकोबी भी चूर्णिकार के मत से सहमत हैं। कई जैन विचारक एव विद्वान भी इसे स्थविर कृत मानते हैं। उनका कथन है कि विषय की समानता होने के कारण इसे स्थविरो ने बाद में चूलिका के रूप मे आचाराङ्ग के साथ सम्बद्ध किया है। परन्तु, मेरी मान्यता यह है कि प्रस्तुत आगम का द्वितीय श्रुतस्कन्ध स्थविर कृत नहीं, गणधर कृत है। आगम मे भी इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

हम समवायाङ्ग सूत्र का पाठ देख चुके हैं, उसमे स्पष्टतया बताया गया है कि प्रथम अग (आचाराङ्ग) के दो श्रुतस्कन्ध, २५ अध्ययन, ८५ उद्देशक और १८ सहस्र पद हैं। समवायाङ्ग सूत्र अग सूत्रो मे समाविष्ट है। अत: वह गणधर कृत है। उसमे आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध को प्रथम श्रुतस्कन्ध से सम्बद्ध करके वर्णन किया गया है। यदि द्वितीय श्रुतस्कन्ध गणधर कृत नहीं होता तो गणधर कृत समवायाङ्ग सूत्र मे इसका उल्लेख नहीं मिलता। प्रस्तुत पाठ से यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध भी प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह गणधर कृत है।

केवल समवायाङ्ग सूत्र मे ही नहीं, अन्य आगम साहित्य मे भी इस की प्राचीनता, प्रामाणिकता एव महत्त्वपूर्णता का उल्लेख मिलता है। इसके साथ अन्य आगमो मे इसके गणधर कृत होने के प्रमाण

---

१ आयारस्स ण भगवओ सचूलिआयरस्स पणवीस अज्झयणा पन्नत्ता तजहा– सत्थपरिणा ।

–समवायाङ्ग सूत्र, २५।

२ थेरेहिं अणुग्गहट्ठा सीसहिअ होउ पागडत्थ च आयाराओ अत्थो आयाराङ्गेसु पविभत्तो।

"स्थविरै श्रुतवृद्धैश्चतुर्दश पूर्वविद्भिर्निर्यूढानीति, किमर्थं ? शिष्य हित भवत्विति कृत्वाऽनुग्रहार्थं तथाऽप्रकटोऽर्थ । प्रकटो यथा स्यादित्येवमर्थञ्च, कुतो निर्यूढानि आचारात् सकाशात समस्तोऽप्यर्थं आचाराग्रेषु विस्तरेण प्रविभक्त इति।"

भी मिलते हैं।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे बताया गया है कि भगवान ऋषभदेव ने श्रमण साधना के लिए पच्चीस भावनाओ के साथ पाच महाव्रतो का उपदेश दिया। इसमे 'भावना-गमेण' शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है[1]। आचाराङ्ग सूत्र के २४ वे अध्ययन का नाम 'भावना अध्ययन' है, इसमे ५ महाव्रत की २५ भावनाओ का विस्तृत विवेचन मिलता है। प्रस्तुत पाठ इस ओर सकेत कर रहा है। समवायाङ्ग सूत्र मे २५ अध्ययनो का नाम निर्देश किया है[2]। इससे स्पष्टत सिद्ध होता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध पहले श्रुतस्कन्ध से सम्बद्ध है। अत वह भी प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह गणधर कृत है। स्थानाङ्ग सूत्र मे भी हमे ऐसा ही पाठ मिलता है, जिसमे भावना अध्ययन का उदाहरण दिया गया है[3]। इसके अतिरिक्त प्रश्नव्याकरण सूत्र मे यह प्रश्न उठाया गया है कि साधु को कैसा और किस तरह का आहार ग्रहण करना चाहिए ? इसके उत्तर मे कहा गया है 'पिण्डपात' अध्ययन के ग्यारह उद्देशको मे आहार-पानी ग्रहण करने की जो विधि बताई है, उस तरह से ग्रहण करना चाहिए[4]। पाठका को यह नहो भूलना चाहिए कि 'पिण्डपात' आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का प्रथम अध्ययन है। अत प्रस्तुत पाठ भी द्वितीय श्रुतस्कन्ध की महत्ता को प्रकट कर रहा है। ये सब पाठ इस बात को सिद्ध कर रहे है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध की रचना उसी समय हुई थी, जब प्रथम श्रुतस्कन्ध की हुई है। अत उभय श्रुतस्कन्ध गणधर कृत हैं।

भाषा एवं शैली का अन्तर –

यह हम ऊपर देख चुके हैं कि कुछ विचारक द्वितीय श्रुतस्कन्ध को गणधर कृत नहीं मानते हैं। चूर्णिकार भी इसे स्थविर कृत मानते हैं और डा॰ हर्मन जेकोबी एव अन्य प्राच्य एव पाश्चात्य विद्वान भी चूर्णिकार के विचारो से सहमत हैं। उनका कथन है कि प्रथम श्रुतस्कन्ध के ९ अध्ययन ही गणधर कृत हैं। शेष द्वितीय श्रुतस्कध के १६ अध्ययन पीछे से जोडे गए हैं। अत इनका रचयिता गणधर नहीं, कोई स्थविर ही होना चाहिए।

अपने पक्ष के समर्थन मे उनका कथन है कि प्रथम एव द्वितीय श्रुतस्कन्ध की भाषा, भाव और शैली मे एकरूपता नहीं है। प्रथम श्रुतस्कन्ध के भाव गहन-गभीर हैं और भावो के अनुरूप उसकी भाषा एव शैली भी क्लिष्ट एव गम्भीर है। परन्तु, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के भावो मे यह दार्शनिकता एव गम्भीरता नहीं है, जो प्रथम श्रुतस्कन्ध के भावो मे है। इमी कारण उसकी भाषा एव शैली मे गाम्भीर्य परिलक्षित नहीं होता है। यदि दोनो श्रुतस्कन्ध एक ही व्यक्ति के निर्मित होते तो दोनो के भाव, भाषा एव शैली मे इतना अन्तर नहीं आता। इससे प्रतीत होता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध चूलिका के रूप मे पीछे से जोडा गया है।

हम विचारको की इस बात मे पूर्णत सहमत हैं कि दोनो श्रुतस्कन्धो की भाषा एव शैली मे

---

१ **तएण से भगव समणाण णिग्गथाण वा णिग्गथीण पच महव्वयाइ सभावणागाइ छज्जीवणिकाए धम्म देसमाणे विहरइ तजहा-पुढवी काइए भावनागमेण पच महव्वयाइ सभावणागाइ भणियव्वाइ।**

–जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष॰, ऋषभ अधिकार।

२ **आयारस्स ण भगवओ सचूलिआयरस्स पणवीस अज्झयणा प॰ तजहा– सत्थ परिण्णा, लोग विजओ, सीओसणीय, सम्मत्त आवति, धूय, विमोह, उवहाण, मृय , महपरिण्णा, पिडेसणा, सिज्जिरिआ, भासज्झयणा, य वत्थ, पाएसा, उग्गह पडिमा, सतिक्कसत्तया, 'भावणा,' विमुक्ति।** –समवायाङ्ग मूत्र, २५।

३ **अममे, अकिचणे, अच्छिन्नगथे, निरूवलवे, कसयाईव, मुक्कतोए जहा भावणाए।** –स्थानाङ्ग सूत्र स्थान ६।

४ **अह केरिमय पुणाइ कप्पति, ज त एकारस्म पिडवाय सुद्ध।** –प्रश्नव्याकरण सूत्र, सवरद्वार ५।

भिन्नता है। परन्तु, इससे यह सिद्ध नही किया जा सकता कि दूसरा श्रुतस्कन्ध गणधर कृत नहीं, स्थविर कृत है। क्योंकि, केवल भाषा एव शैली भिन्नता का प्रतीक नहीं मानी जा सकती। हम देखते हैं कि भावो के अनुसार भाषा भी बदलती रहती है। बी० ए० और एम० ए० के स्तर की पुस्तके एव पी-एच० डी० के स्तर का महानिबन्ध लिखने वाला प्रोफेसर जब प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के छात्रो के लिए पुस्तकें लिखता है, तो उन दोनो पुस्तकों की भाषा एव शैली मे रात-दिन का अतर होता है। जो एम० ए० एव पी-एच० डी० के स्तर के महानिबन्ध के भावो मे गभीरता एव प्रौढता है, वह प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के स्तर की पुस्तको मे नहीं आ सकती है। अत· भावो के अनुरूप भाषा एव शैली मे वह गम्भीरता नहीं रह सकती। बाल साहित्य लिखते समय प्रोफेसर को बच्चो की भाषा एव शैली का ख्याल रखना होगा। परन्तु, इस बाल साहित्य की सीधी-सादी शैली एवं हल्की भाषा के कारण हम यह नहीं कह सकते कि महानिबन्ध एव एम० ए० के साहित्य का लेखक एव बाल साहित्य का लेखक एक नहीं, दो भिन्न व्यक्ति हैं। इससे स्पष्ट हो गया कि एक ही व्यक्ति क्लिष्ट एव सरल भाषा मे लिख सकता है। भाषा भावो के अनुरूप बदलती रहती है।

आचाराङ्ग का प्रथम श्रुतस्कन्ध तात्त्विक है। इसमे पाच आचार– १-ज्ञानाचार, २-दर्शनाचार, ३-चारित्राचार, ४-तपाचार और ५-वीर्याचार का तात्त्विक विवेचन किया गया है। अत उस मे सूत्र शैली का प्रयोग किया गया है। थोडे मे शब्दो से बहुत कुछ कह दिया गया है। एक प्रकार से गागर मे सागर भर दिया है। अत· भावो की गम्भीरता के अनुरूप ही भाषा एव शैली मे क्लिष्टता एव गाम्भीर्य का आना स्वाभाविक था। परन्तु, द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे प्राय· साध्वाचार का ही वर्णन है और वह सर्व साधारण के लिए है। इसके भावो मे दार्शनिकता एव गम्भीरता कम है। उसके भावो को प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ सकता है। अत भावो के अनुरूप उसकी भाषा एव शैली भी सरल एव सीधी-सादी है। अत दोनो श्रुतस्कन्धो की भाषा एव शैली का अन्तर दो विभिन्न कर्त्ताओ के कारण नहीं, अपितु भावो की विभिन्नता के कारण है। अत उभय श्रुतस्कन्ध गणधर कृत ही हैं।

उभय श्रुतस्कन्ध एक-दूसरे के पूरक है–

आचाराङ्ग सूत्र का अनुशीलन-परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो श्रुतस्कन्ध एक-दूसरे के परिपूरक हैं। हम यह देख चुके हैं कि प्रथम श्रुतस्कन्ध मे ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन ५ आधारो का वर्णन किया है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे प्राय· साध्वाचार का विस्तृत विवेचन मिलता है। यदि पचाचार साधना की लहलहाती हुई खेती है, तो साध्वाचार उस की बाड है, जो उसकी हर तरह से सुरक्षा करती है। साध्वाचार के अभाव मे पचाचार की उत्कृष्ट साधना नहीं हो सकती। अत. उभय श्रुतस्कन्ध अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हे एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। देखिए, आचाराङ्ग सूत्र मे द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक को प्रारम्भ करते समय वृत्तिकार लिखते हैं कि "प्रथम श्रुतस्कन्ध पूरा हुआ अब द्वितीय श्रुतस्कन्ध प्रारम्भ करते हैं, उसका परस्पर यह सम्बन्ध है[१]।" इससे यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध आचाराङ्ग का उपयोगी

१ उक्तो नवब्रह्मचर्याध्ययनात्मक आचार श्रुतस्कध साम्प्रत समाप्त द्वितीयोऽग्रश्रुतस्कन्ध समारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्ध । –आचाराङ्ग वृत्ति, द्वितीय श्रुतस्कध।

अग है और इसे प्रथम श्रुतस्कन्ध से किसी भी तरह अलग नहीं किया जा सकता है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध का कर्ता कौन स्थविर है ?

हम विस्तार से बता चुके हैं कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध गणधर कृत है। यदि कुछ लोगो के विचारानुसार यह स्थविर कृत है, तो यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहेगा कि इसका कर्ता कौन स्थविर है ? अत इसे स्थविर कृत मानने वाले वरिष्ठ विद्वानो को यह स्पष्ट करना चाहिए कि उस स्थविर का नाम क्या था ? उसने किस शताब्दी मे इसकी रचना की? बिना प्रमाण के कोई भी बात मान्य नहीं की जा सकती। क्योकि, कई आगमो का सकलन गणधरो से भिन्न स्थविरो ने किया है, वहा उनके नामो का उल्लेख मिलता है।

जैसे दशवैकालिक सूत्र गणधर कृत नही है। इसमे प्राय साध्वाचार का वर्णन है। वस्तुत देखा जाए तो यह आचाराङ्ग का एक छोटा-सा रूप है, सक्षिप्त सस्करण है। इसके सकलन कर्ता श्री सभवाचार्य थे। भगवान महावीर के निर्वाण पधारने के ८५ वर्ष बाद वे आचार्य पद पर आसीन हुए। उन्होने अपने नवदीक्षित पुत्र को साध्वाचार का ज्ञान कराने के लिए इस आगम का सकलन किया था। यह आगम अलौकिक विलक्षण होते हुए भी भाषा की दृष्टि से सरल एव सुगम है और हम देखेगे कि इसका निर्माण करते समय विशेष रूप से आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का ही सहारा लिया है। अत हम कह सकते हैं कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध ही दशवैकालिक की नीव है।

आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन का नाम 'पिडैषणा' अध्ययन है। इस अध्ययन को सम्मुख रखकर ही दशवैकालिक के पाचवे अध्ययन का निर्माण किया गया है, उसका नाम भी 'पिण्डैषणा' है। दोनो का विषय भी एक है और दोनो के नाम भी एक ही हैं। दशवैकालिक का चौथा 'छज्जीवणीकाय' अध्ययन आचाराङ्ग के 'भावना' अध्ययन के आधार से रचा गया है, जो द्वितीय श्रुतस्कन्ध का १५वा अध्ययन है। दशवैकालिक का 'सुवक्क सुद्धी' नामक सातवा अध्ययन द्वितीय श्रुतस्कन्ध के भाषा अध्ययन का पद्य मे अनुवाद है। इन प्रमाणो से यह भी स्पष्ट होता है कि दशवैकालिक आचाराङ्ग का सुन्दर पद्यानुवाद है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आचाराङ्ग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध सभवाचार्य से पहले विद्यमान था। इससे यह भी ध्वनित होता है कि यह गणधर कृत है। क्योकि, यदि यह साधारण स्थविर कृत होता तो सम्भवाचार्य इसके आधार पर दशवैकालिक की रचना नहीं करते और जैसे दशवैकालिक सूत्र के साथ सभवाचार्य का नाम जुडा हुआ है वैसे द्वितीय श्रुतस्कन्ध के कर्त्ता का नाम भी उसके साथ सम्बद्ध होता। परन्तु, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के कर्ता के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है और आज तक न किसी विद्वान ने इसका उल्लेख किया है। अत इस से यह स्पष्टत सिद्ध होता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध दशवैकालिक से अधिक प्राचीन एव गणधर कृत है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध की प्रामाणिकता का एक और प्रमाण

यह हम देख चुके हैं कि दशवैकालिक सूत्र का निर्माण द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य आगमो मे अनेक स्थानो पर आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध की झलक मिलती है। हम यो भी कह सकते है कि आचाराङ्ग सूत्र बत्तीस आगमो मे समाहित-सा हो गया है। स्थानाङ्ग सूत्र मे यह वर्णन आता है कि 'चार श्य्या प्रतिमा, चार वस्त्र प्रतिमा, चार पात्र प्रतिमा और चार स्थान प्रतिमा कही

गई हैं।[१] वस्तुत ये चारो प्रतिमाए साध्वाचार की चार कडिया हैं। आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे इनसे सम्बद्ध चार अध्ययन हैं। वस्तुत यह पाठ उन्हीं के आधार पर लिखा गया है। स्थानाङ्ग सूत्र मे एक पाठ और आता है, उसमे आहार-पानी आदि की सात एषणाओ का वर्णन किया गया है[२]। यह पाठ भी द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आधार पर लिखा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत श्रुतस्कन्ध भी गणधर कृत है। यदि वह गणधर कृत नहीं होता तो स्थानाङ्ग जैसे प्राञ्जल एव गणधर कृत आगम मे इतनी स्पष्टता से उसकी महत्ता को कभी भी स्वीकार नहीं किया जाता । इसके अतिरिक्त समवायाङ्ग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रो के पाठ हम पहले ही बता चुके हैं। इससे यह स्पष्टत प्रतीत होता है कि आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के भावो का आगमो में जाल बिछा हुआ है। यह एक सोचने-समझने की बात है कि एक साधारण स्थविर कृत आगम को इतना सम्मान कैसे प्राप्त हो सकता है और उसका उल्लेख गणधर कृत आगमो मे कैसे आ सकता है ? इससे यह सूर्य के उजाले की तरह साफ हो जाता है कि द्वितीय श्रुतस्कन्ध गणधर कृत है।

स्थविर शब्द की व्याख्या– गणधर को भी स्थविर कहते है

स्थविर शब्द केवल अनुभवी एव वृद्ध के लिए प्रयोग मे नहीं आता है, प्रत्युत उसमे अनेक अर्थ एव भाव सन्निहित रहते हैं। जैनागमो मे स्थविर शब्द प्रमुख नायक के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। स्थानाङ्ग सूत्र मे ग्राम स्थविर, नगर स्थविर, राष्ट्र स्थविर[३], पार्श्वस्थ स्थविर, कुल स्थविर, गण स्थविर, सघ स्थविर, वय स्थविर, श्रुत स्थविर और दीक्षा स्थविर, इन दस स्थविरो का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण मे स्थविर प्रमुख नेता के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अपने-अपने विभाग का स्थविर– प्रमुख व्यक्ति हर दृष्टि से योग्य एव अनुभवी होता है और वह स्व विभाग से सम्बद्ध सम्पूर्ण दायित्व अपने सबल कन्धो पर उठा लेता है। इसके अतिरिक्त तीन प्रकार के स्थविर और भी बताए गए हैं– १-वय स्थविर, २-श्रुत स्थविर और ३-दीक्षा स्थविर। ६० वर्ष की आयु मे कदम रखते ही साधु को वय स्थविर के पद से विभूषित कर दिया जाता है।

उपरोक्त सपूर्ण विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत आगम द्वितीय श्रुतस्कध गणधर कृत ही है। शेष केवलिगम्यमम्।

– आचार्य आत्माराम

---

१ **चत्तारि सेज्जा पडिमाओ प०, चत्तारि वत्थ पडिमाओ प०,**
चत्तारि पाय पडिमाओ प०, चत्तारि ठाण पडिमाओ प०। –स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४ उ ३।

२ **सत्त पिण्डेसणाओ प०, सत्तपाणेसणाओ प०,**
सत्त उग्ग हपडिमाओ प०, सत्त सत्तिक्कया प०। –स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ७।

३ **दस थेरा पण्णत्ता तजहा– गाम थेरा, णगर थेरा, रट्ठ थेरा, पसत्थ थेरा, कुल थेरा, गण थेरा, सघ थेरा, जाई थेरा, सूय थेरा, परियाय थेरा।** –स्थानाङ्ग सूत्र स्थान १०।

आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति के

अर्थ सहयोगी

(1) श्री महेन्द्र कुमार जी जैन, मिनी किग लुधियाना (पजाब)

(2) श्री शोभन लाल जी जैन, लुधियाना (पजाब)

(3) स्त्री सभा रूपा मिस्त्री गली, लुधियाना (पजाब)

(4) आर एन ओसवाल परिवार, लुधियाना (पजाब)

(5) सुश्राविका सुशीला बहन लोहटिया, लुधियाना (पजाब)

(6) सुश्राविका लीला बहन, मोगा (पजाब)

(7) उमेश बहन, लुधियाना (पजाब)

(8) स्व० श्री सुशील कुमार जी जैन लुधियाना (पजाब)

(9) श्री नवरग लाल जी जैन सगरिया मण्डी (पजाब)

(10) वर्धमान शिक्षण सस्थान, फरीदकोट (पजाब)

(11) एस एस जैन सभा, जगराओ (पजाब)

(12) एस एस जैन सभा, गीदडवाहा (पजाब)

(13) एस एस जैन सभा, केसरी- सिह-पुर (पजाब)

(14) एस एस जैन सभा, हनुमानगढ (पजाब)

(15) एस एस जैन सभा, रत्नपुरा (पजाब)

(16) एस एस जैन सभा, रानिया (पजाब)

(17) एस एस जैन सभा, सगरिया (पजाब)

(18) एस एस जैन सभा, सरदूलगढ (पजाब)

(19) श्रीमती शकुन्तला जैन धर्मपत्नी श्री राजकुमार जैन, सिरसा (हरियाणा)

(20) एस एस जैन सभा, बरनाला (पजाब)

(21) श्री रवीन्द्र कुमार जैन, भठिण्डा (पजाब)

(22) लाला श्री श्रीराम जी जैन सर्राफ, मालेर कोटला (पजाब)

(23) श्री चमनलाल जी जैन सुपुत्र श्री नन्द किशोर जी जैन, मालेर कोटला (पजाब)

(24) श्री मूर्ति देवी जैन धर्मपत्नी श्री रतनलाल जी जैन (अध्यक्ष), मालेर कोटला (पजाब)

श्रुतसेवा

श्री नवरंगलाल जन
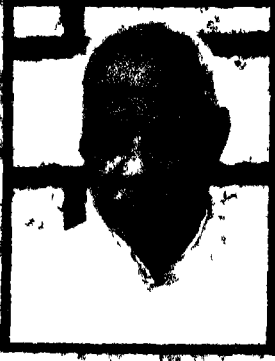
श्री सतीश कुमार जन
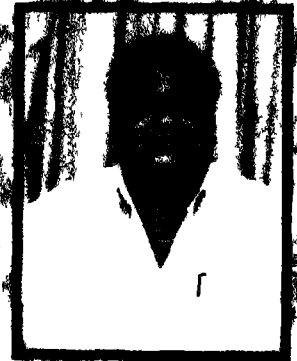
श्री प्रेम चन्द जन

श्री जगदीश चन्द जन

श्रीमती राममूर्ति जेन

श्री सुर्दशन कुमार जैन

श्रीमती सुशीला देवी जन

श्री प्रमोद जन

(25) श्रीमती माला जैन धर्मपत्नी श्री राममूर्ति जैन लोहटिया, मालेर कोटला (पजाब)

(26) श्रीमती एवं श्री रत्नचद जी जैन एंड सस, मालेर कोटला (पजाब)

(27) श्री बचनलाल जी जैन सुपुत्र स्व श्री डोगरमल जी जैन, मालेर कोटला (पंजाब)

(28) श्री अनिल कुमार जैन, श्री कुलभूषण जैन सुपुत्र श्री केसरीदास जैन, मालेर कोटला (पजाब)

(29) श्री एस एस जैन सभा, मलौट मण्डी (पजाब)

(30) श्री एस एस जैन सभा, सिरसा (हरियाणा)

(31) श्रीमती कांता जैन धर्मपत्नी श्री गोकुलचन्द जी जैन शिरडी (महाराष्ट्र)

(32) किरण बहन, रमेश कुमार जैन, बोकडिया, सूरत (गुजरात)

(33) श्री श्रीपत सिह, गोखरू, जुहू स्कीम मुम्बई (महाराष्ट्र)

(34) एस एस जैन बिरादरी, तपावाली, मालेर कोटला (पजाब)

(35) प्रेमचन्द जैन सुपुत्र श्री बनारसी दास जैन मालेरकोटला (पजाब)

(36) प्रमोद जैन, मन्त्री एस एस जैन सभा मालेरकोटला (पजाब)

(37) श्री सुदर्शन कुमार जैन, सैक्रेटरी एस एस जैन सभा मालेर कोटला (पजाब)

(38) श्री जगदीश चन्द्र जैन हवेली वाले मालेर कोटला (पजाब)

(39) श्री सतोष जैन-खन्ना मण्डी (पजाब)

(40) श्री पार्वती जैन महिला मण्डल

(41) श्री आनन्द प्रकाश जैन, अध्यक्ष जैन महासघ (दिल्ली प्रदेश)

अपने संघ, संस्था एवं घर में अपना पुस्तकालय

''भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट'' के अन्तर्गत ''आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति'' द्वारा आचार्य सम्राट् पूज्य श्री शिवमुनि जी म॰ सा॰ के निर्देशन मे श्रमण सघीय प्रथम पट्टधर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज सा॰ द्वारा व्याख्यायित जैन आगमो का पुनर्मुद्रण एव सपादन कार्य द्रुतगति से चल रहा है। उपासकदशाग सूत्रम, उत्तराध्ययन सूत्रम, भाग 1-2-3, अनुत्तरोपपातिक सूत्रम, दशवैकालिक सूत्रम, अन्तकृद्दशागसूत्रम, आचाराग सूत्रम, प्रथम श्रुतस्कध, आचाराङ्ग सूत्रम, द्वितीय श्रुतस्कध प्रकाशित हो चुके हैं तथा विपाकसूत्र, नन्दी सूत्र आदि आगम प्रेस मे हैं। आने वाले एक दो माह मे ये सभी आगम उपलब्ध रहेगे एव अन्य सभी आगम भी शीघ्र प्रकाशित होने जा रहे हैं।

प्रकाशन योजना के अन्तर्गत जो भी श्रावक सघ अथवा सस्था या कोई स्वाध्यायी बन्धु आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म॰ सा॰ के आगमो के प्रकाशन मे सहयोग करना चाहे एव स्वाध्याय हेतु आगम प्राप्त करना चाहते हैं तो उनके लिए एक योजना बनाई गई है। 11,000/- (ग्यारह हजार रुपए मात्र) भेजकर जो भी इस प्रकाशन कार्य मे सहयोग देगे उनको प्रकाशित समस्त आगम एव आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि म॰ सा॰ द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा ''आत्म दीप'' मासिक पत्रिका दीर्घकाल तक प्रेषित की जाएगी। इच्छुक व्यक्ति निम्न पतो पर सम्पर्क करे -

(1) **भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट**
नई दिल्ली-110 052
फोन 011-27138164, 32030139

(2) **श्री प्रमोद जैन**
द्वारा श्री श्रीपाल जैन पुराना लोहा बाजार
पो मालेर कोटला, जिला सगरूर, (पजाब)
फोन 0167-5258944

(3) **श्री अनिल जैन**
बी-24-4716, सुन्दरनगर
नियर जैन स्थानक लुधियाना-141008 (पजाब)
फोन 0161-2601625

नमन

वीर प्रभु महाप्राण, सुधर्मा जी गुणखान।
अमर जी युगभान, महिमा अपार है।
मोतीराम प्रज्ञावन्त, गणपत गुणवन्त।
जयराम जयवन्त, सदा जयकार है ॥
ज्ञानी-ध्यानी शालीग्राम, जैनाचार्य आत्माराम।
ज्ञान गुरु गुणधाम, नमन हजार है।
ध्यान योगी शिवमुनि, मुनियों के शिरोमणि।
पूज्यवर प्रज्ञाधनी शिरीष नैय्या पार है ॥

—— : अमृत कण :——

जे एगं जाणइ	जो एक आत्मा को जानता है,
से सव्व जाणइ।	वह सब कुछ जानता है।
पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं,	हे साधक तू स्वय ही अपना मित्र है,
कि बहिया मित्तमिच्छसि।	तू दुनिया मे बाहरी मित्र क्यो ढूँढता है।
जे आया से विन्नाया,	जो आत्मा है वही विज्ञाता है,
जे विन्नाया से आया।	जो विज्ञाता है वही आत्मा है,
जेण विजाणइ से आया,	क्योकि ज्ञान के कारण ही आत्मा शब्द का प्रयोग होता है।
से सुय च अज्झत्थ च मे,	मैंने सुना और अनुभव किया है,
बन्धं प्पमोक्खो अज्झत्थे।	बन्ध और मोक्ष तुम्हारी आत्मा पर ही निर्भर है।
सव्वओ पमत्तस्स भय।	जो प्रमादी है, उसे सर्वत्र भय है।
सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भय।	अप्रमत्त के लिए कहीं भी भय नहीं है।
कामेसु गिद्धा निचयं करेंति।	भोगो मे आसक्त प्राणी कर्म सचय करता है,
ससिच्चमाणा पुणरेंति गब्भ।	और कर्मो से भारी होकर ससार मे परिभ्रमण करता है।
सच्चम्मि धिइं कुव्विहा।	सत्य मे सदा दृढ रहो,
एत्थोवरए मेहावी,	सत्य मे अनुरक्त मेधावी पुरुष
सव्व पाव झोसइ।	सब पापो का नाश कर देता है।
जे अणण्णारामे,	जो मोक्ष के अतिरिक्त अन्यत्र
	कहीं भी रुचि नही रखता,
से अणन्तदंसी।	वह अचल श्रद्धा-निष्ठ माना गया है।

— **आचाराङ्ग सूत्रम्**

श्री आचाराङ्ग सूत्रम्

विषय-सूची

श्रीः

आचाराङ्गसूत्रम्

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेतं

हिन्दी-भाषा-टीकासहितं च

॥णमोत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स॥

श्री आचाराङ्ग सूत्रम्

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा

प्रथम उद्देशक

इस बात को हम आचाराङ्ग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध को प्रारम्भ करते समय बता चुके हैं कि आचाराङ्ग सूत्र मे आचार का वर्णन किया गया है। आचार पाच प्रकार का है- १-ज्ञानाचार, २-दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार और ५-वीर्याचार। प्रथम श्रुतस्कन्ध मे पाचो आचारो का सूत्र शैली मे वर्णन किया गया है। इसलिए उनके वर्णन मे सक्षिप्तता एव गम्भीरता आ गई है। और प्रस्तुत श्रुतस्कन्ध मे प्रमुख रूप से चारित्राचार का उपदेश शैली मे वर्णन किया गया है। साधना के लिए चारित्राचार आवश्यक है। अत प्रथम श्रुतस्कन्ध मे किए गए चारित्राचार विषयक सक्षिप्त वर्णन का प्रस्तुत श्रुतस्कन्ध मे विस्तार किया गया है।

चारित्र साधना का प्रधान अग है। ज्ञान, दर्शन, तप एव वीर्य को चारित्र से गति मिलती है, ज्ञान आदि साधना मे तेजस्विता आती है। वस्तुत देखा जाए तो ज्ञान साधनो का मूल्य उसे चारित्र का साकार रूप देने मे है। ज्ञान जब तक आचरण मे नहीं लाया जाएगा तब तक उसका यथार्थ एव अभिलषित फल मोक्ष नही मिल सकता। जब ज्ञान और चारित्र की समन्वित साधना होगी तभी आत्मा सर्व कर्म बन्धन से मुक्त हो सकेगा। इसलिए चारित्र की सम्यक् साधना आराधना करने के लिए दूसरे श्रुतस्कन्ध का अध्ययन करना जरूरी है।

जीवन की पहली आवश्यकता आहार है। भले ही गृहस्थ हो या साधु, आहार के बिना लौकिक एव लोकोत्तर कोई भी साधना नही हो सकती। अत प्रस्तुत श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन मे यह बताया गया है कि साधु को सयम परिपालन करने के लिए किस तरह से एव कैसा आहार करना चाहिए। आगम मे इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि साधु कुछ कारणो से आहार ग्रहण करता है और कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे आहार का त्याग भी कर देता है। आगम मे आहार करने के छ कारण बताए है–१-क्षुधा-वेदनीय-भूख की पीडा सहन नही हो तो साधु आहार कर सकता है। २- वैयावृत्य-सेवा करने के लिए- सयम की, कुल की, गण की, आचार्य, उपाध्याय की, रोगी की, नवदीक्षित आदि की सेवा शुश्रूषा करने के लिए शारीरिक शक्ति अपेक्षित है और उसके लिए आहार करना भी आवश्यक है। ३-ईर्या-समिति का परिपालन करने के लिए। ४- सयम का पालन करने के लिए। ५- प्राणो को धारण करने के लिए। ६-धर्म-चिन्तन के लिए आहार ग्रहण करे। क्योकि ये क्रियाए भी शारीरिक बल के बिना भली-भाति

नहीं हो सकती। इसलिए मुनि इन छ कारणो से आहार करता है[१]। इसी तरह आहार का त्याग करने के भी छ कारण हैं- १-बीमारी-बुखार आदि के आने पर साधु को आहार का त्याग कर देना चाहिए। ज्वर मे आहार करने से वह जल्दी ठीक नहीं होता । इसलिए रोग के समय उपवास बहुत लाभदायक रहता है। आयुर्वेद मे भी रोग चिकित्सा मे लघन उपवास को श्रेष्ठ माना है। महात्मा गाधी ने तो उपवास के द्वारा कई रोगो की चिकित्सा की है। अत रोग के समय साधु को आहार का त्याग कर देना चाहिए। २- उपसर्ग-कष्ट आने पर साधु को तप करना चाहिए। ३-क्षुधा-भूख शात होने पर आहार का त्याग कर देना चाहिए। क्योकि बिना भूख के खाने से अनेक रोग होने की सभावना है और उससे सयम साधना मे भी दोष लग सकता है। अत भूख न हो तो नही खाना चाहिए। ४-ब्रह्मचर्य का परिपालन करने के लिए आहार का त्याग कर देना चाहिए। यदि मन मे विकार जागृत होते हो तो साधु को तपस्या करनी चाहिए। गीता मे लिखा है कि निराहार आहार का त्याग करने वाले व्यक्ति को विषय विकार नहीं सताते[२]। ५-जीव रक्षा के लिए आहार का त्याग करना चाहिए। जैसे कि वर्षा के पडते हुए अप्काय आदि की रक्षा के लिए आहार का त्याग कर देना चाहिए। ६-मृत्यु के निकट आन पर आहार का त्याग करके अनशन सथारा स्वीकार करना चाहिए।[३] इस तरह आहार करने की आवश्यकता होने पर साधु को आहार स्वीकार करना चाहिए।

परन्तु उस समय कैसा आहार स्वीकार करे, इसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्- से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा-असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पाणेहिं वा पणगेहिं वा बीएहिं वा हरिएहिं वा संसत्तं उम्मिस्सं सीओदएण वा ओसित्तं रयसा वा परिघासियं तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइम वा साइमं वा परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जंति मन्नमाणे लाभेऽवि संते नो पडिग्गाहिज्जा। से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया से तं आयाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अप्पंडे अप्पपाणे अप्पबीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पुदए अप्पुत्तिंगपणगदग-मट्टियमक्कड़ासंताणए विगिंचिय २ उम्मीसं विसोहिय २ तओ संजयामेव भुंजिज्ज वा पीइज्ज वा, जं च नो संचाइज्जा भुत्तए वा पायए वा से तमायाय एगमतव-क्कमिज्जा, अहे झामथंडिल्लंसि वा अट्ठिरासिंसि वा किट्टरासिंसि वा तुसरासिंसि वा गोमयरासिंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहिय

१ छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे आहारमाहारेमाणे णाइक्कमइ तजहा वेयण, वेयावच्चे इरियट्ठाए य सजमट्ठाए तह पाणवत्तियाए छट्ठ पुण धम्मचिताए। – स्थानाङ्ग सूत्र, ६।

२ निराहारस्य देहिन विषयाविनिवर्तन्ते। -गीता २।

३ छहिं ठाणेहि समणे - निग्गथे आहार वोछिन्दमाणे णाइक्कमइ तजहा - आतके, उवसग्गे, तितिक्खणे, बभचेरगुत्तीए, पाणिदया, तवहेउ सरीरवुच्छेयणट्ठा ए। -स्थानाङ्ग सूत्र स्थान ६।

पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव परिट्ठविज्जा ॥१ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुलं पिंडपातप्रतिज्ञया अनुप्रविष्ट सन्, स यत् पुन जानीयात्, अशनं वा पान वा खादिम वा स्वादिमं वा प्राणिभिः पनकै. वा बीजै. वा हरितै. वा ससक्तं वा उन्मिश्र वा शीतोदकेन वा अवसिक्त रजसा वा परिघर्षित तथाप्रकार अशन वा पान वा खादिम वा स्वादिम वा परहस्ते वा परपात्रे वा अप्रासुक अनेषणीय इति मन्यमानः लाभे सत्यपि नो प्रतिगृह्णीयात्, स च आहत्य प्रतिगृह्णीयात् स्यात् स तदादाय एकान्तमपक्रामेत्, एकान्तमपक्रम्य अथारामे वा अथोपाश्रये वा अल्पांडे अल्पप्राणे अल्पबीजे अल्पहरिते अल्पावश्याये अल्पोदके अल्पोत्तिंगपनकदकमृत्तिकामर्कटसन्तानके विविच्य २ उन्मिश्र विशोध्य २ तत सयत एव भुजीत वा पिबेद् वा यच्च न शक्नुयात् भोक्तु वा पातु वा स तदादाय एकान्तमपक्रामेत्, अथ दग्धस्थडिले वा अस्थिराशौ वा किट्टराशौ वा तुषराशौ वा गोमयराशौ वा अन्यतरराशौ वा तथाप्रकारे स्थडिले प्रत्युपेक्ष्य प्रत्युपेक्ष्य प्रमृज्य प्रमृज्य तत· सयत एव परिष्ठापयेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू**-भिक्षु। **वा**-अथवा। **भिक्खुणी वा**-भिक्षुणी आर्या। **गाहावइ**-गाथापति गृहस्थ के। **कुल**-कुल मे अर्थात् घर मे। **पिडवायपडियाए**-पिडपात-आहार प्राप्ति की प्रतिज्ञा से गृहस्थ के घर मे। **अणुपविट्ठे समाणे**-अनुप्रविष्ट हुआ। **से**-वह। **ज**-जो। **पुण**-फिर। **जाणिज्जा**-यह जाने कि। **असण वा**-अन्न अथवा। **पाण वा**-पानी अथवा। **खाइम वा**-खादिम अथवा। **साइम वा**-स्वादिम-स्वादिष्ट पदार्थ। **पाणेहिं वा**-द्वीन्द्रिय प्राणियो से अथवा। **हरिएहिं वा**-हरित अकुरादि से। **ससत्त**-सयुक्त। **उम्मिस्स**-मिश्रित। **सीओदएण वा**-या शीतोदक से। **ओसित्त**-अवसिक्त गीला है। **रयसा वा**-अथवा रज से, सचित्त धूलि से। **परिघासियं**-परिघर्षित है। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **असण वा**-आहार अथवा। **पाण वा**-पानी-जल अथवा। **खाइम वा**-खाद्य पदार्थ अथवा। **साइम वा**-स्वादिष्ट पदार्थ। **परहत्थसि वा**-गृहस्थ के हाथ मे अथवा। **परपायसि-वा**-गृहस्थ के पात्र मे है। **ति**-इस प्रकार के आहार को। **अफासुय**-अप्रासुक सचित्त। **अणेसणिज्ज**-सदोष-दोष युक्त। **मन्नमाणे**-मानता हुआ। **लाभेऽवि सते**-इस प्रकार का आहार प्राप्त होने पर भी। **नो पडिगाहिज्जा**-ग्रहण न करे। **य**-पुन **से**-वह साधु। **आहच्च**-कदाचित्। **पडिग्गाहिए सिया**-उसे ग्रहण करले तो। **से**-वह साधु। **त**-उस आहार को। **आयाए**-लेकर-ग्रहण करके। **एगतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान मे चला जाए। **एगंतमवक्कमित्ता**-एकान्त मे जाकर। **अहे**-अथवा। **आरामसि वा**-उद्यान मे। **अहे**-अथवा। **उवस्सयसि वा**-उपाश्रय मे 'अथ' शब्द जहा पर गृहस्थ न आता हो उस अर्थ मे है और 'वा' शब्द विकल्पार्थ मे अथवा शून्य गृहादि के अर्थ मे जानना। **अप्पंडे**-अडादि से रहित स्थान पर [१]। **अप्पपाणे**-द्वीन्द्रियादि जीवो से रहित स्थान। **अप्पबीए**-बीजो से रहित। **अप्पहरिए**-हरित से रहित। **अप्पोसे**-ओस से रहित। **अप्पोदए**-उदक-जल से रहित। **अप्पुत्तिंगपणगदगमट्टियमक्कड़ासताणए**-जहा पर जल, चींटिये, लीलन-फूलन, मिट्टी युक्त जल अथवा

---

१ यहाँ अल्प शब्द अभाव अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

उत्ती आदि, मर्कट जीव-जाला आदि जीव विशेष न हो ऐसे स्थानो मे जाकर उस आहार से। **विगिंचिय** २-उन जीवो को अलग २ कर। **उम्मीस**-उसमे मिश्रित हो तो। **विसोहिय** २-विशोधित कर। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु। **भुजिज्ज वा**-उस आहार को खाए। **पीइज्ज वा**-अथवा पीए। **ज च**-यदि वह उस आहार को। **भोत्तए वा**-खाने। **पायए वा**-अथवा पीने मे। **नो सचाएज्जा**-समर्थ न हो तो फिर। **से**-वह भिक्षु। **त**-उस आहार को। **आयाय**-लेकर। **एगंतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान मे चला जाए, जाकर। **अहे झामथडिलंसि वा**-दग्ध स्थान पर या। **अट्ठिरासिसि वा**-अस्थियो की राशि-ढेर पर। **किट्टरासिसि वा**-अथवा लोह के मल के ढेर पर। **तुसरासिंसि वा**-तुष राशि के स्थान। **गोमयरासिसि वा**-गोबर के ढेर पर अथवा। **अण्णयरसि**-इसी प्रकार के अन्य प्रासुक पदार्थों के ढेर पर अथवा। **तहप्पगारसि**-पूर्व सदृश अन्य प्रासुक स्थान पर। **थडिलंसि**-स्थडिल मे। **पडिलेहिय** २-आँखो से भली-भाति देख कर। **पमज्जिय** २-रजोहरण से भूमि को प्रमार्जित कर के। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-सम्यक् उपयोगपूर्वक वह साधु। **परिट्ठवेज्जा**-उस आहार को त्याग दे।

मूलार्थ—**आहार के लिए गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी इन पदार्थो का अवलोकन करके यह जाने कि यह अन्न-पानी, खादिम और स्वादिम पदार्थ, द्वीन्द्रियादि प्राणियो से, शाली चावल आदि के बीजो से और अकुरादि हरी सब्जी से सयुक्त है या मिश्रित है या सचित्त जल से गीला है तथा सचित्त मिट्टी से अवगुठित है। यदि इस प्रकार का आहार-पानी, खादिम, स्वादिम आदि पदार्थ गृहस्थ के घर मे या गृहस्थ के पात्र मे हो तो साधु उसे अप्रासुक-सचित्त तथा अनेषणीय-सदोष मान कर ग्रहण न करे, यदि भूल से उस आहार को ग्रहण कर लिया है तो वह भिक्षु उस आहार को लेकर एकान्त स्थान मे चला जाए और एकान्त स्थान मे या आराम-उद्यान या उपाश्रय मे जहा पर द्वीन्द्रिय आदि जीव नहीं है, गोधूमादि बीज नहीं हैं और अकुरादि हरी नहीं है, एवं ओस और जल नही है अर्थात् तृणो के अग्रभाग पर जल नही है, ओस बिन्दु नहीं है, द्वीन्द्रियादि जीव जन्तु एव उनके अण्डे आदि नही है, तथा मकड़ी के जाले एव दीमको के घर आदि नहीं है, ऐसे स्थान पर पहुच कर सदा यत्ना करने वाला साधु उस आहार मे से सचित्त पदार्थों को अलग करके उस आहार एव पानी का उपभोग कर ले। यदि वह उसे खाने या पीने मे असमर्थ है तो साधु उस आहार को लेकर एकात स्थान पर चला जाए और वहा जाकर दग्धस्थडिल भूमि पर, अस्थियो के ढेर पर, लोह के कूडे पर, तुष के ढेर पर और गोबर के ढ़ेर पर या इसी प्रकार के अन्य प्रासुक एव निर्दोष स्थान पर जाकर उस स्थान को आखो से अवलोकन करके और रजोहरण से प्रमार्जित करके उस आहार को उस स्थान पर परठ-डाल दे।**

हिन्दी विवेचन– साधु हिसा का सर्वथा त्यागी है और आहार के बनाने मे हिसा का होना अनिवार्य है। इसलिए साधु के लिए भोजन बनाने का निषेध किया गया है। परन्तु, सयम निर्वाह के लिए उसे आहार करना पडता है। अत उसके लिए बताया गया है कि वह गृहस्थ के घर मे जाकर निर्दोष एव एषणीय आहार ग्रहण करे। यदि कोई गृहस्थ सचित्त एव आधाकर्मी आदि दोषो से युक्त आहार दे या सचित्त पानी से हाथ धोकर आहार दे या आहार सचित्त रज मे युक्त है, तो साधु उसे स्वीकार न करे। वह स्पष्ट शब्दो मे कहे कि ऐसा दोष युक्त आहार मुझे नही कल्पता। यदि कभी सचित्त पदार्थों से युक्त आहार आ गया हो– जैसे गुठली सहित खजूर या ऐसे ही बीज युक्त कोई अन्य पदार्थ आ गए हैं और वह गुठली,

बीज या सचित्त पदार्थ उससे अलग किए जा सकते हैं, तो साधु उन्हें अलग करके उस अचित्त आहार को ग्रहण कर ले। यदि कोई पदार्थ ऐसा है कि उसमे से उन सचित्त पदार्थों को अलग नहीं किया जा सकता है, तो मुनि उस आहार को खाए नहीं, परन्तु एकान्त स्थान मे बीज-अकुर एव जीव-जन्तु से रहित अचित्त भूमि पर यतना-पूर्वक परठ-डाल दे। इसी तरह आधाकर्मी आहार भी भूल से आ गया हो तो उसे भी एकान्त स्थान मे परठ दे। इससे स्पष्ट है कि साधु सचित्त एव आधाकर्म दोष आदि युक्त आहार का सेवन न करे। भगवान महावीर ने सोमिल ब्राह्मण को स्पष्ट शब्दो में बताया कि साधु के लिए सचित्त आहार अभक्ष्य है[१]। ये ही शब्द भगवान पार्श्वनाथ एव थावच्चा पुत्र ने शुकदेव सन्यासी को कहे हैं[२]। श्रावक के व्रतो का उल्लेख करते समय इस बात को स्पष्ट किया गया है कि श्रावक साधु को प्रासुक एव निर्दोष आहार देवे[३]।

यह उत्सर्ग मार्ग है और साधु को यथाशक्ति इसी मार्ग पर चलना चाहिए। परन्तु, जीवन सदा एक सा नही रहता। कभी-कभी सामने कठिनाइया भी आती हैं। उस समय सयम की रक्षा के लिए साधु क्या करे? इसके लिए वृत्तिकार ने बताया है- 'उत्सर्ग मार्ग मे साधु आधाकर्म आदि दोषो से युक्त आहार स्वीकार नहीं करे। परन्तु अपवाद मार्ग मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ज्ञाता गीतार्थ मुनि दोषों की न्यूनता या अधिकता का विचार करके उसे ग्रहण कर सकता है। द्रव्य का अर्थ है- द्रव्य (पदार्थ) का मिलना दुर्लभ हो। क्षेत्र- ऐसा क्षेत्र जिसमे शुद्ध पदार्थ नहीं मिलते हो या सचित्त रज की बहुलता हो। काल-दुर्भिक्ष आदि काल मे और भाव-रोग आदि की अवस्था मे। इन कारणो के उपस्थित होने पर साधु आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार भी ले सकता है। यह वृत्तिकार का अभिमत है[४]।

सूत्रकृताङ्ग सूत्र मे भी कहा है कि आधाकर्म आहार करने वाला साधु एकान्त रूप से सात या आठ कर्म का बन्ध करता है। ऐसा नहीं कहना चाहिए और ऐसा भी नहीं कहना चाहिए कि वह सात-आठ कर्म का बन्ध नहीं करता है[५]। भगवती सूत्र मे गौतम स्वामी द्वारा पूछे गए-तथारूप के श्रमण-माहण को अप्रासुक एव अनेषणीय आहार देने से दाता को क्या होता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान महावीर फरमाते हैं कि उसे अल्प पाप एव बहुत निर्जरा होती है[६]।

---

१ भगवती १८, १०

२ पुप्फिया सूत्र, ज्ञाता सूत्र।

३ औपपातिक सूत्र, रायप्रश्नीय सूत्र, उपासकदशाङ्ग सूत्र।

४ तथाप्रकारम् - एव जातीयमशुद्धमशनादिचतुर्विधमप्याहार 'परहस्ते दातृहस्ते परपात्रे वा स्थितम्' 'अप्रासुकं'-सचित्तम् 'अनेषणीयम्' आधाकर्मादिदोषदुष्टम् 'इति ' एव मन्यमान 'स' भावभिक्षु सत्यपि लाभे न प्रतिगृण्हीयादित्युत्सर्गत , अपवादतस्तु द्रव्यादि ज्ञात्वा प्रतिगृण्हीयादपि, तत्र द्रव्य दुर्लभद्रव्य, क्षेत्र साधारणद्रव्यलाभरहित सरजस्कादिभावित वा कालो दुर्भिक्षादि भावो ग्लानतादि , इत्यादिभि कारणैरुपस्थितै अल्पबहुत्व पर्यालोच्य गीतार्थो गृण्हीयादिति। — आचाराङ्ग २, १, १, १ वृत्ति।

५ अहाकम्माणि भुञ्जन्ति, अन्नमन्ने सकम्मुणा।
उवलित्ते त्ति जाणिज्जा अणुवलित्ते त्ति वा पुणो॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं ववहारो न विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायार तु जाणए॥ — सूत्रकृताङ्ग २, ५, ८, ९।

६ समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण पाणं जाव पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ? गोयमा ! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावकम्मे कज्जइ।
— भगवती सूत्र, शतक ८, उदेशक ६।

प्रस्तुत आगम के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे वृत्तिकार ने स्वय आधाकर्मी आहार ग्रहण करने का प्रबल शब्दो मे निषेध किया है[१]। इससे इतना तो स्पष्ट है कि ध्रुव मार्ग निर्दोष आहार को स्वीकार करने का रहा है। अपवाद मार्ग साधक की स्थिति पर आधारित है। उसकी स्थापना नहीं की जा सकती। कौन साधक किस परिस्थिति मे, किस भावना से, कौन-सा कार्य कर रहा है? यह छद्मस्थ व्यक्तियो के लिए जानना कठिन है। सर्वज्ञ पुरुष ही इसका निर्णय दे सकते हैं। इसलिए साधक को किसी के विषय मे पूरा निर्णय किए बिना एकान्त रूप से उसे पाप बन्ध का कारण नही कहना चाहिए और सभव है यही कारण वृत्तिकार के सामने रहा हो जिससे उसने अपवाद स्थिति मे सदोष आहार को स्वीकार करने योग्य बताया। वृत्तिकार का यह अभिमत विचारणीय है।

आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख करते हुए सूत्रकार औषध ग्रहण करने के सम्बन्ध मे कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइ॰ जाव पविट्ठे समाणे से जाओ पुण ओसहीओ जाणिज्जा कसिणाओ सासियाओ अविदलकडाओ अतिरिच्छछिन्नाओ अवुच्छिण्णाओ, तरुणियं वा छिवाडिं अणभिक्कंतमभज्जियं पेहाए अफासुयं अणेसणिज्जंति मन्नमाणे लाभे संते नो पडिगाहिज्जा।

से भिक्खू वा ॰ जाव पविट्ठे समाणे से जाओ पुण ओसहीओ जाणिज्जा-अकसिणाओ असासियाओ विदलकडाओ तिरिच्छच्छिन्नाओ वुच्छिन्नाओ तरुणियं वा छिवाडिं अभिक्कंतं भज्जियं पेहाए फासुयं एसणिज्जंति मन्नमाणे लाभे संते पडिग्गाहिज्जा ।२।

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपति. यावत् प्रविष्ट. सन् स या पुनः औषधी जानीयात् कृत्स्ना स्वाश्रयाः अद्विदलकृता अतिरश्चीनच्छिन्ना अव्यवच्छिन्ना तरुणीं वा फलि (छिवाडि) अनभिक्रान्ताम्, अभग्नाम् प्रैक्ष्य अप्रासुकामनेषणीयामिति मन्यमान. लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षुर्वा॰ यावत् प्रविष्ट· सन् स या· पुन· औषधीः जानीयात् अकृत्स्ना अस्वाश्रया द्विदलकृता·, तिरश्चीनच्छिन्ना· व्यवच्छिन्ना· तरुणिका फलिम्, अक्रान्ता भग्नां प्रेक्ष्य प्रासुकामेषणीयामिति मन्यमानः लाभे सति गृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू-साधु। वा-अथवा। भिक्खुणी वा-साध्वी। गाहावइ-गृहपति के कुल मे। जाव-यावत्। पविट्ठे समाणे-प्रविष्ट हुआ। से-वह। जाओ-जो। पुण-फिर। ओसहीओ-औषधि को। जाणिज्जा-जाने। कसिणाओ-सचित्त। सासियाओ-अविनष्ट योनि-जिसका मूल नष्ट नही हुआ। अविदलकडाओ-जिसके दो भाग नहीं हुए है। अतिरिच्छच्छिन्नाओ-जिसका तिर्यक्-तिरछा छेदन नहीं हुआ

---

१ आचाराङ्ग सूत्र-श्रुतस्कन्ध १, अध्य॰ ६, उद्देशक ४ की वृत्ति।

है। **अवुच्छिन्नाओ**-जो जीव रहित नहीं हुई है। **वा**-अथवा। **तरुणिय**-तरुण। **छिवाडि**- अपक्व-फली-जिसकी फलिया पकी हुई नहीं है, ऐसी मुद्गादि की फली। **अणभिकंतमभज्जियं**-जो सजीव या अभग्न-अमर्दित है। ऐसी औषधि को। **पेहाए**-देखकर यह। **अफासुय**-अप्रासुक-सचित्त। **अणेसणिज्जन्ति**-तथा अनेषणीय-सदोष है इस प्रकार। **मन्नमाणे**-मानता हुआ साधु। **लाभे सन्ते**-मिलने पर भी। **नो पडिग्गाहिज्जा**-उसे ग्रहण न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। **जाव**-यावत्। **पविट्ठे समाणे**-गृहस्थ के कुल मे जाने पर। **से**-वह-भिक्षु। **जाओ**-जो। **पुण**-फिर। **ओसहीओ**-औषधि को। **जाणिज्जा**-जाने कि यह औषधि। **अकसिणाओ**-अचित्त है। **असासियाओ**-विनष्ट योनि है। **विदलकडाओ**-इसके दो दल विभाग किए गए है। **तिरिच्छच्छिन्नाओ**-इसका तिर्यक् छेदन हुआ है अर्थात् सूक्ष्म खण्ड किए गए है। **वुच्छिन्नाओ**-यह अचित्त-जीव से रहित है। **तरुणियं छिवाडि** - यह तरुण फली। **अभिक्कंतं**-जीव रहित तथा। **भज्जियं**-मर्दित एव अग्नि द्वारा भूनी हुई है ऐसा। **पेहाए**- देखकर यह। **फासुय**-प्रासुक-अचित्त तथा। **एसणिज्जति**-एषणीय निर्दोष है इस प्रकार। **मन्नमाणे**-मानता हुआ साधु। **लाभे सते**-मिलने पर। **पडिग्गाहिज्जा**-उसे ग्रहण-स्वीकार कर लेवे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे गया हुआ साधु व साध्वी औषधि के विषय मे यह जाने कि इन औषधियो मे जो सचित्त है, अविनष्ट योनि है, जिनके दो या दो से अधिक भाग नहीं हुए है, जो जीव रहित नही हुई है ऐसी अपक्व फली आदि को देखकर उसे अप्रासुक एव अनेषणीय मानता हुआ साधु उसके मिलने पर भी उसे ग्रहण न करे।**

परन्तु औषधि के निमित्त गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी औषधि के सबध मे यह जाने कि यह सर्वथा अचित्त है, विनष्ट योनि वाली है। द्विदल अर्थात् इसके दो भाग हो गए है, इसके सूक्ष्म खड किए गए है, यह जीव-जन्तु से रहित है, तथा मर्दित एव अग्नि द्वारा परिपक्व की गई है, इस प्रकार की प्रासुक-अचित्त एव एषणीय निर्दोष औषध गृहस्थ के घर से प्राप्त होने पर साधु उसे ग्रहण करले।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे औषध के सम्बन्ध मे विधि-निषेध का वर्णन किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि विधि एव निषेध दोनो सापेक्ष हैं। विधि से निषेध एव निषेध से विधि का परिचय मिलता है। जैसे साधु को सचित्त एव अनेषणीय पदार्थ नहीं लेना, यह निषेध सूत्र है, परन्तु इससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि साधु अचित्त एव निर्दोष आहार ग्रहण कर सकता है। इस तरह विधि एव निषेध एक दूसरे के परिचायक है।

यह हम देख चुके हैं कि साधु पूर्ण अहिसक है। अत वह ऐसा पदार्थ ग्रहण नहीं करता जिससे किसी प्राणी की हिसा होती हो। इसलिए यह बताया गया है कि गृहस्थ के घर मे औषधि आदि के लिए प्रविष्ट हुए साधु को यह जान लेना चाहिए कि वह औषध सचित्त-सजीव तो नहीं है ? जैसे कोई फल या बहेडा आदि है, जब तक उस पर शस्त्र का प्रयोग न हुआ हो तब तक वह सचित्त रहता है। उसके दो टुकडे होने पर वह सचित्त नही रहता। परन्तु कुछ ऐसे पदार्थ भी है जो दो दल होने के बाद भी सचित्त

रह सकते हैं। कुछ पदार्थ अग्नि पर पकने या उसमे दूसरे पदार्थ का स्पर्श होने पर अचित होते हैं। इस तरह साधु साध्वी को सबसे पहले सचित्त एव अचित्त पदार्थों का परिज्ञान होना चाहिए। और यदि उन्हे दी जाने वाली औषध सचित्त प्रतीत होती हो तो वे उसे ग्रहण न करे और वह सजीव न हो तथा पूर्णतया निर्दोष हो तो साधु-साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे 'कृत्स्न' आदि जो पाच पद दिए गए हैं, इनसे वनस्पति की सजीवता सिद्ध की है। उन(योनियो) मे भी जीव रहते है एव उनके प्रदेशो मे भी जीव रहते हैं। जैसे चना आदि जो अन्न हैं। उनके जब तक बराबर दो विभाग न हो तब तक उनमे जीवो के प्रदेश रहने की सभावना है। प्रश्न हो सकता है कि जब प्रथम सूत्र मे सचित्त पदार्थ ग्रहण करने का निषेध कर दिया तो फिर प्रस्तुत सूत्र में सचित्त औषध एव फलो के निषेध का क्यो वर्णन किया? इसका कारण यह कि जैनेतर साधु वनस्पति मे जीव नहीं मानते और वे सचित्त औषध एव फलो का प्रयोग करते रहे हैं और आज भी करते हैं। इसलिए पूर्ण अहिसक साधु के लिये यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह सचित्त औषध एव फलो को ग्रहण नहीं करे।

अब सूत्रकार आहार की ग्राह्यता एव अग्राह्यता का उल्लेख करते हुए कहते है-

मूलम्– से भिक्खू वा० जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा पिहुयं वा बहुरयं वा भुज्जियं वा मंथुं वा चाउलं वा चाउलपलंबं वा सइं संभज्जियं अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। से भिक्खू वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा- पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा असइं भज्जियं दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा भज्जियं फासुयं एसणिज्जं जाव पडिग्गाहिज्जा॥३॥

छाया– स भिक्षुर्वा० यावत् सन् स यत् पुन. जानीयात् पृथुकं वा बहुरजः वा भर्जितं वा मन्थु वा चाउला वा तन्दुलां चाउलप्रलम्बं सकृत् सभर्जित अप्रासुक यावद् न गृण्हीयात्।

स भिक्षुर्वा० यावत् प्रविष्ट सन् स यत् पुन. जानीयात् पृथुकं यावत् चाउलप्रलम्ब वा असकृत् भर्जित द्विकृत्व· वा त्रिकृत्व वा भर्जित प्रासुक एषणीयं यावत् प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू-साधु। वा-अथवा साध्वी। जाव समाणे-यावत् गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ। से-वह-भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा- जाने-आहार विषयक ज्ञान प्राप्त करे यथा-। पिहुय वा-शाली यव गोधूमादि अथवा। बहुरय वा-जिसमे सचित्त रज बहुत है। भुज्जियं वा-अग्नि द्वारा अर्द्ध पक्व अथवा। मथु वा- गोधूमादि का चूर्ण। चाउल वा- अथवा चावल। चाउलपलंब वा-अथवा धान्यादि का चूर्ण। सइ-एक बार। सभज्जियं-सभर्जित अग्नि से भूना हुआ। अफासुयं-अप्रासुक-सचित्त। जाव-यावत्। नो पडिग्गाहिज्जा- ग्रहण न करे। से-भिक्खू वा-गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट, वह साधु अथवा साध्वी। जाव समाणे-यावत् भिक्षार्थ जाने पर। से-वह भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-जाने पिहुय वा-शाली यव गोधूमादि अथवा। जाव-यावत्। चाउलपलब वा-धान्यादि का चूर्ण। असइं-अनेक बार। भज्जियं-भूना हुआ। दुक्खुत्तो वा- दो बार अथवा। तिक्खुत्तो वा-तीन बार। भज्जियं-भुना हुआ है। फासुय-प्रासुक।

एसणिज्जं-एषणीय-निर्दोष। जाव-यावत्। पडिग्गाहिज्जा-ग्रहण करे।

***मूलार्थ*—साधु अथवा साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने पर शाली आदि धान्यो, तुष बहुल धान्यो और अग्नि द्वारा अर्धपक्व धान्यों, तथा मथु चूर्ण एव कण सहित एक बार भुने हुए अप्रासुक यावत् अनेषणीय पदार्थों को ग्रहण न करे। तथा वह साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे भिक्षार्थ उपस्थित होने पर शाली आदि धान्य या उसका चूर्ण, जो कि घर मे दो-तीन बार या अनेक बार अग्नि से पका लिया गया है। ऐसा और एषणीय निर्दोष पदार्थ उपलब्ध होने पर साधु उसे स्वीकार कर ले।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भी यह बताया गया है कि साधु- साध्वी को चावल (शाली- धान) आदि अनाज एव उनका चूर्ण जो अपक्व या अर्धपक्व हो, नहीं लेना चाहिए। क्योकि शाली-धान (चावल) , गेहु, बाजरा आदि सर्जीव होते हैं, अत. इन्हे अपक्व एव अर्धपक्व अवस्था में साधु को नहीं लेना चाहिए। जैसे– लोग मकई के भुट्टे एव चने के होले आग मे भूनकर खाते हैं, उनमे कुछ भाग पक जाता है और कुछ भाग नही पकता। इस तरह जो दाने अच्छी तरह से पके हुए नहीं हैं वे पूर्णतया अचित्त नहीं हो पाते। उनमे सचित्तता की सभावना रहती है। इसलिए साधु को ऐसी अपक्व एव अर्धपक्व वस्तुए नही लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि साधु को सचित्त एव अनेषणीय पदार्थ ग्रहण नही करना चाहिए। और जो पदार्थ अच्छी तरह पक गए हैं, अचित्त हो गए हैं, उन्हे साधु ग्रहण कर सकता है। शाली-चावल की तरह अन्य सभी तरह के अन्न एव अन्य फलो के सम्बन्ध मे भी समझना चाहिए कि साधु उन सब वस्तुओ को ग्रहण नहीं कर सकता है जो सचित्त एव अनेषणीय हैं और अचित्त एव एषणीय पदार्थ को यथावश्यक ग्रहण कर सकता है।

यह तो स्पष्ट है कि साधु को आहार आदि ग्रहण करने के लिए गृहस्थ के घर मे जाना पडता है। क्योकि जिस स्थान पर साधु ठहरा हुआ है, उस स्थान पर यदि कोई व्यक्ति आहार आदि लाकर दे तो साधु उसे ग्रहण नहीं करता । क्योकि वहा पर वह पदार्थ की निर्दोषता की जाच नही कर सकता। इस लिए स्वय गृहस्थ के घर पर जाकर एषणीय एव प्रासुक आहार आदि पदार्थ ग्रहण करता है।

अत यह प्रश्न जरूरी है कि साधु को गृहस्थ के घर मे किस तरह प्रवेश करना चाहिए। इसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं –

मूलम्– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविसिउ- कामे नो अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अप्परिहारिएणं सद्धिं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा। से भिक्खू वा० बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खममाणे वा पविसमाणे वा नो अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अपरिहारिएण सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा। से भिक्खू वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे नो अन्नउत्थिएण वा जाव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ॥४॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपति-कुलं यावत् प्रवेष्टु काम. न अन्ययूथिकेन वा गृहस्थेन वा परिहारिको वा अपरिहारिकेण वा सार्द्धं गृहपति-कुलं पिडपातप्रतिज्ञया प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा। स भिक्षुर्वा॰ बहि· विचार-भूमि वा विहार-भूमिं वा निष्क्रममाणो वा प्रविशमाणो वा न अन्ययूथिकेन वा गृहस्थेन वा परिहारिको वा अपरिहारिकेण सार्द्धं बहि. विचार-भूमि वा विहार-भूमि वा निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं गच्छन् न अन्ययूथिकेन वा यावद् ग्रामानुग्राम गच्छेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। **गाहावइ-कुल**-गृहपति के कुल मे। **जाव**-यावत्। **पविसिउकामे**-प्रवेश करने की इच्छा रखता हुआ। **परिहारिओ वा**-दोष दूर करने वाला उत्तम साधु। **अन्नउत्थिएण वा**-अन्यतीर्थी और। **गारत्थिएण वा**-गृहस्थी के तथा। **अप्परिहारिएण**-पार्श्वस्थादि साधु के। **सद्धि**-साथ। **पिडवायपडियाए**-आहार लाभ की आशा से। **गाहावइकुल**-गृहस्थी के घर मे। **नो**-नहीं। **पविसिज्ज वा**-प्रवेश करे या। **निक्खमिज्ज वा**-पहले प्रविष्ट हुओ के साथ निकले भी नहीं। **से भिक्खू वा**-वह साधु साध्वी। **बहिया**-बाहर। **वियारभूमि वा**-स्थडिल भूमि मे अथवा। **विहारभूमि वा**-स्वाध्याय भूमि मे। **निक्खममाणे वा**-जाता हुआ। **पविसमाणे वा**-या प्रवेश करता हुआ। **अन्नउत्थिएण वा**-अन्यतीर्थी-अन्य मतावलम्बी और। **गारत्थिएण वा**-गृहस्थी के साथ, अथवा। **परिहारिओ वा**-दोष दूर करने वाला उत्तम साधु। **अप्परिहारिएण वा**-पार्श्वस्थादि साधु के। **सद्धि** -साथ। **बहिया**-बाहर। **वियार-भूमि वा**-स्थडिल भूमि मे अथवा। **विहार-भूमि वा**-स्वाध्याय भूमि मे। **निक्खमिज्ज**-जावे अथवा। **नो पविसिज्ज वा**-प्रवेश न करे। **से भिक्खू वा**- वह भिक्षु वा भिक्षुकी। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम मे। **दूइज्जमाणे**-जाते हुए। **अन्नउत्थिएण वा**-अन्यतीर्थी के साथ। **जाव**-यावत्। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम मे। **नो दूइज्जिज्जा**-न जाए।

_मूलार्थ_—गृहस्थी के घर मे भिक्षा के निमित्त प्रवेश करने की इच्छा रखने वाला साधु या साध्वी अन्यतीर्थी या गृहस्थ के साथ भिक्षा के लिए प्रवेश न करे, तथा दोष को दूर करने वाला उत्तम साधु पार्श्वस्थादि साधु के साथ भी प्रवेश न करे, और यदि कोई पहले प्रवेश किया हुआ हो तो उसके साथ न निकले।

वह साधु या साध्वी बाहर स्थडिल भूमि (मलोत्सर्ग का स्थान) में या स्वाध्याय भूमि मे जाता हुआ या प्रवेश करता हुआ किसी अन्यतीर्थी या गृहस्थी अथवा पार्श्वस्थादि साधु के साथ न जाए, न प्रवेश करे।

वह साधु वा साध्वी एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे जाते हुए अन्यतीर्थी यावत् गृहस्थ और पार्श्वस्थादि के साथ न जाए, गमन न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु के लिए बताया गया है कि वह गृहस्थ, अन्य मत के साधु सन्यासियो एव पार्श्वस्थ साधुओ के साथ गृहस्थ के घर मे , स्वाध्याय भूमि मे प्रवेश न करे और इनके साथ शौच के लिए भी न जाए और न इनके साथ विहार करे। क्योकि ऐसा करने से साधु के सयम मे अनेक दोष लग सकते हैं।

साधु के लिए धनवान एव सामान्य स्थिति के सभी घर बराबर हैं। वह बिना किसी भेद के

अमीर-गरीब सबके घरो मे भिक्षा के लिए जाता है और एषणीय एव शुद्ध आहार ग्रहण करता है। वह किसी भी गृहस्थ को आहार देने के लिए विवश नहीं करता और न जबरदस्ती से आहार ग्रहण करता है। ऐसी स्थिति मे कभी वह सामान्य घर मे गृहस्थ के साथ प्रवेश करे और उस गृहपति की साधु को आहार देने की स्थिति न हो या इच्छा न हो, परन्तु उस साथ के गृहस्थ की लज्जा या दबाव के कारण वह साधु को आहार देवे तो इससे साधु के सयम मे दोष लगता है अत· साधु को गृहस्थ के साथ किसी के घरो मे प्रवेश नहीं करना चाहिए।

इसी तरह अन्य मत के या पार्श्वस्थ साधुओ के साथ किसी के घर मे भिक्षा को जाने से भी सयम मे अनेक दोष लग सकते हैं। क्योकि अन्य भिक्षु एषणीय-अनेषणीय की गवेषणा किए बिना ही जैसा मिल गया वैसा ही आहार ग्रहण कर लेते हैं। और जैन साधु सचित्त एव अनेषणीय आहार ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति मे वे उसकी निन्दा कर सकते हैं, यह कह सकते हैं कि यह तो ढोगी एव पाखण्डी है, हमारे साथ होने के कारण अपनी उत्कृष्टता बताता है, जहा अकेला होता है वहा सब कुछ ले लेता है और कभी इस समस्या को लेकर गृहस्थ के घर मे भी वाद-विवाद हो सकता है। इससे गृहस्थ के मन मे कुछ सन्देह पैदा हो सकता है। इस तरह वह अप्रासुक एव अनेषणीय आहार ग्रहण नहीं करता है तो उक्त स्थिति पैदा हो सकती है और उसे ग्रहण करता है तो उसके सयम मे दोष लगता है। इसके अतिरिक्त सबको एक साथ भिक्षा के लिए आया हुआ मान कर गृहस्थ पर भी बोझ पड सकता है और कभी किसी को न देने की इच्छा रखते हुए भी लज्जावश उसे देना पडता है, परन्तु अन्दर मे बोझ सा अनुभव कर सकता है। इन सब दोषो से बचने के लिए मुनि को गृहस्थ, पार्श्वस्थ साधु एव अन्य मत के सन्यासियो के साथ किसी भी गृहस्थ के घर मे प्रवेश नहीं करना चाहिए।

शौच के लिए जाते समय उपरोक्त व्यक्तियो का साथ करने मे भी सयम मे अनेक दोष लगते हैं। प्रथम तो उनके पास अप्रासुक (सचित्त) पानी होगा। अत उनसे बात चीत करने मे उन पानी के जीवो की विराधना होगी। दूसरे साधु को रास्ते चलते हुए बोलना नहीं चाहिए। यदि वह बाते करता चलता है तो वह मार्ग को भली-भाति नही देख सकता। और यदि उन से बाते नहीं करता है तो वे नाराज भी हो सकते हैं और अन्ट-सन्ट शब्द भी बोल सकते हैं। तीसरे यदि उनके आगे-आगे चले तो उन्हे अपना अपमान महसूस हो सकता है और उनके पीछे चलने से जैन धर्म की लघुता होती है और बराबर चलने पर सचित्त पानी का स्पर्श होने की सभावना है। चौथे मे वह शौच के लिए निर्दोष भूमि नहीं देख सकता। उनके सामने भी नहीं बैठ सकता। इसलिए कभी उसे बहुत दूर जाने पर भी योग्य स्थान न मिलने पर जैसे-तैसे स्थान पर शौच बैठना पडता है। अत गृहस्थ आदि के साथ शौच जाने से अनेक दोष लगते हैं। इस कारण साधु को उनके साथ शौच को नहीं जाना चाहिए।

स्वाध्याय भूमि मे भी उनके साथ प्रवेश करने मे सचित्त जल के अतिरिक्त अन्य सभी दोष लगते हैं। इसके अतिरिक्त उनसे बाते करते रहने के कारण स्वाध्याय मे विघ्न पडता है। इसलिए साधु को स्वाध्याय के लिए भी गृहस्थ आदि के साथ नहीं जाना चाहिए।

विहार के समय उनके साथ जाने से वह बातो मे उलझा रहने के कारण अच्छी तरह से मार्ग नहीं देख सकेगा। तथा बातो मे समय बहुत लग जाने के कारण समय पर पहुच नहीं सकेगा। तथा यथासमय आवश्यक क्रियाए भी नहीं कर सकेगा। कभी पेशाब आदि की बाधा होने पर वह सकोच वश

कर नहीं सकेगा और उसे रोकने से अनेक बीमारियो का शिकार हो जाएगा। और पेशाब करना चाहे तो उनके सामने तो कर नहीं सकता, इसलिए उसे एकान्त एव निर्दोष स्थान ढूढने के लिए बहुत दूर जाना पडेगा या फिर सदोष स्थान मे ही मल त्याग करना होगा।

इस तरह आहार, शौच, स्वाध्याय एव विहार मे गृहस्थ आदि के साथ जाने से सयम मे अनेक दोष लगते हैं और अन्य मत के भिक्षुओ के अधिक परिचय से साधु की श्रद्धा एव सयम मे शिथिलता एव विपरीतता भी आ सकती है तथा उनके घनिष्ठ परिचय के कारण श्रावको के मन मे सन्देह भी पैदा हो सकता है। इन्ही सब कारणो से साधु को उनके साथ घनिष्ठ परिचय करने एव भिक्षा आदि के लिए उनके साथ जाने का निषेध किया गया है, न कि किसी द्वेष भाव से। अत· साधु को अपने सयम का निर्दोष पालन करने के लिए स्वतन्त्र रूप से गृहस्थ आदि के घर मे प्रवेश करना चाहिए।

इनके साथ आहार आदि का लेन-देन करने से भी सयम मे अनेक दोष लग सकते हैं, अत उनके साथ आहार-पानी के लेन-देन का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं –

मूलम्– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा० जाव पविट्ठे समाणे नो अन्नउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा परिहारिओ वा अपरिहारियस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दिज्जा वा अणुपइज्जा वा ॥५॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा० यावत् प्रविष्ट सन् न अन्यतीर्थिकाय वा गृहस्थाय वा पारिहारिको वा अपरिहारिकाय अशन वा पान वा खादिम वा स्वादिमं वा दद्याद् वा अनुप्रदापयेद् वा।

***पदार्थ*– से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु या। **भिक्खुणी वा**-साध्वी। **जाव**-यावत् , गृहस्थ के घर मे। **पविट्ठे समाणे**-प्रवेश करते हुए। **अन्नउत्थियस्स वा**-अन्यतीर्थी के लिए अथवा। **गारत्थियस्स**-गृहस्थी के लिए। **परिहारिओ**-दोष दूर करने वाला उत्तम साधु। **अपरिहारियस्स**-पार्श्वस्थादि साधु के लिए। **असण वा**-अन्न अथवा। **पाण वा**-पानी। **खाइम वा**-या खादिम पदार्थ अथवा। **साइम वा**-स्वादिम वस्तु। **नो दिज्जा वा**-न देवे या। **अणुपइज्जा वा**-न दिलावे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी, अन्यतीर्थी परपिडोपजीवी गृहस्थ-याचक और पार्श्वस्थ-शिथिलाचारी साधु को, निर्दोष भिक्षा ग्रहण करने वाला श्रेष्ठ साधु अन्न, जल, खादिम और स्वादिम रूप पदार्थों को न तो स्वय दे और न किसी से दिलाए।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को पार्श्वस्थ शिथिलाचारी एव अन्य मत के साधुओ को आहार-पानी नहीं देना चाहिए। इससे सयम मे अनेक दोष लगने की सभावना है। उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहने के कारण श्रद्धा मे शिथिलता एव विपरीतता आ सकती है। लोगो के मन मे यह भी बात घर कर सकती है कि ये अन्य मत के साधु अधिक प्रतिष्ठित एव श्रेष्ठ हैं, तभी तो ये मुनि भी इनका आहार-पानी से सम्मान करते हैं। इससे वे श्रावक (गृहस्थ) उनका सम्मान करने लगेगे और फलस्वरूप मिथ्यात्व की अभिवृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त अन्य मत के साधुओ को आहार देने से सबसे बडा दोष गृहस्थ की चोरी का लगेगा। क्योकि गृहस्थ के घर से वह साधु अपने एव अपने साथियो

(सहधर्मी एव सभोगी मुनियो) के लिए आहार लाया है। ऐसी स्थिति मे वह अन्य मत के भिक्षुओ को आहार देता है, तो उसे गृहस्थ की चोरी लगती है। गृहस्थ को मालूम होने पर साधु पर अविश्वास भी हो सकता है कि यह तो हमारे यहा से भिक्षा ले जाकर बाटता फिरता है। इस तरह के और भी अनेक दोष लगने की सभावना है। इस लिए मुनि को अपने सभोगी साधु के अतिरिक्त अन्य मत के साधुओ को आहार आदि नहीं देना चाहिए। यह प्रतिबन्ध सयम सुरक्षा की दृष्टि से है, न कि दया एव स्नेहभाव को रोकने के लिए।

साधु को सदा एषणीय आहार ग्रहण करना चाहिए। अनेषणीय आहार की अग्राह्यता के सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भिक्खू वा जाव समाणे असणं वा ४ अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ, तं तहप्पगारं असणं वा ४ पुरिसंतरकडं वा अपुरिसंतरकडं वा बहिया नीहडं वा अनीहडं वा अत्तट्ठियं अणत्तट्ठियं वा परिभुत्तं वा अपरिभुत्तं वा आसेवियं वा अणासेवियं वा अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा, एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स चत्तारि आलावगा भाणियव्वा॥६॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ यावत् सन् अशन वा ४ अस्य प्रतिज्ञया एकं साधर्मिक समुद्दिश्य प्राणिन भूतानि, जीवान् सत्त्वान् समारभ्य समुद्दिश्य क्रीत [पामिच्चं] प्रामित्य आच्छेद्य अनिसृष्ट अभ्याहृत आहृत्य ददाति, तत् तथा प्रकारं अशन वा ४ पुरुषान्तरकृतं वा अपुरुषान्तरकृत वा बहिर्निर्गत वा अनिर्गतं वा आत्मार्थिक वा अनात्मार्थिकं वा परिभुक्तं वा अपरिभुक्त वा आसेवित वा अनासेवित वा अप्रासुकं यावत् नो प्रतिगृण्हीयात् एव बहून् साधर्मिकान् एकां साधर्मिकीं बव्ही. साधर्मिकी: समुद्दिश्य चत्वार: आलापका· भणितव्या·।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु या साध्वी। जाव-यावत्। **समाणे**-घर मे प्रवेश करता हुआ। **असण वा ४**-अशनादि। **अस्सिंपडियाए**-साधु की प्रतिज्ञा से। **एग**-एक। **साहम्मिय**-साधर्मिक को। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके। **पाणाइं**-प्राणि। **भूयाइ**-भूत। **जीवाइं**-जीव और। **सत्ताइं**-सत्त्वो का। **समारब्भ**-समारम्भ करके। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके- (इस सूत्र से सर्व अविशुद्ध कोटि ग्रहण की गई है) तथा। **कीय**– साधु के निमित्त मोल लेकर। **पामिच्च**-साधु के निमित्त उधार लेकर । **अच्छिज्ज**-साधु के निमित्त दूसरे से छीनकर। **अणिसट्ठ**-साझे की वस्तु को दूसरे साथी की बिना आज्ञा लेकर या। **अभिहड**-गृहस्थ सामने लाकर। **आहट्टु**-कोई चीज देता है। **त**-वह। **तहप्पगारं**-तथा प्रकार-इस प्रकार का। **असण वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार। **पुरिसंतरकडं वा**-पुरुषान्तर कृत-दाता से भिन्न पुरुष का किया हुआ। **अपुरिसंतरकड वा**-अथवा दाता का किया हुआ। **बहिया**-घर से बाहर। **नीहडं वा**-निकाला हुआ अथवा। **अनीहडं वा**-न निकाला हुआ। **अत्तट्ठिय वा**-दाता ने

स्वीकार किया हुआ। **अणत्तट्ठियं वा**-दाता ने अपना स्वीकार न किया हुआ। **परिभुत्तं वा**-दाता ने उस आहार मे से कुछ भोग लिया। **अपरिभुत्तं वा**- अथवा नही भोगा। **आसेवियं वा**-उस आहार मे से कुछ आस्वादन किया। **अणासेविय वा**-अथवा स्वादन नहीं किया है, ऐसा। **अफासुय वा**-अप्रासुक। **जाव**-यावत् अनेषणीय आहार मिलने पर भी। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे। **एव**-इसी प्रकार। **बहवे**-बहुत से। **साहम्मिया**-सधर्मियो को उद्देश्य रखकर तैयार किया हुआ आहार। **एग साहम्मिणि**-एक साध्वी को। **बहवे**-बहुत सी। **साहम्मिणीओ**-साध्वियो को। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य रख कर आहार बनाया गया हो तो वह भी स्वीकार करना नहीं कल्पता। **चत्तारि**-चार। **आलावगा**-आलापक सूत्र। **भाणियव्वा**-कहने चाहिए।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट साधु-साध्वी इस बात की गवेषणा करे कि किसी भद्र गृहस्थ ने एक साधु का उद्देश्य रखकर प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वो का आरम्भ करके आहार बनाया हो, तथा साधु के निमित्त मोल लिया हो, उधार लिया हो, किसी निर्बल से छीनकर लिया हो, एवं साधारण वस्तु दूसरे की आज्ञा के बिना दे रहा हो, और साधु के स्थान पर घर से लाकर दे रहा हो, इस प्रकार का आहार लाकर देता हो तो इस प्रकार का अन्न-जल, खादिम और स्वादिम आदि पदार्थ , पुरुषान्तर-दाता से भिन्न पुरुषकृत, अथवा दाता कृत हो, घर से बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो, दूसरे ने स्वीकार किया हो अथवा न किया हो, आत्मार्थ किया गया हो, या दूसरे के निमित्त किया गया हो, उसमे से खाया गया हो अथवा न खाया गया हो, थोडा सा आस्वादन किया हो या न किया हो, इस प्रकार का अप्रासुक अनेषणीय आहार मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। इसी प्रकार बहुत से साधुओ के लिए बनाया गया हो, एक साध्वी के निमित्त बनाया गया हो अथवा बहुत सी साध्वियो के निमित्त बनाया गया हो वह भी ग्राह्य अर्थात् स्वीकार करने योग्य नहीं है। इसी भाति चारो आलापक जानने चाहिए।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे सदोष आहार के भी दो विभाग किए गए है– विशुद्ध कोटि और अविशुद्ध कोटि। साधु के निमित्त जीवो की हिसा करके बनाया गया आहार आदि अविशुद्ध कोटि कहलाता है और प्रत्यक्ष मे किसी जीव की हिसा न करके साधु के लिए खरीद कर लाया हुआ आहार आदि विशुद्ध कोटि कहलाता है। किसी व्यक्ति से उधार लेकर, छीनकर या जिस व्यक्ति की वस्तु है उसकी बिना आज्ञा से या किसी के घर से लाकर दिया गया हो वह भी विशुद्ध कोटि कहलाता है। इसे विशुद्ध कहने का तात्पर्य यह है कि इस आहार आदि को तैयार करने मे साधु के निमित्त हिसा नहीं करनी पडी। क्योकि वह बेचने एव अपने खाने के लिए ही बनाया गया था। फिर भी दोनो तरह का आहार साधु के लिए अग्राह्य है।

पहले प्रकार के आहार की अग्राह्यता स्पष्ट है कि उसमे साधु को उद्देश्य करके हिसा की जाती है। दूसरे प्रकार के आहार मे प्रत्यक्ष हिसा तो नहीं होती है, परन्तु साधु के लिए पैसे का खर्च होता है और पैसा आरम्भ से पैदा होता है। और जो पदार्थ उधार लिए जाते हैं उन्हे वापिस लौटाना होता है और वापिस लौटाने के लिए आरम्भ करके ही उन्हे बनाया जाता है। किसी कमजोर व्यक्ति से छीनकर देने से उस व्यक्ति पर साधु के लिए बल प्रयोग किया जाता है और इससे उसका मन अवश्य ही दु खित होता

है और किसी व्यक्ति को कष्ट देना भी हिसा का ही एक रूप है। किसी व्यक्ति के अधिकार की वस्तु को उसे बिना पूछे देने से उसे मालूम पडने पर दोनो मे सघर्ष हो सकता है। इन सब दृष्टियो से इस तरह दिए जाने वाले पदार्थो मे प्रत्यक्ष हिसा परिलक्षित नहीं होने पर भी वे हिसा के कारण बन सकते है, इसलिए साधु को दोनो तरह का आहार सदोष समझकर त्याग देना चाहिए।

विशुद्ध एव अविशुद्ध कोटि मे इतना अन्तर अवश्य है कि विशुद्ध कोटि पदार्थ पुरुषान्तर कृत होने पर साधु के लिए ग्राह्य माने गए हैं। जैसे साधु के उद्देश्य से खरीद कर लाया गया वस्त्र किसी व्यक्ति ने अपने उपयोग मे ले लिया है और इसी प्रकार साधु के निमित्त खरीदा गया मकान गृहस्थो के अपने काम मे आ गया है तो फिर वह साधु के लिए अग्राह्य नही रहता। परन्तु, अविशुद्ध कोटि- आधाकर्मी, औद्देशिक आदि दोष युक्त पदार्थ पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत हो किसी भी तरह से साधु के लिए ग्राह्य नही है। एक या बहुत से साधु-साध्वियो के लिए बनाया गया आहार आदि एक या बहुत मे साधु-साध्वियो के लिए ग्राह्य नहीं है[१]।

प्रस्तुत सूत्र मे 'पुरिसतरकड वा अपुरिसतरकड' पाठ आया है। इसका तात्पर्य यह है– दाता के अतिरिक्त व्यक्ति द्वारा उपभोग किया हुआ पदार्थ पुरुषान्तरकृत कहलाता और दाता द्वारा उपभोग में लिया गया पदार्थ अपुरुषान्तरकृत कहा जाता है।

सदोष आहार के निषेध का वर्णन पहले अहिसा महाव्रत की सुरक्षा को दृष्टि से किया गया है। और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि शुद्ध आहार जीवन को शुद्ध, सात्विक एव उज्ज्वल बनाता है। इसके पहले के सूत्रो मे हम देख चुके है कि साधक की साधना चिन्तन-मनन के द्वारा आत्मा का प्रत्यक्षीकरण करके उसे निष्कर्म बनाने के लिए है। इसके लिए स्वाध्याय एव ध्यान आवश्यक है और इनकी साधना के लिए मन का एकाग्र होना जरूरी है और वह शुद्ध आहार के द्वारा ही हो सकता है। क्योकि मन पर आहार का असर होता है। यह लोक कहावत भी प्रसिद्ध है कि 'जैसा खाए अन्न वैसा रहे मन।' इससे स्पष्ट होता है कि आहार का मन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हुआ है। अशुद्ध, तामसिक एव सदोष आहार मन को विकृत बनाए बिना नही रहता। इसलिए आगमो मे साधु के लिए स्पष्ट शब्दो म कहा गया है कि वह सदोष एव अनेषणीय आहार को ग्रहण न करे। उपनिषद् मे भी बताया गया है कि आहार की शुद्धि से सत्व शुद्ध रहता है और उसकी शुद्धि से स्मृति स्थिर रहती है अर्थात् मन एकाग्र बना रहता है[२]।

अशुद्ध आहार स्वीकार न करने के विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भिक्खू वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा ४ बहवे समणा माहणा अतिहिकिवणवणीमए पगणिय २ समुद्दिस्स पाणाइं वा ४ समारब्भ जाव नो पडिग्गाहिज्जा ॥७॥

---

१ यह नियम पहले और अन्तिम तीर्थंकर भगवान के शासन मे होने वाले साधु-साध्वियो के लिए है। अवशेष २२ तीर्थंकरो के साधु-साध्वियो के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं है। उनके लिए इतना ही विधान है कि जिस साधु-साध्वी के निमित्त आहार आदि तैयार किया गया हो वह साधु-साध्वी उसे ग्रहण न करे। वृत्तिकार का भी यही अभिमत है।

२ आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि , सत्व शुद्धौ, ध्रुवा स्मृति ।

– छान्दोग्योपनिषद्

छाया– स भिक्षुर्वा यावत् सन् यत् पुन· जानीयात् अशनं वा ४ बहून् श्रमणान् ब्राह्मणान् अतिथीन् कृपण वणीपकान् प्रगणय्य २ समुद्दिश्य प्राणादीन् वा ४ समारभ्य यावद् न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से-भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **जाव**-यावत्। **समाणे**-घर मे प्रवेश किए हुए। **से**-वह। **ज**-जो। **पुण**-फिर। **असण वा**-अशनादि को। **जाणिज्जा**-जाने यथा। **बहवे**-बहुत से। **समणा**-शाक्यादि भिक्षु। **माहणा**-ब्राह्मण। **अतिहि**-अतिथि। **किवण**-कृपण-दरिद्र। **वणीमए**-भिखारी इन सब को। **पगणिय २**-गिन २कर। **समुद्दिस्स**-इनको उद्देश्य कर। **पाणाइं वा**-प्राणी आदि का। **समारब्भ**-आरम्भ कर जो आहार तैयार किया गया हो वह। **जाव**-यावत् मिलने पर। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी इस बात का अन्वेषण करे कि जो आहारादि बहुत से शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, भिखारी आदि को गिन-गिन कर या उनके उद्देश्य से जीवो का आरम्भ-समारम्भ करके बनाया हो, उसे साधु ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि किसी गृहस्थ ने शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, भिखारी आदि की गणना करके उनके लिए आहार तैयार किया है। जब कि यह आहार साधु के उद्देश्य से नहीं बनाया गया फिर भी साधु के लिए अग्राह्य है। क्योकि बौद्ध भिक्षु एव जैन साधु दोनो के लिए 'श्रमण' शब्द का प्रयोग होता है, अत सभव है कि गृहस्थ ने उस आहार के बनाने मे उन्हे भी साथ गिन लिया हो। इसके अतिरिक्त ऐसा आहार ग्रहण करने से लोगो के मन मे यह शका उत्पन्न हो सकती है कि अन्य भिक्षुओ की तरह जैन साधु भी अपने लिए बनाए गए आहार को लेते हैं। और उक्त आहार मे से ग्रहण करने से जिन व्यक्तियो के लिए वह आहार बनाया गया है, उनकी अन्तराय भी लगती है तथा उनके लिए बनाए गए आहार को लेने के लिए जैन साधु को जाते हुए देखकर उनके मन मे द्वेष भी जाग सकता है। इसलिए जैन साधु को ऐसा आहार भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अब विशुद्ध कोटि के अनेषणीय आहार के विषय मे सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा० जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा-असणं वा ४ बहवे समणा माहणा अतिहिकिवणवणीमए समुद्दिस्स जाव चेएइ तं तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरकडं वा अबहिया नीहडं अणत्तट्ठियं अपरिभुत्तं अणासेवियं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडं बहिया नीहडं अत्तट्ठियं परिभुत्तं आसेवियं फासुयं एसणिज्जं जाव पडिग्गाहिज्जा ॥८॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा० यावत् प्रविष्टः सन् स यत् पुनः जानीयात्-अशनं वा ४ बहून् श्रमणान् ब्राह्मणान् अतिथीन् कृपणवणीमकान् समुद्दिश्य यावद् ददाति तं

तथाप्रकारं अशनं वा ४ अपुरुषान्तरकृतं वा अबहिर्निर्गतं अनात्मीकृत अपरिभुक्तं अनासेवितं, अप्रासुकं अनेषणीयं न प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुन· एव जानीयात् पुरुषान्तरकृतं बहिर्निर्गतं, आत्मीकृत परिभुक्त आसेवित प्रासुक एषणीयं यावत् प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु या। **भिक्खुणी वा**-साध्वी। **जाव**-यावत्। **पविट्ठे समाणे**-घर मे प्रवेश करने पर। **से**-वह साधु या साध्वी। **ज**-जो। **पुण**-पुन । **जाणिज्जा**-जाने। **असण वा ४**-अशनादिक आहार। **बहवे**-बहुत। **समणा**-शाक्यादि भिक्षु। **माहणा**-ब्राह्मण। **अतिहि**-अतिथि। **किवण**-कृपण-दरिद्री। **वणीमए**-भिखारी। **समुद्दिस्स**-इनको उद्देश्य कर। **जाव**-यावत्। **चेएइ**-देता है। **त**-उस। **तहप्पगारं**-तथा प्रकार के। **असण वा ४**-अशनादि-अन्नादि चतुर्विध आहार जो कि। **अपुरिसतरकडं वा**-पुरुषान्तर कृत नहीं है अथवा। **अबहिया नीहडं**-जो घर से बाहर नहीं निकाला गया है। **अणत्तट्ठिय**-दाता ने अपना नहीं बनाया है। **अपरिभुत्त**-और न उसमे से किसी ने खाया है एव। **अणासेविय**-किसी ने आसेवन भी नही किया है, ऐसे। **अफासुय**-अप्रासुक-सचित्त। **अणेसणिज्ज**-अनेषणीय-सदोष आहार को। **जाव**-यावत् मिलने पर जैन भिक्षु। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

अह-अथ। **पुण**-पुन -फिर यदि। **एव जाणिज्जा**-इस प्रकार जाने कि यह अशनादिक चतुर्विध आहारादि पदार्थ। **पुरिसतरकड**-पुरुषान्तरकृत है। **बहिया नीहड**- बाहर निकाला गया है। **अत्तट्ठिय**-अपना किया हुआ है। **परिभुत्त**-खाया हुआ है। **आसेविय**-सेवन किया हुआ है। **फासुयं**-प्रासुक -अचित्त है और। **एसणिज्ज**-एषणीय निर्दोष है। **जाव**-यावत्-ऐसा आहार मिलने पर साधु। **पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण करे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ कुल मे प्रवेश करने पर साधु-साध्वी इस प्रकार जाने कि अशनादिक चतुर्विध आहार जो कि शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, दीन और भिखारियो के निमित्त तैयार किया गया हो और दाता उसे दे तो इस प्रकार के अशनादि आहार को जो कि अन्य पुरुष कृत न हो, घर से बाहर न निकाला गया हो, अपना अधिकृत न हो, उसमे से खाया या आसेवन न किया गया हो तथा अप्रासुक और अनेषणीय हो, तो साधु ऐसा आहार भी ग्रहण न करे।**

और यदि साधु इस प्रकार जाने कि यह आहार आदि पदार्थ अन्य कृत है, घर से बाहर ले जाया गया है, अपना अधिकृत है तथा खाया और भोगा हुआ है एव प्रासुक और एषणीय है तो ऐसे आहार को साधु ग्रहण कर ले।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि किसी गृहस्थ ने शाक्यादि भिक्षुओ के लिए आहार बनाया है और वह आहार अन्य पुरुषकृत नही हुआ है, बाहर नही ले जाया गया है, किसी व्यक्ति ने उसे खाया नहीं है और वह अप्रासुक एव अनेषणीय है, तो साधु के लिए अग्राह्य है। यदि वह आहार पुरुषान्तर हो गया है, लोग घर से बाहर ले जा चुके हैं दूसरे व्यक्तियो द्वारा खा लिया गया है और वह प्रासुक एव एषणीय है, तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'अथ' शब्द का पूर्व सूत्र की अपेक्षा एव 'पुन ' शब्द का विशेषणार्थ मे प्रयोग किया गया है।

इस बात को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिउकामे से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा-इमेसु खलु कुलेसु निइए पिंडे दिज्जइ, अग्गपिंडे दिज्जइ, नियए भाए दिज्जइ,अवड्ढभाए दिज्जइ, तहप्पगाराइं कुलाइं निइयाइं निइउमाणाइं नो भत्ताए वा पाणाए वा पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा। एयं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जए।।९ ।। त्तिबेमि

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुल पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रवेष्टुकाम तत् यानि पुन. कुलानि जानीयात्-इमेषु खलु कुलेषु नित्य पिण्ड दीयते, अग्रपिण्ड. दीयते, नित्य भाग दीयते, नित्यं अपार्द्ध भाग दीयते, तथा प्रकाराणि कुलानि नित्यानि नित्य मुमाणंति (प्रवेश) नो भक्तार्थ पानार्थ वा प्रविशेद् निष्क्रमेद् वा एतत् खलु तस्य भिक्षो भिक्षुक्या वा सामग्रय यत् सर्वार्थै समित सहित सदा यतेत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ- से-वह। भिक्खू वा-भिक्षु-साधु वा। भिक्खुणी वा-साध्वी। गाहावइकुल-गृहपति के कुल मे। पिडवायपडियाए-आहार लाभ की प्रतिज्ञा से। पविसिउकामे-प्रवेश करने की इच्छा रखता हुआ। से-वह साधु। जाइ-जो। पुण-फिर। कुलाइ-कुलो को। जाणिज्जा-जाने। खलु-वाक्यालकार अर्थ मे है। इमेसु कुलेसु-इन कुलो मे । निइए-नित्य। पिडे दिज्जइ-आहार दिया जाता है। अग्गपिडे दिज्जइ-अग्रपिड-प्रथम आहार दिया जाता है। नियए भाए दिज्जइ-नित्य भाग दिया जाता है। नियए अवड्ढभाए दिज्जइ-नित्य चतुर्थ भाग दिया जाता है। तहप्पगाराइ कुलाइ-इस प्रकार के कुलो मे । निइउमाणाइ-नित्य ही स्वपक्ष और पर पक्ष के साधु दान के लिए प्रवेश करते है। नो भत्ताए वा पाणाए वा-इस प्रकार के कुलो मे भक्तपान-अन्न और जल आदि के लिए न तो। पविसिज्ज वा-प्रवेश करे और। निक्खमिज्ज वा-निकले। खलु-वाक्यालकार मे है। एय-यह। तस्स-उस। भिक्खुस्स-भिक्षु और। भिक्खुणीए वा-साध्वी की। सामग्गिय-समग्रता समाचारी है। जं-जो कि। सव्वट्ठेहिं-सर्व अर्थों मे अर्थात् शब्दादि अर्थों मे। समिए-सयत है। सहिए-हित युक्त है-अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त है। सए-सदा। जए-प्रयत्न करे सयम युक्त होवे। त्तिबेमि-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—गृहस्थ के कुल मे आहार प्राप्ति के निमित्त प्रवेश करने की इच्छा रखने वाले साधु या साध्वी इन वक्ष्यमाण कुलो को जाने, जिन कुलो मे नित्य आहार दिया जाता है, अग्रपिड आहार मे से निकाला हुआ पिड दिया जाता है, नित्य अर्द्ध भाग आहार दिया जाता है, नित्य चतुर्थ भाग आहार दिया जाता है, इस प्रकार के कुलो मे जो कि नित्यदान देने वाले है तथा जिन कुलो मे भिक्षुओ का भिक्षार्थ निरन्तर प्रवेश हो रहा है ऐसे कुलो मे अन्न पानादि के निमित्त साधु न जाए।

यह साधु और साध्वी की समग्रता अर्थात् निर्दोष वृत्ति है। वह सर्व शब्दादि अर्थों मे यत्न वाला, सयत अथवा ज्ञान दर्शन और चारित्र से युक्त है। अत वह इस वृत्ति का परिपालन करने में सदा यत्नशील हो। इस प्रकार मै कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे इस बात का आदेश दिया गया है कि साधु को निम्न कुलों मे भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए। जिन कुलो मे नित्य-प्रति दान दिया जाता है, जिन कुलों मे अग्रपिड- जो आहार पक रहा हो उसमे से कुछ भाग पहले निकाल कर रखा हुआ आहार- दिया जाता है, जिन कुलो मे आहार का आधा या चतुर्थ हिस्सा दान मे दिया जाता है और जिन कुलो मे शाक्यादि भिक्षु निरन्तर आहार के लिए जाते हो, ऐसे कुलो मे जैन साधु-साध्वी को प्रवेश नहीं करना चाहिए। क्योकि ऐसे घरो मे भिक्षा को जाने से या तो उन भिक्षुओ की-जो वहाँ से सदा-सर्वदा भिक्षा पाते हैं, अतराय लगेगी या उन भिक्षुओ के लिए फिर से आरम्भ करके आहार बनाना पडेगा। इसलिए साधु को ऐसे घरो मे आहार नहीं लेना चाहिए।

जैन साधु सर्वथा निर्दोष आहार ही ग्रहण करता है। इस बात को सूत्रकार ने 'सव्वट्ठेहि समिए , इत्यादि पदो से अभिव्यक्त किया है। इनका स्पष्टीकरण करते हुए वृत्तिकार ने लिखा है– मुनि सरस एव नीरस जैसा भी निर्दोष आहार उपलब्ध होता है, उसे समभाव से ग्रहण करता है। वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयो मे अनासक्त रहता है। वह पाच समिति से युक्त है, राग-द्वेष से दूर रहने का प्रयत्न करता है, वह रत्न-त्रय- ज्ञान, दर्शन और चारित्र से युक्त होने से सयत है। और वह निर्दोष मुनिवृति का परिपालन करता है, यही उसकी समग्रता है*।

'**त्तिबेमि**' पद से सूत्रकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ये विचार मेरी कल्पना-मात्र नहीं हैं। आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू । मैंने जैसा भगवान महावीर के मुख से सुना है वैसा ही तुम्हे बता रहा हूँ।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

*** सर्वार्थै– सरसविरसादिभिराहारगतै यदि वा रूपरसगन्धस्पर्शगतै सम्यगित समित सयत इत्यर्थ । पञ्चभिर्वासमितिभि समित शुभेतरेषु रागद्वेषविरहित इति यावत् एव भूतश्च सहहितेन वर्तते इति सहित , सहितो वा ज्ञान दर्शन चारित्रै ।**

– आचाराग वृत्ति २,१,१,९

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा

द्वितीय उद्देशक

प्रस्तुत अध्ययन आहार से सबद्ध है अत पहले उद्देशक मे वर्णित आहार ग्रहण करने की विधि का प्रस्तुत उद्देशक मे विशेष रूप से वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा– असणं वा ४ अट्ठमिपोसहिएसु वा अद्धमासिएसु वा मासिएसु वा दोमासिएसु वा तेमासिएसु वा चाउम्मासिएसु वा पंचमासिएसु वा छम्मासिएसु वा उऊसु वा उऊसंधीसु वा उऊपरियट्टेसु वा बहवे समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे पेहाए, दोहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए, तिहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए, चउहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए। कुंभीमुहाओ वकलोवाइओ वा संनिहिसंनिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरकडं जाव अणासेवियं अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडं जाव आसेवियं फासुयं पडिग्गाहिज्जा॥१०॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुल पिंडपातप्रतिज्ञया अनुप्रविष्ट सन् तद् यत् पुनः जानीयाद् अशनं वा ४ अष्टमीपौषधिकेषु वा अर्द्धमासिकेषु वा मासिकेषु वा द्विमासिकेषु वा त्रिमासिकेषु वा चतुर्मासिकेषु वा पचमासिकेषु वा षण्मासिकेषु वा ऋतुषु वा ऋतुसन्धिषु वा ऋतुपरिवर्तनेषु वा बहून् श्रमणब्राह्मणातिथिकृपणवणीमगानेकस्मात् पिठरकाद् परिवेष्टमाण. प्रेक्ष्य द्वाभ्यामुक्खाभ्या (पिठरकाभ्यां) परिवेष्यमाणः प्रेक्ष्य त्रिभिः उक्खाभिः परिवेष्यमाणः प्रेक्ष्य चतुर्भिः उक्खाभि· परिवेष्यमाण· प्रेक्ष्य कुम्भीमुखाद् वा [पिच्छी पिटक वा] संनिधिसंनिचयाद् वा परिवेष्यमाणः प्रेक्ष्य तथा प्रकारं अशनं वा ४ अपुरुषान्तरकृतं यावद् अनासेवितमप्रासुकं यावत् नो प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुनरेवं जानीयात् पुरुषान्तरकृतं यावद् आसेवितं प्रासुकं प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-भिक्षु-साधु। भिक्खुणी वा-अथवा साध्वी। गाहावइकुलं-गृहपति के कुल मे। पिडवायपडियाए-भिक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा से। अणुपविट्ठे समाणे-प्रवेश करता हुआ। से-वह-भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-जाने-ज्ञान प्राप्त करे। असण वा-अन्नादि चतुर्विध आहार। अट्ठमिपोसहिएसु वा-अष्टमी पौषध-व्रत विशेष के महोत्सव मे अथवा। अद्धमासिएसु वा-अर्द्धमासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। मासिएसु वा-मासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। दोमासिएसु वा-द्विमासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। तेमासिएसु वा-त्रैमासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। चउमासिएसु वा-चातुर्मासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। पचमासिएसु वा-पाच मासिक व्रत विशेष के महोत्सव में। छम्मासिएसु वा-षाणमासिक व्रत विशेष के महोत्सव मे। उऊसु वा- ऋतु के मौसम मे। उऊसधीसु वा-ऋतुओ की सन्धि मे। उऊपरियट्टेसु वा- ऋतु परिवर्तन मे। बहवे-बहुत से। समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे-श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी इन सबको। एगाओ उक्खाओ-एक बर्तन से। परिएसिज्जमाणे परोसता हुआ। पेहाए-देखकर। दोहिं उक्खाहिं-दो बर्तनो से। परिएसिज्जमाणे-परोसता हुआ। पेहाए-देखकर। तिहिं-तीन । उक्खाहिं-बर्तनो से। परिएसिज्जमाणे-परोसता हुआ। चउहिं-चार। उक्खाहिं-बर्तनो से। परिएसिज्जमाणे-परोसता हुआ। पेहाए-देखकर। कुम्भीमुहाओ-छोटे मुह वाले बर्तन से। वा-अथवा। कलोवाइओ वा- बास की टोकरी से। सनिहिसनिचयाओ वा-सचय किए हुए स्निग्ध घृतादि मे से। परिएसिज्जमाणे-परोसता हुआ। पेहाए-देखकर। तहप्पगार-इस प्रकार का। असण वा ४-अशनादिक चतुर्विध आहार। अपुरिसतरकड वा-अपुरुषान्तरकृत अर्थात् जो पुरुषान्तर-अन्यपुरुष कृत नहीं है। जाव-यावत्। अणासेविय-अनासेवित। अफासुय-अप्रासुक। जाव-यावत् मिलने पर। नो पडिग्गाहिज्जा-ग्रहण न करे। अह-अथ। पुण-पुन। एव-इस प्रकार। जाणिज्जा-जाने। पुरिसतरकड-पुरुषान्तर कृत। आसेविय-आसेवित। फासुय-प्रासुक आहार। जाव-यावत् मिलने पर। पडिग्गाहिज्जा-ग्रहण करले।

मूलार्थ—वह साधु व साध्वी गृहस्थो के घर में आहार प्राप्ति के निमित्त प्रविष्ट होने पर अशनादि चतुर्विध आहार आदि के विषय मे इस प्रकार जाने—यह अशनादि आहार अष्टमी पौषध-व्रत विशेष के महोत्सव मे एवं अर्द्धमासिक, मासिक, द्विमासिक, त्रिमासिक, चतुर्मासिक, पंचमासिक और षाण्मासिक महोत्सव मे, तथा ऋतु, ऋतुसन्धि और ऋतु परिवर्तन महोत्सव में बहुत से श्रमण शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियो को एक बर्तन से, दो बर्तनों से एव तीन और चार बर्तनो से परोसते हुए देखकर तथा छोटे मुख की कुम्भी और बास की टोकरी से परोसते हुए देखकर एव सचित्त किए हुए घी आदि पदार्थों को परोसते हुए देखकर इस प्रकार के अशनादि चतुर्विध आहार जो पुरुषान्तर कृत नहीं है यावत् अनासेवित-अप्रासुक है ऐसे आहार को मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। और यदि इस प्रकार जाने कि यह आहार पुरुषान्तर कृत यावत् आसेवित प्रासुक और एषणीय है तो मिलने पर ग्रहण करले।

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को उस समय गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश नहीं करना चाहिए या प्रविष्ट हो गया है तो उसे आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए– जिसके यहा

अष्टमी के पौषधोपवास का महोत्सव[१] हो या इसी तरह अर्द्धमास, एक मास, दो, तीन, चार, पाच या छ मास की पौषधोपवास (तपश्चर्या) का उत्सव हो या ऋतु, ऋतु सन्धि (दो ऋतुओ का सन्धि काल) और ऋतु परिवर्तन (ऋतु का परिवर्तन– एक ऋतु के अनन्तर दूसरी ऋतु का आरम्भ होना) का महोत्सव हो और उसमे शाक्यादि भिक्षु, श्रमण– ब्राह्मण, अतिथि, रक– भिखारी आदि को भोजन कराया जा रहा हो। जब कि यह भोजन आधाकर्मदोष से युक्त नहीं है, फिर भी सूत्रकार ने इसके लिए जो 'अफासुय' शब्द का प्रयोग किया है, इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा आहार तब तक साधु के लिए अकल्पनीय है जब तक वह पुरुषान्तर कृत नही हो जाता है। यदि यह आहार एकान्त रूप से शाक्यादि भिक्षुओ को देने के लिए ही बनाया गया है और उसमे से परिवार के सदस्य एव परिजन आदि अपने उपभोग मे नहीं लेते हैं, तब तो साधु को वह आहार नहीं लेना चाहिए। क्योकि इससे उन भिक्षुओ को अन्तराय लगेगी। यदि परिवार के सदस्य एव स्नेही– सम्बन्धी उसका उपभोग करते हैं, तो उनके उपभोग करने के बाद (पुरुषान्तर होने पर) साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी उत्सव के प्रसग पर अन्य मत के भिक्षु भोजन कर रहे हो तो उस समय वहा साधु का जाना उचित नही है। उस समय वहा नहीं जाने से मुनि की सतोष एव त्याग वृत्ति प्रकट होती है, उन भिक्षुओ के मन मे किसी तरह की विपरीत भावना जागृत नही होती। अत· साधु को ऐसे समय विवेक पूर्वक कार्य करना चाहिए।

साधु को किस कुल मे आहार के लिए जाना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा, तं जहा-उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइन्नकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसियकुलाणि वा वेसियकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टाग कुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा ४ फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा ॥११॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ यावत् सन् तद् यानि पुन कुलानि जानीयात्, तद्यथा– उग्रकुलानि वा भोगकुलानि वा राजन्यकुलानि वा क्षत्रियकुलानि वा इक्ष्वाकुकुलानि वा हरिवंशकुलानि वा एसिय-एष्यकुलानि वा वैश्यकुलानि वा गण्डककुलानि वा कुट्टाककुलानि वा ग्रामरक्षककुलानि वा वुक्कासतन्तुवायकुलानि वा अन्यतरेषु वा तथा प्रकारेषु वा कुलेषु

---

१ तद्यथा– अष्टम्या पौषध- उपवासादिकोऽष्टमीपौषध स विद्यते येषा तेऽष्टमी पौषधिका-उत्सवा तथाऽर्द्धमासिकादयश्च ऋतुसन्धि– ऋतो पर्यवसानम् ऋतुपरिवर्त्त – ऋत्वन्तरम्

–आचाराग वृत्ति।

अजुगुप्सितेषु अगर्हितेषु अशनं वा ४ प्रासुक यावद् गृण्हीयात्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**– भिक्षु साधु अथवा साध्वी। **जाव**– यावत्। **समाणे**-घर मे प्रवेश करते हुए। **से**-वह। **पुण**-फिर। **जाइं**-इन। **कुलाइं**-कुलो को। **जाणिज्जा**-जाने। **तंजहा**-जैसे कि- । **उग्गकुलाणि वा**-उग्र कुल। **भोगकुलाणि वा**-भोग कुल। **राइन्नकुलाणि वा**-राजन्य कुल। **खत्तियकुलाणि वा**- क्षत्रिय कुल। **इक्खागकुलाणि वा**-इक्ष्वाकु कुल। **हरिवंसकुलाणि वा**-हरिवंश कुल। **एसियकुलाणि वा**-गोपाल आदि कुल। **वेसियकुलाणि वा**-वैश्य कुल। **गंडागकुलाणि वा**-गण्डक-नापित कुल। **कोट्टागंकुलाणि वा**– बर्द्धकी-बढई कुल। **गामरक्खकुलाणि वा**-ग्रामरक्षक कुल। **वुक्कासकुलाणि वा**-तन्तुवाय कुल। **अन्नयरेसु**-और भी। **तहप्पगारेसु**-इसी प्रकार के। **कुलेसु**-कुलो मे। **अदुगुञ्छिएसु**-अनिन्दित। **अगरहिएसु**-अगर्हित कुलो मे। **असणं वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार। **फासुय**-प्रासुक। **जाव**-यावत् मिलने पर। **पडिग्गाहिज्जा**- साधु ग्रहण करे।

***मूलार्थ*—साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करते हुए इन कुलो को जाने, यथा उग्रकुल, भोगकुल, राजन्य कुल, क्षत्रिय कुल, इक्ष्वाकुकुल, हरिवंशकुल, गोपालादिकुल, वैश्यकुल, नापित कुल, वर्द्धकी (बढई) कुल, ग्रामरक्षक कुल, और तन्तुवाय कुल तथा इसी प्रकार के और भी अनिन्दित, अगर्हित कुलो मे से प्रासुक अन्नादि चतुर्विध आहार यदि प्राप्त हो तो साधु उसे स्वीकार कर ले।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को भिक्षा के लिए किन कुलो मे जाना चाहिए। वर्तमान काल चक्र मे भगवान् ऋषभदेव के पहले भरत क्षेत्र मे भोगभूमि थी। वर्तमान काल चक्र के तीसरे आरे के तृतीय भाग मे भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ था और उसके बाद भोग भूमि का स्थान कर्म भूमि ने ले लिया । भगवान ऋषभदेव ही प्रथम राजा, प्रथम मुनि, एव प्रथम तीर्थकर थे, इनके युग से राज्य व्यवस्था, समाज व्यवस्था एव धर्म व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। उनके युग से वर्ण व्यवस्था एव कुल आदि परम्परा का प्रचलन हुआ। उसी के आधार पर बने हुए कुलो का सूत्रकार ने उल्लेख किया है। जैसे- १-उग्र कुल-रक्षक कुल, जो जनता की रक्षा के लिए सदा सन्नद्ध तैयार रहता है, २-भोग कुल- राजाओ के लिए सम्मान्य है[1]। ३-राजन्य कुल- मित्र के समान व्यवहार करने वाला कुल, ४-क्षत्रिय कुल-जो प्रजा की रक्षा के लिए शस्त्रो को धारण करता था। ५-इक्ष्वाकु कुल- भगवान ऋषभ देव का कुल, ६-हरिवंश कुल-भगवान अरिष्टनेमिनाथ का कुल, ७-एष्य कुल- गोपाल आदि का कुल, ८-ग्राम रक्षक कुल- कोतवाल आदि का कुल, ९-गण्डक कुल- नाई आदि का कुल, १०- कुट्टाक , ११-वर्द्धकी और १२-वुक्कस- तन्तुवाय आदि के कुल एव इसी तरह के अन्य कुलो से भी साधु आहार ग्रहण कर सकता है, जो निन्दित एव घृणित कर्म करने वाले न हो।

प्रस्तुत प्रकरण मे क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र इन तीनो का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, परन्तु ब्राह्मण कुल का कहीं नाम नहीं आया। इसके दो कारण हो सकते हैं- १-ब्राह्मण वर्ण की स्थापना भगवान ऋषभदेव

१ भोगा – राज्ञ पूजनीया । – आचारागवृत्ति

ने नहीं की थी, बल्कि उनके दीक्षित होने के बाद भरत ने की थी। उनका वर्ण पीछे से आरम्भ हुआ इस कारण उसका उल्लेख नहीं किया हो। २-प्रस्तुत सूत्र मे भोग कुल का उल्लेख किया गया है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ राजाओ का पूजनीय कुल किया है। ब्राह्मण प्राय पठन-पाठन के कार्य मे ही सलग्न रहते थे एव निस्पृह भी होते थे। इस कारण राजा लोग उनका सम्मान करते थे। अत हो सकता है कि भोग कुल से ब्राह्मण कुल का उल्लेख किया गया हो।

एष्य कुल से गौ रक्षा एव पशु पालन करने वाले कुलो तथा वैश्य कुल से कृषि कर्म के द्वारा अल्पारम्भी जीवन बिताने वाले कुलो का निर्देश किया गया है। ३- गण्डाक-नाई आदि के कुल से केशालकार एव गाव मे किसी तरह की उद्घोषणा आदि कराने की प्रवृत्ति का तथा कुट्टाक, वर्द्धकी आदि कुलो से भवन निर्माण एव काष्ठ कला की और तन्तुवाय कुल से वस्त्र कला की परम्परा का सकेत मिलता है। इस तरह उक्त कुलो के निर्देश से उस युग की राष्ट्रीय एव सामाजिक व्यवस्था का पूरा परिचय मिलता है। अन्य अनिन्दनीय कुलो से शिल्प एव विज्ञान आदि के कुशल कलाकारो का निर्देश किया गया है। अत प्रस्तुत सूत्र ऐतिहासिक विद्वानो एव रिसर्च स्कालरो के लिए बडा ही महत्त्वपूर्ण है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्- से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा ४ समवाएसु वा पिंडनियरेसु वा इंदमहेसु वा खंदमहेसु वा एवं रुद्दमहेसु वा मुगुंदमहेसु वा भूयमहेसु वा जक्खमहेसु वा नागमहेसु वा थूभमहेसु वा चेइयमहेसु वा रुक्खमहेसु वा गिरिमहेसु वा दरिमहेसु वा अगडमहेसु वा तलागमहेसु वा दहमहेसु वा नइमहेसु वा सरमहेसु सागरमहेसु वा आगरमहेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु वट्टमाणेसु बहवे समणमाहणअतिहिकिवण-वणीमगे एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे पेहाए दोहिं जाव संनिहि-संनिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरकडं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा-दिन्नं जं तेसिं दायव्वं, अह तत्थ भुंजमाणे पेहाए गाहावइभारियं वा गाहावइभगिणिं वा गाहावइपुत्तं वा धूयं वा सुण्हं वा धाइं वा दासं वा दासिं वा कम्मकरं वा कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसि त्ति ! वा भगिणि त्ति ! वा दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं भोयणजायं, से सेवं वयंतस्स परो असणं वा ४ आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा ४ सयं वा पुण जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा॥१२॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ यावत् सन् तत् यत् पुनः जानीयात् अशनं वा४ समवायेषु वा पिंडनिकरेषु वा इन्द्रमहेषु वा स्कन्दमहेषु वा एवं रुद्रमहेषु वा मुकुन्दमहेषु वा भूतमहेषु वा यक्षमहेषु वा नागमहेषु वा स्तूपमहेषु वा चैत्यमहेषु वा वृक्षमहेषु वा गिरिमहेषु वा दरीमहेषु वा अवटमहेषु वा तडागमहेषु वा ह्रदमहेषु वा नदीमहेषु वा सरमहेषु वा सागरमहेषु वा आकरमहेषु वा अन्यतरेषु वा तथा प्रकारेषु विरूपरूपेषु महामहेषु वर्तमानेषु बहून् श्रमण ब्राह्मणातिथि-कृपणवणीमकान् एकस्या. उक्खाया परिवेष्यमाणः प्रेक्ष्य द्वाभ्यां यावत् संनिधिसन्निचयाद्वा परिवेष्यमाण. प्रेक्ष्य तथा प्रकार अशन वा ४ अपुरुषान्तरकृत यावत् न प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुन एवं जानीयात् दत्त यत्तेभ्यो दातव्यमथ तत्र भुजानान् प्रेक्ष्य गृहपतिभार्यां वा गृहपतिभगिनीं वा गृहपतिपुत्र वा सुता वा स्नुषा वा धात्रीं वा दास वा दासी वा कर्मकर वा कर्मकरी वा पूर्वमेव आलोकयेत्, आयुष्मति ! इति वा भगिनि ! इति वा दास्यसि मह्य इत्त अन्यतर भोजनजातं, स एवं वदत. पर· अशनं वा ४ आहृत्य दद्यात् तथाप्रकारं अशनं वा ४ स्वयं वा पुन. याचेत् परो वा तद् दद्यात् प्रासुक यावत् प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-भिक्षु-साधु अथवा साध्वी। जाव समाणे-यावत् घर मे गया हुआ। से-वह। जं-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-जाने। असण वा ४-अशनादिक चतुर्विध आहार। समवायेसु वा-जन समुदाय मे। पिण्डनियरेसु वा-मृतक भक्त अर्थात् श्राद्ध मे तथा। इदमहेसु वा-इन्द्र महोत्सव मे। खंदमहेसु वा-स्कन्द महोत्सव मे। एवं-इसी प्रकार। रुद्दमहेसु वा-रुद्र महोत्सव मे। मुगुदमहेसु वा-मुकुन्द महोत्सव मे भूयमहेसु वा-भूत महोत्सव मे तथा। जक्खमहेसु वा-यक्ष महोत्सव मे। नागमहेसु वा-नाग महोत्सव मे। थूभमहेसु वा-स्तूप महोत्सव मे एव। चेइयमहेसु वा-चैत्य महोत्सव मे। रुक्खमहेसु वा-वृक्ष महोत्सव मे। गिरिमहेसु वा-गिरि महोत्सव मे। दरिमहेसु वा -गुफा महोत्सव मे। अगडमहेसु वा-कूप महोत्सव मे। तलाग-महेसु वा-तड़ाग-तालाब महोत्सव मे। दहमहेसु वा-ह्रद महोत्सव मे। नइमहेसु वा-नदी महोत्सव मे। सरमहेसु वा-सर महोत्सव मे तथा। सागरमहेसु वा-सागर महोत्सव मे। आगरमहेसु वा-आकर महोत्सव मे। अन्नयरेसु वा-अन्यान्य। तहप्पगारेसु-इस प्रकार के। विरूवरूवेसु-नाना विध। महामहेसु-महान् उत्सवो के। वट्टमाणेसु-प्रवर्त्तमान होने मे। बहवे-बहुत से। समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे-शाक्यादि भिक्षु, तथा ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी लोगो को। एगाओ उक्खाओ-एक बर्तन से। परिएसिज्जमाणे-परोसते हुए को। पेहाए-देखकर तथा। दोहिं-दो बर्तनो से। जाव-यावत्। सनिहिसंनिचयाओ-सचय किए हुए घृतादि स्निग्ध पदार्थों मे से। परिएसिज्जमाणे-परोसते हुए को। पेहाए-देखकर। तहप्पगारं-तथा प्रकार के। असणं वा ४-अशनादि चतुर्विध आहार जो कि। अपुरिसंतरकड-पुरुषान्तर कृत न हो। जाव-यावत् मिलने पर। नो पडिग्गाहिज्जा-भी ग्रहण न करे। अह-अथ। पुण-पुन। एवं-इस प्रकार। जाणिज्जा-जाने। तेसिं-उनको। जं-जो। दिन्न-दिया गया हो वह। दायव्वं-देने योग्य है। अह-अथ। तत्थ-वहां पर। भुंजमाणे-खाते हुओ को। पेहाए-देखकर। गाहावइभारियं वा-गृहपति की भार्या को या। गाहावइभगिणिं-गृहपति की भगिनी-बहिन को। गाहावइपुत्तं वा-गृहपति के पुत्र को। धूयं वा- पुत्री को। सुण्हं वा-स्नुषा-पुत्रवधु को। धाइं वा-धात्री-धाय माता को। दास

वा-दास को। **दासिं वा**-अथवा दासी को तथा। **कम्मकर वा**-नौकर को वा। **कम्मकरिं वा**-नौकरानी को। **से**-वह। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोइज्जा**-अवलोकन करके कहे कि। **आउसित्ति वा**-हे आयुष्मति। **भगिणित्ति वा**- हे भगिनि। **मे**-मुझे। **इत्तो अन्नयरं**- इस विविध प्रकार के। **भोयणजाय**-भोजन जात-भोजन समुदाय मे से। **दाहिसि ?** - देगी ? **से**-वह। **सेव**-इस प्रकार से। **वयतस्स**-बोलते हुए साधु को। **परो**-दूसरे। **असणं वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार मे से। **आहट्टु**-लाकर। **दलइज्जा**-देवे। **तहप्पगार**-इस प्रकार के। **असण वा ४**-अन्नादि चतुर्विध आहार को। **सयं वा**-स्वय। **पुण**-पुन। **जाइज्जा**-मागे। **से**-वह। **परो वा**-दूसरा। **दिज्जा**-देवे तो। **फासुय**-प्रासुक आहार। **जाव**-यावत् मिलने पर। **पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण करे-स्वीकार कर ले।

***मूलार्थ*—साधु वा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने पर यदि यह जाने कि यहा पर महोत्सव के लिए जन एकत्रित हो रहे है, तथा पितृपिण्ड या मृतक के निमित्त भोजन हो रहा है या इन्द्रमहोत्सव, स्कन्दमहोत्सव, रुद्रमहोत्सव, मुकुन्दबलदेव महोत्सव, भूत महोत्सव, यक्ष महोत्सव, इसी प्रकार नाग, स्तूप, चैत्य, वृक्ष, गिरि, गुफा, कूप, तालाब, ह्रद(झील) उदधि, सरोवर' सागर और आकर सम्बन्धि महोत्सव हो रहा हो तथा इसी प्रकार के अन्य महोत्सवो पर बहुत से श्रमण-ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी लोगो को एक बर्तन से परोसता हुआ देख कर दो थालियो से यावत् सचित किए हुए घृतादि स्निग्ध पदार्थो को परोसते को देखकर तथाविध आहार-पानी जब तक अपुरुषान्तरकृत है यावत् मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। यदि इस प्रकार जाने कि जिन को देना था दिया जा चुका है तथा वहा पर यदि वह गृहस्थो को भोजन करते हुए देखे तो उस गृहपति की भार्या से, गृहपति की भगिनी से, गृहपति के पुत्र से, गृहपति की पुत्री से, पुत्रवधू से, धाय माता से, दास-दासी नौकर-नौकरानी से पूछे कि हे आयुष्मति। भगिनि। मुझे इन खाद्य पदार्थों मे से अन्यतर भोजन दोगी? इस प्रकार बोलते हुए साधु के प्रति यदि गृहस्थ चार प्रकार का आहार लाकर दे अथवा अशनादि चतुर्विध आहार की स्वयमेव याचना करे या गृहस्थ स्वय दे और वह आहार-पानी प्रासुक और एषणीय हो तो साधु उसे ग्रहण कर ले।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि गृह प्रवेश, नामकरण आदि उत्सव तथा मृतक कर्म या इन्द्र, स्कन्द एव रुद्र आदि से सम्बन्धित उत्सवो के अवसर पर शाक्यादि भिक्षु, श्रमण-ब्राह्मण, गरीब- भिखारी आदि गृहस्थ के घर पर भोजन कर रहे हो और वह भोजन पुरुषान्तर कृत नहीं हुआ हो तो साधु उसे अनेषणीय समझ कर ग्रहण न करे। यदि अन्य भिक्षु आदि भोजन करके चले गए हैं, अब केवल उसके परिवार के सदस्य, परिजन एव दास-दासी ही भोजन कर रहे हो, तो उस समय साधु प्रासुक एव एषणीय आहार की याचना कर सकता है या उस घर का कोई सदस्य साधु को आहार की प्रार्थना करे तो वह उसे ग्रहण कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'पिण्ड नियरेसु' का अर्थ है- मृतक के निमित्त तैयार किया गया भोजन। प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि उस समय इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, बलदेव, भूत, यक्ष, नाग आदि के उत्सव मनाए जाते थे। और इन अवसरो पर गृहस्थ लोग प्रीति भोज करते थे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'स्तूप एव चैत्य' शब्द एकार्थक नहीं, किन्तु, भिन्नार्थक है। मृतक की

चिता पर उसकी स्मृति मे बनाया गया स्मारक 'स्तूप' कहलाता है और यक्ष आदि का आयतन 'चैत्य' कहलाता है। यहा प्रयुक्त महोत्सव भौतिक कामनाओ के लिए किए जाते रहे है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चैत्य शब्द का प्रयोग जिन भगवान् की प्रतिमा या मन्दिर के लिए प्रयुक्त नही हुआ है[१]। उक्त शब्द यक्षायतन या व्यन्तरायतन का परिबोधक है।

अब सूत्रकार ग्रामान्तरीय आचार का वर्णन करते हुए कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ परं अद्धजोयणमेराए संखडिं नच्चा संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए। से भिक्खू वा २ पाईणं संखडिं नच्चा पडीणं गच्छे अणाढायमाणे, पडीणं संखडिं नच्चा पाईणं गच्छे अणाढायमाणे, दाहिणं संखडिं नच्चा उदीणं गच्छे अणाढायमाणे, उईणं संखडिं नच्चा दाहिणं गच्छे अणाढायमाणे, जत्थेव सा संखडी सिया, तंजहा– गामंसि वा, नगरंसि वा, खेडंसि वा, कव्वडंसि वा, मडंबंसि वा, पट्टणंसि वा, आगरंसि वा, दोणमुहंसि वा, नेगमंसि वा, आसमंसि वा, संणिवेसंसि वा, जाव रायहाणिंसि वा संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए, केवली बूया– आयाणमेयं, संखडिं संखडिपडियाए अभिधारेमाणे आहाकम्मियं वा, उद्देसियं वा, मीसजायं वा, कीयगडं वा, पामिच्चं वा, अच्छिज्जं वा, अणिसिट्ठं वा, अभिहडं वा आहट्टु दिज्जमाणं भुञ्जिज्जा ॥१२॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ २ पर अर्द्धयोजनमर्यादया सखडि ज्ञात्वा सखडिप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेत् गमनाय। स भिक्षुर्वा २ प्राचीना सखडि ज्ञात्वा प्रतीचीन गच्छेत् अनाद्रियमाण., प्रतीचीनं संखडिं ज्ञात्वा प्राचीन गच्छेत् अनाद्रियमाण., दक्षिणं सखडि ज्ञात्वा उदीचीन गच्छेत् अनाद्रियमाणः, उदीचीन संखडि ज्ञात्वा दक्षिण गच्छेत् अनाद्रियमाण , यत्रैव असौ संखडिस्यात्-तद्यथा-ग्रामे वा नगरे वा खेटे वा कर्बटे वा मडबे वा पत्तने वा आकरे वा द्रोणमुखे वा नैगमे वा आश्रमे वा सन्निवेशे वा यावत् राजधान्यां वा संखडि संखडिप्रतिज्ञया न अभिसन्धारयेत् गमनाय, केवली ब्रूयात्-आदानमेतत्, सखडि सखडिप्रतिज्ञया अभिसधारयत. आधाकर्म वा, औद्देशिकं वा, मिश्रजात वा, क्रीतकृतं वा, प्रामित्यं वा, आच्छेद्य वा, अनिसृष्टं

---

१ थूभ पु॰ (स्तूप) प्रेक्षा घर के सामने वाली मणिपीठिका के ऊपर का सोलह योजन लम्बा चौड़ा सोलह योजन ऊचा सफेद रग वाला चैत्यस्तूप,–स्मारक स्तम्भ, स्तूप, मृतक घर (अर्द्धमागधीकोष भा॰ ३ पृ॰ १०१)

चेइय-न॰ (चैत्य) यक्ष वगैरह व्यन्तर देवता के आयतन स्थान, चिता के ऊपर मदिर या अन्य रूप मे बनाया हुआ स्मारक चिन्ह, ससारी लोग इसकी इस लोक के सुखो की इच्छा से उपासना करते है।

(अर्द्धमा॰ कोष भा॰ २ पृ॰, ७३७)

वा, अभ्याहृतं वा आहृत्य दीयमानं भुञ्जीत।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**- वह साधु-साध्वी। पर-प्रकर्ष से उत्कृष्ट। **अद्धजोयणमेराए**-अर्द्धयोजन परिमाण क्षेत्र मे। **सखडिं**-जीमणवार प्रीतिभोजन को। **नच्चा**- जानकर। **सखडिपडियाए**-सुस्वादु आहार लाभ की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-जाने के लिए। **नो अभिसधारिज्जा**- मन मे सकल्प न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा २**- साधु या साध्वी। **पाईण** -पूर्व दिशा मे। **सखडि**-सखडी को। **नच्चा**-जानकर। **पडीण**-पश्चिम दिशा मे। **अणाढायमाणे**-उनका अनादर करता हुआ। **गच्छे**-जाए। **पडीणँ**-पश्चिम दिशा मे। **सखडि**-सखडी को। **नच्चा**-जानकर उसका। **अणाढायमाणे**-अनादर करता हुआ। **पाईण**-पूर्व दिशा को। **गच्छे**-जाए। **दाहिणं**-दक्षिण दिशा मे। **संखडि**-सखडी को। **नच्चा**-जानकर उसका। **अणाढायमाणे**-अनादर करता हुआ। **उईणं**-उत्तर दिशा मे। **गच्छे**-जाए तथा। **उईणं**-उत्तर दिशा मे। **सखडिं**-सखडी को। **नच्चा**-जानकर उसका। **अणाढायमाणे**-अनादर करता हुआ। **दाहिण**-दक्षिण दिशा को। **गच्छे**-जाए। **जत्थेव**-वहा पर भी। **सा**-वह। **सखडी**-स्वादिष्ट आहार सम्बन्धी भोजन समारोह। **सिया**-होवे। **तजहा**-जैसे कि। **गामंसि वा**-ग्राम मे। **नगरसि वा**-नगर मे। **खेडसि वा**-खेटक मे । **कव्वडसि वा**-कर्बट-कुनगर मे। **मडबंसि वा**-मडब मे। **पट्टणसि वा**-पत्तन मे, तथा। **आगरसि वा**-आकर मे– खदान मे। **दोणमुहंसि वा**-द्रोण मुख मे। **नेगमसि वा**-नैगम-व्यापार के स्थान मे। **आसमसि वा**-आश्रम मे। **संनिवेसंसि वा**-सन्निवेश मे। **जाव**-यावत्। **रायहाणिसि वा**-राजधानी मे। **सखडिं**-सखडी को। **सखडीपडियाए**-सखडी की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-जाने के लिए। **नो अभिसधारिज्जा**-मन मे इच्छा उत्पन्न न करे, कारण है कि। **केवली**-केवली भगवान ने। **बूया**-कहा है। **आयाणमेयं**-यह कर्म बन्धन का कारण है। **सखडि**-सखडी को। **सखडीपडियाए**-सखडी की प्रतिज्ञा से। **अभिधारेमाणे**-धारण करता हुआ साधु। **अहाकम्मिय वा**-आधाकर्मिक अथवा। **उद्देसिय**-औद्देशिक अथवा। **मीसजाय**-मिश्रित। **कीयगड**-क्रीत-खरीदा हुआ। **पामिच्चं वा**-उधार माग कर लाया हुआ। **अच्छिज्ज वा**-छीना हुआ। **अणिसिट्ठ वा**-साझे की वस्तु-जोकि दूसरे की आज्ञा के बिना लाई गयी हो। **अभिहड वा**-अभ्याहृत सामने लाया हुआ। **आहट्टु**-बुलाकर। **दिज्जमाणं**-दिए गए आहार को। **भुञ्जिज्जा**-खावे। तात्पर्य है कि इस प्रकार का आहार साधु के लिए वर्जित है।

मूलार्थ—साधु वा साध्वी अर्द्ध योजन प्रमाण सखडि-जीमनवार को जानकर आहार लाभ के निमित्त जाने का सकल्प न करे। यदि पूर्व दिशा मे प्रीतिभोज हो रहा है तो साधु उसका अनादर करता हुआ पश्चिम दिशा को और पश्चिम दिशा मे हो रहा है तो उसका अनादर करता हुआ पूर्व दिशा को जाए। इसी प्रकार दक्षिण दिशा मे हो रहा है तो उसका निरादर करता हुआ उत्तर दिशा को, और उत्तर दिशा मे हो रहा है तो उसका अनादर करता हुआ दक्षिण दिशा को जाए। तथा जहां पर सखडी हो, जैसे कि– ग्राम मे, नगर मे, खेट में, कर्बट मे एवं मडब, पत्तन, आकर, द्रोणमुख, नैगम, आश्रम और सन्निवेश, यावत् राजधानी मे होने वाली सखडी मे स्वादिष्ट भोजन लाने की प्रतिज्ञा से जाने के लिए मन मे इच्छा न करे। केवली भगवान् कहते है-कि यह कर्म बन्ध का मार्ग है। सखडी मे सखडी की प्रतिज्ञा से जाता हुआ साधु यदि वहाँ लाकर दिए हुए को खाता

है तो वह आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, क्रीतकृत, उधार लिया हुआ, छीना हुआ, दूसरे की बिना आज्ञा लिया हुआ और सन्मुख लाया हुआ खाता है। तात्पर्य यह है कि यदि साधु वहा जाएगा तो संभव है कि उसे सदोष आहार खाना पड़े।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को सरस एव स्वादिष्ट पदार्थ प्राप्त करने की अभिलाषा से सखडी– बडे जीमनवार या प्रीतिभोज मे भिक्षा को नही जाना चाहिए। उस स्थान मे ही नहीं अपितु जहाँ पर प्रीतिभोज आदि हो रहा हो उस दिशा मे भी आहार को नहीं जाना चाहिए। इससे साधु की आहार वृत्ति की कठोरता एव स्वाद पर विजय की बात सहज ही समझ मे आ जाती है। ऐसे आहार को भगवान ने आधाकर्म आदि दोषो से युक्त बताया है। इससे स्पष्ट है कि साधु यदि ऐसे प्रसग पर वहाँ आहार के लिए जाए तो अप्रासुक एव अनेषणीय आहार लेना होगा। क्योकि अत्यधिक आरम्भ-समारम्भ होने से वह सचित्त आदि पदार्थों के स्पर्श का ध्यान नही रख सकता, देने मे भी अविधि हो सकती है और साधु को उस दिशा मे आता हुआ देखकर कुछ विशिष्ट पदार्थ भी तैयार किए जा सकते है या उन्हे साधु के लिए इधर-उधर रखा जा सकता है। अत साधु को ऐसे प्रसग पर आहार को नहीं जाना चाहिए।

'सखडि' शब्द का अर्थ होता है– 'सखण्ड्यन्ते-विराध्यन्ते प्राणिनो यत्र सा सखडि ' अर्थात् जहा पर अनेक जीवो के प्राणो का नाश करके भोजन तैयार किया जाता है, उसे 'सखडि' कहते हैं। वर्तमान मे इसे भोजनशाला कहते हैं। इसका गूढ अर्थ महोत्सव एव विवाह आदि के समय किया जाने वाला सामूहिक जीमनवार से लिया जाता है। ऐसे स्थानो पर शुद्ध, निर्दोष, एषणीय एव सात्विक आहार उपलब्ध होना कठिन है, इसलिए साधु के लिए वहा आहार को जाने का निषेध किया गया है।

उस समय गाँव एव नगरो मे तो सखडी होती ही थी। इसके अतिरिक्त खेट– धूल के कोट वाले स्थान, कुत्सित नगर, मडब– जिस गाँव के बाद ५ मील पर गाँव बसे हुए हो, पत्तन– जहाँ पर सब दिशाओ से आकर माल बिकता हो (व्यापारिक मण्डी) आकर– जहॉ ताम्बे, लोहे आदि की खान हो, द्रोणमुख–जहाँ जल और स्थल प्रदेश का मेल होता हो। नैगम– व्यापारिक बस्ती आश्रम, सन्निवेश– सराय (धर्मशाला) छावनी आदि। ये स्थान ऐतिहासिक गवेषणा की दृष्टि से बडा महत्त्व रखते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'आयाणमेय' का अर्थ है– कर्म बन्ध का हेतु। कुछ प्रतियो मे 'आयाणमेय' के स्थान पर 'आययणमेय' ऐसा पाठ भी मिलता है। इसका अर्थ है- यह कार्य दोषो का स्थान है, यहा इतना स्मरण रखना चाहिए कि यह वर्णन उत्कृष्ट पक्ष को लेकर किया गया है, जघन्य-सामान्य पक्ष को लेकर नहीं।

सखडी मे जाने से कौन से दोष लग सकते हैं, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– असंजए भिक्खुपडियाए खुड्डियदुवारियाओ महल्लिय-दुवारियाओ कुज्जा, महल्लियदुवारियाओ खुड्डियदुवारियाओ कुज्जा, समाओ

सिज्जाओ विसमाओ कुज्जा, विसमाओ सिज्जाओ समाओ कुज्जा, पवायाओ सिज्जाओ निवायाओ कुज्जा, निवायाओ सिज्जाओ पवायाओ कुज्जा, अंतो वा बहिं वा उवस्सयस्स हरियाणि छिंदिय छिंदिय दालिय दालिय संथारगं संथारिज्जा, एस विलुङ्गयामो सिज्जाए, तम्हा से संजए नियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए, एयं खलु तस्स भिक्खुस्स जाव सया जए, त्तिबेमि ॥१३॥

छाया– असयत भिक्षुप्रतिज्ञया क्षुद्रद्वारा महाद्वारा कुर्यात्, महाद्वाराः क्षुद्रद्वारा. कुर्यात्, समा शय्या विषमाः कुर्यात् , विषमा· शय्याः समा कुर्यात् , प्रवाताः शय्या. निवाता. कुर्यात्, निवाता· शय्या प्रवाता कुर्यात्, अन्तोवा बहिर्वा उपाश्रयस्य हरितानि छित्त्वा २ विदार्य २ संस्तारक संस्तारयेत्, एष निर्ग्रन्थ (अकिचन) शय्याया , तस्मात् स सयत निर्ग्रन्थ. तथाप्रकारां पुर.सखडि वा पश्चात्सखडि वा सखडि सखडिप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेत् गमनाय, एव खलु तस्य भिक्षो. यावत् (सामग्रय) सदा यतेत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ – **असजए**-असयति-गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-साधु के लिए। **खुड्डियदुवारियाओ**-छोटे द्वार को। **महल्लियदुवारियाओ**-बड़ा द्वार। **कुज्जा**-करता है या। **महल्लियदुवारियाओ**-बड़े द्वार को। **खुड्डियदुवारियाओ**-छोटा द्वार। **कुज्जा**-करता है। **समाओ सिज्जाओ**-सम शय्या को। **विसमाओ सिज्जाओ**-विषम शय्या। **कुज्जा**-करता है। **विसमाओ सिज्जाओ** विषम शय्या को। **समाओ**-सम। **कुज्जा**-करता है। **पवायाओ सिज्जाओ**-वायु वाली शय्या को। **निवायाओ**-निर्वात-वायु रहित। **कुज्जा**-करता है और। **निवायाओ सिज्जाओ**-निर्वात शय्या को। **पवायाओ**-वायु युक्त। **कुज्जा**-करता है। **उवस्सयस्स**-उपाश्रय के। **अतो वा**-अदर मे। **बहिं वा**-बाहर से। **हरियाणि**-हरियाली का। **छिदिय २**-छेदन करता है। **दालिय २**- विदारण करता है। **सथारग**-सस्तारक को। **सथारिज्जा**-बिछाता है। **एस**-यह साधु। **विलुङ्गयामो**-अकिचन है अत । **सिज्जाए**-यह शय्या उसके लिए सस्कार की गई है। **तम्हा**-अत । **से सजए**-वह सयत। **नियठे**-निर्ग्रन्थ। **तहप्पगार**-इस प्रकार की शय्या को एव। **पुरेसखडि वा**-विवाहादिक के समय की पहली जीमनवार। **पच्छासंखडि वा**-मृतक के निमित्त पीछे की जाने वाली जीमनवार। **सखडि**-सखडी को। **सखडिपडियाए**-सखडी की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-गमन करने के लिए। **नो अभिसधारिज्जा**-मन मे विचार न करे। **एय**-यह। **खलु**-निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु की। **जाव**-यावत् समग्रता है– सम्पूर्णता है। **सया**-सदा। **जए**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—कोई श्रद्धालु गृहस्थ साधु के (सखडि मे आने की सम्भावना से) छोटे द्वार को बडा करेगा और बडे द्वार को छोटा, तथा सम शय्या को विषम और विषम को सम करेगा, तथा वायु युक्त शय्या को निर्वात (वायु रहित) और निर्वात को सवात (वायुयुक्त) करेगा। इसी भाँति उपाश्रय के अन्दर और बाहर हरियाली का छेदन करेगा तथा उसे जड़ से उखाड कर आसन

को व्यवस्थित बनाएगा। क्योंकि वह शय्या अकिचन भिक्षु के लिए है। अत· वह यत्नशील निर्ग्रन्थ उक्त प्रकार की पूर्व संखडी तथा पश्चात् सखडी को संखडी की प्रतिज्ञा से जाने के लिए मन मे सकल्प न करे। यह निश्चय ही साधु वा साध्वी की सामग्रता अर्थात् भिक्षु भाव की सम्पूर्णता है, ऐसा मै कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र के पूर्व भाग मे हम देख चुके है कि सखडी मे आहार को जानने से निर्दोष आहार मिलना कठिन है। और इस सूत्र के उत्तर भाग मे यह बताया गया है कि सखडी म जाने से और भी अधिक दोष लग सकते हैं। यदि किसी श्रद्धानिष्ठ व्यक्ति को यह पता लग जाए कि साधु इस ओर आहार के लिए आ रहा है, तो वह उसके लिए शय्या आदि को ठीक करने का प्रयत्न करेगा, स्थान को ठहरने के योग्य बनाने के लिए इधर-उधर पडे हुए घास-फूस को काटेगा, पानी आदि से धोएगा और दरवाजे को छोटा-बडा बनाएगा। इस दृष्टि से भी सखडी के स्थान मे साधु को आहार के लिए जाने का निषेध किया गया है।

'सखडी' भी पूर्व और पश्चात् के भेद से दो प्रकार की होती है। विवाह आदि के मागलिक कार्यों के समय विवाह सम्पन्न होने से पूर्व की जाने वाली सखडी को पूर्व सखडी कहते हैं और मरे हुए व्यक्ति के पीछे मृत भोज को पश्चात् सखडी कहते हैं। क्योकि मृतभोज व्यक्ति के मरने के बाद ही किया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'असजए' पद का अर्थ वृत्तिकार ने श्रावक या अन्य भद्र-पुरुष किया है। इसका आशय यह है कि उपाश्रय के साथ श्रावक का सम्बन्ध होने के कारण श्रावक अर्थ सगत बैठता है। परन्तु विवेकवान एव तत्त्वज्ञ श्रावक साधु के लिए घास-फूस काटकर आरम्भ नहीं करता। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि साधुचर्या से अनभिज्ञ श्रावक या श्रद्धानिष्ठ भक्त हो सकता है।

'**त्तिबेमि**' का अर्थ पूर्ववत् समझे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक मे सखडि आदि से सम्बन्धित दोषो का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक मे अन्य दोषो का विवेचन करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से एगइओ अन्नयरं संखडिं आसित्ता पिबित्ता छड्डिज्जा वा, वमिज्जा वा, भुत्ते वा से नो सम्मं परिणमिज्जा, अन्नयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जिज्जा, केवली बूया– आयाणमेयं ॥१४॥

इह खलु भिक्खू गाहावईहिं वा गाहावइणीहिं वा परिवायएहिं वा परिवाइयाहिं वा एगज्जं सद्धिं सुण्डं पाउं भो वइमिस्सं हुरत्था वा उवस्सयं पडिलेहेमाणो नो लभिज्जा तमेव उवस्सयं संम्मिस्सीभावमावज्जिज्जा, अन्नमणे वा से मत्ते विप्परियासीयभूए इत्थिविग्गहे वा किलीबे वा तं भिक्खुं उवसंकमित्तु बूया– आउसंतो समणा ! अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा, राओ वा वियाले वा, गामधम्मनियंतियं कट्टु रहस्सियं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टामो, तं चेवेगइओ सातिज्जिज्जा, अकरणिज्जं चेयं संखाए एए आयाणा (आयतणाणि) संति संविज्जमाणा पच्चावाया भवंति, तम्हा से संजए नियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए ॥१५॥

छाया– स एकदा अन्यतरा सखडिम् आस्वाद्य पीत्वा छर्दयेद् वा वमेद् वा भुक्तो वा स नो सम्यक् परिणमेत्, अन्यतरो वा स दु ख रोगातक समुत्पद्येत, केवली ब्रूयात्–आदानमेतत्।

इह खलु भिक्षु गृहपतिभिर्वा, गृहपत्नीभिर्वा, परिव्राजकेर्वा, परिव्राजिकाभिर्वा एकत्व सार्द्ध सीधु पातु भो ! व्यतिमिश्र हुरत्था वा उपाश्रय प्रत्युपेक्षमाण न लभेत तमेव उपाश्रयं

संमिश्रीभावमापद्येत, अन्यमना वा स मत्तः विपरियासीभूतः स्त्रीविग्रहे वा क्लीबे वा तं भिक्षुमुपसंक्रम्य ब्रूयात्- आयुष्मन् श्रमण ! अथारामे वा अथोपाश्रये वा रात्रौ वा विकाले वा ग्रामधर्मनियंत्रितं कृत्वा रहसि मैथुनधर्म परिचारणया प्रवर्तामहे, तां चैव एकाकी अभ्युपगच्छेत् ; अकरणीयं चेद सख्याय एतानि आदानानि (आयतनानि) सन्ति संचीयमानानि प्रत्यपाया भवंति, तस्मादसौ संयतो निर्ग्रन्थ· तथाप्रकारा पुर. संखडिं वा पश्चात् सखडि वा सखडि संखडिप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय।

पदार्थ– से-वह-भिक्षु। एगइओ-एकदा। अन्नयर-किसी एक। **सखडि**-सखडि मे। **आसित्ता**-सरस आहार खाकर। **पिबित्ता**-दूधादि पीकर। **छड्डिज्ज वा**-छर्दी करे या। **वमिज्ज वा**-वमन-उल्टी करे। **भुत्ते**-खाया हुआ। **से**-वह-आहार। **सम्म**-भली प्रकार से। **नो परिणमिज्जा**-परिणमन न हो तो। **अन्नयरे वा**-अन्य विसूचिकादि से। **से**-वह। **दुक्खे**-दु खी होगा या। **रोगायके**-रोग-आतक, ज्वर, शूलादि। **समुप्पज्जिज्जा**-उत्पन्न हो जाएगे, अत । **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है कि। **आयाणमेय**-यह कर्म बन्ध का कारण है।

इह खलु-निश्चय ही इस सखडि मे जाने से। **भिक्खू**-भिक्षु। **गाहावईहिं**-गृहपतियो से अथवा। **गाहावइणीहिं**-गृहपति की स्त्रियो से। **वा**-अथवा। **परिवायएहिं वा**-परिव्राजकों से अथवा। **परिवाइयाहिं वा**-परिव्राजिकाओ से। **एगज्ज सद्धि**-इकट्ठे-एक साथ मिलने पर। **सुड पाउ**-सीधु-मदिरा के पीने पर। **भो**-हे शिष्य। **वइमिस्सं**-उसे व्यतिमिश्र हो जाएगा। **वा**-अथवा। **हुरत्था वा**-वहा से बाहर निकल कर। **उवस्सयं**-उपाश्रय की। **पडिलेहेमाणे**-याचना करता हुआ। **नो लभिज्जा**-जब अच्छा उपाश्रय न मिलेगा तो। **तमेव उवस्सय**-उसी उपाश्रय मे। **सभिस्सीभावमावज्जिज्जा**- गृहस्थी वा परिव्राजको के साथ मिलकर रहना होगा। **वा**-और वहा। **से**-वह गृहस्थादि। **अन्नमणे**-परस्पर। **मत्ते**-मदोन्मत्त होकर। **विप्परियासियभूए**-विपरीतभाव को प्राप्त होगे और उनके सम्पर्क से भिक्षु भी अपनी आत्मा को विस्मृत कर देगा। **वा**-अथवा। **इत्थीविग्गहे**-स्त्री के शरीर मे, तथा। **किलीबे**-नपुसक मे-विपरीत भाव को प्राप्त हो जाता है। **वा**-वह स्त्री या नपुसक । **त**-उस। **भिक्खु**-भिक्षु के। **उवसकमित्तु**-पास मे आकर। **बूया**-इस प्रकार कहे कि। **आउसतो समणा**-हे आयुष्मन् श्रमण। **अहे आरामसि वा**-उद्यान मे अथवा। **अहे उवस्सयसि वा**-उपाश्रय मे अथवा। **राओ वा**-रात्री मे। **वियाले वा**-विकाल मे-अकाल मे। **गामधम्म-नियतिय कट्टु**-ग्राम्य धर्म मैथुन धर्मादि की नियत्रणा से नियत्रित करके। **रहस्सियं**-एकान्त स्थान मे। **मेहुणधम्मपरियारणाए**-मैथुन धर्म के आसेवनार्थ हम। **आउट्टामो**-प्रवृत्त हो प्रवृत्ति करें, इस प्रकार कहे जाने पर। **त**-उस प्रार्थना को। **चेवेगइओ**-कोई अनभिज्ञ भिक्षु। **सातिज्जिज्जा**-स्वीकार करे। **च**-पुन । **एयं**-यह। **अकरणिज्ज**-अकरणीय कार्य। **सखाए**-जानकर सखडि मे गमन न करे। **एए**-ये पूर्वोक्त। **आयाणा**-कर्म आने के मार्ग अथवा। **आयतणाणि**-दोषो के स्थान। **सति**-है। **सविज्जमाणा**-क्षण-क्षण मे कर्म सचय करता हुआ। **पच्चवाया**-इसी प्रकार के अन्य भी कर्म आने के मार्ग। **भवति**-होते है। **तम्हा**-अत । **से**-वह। **सजए**-सयत-सयमशील। **नियठे**-निर्ग्रन्थ। **तहप्पगार**- उक्त प्रकार की। **पुरेसखडि**-पूर्व सखडि मे अथवा। **पच्छासखडिं वा**-पश्चात् सखडि मे। **सखडिं**-सखडि को जानकर। **संखडिपडियाए**-सखडि की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-उस ओर जाने का। **नो अभिसधारिज्जा**-मन मे सकल्प भी न करे।

***मूलार्थ*—संखडि में गए हुए साधु को वहा अधिक सरस आहार करने एवं अधिक दूधादि पीने के कारण वमन हो सकता है या उस आहार का सम्यक्तया पाचन नहीं होने से विसूचिका, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इमलिए भगवान ने सखडि मे जाने के कार्य को कर्म आने का कारण कहा है।**

इसके अतिरिक्त सखडि मे गया हुआ साधु गृहपति एव उसकी पत्नी, परिव्राजक-परिव्राजिकाओ के सहवास से मदिरा पान करके निश्चय ही अपनी आत्मा का भान भूल जाएगा। और उस स्थान से बाहर आकर उपाश्रय की याचना करेगा, परन्तु अनुकूल स्थान नही मिलने पर वह गृहस्थ या परिव्राजको के साथ ही ठहर जाएगा। और मदिरा के प्रभाव से वह अपने स्वरूप को भूल कर अपने आप को गृहस्थ समझने लगेगा। उस समय स्त्री या नपुसक पर आसक्त होने लगेगा। उसे मदोन्मत्त देखकर रात्री मे या विकाल मे स्त्री या नपुंसक उसके पास आकर कहेगे कि हे आयुष्मान् श्रमण ! बगीचे या उपाश्रय के एकान्त स्थान मे चलकर ग्रामधर्म-मैथुन का आसेवन करे। इस प्रार्थना को सुनकर कोई अनभिज्ञ साधु उसे स्वीकार भी कर सकता है। अत· इस तरह आत्म पतन होने की सम्भावना होने के कारण भगवान ने संखडि मे जाने का निषेध किया है और इसे कर्मबन्ध का स्थान कहा है। इसमे प्रतिक्षण कर्म आते रहते है। इसलिए साधु को पूर्व सखडी या पश्चात् सखडी मे जाने का मन मे भी सकल्प नहीं करना चाहिए।

***हिन्दी विवेचन*–** यह हम देख चुके है कि साधु को सखडि मे आहार के लिए जाने का निषेध किया गया है। पूर्व उद्देशक मे बताया गया है कि वहा जाने से साधु को अनेक दोष लगने की सम्भावना है। प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि सखडि मे आहार को जाने से साधु को शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक हानि भी होती है। क्योकि साधु का आहार सात्त्विक एव नीरस होता है और प्राय ऐसा करने से उसकी आते भी उस आहार को पचाने की अभ्यस्त हो जाती हैं। और सखडि मे सरस एव प्रकाम भोजन बनता है और दूध आदि पेय पदार्थ भी होते हैं और सरस एव स्वादिष्ट पदार्थो के कारण वे अधिक खाए जा सकते हैं। इससे साधु को वमन हो सकती है, या पाचन क्रिया ठीक न होने से विसूचिका, शूल आदि भयकर रोग हो सकते हैं और उसके कारण उसकी तुरन्त मृत्यु भी हो सकती है। इस तरह आर्त्त एव रौद्र ध्यान मे प्राण त्याग करके वह दुर्गति मे जा सकता है। इसलिए साधु को ऐसे स्थानो मे आहार आदि को नहीं जाना चाहिए।

दूसरा दोष यह है कि सखडि मे जाने पर वहा आए हुए अन्य मत के भिक्षुओ से उसका घनिष्ठ परिचय होगा और उससे उसकी श्रद्धा मे विपरीतता आ सकती है। और उनके ससर्ग से वह मद्य आदि पदार्थो का सेवन कर सकता है और उनके कारण अपने आत्म भान को भूलकर सयम के विपरीत आचरण का सेवन भी कर सकता है। शराब के नशे मे उन्मत्त होकर वह नृत्य भी सकता है और किसी उन्मत्त स्त्री द्वारा भोग का निमन्त्रण पाकर उस पथ पर भी फिसल सकता है। इस तरह सखडि मे जाकर वह अपने सयम का सर्वथा नाश करके जन्म-मरण के अनन्त प्रवाह मे प्रवहमान हो सकता है।

इस तरह सखडि शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक चिन्तन एव आध्यात्मिक साधना आदि सबका

नाश करने वाली है। इस लिए साधु को सखडि के स्थान की ओर भी नहीं जाना चाहिए। इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा २ अन्नयरिं संखडिं सुच्चा निसम्म संपहावइ उस्सुयभूएण अप्पाणेणं, धुवा संखडी, नो संचाएइ तत्थ इयरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिग्गाहित्ता आहारं आहारित्तए, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा। से तत्थ कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिगाहित्ता आहारं आहारिज्जा॥१६॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ अन्यतरां सखडि श्रुत्वा निशम्य सम्प्रधावति उत्सुकभूतेनात्मना, ध्रुवा संखडि. न शक्नोति तत्र, इतरेतरेभ्य. कुलेभ्यः सामुदानिकं (भैक्षम्) एषणीय वैषिकं पिण्डपात परिगृह्य आहारमाहर्त्तुंमातृस्थानं सस्पृशेन् न एवं कुर्यात्। स तत्र कालेनानुप्रविश्य तत्रेतरेतरेभ्यः कुलेभ्यः सामुदानिकं (भैक्षम्) एषणीयं वेषिकं पिण्डपातं प्रतिगृह्यहारमाहारयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा २-साधु अथवा साध्वी । अन्नयरिं -अन्यतर-किसी एक स्थान पर। सखडि- सखड़ि को। सुच्चा-सुनकर। निसम्म-विचार कर। उस्सुयभूएण-उत्सुकतायुक्त। अप्पाणेण-आत्मा से। सपहावइ-जाता है। धुवा-निश्चित। संखडी-है। तत्थ-वहा-सखडि वाले ग्राम मे। इयरेयरेहिं-इतर-इतर-सखडि रहित। कुलेहिं-कुलो से। सामुदाणिय-सामुदानिक बहुत से घरो का। एसियं-एषणीय-आधाकर्मादि दोषो से रहित। वेसियं-साधु के वेष द्वारा प्राप्त किया गया। पिंडवायं-पिण्डपात-आहार को। पडिग्गाहित्ता-लेकर। आहार आहारित्तए- आहार करने-भक्षण करने के लिए। नो संचाएति-शक्ति सम्पन्न नहीं होगा अत । माइट्ठाणं-मातृस्थान का। संफासे-स्पर्श होता है। नो एवं करिज्जा- अत वह ऐसा न करे किन्तु। से- वह भिक्षु। तत्थ-उस सखडि वाले ग्राम मे। कालेण-भिक्षा के समय। अणुपविसित्ता-प्रवेश करके। तत्थियरेयरेहिं-सखडि वाले-घर से इतर। कुलेहिं-कुलो-घरो से। सामुदाणिय-सामुदानिक। एसियं -निर्दोष। वेसिय-केवल साधु वेष से प्राप्त हुआ। पिडवाय-पिण्डपात आहार को। पडिग्गाहित्ता-ग्रहण करके। आहार-उस आहार को। आहारिज्जा-भक्षण करे खाए, परन्तु सखडि मे जाने का उद्योग न करे।

मूलार्थ—जो साधु वा साध्वी किसी अन्य स्थान पर संखडि को सुन कर तथा मन मे निश्चय कर उत्सुक आत्मा से वहा जाता है, संखडि का निश्चय कर संखडि वाले ग्राम मे या सखडि से भिन्न, जिन घरो में संखडि नहीं है आधाकर्मादि दोषों से रहित भिक्षा प्राप्त होती है। उनमे इस भावना से आहार को जाता है कि मुझे वहां भिक्षा करते देख कर संखडि वाला व्यक्ति मुझे आहार की विनती करेगा ऐसा करने से मातृस्थान-कपट का स्पर्श होता है। अत साधु इस प्रकार का कार्य न करे। वह भिक्षु संखडि-युक्त ग्राम में प्रवेश कर के भी सखडि वाले घर मे आहार को न जाए, परन्तु अन्य घरों में सामुदानिक भिक्षा जो कि आधाकर्मादि दोषों से रहित है, ग्रहण करके अपने संयम का परिपालन करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को सखडि मे जाने के लिए छल-

कपट का सहारा भी नहीं लेना चाहिए। जैसे– किसी मुनि को यह मालूम हुआ कि अमुक स्थान पर सखडि है, उस समय वह भिक्षु सखडि मे जाने की अभिलाषा से उस ओर आहार को जाता है। वह अपने मन मे सोचता है कि जब मैं उस ओर के घरो मे गोचरी करूगा तो सखडि वाले मुझे देखकर आहार की विनती करेगे और इस तरह मुझे सरस आहार प्राप्त होगा। इस भावना से भी साधु को सखडि मे नहीं जाना चाहिए। इस तरह छल–कपट करने से दूसरा एव तीसरा महाव्रत भग हो जाता है और मन मे सरस आहार की अभिलाषा बनी रहने के कारण वह अन्य घरो से निर्दोष एव एषणीय आहार भी ग्रहण नही कर सकेगा। अत भिक्षु को आहार के बहाने सखडि की ओर नही जाना चाहिए। परन्तु, सखडि को छोडकर अन्य घगे से निर्दोष एव एषणीय आहार ग्रहण करते हुए सयम साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे '**सामुदाणिय, एसिय, वेसिय**' इन तीन पदो का प्रयोग किया है। सामुदानिक गोचरी का अर्थ है -छोटे–बडे या गरीब–अमीर के भेद को छोडकर अनिन्दनीय कुलो से निर्दोष आहार को ग्रहण करना। एषणीय का अर्थ है–आधाकर्म आदि १६ दोषो से रहित आहार ग्रहण करना और वौषिक का अर्थ– धात्री आदि १६ दोषो से रहित आहार स्वीकार करे। वैषिक शब्द वेसिय[१], व्येषित और वेष का भी बोधक है।

सखडि के विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संखडी सिया तंपि य गामं वा जाव रायहाणिं वा संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए। केवली बूया आयाणमेयं, आइन्नाऽवमा णं संखडिं अणुपविस्समाणस्स पाएण वा पाए अक्कंतपुव्वे भवइ, हत्थेण वा हत्थे संचालियपुव्वे भवइ, पाएण वा पाए आवडियपुव्वे भवइ, सीसेण वा सीसे संघट्टियपुव्वे भवइ, काएण वा काए संखोभियपुव्वे भवइ, दंडेण वा अट्ठीण वा मुट्ठीण वा लेलुणा वा कवालेण वा अभिहयपुव्वे वा भवइ, सीओदएण वा उस्सित्तपुव्वे भवइ, रयसा वा परिघासियपुव्वे भवइ, अणेसणिज्जे वा परिभुत्तपुव्वे भवइ, अन्नेसिं वा दिज्जमाणे पडिग्गहियपुव्वे भवइ, तम्हा से संजए नियंठे तहप्पगारं आइन्नावमाणं संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥१७॥

छाया– स भिक्षुर्वा तद् यत् पुनः जानीयात् ग्रामे वा यावत् राजधान्यामस्मिन् खलु ग्रामे वा यावद् राजधान्यां वा सखडिः स्यात् तमपि च ग्रामे वा यावद् राजधान्यां वा संखडिं

१ ''वेसिय' त्रि॰ (वैषिक) वेष–बाह्य लिग मात्र थी प्राप्त थयेलु। 'वेसिय' त्रि (व्येषित) विशेष एषणा थी शुद्ध करी लीधेज।

सखडिप्रतिज्ञया न अभिसन्धारयेत् गमनाय, केवली ब्रूयात्-आदानमेतत् आकीर्णावमा वा संखडिमनुप्रविशतः पादेन वा पादः आक्रान्तपूर्वो भवेत्, हस्तेन वा हस्तः, सचालित पूर्वो भवति, पात्रेण वा पात्रं आपतितपूर्वं भवति, शिरसा वा शिरः संघटितपूर्वं भवति, कायेन वा काय. संक्षोभितपूर्वो भवति, दण्डेन वा अस्थ्ना वा मुष्टिना वा लोष्ठेन वा कपालेन वा अभिहतपूर्वो वा भवति, शीतोदकेन वा उत्सिक्तपूर्वो भवति, रजसा वा परिघर्षितपूर्वो भवति, अनेषणीयेन वा परिभुक्तपूर्वो भवति, अन्यस्मै वा दीयमानं प्रतिग्राहितपूर्वो भवति, तस्मात् स सयतः निर्ग्रन्थः तथाप्रकारमाकीर्णामवमां सखडि संखडिप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय।

पदार्थ— **से**-वह। **भिक्खू वा**-भिक्षु-साधु अथवा साध्वी। **से जं पुण**-जो फिर। **जाणिज्जा**-जाने। **गाम वा**-ग्राम में। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **खलु**-निश्चय ही। **इमंसि**-इस। **गामंसि**-ग्राम मे। **जाव**-यावत्। **रायहाणिंसि वा**-राजधानी मे। **संखडी सिया**-सखडि है। **तपि य**-उस। **गाम वा**-ग्राम मे। **जाव**-यावत्। **रायहाणिं वा**-राजधानी मे। **संखडिं**-सखडि को। **संखडिपडियाए**-सखडि की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-उस ओर जाने का। **नो अभिसधारिज्जा**-सकल्प न करे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है कि। **आयाणमेय**-यह सखडिगमन कर्म के आने का मार्ग है। **आइन्ना**-परिव्राजकादि से आकीर्ण। **अवमा**-और जिसमे थोड़े व्यक्तियो के लिए भोजन बनाया गया हो तथा भिखारी अधिक हो ऐसी हीन। **सखडिं**-सखडि मे। **अणुपविस्समाणस्स**-प्रवेश करते समय। **पाएण वा पाए**-परस्पर पैर से पैर। **अक्कतपुव्वे**-प्रथम आक्रान्त। **भवइ**-होता है। **हत्थेण वा हत्थे**-हाथ से हाथ का। **सचालियपुव्वे भवइ**-सचालन होता है। **पाएण वा पाए**-पात्र से पात्र का। **आवडियपुव्वे भवइ**-सघर्षण होता है। **सीसेण वा सीसे**-शिर से शिर का। **सघट्टिय-पुव्वे भवइ**-सघटन होता है। **काएण वा काए**-शरीर से शरीर का। **सखोभियपुव्वे भवइ**-सक्षोभ होता है फिर शरीर के पारस्परिक सघटन से कलह उत्पन्न होने की सभावना है जिस से वे चरकादि भिक्षुगण आपस मे। **दंडेण वा**-दण्ड से। **अट्ठीण वा**-अस्थि से। **मुट्ठीण वा**-मुष्टी से। **लेलुणा वा**-पत्थर से। **कवालेण वा**-मिट्ठी के ढेलो से लड़ेगे। **अभिहयपुव्वे भवइ**-इससे एक दूसरा अभिहत होगा—एक दूसरे को अभिघात पहुचेगा अथवा। **सीओदएण वा**-शीतोदक से-शीतल जल से। **उस्सित्तपुव्वे भवइ**-एक दूसरे को सींचेगा, तथा। **रयसा वा**-रज से-मिट्टी से। **परिघट्टीसियपुव्वे भवइ**- परिघर्षित करेगो ये सब दोष उस सखडि मे जाने से उत्पन्न हो सकते हैं जिस मे स्थान कम हो और जन सख्या अधिक हो। अब आगे हीन सखडि में जाने से उत्पन्न होने वाले दोषो का उल्लेख करते है।

अणेसणिज्जे वा-अनेषणीय आहार। **परिभुत्तपुव्वे भवइ**-भोगने वाला होगा। **अन्नेसिं वा दिज्जमाणे** -अन्य के लिए देने को उत्सुक दाता से। **पडिग्गाहियपुव्वे भवइ**-मध्य मे ही कोई ग्रहण कर लेगा। **तम्हा**-इस लिए। **से**-वह। **संजए**-सयत। **नियंठे**-निर्ग्रन्थ। **तहप्पगारं**-उक्त प्रकार की। **आइन्नावमाणं**-आकीर्ण और अवम हीन। **सखडिं**-संखडि में। **संखडिपडियाए**-सखडि की प्रतिज्ञा से। **गमणाए**-जाने के लिए। **नो अभिसंधारिज्जा**-विचार न करे।

मूलार्थ—साधु व साध्वी यह जान ले कि ग्राम में या राजधानी में तथा, निश्चय रूप से

जान ले कि इस ग्राम या इस राजधानी में संखडि है, तो वह उस ग्राम या राजधानी मे होने वाली संखडि मे संखडि की प्रतिज्ञा से जाने का विचार न करे। क्योंकि भगवान कहते है की यह अशुभ कर्म के आने का मार्ग है, ऐसी हीन सखडि मे जाने से निम्न लिखित दोषो के उत्पन्न होने की सभावना रहती है। यथा– जहा थोड़े लोगो के लिए भोजन बनाया हो और परिव्राजक तथा चरकादि भिखारी गण अधिक आ गए हो तो उस मे प्रवेश करते हुए, पैर से पैर पर आक्रमण होगा, हाथ से हाथ का सचालन होगा, पात्र से पात्र का सघर्षण होगा, एव सिर से सिर और शरीर से शरीर का संघटन होगा, ऐसा होने पर दण्ड से या मुट्ठी से या पत्थर आदि से एक-दूसरे पर प्रहार का होना भी सम्भव है। इसके अतिरिक्त, वे एक दूसरे पर सचित्त जल या सचित्त मिट्टी आदि फैक सकते है। और वहां याचको की अधिकता के कारण साधु को अनैषणीय आहार का भी उपयोग करना होगा तथा अन्य को दिए जाने वाले आहार को मध्य मे ही ग्रहण करना होगा। इस तरह उस मे जाने से अनेक दोष उत्पन्न होते है। इसलिए सयमशील निर्ग्रन्थ उक्त प्रकार की अर्थात् परिव्राजकादि से आकीर्ण तथा हीन सखडि मे सखडि की प्रतिज्ञा से जाने का विचार न करे।

हिन्दी विवेचन– सखडि के प्रकरण को समाप्त करते हुए प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि सखडि मे जाने से पारस्परिक सघर्ष भी हो सकता है। क्योकि सखडि मे विभिन्न मत एव पन्थो के भिक्षु एकत्रित होते हैं। अत॰ अधिक भीड मे जाने से परस्पर एक-दूसरे के पैर से पैर कुचला जाएगा इसी तरह परस्पर हाथो, शरीर एव मस्तक का स्पर्श भी होगा आर एक-दूसरे से पहले भिक्षा प्राप्त करने के लिए धक्का-मुक्की भी हो सकती है। और भिक्षु या मागने वाले अधिक हो जाए और आहार कम हो जाए तो उसे पाने के लिए परस्पर वाक् युद्ध एव मुष्टि तथा दण्ड आदि का प्रहार भी हो सकता है। इस तरह सखडि सयम की घातक है। क्योकि वहा आहार शुद्ध नहीं मिलता, श्रद्धा मे विपरीतता आने की सभावना है, सरस आहार अधिक खाने से सक्रामक रोग भी हो सकता है और सघर्ष एव कलह उत्पन्न होने की सभावना है। इसलिए साधु को यह ज्ञात हो जाए कि अमुक गाव या नगर आदि मे सखडि है तो उसे उस ओर आहार आदि को नहीं जाना चाहिए।

सखडि दो तरह की होती है– १-आकीर्ण और २-अवम। परिव्राजक, चरक आदि भिक्षुओ से व्याप्त सखडि को आकीर्ण और जिसमे भोजन थोडा बना हो और भिक्षु अधिक आ गए हो तो अवम सखडि कहलाती है[१]।

मूलम्– से भिक्खू वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा ४ एसणिज्जे सिया अणेसणिज्जे सिया वितिगिंछसमावन्नेण अप्पाणेण असमाहडाए लेसाए तहप्पगारं असणं वा ४ लाभे संते नो पडिग्गाहिज्जा ॥१८॥

छाया– स भिक्षुर्वा यावत् (गृहपतिकुलं प्रविष्टः) सन् पुनर्जानीयात्– अशनं वा ४ एषणीय स्यात् अनेषणीयं स्यात्, विचिकित्सासमापन्नेनात्मना असमाहृतया-अशुद्ध्या लेश्यया

१ आचारांग सूत्र, २, १, ३, १७ वृत्ति।

तथाप्रकारमशनं वा ४ लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु वा साध्वी। **जाव समाणे**-यावत् गृह मे प्रवेश करता हुआ। **से ज पुण**-फिर यह। **जाणिज्जा**-जाने। **असण वा**-अशनादि चतुर्विध आहार। **एसणिज्जे सिया**-क्या एषणीय है अथवा। **अणेसणिज्जे सिया**-अनेषणीय है। **वितिगिच्छसमावन्नेण**-इस प्रकार की विचिकित्सा-आशका युक्त। **अप्पाणेण**-आत्मा से। **असमाहडाए लेसाए**-यह आहार अशुद्ध है इस प्रकार की लेश्या से। **तहप्पगार**-उक्त प्रकार का। **असण वा ४** -अशनादिक चतुर्विध आहार। **लाभे सते**- मिलने पर भी। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे गया हुआ साधु वा साध्वी अशनादि चतुर्विध आहार को जाने कि यह आहार एषणीय है या अनेषणीय? यदि इस प्रकार की विचिकित्सा-आशका या लेश्या उत्पन्न होने पर कि यह आहार अशुद्ध है वह उस आहार को मिलने पर भी ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु गृहस्थ के घर मे आहार आदि के लिए प्रवेश करते ही देखे कि मुझे दिया जाने वाला आहार एषणीय है या नही। यदि उसे उस आहार की निर्दोषता मे सन्देह हो तो उसे वह आहार नही लेना चाहिए। क्योकि उस आहार के प्रति मन मे सदोषता का सशय उत्पन्न होने पर उस सशय के दूर हुए बिना वह उस आहार को ग्रहण कर लेता है तो वह सकल्प विकल्प मे उलझ जाता है और उसके उस मानसिक चिन्तन का प्रभाव साधना पर पडता है। इस तरह उसकी आध्यात्मिक साधना का प्रवाह कुछ देर के लिए रुक जाता है या दूषित सा हो जाता है। अत. साधु को आहार के सदोष होने की शका हो जाने पर उसे उस आहार को ग्रहण ही नहीं करना चाहिए।

अब गच्छ से बाहर रहे हुए जिनकल्पी आदि मुनियो को आहार आदि के लिए कैसे जाना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भिक्खू० गाहावइकुलं पविसिउकामे सव्वं भण्डगमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा।

से भिक्खू वा २ बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खममाणे वा पविसमाणे वा सव्वं भंडगमायाए बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा।

से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे सव्वं भंडगमायाए गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ॥१९ ॥

छाया– स भिक्षुः गृहपतिकुल प्रवेष्टुकामः सर्वं भण्डकमादाय गृहपतिकुल पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा, स भिक्षुर्वा० २ बहि- विहारभूमिं वा विचारभूमिं वा निष्क्रमन् वा प्रविशन् वा सर्वं भंडकमादाय बहि· विहारभूमिं वा विचारभूमिं वा निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा। स भिक्षुर्वा २ ग्रामानुग्रामं गच्छन् सर्वभण्डकमादाय ग्रामानुग्रामं गच्छेद्।

पदार्थ·— **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **गाहावइकुल**-गृहपति के कुल मे। **पविसिउ-कामे**-प्रवेश करने की इच्छा करता हुआ। **सव्व भडगमायाए**-अपने सर्व धर्मोपकरणो को लेकर। **गाहावइ-कुलं**-गृहपति के कुल मे। **पिडवायपडियाए**-पिडपात की प्रतिज्ञा से। **पविसिज्ज वा**-प्रवेश करे अथवा। **निक्खमिज्ज वा**-निकले।

से भिक्खू वा २- वह साधु अथवा साध्वी। **बहिया**-बाहर। **विहारभूमिं वा**-मलोत्सर्ग-भूमि मे। **वियारभूमि वा**-स्वाध्याय भूमि मे। **निक्खममाणे वा**-निकलता हुआ अथवा। **पविसमाणे वा**-प्रवेश करता हुआ। **सव्व**-सब। **भडगमायाए**-धर्मोपकरण को साथ लेकर। **बहिया**-बाहिर। **विहारभूमि वा**-विहार-मलोत्सर्ग करने की भूमि मे। **वियारभूमि वा**- स्वाध्याय भूमि मे। **निक्खमिज्ज वा**-निकले अथवा। **पविसिज्ज वा**-प्रवेश करे।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे। **दूइज्जमाणे**-जाता हुआ। **सव्व**-सब। **भण्डगमायाए**-धर्मोपकरणो को साथ लेकर। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे। **दूइज्जिज्जा**-गमन करे-जावे।

_मूलार्थ_—जो साधु वा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने की इच्छा रखते है वे सब धर्मोपकरण साथ लेकर पिडपात प्रतिज्ञा से गृहपति कुल मे प्रवेश करे या निकले।

जो साधु वा साध्वी बाहर मलोत्सर्ग भूमि मे, या स्वाध्याय भूमि मे जाना चाहते है वे भी अपने सब भडोपकरण को साथ लेकर बाहर विहार भूमि मे या स्वाध्याय भूमि मे प्रवेश करे।

ग्रामानुग्राम- एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे विचरते समय साधु वा साध्वी अपने सब धर्मोपकरणो को साथ लेकर एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जिनकल्पी या प्रतिमाधारी साधु को आहार के लिए या शौच एव स्वाध्याय आदि के लिए अपने ठहरे हुए स्थान से बाहर जाते समय अपने सभी उपकरण साथ ले जाने चाहिए। जब कि सूत्र मे जिनकल्पी या स्थविरकल्पी का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु, उपकरण ले जाने के कारणो से यह ज्ञात होता है कि यह प्रसग जिनकल्पी आदि के लिए ही हो सकता है। जिनकल्पी एव विशिष्ट प्रतिमाधारी मुनि गच्छ से अलग अकेला रहता है। अत उसके बाहर जाने के बाद यदि वर्षा हो जाए तो उसके उपकरण भीग सकते हैं या कभी कोई व्यक्ति उन्हे उठाकर ले जा सकता है। स्थविरकल्पी साधु कम से कम दो साधु रहते हैं, अत एक-दूसरे को सावधान करके अपने स्थान से बाहर जा सकता है, अत उसके लिए ऐसा प्रसग आ नहीं सकता।

दूसरे मे जिनकल्पी मुनि के पास अधिक उपकरण नहीं होते। सामान्य रूप से रजोहरण और मुख वस्त्रिका ही होती है और यदि वह लज्जा पर विजय पाने मे समर्थ नहीं है तो एक छोटा-सा चोलपट्टक (धोती के स्थान मे लपेटने का वस्त्र) रख सकता है, जिसका उपयोग गाव या शहर मे आहार आदि को जाते समय करता है और ये उपकरण तो सदा साथ रहते ही हैं। परन्तु, इसके अतिरिक्त कुछ जिनकल्पी मुनि शीत सहन करने मे असमर्थ हो तो वे एक ऊन का और अधिक आवश्यकता पडने

पर एक सूत का वस्त्र भी रख सकते हैं। इस तरह ५ उपकरण हो गए और यदि किसी जिनकल्पी मुनि के हाथो की अजली (जिन कल्पी मुनि हाथ की अजली बनाकर उसी मे आहार करते हैं) मे छिद्र पडते हो तो उससे सब्जी, दूध, पानी आदि के टपक पडने से अयतना न हो इस लिए वे एक पात्र रखते हैं और पात्र के साथ उन्हे सात उपकरण रखने होते हैं। इस तरह जिनकल्पी मुनि के जघन्य २ और उत्कृष्ट १२ उपकरण कहे गए हैं[१]। परन्तु स्थविरकल्पी मुनि के पास इससे अधिक उपकरण होते हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे १४ उपकरण गिनाए गए हैं[२]। निशीथ सूत्र मे दण्ड, लाठी, अवलेहमी, बास का खपाट[३] और सूत की रस्सी एव चिल्मिलिका (मच्छरदानी) रखने का उल्लेख है[४]। व्यवहार सूत्र मे पात्र रखने का उल्लेख है और स्थविरकल्पी के छत्र आदि उपकरणो का उल्लेख भी किया गया है[५]। बृहत्कल्प सूत्र मे साध्वी को मूत्र त्याग के लिए एक पात्र रखने की विशेष आज्ञा दी गई है[६]। आचाराङ्ग सूत्र मे आर्या (साध्वी) के लिए ४ चादर रखने का विधान है[७]। बृहत्कल्प सूत्र मे साध्वी को साडी के भीतर चोलपट्टक (जाघिया) रखने की आज्ञा भी दी गई है[८]। इस तरह स्थविरकल्पी के पास १४ से भी अधिक उपकरण होते हैं, अत उन्हे बाहर आहार आदि को जाते समय सदा साथ ले जाना कठिन है। परन्तु, जिनकल्पी के पास थोडे उपकरण होने के कारण वह उन्हे अपने साथ ले जा सकता है। इस अपेक्षा से यहा जिन कल्पी का प्रसग ही उचित प्रतीत होता है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि गच्छ के अन्दर एव गच्छ के बाहर रहा हुआ साधु अपने स्थान से बाहर जाते समय देखे कि वर्षा आ तो नहीं रही है। यदि वर्षा हो रही हो तो जिनकल्पी मुनि को किसी भी हालत मे बाहर नही जाना चाहिए। क्योकि वह ६ महीने तक पुरीष (टट्टी-पेशाब) को रोकने मे समर्थ है। परन्तु, स्थविरकल्पी मुनि मल-मूत्र की बाधा होने पर उसका त्याग करने के लिए जा सकता है। परन्तु ऐसे समय मे वह सभी उपकरण साथ लेकर न जाए[९]।

---

१ पात्र पात्रबन्ध पात्रस्थापन च पात्रकेसरिका।
पटलानि रजस्त्राण च गोच्छक पात्रनिर्योग ।आचाराग वृत्ति।

२ जपि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायके बहुप्पगारमि समुप्पन्ने, वायाहिय पित्तसिभिअइरित्तकुविय, तह सण्णिवाय जातेव उदयपत्ते उज्जलबलविउलकक्खड पगाढ दुक्खे, असुभकडुयफरुसचडफलविवागो महब्भयजीवियतकरणे, सव्वसरीरपरितावणकरणे न कप्पइ– तारिसेवि तह अप्पणो परस्स व ओसहभेसज्ज, भत्तपाण च तपि सण्णिहिं कय।१। जपिय–समणस्स सुविहियस्स तओ पडिग्गहधारिस्स भवइ, भायणभण्डोवहिउवगरण पडिग्गहो, पायबधण पायकेसरिया, पायट्ठवणं च पडलाइं, तिण्णि व रयत्ताण च, गोच्छओ तिण्णि व पच्छाका रयहरण चोलपट्टगमुहणतगमादिय। -प्रश्न व्याकरण सूत्र ५ वा सवरद्वार।

३ निशीथ सूत्र १, ४१।

४ निशीथ सूत्र १, १५।

५ व्यवहार सूत्र, उद्देशक २।

६ कप्पइ निग्गथीण अतोलित्तय घडिमित्तय धारेत्तए वा परिहरित्तए वा। – बृहत्कल्प सूत्र, १, १, ६।

७ आचाराग सूत्र, २, ४, २, स्थानाग सूत्र- स्थान ४।

८ कप्पइ निगाथीण ओग्गहणतग वा ओग्गहणपट्टग वा धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।
–बृहत्कल्प सूत्र ३, १२।

९ आचाराग सूत्र वृत्ति।

परन्तु , वृत्तिकार का यह कथन विचारणीय है क्योकि आगम मे लिखा है कि प्रतिमाधारी मुनि को मल-मूत्र की बाधा हो तो उसे रोकना नही चाहिए। परन्तु, पहले प्रतिलेखन की हुई (देखी हुई) भूमि पर उसका त्याग करके यथाविधि अपने स्थान पर आकर स्थित हो जाना चाहिए[१]। इसी तरह मोक प्रतिमाधारी मुनि के लिए भी बताया गया है कि यदि उसे रात्रि को मूत्र की बाधा हो जाए तो यह उसे रोक कर न रखे[२]। ज्ञाता सूत्र मे भी उल्लेख मिलता है कि जिस समय मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त करके पादपोपगमन सथरा किया था, उस समय उन्होने सब से पहले मल-मूत्र के त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन किया था[३]। साधु समाचारी मे भी यह बताया गया है कि मुनि दिन के चतुर्थ भाग मे मल- मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन करे[४]। यदि कोई मुनि उस का प्रतिलेखन नहीं करता है तो उसके लिए प्रायश्चित (दड) का विधान है[५]।

इन आगम प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि किसी भी समय मे मल-मूत्र के त्याग करने का निषेध नहीं है। क्योकि इसके रोकने से अनेक बीमारिया हो सकती है और उनके कारण होने वाली अयतना एव सकल्प-विकल्प उस समय रात के ओस एव वर्षा आदि की अयतना से भी अधिक अहितकर हो सकते है। अत वर्षा आदि के प्रसग पर भी मुनि विवेक एव यतना पूर्वक मल-मूत्र का त्याग करने जा सकता है।

यह प्रश्न हो सकता है कि जिनकल्पी मुनि होते हैं, पर उन मे साध्वी नही होती और प्रस्तुत सूत्र मे साधु साध्वी दोनो शब्दो का उल्लेख है। इसका समाधान यह है कि यह उल्लेख समुच्चय रूप से हुआ है। पिछले सूत्रो मे साधु- साध्वी का उल्लेख होने के कारण इस सूत्र मे भी उसे दोहरा दिया गया है। परन्तु, यहाँ प्रसगानुसार साधु का ही ग्रहण करना चाहिए। वृत्तिकार ने भी इस पाठ को जिनकल्पी मुनि से सबन्धित बताया है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत सूत्र मे जिनकल्पी साधु का प्रसग ही युक्तिसगत प्रतीत होता है।

कुछ कारणो से साधु को अपने भडोपकरण लेकर आहार आदि को नही जाना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू॰ अह पुण एवं जाणिज्जा-तिव्वदेसियं वासं वासेमाणं पेहाए, तिव्वदेसियं महियं संनिचयमाणं पेहाए, महावाएण वा रयं समुद्धुयं

---

१ उच्चार-पासवणेण उब्बाहिज्जा नो से कप्पति उगिणिहत्तए वा, कप्पति से पुव्व-पडिलेहिए थडिले उच्चार पासवण परिठवित्तए, तम्मेव उवस्सय आगम्म अहाविहि ठाण ठवित्तए।

– दशाश्रुतस्कध, दशा ७।

२ व्यवहार सूत्र उदेशक १।

३ ज्ञाता धर्मकथाङ्ग, अध्याय १।

४ उत्तराध्ययन सूत्र, अ॰ २६।

५ निशीथ सूत्र, उ॰ ४।

पेहाए तिरिच्छसंपाइमा वा तसा पाणा संथडा संनिचयमाणा पेहाए से एवं नच्चा नो सव्वं भंडगमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा, बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ॥२०॥

छाया– स भिक्षुरथ पुनरेवं जानीयात्, तीव्रदेशिकां वर्षां वर्षन्तीं प्रेक्ष्य, तीव्रदेशिकां महिकां संनिपतन्तीं प्रेक्ष्य, महावातेन वा रजः समुद्धुत प्रेक्ष्य, तिरश्चीनं संनिपतितो वा त्रसप्राणिनः संस्कृतान् [सस्तृतान्] संनिपतन्त. प्रेक्ष्य, स एवं ज्ञात्वा न सर्वं भंडकमादाय गृहपतिकुलं पिंडपातप्रतिज्ञया प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा, बहि· विहारभूमिं वा विचारभूमि वा निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू**-साधु या साध्वी। **अह**-अथवा। **पुण**-फिर। **एव** -इस प्रकार से। **जाणिज्जा**-जाने। **तिव्वदेसिय**-वृहद् द्वारोपेत बहुत विस्तृत क्षेत्र। **वास**-वर्षा। **वासेमाणं**-बरसती हुई। **पेहाए**-देखकर। **तिव्वदेसिय**-बड़े देश मे अन्धकार रूप। **महिय**-धुन्ध। **सनिचयमाण**-पड़ती हुई। **पेहाए**-देखकर। **वा**-अथवा। **महावायेण**- महावायु से। **रय**-रज-धूली। **समुद्धुय**-उड़ती हुई। **पेहाए**-देखकर। **वा**-अथवा। **तिरिच्छसपाइमा**-तिर्यग्। **तसा पाणा**-त्रसप्राणियो के। **सथडा**-समुदाय को। **सनिचयमाणा**-उड़ते एव गिरते हुए। **पेहाए**-देखकर। **से**-वह भिक्षु। **एव**-इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **सव्व**-सब। **भंडगमायाए**-धर्मोपकरण को ले कर। **गाहावइकुलं**-गृहपतिकुल में। **पिडवायपडियाए**-पिण्डपात प्रतिज्ञा से-आहार लेने की प्रतिज्ञा से। **नो पविसिज्ज वा**-प्रवेश न करे। **निक्खमिज्ज वा**-और न वहा से निकले। **बहिया**-बाहर। **विहारभूमि वा**-विहार भूमि मे अथवा। **वियारभूमि वा**-विचार भूमि मे। **निक्खमिज्ज वा**-न निकले या। **पविसिज्ज वा**-न प्रवेश करे अर्थात् वह भडोपकरण लेकर न जाए और न आए तथा। **गामाणुगामं**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। **दूइज्जिज्जा**-नहीं जाए।

_मूलार्थ_—बृहद् देश में वर्षा बरसती हुई देखकर, तथा बृहद् देश में अन्धकार रूप धुध पड़ती हुई देखकर, अथवा महावायु से रज उड़ती हुई देख कर या बहुत से त्रस प्राणियो को उड़ते व गिरते हुए देखकर तथा इस प्रकार जानकर साधु वा साध्वी सब धर्मोपकरण को साथ ले कर आहार की प्रतिज्ञा से गृहपति के कुल मे न तो प्रवेश करे और न वहा से निकले। इसी प्रकार बाहर विहार भूमि या विचार भूमि मे भी प्रवेश या निष्क्रमण न करे तथा एक गांव से दूसरे गाव को विहार भी न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि देश व्यापी वर्षा बरस रही हो, धुध पड रही हो, आधी के कारण धूल पड रही हो, पतगे आदि त्रस जीव पर्याप्त सख्या मे उड एव गिर रहे हो, ऐसी अवस्था मे सभी भण्डोपकरण लेकर साधु को आहार के लिए या शौच एव स्वाध्याय के लिए अपने स्थान से बाहर नही जाना चाहिए। और ऐसे प्रसग पर एक गाव से दूसरे गाव को विहार भी नहीं करना

चाहिए। क्योंकि ऐसे प्रसग पर यदि साधु गमनागमन करेगा तो अप्कायिक जीवो की एव अन्य प्राणियो की हिसा होगी। अत उनकी रक्षा के लिए साधु को वर्षा आदि के समय पर अपने स्थान पर ही स्थित रहना चाहिए।

यह प्रश्न हो सकता है कि यदि सूत्रकार को मल-मूत्र के त्याग का निषेध करना इष्ट नहीं था, तो उसने आहार एव स्वाध्याय भूमि के साथ उसे क्यो जोडा? इसका समाधान यह है कि यह सलग्न सूत्र है, जैसा विधि रूप मे इसका उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार सामान्य रूप से निषेध के समय भी उल्लेख कर दिया गया है। ऐसा और भी कई स्थलो पर होता है। भगवती सूत्र मे एक जगह जीव को गुरु-लघु कहा है[1] और दूसरी जगह अगुरुलघु कहा है[2]। फिर भी दोनो पाठो मे कोई विरोध नही है। क्योकि औदारिक आदि शरीर की अपेक्षा से जीव को गुरु-लघु कहा है, क्योकि जीव उन औदारिक आदि शारीरिक पर्यायो के साथ सल्ग्र है और अगुरुलघु आत्म स्वरूप की अपेक्षा से कहा गया है। अत यहा पर भी मल-मूत्र का पाठ आहार एव स्वाध्याय भूमि के साथ सलग्न होने के कारण उसके साथ उसका भी उल्लेख किया गया हे। परन्तु इससे जिनकल्पी मुनि के लिए वर्षा आदि के समय मल-मूत्र त्याग का निषेध नही किया गया है।

कुछ ऐसे कुल भी हैं, जिनमे साधु को भिक्षा के लिए नही जाना चाहिए। उन कुलो का निर्देश करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा २ से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा, तंजहा- खत्तियाण वा राईण वा कुराईण वा रायपेसियाण वा रायवंसट्ठियाण वा अन्तो वा बाहिं वा गच्छंताण वा संनिविट्ठाण वा निमंतेमाणाण वा अनिमंतेमाणाण वा असणं वा ४ लाभे संते नो पडिग्गाहिज्जा त्तिबेमि॥२१॥

छाया- स भिक्षुर्वा २ अथ यानि पुन. कुलानि जानीयात् तद्यथा- क्षत्रियाणां वा राज्ञा वा कुराज्ञा वा राजप्रेष्याणा वा राजवशस्थितानां वा अन्तर्बहिर्वा गच्छता वा सनिविष्ठानां वा निमत्रयता अनिमन्त्रयता वा अशनं वा ४ लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ - से-वह। **भिक्खू वा २**-साधु वा साध्वी। **पुण**-फिर। **से**-वह। **जाइ**-इन। **कुलाइ**-कुलो को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि-। **खत्तियाण वा**- क्षत्रियो के कुल। **राईण वा**-राजाओ के कुल। **कुराईण वा**-कुराजाओ के कुल। **रायपेसियाण वा**-राज प्रेष्यो के कुल। **रायवंसट्ठियाण वा**-राजवश मे स्थित कुलो के। **अन्तो वा बाहिं वा**-अन्दर या बाहर अर्थात् घर के अन्दर अथवा बाहर स्थित। **गच्छंताण वा**-जाते हुए अथवा। **सनिविट्ठाण वा**-बैठे हुए। **निमतेमाणाण वा**-निमन्त्रण करते हुए। **अनिमन्तेमाणाण वा**-

१ भगवती सूत्र, श० २३, उ १।
२ भगवती सूत्र, श० उ० ९।

न निमन्त्रण करते हुए। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **लाभे सते**-प्राप्त होने पर। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

***मूलार्थ*—साधु वा साध्वी इन कुलो को जाने, यथा चक्रवर्ती आदि क्षत्रियों के कुल, उन से भिन्न अन्य राजाओं के कुल, एक देशवासी राजाओ के कुल, दण्डपाशिक प्रभृति के कुल, राजा के सम्बन्धियो के कुल और इन कुलो से घर के बाहर या भीतर जाते हुए, खड़े या बैठे हुए, निमंत्रण किए जाने अथवा न किए जाने पर वहा से प्राप्त होने वाले चतुर्विध आहार को साधु ग्रहण न करे। ऐसा मै कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन-

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मुनि को चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि क्षत्रिय कुलो का तथा उनसे भिन्न राजाओ के कुल का, एक देश के राजाओ के कुल का, राजप्रेष्य-दण्ड-पाशिक आदि के कुल का और राजवशस्थ कुलो का आहार नहीं लेना चाहिए। उक्त कुलो का आहार उनके द्वारा निमन्त्रण करने पर या बिना निमन्त्रण किए तथा उनके घर से बाहर या घर मे किसी भी तरह एव कहीं भी ग्रहण नही करना चाहिए।

इस निषेध का कारण है कि राजभवन एव राजमहल आदि मे लोगो का आवागमन अधिक होने से साधु भली-भाति ईर्यासमिति का पालन नहीं कर सकता। इस कारण सयम की विराधना होती है। इसलिए साधु को उक्त कुलो मे आहार आदि के लिए प्रवेश नहीं करना चाहिए। यह कथन भी सापेक्ष ही समझना चाहिए। क्योकि प्रस्तुत अध्ययन के द्वितीय उद्देशक मे जिन १२ कुलो का निर्देश किया है उनमे उग्र कुल, भोग कुल, राजन्य कुल, इक्ष्वाकु, हरिवश आदि कुलो से आहार लेने का स्पष्ट वर्णन है। भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम अतिमुक्त कुमार के अगुली पकडने पर उसके साथ उसके घर पर भिक्षार्थ गए थे। इससे स्पष्ट होता है कि यदि इन कुलो मे जाने पर सयम मे किसी तरह का दोष न लगता हो तो इन घरो से निर्दोष आहार लेने मे कोई दोष नहीं है। यहा पर निषेध केवल इसलिए किया गया है कि यदि राजघरो मे अधिक चहल-पहल आदि हो तो उस समय ईर्यासमिति का भली-भाँति पालन नहीं किया जा सकेगा, इस सबन्ध मे वृत्तिकार का भी यही अभिमत है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
चतुर्थ उद्देशक

तृतीय उद्देशक मे सखडि एव कुलो का निर्देश किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक मे सखडि विषय मे जो कुछ बाते शेष रह गई हैं, उनके सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा मंसाइयं वा मच्छाइयं वा मंसखलं वा मच्छखलं वा आहेणं वा पहेणं वा हिंगोलं वा संमेलं वा हीरमाणं पेहाए अन्तरा से मग्गा बहुपाणा बहुबीया बहुहरिया बहुओसा बहुउदया बहुउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणया बहवे तत्थ समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगा उवागया उवागमिस्संति (उवागच्छंति) तत्थाइन्ना वित्ती नो पन्नस्स निक्खमणपवेसाए नो पन्नस्स वायणपुच्छणपरि-यट्टणाऽणुप्पेह-धम्माणुओगचिंताए, से एवं नच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए। से भिक्खू॰ वा से जं पुण जाणिज्जा मंसाइयं वा मच्छाइयं वा, जाव हीरमाणं वा पेहाए अन्तरा से मग्गा अप्प पाणा जाव संताणगा नो जत्थ बहवे समण॰ जाव उवागमिस्संति अप्पाइन्ना वित्ती पन्नस्स निक्खमणपवेसाए पन्नस्सवायणपुच्छणपरियट्टणाणुप्पेह-धम्माणुओगचिंताए, सेवं नच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा॰ अभिसंधारिज्ज गमणाए॥२२॥

छाया– स भिक्षुर्वा यावत्- (गृहपतिकुलं प्रविष्ट) सन् तद् यत् पुनः जानीयात् मांसादिकं वा मत्स्यादिक वा मत्स्यखल वा मांसखल वा आहेणं वा प्रेक्षं वा हिंगोलं वा संमेलं वा ह्रियमाण वा प्रेक्ष्य अन्तरा तस्य मार्गा. बहवः प्राणाः बहुबीजाः बहुहरिता बह्ववश्याया बहूदका बहूत्तिगपनकोदकमृत्तिकामर्कटसन्तानका , बहवस्तत्र श्रमणब्राह्मणातिथिकृपणवणीमका उपागता उपागमिष्यन्ति तत्राकीर्णा वृत्ति. न प्राज्ञस्य निष्क्रमणप्रवेशाय न प्राज्ञस्य वाचनाप्रच्छनापरिवर्तनाऽनुप्रेक्षाधर्मानुयोगचिन्तायै स एवं ज्ञात्वा तथा प्रकारा पुर. संखडि वा

पश्चात् संखडि वा संखडिं संखडिप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय। स भिक्षुर्वा तत् यद् पुन· जानीयात् मांसादिकं वा मत्स्यादिक वा यावत् ह्रियमाणं वा प्रेक्ष्य अन्तरा· तस्य मार्गा अल्पप्राणा:यावत् सन्तानका: न यत्र बहव: श्रमण यावत् उपागमिष्यन्ति अल्पाकीर्णा वृत्ति प्राज्ञस्य निष्क्रमणप्रवेशाय प्राज्ञस्य वाचनाप्रच्छनापरिवर्तनाऽनुप्रेक्षाधर्मानुयोगचिन्तायै, स एव ज्ञात्वा तथा प्रकारां पुर: संखडिं वा॰ अभिसन्धारयेद् गमनाय।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु वा साध्वी। जाव-यावत्। समाणे-गृहस्थ के घर मे प्रवेश करते हुए। से ज पुण-फिर आहारादि को। जाणेज्जा-जाने। मसाइय वा-जिसमे मास प्रधान है। मच्छाइय वा-जिसमे मत्स्य प्रधान है। मंसखलं वा- जिसमे शुष्क मास का समूह है। मच्छखल वा-जिसमे मत्स्यो का समूह अथवा। आहेण वा-जो भोजन वधू प्रवेश के अनन्तर बनाया जाता है, अथवा। पहेण वा-वधू के जाने पर उनके पिता के घर मे जो भोजन तैयार होता है, या। हिंगोलं वा- मृतक के निमित्त जो भोजन बनता है, अथवा यक्षादि की यात्रा के निमित्त बनाया गया है। समेल वा-या जो भोजन परिजन के सम्मानार्थ बनता है, तथा मित्रो के निमित्त बनाया गया है। हीरमाण-उक्त स्थानो से भोजन ले जाते हुए को। पेहाए-देखकर भिक्षु को उक्त स्थानो मे भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहा जाने पर निम्नलिखित दोषो के उत्पन्न होने की सभावना है। से-उस भिक्षु को। अतरामग्गा-मार्ग के मध्य मे। बहुपाणा-बहुत प्राणी। बहुबीया-बहुत बीज। बहुहरिया-बहुत हरी। बहुओसा-बहुत ओस। बहुउदया-बहुत पानी। बहुउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणया-बहुत सूक्ष्म जीव निगोद वा पाच वर्ण फूल, जल से आर्द्र मृत्तिका और मकड़ी का जाला आदि की विराधना की सभावना है और। तत्थ– उस भोजन के स्थान पर। बहवे-बहुत से। समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगा-श्रमण-शाक्यादि भिक्षुगण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और याचक। उवागया-आए हुए हैं अथवा। उवागच्छंति-आ रहे हैं अथवा-। उवागमिस्सति-आएगे। तत्थाइन्ना-वहा पर आकीर्ण। वित्ती-वृत्ति है अर्थात् वहा सकीर्ण वृत्ति हो रही है अत । पन्नस्स-प्रज्ञावान-बुद्धिमान् साधु को। नो निक्खमणपवेसाए-वहा पर निष्क्रमण और प्रवेश नहीं करना चाहिए, तथा। पन्नस्स-बुद्धिमान साधु को वहा उस सखडि मे। नो वायणपुच्छण-परियट्टणाणुप्पेह-धम्माणुओगचिताए-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोगचिन्ता नहीं हो सकती, कारण कि वहा गायन, वादन आदि की अधिकता रहती है, अत । से-वह। एव-इस प्रकार। नच्चा-जानकर। तहप्पगार-उक्त प्रकार की। पुरेसंखडि वा-पूर्व सखडि में या। पच्छा सखडि वा-पश्चात् सखडि मे। सखडि-सखडि को। संखडिपडियाए-सखडि की प्रतिज्ञा से। गमणाए-गमन करने के लिए। नो अभिसधारिज्जा-मन मे सकल्प न करे। अब इस सूत्र के आपवादिक विषय मे कहते है यथा-। से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। से जं पुण जाणिज्जा-यदि फिर ऐसे जाने कि। मसाइयं वा-जिस भोजन मे मास प्रधान है तथा। मच्छाइयं वा-मत्स्य प्रधान है। जाव-यावत्। हीरमाणं वा-ले जाते हुए को। पेहाए-देखकर। से-उस भिक्षु को। अन्तरामग्गा-मार्ग के मध्य मे। अप्पपाणा-प्राणी नहीं है। जाव-यावत्। सताणगा-मकड़ी का जाला भी नहीं है। जत्थ-जहा पर। बहवे-बहुत से। समणा॰- श्रमण-शाक्यादि भिक्षु गण। जाव-यावत्। नो उवागमिस्सति-नहीं आयेगे और। अप्पाइन्ना-अल्पाकीर्ण। वित्ती-वृत्ति है अत । पन्नस्स-प्रज्ञावान बुद्धिमान् साधु को। निक्खमणपवेसाए-

निष्क्रमण और प्रवेश की सुगमता है तथा। पन्नस्स-बुद्धिमान् साधु को वहा। **वायणपुच्छणपरिय-ट्टणाणुप्पेहधम्माणुओगचिंताए**- वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोगचिन्ता मे कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता है। **सेव**-वह इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **तहप्पगार**-उक्त प्रकार की। **पुरे सखडि वा**-पूर्व सखडि मे या पश्चात् सखडि मे। **गमणाए**-गमन करने के लिए **अभिसधारिज्जा**-सकल्प धारण करे।

_मूलार्थ_—गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए प्रवेश करते हुए साधु व साध्वी आहार को इस प्रकार जाने कि जो आहार मास प्रधान, मत्स्य प्रधान है अथवा शुष्क मास, शुष्क मत्स्य सम्बन्धी, तथा नूतनवधु के घर मे प्रवेश करने के अवसर पर बनाया जाता है, तथा पितृगृह मे वधु के पुन प्रवेश करने पर बनाया जाता है, या मृतक सम्बन्धी भोजन मे अथवा यक्षादि की यात्रा के निमित्त बनाया गया है एवं परिजनो या मित्रो के निमित्त तैयार किया गया है ऐसी संखडियों से भोजन लाते हुए भिक्षुओ को देखकर सयमशील मुनि को वहा भिक्षार्थ नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहा जाने से अनेक जीवो की विराधना होने की सभावना रहती है यथा— मार्ग मे बहुत से प्राणी, बहुत से बीज, बहुत सी हरी, बहुत से ओसकण, बहुत मा पानी, बहुत से कीडो के भवन निगोद आदि के जीव तथा पाच वर्ण के फूल, मर्कट मकड़ी का जाला आदि के होने से उनकी विराधना होगी। एव वहा पर बहुत से शाक्यादि भिक्षु, तथा ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदि आए हुए है, आ रहे है तथा आएंगे तब वहा पर आकीर्ण वृत्ति अर्थात् जनसमूह एकत्रित हो रहा है। अत प्रज्ञावान् भिक्षु को निकलने और प्रवेश करने के लिए विचार न करना चाहिए। क्योकि बुद्धिमान भिक्षु को वहा पर वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिन्ता की प्रवृत्ति का समय प्राप्त नहीं हो सकेगा, इस लिए साधु को वहाँ पर जाने का विचार नहीं करना चाहिए अपितु वह साधु या साध्वी यदि इस प्रकार जाने कि मास प्रधान अथच मत्स्य प्रधान सखडि मे यावत् उक्त प्रकार की सखडि मे से आहार ले जाते हुए भिक्षु आदि को देखकर, तथा उस साधु को मार्ग मे यदि प्राणी की विराधना की आशका न हो और वहां पर बहुत से शाक्यादि भिक्षुगण भी नहीं आएगे, एव अल्प आकीर्णता को देखकर प्रज्ञावान्-बुद्धिमान साधु वहा प्रवेश और निष्क्रमण कर सकता है, तथा साधु को वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोगचिन्ता मे भी कोई विघ्न उपस्थित नही होगा, ऐसा जान लेने पर पूर्व या पश्चात् संखडि मे साधु जा सकता है।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे सखडियो के अन्य भेदो का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि सामिप एव निरामिष दोनो तरह की सखडि होती थी, कोई व्यक्ति मास प्रधान या मत्स्य प्रधान सखडि बनाता था, उसे मास और मत्स्य सखडि कहते थे। कोई पुत्र वधु के घर आने पर सखडि बनाता था, कोई पुत्री के विवाह पर सखडि बनाता था और कोई किसी की मृत्यु के पश्चात् सखडि बनाता था। इस तरह उम युग मे होने वाली विभिन्न सखडियो का प्रस्तुत सूत्र मे वर्णन किया गया है और बताया गया है कि उक्त सखडियो के विषय मे ज्ञात होने पर मुनि को उसमे भिक्षार्थ नहीं जाना चाहिए।

इसका कारण पूर्व सूत्र मे स्पष्ट कर दिया गया है। प्रथम तो आहार मे दोष लगने की सम्भावना है, दूसरे मे अन्य भिक्षुओं का अधिक आवागमन होने से उनके मन मे द्वेष भाव उत्पन्न होने की तथा

अन्य जीवो की विराधना होने की सम्भावना है और तीसरे मे वाचना, पृच्छना आदि स्वाध्याय के पाचो अगों मे अन्तराय पडने की सम्भावना है। क्योकि वहा गीत आदि होने से स्वाध्याय नहीं हो सकेगा। इस तरह सखडि मे जाने के कारण अनेक दोषो का सेवन होता है, ऐसा जानकर उसका निषेध किया गया है।

इसके अतिरिक्त आगम मे सखडि मे जाने का निषेध किया है[1]। प्रस्तुत अध्ययन के द्वितीय उद्देशक मे भी सखडि मे जाने का निषेध किया गया है। परन्तु, प्रस्तुत सूत्र मे निषेध के साथ अपवाद मार्ग मे विधान भी किया गया है। यदि सखडि मे जाने का मार्ग जीव-जन्तुओ एव हरितकाय या बीजो से आवृत्त नहीं है, अन्य मत के भिक्षु भी वहा नही हैं और आहार भी निर्दोष एव एषणीय है तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। परन्तु, वृत्तिकार का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र अवस्था विशेष के लिए है। उसमे बताया गया है कि यदि साधु थका हुआ है अर्थात् लम्बा विहार करके आया है, बीमारी से तुरन्त ही उठा है या तपश्चर्या से जिसका शरीर कृश हो गया है, वह भिक्षु इस बात को जान ले कि सखडि मे जाने से किसी दोष के लगने की सम्भावना नही है, तो वह वहा से भिक्षा ले सकता है[2]।

इससे स्पष्ट होता है कि उत्सर्ग मार्ग मे सामिष एव निरामिष किसी भी तरह की सखडि मे जाने का विधान नही है। अपवाद मार्ग मे भी उस सखडि मे जाने एव आहार ग्रहण करने का आदेश दिया गया है, जिसमे जाने का मार्ग निर्दोष हो और निर्दोष एव एषणीय निरामिष आहार मिल सकता हो, अन्य सखडि मे जहा का मार्ग जीव जन्तु आदि से युक्त हो, जहा सामिष भोजन बना हो तथा निरामिष भोजन भी सदोष हो या अन्य मत के भिक्षु भिक्षार्थ आए हो तो वहा अपवाद मार्ग मे भी जाने का आदेश नहीं है।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब साधु अपवाद मार्ग मे सखडि मे जा सकता है, तो सामिष सखडि मे बना हुआ मास क्यो नहीं ग्रहण कर सकता?

इसका समाधान यह है कि यहा अपवाद कारण विशेष से है अथवा साधु की शारीरिक स्थिति के कारण है, परन्तु वहा बने हुए सभी तरह के आहार को लेने के लिए नहीं हैं। यदि सखडि मे जाने का मार्ग ठीक नही है और आहार भी सामिष है या निरामिष आहार भी सदोष है तो शारीरिक दुर्बलता के समय भी साधु को वहा जाने का आदेश नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे यह भी बताया गया है कि सखडि मे जाने से स्वाध्याय के पाचो अगो मे व्यवधान पडता है। स्वाध्याय चलते हुए करने का निषेध है, वह तो एक स्थान पर बैठकर ही किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सखडि मे जाने पर कुछ देर के लिए वहा बैठना भी पडता था। अत अपवाद मार्ग मे जाने वाला साधु वहा कुछ काल के लिए ठहर भी सकता है और बीमार एव तपस्वी आदि के लिए समय पर गृहस्थ के घर मे बैठने का विधान भी है। अस्तु, सखडि मे जाने का यह अपवाद विशेष कारण होने पर ही रखा गया है।

---

१ उत्तराध्ययन, १, ३२, बृहत्कल्प सूत्र उ० १ निशीथ सूत्र, उ० ३।

२ साम्प्रतमपवादमाह-स भिक्षुरध्वानक्षीणो ग्लानोत्थितस्तपश्चरणकर्षितोवाऽमवौदर्यवा प्रेक्ष्य दुर्लभद्रव्यार्थी वा स यदि पुनरेव जानीयात्। — आचाराग वृत्ति

साधु को घरो मे किस तरह के आहार की गवेषणा करनी चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ जाव पविसिउकामे से जं पुण जाणिज्जा खीरिणियाओ गावीओ खीरिज्जमाणीओ पेहाए असणं वा ४ उवसंखडिज्जमाणं पेहाए पुरा अप्पजूहिए सेवं नच्चा नो गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा। से तमादाय एगंतमवक्कमिज्जा अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा–खीरिणियाओ गावीओ खीरियाओ पेहाए असणं वा ४ उवक्खडियं पेहाए पुराए जूहिए सेवं नच्चा तओ संजयामेव गाहा० निक्खमिज्ज वा० ॥२३॥

छाया– स भिक्षुर्वा यावत् प्रवेष्टुकाम तद् यत् पुन· जानीयात् क्षीरिण्यो गाव. दुह्यमाना दुग्धा· प्रेक्ष्य अशनं वा ४ उपसस्क्रियमाण प्रेक्ष्य पुरा-पूर्वं सिद्धेऽप्योदनादिके स एव ज्ञात्वा न गृहपतिकुल पिण्डपातप्रतिज्ञया निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा। स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् अनापाते असलोके तिष्ठेत्। अथ पुनरेव जानीयात् क्षीरिण्यो गावो दुह्यमाना. प्रेक्ष्य अशन वा ४ उपसस्कृतं प्रेक्ष्य पूर्वे सिद्धे स एव ज्ञात्वा तत. सयत एव गृहपतिकुलं निष्क्रामेद् वा।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा २**-साधु वा साध्वी। **जाव**-यावत् गृहपति के घर मे। **पविसिउ-कामे**-प्रवेश करने की इच्छा रखता हुआ। **से ज पुण जाणिज्जा**-फिर यदि इस प्रकार जाने कि। **खीरिणियाओ गावीओ**-दूध देने वाली गाए। **खीरिज्जमाणीओ**-जो कि दोही जा रही है उनको। **पेहाए**-देखकर तथा। **असणं वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार जो कि वहा पर। **उवसखडिज्जमाण**-बनाया जा रहा है, उसको। **पेहाए**-देखकर। **पुरा अप्पजूहिए**-जिस मे से अभी तक और किसी को दिया नहीं गया। **से**-वह साधु। **एव**-इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **गाहावइकुल**-गृहपति-गृहस्थ के घर मे। **पिण्डवायपडियाए**-आहार लेने की प्रतिज्ञा से। **नो निक्खमिज्ज वा**-न तो उपाश्रय से निकले और न। **पविसिज्ज वा**-किसी के घर मे प्रवेश करे, किन्तु क्या करे अब उसके विषय मे कहते है। **से**-वह भिक्षु। **त**-उस दुग्धादि पदार्थ को। **आवाय**-जानकर। **एगतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान मे चला जाए, एकान्त मे जाकर। **अणावायमसलोए**-जहा पर कोई गृहस्थादि न आता-जाता हो और न देखता हो ऐसे स्थान पर। **चिट्ठिज्जा**-खड़ा हो जाए। **अह पुण एव जाणिज्जा**-और वहा पर ठहरा हुआ यदि ऐसा जाने कि-। **खीरिणियाओ**-दूध देने वाली। **गावीओ**-गौए। **खीरियाओ**-दोही जा चुकी है ऐसा। **पेहाए**-देखकर। **असण वा**-अशनादिक-। **उवक्खडिय**-तैयार हो चुका है ऐसे। **पेहाए**-देखकर-जानकर। **पुराए जूहिए**-तथा उन दुग्धादि मे से दूसरो को दिया जा चुका है। **स**-वह साधु। **एवं**-इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु। **गाहा०**-गृहस्थ के घर मे भिक्षा के निमित्त। **निक्खमिज्ज वा०**-स्वस्थान से निकले और गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे।

मूलार्थ– साधु व साध्वी गृहपति के घर मे प्रवेश करने की इच्छा रखते हुए यदि इस प्रकार जान ले कि गृहस्थ दूध देने वाली गायो का अभी दोहन कर रहे है तथा अशनादिक आहार पकाया जा रहा है- पक रहा है, अभी तक उसमे से किसी दूसरे को नहीं दिया गया, ऐसा जानकर संयमशील भिक्षु आहार ग्रहण करने के लिए उस घर में जाने के लिए न तो उपाश्रय से निकले और न उस घर मे प्रवेश करे। किन्तु वह भिक्षु इस बात को जान कर जहा पर न कोई आता-जाता हो, और न देखता हो, ऐसे एकान्त स्थान मे जाकर ठहर जाए। और जब वह इस प्रकार जान ले कि गायो का दोहन हो गया है और अन्नादि चतुर्विध आहार बन गया है तथा उसमे से दूसरो को दे दिया गया है, तब वह साधु उस घर मे आहार के लिए प्रवेश करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ के घर पर गायो का दूध निकाला जा रहा है और अशन आदि चारो प्रकार का आहार पक रहा है और उस आहार मे से अभी तक किसी को दिया नही है, तो साधु को उस घर मे आहार के लिए नही जाना चाहिए। यदि गायो का दूध निकाल लिया गया है, आहार पक चुका है और उसमे से किसी को दिया जा चुका है, तो साधु उस घर मे आहार के लिए प्रवेश कर सकता है।

इसका कारण यह है कि गाये साधु के वेश को देखकर डर जाए और साधु को मारने दौडे तो उससे साधु के या दोहने के लिए बैठे हुए व्यक्ति के चोट लग सकती है। और दूध निकालते समय साधु को आया हुआ देखकर गृहस्थ यह सोचे कि साधु को भी दूध लेना होगा, अत वह गाय के बछडे के लिए छोडे जाने वाले दूध को गाय के स्तनो मे न छोडकर निकाल लेगा। इससे मुनि के निमित्त बछडे को अन्तराय लगेगी।

आहार पक रहा हो और उस समय साधु पहुँच जाए तो गृहस्थ उसे जल्दी पकाने का यत्न करेगा उससे अग्नि के जीवो की विराधना (हिंसा) होगी। इस तरह कई दोष लगने की सम्भावना होने के कारण साधु को ऐसे समय मे गृहस्थ के घर मे आहार के लिए प्रवेश नही करना चाहिए।

आगम मे लिखा है कि आहार आग पर पक रहा हो और गृहस्थ उसे आग पर से उतार कर दे तो साधु को स्पष्ट कह देना चाहिए कि यह आहार मेरे लिए कल्पनीय नही है[१]। इससे स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत सूत्र मे किया गया निषेध घर मे प्रवेश करने की दृष्टि से नही, किन्तु आग पर स्थित आहार को लेने के लिए है। गाय के दोहन का प्रथम विकल्प घर मे प्रवेश करने सम्बन्धी निषेध को लेकर है और दूसरा विकल्प उस आहार को लेने के निषेध से सम्बन्धित है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि गृहस्थ के घर मे स्थित पशु भयभीत नही होते हो और आहार आदि भी पक चुका हो तो साधु उस घर मे प्रवेश करके आहार ले सकता है। साधु को यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि उसके निमित्त किसी तरह की हिंसा एव अयतना न हो।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है–

---

१ **दशवैकालिक सूत्र** ५, १, ६१-६३।

मूलम्– भिक्खागा नामेगे एवमाहंसु-समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अयं गामे संनिरुद्धाए नो महालए से हंता भयंतारो वाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरियाए वयह, संति तत्थेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासथुया वा परिवसंति तंजहा– गाहावई वा गाहावइणीओ वा गाहावइपुत्ता वा गाहावइधूयाओ वा गाहावइसुण्हाओ वा धाईओ वा दासा वा दासीओ वा कम्मकरा वा कम्मकरीओ वा, तहप्पगाराइं कुलाइं पुरेसंथुयाणि वा पच्छासंथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खायरियाए अणुपविसिस्सामि। अविय इत्थ लभिस्सामि पिंडं वा लोयं वा खीरं वा दहिं वा नवणीयं वा घय वा गुलं वा तिल्लं वा महुं वा मज्जं वा मंसं वा सक्कुलिं वा फाणियं वा पूयं वा, सिहिरिणि वा, तं पुव्वामेव भुच्चा पिच्चा पडिग्गहं च संलिहिय संमज्जिय तओ पच्छा भिक्खूहिं सद्धिं गाहा० पविसिस्सामि वा निक्खमिस्सामि वा माइट्ठाणं संफासे, तं नो एवं करिज्जा। से तत्थ भिक्खूहिं सद्धिं कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिडवायं पडिग्गाहित्ता आहारं आहारिज्जा एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं० ॥२४॥

छाया– भिक्षुका नामैके एवमुक्तवन्त समाना वा वसमाना वा ग्रामानुग्राम दूयमानान् (व्रजत) क्षुल्लक खलु अय ग्राम सनिरुद्ध न महान् अतो हन्त । भवन्त बहिर्ग्रामेषु भिक्षाचर्यार्थं व्रजत । सन्ति तत्रैकस्य भिक्षो पुरा सस्तुता पश्चात् सस्तुता वा परिवसन्ति तद्यथा- गृहपति वा गृहपत्नी वा गृहपतिपुत्रो वा, गृहपतिपुत्री वा गृहपतिस्नुषा वा, धात्री वा दासो वा दासी वा, कर्मकरो वा कर्मकरी वा तथाप्रकाराणि कुलानि, पुरा सस्तुतानि वा पश्चात् सस्तुतानि वा पूर्वमेव भिक्षाचर्यार्थं अनुप्रवेक्ष्यामि, अपिचैतेषु लप्स्यामि पिड वा लोय वा क्षीर वा दधि वा नवनीतं वा घृत वा गुड वा तिल वा मधु वा मद्यं वा मांस वा शष्कुलि वा फाणित वा अपूप वा सिखरिणि वा त पूर्वमेव भुक्त्वा पीत्वा पतद्ग्रह [पात्र] सलिह्य सप्रमृज्य तत पश्चात् भिक्षुभि सह गृहपति० प्रवेक्ष्यामि वा निष्क्रमिष्यामि वा मातृस्थानं सस्पृशेत् तद् न एव कुर्यात्। स तत्र भिक्षुभि सार्द्धकालेन अनुप्रविश्य तत्रेतरेतरेभ्य कुलेभ्य. सामुदानिक एषणीय वैषिक पिडपात प्रतिगृह्य आहार आहारयेत्। एतत् खलु तस्य भिक्षो. भिक्षुक्या वा सामग्र्यम्।

पदार्थ– नाम-सभावना अर्थ मे है। एगे-कई एक। भिक्खागा-भिक्षु-साधु। एवमाहसु-इस

प्रकार से कह गए हैं। **समाणा वा**-जघा आदि का बल क्षीण होने से एक ही क्षेत्र मे स्थिरवास करते हुए रहते है अथवा। **वसमाणा वा**-मास कल्पादि विहार करते हुए। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणा**-विचरते हुए जब उस क्षेत्र में आये तो उनके प्रति स्थिरवास रहने वाले साधु कहते है कि हे भिक्षुओ ! **खलु**-निश्चय ही। **अयं गामे**-यह ग्राम। **खुड्डाए**-छोटा है और। **संनिरुद्धाए**-कितने एक घर सनिरुद्ध है अर्थात् भिक्षार्थ जाने के योग्य नहीं है। **नो महालए**-यह ग्राम बड़ा नहीं है। **से**-वह साधु कहने लगा। **हता**-सामान्य खेद सूचन के अर्थ मे है। **भयतारो**-पूज्य मुनिवरो ! हे आप। **बाहरिगाणि**-बाहर के। **गामाणि**-ग्रामो मे। **भिक्खायरियाए**-भिक्षा के निमित्त। **वयह**-जाओ। **तत्थेगइयस्स**-उस ग्राम मे रहने वाले कई एक। **भिक्खुस्स**-भिक्षु के। **सति**-है। **पुरेसथुया**-भाई-भतीजे आदि सगे सम्बन्धी अथवा। **पच्छासथुया वा**-श्वसुर कुल के सम्बन्धी लोग। **परिवसंति**-बसते है। **तजहा**-जैसे कि। **गाहावई वा**-गृहपति अथवा। **गाहावइणीओ वा**-गृहपत्नी अथवा। **गाहावइपुत्ता वा**-गृहपति के पुत्र अथवा। **गाहावइधूयाओ वा**-गृहपति की पुत्रिये अथवा। **गाहावइसुण्हाओ वा**-गृहपति की स्नुषा-पुत्र वधुये अथवा। **धाईओ वा**- धाय माताये अर्थात् दूध पिलाने वाली माताये अथवा। **दासा वा**-दास अथवा। **दासीओ वा**-दासिये अथवा। **कम्मकरा वा**-काम करने वाले अथवा। **कम्मकरीओ वा**-काम करने वाली। **तहप्पगाराइ**-तथा प्रकार क। **कुलाइ**-कुल जो कि। **पुरेसथुयाणि वा**-पूर्व परिचय वाले अथवा। **पच्छासथुयाणि वा**-पश्चात् परिचय वाले। **सति**-है। **पुव्वामेव**-उन कुलो मे पहले ही। **भिक्खायरियाए**-भिक्षा के लिए। **अणुपविसिस्सामि**-मै प्रवेश करूगा। **अविय**-अथवा। **इत्थ**-इन कुलो मे। **लभिस्सामि**-इच्छानुकूल प्राप्त करूगा। **पिड वा**-शाल्यादि पिण्ड। **लोयं वा**-अथवा लवण रस युक्त आहार। **खीर वा**-अथवा दूध। **दहिं वा**-अथवा दधि-दही। **नवणीय वा**-नवनीत मक्खन अथवा। **घय वा**-घृत। **गुल वा**-अथवा गुड़। **तिल्ल वा**-तेल। **महु वा**-मधु। **मज्ज वा**-अथवा मद्य। **मस वा**-मास। **सक्कुलि वा**-अथवा जलेबी जैसी मिठाई अथवा। **फाणिय वा**-जल से मिश्रित गुड़ अथवा। **पूय वा**-अपूप-पूडा आदि। **सिहिरिणि वा**-शिखरणी इस नाम से प्रसिद्ध मिठाई। **त पुव्वामेव**-उस आहार को प्रथम ही लाकर। **भुच्चा**-खाकर। **पिच्चा**-पीकर। **च**-और। **पडिग्गह**-पात्र को। **सलिहिय**-निर्लेप कर तथा। **सपमज्जिय**-समार्जित कर। **तओ**-तदनन्तर। **पच्छा**-पश्चात्। **भिक्खूहिं**-भिक्षुओ के। **सद्धि**-साथ। **गाहा॰**-गृहपतियो के कुलो मे भिक्षा के लिए। **पविसिम्स्सामि वा**-प्रवेश करूगा अथवा। **निक्खमिस्सामि वा**-निकलूगा। **माइट्ठाण सफासे**-यदि उक्त प्रकार से करे तो उसे मातृस्थान छल-कपट का स्पर्श होगा। **त**-अत साधु। **एव**-इस प्रकार **नो**-न। **करिज्जा**-करे। **से**-वह-भिक्षु। **तत्थ**-उस ग्रामादिक मे। **भिक्खूहिं**-भिक्षुओ के। **सद्धि**-साथ अर्थात् अतिथि आदि के साथ। **कालेण**-भिक्षा के समय मे। **अणुपविसित्ता**-गृहपति कुलो मे प्रवेश करके। **तत्थियरेयरेहिं**-वहा उच्चावच। **कुलेहिं**-कुलो से। **सामुदाणिय**-भिक्षा पिड। **एसिय** उद्गमादि-दोष रहित। **वेसिय**-साधु के वेष से प्राप्त। **पिडवाय**-पिडपात-आहारादि को। **पडिग्गाहित्ता**-अतिथि साधुओ के साथ ग्रहण करके। **आहारं आहारिज्जा**-आहार को भक्षण करे। **एयं**-यह। **खलु**-निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स वा**-भिक्षु-साधु अथवा। **भिक्खुणीए वा**-साध्वी का। **सामग्गियं**-सामग्र्य-भिक्षु भाव है अर्थात् यह उसका सपूर्ण आचार है।

मूलार्थ— कई एक भिक्षु जंघादि के बल रहित होने से अर्थात् विहार मे असमर्थ होने से

एक क्षेत्र मे स्थिरवास रहते हैं। जब कभी उनके पास ग्रामानुग्राम विचरते हुए अतिथि रूप से अन्य साधु आ जाते है तब स्थिरवास रहने वाले भिक्षु उन्हे कहते है– पूज्य मुनिवरो ! यह ग्राम बहुत छोटा है, उसमे भी कुछ घर सन्निरुद्ध-बन्द पड़े हुए है। अत आप भिक्षा के निमित्त किसी दूसरे ग्राम मे पधारे ? यदि इस ग्राम मे स्थिरवास रहने वाले किसी एक मुनि के माता-पिता आदि कुटुम्बी जन या श्वसुर कुल के लोग रहते है या-गृहपति, गृहपत्निये, गृहपति के पुत्र, गृहपति की पुत्रिये, गृहपति की पुत्र-वधुये, धायमाताये दास और दासी तथा कर्मकार और कर्मकारिये, तथा अन्य कई प्रकार के कुलो मे जो कि पूर्व परिचय वाले, या पश्चात् परिचय वाले है, उन कुलो में इन आगन्तुक-अतिथि साधुओ से पहले ही मै भिक्षा के लिए प्रवेश करूँगा और इन कुलों से मै इष्ट वस्तु प्राप्त करूगा यथा शाल्यादिपिड, लवण रस युक्त आहार, दूध, दही, नवनीत, घृत, गुड, तेल, मधु, मद्य, मास शष्कुली (जलेबी आदि) जलमिश्रितगुड, अपूप-पूडे और शिखरणी (मिठाई विशेष) आदि आहार को लाऊगा और उसे खा पीकर, पात्रो को साफ और समार्जित कर लूगा। उसके पश्चात् आगन्तुक भिक्षुओ के साथ गृहपति आदि कुलो मे प्रवेश करूगा और निकलूगा, इस प्रकार का व्यवहार करने से मातृस्थान-छल-कपट का सेवन होता है। अत साधु को इस प्रकार नही करना चाहिए। उस भिक्षु को भिक्षा के समय उन भिक्षुओ के साथ ही उच्च-नीच और मध्यम कुलो से साधु मर्यादा से प्राप्त होने वाले निर्दोष आहार पिड को लेकर उन अतिथि मुनियो के साथ ही उसे निर्दोष आहार करना चाहिए यही सयम शील साधु-साध्वी का निर्दोष आचार है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे स्थिरवास रहने वाले मुनियो के पास आए हुए अतिथि मुनियो के साथ उन्हे कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका निर्देश किया गया है। कोई साधु हृदय की सकीर्णता के कारण आए हुए अतिथि मुनियो को देखकर सोचे कि यदि यह भी इसी गाव मे से भिक्षा लाएगे तो मेरे को प्राप्त होन वाले सरस आहार मे कमी पड जाएगी। अत इस भावना से वह आगन्तुक मुनियो से यह कहे कि इस गाव मे थोडे से घर है, उसमे भी कई घर बन्द पडे हैं, इसलिए इतने साधुओ का आहार इस गाव मे मिलना कठिन है। अत आप दूसरे गाव से आहार ले आए। या वह उन्हे दूसरे गाव जाने को तो नहीं कहे, परन्तु उनक साथ गोचरी (आहार लाने) को जाने से पूर्व ही अपने माता-पिता या श्वसुर आदि कुलो से या परिचित कुलो से सरस स्वादिष्ट एव इच्छानुकूल पदार्थ लाकर खा लेना और उसके बाद उनके साथ अन्य साधारण घरो से भिक्षा लाकर खाना, माया एव छल- कपट का सेवन करना है। अत साधु को आगन्तुक मुनियो के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसा व्यवहार साधुता के अनुकूल तो क्या, इन्सानियत के अनुकूल भी नही है, इसलिए सूत्रकार ने इस तरह का व्यवहार करने का निषेध किया है। साधु का कर्त्तव्य है कि वह नवागन्तुक मुनियो के साथ अभेद वृत्ति रखे, उनके साथ आहार को जाए और जैसा आहार उपलब्ध हो उसे प्रेम एव स्नेह से उनके साथ बैठकर करे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**समाणा-वसमाणा**' का अर्थ है- जो साधु चलने फिरने मे या विहार करने मे असमर्थ होने के कारण किसी एक क्षेत्र मे स्थिरवास रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त खाद्य पदार्थो के नाम उस समय मे घरो मे खाए जाने वाले पदार्थो को सूचित करते है। इससे उस समय की खाद्य व्यवस्था का पता लगता है। प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित खाद्य पदार्थो मे मद्य मास का भी

उल्लेख किया गया है, तो क्या मुनि इन पदार्थों को ग्रहण कर सकता है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

इसका समाधान यह है कि ये दोनो पदार्थ अभक्ष्य होने के कारण सर्वथा अग्राह्य हैं। आगम मे इसका स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है[१]। इससे स्पष्ट है कि ये दोनो पदार्थ साधु के लिए सर्वथा अभक्ष्य हैं। और सभव है कि प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त उभय शब्द अन्य अर्थ के ससूचक हो[२]।

उपाध्याय पार्श्व चन्द्र जी की मान्यता है कि साधु को मद्य, मास, मक्खन और मधु लेना नहीं कल्पता। इन शब्दो का प्रयोग केवल सूत्र छेद के समय से हुआ है। इससे गद्य छन्द की प्रामाणिकता सिद्ध होती है[३]।

वृत्तिकार का अभिमत है कि मद्य-मास की व्याख्या छेद सूत्र के अनुसार समझनी चाहिए। कोई अत्यधिक प्रमादी साधु अतिगृद्धि एव स्वाद आसक्ति के कारण इनका सेवन न करे। इसके लिए इसका उल्लेख किया गया है। परन्तु विवेकनिष्ठ साधु के लिए मद्य-मास सर्वथा अग्राह्य है[४]।

प्रस्तुत सूत्र पर व्याख्या करते हुए उपाध्याय पार्श्व चन्द्र ने मद्य, मास, मक्खन एव मधु चारो को तथा वृत्तिकार आचार्य शीलाक ने मक्खन को छोडकर शेष तीनो को अभक्ष्य बताया है। आगम मे मद्य मास को अभक्ष्य कहा गया है[५]। परन्तु मक्खन एव मधु को सर्वथा अभक्ष्य नहीं कहा है और आगम मे लिखा है कि प्रथम प्रहर मे लाए हुए नवनीत (मक्खन) का किसी रोग के कारण चतुर्थ प्रहर मे भी अगोपागो पर विलेपन करना कल्पता है[६]। इससे मक्खन की ग्राह्यता शास्त्र सम्मत सिद्ध होती है। इसी तरह मधु के विषय मे भी आगम मे बताया है कि एक बार भगवान महावीर ने मधु (शहद) मिश्रित खीर (दूध) से पारणा किया था।

इससे स्पष्ट होता है कि मद्य एव मास साधु के लिए सर्वथा अभक्ष्य है। मक्खन एव शहद के लिए ऐसी बात नहीं है। निष्कर्ष यह निकला कि साधु को अतिथि रूप से आए हुए साधु के साथ छल-कपट एव भेद-भाव का बर्ताव नहीं रखना चाहिए। निष्कपट भाव से उसका आदर-सत्कार करना चाहिए।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ प्रश्न व्याकरण सूत्र, प्रथम सवर द्वार, सूत्र कृताङ्ग सूत्र, श्रुत॰ २, अ॰ २।

२ इस विषय पर १० वें उद्देशक में विस्तार से विचार करेगे।

३ इहा श्री सूत्र माहिं माखन, मधु, मद्य, मास शब्द बखाण्या ते स्या भणी साधु तईंए वस्तु अयोग्य छे। तिहा इय कहबो इहा सूत्र छेदना मय मणी आण्या, पर साधु ने ए वस्तु न ल्यइ अथवा इहा जे उचिन्तवई तेह थकी साधु पण उ टल्यु जाणिया छे। -उपाध्याय पार्श्व चन्द्र।

४ मद्य मासे छेदसूत्राभिप्रायेण व्याख्यायेये अथवा कश्चिदति प्रमादावष्टबन्धोऽत्यन्तगृध्नु तया मधु, मद्य मासान्यव्याश्रयेदतस्तदुपादानम्। -आचाराङ्ग सूत्र वृत्ति।

५ प्रश्नव्याकरण सूत्र, सूत्रकृताग सूत्र।

६ नो कप्पइ निग्गथाणं वा निग्गंथीणं वा परियासिएण तेल्लेण वा, घएण वा, नवणीएण वा, वसाए वा, गायाइ अब्भगेत्तए वा मक्खेत्तए वा नानत्थ आगाढेहिं रोगायकेहिं।

भगवती सूत्र, शतक १५। -बृहत्कल्प सूत्र, उद्देशक ५।

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा

पञ्चम उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक मे आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक मे भी इसी का और विस्तृत विवेचन करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा- अग्गपिंडं उक्खिप्पमाणं पेहाए, अग्गपिंडं निक्खिप्पमाणं पेहाए, अग्गपिंडं हीरमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभाइज्जमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभुंजमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिठविज्जमाणं पेहाए पुरा असिणाइ वा अवहाराइ वा पुरा जत्थऽण्णे समण॰ वणीमगा खद्धं २ उवसंकमंति से हंता अहमवि खद्धं २ उवसंकमामि, माइट्ठाणं संफासे नो एवं करेज्जा ॥२५॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ यावत् प्रविष्ट सन् तद् यत् पुनरेव जानीयात्-अग्रपिड उत्क्षिप्यमाण प्रेक्ष्य, अग्रपिड निक्षिप्यमाण प्रेक्ष्य, अग्रपिड ह्रियमाण प्रेक्ष्य, अग्रपिण्ड परिभज्यमान प्रेक्ष्य, अग्रपिण्ड परिभुज्यमान प्रेक्ष्य, अग्रपिण्ड परित्यज्यमान प्रेक्ष्य, पुरा अशितवन्तो वा अपहृतवन्तो वा पुरा यत्रान्ये श्रमण वणीमका त्वरित २ उपसक्रामन्ति स हत ! अहमपि त्वरित २ उपसक्रमामि, मातृस्थान सस्पृशेन्न एव कुर्यात्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा**-साधु और साध्वी। जाव-यावत्। **पविट्ठे समाणे**- गृहपति कुल मे प्रवेश करते हुए। से-वह। ज-जो **पुण**-फिर। जाणिज्जा-आहारादि को जाने। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **उक्खिप्पमाण**-थोड़ा-थोड़ा निकालते हुए को। **पेहाए**-देखकर। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **निक्खिप्पमाण**-अन्य स्थान मे रखते हुए को। **पेहाए**-देखकर। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **हीरमाणं**-किसी स्थान पर ले जाते हुए को। **पेहाए**-देखकर। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **परिभाइज्जमाणं**-बाटते हुए को। **पेहाए**-देखकर तथा। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **परिभुजमाण**-खाते हुए को। **पेहाए**-देखकर। **अग्गपिड**-अग्रपिड को। **परिट्ठविज्जमाण**-परिष्ठापन करते फैकते हुए को। **पेहाए**-देखकर। **पुरा असिणाइ वा**-पहले श्रमणादि खाकर चले गये अथवा। **अवहाराइ वा**-पहले श्रमणादि, अग्रपिड को लेकर चले गए। **जत्थऽण्णे**-जहा पर अन्य। **समण**-श्रमण आदि। **वणीमगा**-और भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले याचक लोग। **खद्ध २**-शीघ्र २। **उवसकमंति**-अग्रपिड लेने

को जाते हैं। **हता**-यह अव्यय वाक्य उपन्यास के लिए है। **से**-वह भिक्षु विचार करता है। **अहमवि**-मै भी। **खद्ध २**-शीघ्र-जल्दी २। **उवसंकमामि**-जाता हूँ। **माइट्ठाणं सफासे**-यदि इस प्रकार विचार करे तो वह मातृस्थान का स्पर्श करता है अर्थात् माया-कपट को आश्रित करता है अत उसको। **एवं**-इस प्रकार। **नो करेज्जा**-नहीं करना चाहिए।

मूलार्थ—**वह साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करते हुए आहार आदि के विषय मे इस प्रकार जाने कि अग्रपिड को निकालते हुए को देखकर, अग्रपिड को किसी अन्य स्थान पर रखते हुए को देखकर, अग्रपिड को कहीं ले जाते हुए को देखकर, अग्रपिड को बाटते हुए को देखकर, अग्रपिड को खाते हुए को देखकर, अग्रपिड को इधर-उधर फैकते हुए को देखकर तथा पहले श्रमणादि खा गए है, और अग्रपिड को लेकर चले गए है या याचक लोग अग्रपिंड को प्राप्त करने के लिए शीघ्र २ पग उठा रहे है। उन्हे देखकर यदि साधु भी उसे प्राप्त करने के लिए शीघ्र २ कदम उठाने का विचार करता है तो वह मातृ स्थान का सेवन करता है। अत साधु को ऐसा विचार भी नहीं करना चाहिए।**

हिन्दी विवेचन–

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ अग्रपिण्ड[१] को देव स्थान पर ले जा रहा हो, या अन्य मत के भिक्षु उस पिण्ड को खा रहे हो, खा चुके हो या खाने जा रहे हो तो जैन मुनि को उस स्थान पर उसे ग्रहण करने के लिए जाने का सकल्प नहीं करना चाहिए। क्योकि वह अग्रपिण्ड जिस देव या भिक्षु आदि के निमित्त से निकाला गया है, उसे यदि साधु ग्रहण करले तो उसे अन्यमत के भिक्षु के निमित्त अन्तराय लगती है, इसलिए मुनि को ऐसा आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। परन्तु उसे गृहस्थ के अपने एव परिवार के लिए बने हुए निर्दोष आहार मे से समस्त दोषो को टालते हुए थोडा-थोडा आहार ग्रहण करना चाहिए। जैसे भ्रमर एक ही फूल से रस न लेकर अनेक पुष्पो से थोडा-थोडा रस लेकर अपने आप को भी तृप्त करता है और फूल के सौंदर्य को भी नहीं बिगाडता, उसी तरह मुनि भी प्रत्येक घर से उतना ही आहार ग्रहण करे जिससे पीछे परिवार को न तो भूखे रहना पडे और न फिर से आरम्भ करके भोजन तैयार करना पडे।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि उस युग मे भोजन बनाने के बाद उसमे से देव आदि के निमित्त अग्रपिण्ड निकालने की परम्परा थी और वह अग्रपिण्ड भी पर्याप्त मात्रा मे होता था, जिसे वे लोग देव स्थान पर ले जाकर प्रसाद के रूप मे बाटते थे। जैसे आजकल अन्य धर्मो मे देव मदिर मे चढाए गए भोग (अन्न आदि) को बाटने का रिवाज है। उस अग्रपिण्ड मे से शाक्यादि भिक्षु भी प्रसाद या आहार रूप मे लेते थे। इसलिए साधु के लिए ऐसा आहार ग्रहण करने का निषेध किया है। इसमे एषणीय एव निर्दोषता की कम सभावना रहती है।

भिक्षा के लिए साधु को कैसे रास्ते से जाना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते

१ भोजन तैयार होने के बाद उसमे से कुछ हिस्सा पहले देवता आदि के लिए निकाला जाता है, उसे अग्रपिड कहते है।

हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० जाव समाणे अंतरा से वप्पाणि वा फलिहाणि वा पागाराणि वा तोरणाणि वा अग्गलाणि वा अग्गलपासगाणि वा सति परक्कमे संजयामेव परिक्कमिज्जा, नो उज्जुयं गच्छिज्जा, केवली बूया- आयाणमेयं, से तत्थ परक्कममाणे पयलिज्ज वा, पक्खलेज्ज वा, पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा पक्खलेज्जमाणे वा पवडमाणे वा, तत्थ से काए उच्चारेण वा पासवणेण वा खेलेण वा सिंघाणेण वा वंतेण वा पित्तेण वा पूएण वा सुक्केण वा सोणिएण वा उवलित्ते सिया, तहप्पगारं कायं नो अणंतरहियाए पुढवीए नो ससिणिद्धाए पुढवीए नो ससरक्खाए पुढवीए नो चित्तमंताए सिलाए नो चित्तमंताए लेलूए कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे जाव ससंताणए नो आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा संलिहिज्ज वा निलिहिज्ज वा उव्वलेज्ज वा उव्वट्टिज्ज वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा, से पुव्वामेव अप्पससरक्खं तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा जाइज्जा, जाइत्ता से तमायाय एगतमवक्कमिज्जा २ अहे झामथंडिलंसि वा जाव अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय २ तओ संजयामेव आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा ॥२६॥

छाया– स भिक्षुर्वा० यावत् (प्रविष्ट.) सन् अन्तराले तस्य वप्रा वा परिखा वा प्राकारा वा तोरणानि वा अर्गला वा अर्गलपाशका वा सति पराक्रमे संयत एव प्राक्रमेन् न ऋजुना गच्छेत् , केवली बूयात् आदानमेतत् स तत्र पराक्रममाणः प्रचलेद् वा प्रस्खलेद् वा प्रपतेद् वा स तत्र पराक्रममाण वा प्रस्खलन् वा प्रपतन् वा तत्र तस्य काय उच्चारेण वा प्रस्त्रवणेन वा श्लेष्मणा वा सिघानकेन वा बान्तेन वा पित्तेन वा पूतेन वा शुक्रेण वा शोणितेन वा उपलिसः स्यात्। तथा प्रकार काय अनन्तर्हितया पृथिव्या न सस्निग्धया पृथिव्या न सरजस्कया पृथिव्या न चित्तवत्या शिलया न चित्तवत्या लेलुना कोलावासे दारुणि जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणिनि यावत् सन्तानकेन आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा सलिखेद् वा उद्वलेद् वा उद्वर्तयेद् वा आतापयेद् वा प्रतपायेद् वा स पूर्वमेव अल्परजस्क तृण वा पत्रं वा काष्ठं वा शर्करं वा याचेत, याचयित्वा स तमादाय एकान्तमपक्रामयित्वा झामस्थडिले वा यावत् अन्यतरे वा तथाप्रकारे प्रतिलिख्य २ प्रमृज्य २ तत सयत एव आमृज्याद् वा यावत् प्रमृज्याद् वा।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु वा साध्वी। जाव-यावत्। समाणे-गृहपति कुल मे प्रविष्ट होने

पर। **अंतरा**-मार्ग के मध्य मे। **से**-उस भिक्षु को जाते हुए निम्न लिखित कारण हों यथा। **वप्पाणि वा**-ऊँची-नीची भूमि हो अथवा बीज बोने के लिए खेत मे क्यारिए बना दी हो। **फलिहाणि वा**-अथवा खाई खोद रखी हो। **पागाराणि वा**- अथवा प्रकोट बना रखा हो। **तोरणाणि वा**-तोरण-द्वार का अवयव विशेष तथा। **अग्गलाणि वा**-अर्गला-किवाड़ बन्द करने के लिए काष्ठ विशेष की बनी हुई एक वस्तु। **अग्गलपासगाणि वा**-जिसमे अर्गल दिया जाता हो वह स्थान। **सति परक्कमे**-अन्य मार्ग के होने पर। **सजयामेव**-सयती-सयमशील साधु। **परिक्कमिज्जा**-उस मार्ग से जाए, किन्तु। **उज्जुय**-सीधा उक्त क्यारी आदि के मार्ग से। **नो गच्छिज्जा**-न जाए। कोई शिष्य प्रश्न करता है कि भगवन् ! ऋजु मार्ग से जाने का क्यो निषेध किया है? इसके उत्तर मे गुरु कहते है-। **केवली**-केवलि भगवान। **बूया**-कहते है कि। **आयाणमेय**-यह मार्ग कर्म आने का है। क्योंकि इससे सयम और आत्मा की विराधना होने की सम्भावना है, सूत्रकार वही दिखाते है। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-खेत आदि के मार्ग से। **परक्कममाणे**-जाता हुआ। **पयलिज्ज वा**- कम्पित हो जाए या प्रस्खलित हो जावे। **पक्खलेज्ज वा**-फिसल जाए। **पवडिज्ज वा**-अथवा गिर पड़े। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-उस मार्ग मे। **पयलमाणे वा**-काम्पता हुआ। **पक्खलेज्जमाणे वा**-अथवा प्रस्खलित होता हुआ अर्थात् फिसलता हुआ। **पवडमाणे वा**-अथवा गिरता हुआ ६ कायो मे से किसी एक की हिंसा करता है अर्थात् उसके फिसलने या गिरने आदि से षट्काय मे से किसी की विराधना होने पर सयम की विराधना होती है। **तत्थ**-उस मार्ग मे। **से**-उस भिक्षु का। **काए**-शरीर (फिसलने या गिरने आदि से)। **उच्चारेण वा**-उच्चार-विष्टा से, अथवा। **पासवणेण वा**-मूत्र से। **खेलेण वा**-मुख के मल श्लेष्मा से। **सिंघाणेण वा**-अथवा नाक के मल से। **वंतेण वा**-वमन से। **पित्तेण वा**-अथवा पित्त से शरीरगत धातु विशेष से। **पूयेण वा**-अथवा पूय से-पीप से अर्थात् राध से। **सुक्केण वा**-अथवा शुक्र-वीर्य से। **सोणिएण वा**-अथवा शोणित रुधिर से। **उवलित्ते सिया**-उपलिप्त हो जावे। **तहप्पगारं काय**-तथा प्रकार से उपलिप्त हुए शरीर को। **नो**-नही। **अणंतरहियाए**-अन्तर रहित। **पुढवीए**-पृथ्वी से अर्थात् सचित्त पृथ्वी से। **नो**-नहीं। **ससिणिद्धाएपुढवीए**-स्निग्ध-आर्द्र पृथ्वी से। **नो**-नहीं। **ससरक्खाए पुढवीए**-सरजस्क पृथ्वी से। **नो चित्तमत्ताए सिलाए**-नहीं सचित्त चेतनायुक्त शिला से। **नो चित्तमत्ताए लेलूए वा**- नहीं सचित्त चेतनायुक्त शिलाखड से अथवा। **कोलावासंसि**-घुण से युक्त। **दारुए**-काष्ठ से। **जीवपइट्ठिए**-अथवा जीवप्रतिष्ठित जिसमे बाहर से जीव आये हो-काष्ठ से। **सअंडे**-अंडों से युक्त काष्ठ अथवा। **सपाणे**-प्राणी युक्त काष्ठ आदि से। **जाव**-यावत्। **ससताणए**-जाला आदि युक्त काष्ठ आदि से। **नो आमज्जिज्ज वा**-एक बार भी मसले नहीं अथवा। **पमज्जिज्ज वा**-पुन पुन मसले नहीं। **संलिहिज्ज वा**-अथवा घर्षित न करे। **निलिहिज्ज वा**- अथवा पूछे नहीं। **उव्वलेज्ज वा**-अथवा उद्धर्त्तन अर्थात् विशेष रूप से पूछे नहीं। **उव्वट्टिज्ज वा**-अथवा उद्वर्त्तन न करे। **आयाविज्ज वा**-अथवा एक बार भी धूप मे सुखाए नहीं। **पयाविज्ज वा**-अथवा पुन·-पुन धूप मे सुखाए नहीं। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **अप्पससरक्खं**-रज रहित। **तणं वा**-तृण अथवा। **पत्तं वा**-पत्र। **कट्ठ वा**-अथवा काष्ठ। **सक्कर वा**-एव ककड़ की। **जाइज्जा**-याचना करे। **जाइत्ता**-याचना करके। **से**-वह भिक्षु। **तमायाय**-उसको लेकर। **एगंतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान पर चला जाए, एकान्त स्थान पर जाकर देखे कि। **अहे झामथंडिलसि वा**-जो भूमि अग्नि के सयोग से अचित्त होकर स्थडिल रूप मे अवस्थित है-ऐसे स्थडिल

की। जाव-यावत्। अन्नयरंसि वा-अन्य किसी निर्दोष भूमि की अथवा। तहप्पगारसि-तथा प्रकार की भूमि की। पडिलेहिय २-प्रतिलेखना कर के भली-भाति अवलोकन करके। पमज्जिय पमज्जिय-अच्छी तरह से प्रमार्जित करे। तओ-तदनन्तर। सजयामेव-सयत-साधु यत्न पूर्वक उक्त-कथित तृण आदि से शरीर को। आमज्जिज्ज वा-एक बार मसले अथवा। जाव-यावत्। पयाविज्ज वा-बार-बार धूप मे सुखाये।

मूलार्थ—साधु या साध्वी को गृहपति आदि के कुल मे जाते समय मार्ग के मध्य मे खेत की क्यारिया, खाई कोट, तोरण, अर्गला और अर्गलपाशक पडता हो तो अन्य मार्ग के होने पर वह उस मार्ग से न जाए भले ही वह मार्ग सीधा क्यो न हो। क्योंकि केवली भगवान कहते है कि यह कर्मबन्ध का मार्ग है। क्योंकि वह भिक्षु उस मार्ग से जाते हुए कांप जाएगा या उसका पांव फिसल जाएगा या वह गिर जाएगा, तब उस मार्ग मे कापते हुए, फिसलते हुए या गिरते हुए उस भिक्षु का शरीर विष्ठा से, मूत्र से, श्लेष्म से, नाक के मल से, वमन से, पित्त से, राध से, शुक्र से और रुधिर से उपलिप्त हो जाए तो ऐसा होने पर वह भिक्षु अपने शरीर को सचित्त मिट्टी से, स्निग्ध मिट्टी से, सचित्त शिला से और सचित्त शिलाखड से अर्थात् चेतना युक्त पत्थर के टुकडे से, या घुण वाले काष्ठ से, जीव प्रतिष्ठित-जीव युक्त काष्ठ से एव अण्डयुक्त अथवा प्राणी युक्त या जालो आदि से युक्त काष्ठ आदि से अपने शरीर को एक बार या अनेक बार मसले नहीं, एक बार या अनेक बार घिसे नहीं, पुछे नहीं तथा उवटन की भाति मले नहीं, तथा एक बार या अनेक बार धूप में सुखाए नहीं, अपितु वह भिक्षु पहले ही सचित्त रज आदि से रहित तृण, पत्र, काष्ठ-कंकड आदि की याचना करे। याचना करके वह एकान्त स्थान मे जाए और वहा अग्नि आदि के सयोग से जो भूमि प्रासुक हो गई हो अर्थात् अग्नि दग्ध होकर जो भूमि अचित्त बन गई हो, उस जगह की या अन्यत्र उसी प्रकार की भूमि की प्रतिलेखना करके यत्नपूर्वक अपने शरीर को मसले यावत् बार-बार धूप मे सुखाकर शुद्ध करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को विषम-मार्ग से भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए। यदि रास्ते मे खड्डे, खाई आदि हैं, सीधा एव सम-मार्ग नहीं है, तो अन्य मार्ग के होते हुए साधु को उस मार्ग से नही जाना चाहिए। क्योकि उस मार्ग से जाने पर कभी शरीर मे कम्पन होने या पैर आदि के फिसलने पर वह साधु गिर सकता है और उसका शरीर मल-मूत्र या नाक के मैल या गोबर आदि से लिप्त हो मकता है और उसे साफ करने के लिए सचित्त मिट्टी, सचित्त लकडी या सचित्त पत्थर या जीव-जन्तु से युक्त काष्ठ का प्रयोग करना पडे। इससे अनेक जीवो की विराधना होने की सभावना है। अत. साधु को ऐसे विषम मार्ग का त्याग करके अच्छे रास्ते से जाना चाहिए। यदि अन्य मार्ग न हो और उधर जाना आवश्यक हो तो उसे विवेक पूर्वक उस रास्ते को पार करना चाहिए। और विवेक रखते हुए भी यदि उसका पैर फिसल जाए और वह गिर पडे तो उसे अपने अशुचि से लिपटे हुए अगोपाङ्गो को सचित्त मिट्टी से साफ न करके, तुरन्त अचित्त काष्ठ-ककर की याचना करके एकान्त स्थान मे चले जाना

चाहिए और वहा अचित्त भूमि को देखकर वहा जीव-जन्तु से रहित अचित्त काष्ठ आदि के टुकडे एव अचित्त मिट्टी आदि से अशुचि को साफ करके, फिर अपने शरीर को धूप मे सुखाकर शुद्ध करना चाहिए।

उपाध्याय पार्श्व चन्द्र ने अपनी 'बालावबोध' मे लिखा है कि भगवान ने अशुचि से लिप्त स्थान को पानी से साफ करने की आज्ञा नहीं दी है[१]।

परन्तु आगम मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अशुचि को दूर करने के लिए साधु अचित्त पानी का उपयोग कर सकता है[२]। आगम मे यह भी बताया गया है कि गुरु एव शिष्य शौच के लिए एक ही पात्र मे पानी ले गए हो तो शिष्य को गुरु से पहले शुद्धि नही करनी चाहिए[३] और प्रतिमाधारी मुनि के लिए सब तरह से जल स्पर्श का निषेध होने पर भी शौच के लिए जल का उपयोग करने का आदेश दिया गया है[४]। आगम मे पाच प्रकार की शुद्धि का वर्णन आता है, वहा जल से शुद्धि करने का भी उल्लेख है[५]। और अशुचि की अस्वाध्याय भी मानी है[६]। इससे स्पष्ट होता है कि जल से अशुचि दूर करने का निषेध नहीं किया गया है। साधक को यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि पहले अचित्त एव जन्तु रहित काष्ठ आदि से उसे साफ करके फिर अचित्त पानी से साफ करे।

प्रस्तुत सूत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग मे गावो के रास्ते सम एव बहुत साफ-सुथरे नही होते थे। लोग रास्ते मे ही पेशाब, खखार आदि फैंक देते थे। जहा-तहा गड्ढे भी हो जाते थे, जिनसे वर्षा के दिनो मे पानी भी सडता रहता था। इस तरह उस युग मे गावो मे सफाई की ओर कम ध्यान दिया जाता था।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्- से भिक्खू वा० से जं पुण जाणिज्जा गोणं वियालं पडिपहे पेहाए, महिसं वियालं पडिपहे पेहाए, एवं मणुस्सं आसं हत्थिं सीहं वग्घं विगं दीवियं अच्छं तरच्छं परिसरं सियालं बिरालं सुणयं कोलसुणयं कोकंतियं चित्ताचिल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए सइपरकम्मे संजयामेव परक्कमेज्जा, नो उज्जुयं गच्छिज्जा।

से भिक्खू वा० समाणे अंतरा से उवाओ वा खाणुए वा कंटए वा घसी वा भिलुगा वा विसमे वा विज्जले वा परियावज्जिज्जा, सइपरक्कमे संजयामेव,

१ पर श्री वीतारागिइ इम न कह्यो पाणी सु धोवे, एहवी जयणा श्री वीतरागे पदे सि जाणवी पालवी इत्यर्थ । - उपाध्याय पार्श्वचन्द्र।

२ निशीथ सूत्र, उद्देशक ४।

३ समवायाग सूत्र, ३३, दशाश्रुतस्कध, दशा ३,

४ दशाश्रुतस्कध दशा ७।

५ पचविहे सोए पण्णते तजहा-पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मतसोए, बभसोए। स्थानाग सूत्र, स्था० ५ उ० ३।

६ स्थानाग सूत्र, स्थान १०।

नो उज्जुयं गच्छिज्जा।२७।

छाया– स भिक्षुर्वा० तद् यत् पुन॰ जानीयात् गां व्यालम् प्रतिपथे प्रत्युपेक्ष्य, महिषिं व्यालं प्रतिपथे प्रेक्ष्य, एवं मनुष्य अश्वं हस्तिनं सिह व्याघ्रं वृकं द्वीपिनं ऋक्षं तरक्षं सरभं शृगालं बिडालं शुनकं महाशूकरं कोकंतिक चित्ताचिल्लडयं व्यालं प्रतिपथे प्रत्युपेक्ष्य सति पराक्रमे सयतमेव पराक्रमेत्, न ऋजुकं गच्छेत्।

स भिक्षुर्वा० (प्रविष्ट) सन् अन्तराले अवपात॰ स्थाणुर्वा कण्टको वा घसी वा भिलुगा वा विषम वा विज्जलं (कर्दम) वा परितापयेत् सतिपराक्रमे सयतमेव न ऋजुकं गच्छेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। से ज पुण जाणिज्जा-यदि मार्ग मे यह जाने यथा। गोण-वृषभ-बैल। वियाल-मदोन्मत्त अथवा सर्प-साप। पडिपहे-मार्ग को रोके हुए स्थित है। पेहाए-उसे देखकर तथा। महिस वियाल-मदोन्मत्त भैसे को। पेहाए-देखकर। एव-इसी प्रकार। मणुस्सं-मनुष्य को। आस-अश्व-घोड़े को। हत्थि-हाथी को। सीह-सिह को। वग्घ-व्याघ्र को। विगं-भेडिये को। दीवियं-द्वीपी, चित्रक-चीते को। अच्छ-भालू को। तरच्छ-हिंसक जीव विशेष को जो कि व्याघ्र जाति का जीव होता है। परिसरं-अष्टापद जीव को। सियाल-शृगाल-गीदड़ को। विराल-बिल्ले को। सुणय-कुत्ते को। कोलसुणय-महाशूकर को। कोकतिय-शृगाल की आकृति का लोमटक नाम का जीव विशेष जो रात्रि मे को-को शब्द करता है, उसको। चित्ताचिल्लडय-अरण्यवासी जीव विशेष को। वियाल-सर्प को। पडिपहे-मार्ग मे। पेहाए-देखकर। सइपरक्कमे-अन्य मार्ग के होने पर। सजयामेव-साधु यत्नपूर्वक। परक्कमेज्जा-जाए। उज्जुय-सीधा अर्थात् उन जीवो के सामने से। नो गच्छिज्जा-गमन न करे अर्थात् आत्मा और सयम की विराधना के भय से उन जीवो के सामने न जाए।

से-वह। भिक्खू वा-भिक्षु साधु या साध्वी। समाणे-यावत् भिक्षा के लिए मार्ग मे जाते हुए। अतरा से-वह मार्ग के मध्य मे उपयोग पूर्वक इन बातो को देखे जैसे कि- मार्ग मे। उवाओ वा-गर्त अर्थात् गड्ढा। खाणुए वा-अथवा स्थाणु अर्थात् खूटा। कटए वा-अथवा काटे। घसी वा-अथवा घसी अर्थात् पर्वत की उतराई। वा-अथवा। भिलुगा-फटी हुई पृथ्वी। वा-अथवा। विसम-विषम अर्थात् ऊची नीची भूमि। वा-अथवा। विज्जले-कीचड़ है तो वह। परियावज्जिज्जा-उस मार्ग को छोड़ दे तथा। सइपरक्कमे-अन्य मार्ग के होने पर। सजयामेव-साधु यत्न पूर्वक अन्य मार्ग से जाए किन्तु मार्ग मे उक्त पदार्थों को देख कर। उज्जुय-सीधा। नो गच्छिज्जा-न जाए।

मूलार्थ—साधु या साध्वी जिस मार्ग से भिक्षा के लिए जा रहे हों यदि उस मार्ग मे मदोन्मत्त वृषभ और मदोन्मत्त भैंसा एव मनुष्य, घोड़ा, हस्ती, सिह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता, रीछ, व्याघ्रविशेष, अष्टापद, गीदड़, बिल्ला, कुत्ता, सुअर, कोकतिक (स्याल जैसा अरण्य जीव) और साप आदि मार्ग मे खड़े या बैठे है तो अन्यमार्ग के होने पर साधु उस मार्ग से जाए किन्तु जिस मार्ग मे उक्त जीव खड़े या बैठे हो उस से न जाए।

साधु या साध्वी भिक्षार्थ गमन करने पर यह देखे कि मार्ग में यदि गड्ढा, स्थाणु-खूटा, कण्टक, उतराई की भूमि, कटी हुई भूमि, विषम-ऊंची नीची भूमि, और कीचड़ वाला मार्ग है तो वह अन्य मार्ग के होने पर उसी मार्ग से यत्न पूर्वक गमन करे किन्तु उक्त सीधे मार्ग से न जाए। क्योंकि उक्त सीधे मार्ग से गमन करने पर आत्मा और सयम की विराधना होने की सभावना है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भिक्षा के लिए जाते समय साधु को विवेक से चलना चाहिए। यदि रास्ते मे मदोन्मत्त बैल या हाथी खडा हो या सिह, व्याघ्र, भेडिया, आदि जगली जानवर खडा हो तो अन्य मार्ग के होते हुए साधु को उस मार्ग से नही जाना चाहिए और इसी तरह जिस मार्ग मे गड्ढे आदि हैं उस मार्ग से नहीं जाना चाहिए। क्योकि उन्मत्त बैल आदि एव हिस्त्र जन्तुओ से आत्म-विराधना हो सकती है और गड्ढे आदि से युक्त पथ से जाने पर सयम की विराधना हो सकती है। अत मुनि को उस पथ से न जाकर अन्य पथ से जाना चाहिए, यदि अन्य मार्ग कुछ लम्बा भी पडता हो तो भी उसे सयम रक्षा के लिए लम्बे रास्ते से जाना चाहिए।

उस युग मे कई बार मुनि को भिक्षा के लिए एक गाव से दूसरे गाव भी जाना पडता था और कहीं-कहीं दोनो गावो के बीच मे पडने वाले जगल मे सिह, व्याघ्र आदि जगली जानवर भी रास्ते मे मिल जाते थे। इसी अपेक्षा से इनका उल्लेख किया गया है। परन्तु, इसका यह अर्थ नही है कि कुत्तो की तरह शेर भी गावो की गलियो मे घूमते रहते थे। अत आहार के लिए जाने वाले मुनि को ग्रामान्तर मे जाते हुए शेर आदि का मिल जाना भी सभव है, इस दृष्टि से सूत्रकार ने मुनि को यत्ना एव विवेक पूर्वक चलने का आदेश दिया है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० गाहावइकुलस्स दुवारबाहं कंटगबुंदियाए परिपिहियं पेहाए तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुन्नविय अपडिलेहिय अप्पमज्जिय नो अवंगुणिज्ज वा, पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा, तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुन्नविय पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ संजयामेव अवंगुणिज्ज वा पविसेज्ज वा निक्खमेज्ज वा ॥२८॥

छाया– स भिक्षुर्वा० गृहपतिकुलस्य द्वारभाग कंटकशाखया परिपिहित प्रेक्ष्य तेषा पूर्वमेवावग्रहं अननुज्ञाप्य अप्रतिलेख्य अप्रमृज्य न उद्‌घाटयेत् वा प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा, तेषा पूर्वमेव अवग्रह अनुज्ञाप्य प्रतिलेख्य प्रतिलेख्य प्रमृज्य प्रमृज्य ततः सयतमेव उद्‌घाटयेद् वा प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु और साध्वी। **गाहावइकुलस्स**-गृहपति के कुल के। **दुवारबाहं**-द्वार भाग को। **कंटगबुंदियाए**-कटक शाखा से। **परिपिहिय**-बद किए हुए को। **पेहाए**- देखकर। **तेसि**-उन

गृहपति के। पुव्वामेव-पहले ही। **उग्गहं**-अवग्रह आज्ञा मागे। **अणणुन्नविय**-बिना आज्ञा मागे। **अपडिलेहिय**-बिना प्रतिलेखना किए। **अपमज्जिय**-रजोहरणादि से प्रमार्जित किए बिना। **नो अवगुणिज्ज वा**-वह उस द्वार का उद्‌घाटन न करे उसे न खोले। **पविसिज्ज वा**-तथा खोल कर प्रवेश न करे। **निक्खमिज्ज वा**-और न निकले परन्तु। **तेसिं**-उस गृहपति के। **पुव्वामेव**-पहले ही। **उग्गहं**-अवग्रह-आज्ञा को। **अणुन्नविय**-मांग कर फिर। **पडिलेहिय२**-आखो से भली प्रकार देख भाल कर। **पमज्जिय २**-रजोहरणादि से अच्छी तरह प्रमार्जित कर। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-साधु यत्न पूर्वक। **अवगुणिज्ज वा**-उस द्वार का उद्‌घाटन करे और। **पविसिज्ज वा**-प्रवेश करे तथा प्रवेश के बाद। **निक्खमेज्ज वा**-निकले।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी गृहपति के घर के द्वार भाग को कण्टक शाखा से ढाका हुआ-बन्द किया हुआ देखकर उस गृहपति से आज्ञा मागे बिना, उसे अपनी आखो से देखे बिना और रजोहरणादि से प्रमार्जित किए बिना न खोले न उसमे प्रवेश करे और न उसमें से निकले। किन्तु उस गृहस्थ की पहले ही आज्ञा लेकर, अपनी आखो से देखकर और रजोहरणादि से प्रमार्जित करके उसे खोले, उसमे प्रवेश करे और उस से निकले।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करते समय साधु यह देखे कि घर का द्वार (कण्टक शाखा से) बन्द है, तो वह उस घर के व्यक्ति की आज्ञा लिए बिना तथा रजोहरण आदि से प्रमार्जित किए बिना उसे खोले नहीं, और न उस घर मे प्रवेश करे तथा न उससे वापिस बाहर निकले। इससे स्पष्ट है कि यदि गृहस्थ के घर का दरवाजा बन्द है और साधु को कार्यवश उसके घर मे जाना है तो वह उस घर के व्यक्ति की आज्ञा से यत्ना पूर्वक द्वार को देख कर खोल सकता है और उसके घर मे जा-आ सकता है।

गृहस्थ के बन्द द्वार को उसकी आज्ञा के बिना खोलकर जाने से कई दोष लगने की सम्भावना है– १-यदि कोई बहिन स्नान कर रही हो तो वह साधु को देखकर उस पर क्रुद्ध हो सकती है, २-घर का मालिक आवेश वश साधु को अपशब्द भी कह सकता है, ३- यदि उसके घर से कोई वस्तु चली जाए तो साधु पर उसका दोषारोपण भी कर सकता है और ४-द्वार खुलने से पशु अन्दर जाकर कुछ पदार्थ खा जाए या बिगाड दे या तोड-फोड कर दे तो उसका आरोप भी वह साधु पर लगा सकता है। इस तरह बिना आज्ञा दरवाजा खोलकर जाने से कई दोष लगने की सम्भावना है, अत साधु को घर के व्यक्ति की आज्ञा लिए बिना उसके घर के दरवाजे को खोलकर अन्दर नही जाना चाहिए।

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने के बाद साधु को किस विधि से आहार लेना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणिज्जा समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए नो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठिज्जा, से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा२ अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा, से से परो अणावायमसंलोए चिट्ठमाणस्स असणं वा ४ आहट्टु दलइज्जा, से

य एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! इमे भे असणे वा ४ सव्वजणाए निसट्ठे तं भुंजह वा णं परिभाएह वा णं, तं चेगइओ पडिग्गाहित्ता तुसिणीओ उवेहिज्जा, अवियाइं एयं ममेव सिया, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा, से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसंतो समणा! इमे भे असणे वा ४ सव्वजणाए निसिट्ठे तं भुंजह वा णं जाव परिभाएह वा णं, सेणमेवं वयंतं परो वइज्जा– आउसंतो समणा ! तुमं चेव णं परिभाएहि, से तत्थ परिभाएमाणे नो अप्पणो खद्धं २ डायं २ उसढं २ रसियं २ मणुन्नं २ निद्धं २ लुक्खं २, से तत्थ अमुच्छिए अगिद्धे अग (ना) ढिए अणज्झोववन्ने बहुसममेव परिभाइज्जा, से परं तत्थ परिभाएमाणं परोवइज्जा-आउसंतो समणा ! माणं तुमं परिभाएहि, सव्वे वेगइआ ठिया उ भुक्खामो वा पाहामो वा, से तत्थ भुंजमाणे नो अप्पणा खद्धं खद्धं जाव लुक्खं २, से तत्थ अमुच्छिए ४ बहुसममेव भुंजिज्जा वा पाइज्जा वा ॥२९ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ तद् यत् पुनः जानीयात् श्रमण वा ब्राह्मणं वा ग्रामपिडोलक वा अतिथि वा पूर्वप्रविष्ट प्रेक्ष्य न तेषा संलोके सप्रतिद्वारे तिष्ठेत् स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् २ अनापाते असंलोके तिष्ठेत् स पर. तस्य अनापाते असंलोके तिष्ठतः अशन वा ४ आहृत्य दद्यात्, स च एव ब्रूयात्-आयुष्मन्तः श्रमणा· ! अय युष्मभ्य अशन वा ४ सर्वजनाय निसृष्ट तद् भुङ्ध्व वा परिभाजयत् वा त चैकतो गृहीत्वा तूष्णीकं उपेक्षेत्, अय ममैव स्यात् मातृस्थान सस्पृशेत्, नैव कुर्यात्, स तमादाय तत्र गच्छेत् २ स पूर्वमेव आलोकयेत् , आयुष्मन्त श्रमणा.! अयं युष्मभ्यं अशनं वा ४ सर्वजनाय निसृष्ट तं भुङ्ध्व वा यावत् परिभाजयत् वा, एनमेव ब्रुवाण परः वदेत्– आयुष्मन्तः श्रमणा·! त्व चैव ण परिभाजय ! स तत्र परिभाजयन् आत्मन. प्रचुर २ शाक २ उच्छ्रितं २ रसिक २ मनोज्ञ २ स्निग्धं २ रूक्ष २ स तत्र अमूर्च्छितोऽगृद्ध. अनाहत. अनध्युपपन्नः बहुसमं एव परिभाजयेत् तं च परिभाजयन्त परो ब्रूयात्– आयुष्मन् श्रमण ! मा त्वं परिभाजय ! सर्वे चैकत्र स्थिताः भोक्ष्यामहे वा पास्यामो वा, स तत्र भुञ्जमान नात्मना प्रचुर २ यावद् रूक्षम्, स तत्र अमूर्छितः ४ बहुसम एव भुञ्जीत वा पिबेद् वा।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु या साध्वी। से जं पुण जाणिज्जा- गृहपति कुल मे भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर यदि ऐसे जाने यथा। समण वा-श्रमण शाक्यादि भिक्षु। माहणं वा-अथवा ब्राह्मण। गामपिडोलगं वा-ग्राम के याचक। अतिहिं वा-अथवा अतिथि जोकि। पुव्वपविट्ठं-पहले प्रवेश किए हुए है, को। पेहाए-देखकर। तेसिं-उनके। संलोए-सामने। सपडिदुवारे-जिस द्वार से वे निकलते हो- । नो चिट्ठेज्जा-

खड़ा न हो किन्तु। **तमायाय**-भिक्षा के लिए आये हुए उन श्रमणादि को जानकर। **एगंतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान मे जाकर। **अणावायमसलोए**-जहा कोई न आता हो और न देखता हो ऐसे स्थान पर। **चिट्ठिज्जा**-ठहर जाए। **से**-वह गृहस्थ। **से**-उस भिक्षु को जो कि। **अणावायमसलोए चिट्ठमाणस्स**-निर्जन स्थान मे स्थित है। **असणं वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **आहट्टु**-लाकर। **दलइज्जा**-दे। **य**-फिर। **से**-वह गृहस्थ। **एवं**-इस प्रकार। **वइज्जा**-बोले। **आउसतो समणा**-हे आयुष्मन्त श्रमणो! **इमे**-यह। **असणे वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **भे**-आप। **सव्वजणाए**-सबके लिए अर्थात् सब भिक्षुओ के लिए। **निसट्ठे**-दिया है। **तं**-उस आहार को। **भुंजह**-सब इकट्ठे बैठ कर खा ले। **वा**-अथवा-**ण**-वाक्यालकार मे है। **परिभाएह वा ण**-आपस मे बाट ले। **चेगइओ**-परन्तु एकान्त मे खड़े साधुओ को जानकर। **तं**-उस आहार को। **पडिग्गाहित्ता**-लेकर। **तुसिणीओ**-मौन रहकर। **उवेहिज्जा**-उत्प्रेक्षा करे यथा-। **अवियाइं**-अपि सम्भावनार्थक है। **एव**-यह आहार। **ममेव सिया**-मुझे दिया है अत मेरे ही लिए है। यदि ऐसा विचार करे तो। **माइट्ठाण सफासे**-मातृ स्थान माया-कपट स्थान का स्पर्श होता है-उक्त दोष लगता है अत। **एवं**-इस प्रकार। **नो करिज्जा**-न करे किन्तु। **से**-वह भिक्षु। **तमायाए**-उस आहार को लेकर। **तत्थ**-जहा पर वे श्रमणादि खड़े है वहा पर। **गच्छिज्जा**-जाए और वहा जाकर। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही उन्हे। **आलोइज्जा**-उस आहार को दिखाए और कहे। **आउसतो समणा**-आयुष्मन्त श्रमणो! **इमे**-यह। **असणे वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **भे सव्वजणाए**-हम सब के लिए। **निसिट्ठे**-दिया है। **त**-इस आहार को। **भुंजह वा ण**-सब इकट्ठे मिल कर खाले अथवा। **जाव**-यावत्। **परिभाएह वा ण**-विभाग कर ले, बाट ले। **सेणमेव वयत**-तब इस प्रकार बोलते हुए उस साधु को यदि। **परो वइज्जा**-कोई साधु इस प्रकार कहे। **आउसतो समणा**-आयुष्मन् श्रमण! **तुमं चेव**-तुम ही। **ण**-पूर्ववत्। **परिभाएहि**-विभाग कर दो-अर्थात् इस आहार को तुम ही बाट दो! तब। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-वहा पर। **परिभाएमाणे**-विभाग करता हुआ। **अप्पणो**-अपने लिए। **खद्ध २**- प्रचुर अत्यधिक। **डाय २**-सुन्दर शाक। **उसढ २**-वर्णादि गुणो मे युक्त। **रसिय**-रस युक्त। **मणुन्न २**- मनोज्ञ। **निद्धं २**- स्निग्ध और। **लुक्ख २**-रूक्ष आहार को। **नो**-न रखे किन्तु। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-उस आहार के विषय मे। **अमुच्छिए**-अमूर्छित-मूर्छा रहित। **अगिद्धे**-अभिकाक्षा रहित। **अगढिए**-विशिष्ट गृद्धि रहित। **अणज्झोववन्ने**-और आसक्ति रहित होकर। **बहुसममेव**-सबको समान रूप से अर्थात् जो सब के लिए समान हो। **परिभाइज्जा**-विभाग करदे तथा। **से ण परिभाएमाण**-समान रूप से विभाग कर बाटते हुए उस साधु को यदि। **परो वइज्जा**-कोई कहे कि। **आउसतो समणा**!-आयुष्मन् श्रमण! **माण तुम परिभाएहि**-तुम मत विभाग करो! **सव्वेगइआ ठिया उ**-हम सब इकट्ठे बैठकर। **भुक्खामो**-खाएगे और। **पाहामो वा**-पियेगे। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-वहा पर। **भुजमाणे**-उस आहार को खाता हुआ। **अप्पणो**-अपने लिए। **खद्ध २**-प्रचुर। **जाव**-यावत्। **लुक्ख**-रूक्ष आहार को। **नो**-ग्रहण न करे। किन्तु। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-उस आहार विषयक। **अमुच्छिए**-अमूर्छित-मूर्छा रहित होकर। **बहुसममेव**-सबके समान ही। **भुजिज्जा वा**-खाए अथवा। **पाइज्जा वा**-पीए।

मूलार्थ—साधु या साध्वी भिक्षा के निमित्त गृहपति के कुल मे प्रवेश करते हुए यदि यह जाने कि उसके जाने से पहले ही गृहपति कुल मे शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण ग्रामयाचक और अतिथि

आदि प्रवेश किए हुए है तो उनके सामने अथवा जिस द्वार से वे निकलते हैं उसके सन्मुख खड़ा नहीं हो। किन्तु एकान्त स्थान मे -जहा न कोई आता हो और न कोई देखता हो जाकर खड़ा हो जाए। वहा खड़े हुए उस साधु को देख कर वह गृहस्थ यदि अशनादिक चतुर्विध आहार लाकर दे और देता हुआ कहे कि आयुष्मन् श्रमणो ! यह अशनादिक चतुर्विध आहार मैने आप सबके लिए दिया है- आप लोग यथारुचि इस आहार को एकत्र मिलकर खा ले या परस्पर विभाग कर ले, बाट ले, तब उस आहार को लेकर वह साधु यदि मौन वृत्ति से उत्प्रेक्षा करे-विचार करे कि यह मुझे दिया है अत मेरे लिए ही है, तो उसे मातृस्थान-मायास्थान का स्पर्श होता है। अत उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, अपितु उस आहार को लेकर जहा पर अन्य श्रमणादि खडे हों वहां जाकर प्रथम उन्हे उस आहार को दिखाए और दिखाकर कहे कि आयुष्मन् श्रमणो ! यह अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थ ने हम सबके लिए दिया है। इस आहार को हम मिल कर खाले अथवा परस्पर मे विभाग कर ले, बाट ले। ऐसा कहते हुए उस साधु को यदि कोई भिक्षु कहता है कि आयुष्मन् श्रमण ! तुम ही इस आहार का विभाग कर दो, सब को बाट दो, तब वहा पर विभाग करता हुआ वह साधु अपने लिए प्रचुर शाक, भाजी या रसयुक्त मनोज्ञ, स्निग्ध और रूक्ष आहार को न रक्खे, किन्तु वहा आहार विषयक मूर्छा, गृद्धि, और आसक्ति आदि से रहित होकर सबके लिए समान विभाग करे, यदि सम विभाग करते हुए उस साधु को कोई भिक्षु यह कहे कि आयुष्मन् श्रमण! तुम विभाग मत करो हम सब वहा ठहरे हुए है, एकत्र बैठकर इस आहार को खा लेंगे और जल पी लेगे। तब वह भिक्षु वहा पर भोजन करता हुआ आहार विषयक मूर्छा, गृद्धि और आसक्ति आदि को त्यागकर अपने लिए प्रचुर यावत् स्निग्ध और रूक्षादि का विचार न करता हुआ समान रूप से उस आहार का भक्षण करे तथा जलादि का पान करे अर्थात् इस प्रकार से खाए जिससे समविभाग मे किसी प्रकार की न्यूनाधिकता न हो।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भिक्षा के लिए गया हुआ साधु यह देखे कि गृहस्थ के द्वार पर शाक्यादि अन्य मत के भिक्षुओ की भीड खडी है, तो वह गृहस्थ के घर मे प्रवेश न करके एकान्त स्थान मे खडा हो जाए। यदि गृहस्थ उसे वहा खडा हुआ देख ले और उसे अशन आदि चारो प्रकार का आहार लाकर दे और साथ मे यह भी कहे कि मै गृह कार्य मे व्यस्त रहने के कारण सब साधुओ को अलग-अलग भिक्षा नही दे सकता। अत· आप यह आहार ले जाए और आप सबकी इच्छा हो तो साथ बैठ कर खा ले या आपस मे बाट ले। इस प्रकार के आहार को ग्रहण करके वह भिक्षु (मुनि) अपने मन मे यह नही सोचे कि यह आहार मुझे दिया गया है, अत यह मेरे लिए है और वस्तुत मेरा ही होना चाहिए, यदि वह ऐसा सोचता है तो उसे दोष लगता है। अत वह मुनि उस आहार को लेकर वहा जाए जहा अन्य भिक्षु खडे है और उन्हे वह आहार दिखाकर उनसे यह कहे कि गृहस्थ ने यह आहार हम सब के लिए दिया है। यदि आपकी इच्छा हो तो सम्मिलित खा ले और आपकी इच्छा हो तो सब परस्पर बाट ले। यदि वे कहे कि मुनि तुम ही सब को विभाग कर दो, तो मुनि सरस आहार की लोलुपता मे फसकर अच्छा-अच्छा आहार अपनी ओर न रखे, समभाव पूर्वक वह सबका समान हिस्सा कर दे। यदि वे कहे कि विभाग करने की क्या आवश्यकता है। सब साथ बैठकर ही खा लेगे, तो वह मुनि उनके साथ

बैठकर अनासक्त भाव से आहार करे।

प्रस्तुत पाठ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या जैन मुनि शाक्यादि अन्य मत के भिक्षुओ के साथ बैठकर आहार कर सकता है ? अपने द्वारा ग्रहण किया गया आहार उन्हे दे सकता है ?

इस पर वृत्तिकार का यह अभिमत है कि उत्सर्ग मार्ग मे तो साधु ऐसे आहार को स्वीकार ही नहीं करता। दुर्भिक्ष आदि के प्रसग पर अपवाद मे वह इस तरह का आहार ग्रहण कर सकता है। परन्तु, इतना होने पर भी उसे अन्य मत के भिक्षुओ के साथ बैठकर नही खाना चाहिए। किन्तु पार्श्वस्थ जैन मुनि या साभोगिक हैं, उन्हे ओघ आलोचना देकर उनके साथ खा सकता है[१]।

परन्तु, प्रस्तुत पाठ मे न तो दुर्भिक्ष आदि के प्रसग का उल्लेख है और न पार्श्वस्थ आदि साधुओ का ही उल्लेख है। और यदि आगम के अनुसार सोचा जाए तो साधु ग्रामपिडोलक (भिखारियो) अन्य मत के भिक्षुओ एव पार्श्वस्थ साधुओ के साथ बैठकर खा भी नहीं सकता और न उनके आहार का लेन-देन ही कर सकता है। आचाराग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे अन्य मत के साधुओ के साथ आहार पानी के लेन-देन का स्पष्ट निषेध किया गया है। ऐसी स्थिति मे वृत्तिकार का अभिमत अवश्य ही विचारणीय है।

आगम मे एक स्थान पर गौतम स्वामी मुनि उदक पेढाल पुत्र को कहते हैं कि हे श्रमण ! मुनि किसी गृहस्थ या अन्यतीर्थि (मत के) साधु के साथ आहार नहीं कर सकता। यदि वह गृहस्थ या अन्य मत का साधु दीक्षा ग्रहण कर ले तो फिर उसके साथ आहार कर सकता है। परन्तु, यदि वह किसी कारणवश दीक्षा का त्याग करके पुन अपने पूर्व रूप मे परिवर्तित हो जाए तो फिर उसके साथ साधु आहार नही कर सकता[२]। इससे स्पष्ट होता है कि मुनि का आहार-पानी का सम्बन्ध अपने समान आचार-विचारशील साधु के साथ ही है, अन्य के साथ नही।

टब्बाकार वृत्तिकार के कथन के विरोध मे है। टब्बाकार का कहना है कि वृत्तिकार ने जिस अपवाद का उल्लेख किया है, वह अपवाद मूल आगम मे उल्लिखित नही है और दूसरे मे अन्य मत के साधुओ से जाकर यह कहना कि गृहस्थ ने यह आहार हम सबके लिए दिया है, अत साथ बैठकर खा ले या परस्पर बाट ले, प्रत्यक्षत सावद्य है। अत जैन मुनि ऐसी भाषा का प्रयोग नही कर सकता। अत इसका तात्पर्य यह है कि गृहस्थ ने जो आहार दिया वह अन्य मत के साधुओ को सम्बोधित करके नहीं, प्रत्युत उक्त साधु के साथ के अन्य साम्भोगिक साधुओ को सम्बोधित करके दिया है। अत वह अपने साथ के अन्य मुनियो के पास जाकर उन्हे वह आहार दिखाए और उनके साथ या उन सबका समविभाग करके उस आहार को खाए। इस तरह यह सारा प्रसग अपने समान आचार वाले मुनियो के लिए ही घटित

---

१ तत्र परतीर्थिकै सार्द्धं न भोक्तव्य स्वयूथ्यैश्च पार्श्वस्थादिभि सह, सम्भोगिकै सहौघा-लोचना दत्वा भुञ्जानानामय विधि ।

–श्री आचाराङ्ग सूत्र, २, १, ५, २९ वृत्ति।

२ सूत्रकृताग सूत्र, २, ७

होता है। यह टब्बाकार का अभिमत है[१]।

वृत्तिकार एव टब्बाकार दोनो के अभिमतो मे टब्बाकार का अभिमत आगम सम्मत प्रतीत होता है।'गच्छेज्जा' और 'आउसतो समणा' शब्द टब्बाकार के अभिमत को ही पुष्ट करते हैं। यदि अन्यमत के साधुओ के साथ ही आहार करना होता तो वे सब वहीं गृहस्थ के द्वार पर ही उपस्थित थे, अत कहीं अन्यत्र जाकर उन्हे दिखाने का कोई प्रसग उपस्थित नहीं होता और साधु की मर्यादा है कि वह गृहस्थ के घर से ग्रहण किया गया आहार अपने साभोगिक बडे साधुओ को दिखाकर सबको आहार करने की प्रार्थना करके फिर आहार ग्रहण करे और यह बात 'गच्छेज्जा' शब्द से स्पष्ट होती है और ' आयुष्मन् श्रमणो' शब्द भी साभोगिक साधुओ के लिए प्रयुक्त हुआ है, ऐसा इस पाठ से स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कुछ हस्त लिखित प्रतिया तथा रवजी भाई देवराज द्वारा प्रकाशित भाषान्तर सहित आचाराग मे निम्न पाठ विशेष रूप से मिलता है-

"केवली बूया आयाणमेय"॥५७३॥

"पुरा पेहाए तस्सट्ठाए परो असण वा ४ आहट्टु दलएज्जा अहभिक्खू ण पुव्वोवादिट्ठा एस पतिन्ना, एस हेउ, एस डवएसो ज णो तेसि संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा से तमायाए एगतमवक्कमिज्जा २ अणावायमसलोए चिट्ठेज्जा।"॥५७४॥

इसका तात्पर्य यह है कि केवली भगवान ने इसे कर्म आने का मार्ग कहा है। (अन्य मत के भिक्षुओ और भिखारियो को लाघकर गृहस्थ के घर मे जाने तथा उनके सामने खडे रहने को)। क्योकि यदि उनके सामने खडे हुए मुनि को गृहस्थ देखेगा तो वह उसे वहा आहार आदि पदार्थ लाकर देगा। अत उनके सामने खडा न होने मे यह कारण रहा हुआ है तथा यह पूर्वोपदिष्ट है कि साधु उनके सामने खडा न रहे। इससे अनेक दोष लगने की सभावना है। आगमोदय समिति से प्रकाशित आचाराग मे उक्त पाठ नही है।

अब गृहस्थ के घर मे प्रवेश के सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा से जं पुण जाणिज्जा-समणं वा माहणं वा

---

२ एणे आलवे टीका मे कह्यो गृहस्थ साधु ने अणे भिख्यार्यो ने अशन आदि भेलो ते उत्सर्ग थकी तो न लई अणे दुर्भिक्षादिक कारणे लीइ ते सूत्र विरुद्ध, पाठमे कारण को नाम चाल्यो न थी, अणे वृत्तिकार अण मिलतो अपवाद बखाणो वली एह नू कह यु अशन आदिक साधु वहरी ते श्रमणादिक समीपे आवी इम कहे तुम्ह सर्व भणी गृहस्थ ए अशनादिक दीधो ते तुम्हे भोगवो वैहचो एहवु करके ते अन्य तीर्थिक न साधु इम किम कहे जे ए अशनादिक तुम्हे भोगवो वैहचो, एहतो प्रत्यक्ष सावद्य वचन छे, ते माटे एहवु जणाय छे-जे श्रमण ब्राह्मणादिक परतीर्थिक गृहस्थ रे घरे देखी साधु एकान्त जई उभो रहे तिण स्थान के अशन आदिक छे ते गृहस्थ आपे कहे सर्व णे मे दीधो ते सर्व घणा सम्भोगिक साधु सम्भवे, पिन पेली भेला अन्य तीर्थिक न सम्भवइ, ते अशनादिक कोई एक साधु वहरी और घणा सभोगिक साधु अलग उभाछे-ते परते साधु आवी कहे एह आहार सर्व भणी गृहस्थे दीधो, तु मे भोगवो अणे वैहचो-ते सम्भोगी साधु ने इज कहवो कल्पे, ते भणी एह सभोगी साधु ने इज लीधो सम्भवे पिन परतीर्थिक ने न सम्भवे, वली एह अलावा नो पाठनो अर्थ कोई अनेरे पुकारे होई ते पिन केवली कहे ते सत छे, मम दोषो न दीयते इति।

गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए नो ते उवाइक्कम्म पविसिज्ज वा ओभासिज्ज वा ते तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा २ अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा, अह पुणेवं जाणिज्जा-पडिसेहिए वा दिन्ने वा तओ तंमि नियत्तिए संजयामेव पविसिज्ज वा ओभासिज्ज वा एयं सामग्गियं० त्तिबेमि ॥३०॥

छाया– स भिक्षुर्वा तद् यत् पुन. जानीयात्– श्रमण वा ब्राह्मण वा ग्राम पिडोलकं वा अतिथि वा पूर्वप्रविष्ट प्रेक्ष्य न तान् उपातिक्रम्य प्रविशेद् वा अवभाषेद् वा स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् २ अनापातासलोके तिष्ठेत् अथ पुनरेवं जानीयात्– प्रतिषिद्धे वा दत्ते वा ततस्तस्मिन् निवृत्ते सयतमेव प्रविशेद् वा अवभाषेद् वा एतत्० सामग्र्यम्०, इति ब्रवीमि।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा०**- साधु अथवा साध्वी। **से ज पुण जाणिज्जा**- जो इस प्रकार जाने। **समण वा**-शाक्यादि भिक्षु। **माहण वा**-अथवा ब्राह्मण। **गामपिडोलग वा**-ग्राम के भिखारी। **अतिहिं वा**-अथवा अतिथि को। **पुव्वपविट्ठ वा**-पहले प्रवेश किए हुए को। **ते**-उनको। **उवाइक्कम्म**-अतिक्रम करके। **नो पविसिज्ज वा**- न तो प्रवेश करे और न ही। **ओभासिज्ज वा**-गृहस्थ से मागे, परन्तु। **से**-वह भिक्षु। **तमायाय**-उन्हे प्रविष्ट हुए जानकर। **एगंतमवक्कमिज्जा**-एकान्त स्थान मे चला जाए, वहा जाकर। **अणावायमसलोए**-जहा पर कोई आता-जाता न हो और न देखता हो वहा। **चिट्ठेज्जा**-खडा रहे। **अह पुणेव जाणिज्जा**-जब फिर यह जान ले कि। **पडिसेहिए वा**- गृहस्थ ने उन्हे प्रतिषेध कर दिया है अर्थात् बिना अन्न दिए घर से हटा दिया है अथवा। **दिन्ने वा**-अन्न दे दिया है। **तओ**-तदनन्तर। **तम्मि नियत्तिए**-उन भिक्षुओ के घर से चले जाने पर। **सजयामेव**-सयत-साधु। **पविसिज्ज वा**-घर मे प्रवेश करे अथवा। **ओभासिज्ज वा**- याचना करे-दाता से मागे। **एय**-यह निश्चय ही साधु अथवा साध्वी का। **सामग्गिय**-समग्र-सम्पूर्ण साधुत्व-आचार है। **त्तिबेमि**-ऐसा मै कहता हू।

मूलार्थ—**साधु या साध्वी भिक्षा के निमित्त ग्रामादि मे जाते हुए गृहपति के घर मे प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि यहा पर शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, ग्राम याचक और अतिथि लोग प्रवेश किए हुए है, तो वह उनको लाघ कर गृहपति कुल मे न तो प्रवेश करे और न गृहस्थ से आहारादि की याचना करे। परन्तु उनको देखकर एकान्त स्थान मे– जहा कोई आता-जाता न हो। वहा पर जाकर ठहर जाए, जब वह यह जान ले कि गृहस्थ ने भिक्षा देकर या बिना दिए ही उनको घर से निकाल दिया है, तो उनके चले जाने पर वह साधु या साध्वी उसके घर मे प्रवेश करे और आहार आदि की याचना करे। यही साधु या साध्वी का सम्पूर्ण आचार है। ऐसा मै कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ के द्वार पर पहले से ही शाक्यादि मत के भिक्षु खडे है, तो मुनि उन्हे उल्लघ कर गृहस्थ के घर मे प्रवेश न करे और न आहार आदि पदार्थों की याचना करे। उस समय वह एकान्त मे ऐसे स्थान पर जाकर खडा हो जाए, जहा पर गृहस्थादि की दृष्टि न पडे। और जब वे अन्य मत के भिक्षु भिक्षा लेकर वहा से हट जाए या गृहस्थ उन्हे

बिना भिक्षा दिए ही वहा से हटा दे, तब मुनि उस घर मे भिक्षार्थ जा सकता है और निर्दोष एव एषणीय आहार आदि पदार्थ ग्रहण कर सकता है।

अन्य मत के भिक्षुओ को उल्लघकर जाने से गृहस्थ के मन मे भी द्वेष-भाव आ सकता है कि यह कैसा साधु है, इसे इतना भी विवेक नहीं है कि पहले द्वार पर खडे व्यक्ति को लाघ कर अन्दर आ गया है। उसके मन मे यह भी आ सकता है कि क्या भिक्षा के लिए सभी भिक्षुओ को मेरा ही घर फालतू मिला है। और गृहस्थ भक्तिवश मुनि को देखकर उन्हे पहले आहार देने लगेगा तो इससे उन भिक्षुओ की वृत्ति मे अतराय पडेगी। और इस कारण वे गृहस्थ को पक्षपाती कह सकते है और साधु को भी बुरा-भला कह सकते हैं। अत मुनि को ऐसे समय पर एकान्त स्थान मे खडे रहना चाहिए, किन्तु अन्य मत के भिक्षुओ एव अन्य भिखारियो को उल्लघ कर किसी भी गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट नही होना चाहिए

यदि साधु के प्रवेश करने के पश्चात् कोई अन्य मत का भिक्षु या भिखारी आता हो तो उस साधु के लिए उस घर से आहार लेने का निषेध नही है। प्रस्तुत सूत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि उस युग मे सभी घरो मे सब तरह के भिक्षुओ को दान देने की परम्परा नही थी। कई व्यक्ति भिक्षुओ को बिना कुछ दिए ही खाली हाथ लौटा देते थे।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझनी चाहिए।

॥ पञ्चम उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
षष्ठ उद्देशक

पञ्चम उद्देशक मे अन्य मत के भिक्षुओ को लाघ कर जाने का निषेध किया गया है। अब प्रस्तुत उद्देशक मे अन्य प्राणियो की वृत्ति मे अन्तराय डालने का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं पुण जाणिज्जा–रसेसिणो–बहवे पाणा घासेसणाए संथडे संनिवइए पेहाए, तंजहा– कुक्कुडजाइयं वा सूयरजाइयं वा अग्गपिंडंसि वा वायसा संथडा संनिवइया पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव नो उज्जुयं गच्छिज्जा ॥३१॥

छाया– स भिक्षुर्वा तद् यत् पुन जानीयात्- रसैषिण बहव प्राणा - प्राणिन· ग्रासार्थं सस्कृतान् (सस्तृतान्) सनिपतितान् प्रेक्ष्य-तद्यथा-कुक्कुटजातिक वा शूकरजातिकं वा अग्रपिडे वा वायसान् सस्कृतान् (संस्तृतान्) सनिपतितान् प्रेक्ष्य सति पराक्रमे संयतः न ऋजुक गच्छेत्।

पदार्थ– से–वह। भिक्खू वा ४– साधु अथवा साध्वी। से ज पुण जाणिज्जा–जो फिर मार्ग आदि को जाने कि मार्ग मे । बहवे–बहुत से। पाणा–प्राणी–जीव जन्तु। रसेसिणो–रस की गवेषणा करने वाले। घासेसणाए–आहार के लिए। सथडे–एकत्रित हो रहे है। सनिवइए–मार्ग मे बैठे हुए है, उनको। पेहाए–देख कर। तजहा–जैसे कि। कुक्कुडजाइय वा–कुक्कुड़ की जाति के जीव अथवा। सूयरजाइय वा–सूअर की जाति के। वा–अथवा। अग्गपिडसि–अग्रपिड आहार को खाने के लिए। वायसा–कौवे। सथडा–एकत्रित हो रहे है या। सनिवइया–मार्ग मे बैठे हुए है, तो इन सबको। पेहाए–देखकर। सइ परक्कमे–मार्गान्तर–अन्य मार्ग के होने पर। सजयामेव–सयत–साधु। उज्जुय–सरल मार्ग से अर्थात् उन जीवो के सन्मुख होकर। नो गच्छिज्जा–न जाए।

मूलार्थ—साधु या साध्वी मार्ग मे जाते हुए यदि यह जान ले कि रस की गवेषणा करने वाले बहुत से प्राणी एकत्रित होकर मार्ग मे खड़े हुए है– जैसे कि कुक्कुट जाति के जीव, शूकर-सूअर जाति के तथा अग्रपिड के भोजनार्थ मार्ग मे एकत्र होकर बैठे हुए कौवे आदि जीव रास्ते मे बैठे है, तो इनको देखकर साधु या साध्वी अन्य मार्ग के होते हुए उस मार्ग से न जाए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जिस रास्ते मे भोजन की कामना से कुक्कुट

आदि पक्षी या सूअर आदि पशु बैठे हो या अग्रपिड के भक्षणार्थ कौवे आदि एकत्रित होकर बैठे हो तो अन्य रास्ते के होते हुए मुनि को उन्हे उल्लघकर उस रास्ते से नहीं जाना चाहिए। क्योकि मुनि को देखकर वे पशु-पक्षी भय के कारण इधर-उधर भाग जाएगे या उड जाएगे। इससे उन्हें प्राप्त होने वाले भोजन मे अतराय पडेगी और साधु के कारण उनके उडने या भागने से वायुकायिक जीवो एव अन्य प्राणियो की अयत्ना (हिसा) होगी। और कभी वे पशु जगल मे भाग गए और हिस्र जन्तु की लपेट मे आ गए तो उनका वध भी हो जाएगा। अत साधु को जहा तक अन्य पथ हो तो ऐसे रास्ते से आहार आदि के लिए नहीं जाना चाहिए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साधु का जीवन दया एव रक्षा की भावना से कितना ओत-प्रोत होता है। यही साधुता का आदर्श है कि उसका जीवन प्रत्येक प्राणी के हित की भावना से भरा होता है। वह स्वय कष्ट सह लेता है, परन्तु अन्य प्राणियो को कष्ट नहीं देता।

गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने के बाद साधु को वहा किस वृत्ति से खडे होना चाहिए, इस सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्- से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठेसमाणे नो गाहावइकुलस्स दुवारसाहं अवलंबिय २ चिट्ठिज्जा, नो गा॰ दगच्छड्डणमत्तए चिट्ठिज्जा, नो गा॰ चंदणिउयए चिट्ठिज्जा, नो गा॰ सिणाणस्स वा वच्चस्स वा संलोए सपडिदुवारे चिट्ठिज्जा, नो आलोयं वा, थिग्गलं वा, संधिं वा, दगभवणं वा, बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए वा उद्दिसिय २ उण्णमिय २ अवनमिय २ निज्झाइज्जा, नो गाहावइं अंगुलियाए उद्दिसिय २ जाइज्जा, नो गा॰ अंगुलियाए चालिय २ जाइज्जा, नो गा॰ अं॰ तज्जिय २ जाइज्जा, नो॰ गा॰ अं॰ उक्खुलंपिय (उक्खलुंदिय) २ जाइज्जा, नो गाहावइं वंदिय २ जाइज्जा, न वयणं फरुसं वइज्जा।३२।

छाया- स भिक्षुर्वा यावत् न गृहपतिकुलस्य द्वारशाखाम् अबलंब्य तिष्ठेत् न गृहपति॰ उदकप्रतिष्ठापनमात्रके तिष्ठेत् न गृ॰ आचमनोदके तिष्ठेत् न गृ॰ स्नानस्य वा वर्च्चस्य वा संलोके तत् प्रतिद्वारे तिष्ठेत् न॰ आलोकस्थान वा थिग्गल वा सन्धिं वा उदकभवनं वा बाहून् प्रगृह्य २ अंगुल्योद्दिश्य वा उन्नम्य २ अवनम्य २ निध्यापयेत् न गृहपतिं अंगुल्योद्दिश्य २ याचेत् नो गृहपतिं अंगुल्या चालयित्वा याचेत् नो गृहपतिं अंगुल्या तर्जयित्वा याचेत् नो गृहपति अगुल्या कंडूयित्वा याचेत् न गृहपतिं वंदित्वा याचेत्, न वचनं परुषं वदेत्।

पदार्थ- **से**-वह। **भिक्खू वा २**- साधु अथवा साध्वी। **जाव**-यावत् भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर। **गाहावइकुलस्स**-गृहस्थ के घर की। **दुवारसाह**-द्वार शाखा को। **अवलंबिय २**-अवलम्बन करके-बार-बार पकड़ कर। **नो चिट्ठिज्जा**-खड़ा न हो। **गा॰**-गृहपति के घर। **दगच्छड्डणमत्तए**-जहा पर उपकरणो-

बर्तनो के धोवन का पानी गिराया जाता हो वहा पर। **नो चिट्ठिज्जा**-खड़ा न हो तथा। **गा०**-गृहपति के घर मे। **चदणिउयए**-जिस स्थान पर आचमन-पीने का पानी बहाया जाता हो या बहता हो वहा पर। **नो चिट्ठिज्जा**-खड़ा न हो। **गा०**-गृहपति के घर मे। **सिणाणस्स वा**-जहा स्नान किया जाता हो वहा पर अथवा। **वच्चस्स वा**-जहा मलोत्सर्ग किया जाता हो या। **संलोए**-दृष्टि पड़ती हो तात्पर्य यह कि जहा स्नान करते या मलोत्सर्ग करते हुए गृहस्थ पर दृष्टि पड़ती हो ऐसे स्थान पर तथा। **सपडिदुवारे**-दरवाजे के सामने। **नो चिट्ठिज्जा**-खड़ा न हो तथा। **गा०**-गृहपति कुल के। **आलोय वा**-गवाक्ष आदि को। **थिग्गल वा**-किसी गिरे हुए भित्ति प्रदेश को फिर से सस्कारित किया हो उसको तथा। **सधि वा**-चोर आदि के द्वारा तोड़ी हुई भीत का जहा फिर से अनुसधान किया गया हो उसको अथवा। **दगभवण वा**-उदक भवन जल का घर, उसको। **बाहाओ**-भुजाओ को। **पगिज्झिय २**-बार-बार पसार कर। **अगुलियाए वा**-अगुली को। **उद्दिसिय २**-उद्देश कर और। **उण्णमिय २**-काया को ऊची कर। **अवनमिय २**-काया को नीची करके। **नो निज्झाइज्जा**-न देखे और न दूसरो को दिखाए। **गाहावइं अगुलियाए**-वह भिक्षु गृहपति कुल मे प्रविष्ट होने पर गृहपति को अगुली से। **उद्दिसिय**-नितान्त उद्देश्य करके। **नो जाइज्जा**-याचना न करे न मागे। **गा०**-गृहपति के घर मे। **अंगुलियाए चालिय**-अगुली को चलाकर। **नो जाइज्जा**-याचना न करे। **गा० अ०**-गृहपति के घर मे अगुली से। **तज्जिय**-तर्जना करके-भय दिखाकर। **नो जाइज्जा**-न मागे। **गा० अ०**-गृहपति के कुल मे अगुली से अगोपागो को। **उक्खुलपिय उक्खुलपिय**-खुजाकर। **नो जाइज्जा**-न मागे। **गाहावइ**-गृहपति की। **वदिय २**-बार-बार स्तुति करके प्रशसा करके। **नो जाइज्जा**-याचना न करे, तथा भिक्षादिक के न देने पर उसे। **फरुस**-कठोर। **वयण**-वचन। **नो वइज्जा**-न बोले।

***मूलार्थ*—आहार आदि के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी गृहस्थ के घर के द्वार को पकड़ कर खडा न हो, जहा बर्तनो को माज-धोकर पानी गिराया जाता हो, वहा खड़ा न हो, जहा पीने का पानी बह रहा हो या बहाया जाता हो तो वहा खड़ा न हो। जहा स्नानघर, पेशाबघर या शौचालय हो वहा एव उसके सामने खडा न हो और गृहस्थ के झरोखो को, दुबारा बनाई गई दीवारो को, दो दीवारो की सन्धि को और पानी के कमरे को अपनी भुजाए फैलाकर या अगुली का निर्देश करके या शरीर को ऊपर या नीचे करके न तो स्वय देखे और न अन्य को दिखाए। और गृहस्थ को अगुली से निर्देश करके [जैसे कि यह अमुक खाद्य वस्तु मुझे दो] आहार की याचना न करे। इसी तरह अगुली चलाकर या अगुली से भय दिखाकर या अगुली से शरीर को खुजाते हुए या गृहस्थ की प्रशसा करके आहार की याचना न करे और कभी गृहस्थ के आहार न देने पर उसे कठोर वचन न कहे।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट मुनि को चञ्चलता एव चपलता का त्याग करके स्थिर दृष्टि से खडे होना चाहिए। इसमे बताया गया है कि मुनि को गृहस्थ के द्वार की शाखा को पकड कर खडा नही होना चाहिए। क्योकि यदि वह जीर्ण है तो गिर जाएगी, इससे मुनि को भी चोट लगेगी, उसके सयम की विराधना होगी और अन्य प्राणियो की भी हिसा होगी। वह जीर्ण तो नहीं है, परन्तु कमजोर है तो आगे-पीछे हो जाएगी, इस तरह उसको पकडकर खडे होने से

अनेक तरह के दोष लगने की सम्भावना है। इसी तरह मुनि को उस स्थान पर भी खडे नहीं रहना चाहिए जहा बर्तनो को माज-धो कर पानी गिराया जाता है, स्नानघर , शौचालय या पेशाबघर है। क्योकि ऐसे स्थान पर खडे रहने से प्रवचन की जुगुप्सा-घृणा होने की सम्भावना है। और स्नानघर आदि के सामने खडे होने से गृहस्थो के मन मे अनेक तरह की शकाए पैदा हो सकती हैं। इसी प्रकार झरोखों, नव निर्मित दीवारो या दीवारो की सन्धि की ओर देखने से साधु के सभ्य व्यवहार मे कुछ दोष आता है।

भिक्षा ग्रहण करते समय अगुली आदि से सकेत करके पदार्थ लेने से साधु की रस लोलुपता प्रकट होती है और तर्जना एव प्रशसा द्वारा भिक्षा लेने से साधु के अभिमान एव दीन भाव का प्रदर्शन होता है। अत· साधु को भिक्षा ग्रहण करते समय किसी भी तरह की शारीरिक चेष्टाए एव सकेत नहीं करने चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि कोई गृहस्थ साधु को भिक्षा देने से इन्कार कर दे तो साधु को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए और न उन्हे कटु एव कठोर वचन ही कहना चाहिए। साधु का यह कर्त्तव्य है कि वह बिना कुछ कहे एव मन मे भी किसी तरह की दुर्भावना लाए बिना तथा सक्लेश का सवेदन किए बिना शान्त भाव से गृहस्थ के घर से बाहर आ जाए।

इस सूत्र से साधु जीवन की धीरता, गम्भीरता, निरभिमानता, अनासक्ति एव सहिष्णुता का स्पष्ट परिचय मिलता है और इन्ही गुणो के विकास मे साधुता स्थित रहती है। इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- अह तत्थ कंचि भुंजमाणं पेहाए गाहावइं वा° जाव कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा- आउसोत्ति वा भइणित्ति वा दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं भोयणजायं ! से सेवं वयंतस्स परो हत्थं वा मत्तं वा दव्विं वा भायणं वा सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पहोइज्ज वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसोत्ति वा भइणित्ति वा ! मा एयं तुमं हत्थं वा ४ सीओदगवियडेण वा २ उच्छोलेहि वा २ अभिकंखसि मे दाउं एवमेव दलयाहि से सेवं वयंतस्स परोहत्थं वा ४ सीओ° उसि° उच्छोलित्ता पहोइत्ता आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारेणं पुरेकम्मएणं हत्थेण वा ४ असणं वा ४ अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। अह पुणेवं जाणिज्जा नो पुरेकम्मएणं उदउल्लेणं तहप्पगारेणं वा उदउल्लेण (ससिणिद्धेण) वा हत्थेण वा ४ असणं वा ४ अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा। अह पुणेवं जाणिज्जा-नो उदउल्लेण ससिणिद्धेण सेसं तं चेव, एवं ससरक्खे उदउल्ले ससिणिद्धे मट्टियाउसे। हरियाले हिंगुलुए मणोसिला अंजणे लोणे ॥१ ॥

गेरुय वन्निय सेढिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस उक्कुट्ठ संसट्ठेण। अह पुणेवं जाणिज्जा नो असंसट्ठे संसट्ठे, तहप्पगारेण संसट्ठेण हत्थेण वा ४ असणं वा ४ फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा ॥३३ ॥

छाया– अथ तत्र कचन भुजान प्रेक्ष्य गृहपतिं वा यावत् कर्मकरीं वा स पूर्वमेव आलोचयेत्, आयुष्मन् ! इति वा भगिनि ! इति वा दास्यसि मे इतः अन्यतर भोजनजातम् ? स तस्यैवं वदत पर. हस्त वा मात्र वा दर्वीं वा भाजनं वा शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उत्क्षालयेत्-प्रक्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, स पूर्वमेव आलोचयेत्-आयुष्मन् ! इति वा भगिनि ! इति वा मा एव त्व हस्त वा ४ शीतोदकविकटेन वा २ उत्क्षाल्य वा २ अभिकांक्षसि मे दातु एवमेव ददस्व ? स तस्यैव वदत पर· हस्त वा ४ शीतोदक॰ उष्णोदक॰ उत्क्षाल्य प्रधावव्य आहृत्य दद्यात, तथाप्रकारेण पूर्वकर्मणा हस्तेन वा ४ अशनं वा ४ अप्रासुकं ४ यावत् नो प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुनरेवं जानीयात्-नो पुरः कर्मणा उदकार्द्रेण तथा प्रकारेण वा उदकार्द्रेण सस्निग्धेन वा हस्तेन वा ४ अशनं वा ४ अप्रासुकं यावत् न प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुनरेव जानीयात् न उदकार्द्रेण सस्निग्धेन् शेष तच्चैव एव सरजस्केन उदकार्द्रेण सस्निग्धेन ससिनग्धा मृत्तिका उषः (क्षारमृत्तिका) हरिताल, हिंगुलकं मन. शिला अञ्जन लवणम्। गैरिक वर्णिक सेटिक सौराष्ट्रिक पिष्ट कुक्कुस उत्कृष्ट सस्पृष्टेन। अथ पुनरेव जानीयात्-न अससृष्ट ससृष्ट· तथाप्रकारेण ससृष्टेन हस्तेन वा ४ अशन वा ४ प्रासुकं यावत् प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– अह-अथ भिक्षु। तत्थ-गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर वहा। कचि-किसी गृहस्थ को। भुजमाण-खाते हुए को। पेहाए-देखकर जैसे कि। गाहावइ वा-गृहपति उसकी पत्नी। जाव-यावत्। कम्मकरिं-कर्मकरी। से-वह भिक्षु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोएज्जा-विचार करे और कहे। आउसोत्ति वा-हे आयुष्मन् गृहपते ! अथवा। भइणित्ति वा-हे भगिनि ! हे बहिन ! मे-मुझे। इत्तो-इस आहार मे से। अन्नयरं-अन्यतर। भोयणजाय-भोजन। दाहिसि-देगी? से-यह अथ के अर्थ मे है। से एव-उसके इस प्रकार। वयंतस्स-कहने पर। परो-गृहपति आदि यदि। हत्थ वा-हाथ को। मत्त वा-पात्र को। दव्वि वा-दर्वी-कड़छी को। भायण वा-अथवा अन्य भाजनादि को। सीओदगवियडेण वा-निर्मल शीतल जल से। उसिणोदगवियडेण वा-थोड़े उष्ण जल से अर्थात् मिश्रित पानी से। उच्छोलिज्ज वा-एक बार धोवे-। पहोइज्ज वा-अथवा बार-बार धोवे तब। से-वह-भिक्षु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोइज्जा-धोने के लिए तत्पर हुए को देखकर विचार करे और इस प्रकार कहे। आउसोत्ति वा-हे आयुष्मन् ! गृहपते ! भइणित्ति वा-हे भगिनि !-हे बहिन ! एय तुमं-तुम इस प्रकार। हत्थ वा ४-हाथ पात्र और और अन्य भोजन आदि को। सीओदगवियडेण वा-शीतल जल से अथवा उष्ण-थोड़े गर्म जल से या मिश्रित जल से। मा उच्छोलेहि वा २-एक बार अथवा बार-बार प्रक्षालन न करो। मे-दाउ अभिकखसि-यदि तुम मुझे आहार देना चाहती हो तो। एवमेव-इसी प्रकार अर्थात् बिना ही हस्तादि के

प्रक्षालन किए। **दलयाहि**-दे दो। **से**-अथ। **सेवं वयंतस्स**-उस भिक्षु के इस प्रकार बोलने पर। **परो**-गृहस्थादि। **हत्थं वा ४**-हस्त, पात्र और भाजनादि को। **सीओ॰**-शीतोदक से अथवा। **उसि॰**-उष्णोदक से। **उच्छोलित्ता**-धोकर। **पहोइत्ता**-बार-बार धोकर तथा धोने के अनन्तर। **आहट्टु**-भोजन लाकर यदि। **दलइज्जा**-देवे तो। **तहप्पगारेणं**-तथा प्रकार के। **पुरेकम्मएणं**-जिनका पहले ही धोवन आदि किया गया है। **हत्थेण वा**-हस्तादि से। **असणं वा ४**-लाए हुए अशनादिक चतुर्विध आहार को। **अफासुय**-अप्रासुक जानकर। **जाव**-यावत्। **नो पडिग्गाहिज्जा**-साधु ग्रहण न करे। **अह**-अथ-यदि। **पुण**-फिर। **एवं**-इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने। **नो पुरेकम्मएण**-हस्तादि का प्रक्षालन नहीं किया, अर्थात् साधु को भिक्षा देने के निमित्त हस्तादि नहीं धोए। किन्तु वे पहले ही। **उदउल्लेण वा**-जल से आर्द्र-गीले है। **तहप्पगारेणं**-तथा प्रकार के। **उदउल्लेण वा**-जल से आर्द्र-गीले हैं उनसे या। **हत्थेण वा**-हाथ आदि से लाया हुआ। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार, यदि गृहस्थ दे तो उसे। **अफासुयं**-अप्रासुक जानकर। **जाव**-यावत्। **नो पडिग्गाहिज्जा**-साधु ग्रहण न करे। **अह**-अथ-यदि। **पुणेवं**-फिर इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने कि। **नो उदउल्लेण**-हाथ आदि जल से आर्द्र-गीले नहीं हैं और। **ससिणिद्धेण**-स्निग्ध हस्तादि से गृहस्थी आहार दे तो ग्रहण कर लेवे। **सेस तं चेव**-शेष वही जानना अर्थात् जलादि से आर्द्र अथवा स्निग्ध हाथ से यदि गृहस्थ साधु को अशनादि चतुर्विध आहार दे तो वह उसे स्वीकार न करे। **एव**-इसी प्रकार। **ससरक्खे उदउल्ले**-रजो युक्त आर्द्र पानी। **ससिणिद्धे मट्टिया**-उसे-स्नेह युक्त साधारण मृत्तिका एव क्षार मृत्तिका। **हरियाले**-हरिताल। **हिंगुलुए**-शिगरफ। **मणोसिला**-मन शिला। **अजणे**-अजन। **लोणे**-लवण। **गेरुय**-गेरु से। **बन्निय**-पीली मिट्टी से। **सेढिय**-खड़िया मिट्टी से। **सोरट्ठिय**-तुवरिकासे। **पिट्ठ**- बिना छाने हुए चूर्ण से। **कुक्कुस**-चूर्ण के छान से। **उक्कुट्ठ ससट्ठेण**-पीलु पर्णिका आदि वनस्पति के चूर्ण से स्पर्शित हाथो से अथवा कालिगादि फल के सूक्ष्म खण्डो से स्पर्शित हाथो से। **अह पुणेवं**-अथ-यदि फिर इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने कि। **नो अससट्ठे**-सचित्त पदार्थों से हाथ का स्पर्श नहीं हुआ है। **संसट्ठे**-देने योग्य पदार्थों से हाथ सस्पृष्ट है-हाथ का स्पर्श है। **तहप्पगारेणं**-तथा प्रकार के। **ससट्ठेण**-सस्पृष्ट स्पर्शित। **हत्थेण वा ४**-हाथों से। **असणं वा ४**-वह गृहस्थ आहार-पानी आदि दे रहा है तो। **फासुयं**-उसे प्रासुक जानकर। **जाव**-यावत्-**पडिग्गाहिज्जा**-साधु ग्रहण कर ले।

मूलार्थ—गृहपति कुल में प्रवेश करने पर साधु या साध्वी यदि किसी व्यक्ति को भोजन करते हुए देखे तो गृहपति या उसकी पत्नी, पुत्र या पुत्री एव अन्य काम करने वाले व्यक्तियो को अपने मन में सोच-विचार कर कहे कि हे आयुष्मन्! गृहस्थ! अथवा हे बहिन! तुम इस भोजन मे से कुछ भोजन मुझे दोगे? उस भिक्षु के इस प्रकार बोलने पर यदि वह गृहस्थ अपने हाथ को, पात्र को अथवा कड़छी या अन्य किसी बर्तन विशेष को निर्मल जल से या थोड़े उष्णजल से (मिश्र जल) से एक बार या एक से अधिक बार धोने लगे तो वह भिक्षु पहले ही उसे देखकर और विचार कर कहे कि आयुष्मन् गृहपते या भगिनि बहिन! तू इस प्रकार शीतल अथवा अल्प उष्ण जल से अपने हाथ एवं बर्तनादि का प्रक्षालन मत कर! यदि तू मुझे भोजन देना चाहती है तो ऐसे

ही दे दे। उस भिक्षु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ आदि शीतल या थोड़े उष्णजल से हस्तादि का एक अथवा अनेक बार प्रक्षालन करे और तदनन्तर अशनादि चतुर्विध आहार लाकर दे तो इस प्रकार के गीले हाथ आदि से लाए गए आहार को अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर मे भिक्षार्थ प्रविष्ट हुआ साधु यदि यह जाने कि गृहस्थ ने साधु को भिक्षा देने के लिए हस्तादि का प्रक्षालन नहीं किया है किन्तु किसी दूसरे ही अनुष्ठान से-काम से हस्त आदि जल से आर्द्र हो रहे हैं, ऐसे हाथो से या पात्र से (जो जल से आर्द्र अथवा स्निग्ध हों) लाकर दिया गया भोजन भी अप्रासुक होने से साधु ग्रहण न करे।

यदि गृहस्थ के हाथ या पात्र आदि जल से आर्द्र नहीं है, उनसे जल बिन्दु भी नहीं टपकते है किन्तु जल से स्निग्ध है-कुछ गीले से है। तो भी उन हाथो से दिया गया अशनादिक चतुर्विध आहार अप्रासुक जान कर साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार सचित्त रज से, सचित्त जल मे स्निग्ध हस्तादि, सचित्त मिट्टी , खारी मिट्टी, हरिताल, हिगुल, सिंगरफ, मनसिल, अजन, लवण, गेरु, पीली मिट्टी, खड़िया मिट्टी, तुवरिंका, पिष्ट-बिना छाना तन्दुल चूर्ण,कुक्कुस चूर्ण का छाणस और पीलु पर्णिका के आर्द्र पत्रो का चूर्ण इत्यादि से युक्त हस्तादि से दिए गए आहार को भी साधु ग्रहण न करे। परन्तु यदि उनके हाथ सचित्त जल, मिट्टी आदि से संसृष्ट युक्त नहीं है किन्तु जो पदार्थ देना है उसी पदार्थ से हस्तादि का स्पर्श हो रहा है तो ऐसे हाथो एव बर्तन आदि से दिया गया आहार-पानी प्रासुक होने से साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि साधु गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होते समय यह देखे कि गृहपति या उसकी पत्नी या पुत्र या पुत्री या दास-दासी भोजन कर रहा है, तो वह उसे यदि वह गृहपति या उसका पुत्र है तो हे आयुष्मन् ! और यदि वह स्त्री है तो हे बहन !, भगिनि ! आदि सम्बोधन से सम्बोधित करके पूछे कि क्या तुम मुझे आहार दोगे या दोगी ? इस पर यदि वह व्यक्ति शीतल(सचित्त) जल से या स्वल्प-उष्ण (मिश्र) जल से अपने हाथ धोकर आहार देने का प्रयत्न करे, तो उसे ऐसा करते हुए देखकर कहे कि इस तरह सचित्त एव मिश्र जल से हाथ धोकर आहार न दे, बिना हाथ धोए ही दे दे। इस पर भी वह न माने और उस जल से हाथ धोकर आहार दे तो उस आहार को अप्रासुक समझ कर साधु उसे ग्रहण न करे।

यदि गृहस्थ ने साधु को आहार देने के लिए सचित्त जल से हाथ नहीं धोए हैं, परन्तु अपने कार्यवश उसने हाथ धोए हैं और अब वह उन गीले हाथो से या गीले पात्र से आहार दे रहा है तब भी साधु उस आहार को ग्रहण न करे। इसी तरह सचित्त रज, मिट्टी, खार आदि से हाथ या पात्र भरे हो तो भी उन हाथो या पात्र से साधु आहार ग्रहण न करे। यदि किसी व्यक्ति ने सचित्त जल से हाथ या पात्र नहीं धोए हैं और उसके हाथ या पात्र गीले भी नहीं हैं या अन्य सचित्त पदार्थों से सस्पृष्ट नहीं हैं, तो ऐसे प्रासुक एव एषणीय आहार को साधु ग्रहण कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त **'उदउल्ले और ससिणिद्धे'** शब्द मे इतना ही अतर है कि पानी से धोने के

बाद जिस हाथ से जल की बूदे टपकती हो उसे जलार्द्र कहते हैं और जिससे बूदे नहीं टपकती हो परन्तु गीला हो उसे स्निग्ध कहते हैं।

आचाराग की कुछ प्रतियों मे 'अफासुय' के साथ 'अणेसणिज्ज' शब्द भी मिलता है, वृत्तिकार ने भी अप्रासुक और अनेषणीय आहार लेने का निषेध किया है। यहा पर यह प्रश्न हो सकता है कि प्रासुक शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है- निर्जीव[1]। अत अप्रासुक का अर्थ हुआ सजीव पदार्थ। अत सचित्त जल से हाथ या पात्र धोने मात्र से पदार्थ अप्रासुक कैसे हो जाते हैं ?

इसका समाधान यह है कि प्रस्तुत प्रकरण मे इस शब्द का प्रयोग अकल्पनीय अर्थ मे हुआ है और उसके समान होने के कारण इसे भी अप्रासुक कहा गया है और मध्यम पद लोपी समास के सदृश होने से यहा इसे ग्रहण किया गया है। जैसे राजप्रश्नीयसूत्र मे वैक्रिय से उत्पन्न किए गए अचित्त पुष्पो के लिए जलज एव स्थलज शब्दो का प्रयोग किया गया है। जब कि वे जलज एव स्थलज नही हैं। परन्तु, उनके समान दिखाई देने के कारण उन्हे जलज एव स्थलज कहा गया है। इसी तरह अप्रासुक शब्द अकल्पनीय शब्द के समान होने के कारण यहा उसे ग्रहण किया गया है।

अब आहार की गवेषणा के सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा २ से जं पुण एवं जाणिज्जा पिहुयं वा बहुरयं वा जाव चाउलपलंबं वा असंजए भिक्खुपडियाए चित्तमंताए सिलाए जाव ससंताणाए कुट्टिंसु वा कुट्टन्ति वा कुट्टिस्संति वा उप्फणिंसु वा ३ तहप्पगारं पिहुयं वा॰ अफासुयं नो पडिग्गाहिज्जा ॥३४॥

छाया- स भिक्षुर्वा २ अथ पुनरेव जानीयात्-पृथुक वा बहुरजसं वा यावत् तन्दुलप्रलम्ब वा असंयत. भिक्षुप्रतिज्ञया चित्तमत्यां शिलायां यावत् सतानोपेताया अकुट्टिषुः, कुट्टन्ति वा कुट्टिष्यन्ति वा अदु. ३ वा तथाप्रकारं २ पृथुकं वा अप्रासुकं न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ- से-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। से-अथ। ज-जिस आहार आदि को। पुण-फिर। एव-इस प्रकार से। जाणिज्जा-जाने। **पिहुय वा**-शाल्यादि के कण अथवा। **बहुरय वा**-बहुत रज वाले शाल्यादि के कण। जाव-यावत्। **चाउलपलंब वा**-अर्द्धपक्व शाल्यादि कण। **असंजए**-गृहस्थ ने। **भिक्खुपडियाए**-भिक्षु को देने के लिए। **चित्तमताए सिलाए**-सचित्त शिला पर। जाव-यावत्। **ससंताणाए**-मकड़ी के जाला आदि से युक्त काष्ठ आदि पर। **कुट्टिंसु वा**-उन धान्य के दानो को कूट कर रखा है। **कुट्टति**-या कूट रहा है या। **कुट्टिस्सति वा**-कूटेगा या उसने। **उप्फणिसु वा**-साधु के निमित्त धान्यादि को भूसी से पृथक् किया है, कर रहा है या करेगा। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **पिहुय वा**-शाल्यादि कण मिलने पर साधु। **अफासुय**-उन्हे अप्रासुक जानकर। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

---

[1] प्रगता प्राणा यस्मात् स प्रासुक ।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे आहार के लिए प्रविष्ट साधु-साध्वी को यह ज्ञात हो जाए कि चावल के दाने सचित्त रज से युक्त हैं, अपक्व या गृहस्थ ने साधु के लिए सचित्त शिला पर या मकड़ी के जालो से युक्त शिला पर कूटा है, या कूट रहा है या कूटेगा। और इसी तरह यदि साधु के लिए चावलो को भूसी से पृथक किया है, कर रहा है या करेगा तो साधु इस प्रकार के चावलो को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ सचित्त रज कणो से युक्त चावल आदि अनाज के दानो को या अर्द्ध पक्व चावल आदि के दानो को सचित्त शिला पर पीस कर या वायु मे झटक कर उन दानों को साधु को दे तो साधु उन्हे अप्रासुक समझकर ग्रहण न करे। इससे समस्त सचित्त अनाज के दाने तथा सचित्त वनस्पति एव बीज आदि का समावेश हो जाता है। यदि कोई गृहस्थ इन्हे सचित्त शिला पर कूट-पीस कर दे या वायु मे झटक कर उन्हे साफ करके दे तो साधु उन्हे कदापि ग्रहण न करे।

'कुट्टिसु' आदि क्रिया पदो मे एकवचन की जगह जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है, वह आर्ष वचन होने के कारण उसे 'तिङ् प्रत्यय' का एक वचन समझना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य यह है कि सचित्त अनाज एव वनस्पति आदि तो साधु को किसी भी स्थिति मे ग्रहण नही करनी चाहिए, चाहे वह सचित्त शिला पर कूट-पीस कर या वायु मे झटक कर दी जाए या कूटने-झटकने की क्रिया किए बिना ही दी जाए। इसके अतिरिक्त यदि अचित्त अन्न के दाने, वनस्पति या बीज सचित्त शिला पर कूट-पीस कर या वायु मे झटक कर दिए जाए तो वे भी साधु को ग्रहण नही करने चाहिए।

अब आहार ग्रहण करते समय साधु को पृथ्वीकायिक जीवो की किस प्रकार यतना करनी चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं० बिलं वा लोणं उब्भियं वा लोणं अस्संजए जाव संताणाए भिंदिसु ३ रुचिंसु वा ३ बिलं वा लोणं उब्भियं वा लोणं अफासुयं० नो पडिग्गाहिज्जा ॥३५॥

छाया– स भिक्षुर्वा० यावत् सन् अथ यत्० बिलं वा लवण उद्भिदितं वा लवण असंयतः यावत् सन्तानोपेताया अभैत्सु भिन्दन्ति भेत्स्यन्ति वा, अपिषन् (पिष्टवन्त.) पिषन्ति पेक्ष्यन्ति बिल वा लवण उद्भिदित वा लवणं अप्रासुक न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु अथवा साध्वी। **जाव**-यावत्। **समाणे**-भिक्षा के लिए गृहपति के कुल मे प्रविष्ठ होने पर। **से जं०**-यह जान ले कि। **बिल वा लोणं**-खदान से उत्पन्न हुए लवण। **उब्भियं वा लोण**-अथवा समुद्र के क्षार जल से उत्पन्न हुए लवण को। **असंजए**-गृहस्थ ने। **जाव**-यावत्। **सताणाए**-सचित्त अथवा जाले आदि से युक्त शिला पर। **भिंदिसु ३**-भेदन किया है या वह भेदन कर रहा है या भेदन करेगा,

अथवा। रुचिसु वा ३-शिला आदि पर पीसा, पीसता है या पीसेगा ऐसे। **बिलं वा लोणं**-खान के लवण को। **उब्भिय वा लोणं**-समुद्र से उत्पन्न होने वाले लवण को। **अफासुय**-अप्रासुक जानकर साधु। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

मूलार्थ—**गृहस्थ के घर मे भिक्षार्थ प्रविष्ट साधु को यदि यह ज्ञात हो जाए कि खदान एवं लवण समुद्रादि के जल से उत्पन्न लवण को किसी गृहस्थ ने सचित्त एव जालो से युक्त शिला पर भेदन करके या पीस कर रखा है, या भेदन करके पीस कर रख रहा है या भेदन करके पीस कर रखेगा तो साधु को ऐसे अप्रासुक नमक को ग्रहण नहीं करना चाहिए।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि खान से एव समुद्र से उत्पन्न लवण (नमक) को साधु ग्रहण न करे। इसके साथ सैन्धव, सौवर्चल आदि सभी प्रकार का सचित्त नमक साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि कोई गृहस्थ सचित्त नमक को सचित्त शिला पर उसके टुकडे-टुकडे करके दे या उसका बारीक चूर्ण बनाकर दे तो उसे अप्रासुक समझकर ग्रहण न करे।

'बिल' शब्द खान एव 'उब्भिय' शब्द समुद्र का बोधक है। और 'भिदिसु' एव 'रुचिसु' इन उभय क्रियाओ से क्रमश खड-खड करने एव बारीक पीसने का निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त लवण शब्द से यहा उपलक्षण से समस्त सचित्त पृथ्वीकाय का ग्रहण किया गया है। अत. सयमशील साधु को पृथ्वीकायिक जीवो की यत्ना करनी चाहिए, उसे किसी भी तरह से उक्त जीवो की विराधना नहीं करनी चाहिए।

'अप्रासुक' शब्द से यह भी सूचित किया गया है कि यदि सचित्त नमक अन्य पदार्थ या शस्त्र के सयोग से अचित्त हो गया है, तो फिर वह साधु के लिए अप्रासुक एव अग्राह्य नहीं रह जाता है।

अब अग्निकाय के आरम्भ का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से भिक्खू वा० से जं० असणं वा ४ अगणिनिक्खित्तं तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं नो०, केवली बूया आयाणमेयं, अस्संजए भिक्खुपडियाए उस्सिंचमाणे वा निस्सिंचमाणे वा आमज्जमाणे वा पमज्जमाणे वा ओयारेमाणे वा उव्वत्तमाणे वा अगणिजीवे हिंसिज्जा, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पइन्ना एस हेऊ एस कारणे एसुवएसे जं तहप्पगारं असणं वा ४ अगणिनिक्खित्तं अफासुयं नो० पडि० एयं० सामग्गियं ॥३६॥

छाया— स भिक्षुर्वा अथ यत् अशनं वा ४ अग्निनिक्षिप्त तथाप्रकारं अशनं वा ४ अप्रासुक न प्रतिगृण्हीयात्। केवली ब्रूयात् आदानमेतत्, असयत. भिक्षुप्रतिज्ञया उत्सिंचन् वा निसिंचन् वा आमर्जयन् वा प्रमर्जयन् वा अवतारयन् वा अपवर्तयन् वा अग्निजीवान् हिंस्यात्। अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टा एषा प्रतिज्ञा एष हेतुः एतत् कारण, अयमुपदेशः यत् तथा प्रकारं अशनं

वा ४ अग्निनिक्षिप्तं अप्रासुकं न प्रतिगृण्हीयात् एतत् सामग्र्यम्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-यदि फिर ऐसा जाने कि। **असणं वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार जो कि। **अगणिनिक्खित्तं**-अग्नि पर रखा हुआ है। **तहप्पगारं**-इस प्रकार के। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **अफासुयं**-अप्रासुक जानकर। **नो॰**-ग्रहण न करे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **आयाणमेय**-यह कर्म आने का मार्ग है अर्थात् इससे कर्म का बन्ध होता है, यथा। **अस्संजए**-गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-भिक्षु की प्रतिज्ञा से अर्थात् भिक्षु के लिए। **उस्सिंचमाणे वा**-अग्नि पर रखे हुए पात्र मे से निकालता हुआ। **निस्सिंचमाणे वा**-अग्नि पर रखे हुए भाजन से निकलते हुए दुग्धादि को उपशान्त करता हुआ। **आमज्जमाणे वा**-अथवा उसे हस्तादि से हिलाता हुआ। **पमज्जमाणे वा**-या बार-बार हिलाता हुआ। **ओयारेमाणे वा**-अग्नि पर से उतारता हुआ। **उव्वत्तमाणे वा**-अथवा भाजन को तिरछा-टेढा करता हुआ। **अगणिजीवे**-अग्निकाय-अग्नि के जीवो की। **हिंसिज्जा**-हिंसा करता है अर्थात् उसकी इस क्रिया से अग्निकाय की हिंसा होती है। **अह**-अथ। **भिक्खूण**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठा**-पूर्वोपदिष्ट-जो पूर्व कह चुके है तीर्थंकर भाषित है। **एस पइन्ना**-यह प्रतिज्ञा। **एस हेऊ**-यह हेतु। **एस कारणे**-यह कारण। **एसुवएसे**-और यह तीर्थंकरादि का उपदेश है कि। **ज**-जो। **तहप्पगार**-इस प्रकार का। **असण वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार है जो कि। **अगणिनिक्खित्त** -अग्नि पर रखा हुआ है उसे। **अफासुय**-अप्रासुक जानकर। **नो॰** -साधु ग्रहण न करे। **एय**-यह। **सामग्गिय**-साधु वा साध्वी का सामग्र्य-सम्पूर्ण आचार है अर्थात् इसी पर उस का साधुत्व निर्भर है।

मूलार्थ—साधु या साध्वी भिक्षादि के निमित्त गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर यदि यह देखे कि अशनादिक चतुर्विध आहार अग्नि पर रखा हुआ है, तो उसे अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। क्योकि केवली भगवान कहते है कि यह कर्म आने का मार्ग है। क्योंकि गृहस्थ साधु के लिए यदि अग्नि पर रखे हुए भाजन मे से वस्तु को निकालता है, उबलते हुए दुग्धादि को जल आदि के छीटे देकर शान्त करता है, या अग्नि पर रखे हुए भाजन आदि को नीचे उतारता है अथवा टेढा करता है, तो वह अग्निकाय—अग्नि के जीवो की हिंसा करता है। अत भिक्षुओ के लिए तीर्थंकर भगवान ने पहले ही कह दिया है कि इसमे यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह कारण है और यह उपदेश है कि जो आहार अग्नि पर रखा हुआ है, उस आहार को अप्रासुक जानकर साधु-साध्वी ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ के घर आहार आदि पदार्थ आग पर रखे हुए है और उस समय साधु को अपने घर मे आया हुआ देखकर कोई गृहस्थ उस अग्नि पर स्थित आहार मे से निकाल कर दे, या वह आग पर उबलते हुए दूध को पानी के छींटो से शान्त करके या आग पर से कोई वस्तु उतार कर साधु को दे तो साधु उस आहार को अप्रासुक समझ कर ग्रहण न करे। क्योकि इन क्रियाओ से अग्निकायिक जीवो की हिसा होती है। इसलिए साधु को इस तरह की सावद्य क्रिया करते हुए कोई व्यक्ति आहार दे तो साधु उसे ग्रहण न करे।

कुछ प्रतियो मे 'अफासुय' के साथ 'अणेसणिज्ज लाभे सते' यह पाठ भी मिलता है। आगमोदय

समिति से प्रकाशित प्रति मे '**त्तिबेमि**' शब्द नहीं दिया गया है। परन्तु उद्देशक की समाप्ति होने के कारण यहा 'त्तिबेमि' शब्द ग्रहण किया गया है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ षष्ठ उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा

सप्तम उद्देशक

छठे उद्देशक मे सयम विराधना का उल्लेख किया गया था। अब प्रस्तुत उद्देशक मे सयम की, आत्मा की एव दाता की विराधना से होने वाली प्रवचन की अवहेलना का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा २ से जं॰ असणं वा ४ खंधंसि वा थंभंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मियतलंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि उवनिक्खित्ते सिया तहप्पगारं मालोहडं असणं वा ४ अफासुयं नो॰ केवली बूया आयाणमेयं, अस्संजए भिक्खुपडियाए पीढं वा फलगं वा निस्सेणिं वा उदूहलं वा आहट्टु उस्सविय दुरूहिज्जा, से तत्थ दुरूहमाणे पयलिज्ज वा पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा २ हत्थं वा पायं वा बाहुं वा उरुं वा उदरं वा सीसं वा अन्नयरं वा कायंसि इंदियजालं लूसिज्ज वा पाणाणि वा ४ अभिहणिज्ज वा वित्तासिज्ज वा लेसिज्ज वा संघसिज्ज वा संघट्टिज्ज वा परियाविज्ज वा किलामिज्ज वा ठाणाओ ठाणं संकामिज्ज वा, तं तहप्पगारं मालोहडं असणं वा ४ लाभे संते नो पडिग्गाहिज्जा, से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं असणं वा ४ कुट्ठियाओ वा कोलेज्जाओ वा अस्संजए भिक्खुपडियाए उक्कुज्जिय अवउज्जिय ओहरिय आहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं असणं वा ४ लाभे संते नो पडिग्गाहिज्जा ॥३७॥

छाया- स भिक्षुर्वा २ तद् यत्॰ अशनं वा ४ स्कन्धे वा स्तम्भे वा मंचके वा माले वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते उपनिक्षिप्त. स्यात् तथाप्रकार मालाहृत अशनं वा ४ अप्रासुक न॰ केवली ब्रूयात् आदानमेतत् , असंयत· भिक्षुप्रतिज्ञया पीठं वा फलकं वा निश्रेणिं वा उदूखल वा आहृत्य उत्सृज्य ऊर्ध्वं संस्थाप्य आरोहेत् स तत्र आरोहन् प्रचलेद् वा प्रपतेद् वा, स तत्र प्रचलन्, प्रपतन् वा हस्त वा पादं वा

बाहु वा उरुं वा उदरं वा शीर्षं वा अन्यतरत् काये इन्द्रियजाल लूषयेत्-विराधयेद् वा प्राणिनो वा (भूतानि, जीवान्, सत्वान् वा) अभिहन्याद् वा वित्रासयेद् वा लेषयेद् वा सघर्षयेद् वा सघट्टयेद् वा, परितापयेद् वा, क्लामयेद् वा स्थानात् स्थान सक्रामयेद् वा, तत् तथाप्रकारं मालाहृत, अशन वा ४ लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षु वा २ यावत् (प्रविष्ट.) सन् अथ यत् जानीयात्-अशनं वा ४ कोष्ठिकात· अधोवृत्तखाताकाराद् वा असयत भिक्षु-प्रतिज्ञया उत्कुब्ज्य अवकुब्ज्य अवहृत्य, आहृत्य दद्यात् तथाप्रकार अशन वा ४ लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा २**- साधु अथवा साध्वी। से ज०-आहार के निमित्त गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि । **असण वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार जो कि। **खधसि वा**-भीत-दीवार पर रखा हुआ। **थंभसि वा**-स्तम्भ पर रखा हुआ। **मचसि वा**-अथवा मञ्चक पर। **मालसि वा**-माल-मकान की मजिल पर। **पासायसि वा**-प्रासाद-महल पर। **हम्मियतलसि वा**-प्रासाद की भूमि पर। **अन्नयरसि वा**-अथवा अन्य कोई। *तहप्पगारसि-इसी प्रकार के।* **अतलिक्खजायसि**-*अन्तरिक्ष जात मे (जहा पर सीढी लगाकर पदार्थ* उतारा जाता है उसको अन्तरिक्ष जात कहते है) **उवनिक्खित्तेसिया**-रखा हुआ हो। **तहप्पगार**-इस प्रकार। **मालोहड**-ऊपर रखे गए पदार्थों को ऊपर से उतार कर दे रहा है, तो। **असणं वा ४**-ऐसा अशनादिक चतुर्विध आहार है उसे। **अफासुय**-अप्रासुक जानकर। **नो०**-साधु ग्रहण न करे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है कि। **आयाणमेय**-यह कर्म आने का मार्ग है जो कि। **असजए**-असयत गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-अर्थात् साधु को आहार देने के लिए। **पीढ वा**-पीठ चौकी आदि को। **फलग वा**-पट्टे को। **निस्सेणि वा**-अथवा सीढी को, **उदूहल वा**-या ऊखल को। **आहट्टु**-लाकर। **उस्सविय**-ऊचा करके। **दुरूहिज्जा**-चढे और। **से**-उस गृहस्थ का। **तत्थ**-उस स्थान पर। **दुरूहमाणे**-चढते हुए। **पयलिज्ज वा**-पाव फिसल जाए। **पवडिज्ज**-अथवा वह गिर पडे। **से**-वह गृहस्थ। **तत्थ**-उस स्थान पर। **पयलमाणे वा**-फिसलता हुआ अथवा गिरता हुआ अर्थात् उसके फिसलने या गिरने से उसका। **हत्थ वा**-हाथ। **पाय वा**-पैर। **बाहु वा**-भुजा। **उरु वा**-उरु-सत्थल। **उदर वा**-पेट। **सीस वा**-शीर्ष-सिर मे अथवा। **अन्नयरंसि वा कायसि**-शरीर के किसी अन्य। **इदियजाल**-अवयव विशेष को। **लूसिज्ज वा**-*दोष प्राप्त हो अर्थात् टूट जाए और उसके गिरने से।* **पाणाणि वा ४**-प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वो का। **अभिहणिज्ज वा**-अवहनन होता है। **वित्तासिज्ज वा**-वह उन्हे त्रास दे। **लेसिज्ज वा**-भूमि से सश्लिष्ट करे। **सघसिज्ज वा**-सघर्षित करे। **सघट्टिज्ज वा**-सघट्टा करे अथवा। **परियाविज्ज वा**-परितापना दे। **किलामिज्ज वा**-पीड़ा दे। **ठाणाओ ठाणं**-एक स्थान से दूसरे स्थान पर। **सकामिज्ज वा**-सक्रमण करे। **त**-इसलिए। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **मालोहडं**-ऊचे स्थान से उतारा हुआ। **असण-वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार। **लाभे संते**-मिलने पर भी। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा**-भिक्षु-साधु या साध्वी। **जाव समाणे**-यावत् गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **से जं**-यदि, ऐसा जाने कि। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **कुट्ठियाओ वा**-मिट्टी की कोठी से। **कोलेज्जाओ वा**-अधोवर्त्त-नीचे के प्रकोष्ठ विशेष से। **अस्संजए**-गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-भिक्षु के निमित्त। **उक्कुज्जिय**-झुक कर। **अवउज्जिय**-

बहुत नीचा होकर। ओहरिय-तिरछा-टेढा होकर। **आहट्टु**-उस वस्तु को निकालकर। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगारं**-इस प्रकार के। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **लाभे सते**-प्राप्त होने पर भी साधु। **नो पडिग्गाहिज्जा**-ग्रहण न करे-अर्थात् उक्त प्रकार से लाया गया आहार साधु न ले।

_मूलार्थ_—साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि अशनादि चतुर्विध आहार, गृहस्थ के वहा भित्ति पर, स्तम्भ पर, मंचक पर, छत पर, प्रासाद पर, कोठी आदि की छत पर तथा किसी अन्य अतरिक्षजात अर्थात् ऊचे स्थान पर रखा हुआ है तो इस प्रकार के ऊचे स्थान से उतार कर दिया गया अशनादि चतुर्विध आहार, अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। केवली भगवान कहते है कि यह कर्म बन्ध का कारण है जो कि गृहस्थ, साधु को आहार देने के लिए ऊचे स्थान पर रखे हुए आहार को उतारने के लिए चौकी, फलक, पट्टा, सीढ़ी या ऊखल आदि को लाकर, ऊचा करके ऊपर चढेगा। यदि ऊपर चढता हुआ वह गृहस्थ फिसल जाए या गिर पड़े तो फिसलते या गिरते हुए उसका हाथ, पांव, भुजा, छाती, उदर, सिर या अन्य कोई शरीर का अवयव टूट जाएगा और उसके गिरने से किसी प्राणी, भूत, जीव और सत्व आदि का अवहनन होगा, उन जीवो को त्रास उत्पन्न होगा, सक्लेश उत्पन्न होगा, सघर्ष होगा, सघट्टा होगा, आतापना या किलामना होगी और स्थान से स्थानान्तर मे संक्रमण होगा, अत इस प्रकार के मालाहृत-ऊचे स्थान से उतारे गए आहार के प्राप्त होने पर भी साधु उसे ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी आहार के निमित्त घर मे प्रविष्ट होने पर यदि यह देखे कि अशनादिक चतुर्विध आहार जिसे गृहस्थ मिट्टी की कोठी से अथवा बास आदि की कोठी से भिक्षु के लिए नीचा होकर, कुब्बा होकर या तिरछा होकर निकालता है, तो वह आहार उपलब्ध होने पर भी साधु स्वीकार न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि समतल भूमि से बहुत ऊपर या नीचे के स्थान पर आहार आदि रखा हो, वह आहार सीढी या चौकी को लगाकर या उसे ऊचा करके उस पर चढकर वहा से आहार को उतार कर दे या इसी तरह नीचे झुक कर, टेढा होकर नीचे के प्रकोष्ठ मे रखे हुए पदार्थो को निकाल कर दे तो उन्हे अप्रासुक अकल्पनीय समझ कर ग्रहण नही करना चाहिए। यहा अप्रासुक का अर्थ सचित्त नही, परन्तु अकल्पनीय है। उन अचित्त पदार्थो को अकल्पनीय इसलिए कहा गया है कि उक्त विषम स्थान से सीढी, तख्त आदि पर से उतारते समय यदि पैर फिसल जाए या सीढी व तख्त का पाया फिसल जाए तो व्यक्ति गिर सकता है और उससे उसके शरीर मे चोट आ सकती है एव अन्य प्राणियो की भी विराधना हो सकती है। इसी तरह नीचे के प्रकोष्ठ मे झुककर निकालने से भी अयतना होने की सम्भावना है, अत साधु को ऐसे विषम स्थानो पर रखा हुआ आहार-पानी ग्रहण नहीं करना चाहिए।

परन्तु, यदि उक्त स्थान पर चढने के लिए सीढिया बनी हो, किसी तरह की अयतना होने की सम्भावना न हो तो ऐसे स्थानो पर स्थित वस्तु कोई यत्नापूर्वक उतार कर दे तो साधु ले सकता है। '**पीढ वा फलग वा निस्सेणिं वा आहट्टु उस्सविय दुरूहिज्जा**' पाठ से यह सिद्ध होता है कि हिलने-डुलने

वाले साधनो पर चढकर उन वस्तुओ को उतार कर दे तो साधु को नहीं लेनी चाहिए, क्योकि उन पर से फिसलने का डर रहता है। परन्तु, स्थिर सीढियो पर से चढकर कोई वस्तु उतार कर लाई जाए या किसी स्थिर रहे हुए तख्त आदि पर चढकर उन्हे उतारा जाए तो वे अकल्पनीय नही कही जा सकती।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जिससे आत्म विराधना, सयम विराधना, गृहस्थ की विराधना एव जीवो की विराधना हो या गृहस्थ को किसी तरह का कष्ट होता हो तो ऐसे स्थान पर स्थित पदार्थ को ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि किसी भी तरह की विराधना एव किसी भी प्राणी को कष्ट नही पहुचता हो तो उस स्थान पर स्थित वस्तु साधु के लिए ग्राह्य है। वस्तुत यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि साधु के निमित्त किसी भी प्राणी को कष्ट न हो और आत्मा एव सयम की विराधना भी न हो।

पृथ्वीकाय पर स्थित आहार के विषय मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं० असणं वा० ४ मट्टियाउलित्तं तहप्पगारं असणं वा ४ लाभे संते नो०, केवली० अस्संजए भि० मट्टिओलित्तं असणं वा ४ उब्भिंदमाणे पुढविकायं समारंभिज्जा, तहा आऊ तेऊ वाऊ वणस्सइ तसकायं समारभिज्जा पुणरवि उल्लिंपमाणे पच्छाकम्मं करिज्जा, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा जाव जं तहप्पगारं मट्टिओलित्तं असणं वा ४ लाभे संते नो०।

से भिक्खू० जं० असणं वा ४ पुढविकायपइट्ठियं तहप्पगारं असणं वा० अफासुयं०। से भिक्खू० जं० असणं वा ४ आउकायपइट्ठियं चेव, एवं अगणिकायपइट्ठियं लाभे० केवली०, अस्संजए भि० अगणिं उस्सक्किय निस्सक्किय ओहरिय आहट्टु दलइज्जा अह भिक्खूणं० जाव नो पडि० ॥३८॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अथ यत् पुनरेव जानीयात् अशन वा ४ मृत्तिकावलिप्त तथा प्रकार अशन वा ४ लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत्, असंयतो भिक्षुप्रतिज्ञया मृत्तिकोपलिप्तं अशन वा ४ उद्भिन्दन् पृथ्वीकाय समारभेत् तथा तेजो वायु वनस्पति त्रसकाय समारभेत् पुनरपि अवलिपन् पश्चात्कर्म कुर्यात्, अथ भिक्षूणा पूर्वदृष्टा (एषा प्रतिज्ञा एष हेतुरेतत्कारणमयमुपदेश.) यत् तथाप्रकार मृत्तिकावलिप्त अशन वा लाभे सति- (न प्रतिगृण्हीयात्)। स भिक्षु० अथ यत्० अशन वा ४ पृथ्वीकायप्रतिष्ठितं तथाप्रकार अशनं वा ४ अप्रासुकम्०। स भिक्षु. यत्० अशन वा ४ अप्काय प्रतिष्ठित चैव, एव अग्निकाय-प्रतिष्ठित लाभे० केवली० असयत: भिक्षु० प्रतिज्ञया० अग्निं उत्सिच्य निषिच्य अवहृत्य आहृत्य दद्यात्। अथ भिक्षूणां यावत् न प्रतिगृण्हीयात्।

***पदार्थ*– से-वह। भिक्खू वा०- साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रविष्ट होने पर। से जं०-यदि यह जाने कि। असण वा-अशनादिक चतुर्विध आहार। मट्टियाउलित्तं-मिट्टी से लिप्त बर्तन में है, तो। तहप्पगारं-**

इस प्रकार के। **असणं वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार के। **लाभे सं॰**-मिलने पर भी साधु उसे ग्रहण न करे। **केवली॰**-केवली भगवान कहते है कि। **अस्सजए**-असयत-गृहस्थ। **भि॰**-भिक्षु-साधु के लिए। **मट्टिटओलित्तं**-मिट्टी से लिप्त भाजन मे रखा हुआ। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार, उसे-अर्थात् भाजन को। **उब्भिंदमाणे**-उद्भेदन करता हुआ। **पुढविकाय**-पृथ्वीकाय के जीवो का। **समारभेज्जा**-समारम्भ करता है। **तह**-तथा। **तेउवाउवणस्सइतसकाय**-अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय के जीवो का। **समारंभिज्जा**-समारम्भ करता है। **पुणरवि**-फिर। **उल्लिपमाणे**-उस भाजन को शेष द्रव्य की रक्षा के लिए लेपन करता हुआ। **पच्छाकम्म करिज्जा**-पश्चात् कर्म करता है। **अह**-अथवा। **भिक्खूण**-भिक्षुओ-साधुओ को। **पुव्वो॰**-पूवोपदिष्ट प्रतिज्ञा आदि है। **जाव**-यावत्। **तहप्पगार**-इस प्रकार का। **मट्टिओलित्त**-मिट्टी से अवलिप्त। **असण वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार है। **लाभे॰**-मिलने पर साधु उसे ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू**-साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से ज॰**-यदि इस प्रकार जाने कि। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **पुढविकायपइट्ठिय**-सचित्त पृथ्वी पर प्रतिष्ठित-रखा हुआ है। **तहप्पगार**-उस प्रकार के। **असण वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **अफासुय॰**-अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

से भिक्खू-वह साधु या साध्वी। **ज॰**-जो यह जाने कि। **असणं वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **आउकायपइट्ठिय चेव**-सचित्त पानी पर रखा हुआ है तो उसे भी पूर्व की भाति अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। **एव**-इसी प्रकार। **अगणिकायपइट्ठिय**-अग्निकाय पर प्रतिष्ठित-रखे हुए आहार को भी अप्रासुक जानकर। **लाभे॰**-मिलने पर भी उसे ग्रहण न करे। **केवली॰**-केवली भगवान कहते है। **अस्सजए**-असयत-गृहस्थ। **भि॰**-भिक्षु के लिए। **अगणि**-अग्नि मे। **उस्सक्किय**-ईन्धन डाले। **निस्सक्किय**-अथवा प्रज्वलित अग्नि मे से ईन्धन निकाले। **ओहरिय**-अग्नि पर रखे हुए भाजन को नीचे उतारे। **आहट्टु**-इस प्रकार आहार लाकर। **दलइज्जा**-साधु को दे। **अह**-अथवा। **भिक्खूण॰**-भिक्षुओ को पूर्वोपदिष्ट प्रतिज्ञा है। **जाव**-यावत्। **नो पडि॰**-वह उसे ग्रहण न करे।

_मूलार्थ_—साधु या साध्वी भिक्षा के निमित्त गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर यदि यह देखे कि अशनादि चतुर्विध आहार मिट्टी से लीपे हुए बर्तन मे स्थित है, इस प्रकार के अशनादि चतुर्विध आहार को, मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। क्योकि भगवान ने इसे कर्म आने का मार्ग कहा है। इसका कारण यह है कि गृहस्थ, भिक्षु के लिए मिट्टी से लिप्त अशनादि के भाजन को उद्भेदन करता हुआ पृथ्वीकाय का समारम्भ करता है, तथा अप्-पानी, तेज-अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय का समारम्भ करता है, फिर शेष द्रव्य की रक्षा के लिए उस बर्तन का पुन लेपन करके पश्चात् कर्म करता है, इसलिए भिक्षुओ को तीर्थंकर आदि ने पहले ही कह दिया है कि वे मिट्टी से लिप्त बर्तन मे रखे हुए अशनादि को ग्रहण न करे। तथा गृहपति कुल मे प्रविष्ट हुआ भिक्षु यदि यह जाने कि अशनादि चतुर्विध आहार सचित्त मिट्टी पर रखा हुआ है तो इस प्रकार के आहार को अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे।

वह भिक्षु यदि यह जाने कि अशनादि चतुर्विध आहार अप्काय पर रखा हुआ है तो उसे

भी अप्रासुक जान कर स्वीकार न करे। इसी प्रकार अग्निकाय पर प्रतिष्ठित अशनादि चतुर्विध आहार को भी अप्रासुक जानकर उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए। केवली भगवान कहते है कि यदि गृहस्थ भिक्षु के निमित्त अग्नि मे ईन्धन डालकर अथवा प्रज्वलित अग्नि मे से ईन्धन निकाल कर या अग्नि पर से भोजन को उतार कर, इस प्रकार से आहार दे तो साधु ऐसे आहार को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मिट्टी के लेप से बन्द किए खाद्य पदार्थ के बर्तन मे से उक्त लेप को तोडकर गृहस्थ कोई पदार्थ दे तो साधु को ग्रहण नही करना चाहिए। क्योकि इससे पृथ्वीकाय की एव उसके साथ अन्य अप्कायिक आदि जीवो की हिसा होगी और उस बर्तन मे अवशिष्ट पदार्थ की सुरक्षा के लिए उस पर पुन मिट्टी का लेप लगाने के लिए नया आरम्भ करना होगा। इस तरह पश्चात् कर्म दोष भी लगेगा। इसी तरह सचित्त पृथ्वी, पानी एव अग्नि पर रखे हुए बर्तन को उतारते हुए या ऐसा ही कोई अन्य अग्नि सम्बन्धी आरम्भ करते हुए साधु को आहार दे तो उस आहार को भी ग्रहण नही करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जिससे छ काय एव ६ मे से किसी भी एक कायिक जीवो की हिसा होती हो तो ऐसा आहार साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

अब वायुकाय की यतना के सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा २ जाव से जं॰ असणं वा ४ अच्चुसिणं, अस्संजए भि॰ सुप्पेण वा विहुयणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा फुमिज्ज वा वीइज्ज वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसोत्ति वा भइणित्ति वा! मा एतं तुमं असणं वा अच्चुसिणं सुप्पेण वा जाव फुमाहि वा वीयाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं, एमेव दलयाहि, से सेवं वयंतस्स परो सुप्पेण वा जाव वीइत्ता आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं वा नो पडि॰ ॥३९ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा२ अथ यत्॰ अशन वा॰ अत्युष्णं असयत. भिक्षुप्रतिज्ञया सूर्पेण वा वीजनेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा शाखया वा शाखाभंगेन वा वर्हेण वा (पिच्छेण वा) वर्हकलापेन वा (पिच्छहस्तेन वा) चेलेन-वस्त्रेण वा चेलकर्णेन-वस्त्रकर्णेन वा हस्तेन वा मुखेन वा फूत्कुर्याद् वा वीजयेद् वा, स पूर्वमेव आलोकयेद्-(आलोक्य) आयुष्मन्निति वा भगिनि ! इति वा मैवं त्वं अशनं वा ४ अत्युष्ण सूर्पेण वा यावत् फूत्कुरु वीजय वा, अभिकाक्षसि मे दातुं एवमेव ददस्व, स तस्यैवं वदतः पर. सूर्पेण वा यावत् वीजयित्वा आहृत्य दद्यात् तथाप्रकारं अशन वा ४ अप्रासुकं न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से-वह। भिक्खू वा- साधु अथवा साध्वी, गृहपति कुल में प्रवेश करने पर। से ज॰- यदि**

यह जाने कि। **असण वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **अच्चुसिण**-अत्युष्ण है और उसे। **अस्सजए**-गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-साधु केनिमित्त शीतल करने के लिए। **सुप्पेण वा**-छाज से। **विहुयणेण वा**-अथवा पखे से। **तालियटेण वा**-ताल पत्र से। **पत्तेण वा**-अथवा पत्र से। (**पत्तभंगेण वा**-खजूर आदि वृक्ष के पत्र खण्ड से।) **साहाए वा**-शाखा से। **साहाभगेण वा**-शाखा के खण्ड से। **पिहुणेण वा**-अथवा मयूर पिच्छ से। **पिहुणहत्थेण वा**-मयूर पिच्छ से बने हुए पखे से। **चेलेण वा**-अथवा वस्त्र से। **चेलकण्णेण वा**-वस्त्र खण्ड से। **हत्थेण वा**-हाथ से। **मुहेण वा**-अथवा मुख से। **फुमिज्ज वा**-मुख की वायु से शीतल करे। **वीइज्ज वा**-पखे आदि से शीतल करे तब। **से**-वह-साधु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोइज्जा**-ध्यान देकर देखे और विचार करे, विचार करके उसके प्रति कहे। **आउसोत्ति वा**-हे आयुष्मन्! गृहस्थ! अथवा। **भइणित्ति वा**-हे भगिनि-हे बहिन! **तुमं**-तू। **एत**-इस। **अच्चुसिण**-अत्युष्ण-गर्म। **असण वा ४**-अशनादिक आहार को। **सुप्पेण**-शूर्प-छाज से। **जाव**-यावत्। **फुमाहि**-मुख की वायु से अथवा। **मा वीयाहि**-पखे की वायु से ठण्डा मत करो! यदि तुम। **मे**-मुझे। **दाउ**-देना। **अभिकखसि**-चाहती हो तो। **एमेव**-इसी तरह-बिना शीतल किए ही। **दलयाहि**-दे दो। **से**-वह। **परो**-गृहस्थ। **सेव वयतस्स**-इस प्रकार बोलते हुए उस साधु को यदि। **सुप्पेण वा**-शूर्प और व्यजनादि से। **जाव**-यावत्। **वीइत्ता**-शीतल करके। **आहट्टु**-लाकर। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगार**-इस प्रकार के। **असण वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार को। **अफासुय वा**-अप्रासुक जान कर। **नो पडिगा०**-ग्रहण न करे।

मूलार्थ—आहार के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर यदि साधु-साध्वी यह देखे कि, गृहस्थ साधु को देने के लिए अत्युष्ण अशनादिक चतुर्विध आहार को शूर्प से, पखे से, ताड़ पत्र से, शाखा से, शाखा खड से, मयूरपिच्छ से, मयूर पिच्छ के पखे से, वस्त्र से,वस्त्र खड से, हाथ से अथवा मुख से फूक मार कर या पखे आदि की हवा से ठंडा करके देने लगे तब वह भिक्षु उस गृहस्थ को कहे कि हे आयुष्मन्-गृहस्थ! अथवा हे आयुष्मति बहिन! तुम इस उष्ण आहार को इस प्रकार पखे आदि से ठडा मत करो। यदि तुम मुझे देना चाहती हो तो ऐसे ही दे दो। साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ, उसे पखे आदि से ठडा करके दे तो साधु उस आहार को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ उष्ण पदार्थ को पखे आदि से ठण्डा करके देने का प्रयत्न करे तो साधु उसे ऐसा करने से इन्कार कर दे। वह स्पष्ट कहे कि हमारे लिए पखे आदि से किसी भी पदार्थ को ठण्डा करने की आवश्यकता नहीं है। इस पर भी वह गृहस्थ साधु की बात को न मानकर उक्त उष्ण पदार्थ को पखे आदि से ठण्डा करके दे तो साधु को उस आहार को ग्रहण नही करना चाहिए। क्योकि इस तरह की क्रिया से वायुकायिक जीवो की हिसा होती है।

अब वनस्पति काय की यतना का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्— से भिक्खू वा २ से जं० असणं वा ४ वणस्सइकायपइट्ठियं तहप्पगारं असणं वा ४ वण० लाभे संते नो पडि०। एवं तसकायमवि ॥४०॥

छाया— स भिक्षुर्वा २ अथ यत् अशनं वा ४ वनस्पतिकाय-प्रतिष्ठित तथाप्रकार

अशनं वा ४ वन० लाभे सति न० प्रति०। एवं त्रसकायमपि।

पदार्थ— **से**-वह। **भिक्खू वा**- साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने पर। **से**-वह। **ज०**-यदि इस प्रकार जाने कि। **असण वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार। **वणस्सइकायपइट्ठिय**-वनस्पतिकाय पर रखा हुआ है तो। **तहप्पगारं**-इस प्रकार के। **वण०**-वनस्पति काय पर प्रतिष्ठित। **असणं वा ४**-अशनादि चतुर्विध आहार को। **लाभे संते**-मिलने पर भी। **नो पडि०**-साधु ग्रहण न करे। **एव तसकायमवि**-इसी प्रकार त्रसकाय के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

मूलार्थ—**साधु या साध्वी, भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करते हुए यदि यह देखे कि गृहस्थ के वहा अन्नादि चतुर्विध आहार वनस्पति काय पर रखा हुआ है, तो ऐसे वनस्पतिकाय पर प्रतिष्ठित अशनादि को साधु प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। इसी प्रकार त्रसकाय के विषय मे भी जान लेना चाहिए।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि गृहस्थ के घर मे आहार वनस्पति या त्रस प्राणी (द्वीन्द्रिय आदि प्राणियो) पर रखा हो या वनस्पति आदि खाद्य पदार्थों पर रखी हो तो साधु को उस आहार को ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि साधु के निमित्त स्थावर एव त्रस किसी भी प्राणी को कष्ट हो तो साधु को ऐसा आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए।

सूत्रकार ने आहार के अन्य १ दोषो का अन्यत्र वर्णन किया है और वृत्तिकार ने उनका प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति मे ही उल्लेख कर दिया है[१]।

आहार की तरह पानी भी जीवन के लिए आवश्यक है और नदी, तालाब, कुए आदि का जल सचित्त होता है। अत साधु को कैसा पानी ग्रहण करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा तंजहा-उस्सेइमं वा १ संसेइमं वा २ चाउलोदगं वा ३ अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं अहुणाधोयं अणंबिलं अव्वुक्कंतं अपरिणयं अविद्धत्थं अफासुयं जाव नो पडिग्गाहिज्जा अह पुण एवं जाणिज्जा चिराधोयं अंबिलं वुक्कंतं परिणयं विद्धत्थं फासुयं पडिग्गाहिज्जा। से भिक्खू वा० से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा, तंजहा-तिलोदगं वा ४ तुसोदगं वा ५ जवोदगं वा ६ आयामं वा ७ सोवीरं वा ८

---

१ अत्र च वनस्पति काय प्रतिष्ठितमित्यादिना निक्षिप्ताख्या एषणादोषोऽभिहित , एवमन्येऽप्येषणादोषायथासम्भव सूत्रेष्वेवायोज्या । ते चामी–

'सकिय १, मक्खिय २, निक्खित्त ३, पिहिय ४, साहरिय ५, दायगु ६ म्मीसे ७, अपरिणय ८, लित्त ९, छड्डिय १०, एसणा दोसा दस हवति १०। ॥१॥ तत्र शंकितमाधाकर्मादिना१-म्रक्षितमुदकादिना २ निक्षिप्त पृथिवीकायादौ ३ पिहित बीजपूरकादिना ४ साहरियंतिमात्रकादेस्तुषाद्यदेयमन्यत्र सचित्त पृथिव्यादौ सहृत्य तेन मात्रकादिना यद् ददाति तत् सहृतमित्युच्यते ५ दायगत्तिदाताबालवृद्धाद्ययोग्य ६ उन्मिश्रं-सचित्तमिश्रम् ७ अपरिणतमितियद्देय न सम्यगचित्तीभूत दातृग्राहकयोर्वा न सम्यग्भावोपेतं ८ लिप्तवसादिना। ९ छड्डयति परिशाटत्वादि १० त्येषणा दोषा । —आचाराङ्ग वृत्ति

सुद्धवियडं वा ९ अन्नयरं वा तहप्पगारं वा पाणगजायं पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसोत्ति वा ! भइणित्ति वा ! दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं पाणगजायं ? से सेवं वयंतस्स परो वइज्जा-आउसंतो समणा ! तुमं चेवेयं पाणगजायं पडिग्गहेण वा उस्सिंचिया णं उयत्तिया णं गिण्हाहि, तहप्पगारं पाणगजायं सयं वा गिण्हिज्जा परो वा से दिज्जा, फासुयं लाभे संते पडिगाहिज्जा ॥४१ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ अथ यत् पुन. पानकजातं जानीयात् तद् यथाउत्स्वेदित वा १ संस्वेदित वा २ तन्दुलोदकं वा ३ अन्यतरद् वा तथाप्रकारं पानकजातं अधुना धौतं अनम्लं अब्युत्क्रान्तमपरिणतमविध्वस्तमप्रासुकं यावन्नो प्रतिगृण्हीयात्। अथ पुनरेवं जानीयात्, चिरधौतं, अम्ल व्युत्क्रान्तं परिणत ध्वस्त प्रासुकं प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षुर्वा॰ अथ यत् पुन॰ पानकजात जानीयात्, तद्यथा-तिलोदक वा ४ तुषोदक वा ५ यवोदकं वा ६ आचाम्ल वा ७ सौवीरं वा ८ शुद्धविकटं वा ९ अन्यतरत् वा तथाप्रकार वा पानकजातं पूर्वमेवालोचयेत्-आयुष्मन् ! इति वा, भगिनि ! इति वा दास्यसि मे इतोऽन्यतरत् पानकजातम् ? अथ तस्यैव वदत. परो वदेत्– आयुष्मन् श्रमण ! त्वं चैवेदं पानकजात पतद्ग्रहेण वा उत्सिच्य अपवृत्य गृहाण, तथाप्रकारं पानकजातं स्वय वा गृण्हीयात् परो वा तस्मै दद्यात्, प्रासुकं लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा**- साधु अथवा साध्वी जल के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **से जं पुण**- फिर वह। **पाणगजाय**-पानी की जाति को-पानी के भेदो को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **उस्सेइम वा**-चूर्ण से लिप्त बर्तन का धोवन, अथवा। **ससेइम वा**-तिल आदि का धोवन, अथवा जिसमे पालक आदि शाक-भाजी को उबाला गया है वह धोवन या चावलो का ओसामन। **चाउलोदगं वा**-चावलो का धोवन या। **अन्नयर वा**-अन्य कोई। **तहप्पगार**-इसी प्रकार का। **पाणगजाय**-प्रासुक धोवन आदि। **अहुणाधोयं**-तत्काल का हो। **अणबिल**-जिससे अभी तक उसका स्वाद परिवर्तित नहीं हुआ है, वह। **अव्वुक्कंत**-अपने रस से अतिक्रान्त नहीं हुआ है। **अपरिणय**-वर्णादि से परिणत नहीं हुआ है। **अविद्धत्थ**-जिसके जीव शस्त्र परिणत नहीं हुए है। **अफासुय**-उसे अप्रासुक जानकर। **जाव**-यावत् मिलने पर भी। **नो पडिग्गाहिज्जा**-साधु उसे ग्रहण न करे। **अह**-अथवा। **पुण**-फिर। **एव**-इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने कि। **चिराधोय**-जो धोवन चिर काल का है। **अंबिल**-जिसका स्वाद बदल गया है। **वुक्कंत**-अन्य रस को प्राप्त हो गया-अचित्त हो गया। **परिणय**-जिसका वर्णादि बदल गया है। **विद्धत्थ**-शस्त्र परिणत हो गया है। **फासुय**-उसे प्रासुक जानकर। **पडिग्गाहिज्जा**-साधु ग्रहण करे। **से**-वह। **भिक्खू वा॰**-साधु अथवा साध्वी। **से**-अथ। **ज**-जो। **पुण**-पुन । **पाणगजाय**-पानी के सम्बन्ध मे यह। **जाणिज्जा**-जाने। **तंजहा**-जैसे कि। **तिलोदग वा**-तिलो का धोवन। **तुसोदग वा**-अथवा तुष का धोवन। **जवोदग वा**-अथवा यवो का धोवन। **आयामग वा**-उबले हुए चावलो का धोवन। **सोवीर वा**-काजी के भाजन का धोवन। **सुद्धवियड वा**-उष्ण तथा प्रासुक पानी। **अन्नयरं वा**-या अन्य कोई। **तहप्पगारं**-

इसी प्रकार के। **पाणगजायं**-अन्य अचित्त पानी का। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोइज्जा**-अवलोकन करे-देखे और देखकर कहे। **आउसोत्ति वा**-आयुष्मन्-गृहपते! **भइणित्ति वा**-हे भगिनि ! हे बहिन ! **इत्तो**-इसमे से। **अन्नयरं**-किसी एक तरह के। **पाणगजायं**-पानी को। **मे**-मुझे। **दाहिसि**-देगी ? **से**-वह गृहपति। **से**-उस साधु को। **एव**-इस प्रकार। **वयंतस्स**-बोलते हुए को। **परो**-गृहस्थ। **वइज्जा**-कहे। **आउसंतो**-आयुष्मन्। **समणा**-श्रमण ! **तुम चेवेय**-तुम इसी। **पाणगजायं**-जल जात को। **पडिग्गहेण वा**-अपने पात्र से। **उस्सिंचिया**-नीचे उतार कर-उलीचकर। **णं**-वाक्यालकार मे है। **उयत्तिया**-पानी को नितार कर। **णं**-वाक्यालकार मे है। **गिण्हाहि**-पानी के बर्तन को पकड़ो तो। **तहप्पगार**-इस प्रकार के। **पाणगजाय**-अचित्त पानी को। **सय वा**-साधु स्वय ही। **गिण्हिज्जा**-ग्रहण करे। **वा**-अथवा। **परो**-यदि गृहस्थ। **से**-उस साधु को। **दिज्जा**-दे तो। **फासुय**-उसे प्रासुक जानकर। **लाभे सते**-मिलने पर। **पडिगाहिज्जा**-साधु ग्रहण कर ले।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर पानी के भेदो को जाने जैसे कि– चूर्ण से लिप्त बर्तन का धोवन, अथवा तिल आदि का धोवन, चावल का धोवन अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई धोवन तत्काल का किया हुआ हो। जिसका कि स्वाद चलित नहीं हुआ हो, रस अतिक्रान्त नहीं हुआ हो। वर्ण आदि का परिणमन नहीं हुआ हो और शस्त्र भी परिणत नहीं हुआ हो तो ऐसे पानी के मिलने पर भी उसे अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। यदि पुन वह इस प्रकार जाने कि यह धोवन बहुत देर का बनाया हुआ है और इसका स्वाद बदल गया है, रस का अतिक्रमण हो गया है, वर्ण आदि परिणत हो गया है और शस्त्र भी परिणत हो गया है तो ऐसे पानी को प्रासुक जानकर साधु उसे ग्रहण कर ले।**

फिर वह साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे जलार्थ प्रविष्ट होने पर जल के विषय मे इस प्रकार जाने, यथा– तिलो का धोवन, तुषो का धोवन, यवो का धोवन तथा उबले हुए चावलो का जल, काजी के बर्तन का धोवन एव प्रासुक तथा उष्ण जल अथवा इसी प्रकार का अन्य जल इनको पहले ही देखकर साधु गृहपति से कहे– आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा-[स्त्री हो तो] हे भगिनि ! क्या मुझे इन जलो मे से किसी जल को दोगी ? तब वह गृहस्थ, साधु के इस प्रकार कहने पर यदि कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! तुम इस जल के पात्र मे से स्वय उलीचकर और नितार कर पानी ले लो। गृहस्थ के इस प्रकार कहने पर साधु स्वयं ले ले अथवा गृहस्थ के देने पर उसे प्रासुक जान कर ग्रहण कर ले।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को वह पानी ग्रहण करना चाहिए जो शस्त्र परिणत हो गया है और जिसका वर्ण, गध एव रस बदल गया है। अत बर्तन आदि का धोया हुआ प्रासुक पानी यदि किसी गृहस्थ के घर मे प्राप्त हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार निर्दोष एव एषणीय प्रासुक जल गृहस्थ की आज्ञा से स्वय भी ले सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कभी गृहस्थ पानी का भरा हुआ बर्तन उठाने मे असमर्थ है और वह आज्ञा देता है तो साधु उस प्रासुक एव एषणीय पानी को स्वय ले सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे ९ तरह के पानी के नामो का उल्लेख किया गया है– १-आटे के बर्तनो का धोया

हुआ धोवन(पानी)। २-तिलो का धोया हुआ पानी, ३-चावलो का धोया हुआ पानी, ४-जिस पानी मे उष्ण पदार्थ-शाक आदि ठडे किए गए हो, वह पानी, ५-तुषो का धोया हुआ पानी, ६-यवो का धोया हुआ पानी, ७-उबले हुए चावलो का निकाला हुआ पानी, ८-काजी के बर्तनो का धोया हुआ पानी, ९-उष्ण-गर्म पानी। इसके आगे '**तहप्पगारं**' शब्द से यह सूचित किया गया है कि इस तरह के शस्त्र से जिस पानी का वर्ण, गन्ध, रस बदल गया हो वह पानी भी साधु ग्रहण कर सकता है। जैसे- द्राक्षा का पानी, राख से माजे हुए बर्तनो का धोया हुआ पानी आदि भी प्रासुक एव ग्राह्य है[१]।

इससे स्पष्ट हो गया कि साधु शस्त्र परिणत प्रासुक जल ग्रहण कर सकता है। यदि निर्दोष बर्तन आदि का धोया हुआ या गर्म पानी प्राप्त होता हो तो साधु उसे स्वीकार कर सकता है। इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं पुण पाणगं जाणिज्जा-अणंतरहियाए पुढवीए जाव संताणए उद्धट्टु २ निक्खित्ते सिया, असंजए भिक्खुपडियाए उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा सकसाएण वा मत्तेण वा सीओदगेण वा संभोइत्ता आहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं० एयं खलु सामग्गियं० त्तिबेमि ॥४२॥

छाया– स भिक्षुर्वा अथ यत् पुन. पानक जानीयात्– अनन्तर्हितायां पृथिव्या यावत् सन्तानके, उद्धृत्य २ निक्षिप्तं स्यात्, असंयतः भिक्षुप्रतिज्ञया उदकार्द्रेण वा सस्निग्धेन वा

---

१ 'उस्सेइम' और 'ससेइम'। इन दो पदो की व्याख्या वृत्तिकार एव अन्य आगम टीकाकार तथा कोषकारो ने इस प्रकार की है–

'उस्सेइम वेति' पिष्टोत्स्वेदनार्थमुदकम्।'ससेइम वेति' तिलधावनोदक, यदि वाऽरणिकादिस- स्विन्नधावनोदकम्'
– आचाराङ्ग वृत्ति।

'उत्स्वेदेन निवृत्तमुत्स्वेदिम-येन व्रीह्यादि पिष्ट सुराद्यर्थं उत्स्वेद्यते, तथा ससेकेन निर्वृत्तमति, ससेकिम' अरणिकादि पत्र शाकमुत्काल्य येन शालिजलेन ससिच्यतेतदिति।

– स्थानाग सूत्र, ३,३ वृत्ति (अभयदेव सूरि)

उस्सेइम- (उत्स्वेदिम) आटा से मिश्रित पानी, आटा धोया जल, (कप्प, ठा० ३। ३)

–प्राकृत महार्णव पृ० २३८।

ससेइम– (ससेकिम) ससेक से बना हुआ। नि० चू० १५।
उबाली हुई भाजी जिस ठण्डे जल से सींची जाए वह पानी। ठा० ३। ३ पत्र १४ कप्प।
तिलका धोवन। आचाराग २। ८४।
पिष्टोदक आटे का धोवन। दस० ५।१।७५।
उस्सेइम-(उत्स्वेदिम) आटे का धोवन। पृ० ३१३।
ससेइम-तिलादि धान्य के धोवन का पानी, जिसमे पत्र शाक आदि बाफने मे आते है या धान्य ओसावन के काम मे आता है वह पानी। – अर्धमागधी कोष, पृ० ३१३।

सकषायेण वा मात्रेण वा शीतोदकेन वा संभुक्त्वा-मिश्रयित्वा आहृत्य दद्यात् तथाप्रकारं पानकजातम् अप्रासुकं० एतत् खलु सामग्रयम्। इति ब्रवीमि।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा०**- साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से**-वह। **ज**-जो। **पुण**-फिर। **पाणगजाय**-अचित पानी के भेदोपभेद को। **जाणिज्जा**-जाने यथा। **अणतरहियाए पुढवीए**-सचित्त पृथ्वी पर। **जाव**-यावत्। **सताणए**-सन्तानक-मकड़ी के जाले आदि पर। **उद्धट्टु** २-अन्य भाजन से निकाल कर २। **निक्खित्ते सिया**-उन सचित्त पृथ्वी आदि पर रखा हुआ हो। **असजए**-असयत-गृहस्थ। **भिक्खुपडियाए**-साधु की प्रतिज्ञा से-साधु के लिए। **उदउल्लेण वा**-जल टपकते हुए हाथो से। **ससिणिद्धेण वा**-अथवा गीले हाथो से। **सकसाएण वा मत्तेण वा**-अथवा सचित्त पृथ्वी आदि से अवगुठित बर्तन से, अथवा। **सीओदगेण वा**-सचित्त जल से। **संभोइत्ता**-मिश्रित-मिला करके। **आहट्टु**-लाकर। **दलइज्जा**-दे तो साधु। **तहप्पगार**-इस प्रकार के। **पाणगजाय**-जल को। **अफासुयं०**-अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। **एय**-यह। **खलु**-निश्चय ही। **सामग्गिय**-साधुत्व है अर्थात् साधु का समग्र आचार है। **त्तिबेमि**-ऐसा मै कहता हूँ।

***मूलार्थ*—जल के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर साधु या साध्वी जल के सम्बन्ध में यदि यह जान ले कि गृहस्थ ने प्रासुक जल को सचित्त पृथ्वी से लेकर मकड़ी आदि के जालो से युक्त पदार्थ पर रखा है या उसने उसे अन्य सचित्त पदार्थ से युक्त बर्तन से निकाल कर रखा है या वह उन हाथो से दे रहा है जिससे सचित्त जल टपक रहा है या उसके हाथ जल से भीगे हुए है ऐसे हाथो से, या सचित्त पृथ्वी आदि से युक्त बर्तन से या प्रासुक जल के साथ सचित्त जल मिलाकर दे तो इस प्रकार के जल को अप्रासुक जानकर साधु उसे ग्रहण न करे। यही सयमशील मुनि का समग्र आचार है। ऐसा मै कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ के घर पर प्रासुक पानी सचित्त पृथ्वी आदि पर रखा हुआ है, या उसमे सचित्त जल मिलाया जा रहा है, या उस सचित्त जल से गीले हाथो से या सचित्त पृथ्वी या रज आदि से भरे हुए हाथो से दे रहा है, तो साधु को वह पानी नही लेना चाहिए। क्योकि उससे अन्य जीवो की हिसा होती है। अत साधु को वही प्रासुक पानी ग्रहण करना चाहिए जो सचित्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि पर न रखा हो और गृहस्थ भी इन पदार्थों से युक्त न हो।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा

अष्टम उद्देशक

सप्तम उद्देशक के अन्त मे प्रासुक पानी के विषय मे बताया गया है और प्रस्तुत उद्देशक मे भी इसी विषय का और विस्तार से विवेचन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा तंजहा-अंबपाणगं वा १० अंबाडगपाणगं वा ११ कविट्ठपाण० १२ माउलिंगपा० १३ मुद्दियापा० १४ दालिमपा० १५ खज्जूरपा० १६ नालियेरपा० १७ करीरपा० १८ कोलपा० १९ आमलपा० २० चिंचापा० २१ अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजातं सअट्ठियं सकणुयं सबीयगं अस्संजए भिक्खुपडियाए छब्बेण वा दूसेण वा वालगेण वा आवीलियाण परिवीलियाण परिसावियाण आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं पाणगजायं अफा० लाभे संते नो पडिगाहिज्जा ॥४३॥

छाया– स भिक्षुर्वा तद् यत् पुन. पानकजातं जानीयात् तद्यथा-आम्रपानकं वा १० आम्रातकपानकं वा ११ कपित्थपानकं १२ मातुलिगपानक १३ मृद्वीकापानक १४ दाडिमपानकं १५ खर्जूरपानक १६ नालिकेरपानकं १७ करीरपानक १८ कोलपानक १९ आमलपानकं २० चिंचापानकं २१ अन्यतरत् वा तथाप्रकार पानकजातं सास्थिकं सकणुकं सबीजकं असंयत भिक्षुप्रतिज्ञया छब्बकेण वा दूष्येण वा वालकेन वा आपीड्य परिपीड्य परिस्राव्य आहृत्य दद्यात् तथाप्रकारं पानकजात अप्रा० लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से–वह। भिक्खू वा–साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। से–वह। पुण–फिर। ज–उस। पाणगजाय–अचित्त पानी के सम्बन्ध मे। जाणिज्जा–जाने। तजहा–जैसे कि। अबपाणग वा–आम्र फल का धोवन। अबाडगपाणग वा–अम्बाहड़ फल विशेष का धोवन। कविट्ठपाण०–कपित्थ फल का धोवन। माउलिगपा०–मातुलिग का धोवन। मुद्दियापा०–द्राक्षा का धोवन। दालिमपा०–अनार का धोवन या रस। खज्जूरपा०–खजूर का धोवन। नालियेरपा०–नारियल का धोवन। करीरपा०–करीर का धोवन। कोलपा०–बदरी फल-बेरो का धोवन। आमलपा०–आमले का धोवन। चिचापा०–इमली का धोवन-पानी। अन्नयरं वा–अन्यतर। तहप्पगार–इसी प्रकार का कोई। पाणगजाय–जल विशेष। सअट्ठिय–अस्थि-गुठली के सहित हो। सकणुय–वनस्पति छाल के सहित हो। सबीय–बीज सहित हो और। अस्संजए–असयत-गृहस्थ। भिक्खुपडियाए–भिक्षु के लिए। छब्बेण वा–छलनी से। दूसेण वा–वस्त्र से अथवा। वालगेण वा–गवादि के बालो से बनी हुई छलनी

से। **आवीलियाण**-गुठली आदि को दूर करने के लिए एक बार छानकर। **परिवीलियाण**-बार-बार छानकर। **परिसावियाण**-गुठली आदि को निकाल कर। **आहट्टु**-इस प्रकार से उस धोवन को लाकर। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगारं**-इस प्रकार के। **पाणगजाय**-जल को। **अफा०**-अप्रासुक जानकर। **लाभे सते**-मिलने पर भी। **नो पडिगाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे पानी के निमित्त प्रवेश करने पर साधु या साध्वी जल के विषय मे इन बातो को जाने। जैसे कि–आम्रफल का पानी, अम्बाडगफल का पानी, कपित्थ फल का पानी, मातुलिग फल का पानी, द्राक्षा का पानी, अनार का पानी, खजूर का पानी, नारियल का पानी, करीर का पानी, बदरी फल-बेर का पानी, आमले का पानी और इमली का पानी, तथा इसी प्रकार का अन्य पानी, जो कि गुठली सहित, छाल सहित और बीज सहित-बीज के साथ मिश्रित है, उसे यदि गृहस्थ भिक्षु के निमित्त बास की छलनी से, वस्त्र से या बालो की छलनी से, एक बार अथवा अनेक बार छान कर और उसमें रहे हुए गुठली छाल और बीजादि को छलनी के द्वारा अलग करके उसे दे तो साधु इस प्रकार के जल को अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे २१ प्रकार के प्रासुक पानी का उल्लेख किया गया है। उसमे आम्र फल आदि के धोवन पानी के विषय मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ आम्र आदि को धोने के पश्चात् उस पानी को छान रहा है और उसमे रहे हुए गुठली छाल एव बीज आदि को निकाल रहा है, तो साधु को उक्त पानी नहीं लेना चाहिए। क्योकि वह वनस्पतिकायिक (बीज, गुठली आदि) जीवो से युक्त होने के कारण निर्दोष एव ग्राह्य नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे 'अस्थि' शब्द गुठली के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। क्योकि आम्र के साथ उसका प्रयोग होने के कारण उसका गुठली अर्थ ही घटित होता है। द्राक्षा की अपेक्षा त्वक्-छाल, अनार आदि की अपेक्षा से बीज शब्द का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य यह है कि आम्र आदि फलो का धोया हुआ पानी एव रस यदि गुठली, बीज आदि से युक्त है और उसे बास की बनाई गई टोकरी या गाय के बालो की बनाई गई छलनी या अन्य किसी पदार्थ से निर्मित छलनी या वस्त्र आदि से एक बार या एक से अधिक बार छानकर तथा उसमे से गुठली, बीज आदि को निकाल कर दे तो वह पानी या रस साधु के लिए अग्राह्य है। क्योकि इस तरह का पानी उद्गमादि दोषो से युक्त होता है[१]। अत. साधु को ऐसा जल अनेषणीय होने के कारण ग्रहण नहीं करना चाहिए।

---

१ उदगम के दोष १६ प्रकार के बताए गए है–

आहाकम्मुद्देसिअ पूतिकम्मे अ मीसजाए अ।
ठवणा पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे॥
परियट्टिए अभिहडे उब्भिन्ने मालोहडे इअ।
अच्छेज्जे अणिसिट्ठे अज्झोअरए अ सोलसमे॥

– श्री आचाराग सूत्र वृत्ति।

अपने स्थान मे स्थित साधु को भौतिक पदार्थो से किस तरह अनासक्त रहना चाहिए, इस बात का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइगिहेसु वा परियावसहेसु वा अन्नगंधाणि वा पाणगंधाणि वा सुरभिगंधाणि वा आघाय २ से तत्थ आसायपडियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने अहो गंधो २ नो गंधमाघाइज्जा ॥४४॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ आगंत्रगारेषु वा आरामागारेषु वा गृहपतिगृहेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्नगन्धान् वा पानगन्धान् वा सुरभिगन्धान् वा आघ्राय २ स तत्र आस्वादनप्रतिज्ञया मूर्छितो गृद्धो ग्रथितोऽध्युपपन्न. (सन्) अहो-गन्धः २ न गन्धं जिघ्रेत्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा॰**-भिक्षु-साधु अथवा साध्वी। **आगंतारेसु वा**-धर्मशालाओ मे। **आरामागारेसु वा**-अथवा उद्यान शालाओ मे। **गाहावइगिहेसु वा**-अथवा गृहस्थो के घरो मे। **परियावसहेसु वा**-अथवा भिक्षुओ के मठो मे अवस्थित-ठहरा हुआ हो तो उस समय। **अन्नगधाणि वा**-अन्न की गन्ध को। **पाणगन्धाणि वा**-अथवा पानी की गन्ध को। **सुरभिगन्धाणि वा**-केसर-कस्तूरी आदि की सुगन्ध को। **आघाय २**-सूघकर। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-उन सुवासित पदार्थों में। **आसायपडियाए**-आस्वादन की प्रतिज्ञा से। **मुच्छिए**-मूर्छित। **गिद्धे**-गृद्ध। **गढिए**-ग्रथित। **अज्झोववन्ने**-आसक्त होता हुआ। **अहो गंधो २**-कि यह सुगन्ध कैसी मीठी एव सुन्दर है ऐसे कहता हुआ। **गध**-उस गध को। **नो आघाइज्जा**-ग्रहण न करे-सूघे नही।

***मूलार्थ*—धर्मशालाओ मे, आरामशालाओ मे, गृहस्थो के घरों में या परिव्राजको के मठो मे ठहरा हुआ साधु या साध्वी अन्न एवं पानी की तथा सुगन्धित पदार्थों कस्तूरी आदि की गन्ध को सूंघ कर उस गन्ध के आस्वादन की इच्छा से उसमे मूर्छित, गृद्धित, ग्रथित और आसक्त होकर कि वाह ! क्या ही अच्छी सुगन्धि है, कहता हुआ उस गन्ध की सुवास न ले।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि धर्मशाला मे, बगीचे मे, गृहस्थ के मकान मे, परिव्राजक-सन्यासी के मठ मे अथवा किसी भी निर्दोष एव एषणीय स्थान मे ठहरा हुआ साधु अनासक्त भाव से अपनी साधना मे सलग्न रहे। यदि उक्त स्थानो के पास स्वादिष्ट अन्न एव पानी या अन्य सुवासित पदार्थो की सुहावनी सुवास आती हो तो वहा स्थित साधु उसमे आसक्त होकर उस सुवास को ग्रहण न करे और न यह कहे कि क्या ही मधुर एव सुहावनी सुवास आ रही है। परन्तु, वह अपने मन आदि योगो को उस ओर से हटाकर अपनी साधना मे – स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन-मनन आदि मे लगा दे।

अब सूत्रकार फिर से आहार ग्रहण करने के सम्बन्ध मे कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं॰ सालुयं वा विरालियं वा सासवनालियं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं अफासु॰। से भिक्खू वा॰ से जं पुण॰ पिप्पलिं वा पिप्पलिचुण्णं वा मिरियं वा मिरियचुण्णं वा सिंगबेरं वा

सिंगबेरचुण्णं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं आमगं वा असत्थप० । से भिक्खू वा० से जं पुण पलंबजायं जाणिज्जा, तंजहा-अंबपलंबं वा अंबाडगपलंबं वा तालप० सुरहि० झिज्झिरिप० सल्लरप० अन्नयरं वा तहप्पगारं पलंबजायं आमगं असत्थप० । से भिक्खू २ से जं पुण पवालजायं जाणिज्जा तंजहा-आसोट्ठपवालं वा निग्गोहप० पिलुंखुप० नियू (पू) रप० सल्लइप० अन्नयरं वा तहप्पगारं पवालजायं आमगं असत्थपरिणयं० । से भि० से जं पुण० सरडुयजायं जाणिज्जा, तंजहा-अबंसरडुयं वा कविट्ठसर० दाडिमसर० बिल्लस० अन्नयरं वा तहप्पगारं सरडुयजायं आमं असत्थपरिणयं० । से भिक्खू वा० से जं पु० तंजहा उंबरमंथुं वा निग्गोहमं० पिलुंखुमं० आसोत्थमं० अन्नयरं वा तहप्पगारं वा मंथुजायं आमयं दुरुक्कं साणुबीयं अफासुयं० ॥४५ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा अथ यत्० शालूक वा विरालिक वा सर्षपनालिक वा अन्यतरद् वा तथाप्रकार आमकं अशस्त्रपरिणतं अप्रासुक०। सं भिक्षुर्वा अथ यत् पुन पिप्पली वा पिप्पलीचूर्ण वा मरिच वा मरिचचूर्ण वा शृगबेर वा शृगबेरचूर्णं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकारं आमक वा अशस्त्रपरिणतं०। स भिक्षुर्वा० अथ यत् पुन· प्रलम्बजातं जानीयात्, तद्यथा-आम्रपलम्ब वा अम्बाडगप्रलम्ब वा तालप्रलम्बं वा झज्झिर प्रलम्ब० सुरभि० शल्लकी० अन्यतरद् वा तथाप्रकार प्रलम्बजात आमक अशस्त्रपरिणत०। स भिक्षु २ अथ यत् पुन. प्रवालजातं जानीयात्, तद्यथा-अश्वत्थप्रवाल वा न्यग्रोधप्रवाल वा प्लक्षप्र० नियू (पू) र प्र० अन्यतरद् वा तथाप्रकारं प्रवालजात आमकं अशस्त्रपरिणतम्०। स भिक्षुर्वा० अथ यत् पुन. सरडुय (अबद्धास्थिफलम्) जानीयात्, तद्यथा-सरडुयं वा कपित्थसर० दाडिमसर० विल्वसर० अन्यतरद् वा तथाप्रकार सरडुयजात आमक अशस्त्रपरिणतम्०। स भिक्षुर्वा अथ यत् पुनः तद्यथा-उदुम्बरमन्थु वा न्यग्रोधमन्थुं वा प्लक्षमन्थु वा अश्वत्थमं० अन्यतरद् वा तथाप्रकारं म० जातं आमकं दुरुष्कं सानुबीजं अप्रासुकं०।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा०**-साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से**-अथ-यदि। **ज०**-जो फिर जाने कि। **सालुयं वा**-जल से उत्पन्न होने वाला कन्द विशेष। **विरालियं वा**- अथवा स्थल से उत्पन्न होने वाला कन्द। **सासवनालियं वा**-सर्षपनालिका कन्द। **अन्नयरं वा**-तथा अन्य। **तहप्पगारं**-इसी प्रकार का कन्द विशेष। **आमग**-कच्चा। **असत्थपरिणय**-जो शस्त्र से परिणत नहीं हुआ उसे। **अफासुयं०**-अप्रासुक जानकर मिलने पर ग्रहण न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से जं पुण०**-यदि फिर यह जाने कि। **पिप्पलिं वा**-पीपल-मघ। **पिप्पलिचुण्ण वा**-पीपल का चूर्ण। **मिरिय वा**-अथवा मिरच। **मिरियचुण्णं वा**-तथा मिर्च का चूर्ण। **सिंगबेरं वा**-अदरक। **सिंगबेरचुण्णं वा**-अथवा अदरक का चूर्ण। **अन्नयरं वा**-तथा अन्य। **तहप्पगारं**-इसी प्रकार का। **आमगं वा**-कच्चा चूर्ण एवं अपरिपक्व

पदार्थ। **असत्थप॰**-जिसे शस्त्र ने परिणत नहीं किया है उसे। **अफासुयं**-अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे। **से**-वह। **भिक्खू॰**-साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **से ज पुण**-यदि फिर। **पलंबजाय**-फलो की जाति को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **अबपलब वा**-आम्र फल को। **अबाडगपलब वा**-अम्बाडग फल को। **तालप॰**-ताड़ के फल को। **झिज्झिरप॰**-लताओ के फल को। **सुरहि॰**-सुरभि-वनस्पति विशेष के फल को। **सल्लरप॰**-शल्य-वनस्पति विशेष के फल को। **अन्नयर**-तथा अन्य। **तहप्पगार**-इसी प्रकार के। **पलबजाय**-प्रलम्ब-फल विशेष को। **आमग**-कच्चा। **असत्थप॰**-जो कि शस्त्र परिणत नही हुआ, ऐसा मिलने पर अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी गृहस्थ के घर जाने पर। **से ज पुण**-वह फिर। **पवालजाय**-प्रवाल जात को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **आसोट्ठपवाल वा**-पीपल वृक्ष के प्रवाल-पत्र। **निग्गोहप॰**-न्यग्रोध-वट वृक्ष के पत्ते। **पिलुखुप॰**-पिप्परी वृक्ष के पत्ते। **नियू (पू) रप॰**-नन्दी वृक्ष के पत्ते। **सल्लइप॰**-शल्य वृक्ष के पत्ते तथा। **अन्नयर**-अन्य। **तहप्पगार**-इसी प्रकार के। **पवालजाय**-पत्ते। **आमग**-कच्चे है। **असत्थप॰**-जो शस्त्र परिणत नहीं है तो उन्हे। **अफासुय**-अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। **से भिक्खू वा॰**-वह साधु या साध्वी गृहपति कुल मे जाने पर। **से ज पुण**-वह फिर। **सरडुयजाय**-सरडु जात-अबद्धास्थि फल जिसमे अभी तक गुठली नहीं बनी है ऐसे सुकोमल फलो को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **अबसरडुय वा**-आम का सुकोमल फल। **कविट्ठसर॰**-कपित्थ का सुकोमल फल। **दाडिमसर॰**-अनार का सुकोमल फल। **बिल्लसर॰**-बिल्व का सुकोमल फल तथा। **अन्नयर**-अन्य। **तहप्पगारं**-इसी प्रकार। **सरडुयजाय**-सुकोमल फलो को जो। **आम**-कच्चे है। **असत्थप॰**-जिसको शस्त्र परिणत नहीं हुआ है, मिलने पर भी अप्रासुक जानकर उसे ग्रहण न करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रविष्ट होने पर। **से ज पु॰**-फिर इस प्रकार जाने। **तजहा**-जैसे कि। **उंबरमथु वा**-उदुम्बर फल का चूर्ण। **निग्गोहम॰**-वट वृक्ष के फल का चूर्ण। **पिलुखुम॰**-पिप्परी फल का चूर्ण। **आसोत्थम॰**-अश्वत्थ पीपल का चूर्ण। **अन्नयर**-तथा अन्य। **तहप्पगार**-इसी प्रकार का। **मथुजाय**-मन्थुजात-चूर्ण। **आमय**-कच्चा है। **दुरुक्कं**-थोड़ा पीसा हुआ है। **साणुबीय**-जिसका योनि बीज विध्वस्त नहीं हुआ है तो। **अफासुयं॰**-उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

मूलार्थ—गृहपति के घर मे प्रविष्ट साधु या साध्वी जलज कन्द, और सर्षपनालिका कन्द तथा इसी प्रकार का अन्य कोई कच्चा कन्द जिसको शस्त्रपरिणत नही हुआ ऐसे कन्द आदि को अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने पर साधु वा साध्वी पिप्पली-पिप्पली का चूर्ण, मिरच-मिरच का चूर्ण, अदरक-अदरक का चूर्ण, तथा इसी प्रकार का अन्य कोई पदार्थ या चूर्ण, कच्चा और अशस्त्र परिणत-जिसे शस्त्र परिणत नहीं हुआ मिलने पर अप्रासुक जान कर ग्रहण न करे।

गृहपति के घर मे प्रविष्ट साधु या साध्वी प्रलम्बजात फलजात-फल समुदाय को जाने, यथा-आम्रप्रलम्ब आमफल का गुच्छा-फलसामान्य,अम्बाडग फल, ताडफल, लताफल, सुरभि फल, और शल्यकी का फल तथा इसी प्रकार का अन्य कोई प्रलम्बजात कच्चा और जिसे शस्त्र परिणत नहीं हुआ मिलने पर अप्रासुक जान कर ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट साधु या साध्वी प्रवालजात-पत्र समुदाय को जाने यथा अश्वत्थ प्रवाल, न्यग्रोध-वट प्रवाल, प्लक्ष प्रवाल, निपूर प्रवाल, नन्दी वृक्ष प्रवाल और शल्यकी प्रवाल तथा इस प्रकार का कोई अन्य प्रवालजात कच्चा अशस्त्रपरिणत जिसे शस्त्रपरिणत नहीं हुआ,

मिलने पर अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

गृहपति के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी अबद्धास्थि फल-कोमल फल को जाने, जैसे कि-आम्र वृक्ष का कोमल फल, कपित्थ का कोमल फल, अनार का कोमल फल और बिल्व का कोमल फल तथा इसी प्रकार का अन्य कोमल फल जो कि कच्चा और शस्त्र परिणत नहीं, मिलने पर भी अप्रासुक जान कर साधु को उसे परिग्रहण न करना चाहिए।

गृहस्थी के घर मे प्रविष्ट साधु या साध्वी मन्थु के सम्बध में जानकारी करे जैसे– उदुम्बर मन्थु-चूर्ण, न्यग्रोधमन्थु, प्लक्षमथु, अश्वत्थमन्थु, तथा इसी प्रकार का अन्य मन्थुजात जो कि कच्चा और थोड़ा पीसा हुआ तथा सबीज अर्थात् जिसका कारण-योनि बीज विध्वस्त नहीं हुआ ऐसे चूर्ण जात को मिलने पर भी अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को अपक्व कन्द-मूल, वनस्पति एव फल आदि नहीं लेने चाहिए। यदि कच्ची सब्जी शस्त्रपरिणत हो गई है तो वह ग्राह्य है, परन्तु, जब तक वह शस्त्रपरिणत नही हुई है, तब तक सचित्त है, अत· साधु के लिए अग्राह्य है।

'**विरालिय**' का अर्थ है– जमीन मे उत्पन्न होने वाला कन्द विशेष। '**पलम्ब जाय**' का तात्पर्य फल से है। '**अबद्धा अत्थि फल**' का तात्पर्य है-वह फल जिस मे अभी तक गुठली नही बन्धी है, ऐसे सुकोमल फल को '**सरडुय**' कहते हैं '**मन्थु**' का अर्थ चूर्ण होता है और '**साणुवीयं**' का तात्पर्य है– वह बीज जिसकी योनि का अभी नाश नही हुआ है। '**झिज्झरी**' शब्द लता विशेष का बोधक है। इस पाठ का तात्पर्य यह है कि साधु को सचित्त वनस्पति को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

पुन आहार के सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं पुण॰ आमडागं वा पूइपिन्नागं वा महुं वा मज्जं वा सप्पिं वा खोलं वा पुराणगं वा इत्थ पाणा अणुप्पसूयाइं जायाइं संवुड्ढाइं अव्वुक्कंताइं अपरिणया इत्थ पाणा अविद्धत्था नो पडिगाहिज्जा ॥४६ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ स यत् पुन.॰ आमपत्रक वा पूतिसिण्याकं वा मधु वा मद्यं वा सर्पि र्वा खोल वा पुराणक वा अत्र प्राणा अनुप्रसूता जाता संवृद्धा अव्युत्क्रान्ताः अपरिणता· अत्र प्राणाः (प्राणिनः) अविध्वस्ता. नो प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा॰**-साधु अथवा साध्वी। **से ज पुण॰**-गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ यदि इस प्रकार जाने कि। **आमडाग वा**-अर्द्धपक्व शाक अथवा। **पूइपिन्नागं**-सड़ी हुई खल अथवा। **महु वा**-मधु। **मज्ज वा**-मद्य। **सप्पिं वा**-घृत। **खोल वा**-अथवा खोल-मद्य के नीचे का कर्दम-कीच। **पुराणग वा**-ये पुराने पदार्थ। **इत्थ**-इनमे। **पाणा**-प्राणी-जीव। **अणुप्पसूयाइ**-उत्पन्न होते है। **जायाइ**-प्राणियो का जन्म होता है। **सवुड्ढाइ**-वृद्धि को प्राप्त होते है। **अव्वुक्कताइ**-व्युत्क्रान्त नहीं होते है तथा। **अपरिणया**-परिणत नहीं होते हैं। **इत्थ**-इनमे। **पाणा**-प्राणी। **अविद्धत्था**-विध्वस को प्राप्त नहीं हुए है, तो उसके मिलने पर भी। **नो पडिगाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

_मूलार्थ_—गृहपति कुल में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी अर्द्धपक्व शाक, सड़ी हुई खल,

मधु, मद्य, सर्पि-घृत, खोल-मद्य के नीचे का कर्दम-कीच इन पुराने पदार्थों को ग्रहण न करे, कारण कि-इन में प्राणी जीव उत्पन्न होते हैं, जन्मते हैं, तथा वृद्धि को प्राप्त होते हैं और इन मे प्राणियो का व्युत्क्रमण, परिणमन तथा विध्वंस नहीं होता, इसलिए मिलने पर भी उन पदार्थों को ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को कच्चा पत्र,(वृक्षादि का पत्ता), सचित्त पत्र या अर्द्धपक्व पत्र एव शाक-भाजी आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए और सडी हुई खल एव पुराना मद्य, मधु (शहद), घृत और मद्य के नीचे जमा हुआ कर्दम नहीं लेना चाहिए। क्योकि ये पदार्थ बहुत दिनो के पुराने होने के कारण उनका रस विचलित हो जाता है और इस कारण उनमे त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए मुनि को ये पदार्थ ग्रहण नहीं करने चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त मधु एव घृत तो साधु के लिए कल्पनीय हैं। परन्तु , मद्य अकल्पनीय है, अत मद्य शब्द कुछ विचारणीय है। क्योकि सूत्र मे कहा गया है कि पुराना मद्य एव उसके नीचे जमा हुआ कर्दम (मैल) नहीं लेना, तो इसका अर्थ यह है कि नया मद्य लिया जा सकता है। किन्तु, आगमो मे मद्य एव मास का सर्वथा निषेध किया गया है। अत यहा इसका अर्थ है-मद्य के समान गुण वाला पदार्थ। यदि इसका तात्पर्य शराब से होता तो उसके अन्य भेदो का उल्लेख भी करते। क्योकि सूत्र की यह एक पद्धति है कि जिस वस्तु का उल्लेख करते हैं, उसके सब भेदो का नाम गिना देते हैं। यहा मद्य शब्द के साथ अन्य नामो का उल्लेख नहीं होने से ऐसा लगता है कि मद्य का अर्थ होगा-उसके सदृश पदार्थ। आगम में युगलियो के अधिकार मे दस प्रकार के कल्पवृक्षो मे '**मातग**' कल्प वृक्ष का नाम आता है। उसके फल मद्य के समान मादक होते हैं। आजकल महुए के फलो को उसके समान समझ सकते हैं[१]। इससे स्पष्ट है कि मद्य शब्द मदिरा का बोधक नहीं है। आगम मे मदिरा का प्रबल शब्दो मे निषेध किया गया है। इसके लिए दशवैकालिक सूत्र का ५वा अध्ययन द्रष्टव्य है[२]। दशवैकालिक सूत्र प्राय आचाराङ्ग का पद्यानुवाद है। इससे प्रस्तुत सूत्र का मदिरा सदृश पदार्थ अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

---

१ जीवाभिगम सूत्र।

२ सुर वा मेरग वावि, अन्न वा मज्जग रस।
ससक्ख न पिबे भिक्खू, जस सारक्खमप्पणो॥
पियए एगओ तेणो, न मे कोई विआणइ।
तस्स पस्सह दोसाइ, नियडि च सुणेह मे॥
वड्ढइ सुडिआ तस्स, मायामोस च भिक्खुणो।
अयसो अ अनिव्वाण, सयय च असाहुआ॥
निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई।
तारिसो मरणते वि, न आराहेइ सवर॥
आयरिए नाराहेइ, समणे आवि तारिसो।
गिहत्था वि ण गरिहति, जेण जाणति तारिस॥
एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए।
तारिसो मरणतेवि, ण आराहेइ सवर॥
तव कुव्वइ मेहावी, पणीय वज्जए रस।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो॥ –दशवैकालिक सूत्र, ५, २, ३६, ४२।

आहार के विषय मे और बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं० उच्छुमेरगं वा अंककरेलुगं वा कसेरुगं वा सिंघाडगं वा पूइआलुगं वा अन्नयरं वा०। से भिक्खू वा० से जं० उप्पलं वा उप्पलनालं वा भिसं वा भिसमुणालं वा पुक्खलं वा पुक्खलविभंगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं० ॥४७॥

छाया– स भिक्षुर्वा स यत् इक्षुमेरक वा अककरेलुककसेरुक वा शृगाटक वा पूतिआलुक वा अन्यतरद् वा० (तथाप्रकार)।

स भिक्षुर्वा० स यत्० उत्पलं वा उत्पलनाल वा बिस वा बिसमृणाल वा पुष्कर वा पुष्करविभगं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकार०।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। से जं०-फिर इस प्रकार जाने यथा। उच्छुमेरग वा-इक्षुखण्ड-गडेरी। अककरेलुग वा-अक करेलु नामक वनस्पति। कसेरुग वा-कसेरु। सिंघाडग वा-सिघाडे। पूइआलुगं वा-पूतिआलुक-वनस्पति विशेष। अन्नयरं वा०-तथा इसी प्रकार की अन्य वनस्पति जो कच्ची-शस्त्र परिणत न हो, तो उसे अप्रासुक जान कर साधु ग्रहण न करे।

से-वह। भिक्खू वा-साधु या साध्वी गृहस्थ के घर जाने पर। से ज० पुण०-फिर इस प्रकार जाने यथा। उप्पल वा-उत्पल कमल। उप्पलनाल वा-उत्पल कमल की नाल। भिस वा-कमल का कन्द मूल। भिसमुणालं वा। कमल के कन्द के ऊपर की लता। पुक्खल वा-कमल की केसर। पुक्खलविभंगं वा-कमल का कन्द। अन्नयर वा०-तथा अन्य। तहप्पगार-इसी प्रकार का कन्द आदि जो कच्चा और अशस्त्र परिणत हो तो उसे साधु मिलने पर भी अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

_मूलार्थ_—गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर साधु या साध्वी इस प्रकार से जाने, यथा–इक्षुखड-गडेरी, अककरेलु नामक वनस्पति, कसेरु, सिंघाडा और पूति आलुक तथा अन्य इसी प्रकार की वनस्पति विशेष जो शस्त्र परिणत नहीं हुई, उसे मिलने पर भी अप्रासुक जान कर साधु ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी यदि यह जान ले कि उत्पल-कमल, उत्पलकमल की नाल, उसका कन्द-मूल, उस कन्द के ऊपर की लता, कमल की केसर और पद्म कन्द तथा इसी प्रकार का अन्य कन्द कोई कच्चा हो, जिसको शस्त्र परिणत नहीं हुआ हो तो साधु मिलने पर भी उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को इक्षुखड, कसेरु, सिघाडा, उत्पल(कमल), उत्पल-नाल(कमल की डडी), भृणाल(कमल के नीचे का कन्द) आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए। क्योकि ये सचित्त होते हैं, अत जब तक शस्त्रपरिणत न हो तब तक साधु के लिए अग्राह्य हैं।

इस विषय मे और पदार्थों का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जं पु० अग्गबीयाणि वा मूलबीयाणि वा खंधबीयाणि वा पोरबी० वा अग्गजायाणि वा मूलजा० वा खंधजा० वा पोरजा० वा नन्नत्थ तक्कलिमत्थएण वा तक्कलिसीसेण वा नालियेरमत्थएण वा खज्जूरिमत्थएण वा तालम० अन्नयरं वा तह०। से भिक्खू वा २ से जं० उच्छुं वा काणगं वा अंगारियं वा संमिस्सं विगदूमियं वित्तग्गगं वा कंदलीऊसुगं अन्नयरं वा तहप्पगा०।

से भिक्खू वा० से जं० लसुणं वा लसुणपत्तं वा ल० नालं वा लसुणकंदं वा ल० चोयगं वा अन्नयरं वा०। से भिक्खू वा० से जं० अंच्छियं वा कुंभिपक्कं वा तिंदुगं वा बेलुगं वा कासवनालियं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थप०। से भिक्खू वा० से जं० कणं वा कणकुंडगं वा कणपूयलियं वा चाउलं वा चाउलपिट्ठं वा तिलं वा तिलपिट्ठं वा तिलपप्पडगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थप० लाभे संते नो प०, एयं खलु तस्स भिक्खुस्स सामग्गियं ॥४८॥

छाया– स भिक्षुर्वा अथ यत् पुन.० अग्रबीजानि वा मूलबीजानि वा स्कन्धबीजानि वा पर्वबीजानि वा, अग्रजातानि वा मूलजातानि वा, स्कन्धजातानि वा पर्वजातानि वा नान्यस्माद्, तक्कलीमस्तकेन वा तक्कलीशीर्षेण वा नालिकेरमस्तकेन वा खर्जूरमस्तकेन वा तालमस्तकेन वा अन्यतरद् वा तथाप्रकार०।

स भिक्षुर्वा २ अथ यत् इक्षु वा काणक वा अगारतिक वा समिश्रं वृकभक्षित वेत्राग्र कन्दलीमध्यभाग अन्यतरद् वा तथाप्रकारं०।

स भिक्षुर्वा० अथ यत्० लशुन वा लशुनपत्र वा लशुननाल वा लशुनकन्द वा लशुनचोदक वा अन्यतरद् वा० स भिक्षुर्वा० स यत्० अस्थिक वा कुंभिपक्क वा तिन्दुक वा बिल्व वा काश्यपनालिका वा अन्यतरद् वा तथाप्रकार आमं अशस्त्रपरिणत०।

स भिक्षुर्वा० स यत्० कण वा कणकुंडक वा कणपूपलिका वा ओदन वा ओदनपिष्ट वा तिल वा तिलपिष्ट वा तिलपर्पटकं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकारं आमं अशस्त्रपरिणतं लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्। एवं खलु तस्य भिक्षो सामग्र्यम्।

पदार्थ– **से**–वह। **भिक्खू वा**–साधु या साध्वी गृहपति कुल मे प्रविष्ट हुआ। **से जं०**–इस प्रकार जाने, जैसे कि– । **अग्गबीयाणि वा**–अग्रबीज, जपा कुसुमादि, अथवा। **मूलबीयाणि वा**–मूल बीज-जात्यादि। **खधबीयाणि वा**–स्कन्ध बीज-सल्लक्यादि। **पोरबीयाणि**–पर्व बीज-इक्षु दण्डादि अथवा। **अग्गजायाणि वा**–अग्रजात-अग्रभाग मे उत्पन्न होने वाले। **मूलजा०**–मूल जात-मूल मे उत्पन्न होने वाले। **खधजा०**–स्कन्ध जात-स्कन्ध मे उत्पन्न होने वाले। **पोरजा०**–पर्वजात-पर्व मे उत्पन्न होने वाले। **नन्नत्थ**–इतना विशेष है कि ये उक्त स्थानो

मे उत्पन्न होते है अन्य स्थानो पर नहीं, अत इनको अग्रजातादि कहते है। **ण**-यह वाक्यालकार मे है। **तक्कलिमत्थए**-कन्दली के मध्य का गर्भ तथा । **तक्कलिसीसे**-कन्दली स्तबक। **णालिएरमत्थए**-अथवा नारियल का मध्य गर्भ। **खजूरमत्थए**-खजूर का मध्य गर्भ अथवा। **तालमत्थए**-ताल का मध्य गर्भ, तथा। **अन्नयर वा**-अन्य। **तहप्पगार**-इसी प्रकार का। **आम०**-कच्चा और जिसको शस्त्र परिणत नहीं हुआ, मिलने पर अप्रासुक जान कर ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा २**-साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **से ज०**-इस प्रकार जाने, यथा। **उच्छु वा**-इक्षु और इक्षु के समान अन्य वनस्पति को तथा। **काण वा**-व्याधि विशेष से सछिद्र हुई वनस्पति को। **अगारिय वा**-अथवा ऋतु विशेष से जिसका वर्ण और हो गया हो। **समिस्स**-वह वनस्पति जिसकी त्वचा फटी हुई हो। **विगदूमिय**-वृक या श्याल भक्षित अर्थात् जिसे वृक या शृगाल आदि ने खाया हुआ हो। **वित्तग्गग वा**-वेतस-बैंत का अग्र भाग अथवा। **कदलीऊसुग**-कन्दली का मध्य भाग तथा। **अन्नयर वा**-अन्य। **तहप्पगारं**-इसी प्रकार की कच्ची और अशस्त्र परिणत वनस्पति, मिलने पर अप्रासुक जानकर साधु उसे ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा०**-साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से ज पुण०**-फिर इस प्रकार जाने, यथा। **लसुणं वा**-लशुन को। **लसुणपत्त वा**-लशुन के पत्र को। **लसुणनाल वा**-लशुन की नाल को अथवा। **लसुणकद वा**-लशुन कन्द को। **लसुणचोयग वा**-लशुन के ऊपर की छाल-छिलका, तथा। **अन्नयर वा**-अन्य। **तहप्पगार०**-इसी प्रकार की कच्ची और अशस्त्र परिणत वनस्पति, मिलने पर अप्रासुक जान कर उसे ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा०**-साधु या साध्वी गृहपति के कुल मे प्रविष्ट होने पर। **से ज०**-फिर इस प्रकार जाने यथा। **अच्छियं वा**-आस्तिक नाम के वृक्ष विशेष का फल, तथा। **कुंभिपक्क**-गर्त आदि मे धूए आदि से पकाया हुआ। **तिंदुग वा**-तिन्दुग वृक्ष के फल। **वेलुग वा**-अथवा बिल्व वृक्ष का फल। **कासवनालिय वा**-श्रीपर्णिफल तथा। **अन्नयर वा**-अन्य कोई। **तहप्पगार**-इसी प्रकार का। **आम**-कच्चा। **असत्थप०**-अशस्त्रपरिणत फल विशेष मिलने पर अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा०**-साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **से ज०**- यदि इस प्रकार जाने जैसे कि। **कण वा**-शाल्यादि के कण। **कणकुडग वा**-कणो आदि से मिश्रित छानस। **कणपूयलिय वा**-कणो से मिश्रित रोटी अर्थात् मन्दपक्वरोटिका। **चाउल वा**-अथवा चावल। **चाउलपिट्ठं वा**-अथवा चावलो का पिष्ट-आटा। **तिल वा**-तिल। **तिलपिट्ठ वा**-अथवा तिल पिष्ट-(तिलकुट) तथा। **तिलपप्पडग वा**-तिल पर्पटिका-तिल पापड़ी तथा। **अन्नयर वा**-अन्य कोई । **तहप्पगार**-इसी प्रकार का। **आम**-कच्चा। **असत्थप०**-अशस्त्र परिणत पदार्थ विशेष। **लाभे सते**-मिलने पर। **नो प०**-ग्रहण न करे। **एवं**-इस प्रकार। **खलु**-निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु का। **सामग्गिय**-समग्र भिक्षुभाव अर्थात् सम्पूर्ण आचार है।

***मूलार्थ*—गृहपतिकुल मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी अग्रबीज, मूलबीज, स्कन्धबीज, तथा पर्वबीज, एव अग्रजात, मूलजात, स्कन्धजात, पर्वजात, इनमे इतना विशेष है कि ये उक्त स्थानो से अन्यत्र उत्पन्न नहीं होते, तथा कन्दली के मध्य का गर्भ, कन्दली का स्तबक, नारियल का मध्यगर्भ, खजूर का मध्यगर्भ और ताड़ का मध्यगर्भ तथा इसी प्रकार की अन्य कोई कच्ची और अशस्त्रपरिणत वनस्पति, मिलने पर अप्रासुक जान कर ग्रहण न करे।**

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी इक्षु [ईख] को, सछिद्र इक्षु को तथा जिसका वर्ण बदल गया, त्वचा फट गई एव शृगालादि के द्वारा खाया गया ऐसा फल, तथा बैंत का अग्रभाग और कन्दली का मध्यभाग तथा अन्य इसी प्रकार की वनस्पति, जो कि कच्ची और शस्त्र परिणत नहीं हुई, मिलने पर अप्रासुक जानकर साधु उसे स्वीकार न करे।

गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी लशुन, लशुन के पत्र, लशुन की नाल और लशुन की बाह्यत्वक्-बाहर का छिलका, तथा इसी प्रकार की अन्य कोई वनस्पति जो कि कच्ची और शस्त्रोपहत नहीं हुई है, मिलने पर अप्रासुक जान कर उसे ग्रहण न करे।

गृहपति कुल में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी अस्तिक (वृक्षविशेष) के फल, तिन्दुकफल, बिल्वफल और श्रीपर्णीफल, जो कि गर्त आदि मे रखकर धूए आदि से पकाए गए हो, तथा इसी प्रकार के अन्य फल जो कि कच्चे और अशस्त्र परिणत हों मिलने पर अप्रासुक जान कर उन्हे ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी शाल्यादि के कण कणमिश्रित छाणस, कणमिश्रित रोटी, चावल, चावलो का चूर्ण-आटा, तिल, तिलपिष्ठ-तिलकुट और तिलपर्पट-तिलपपड़ी तथा इसी प्रकार का अन्य पदार्थ जो कि कच्चा और अशस्त्र परिणत हो, मिलने पर अप्रासुक जानकर उसे ग्रहण न करे। यह साधु का समग्र-सम्पूर्ण आचार है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि अग्रबीज, मूलबीज, स्कन्धबीज, पर्वबीज, अग्रजात, मूलजात, स्कन्धजात, पर्वजात, कन्द का, खजूर का एव ताड का मध्य भाग तथा इक्षु या शृगाल आदि से खाया हुआ फल, लहसुन का छिलका, पत्ता, त्वचा या बिल्व आदि के फल आदि सभी तरह की वनस्पति जो सचित्त है, अपक्व है, शस्त्र परिणत नहीं हुई है, तो साधु को उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'अग्रबीज' एव 'अग्रजात' मे यह अन्तर है कि अग्रबीज को भूमि मे बो देने पर उस वनस्पति के बढने के बाद उसके अग्रभाग मे बीज उत्पन्न होता है, जब कि अग्रजात अग्रभाग मे ही उत्पन्न होता है, अन्यत्र नही। वृत्तिकार ने 'नन्नत्थ' शब्द के दो अर्थ किए हैं-एक तो अन्यत्र उत्पन्न नही होते हैं और दूसरा अर्थ यह किया है कि कदली (केला) आदि फलो का मध्य भाग छेदन होने से नष्ट हो जाता है। इस तरह वे फल अचित्त होने से ग्राह्य हैं। परन्तु, इन अचित्त फलो को छोड कर, अन्य अपक्व एव शस्त्र से परिणित नहीं हुए फलो को ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसी तरह शृगाल आदि पशु या पक्षियो के द्वारा थोडा सा खाया हुआ तथा आग के धूए से पकाया हुआ फल भी अग्राह्य है।

प्रस्तुत सूत्र का अनुशीलन-परिशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग मे साधु प्राय बगीचो मे ठहरते थे। शृगाल आदि द्वारा भक्षित फल बगीचो मे ही उपलब्ध हो सकते हैं। क्योकि शृगाल आदि जगलो मे ही रहते एव घूमते हैं, वे घरो मे आकर फलो को नहीं खाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि उस युग मे साधु अधिकतर बगीचो मे ठहरते थे। इसी कारण वनस्पति की ग्राह्यता एव अग्राह्यता पर विशेष रूप से विचार किया गया है। जैसे गर्म पानी के चश्मे भी बहते हैं, परन्तु फिर भी वह पानी साधु के लिए अग्राह्य है। इसी तरह कृत्रिम साधनो से पकाए जाने वाले फल भी अग्राह्य हैं। क्योकि वह उष्ण योनि के जीवो का समूह होने से सचित्त हैं। इसी तरह कुछ फल ऐसे हैं, जो अपक्व एव शस्त्र परिणत नहीं होने

के कारण साधु के लिए अग्राह्य हैं। इस तरह साधु को सब्जी ग्रहण करते समय उसकी सचित्तता एव अचित्तता का सूक्ष्म अवलोकन करके ग्रहण करना चाहिए। इस तरह प्रासुक सब्जी ग्रहण करने पर ही उसका अहिसा महाव्रत निर्दोष रह सकता है। अस्तु साधु के लिए अप्रासुक, अनेषणीय सब्जी ग्रहण करने का निषेध किया गया है।

'त्तिबेमि' का अर्थ पूर्ववत् समझना चाहिए।

॥ अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
नवम उद्देशक

प्रस्तुत उद्देशक मे भी अनेषणीय आहार आदि का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इह खलु पाईण वा ४ संतेगइया सड्ढा भवंति, गाहावई वा जाव कम्मकरी वा, तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ-जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलवंतो वयवंतो गुणवंतो संजया संवुडा बंभयारी उवरया मेहुणाओ धम्माओ, नो खलु एएसिं कप्पइ आहाकम्मिए असणे वा ४ भुत्तए वा पायए वा, से जं पुण इमं अम्हं अप्पणो अट्ठाए निट्ठियं तं असणं ४ सव्वमेयं समणाणं निसिरामो, अवियाइं वयं पच्छा अप्पणो अट्ठाए असणं वा ४ चेइस्सामो, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं० ॥४९॥

छाया– इह खलु प्राचीन वा ४ सन्त्येकका. श्राद्धा भवन्ति, (श्रद्धालवो भवेयु.) गृहपतिर्वा यावत् कर्मकरी वा तेषा च एव उक्तपूर्वं भवन्ति (भवेत्) ये इमे भवन्ति श्रमणा. भगवन्त. शीलवन्त व्रतवन्त गुणवन्त सयता सवृता. ब्रह्मचारिण. उपरत. मैथुनाद् धर्मात्, न खलु एतेषा कल्पते आधाकर्मिक, अशन वा ४ भोक्तु वा पातु वा, स यत् पुन. इद अस्माकं आत्मार्थ निष्ठितं तद् अशन वा ४ सर्व एतेभ्य श्रमणेभ्य. निसृजाम. प्रयच्छाम , अपि च वयं पश्चात् आत्मार्थ अशनं वा ४ चेतयिष्याम । एतत् प्रकार निर्घोष श्रुत्वा निशम्य तथाप्रकार अशन वा ४ अप्रासुक-(यावत्-न प्रतिगृण्हीयात्)।

पदार्थ– **इह खलु**-इह शब्द वाक्योपन्यास अर्थ मे, तथा प्रज्ञापक क्षेत्र के अर्थ मे है, और खलु शब्द वाक्यालकार मे है। **पाईणं वा० ४**-प्रज्ञापक की अपेक्षा से पूर्व दिशा मे, पश्चिम दिशा मे तथा उत्तर और दक्षिण दिशा मे अर्थात् पूर्वादि दिशाओ मे। **सतेगइया**-अनेक पुरुष है उनमे कई एक। **सड्ढा भवति**-श्रद्धालु-श्रद्धावाले भी होते है यथा। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरी वा**-काम करने वाली दासी आदि। **च**-पुन । **ण**-वाक्यालकार मे है। **तेसिं**-उनके परस्पर मिलने पर। **एव**-इस प्रकार। **वुत्तपुव्व भवइ**-पहले वार्तालाप होता है, जैसे कि। **जे इमे**-जो ये। **समणा**-श्रमण। **भगवतो**-भगवान। **सीलवतो**-शील वाले अर्थात् अष्टादश सहस्त्रशीलाग रथ धारा के धारण करने वाले तथा। **वयवतो**-व्रतधारी अर्थात् पाच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन

विरमण त्याग व्रत को धारण करने वाले एव। **गुणवंतो**-पिण्ड विशुद्धि आदि उत्तरगुणो को धारण करने वाले। **सजया**-सयत-अर्थात् इन्द्रिय और मन पर विजय प्राप्त करने वाले। **सवुडा**-आस्रव। द्वारो को बन्द करने वाले। **बंभयारी**-ब्रह्मचारी अर्थात् नव विध ब्रह्मचर्य गुप्ति से युक्त। **मेहुणाओ धम्माओ**-मैथुन धर्म से। **उवरया**-उपरत-निवृत। **भवंति**-होते है। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **एएसि**-उनको। **आहाकम्मिए**-आधाकर्मिक। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **भुत्तए वा**-खाना। **पायए वा**-पीना। **नो**-नहीं। **कप्पइ**-कल्पता। **पुण**-फिर। **से जं**-वह जो। **इम**-यह। **अम्हं**-हमारे। **अट्ठाए**-वास्ते। **निट्ठियं**-बना हुआ है। **त**-वह। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **सव्वमेय**-सभी। **समणाण**-इन श्रमणो को। **निसिरामो**-दे देते है। **अवियाइ**-अपिच और फिर। **वयं**-हम। **पच्छा**-पीछे से। **अप्पणो अट्ठे**-अपने लिए। **असणं वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **चेइस्सामो**-और बना लेगे। **एयप्पगार**-इस प्रकार के। **निग्घोस**-शब्द को। **सुच्चा**-सुनकर। **निसम्म**-विचार कर। **तहप्पगार**-वह साधु इस प्रकार के। **असण०**-अशनादि चतुर्विध आहार को। **अफासुय०**-अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

मूलार्थ—**इस क्षेत्र मे पूर्वादि चारो दिशाओ मे कई गृहपति एव उनके परिजन आदि श्रद्धावान् सद्गृहस्थ रहते है, और वे परस्पर मिलने पर इस प्रकार बाते करते है कि ये पूज्य श्रमण शील निष्ठ है, व्रतधारी है, गुण संपन्न है, संयमी हैं, संवृत-आस्त्रवो का निरोध करने वाले हैं, परम-ब्रह्मचारी है, मैथुन धर्म से सर्वथा निवृत्त है। इनको आधाकर्मिक अशनादि चतुर्विध आहार लेना नहीं कल्पता है। अत हमने जो अपने लिए आहार बनाया है, वह सब आहार इन श्रमणो को दे देगे, और हम अपने लिए और आहार बना लेगे। उनके इस प्रकार के वार्तालाप को सुन कर तथा विचार कर साधु इस प्रकार के आहार को अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को अपने घर मे आया हुआ देखकर यदि कोई श्रद्धालु गृहस्थ एक-दूसरे से कहे कि ये पूज्य श्रमण सयम निष्ठ हैं, शीलवान हैं, ब्रह्मचारी हैं। इसलिए ये आधाकर्म आदि दोषो से युक्त आहार नहीं लेते हैं। अत हमने जो अपने लिए आहार बनाया है, वह सब आहार इन्हे दे दे और अपने लिए फिर से आहार बना लेगे। इस तरह के विचार सुन कर साधु उक्त आहार को ग्रहण न करे। क्योकि इससे साधु को पश्चात्कर्म दोष लगेगा।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त तीन शब्द विशेष विचारणीय हैं— १-**सड्ढा**, २-**असण वा** ४ और ३-**चेइस्सामो**। **१ – सड्ढा**-प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने श्रावक एव उपासक दोनो शब्दो का उपयोग न करके '**सड्ढा**' शब्द का उपयोग किया है। इसका तात्पर्य यह है कि व्रतधारी एव साधुसमाचारी से परिचित श्रावक इतनी भूल नहीं कर सकता कि वह पश्चात्कर्म का दोष लगाकर साधु को आहार दे। अत इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकार का आहार देने का विचार करने वाला व्यक्ति श्रद्धानिष्ठ भक्त है, परन्तु साधु आचार से पूरी तरह परिचित नहीं है। वह इतना तो जानता है कि ये आधाकर्म आदि आहार ग्रहण नहीं करते हैं। परन्तु, उसे यह ज्ञात नहीं है कि ये पश्चात् कर्म दोष युक्त आहार भी ग्रहण नहीं करते हैं। परन्तु, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि चाहे दाता श्रद्धालु हो, प्रकृति का भद्र हो, दोषो से अज्ञात हो फिर भी

साधु को इस तरह का सदोष आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए।

२-असणं वा– सूत्रकार ने जगह-जगह चार प्रकार के आहार का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मद्य-मास आदि का आहार साधु के लिए सर्वथा अग्राह्य है। यदि इस प्रकार के पदार्थ ग्राह्य होते तो जगह-जगह चार प्रकार के आहार का ही ग्रहण न करके, अन्य प्रकार के आहार को भी साथ जोड देते।

३-चेइस्सामो– इससे स्पष्ट होता है कि साधु को आहार देने के बाद फिर से ६ काय का आरम्भ करके आहार तैयार करने का विचार करके दिया जाने वाला आहार भी सदोष माना गया है। अत आहार शुद्धि के लिए साधु को बडी सावधानी से गवेषणा करनी चाहिए।

इसी विषय मे कुछ और जानकारी कराते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे से जं० गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा रायहाणिंसि वा संतेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसंति, तंजहा-गाहावई वा जाव कम्म० तहप्पगाराइं कुलाइं नो पुव्वामेव भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा २, केवली बूया-आयाणमेयं, पुरापेहाए तस्स परो अट्ठाए असणं वा ४ उवकरिज्ज वा उवक्खडिज्ज वा, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं० नो तहप्पगाराइं कुलाइं पुव्वामेव भत्ताए वा पाणाए वा पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा २, से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा २, अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा, से तत्थ कालेणं अणुपविसिज्जा २ तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं एसित्ता आहारं आहारिज्जा, सिया से परो कालेण अणुपविट्ठस्स आहाकम्मियं असणं वा उवकरिज्ज वा उवक्खडिज्ज वा तं चेगइओ तुसिणीओ उवेहेज्जा, आहडमेव पच्चाइक्खिस्सामि, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा, से पुव्वामेव आलोइज्जा–आउसोत्ति वा भइणित्ति वा नो खलु मे कप्पइ आहाकम्मियं असणं वा ४ भुत्तए वा पायए वा, मा उवकरेहि वा उवक्खडेहि, से सेवं वयंतस्स परो आहाकम्मियं असणं वा० उवक्खडावित्ता आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा० अफासुयं० ॥५०॥

छाया– स भिक्षुर्वा० वसन् वा ग्रामानुग्रामं वा दूयमानः स यत् ग्रामं वा यावत् राजधानी वा अस्मिन् खलु ग्रामे वा राजधान्यां वा सन्ति एककस्य (कस्यचित्) भिक्षोः पूर्व

संस्तुता वा पश्चात् संस्तुता वा परिवसन्ति, तद्यथा-गृहपतिः वा यावत् कर्मकरी, तथाप्रकाराणि कुलानि न पूर्वमेव भक्ताय निष्क्रामेत् प्रविशेद् वा, केवली ब्रूयात्-कर्मोपादानमेतत्, पूर्वं प्रेक्ष्य तस्य परः अर्थाय, अशनं वा उपकुर्यात् वा उपसंस्कुर्याद् वा-(तस्य भिक्षोः कृते परः गृहस्थोऽशनाद्यर्थं उपकुर्यात्-ढौकयेदुपकरणजातम् तदशनादि पचेत्) अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्टमेतत् प्रतिज्ञादि, यत् न तथाप्रकाराणि कुलानि पूर्वमेव भक्ताय वा पानाय वा प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा, स तमादाय एकान्तमपक्रामेत्, उपक्रम्य च अनापाते, असंलोके तिष्ठेत्, स तत्र कालेनानुप्रविशेत् २, तत्र इतरेतरेभ्य. कुलेभ्य. सामुदानिकं एषणीयं वेषित पिडपातं एषित्वा, आहारमाहारयेत्, स्यात् स पर. कालेनानुप्रविष्टस्य, आधाकर्मिकमशनं वा उपकुर्यात् उपसंस्कुर्याद् वा तच्चैकक: तूष्णीक: उत्प्रेक्षेत्, आहृतमेव प्रत्याख्यास्यामि, मातृस्थानं संस्पृशेत्, नैवं कुर्यात्, स पूर्वमेवालोकयेत् (आलोक्य च) आयुष्मन् ! इति वा भगिनि ! इति वा न खलु मम कल्पते आधाकर्मिकमशनं वा भोक्तुं वा पातु वा; मा उपकुरु, मा उपसस्कुरु, स तस्यैव वदतः पर. आधाकर्मिकमशन वा ४ उपसंस्कृत्य, आहृत्य दद्यात् तथाप्रकार, अशन वा ४ अप्रासुकं०।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी के। **जाव**-जघा आदि के निर्बल होने के कारण एक ही क्षेत्र मे रहते हुए। **वा**-अथवा। **वसमाणे**-मासकल्पादि विहार करते हुए। **गामाणुगाम वा**-या एक गाव से दूसरे गाव को। **दूइज्जमाणे**-जाते हुए। **से**-वह भिक्षु। **ज०**-जो ऐसा जानता है कि। **गाम वा**-ग्राम। **जाव**-यावत्। **रायहाणि त्रा**-राजधानी को। **खलु**-निश्चय मे। **इमंसि गामसि वा**-इस ग्राम मे अथवा। **रायहाणिसि वा**-राजधानी मे। **संतेगइयस्स** कई एक साधु विद्यमान है। **भिक्खुस्स**-उस भिक्षु के। **पुव्वमथुया वा**-माता-पिता आदि या। **पच्छासथुया वा**-श्वसुर आदि परिजन। **परिवसति**-बसते है। **तजहा**-यथा। **गाहावई**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरी**-दासी, आदि रहती है। **तहप्पगाराइ**-इस प्रकार के। **कुलाइ**-कुलो मे। **पुव्वामेव**-भिक्षा काल से पहले ही। **भत्ताए वा**-भोजन के लिए अथवा। **पाणाए वा**-पानी के लिए। **नो निक्खमिज्ज वा पविसेज्ज वा**-न निकले और न प्रवेश करे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है। **आयाणमेय**-यह कर्म आने का मार्ग है, क्योकि। **पुरा पेहाए**-पहले देखकर। **परो**-गृहस्थ। **तस्स अट्ठाए**-उस भिक्षु के लिए। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **उवकरिज्ज वा**-एकत्रित करेगा तथा। **उवक्खडिज्ज वा**-पकाएगा। **अह**-अथ। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठा ४**- पूर्वोपदिष्ट प्रतिज्ञा हेतु कारण और उपदेश का भगवान ने प्रतिपादन किया है। **जं**-जो। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **कुलाइ**-कुलो मे। **पुव्वामेव**-पहले ही। **भत्ताए वा**-भोजन के लिए अथवा। **पाणाए वा**-पानी के लिए। **नो पविसिज्ज वा निक्खमिज्ज वा**-न तो प्रवेश करे और न ही निकले किन्तु। **से**-वह भिक्षु। **तमायाय**-उन कुलो को जानकर। **एगंतमवक्कमिज्जा**-एकान्त मे चला जाए वहां जाकर। **अणावायमसंलोए**-जहा पर न कोई आता-जाता हो और न देखता हो, ऐसे स्थान पर। **चिट्ठिज्जा**-

ठहर जाए। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-उस ग्रामादि मे-जहां सम्बन्धी लोग रहते है। **कालेणं**-भिक्षा के समय पर। **अणुपविसिज्ज** २-उनके घर मे प्रवेश करे और निकले। **तत्थियरेयरेहिं**-वह स्वजन रहित अन्य। **कुलेहिं**-कुलो से। **सामुदाणिय**-सामुदानिक-बहुत से घरो की भिक्षा। **एसिय**-एषणीय अर्थात् उद्गमादि दोषो से रहित। **वेसिय**-केवल साधु वेष से प्राप्त अर्थात् उत्पादनादि दोषो से रहित। **पिडवाय**-पिडपात-भिक्षा की। **एसित्ता**-गवेषणा करके। **आहारं**-आहार का। **आहारिज्जा**-भक्षण करे। **सिया**-कदाचित्। **से परो**-वह गृहस्थ। **कालेण**-साधु के भिक्षा के समय। **अणुपविट्ठस्स**-प्रवेश करने पर भी। **आहाकम्मिय**-आधाकर्मी। **असण वा**-आहार-पानी। **उवकरिज्ज वा**-एकत्रित करे अथवा। **उवक्खडिज्ज वा**-पकावे। **त चेगइओ**-उसे देखकर कोई साधु। **तुसिणीओ**-मौन रहे। **उवेहेज्जा**-इस भावना से कि। **आहडमेव**-जब यह मुझे लाकर देगा। **पच्चाइक्खिस्सामि**-मै इसका प्रतिषेध कर दूगा यदि साधु ऐसा करे तो। **माइट्ठाणं सफासे**-मातृ स्थान-कपट का स्पर्श होता है अत । **एव**-इस प्रकार। **नो करिज्जा**-न करे किन्तु। **से**-वह। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोइज्जा**-उपयोग पूर्वक देखे और विचार करे तदनन्तर कहे कि। **आउसोत्ति वा**-आयुष्मन् ! गृहस्थ (स्त्री हो तो)। **भइणित्ति वा**-हे भगिनि ! हे बहिन ! **खलु**-निश्चय ही। **मे**-मुझे। **आहाकम्मियं**-आधाकर्मिक। **असण वा**-अशनादिक आहार। **भुत्तए वा**- भोगना-खाना अथवा। **पायए वा**-पीना। **नो कप्पइ**-नहीं कल्पता है, इसलिए तू। **मा उवकरेहि**-इसे एकत्र मत कर तथा। **मा उवक्खडेहि**-मत पका। **से**-वह। **सेवं वयतस्स**-उसके इस प्रकार कहने पर भी। **परो**-यदि गृहस्थ। **आहाकम्मिय**-आधाकर्मिक। **असण वा**-अशनादिक चतुर्विध आहार को। **उवक्खडावित्ता**-बना कर और। **आहट्टु**-लाकर साधु को। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगार**-साधु इस प्रकार के। **असण वा** ४-आहार को। **अफासुय॰**-अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

मूलार्थ—शारीरिक अस्वस्थता एव वार्द्धक्य के कारण एक ही स्थान पर रहने वाले या ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु या साध्वी के किसी गाव या राजधानी मे, माता-पिता या श्वसुर आदि सम्बन्धिजन रहते हो या परिचित गृहपति, गृहपत्नी यावत् दास-दासी रहती हो तो इस प्रकार के कुलो मे भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए उनके घर मे आए-जाए नहीं। केवली भगवान कहते हैं कि यह कर्म आने का मार्ग है। क्योंकि आहार के समय से पूर्व उसे अपने घर मे आए हुए देखकर वह उसके लिए आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार एकत्रित करेगा या पकाएगा। अत भिक्षुओ को पूर्वोपदिष्ट तीर्थंकर आदि का उपदेश है कि इस प्रकार के कुलो मे भिक्षा के समय से पूर्व आहार-पानी के लिए आए-जाए नहीं, किन्तु वह साधु स्वजनादि के कुल को जानकर और जहा पर न कोई आता-जाता हो और न देखता हो, ऐसे एकान्त स्थान पर चला जाए। और जब भिक्षा का समय हो, तब ग्राम मे प्रवेश करे और स्वजन आदि से भिन्न कुलों मे सामुदानिक रूप से निर्दोष आहार का अन्वेषण करे। यदि कभी वह गृहस्थ भिक्षा के समय प्रविष्ट हुए भिक्षु के लिए भी आधाकर्मी आहार एकत्रित कर रहा हो या पका रहा हो और उसे देख कर भी कोई साधु इस भाव से मौन रहता हो कि जब यह लेकर आएगा तब इसका प्रतिषेध कर दूगा तो उसे मातृस्थान-माया का स्पर्श होता है। अत साधु ऐसा न करे, अपितु वह देखते ही कह दे कि हे

आयुष्मन् ! गृहस्थ ! अथवा भगिनि ! मुझे आधाकर्मिक आहार-पानी खाना और पीना नहीं कल्पता है, अतः मेरे लिए इसको एकत्रित न कर और न पका। उस भिक्षु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ, आधाकर्म आहार को एकत्रित करता है या पकाता है, और उसे लाकर देता है तो इस प्रकार के आहार को अप्रासुक जानकर वह ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे दो बातो का उल्लेख किया गया है– १-साधु आहार का समय होने से पहले अपने पारिवारिक व्यक्तियो के घरो मे आहार को न जाए। क्योंकि उसे अपने यहा आया हुआ जानकर वे स्नेह एव श्रद्धा-भक्ति वश सदोष आहार तैयार कर देगे। इस तरह साधु को पूर्वकर्म दोष लगेगा। २-यदि कोई गृहस्थ साधु के लिए आधाकर्मी आहार बना रहा हो, तो उसे देखकर साधु को स्पष्ट कह देना चाहिए कि यह आहार मेरे लिए ग्राह्य नहीं है। यदि इस बात को जानते-देखते हुए भी साधु उस गृहस्थ को आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार बनाने से नहीं रोकता है , तो वह माया का सेवन करता है। यदि साधु के इन्कार करने के बाद भी कोई आधाकर्म आहार बनाता रहे और वह सदोष आहार साधु को देने के लिए लाए तो साधु उसे ग्रहण न करे।

प्रस्तुत सूत्र मे जो सम्बन्धियो के घर मे जाने का निषेध किया है, उसका तात्पर्य इतना ही है कि यदि उनके घर मे राग-स्नेह भाव के कारण आहार मे दोष लगने की सम्भावना हो तो वहा साधु आहार को न जाए। क्योकि आगम मे परिवार वालो के यहा आहार को जाने एव आहार-पानी लाने का निषेध नहीं किया है। आगम मे बताया है कि स्थविरो की आज्ञा से साधु सम्बन्धियो के घर पर भी भिक्षा के लिए जा सकता है[1]।

निष्कर्ष यह है कि साधु को १६ उद्गम के, १६ उत्पादन के और १० एषणा के ४२ दोष टाल कर आहार ग्रहण करना चाहिए और ग्रासैषणा के ५ दोषो का त्याग करके आहार करना चाहिए। इस तरह साधु को ४७ दोषो से दूर रहना चाहिए[2]।

साधु को सभी दोषो से रहित निर्दोष आहार ग्रहण करना चाहिए, इसका उल्लेख करके अब सूत्रकार उत्सर्ग एव अपवाद मे आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं० मंसं वा मच्छं वा भज्जिज्जमाणं पेहाए तिल्लपूयं वा आएसाए उवक्खडिज्जमाणं पेहाए नो खद्धं २ उवसंकमित्तु ओभासिज्जा, नन्नत्थ गिलाणणीसाए ॥५१ ॥

---

१ व्यवहार सूत्र, उद्देशक ६।

२ १६ उद्गम और १० एषणा के दोषो का उल्लेख पीछे कर चुके हैं। प्रस्तुत प्रकरण मे वृत्तिकार ने शेष दोषो का उल्लेख करते हुए लिखा है–

धाई, दूइ, निमित्ते, आजीव, वणिमगे तिगिच्छा य।
कोहे, माणे, माया, लोभे य हवति दस एए।
पुव्वि, पच्छा, सथव, विज्जा, मते, अ चुण्ण, जोगे य।
उप्पायणाय दोसा सोलसमे मूलकम्मे य॥

ग्रासैषणा के ५ दोष-
सजोअणा, पमाणे, इगाले, धूम, कारणे चेव। – आचाराग वृत्ति।

छाया– स भिक्षुर्वा अथ यत्० मांसं वा मत्स्यं वा भज्यमानं (पच्यमानं) प्रेक्ष्य तैलपूपं वा आदेशाय-उपसंस्क्रियमाण प्रेक्ष्य न शीघ्रं २ उपसंक्रम्य अवभाषेत (याचेत) नान्यत्र ग्लाननिश्रया।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। **से जं०**-वह यह जाने कि। **आएसाए**-पाहुनो के लिए। **मंस वा**-मास। **मच्छ वा**-अथवा मत्स्य को। **भज्जिज्जमाण**-पकाते हुए। **पेहाए**-देखकर। **वा**-अथवा। **तिल्लपूय**-तैल प्रधान अपूप (पूड़े)-अर्थात् तेल के पूड़े। **उवक्खडिज्जमाण**-बनाते हुए। **पेहाए**-देखकर। **खद्धं २**-अति शीघ्रता से। **उवसंकमित्तु**-पास जाकर। **नो ओभासिज्जा**-न मागे। **नन्नत्थ**-इतना विशेष है। **गिलाणणीसाए**-रोगी के लिए माग सकता है।

***मूलार्थ*—गृहपति कुल में प्रवेश करने पर साधु या साध्वी इस प्रकार जाने कि गृहस्थ अपने यहा आए हुए किसी अतिथि के लिए मास और मत्स्य तथा तेल के पूड़े पका रहा है। उस समय उक्त पदार्थों को पकाते हुए देख कर वह अतिशीघ्रता से वहा जाकर उक्तविध आहार की याचना न करे। यदि किसी रोगी के लिए आवश्यकता हो तो उसके लिए उनकी याचना कर सकता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ अपने घर पर आए हुए अतिथि का आतिथ्य सत्कार करने के लिए कोई पदार्थ तैयार कर रहा हो तो साधु उसे देखकर शीघ्रता से उसकी याचना करने के लिए न जाए। यदि कोई बीमार साधु है और उसके लिए वह पदार्थ लाना है. तो वह उसे मागकर ला सकता है। अतिथि के भोजन करने के पूर्व नहीं लाना यह उत्सर्ग मार्ग है और बीमार के लिए आवश्यकता पडने पर अतिथि के भोजन करने से पहले भी ले आना अपवाद मार्ग है।

प्रस्तुत सूत्र मे तेल के पूडो के साथ मास एव मत्स्य शब्द का प्रयोग हुआ है और वृत्तिकार ने इसका मास एव मत्स्य अर्थ ही किया है और अपवाद मार्ग मे ग्राह्य बताया है। परन्तु, बालावबोध के लेखक उपाध्याय पार्श्व चन्द्र ने वृत्तिकार के विचारो की आलोचना की है, उन्हे आगम से विरुद्ध बताया है। उपाध्याय जी का कहना है कि सूत्रकार के युग मे कुछ वनस्पतियो के लिए मास एव मत्स्य शब्द का प्रयोग होता था। आज उक्त शब्द का उस अर्थ मे प्रयोग नहीं होता है। अत , इससे उक्त शब्दो का वर्तमान मे प्रचलित अर्थ करना उचित नहीं है।

जब हम वृत्तिकार एव उपाध्याय जी के विचारो पर गहराई से विचार करते हैं। तो उपाध्याय जी का मत ही आगम के अनुकूल प्रतीत होता है। प्रस्तुत सूत्र मे बीमार के लिए उक्त आहार लाने का उल्लेख किया गया है। और तेल के पूए एव मत्स्य आदि बीमार के लिए पथ्यकारक नही हो सकते और पूर्ण अहिसक साधु की वृत्ति के भी अनुकूल नहीं हैं। जो मुनि समस्त सावद्य व्यापार का त्यागी है, वह सामिष आहार कैसे ग्रहण कर सकता है। इसलिए उक्त शब्द वनस्पति के ही परिचायक हैं और समय की गति के साथ उनके उस युग मे प्रचलित अर्थ का आज लोप हो गया है।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि उक्त शब्द वनस्पति के अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं, तो फिर

उसके लिए याचना करने को अपवाद मार्ग क्यो बताया गया है ? वनस्पति तो साधु बिना कारण भी माग कर ला सकता है। इसका समाधान यह है कि अतिथि के लिए बनाए हुए पदार्थ उसके भोजन करने से पूर्व माग कर लाना नहीं कल्पता इसलिए यह आदेश दिया गया है कि यदि बीमार के लिए उनकी आवश्यकता हो तो साधु अतिथि के भोजन करने के पूर्व भी उनकी याचना करके ला सकता है।

आहार के विषय मे और बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० अन्नयरं भोयणजायं पडिगाहित्ता सुब्भिं सुब्भिं भुच्चा दुब्भिं दुब्भिं परिट्ठवेइ, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा। सुब्भिं वा दुब्भिं वा सव्वं भुंजिज्जा, नो किंचिवि परिट्ठविज्जा॥५२॥

छाया– स भिक्षुर्वा अन्यतरद् भोजनजात प्रतिगृह्य सुरभि २ भुक्त्वा दुरभि २ परिष्ठापयति (परित्यजेत्) मातृस्थान सस्पृशेत्, न एवं कुर्यात्। सुरभि वा दुरभि वा सर्वं भुजीत न किचिदपि परिष्ठापयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा०-साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। अन्नयर-कोई एक साधु। भोयणजाय-भोजन को। पडिगाहित्ता-ग्रहण कर उसमे से। सुब्भि २-अच्छे २ पदार्थ। भुच्चा-खाकर। दुब्भि २-खराब या निकृष्ट पदार्थों को। परिट्ठवेइ-फैक देता है तो उसे। माइट्ठाण-मातृस्थान-माया का। सफासे-स्पर्श होता है अत । एव-साधु इस प्रकार। नो करिज्जा-न करे, किन्तु। सुब्भि वा-सुगन्ध युक्त। दुब्भि वा-दुर्गन्ध युक्त अर्थात् अच्छे-बुरे। सव्वं-सब तरह के भोजन को। भुंजिज्जा-खा ले और। किचिवि-किचिन्मात्र भी। नो परिट्ठविज्जा-फैके नहीं।

_मूलार्थ_—गृहस्थ के घर मे जाने पर कोई साधु या साध्वी वहा से भोजन लेकर, उसमे से अच्छा-अच्छा खाकर शेष रूक्ष आहार को बाहर फैक दे तो उसे मातृस्थान (माया) का स्पर्श होता है। इसलिए उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, सुगन्धित या दुर्गन्धित जैसा भी आहार मिला है, साधु उसे समभाव पूर्वक खा ले, किन्तु उसमे से किचिन्मात्र भी फैके नहीं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को रस (स्वाद) की आसक्ति के वश लाए हुए आहार मे से अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ को ग्रहण करके, शेष अस्वादिष्ट पदार्थों को फैंक नहीं देना चाहिए। उसे सरस एव नीरस जैसा भी आहार उपलब्ध हुआ है, उसे अनासक्त एव समभाव पूर्वक खा लेना चाहिए। क्योकि साधु का आहार स्वाद के लिए नहीं, सयम का परिपालन करने के लिए होता है। अत उसे लाए हुए आहार मे स्वाद की दृष्टि से अच्छे-बुरे का भेद करके नहीं, बल्कि सबको समभाव पूर्वक, बिना स्वाद लिए खा लेना चाहिए।

अब पानी के विषय मे वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा २ अन्नयरं पाणगजायं पडिगाहित्ता पुप्फं २ आविइत्ता कसायं २ परिट्ठवेइ, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा। पुप्फं

पुप्फेइ वा कसायं कसाएइ वा सव्वमेयं भुंजिज्जा, नो किंचिवि परि॰ ॥५३॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ अन्यतरत् पानकजात प्रतिगृह्य पुष्पं २ आपीय कषायं २ परिष्ठापयेत् मातृस्थानं संस्पृशेत् न एवं कुर्यात्। पुष्पं पुष्पमिति वा कषाय कषाय इति वा सर्वमेतत् भुंजीत न किञ्चिदपि परिष्ठापयेत्।

पदार्थ– से–वह। **भिक्खू वा२**–साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर। **अन्नयरं**–कोई एक। **पाणगजाय**–पानी को। **पडिगाहित्ता**–लेकर फिर उसमे से। **पुप्फं २**–वर्ण गन्ध युक्त पानी को। **आविइत्ता**–पीकर और। **कसाय २**–कषाय अर्थात् वर्ण गन्ध रहित जल को। **परिट्ठवेइ**–फैंक दे तो। **माइट्ठाणं**–उसे मातृस्थान का। **सफासे**–स्पर्श होता है अत । **नो एव करिज्जा**–वह इस प्रकार न करे, किन्तु। **पुप्फ**–वर्ण-गन्ध युक्त को। **पुप्फेइ वा**–वर्णगन्ध युक्त समझकर। **कसाय**–कषाय वर्ण गन्ध रहित को भी। **कसाएइ वा**–वर्णगन्ध रहित समझकर। **सव्वमेयं**–सभी तरह के जल का। **भुजिज्जा**–पान करे, उसमे से। **किचिवि**–थोड़ा सा भी। **नो परि॰**–बाहर नहीं फैंके।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर मे जाने पर यदि कोई साधु या साध्वी जल को ग्रहण करके उसमे से वर्ण गन्ध युक्त जल को पीकर कषायले पानी को फैंक देता है तो उसे मातृस्थान– कपट का स्पर्श होता है। अत वह ऐसा न करे, किन्तु वर्ण, गन्ध युक्त या वर्ण, गन्ध रहित जैसा भी जल उपलब्ध हो उसे समभाव पूर्वक पी ले, परन्तु उसमे से थोडा सा भी न फैंके।**

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कभी खट्टा या कषायला पानी आ गया हो तो मुनि उसे फैंके नहीं। मधुर पानी के साथ उस पानी को भी पी ले। आहार की तरह पानी पीने मे भी साधु अनासक्त भाव का त्याग न करे। दशवैकालिक सूत्र मे भी इस सम्बन्ध मे बताया गया है कि मधुर या खट्टा जैसा भी प्रासुक पानी आ जाए, साधु को बिना खेद के उसे पी लेना चाहिए[1]।

अब फिर से आहार के विषय का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

---

१ तहेवुच्चावय पाण, अदुवा वारधोअण।
ससेइम चाउलोदग अहुणाधोय विवज्जए॥
ज जाणेज्ज चिराधोय, मईए दसणेण वा।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, ज च निस्सकिय भवे॥
अजीव पडिणय नच्चा, पडिगाहिज्ज सजए।
अह सकिय भविज्जा, आसाइत्ताण रोअए॥
थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चबिल पूय, नाल तिण्ह विणित्तए॥
त च अच्चबिल पूय, नाल तिण्ह विणित्तए।
दित्तिअ पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिस॥
त च हुज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छिय।
त अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए॥
एगंतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया।
जय पडिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे॥ – दशवैकालिक सूत्र ५, १, ७५-८१

मूलम्– से भिक्खू वा० बहुपरियावन्नं भोयणजायं पडिगाहित्ता, बहवे साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुन्ना अपरिहारिया, अदूरगया, तेसिं अणालोइय अणामंतिय परिट्ठवेइ माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा, से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसंतो समणा ! इमे मे असणे वा पाणे वा ४ बहुपरियावन्ने तं भुंजह णं, से सेवं वयंतं परो वइज्जा-आउसंतो समणा ! आहारमेयं असणं वा ४ जावइयं २ सरइ तावइयं २ भुक्खामो वा पाहामो वा, सव्वमेयं परिसडइ सव्वमेयं भुक्खामो वा पाहामो वा ॥५४॥

छाया– स भिक्षुर्वा० बहुपरियापन्न भोजनजात प्रतिगृह्य बहव साधर्मिका तत्र वसन्ति साभोगिका समनोज्ञा अपरिहारिका अदूरगता तेषाम् अनालोच्य अनामन्त्र्य परिष्ठापयेत्, मातृस्थान संस्पृशेत्, नैवं कुर्यात्, स तदादाय तत्र गच्छेत् २ (गत्वा च) स पूर्वमेव, आलोचयेत्-आयुष्मन्त श्रमणा ! एतत् मम अशन वा पानं वा बहुपर्यापन्न तद्भुंगध्वम्, तस्य चैव वदतः परो वदेत्-आयुष्मन्त. श्रमणा.! आहार एषः अशनं वा ४ यावन्मात्रं शक्नुम. तावन्मात्र भोक्ष्यामहे वा पास्यामो वा, सर्वमेतत् परिशटति सर्वमेतत् भोक्ष्यामहे वा पास्यामो वा।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा०-साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर। परियावन्नं-प्राप्त हुए। बहुभोयणजाय-बहुत से भोजन को। पडिगाहित्ता-लेकर के अपने स्थान पर आए। यदि वह आहार अधिक हो तो साधु। तत्थ-उस ग्राम आदि मे। बहवे-बहुत से। साहम्मिया-स्वधर्मी। सभोइया-सभोगी साधु। समणुन्ना-अपने समान आचार वाले जो कि। अपरिहारिया-त्यागने योग्य नही है अर्थात् शुद्ध आचार वाले है तथा। अदूरगया-अपने उपाश्रय से दूर नहीं है। वसति-निवास करते हो। तेसि-उनको। अणालोइय-बिना पूछे। अणामंतिय-बिना निमन्त्रित किए यदि। परिट्ठवेइ-आहार को परठे-बाहर फैक दे तो उसे। माइट्ठाण-मातृ स्थान का। सफासे-स्पर्श होता है, अत । नो एव करिज्जा-वह इस प्रकार न करे किन्तु। से-वह भिक्षु। तमायाए-उस आहार को लेकर। तत्थ-वहा पर। गच्छिज्जा-जाए जहा सन्त ठहरे हुए है और वहा जाकर। से-वह भिक्षु। पुव्वामेव-पहले। आलोइज्जा-उन्हे उस आहार को दिखाए और दिखाकर इस प्रकार कहे। आउसतो समणा-आयुष्मन्त श्रमणो ! इमे-यह। असणे वा पाणे वा-आहार और पानी। मे-मेरे प्रमाण से। बहुपरियावन्ने-बहुत अधिक है। तं-इस आहारादि का। भुजह-आप भी उपयोग करे। सेव वयतं-इस प्रकार कहते हुए उस साधु के प्रति। से परो-कोई दूसरा साधु। वइज्जा-बोले। आउसतो समणा-आयुष्मन् श्रमण ! आहार । मेय-यह आहार। असण वा ४-अशनादिक चतुर्विध। जावइय-यावन्मात्र-जितना। सरइ-हमसे खाया जाएगा। तावइयं २-तावन्मात्र-उतना। भुक्खामो वा-हम खाएगे तथा। पाहामो वा-पीएगे अथवा। सव्वमेय-यदि यह सब। परिसडइ-खाया गया तो। सव्वमेय-यह सब। भुक्खामो वा-खा लेगे। पाहामो वा-और सब पी लेगे।

मूलार्थ—साधु अथवा साध्वी गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर गृहस्थ के घर से बहुत सा

अशनादिक आहार प्राप्त होने पर ग्रहण करके अपने स्थान पर आए। यदि वह आहार उससे खाया न गया हो तो वहां पर जो अन्य स्वधर्मी साधु रह रहे हो, जो सांभोगिक तथा समान आचार वाले हैं, और जो अपने उपाश्रय के समीप भी है, उनको बिना पूछे, बिना निमन्त्रित किए यदि उस शेष आहार को परठ-फेक देता है तो उसे मातृस्थान का स्पर्श होता है, अर्थात् माया का दोष लगता है। इस लिए वह ऐसा न करे, किन्तु वह भिक्षु उस आहार को लेकर वहा जाए और जाकर सर्वप्रथम उस आहार को दिखाए और दिखाकर इस प्रकार कहे– कि हे भाग्यशाली श्रमणो! यह अशनादिक चतुर्विध आहार मेरे खाने से बहुत अधिक है अत आप इसे खालें। उसके इस प्रकार कहने पर किसी भिक्षु ने कहा– हे आयुष्मन् श्रमण! यह आहार हम जितना खा सकेंगे उतना खाने का प्रयत्न करेगे। यदि हम पूरा आहार-पानी खा पी सके तो सब खा-पी लेगे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि साधु रोगी एव बीमार आदि के लिए पर्याप्त आहार लेकर आए और वह आहार खाने के बाद कुछ बच गया है, तो साधु उक्त शहर मे या समीपस्थ गाव आदि मे स्थित साभोगिक साधुओ को उस आहार को खाने के लिए प्रार्थना करे, किन्तु उन्हे दिखाए बिना परठे (फैंके) नहीं। यदि वह समीपस्थ स्थान मे स्थित साधुओ को दिखाए बिना उस बढे हुए आहार को बाहर फैकता है, तो वह प्रायश्चित का अधिकारी होता है। अत साधु का कर्त्तव्य है कि वह अपने निकट प्रदेश मे स्थित सहधर्मी एव साभोगिक साधुओ के पास जाकर उन्हे प्रार्थना करे कि हमारे खाने के बाद कुछ आहार बढ गया है, अत आप इसे ग्रहण करने की कृपा करे। और आप थोडा या पूरा जितना भी खा सके, खाने का प्रयत्न करे।

इससे स्पष्ट होता है कि बढा हुआ आहार समान-धर्मी, समान आचार- विचार वाले या साभोगिक साधु को ही देने का विधान है। दूसरी बात यह है कि उस युग मे बडे-बडे शहर होते थे, अत एक ही शहर मे कई स्थानो पर साधु आकर ठहर जाते थे। या थोडी-थोडी दूर पर गाव होते थे, जिनमे साधु ठहरा करते थे और वे गाव आहार-पानी लाने-ले जाने की मर्यादा मे होते थे। तीसरी बात यह है कि साधु की भाषा निश्छल एव स्पष्ट होती है। वह अन्य साधु के पास जाकर ऐसा नही कहता कि मै आपके लिए अच्छा आहार लेकर आया हूँ। वह तो स्पष्ट कहता है कि मै अपने या अपने साथ के साधुओ के लिए आहार लाया था, उसमे से इतना आहार बढ गया है। अत कृपा करके इसे ग्रहण करे और लेने वाले साधु भी बिना किसी भेदभाव के स्नेह एव सद्भावना के साथ तथा जीवो की यतना के लिए उसे ग्रहण करते हैं और उस आए हुए श्रमण से कहते हैं कि हम जितना खा सकेगे उतना खाने का प्रयत्न करेगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु जीवन कितना स्पष्ट, सरल एव मधुर है।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा से जं० असणं वा ४ परं समुद्दिस्स बहिया नीहडं

जं परेहिं असमणुन्नायं अणिसिट्ठं अफा० जाव नो पडिगाहिज्जा, जं परेहिं समणुन्नायं सम्मं णिसिट्ठं फासुयं जाव पडिगाहिज्जा, एवं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं ॥५५ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ स यद्० अशन वा ४ पर समुद्दिश्य बहिर्निष्क्रान्त यत् परै. असमनुज्ञातं, अनिसृष्ट, अप्रासुक यावत् न प्रतिगृण्हीयात्। यत् परै. समनुज्ञात सम्यग् निसृष्टं प्रासुकं यावत् प्रतिगृण्हीयात्। एव खलु तस्य भिक्षोर्भिक्षुक्या वा सामग्र्यम्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा २-साधु अथवा साध्वी। से ज-जो फिर इस प्रकार जाने यथा। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार। **पर**-अन्य भाट आदि का। **समुद्दिस्स**-उद्देश करके-उनके निमित्त। **बहिया**-बाहर। **नीहड**-देने के लिए निकाला है। **ज**-जिसकी। **परेहिं**-गृहस्थो ने। **असमणुन्नाय**-आज्ञा नहीं दी है अर्थात् तुम जहा चाहो और जिसको चाहो दे सकते हो, ऐसा नहीं कहा। **अणिसिट्ठ**-उस आहार को अभी तक उसे पूरी तरह समर्पित नही किया है। ऐसा आहार देने के लिए ले जाया जा रहा हो और यदि मार्ग मे साधु मिल जाए और उसे उस आहार को ग्रहण करने की अभ्यर्थना की जाए तो। **अफासुय**-उस आहार को अप्रासुक जानकर। **जाव**-यावत् मिलने पर भी। **नो पडिगाहिज्जा**-ग्रहण न करे तथा। **ज**-जिस के लिए। **परेहिं**-गृहस्थो ने। **समणुन्नाय**-आज्ञा दे दी है और जो। **सम्म**-भली प्रकार से। **निसिट्ठ**-उनके स्वाधीन किया गया है तब वह आहार जिस के अधिकार मे है वह यदि साधु को आहार ग्रहण करने की विनती करे तो साधु उस आहार को। **फासुय**-प्रासुक जानकर। **जाव**-यावत्-मिलने पर। **पडिगाहिज्जा**-ग्रहण कर ले। **एव**-इस प्रकार। **खलु**-निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-साधु। **भिक्खुणीए वा**-या साध्वी का। **सामग्गिय**-समग्र-सम्पूर्ण साधु भाव है।

_मूलार्थ_—गृहस्थो के घर मे भिक्षार्थ प्रविष्ट साधु या साध्वी भाट आदि के निमित्त बनाया गया जो अशनादिक चतुर्विध आहार घर से देने के लिए निकाला गया है, परन्तु, गृहपति ने अभी तक उस आहार को उन्हे ले जाने के लिए नही कहा है, और उनके स्वाधीन नहीं किया है, ऐसी स्थिति मे यदि कोई व्यक्ति उस आहार की साधु को विनति करे तो वह उसे अप्रासुक जानकर स्वीकार न करे। और यदि गृहपति आदि ने उन भाटादि को वह भोजन सम्यक् प्रकार से समर्पित कर दिया है और कह दिया है कि तुम जिसे चाहो दे सकते हो। ऐसी स्थिति मे वह साधु को विनति करे तो साधु उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। यही साधु या साध्वी का समग्र आचार है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ ने भाट या अन्य किसी के लिए अशन आदि चार प्रकार का भोजन बनाया है, किन्तु अभी तक न तो उसे दिया गया है, न उसके अधिकार मे किया गया है और न उसे यह कहा गया है कि इस आहार को तुम जिसे चाहो दे सकते हो, ऐसी स्थिति मे यदि कभी वह उस आहार के लिए साधु को प्रार्थना करे तो साधु उस आहार को अप्रासुक-अकल्पनीय समझ कर ग्रहण न करे। क्योकि, वह आहार देने वाले व्यक्ति के अधिकार मे नहीं है, अत हो सकता है कि साधु को देते हुए देखकर गृहस्थ के मन मे भाट या साधु के प्रति दुर्भाव या

आवेश आ जाए। या वह भाट को देने के लिए फिर से भोजन बनाए। इससे कई तरह के दोष लगने की सम्भावना है। अत· साधु को ऐसा आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए।

यदि वह आहार भाट आदि के अधिकार मे हो गया है तो अब वह इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि उक्त आहार चाहे जिसे दे। ऐसी स्थिति मे यदि वह साधु को आहार के लिए विनति करता है, तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

॥ नवम उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
दशम उद्देशक

नवम उद्देशक मे यह बताया गया है कि साधु को किस तरह से आहार ग्रहण करना चाहिए। अब प्रस्तुत उद्देशक मे इस बात को स्पष्ट करते हुए कि यदि साधारण आहार उपलब्ध हो तो स्थान पर आने के पश्चात् साधु को क्या करना चाहिए, सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से एगइओ साहारणं वा पिंडवायं पडिगाहित्ता ते साहम्मिए अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं खद्धं दलइ, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा। से तमायाय तत्थ गच्छिज्जा २ एवं वइज्जा-आउसंतो समणा ! संति मम पुरेसंथुया वा पच्छा० तंजहा-आयरिए वा १ उवज्झाए वा २ पवित्ती वा ३ थेरे वा ४ गणी वा ५ गणहरे वा ६ गणावच्छेइए वा ७ अवियाइं एएसिं खद्धं खद्धं दाहामि, सेणेवं वयंतं परो वइज्जा-कामं खलु आउसो ! अहापज्जत्तं निसिराहि, जावइयं २ परो वदइ तावइयं २ निसिरिज्जा, सव्वमेयं परो वयइ सव्वमेयं निसिरिज्जा ॥५६॥

छाया– स एकक साधारण वा पिण्डपातं प्रतिगृह्य तान् साधर्मिकान् अनापृच्छ्य यस्मै यस्मै इच्छति तस्मै तस्मै प्रभूत प्रभूतं प्रयच्छति, मातृस्थानं संस्पृशेत्। नैव कुर्यात् स तदादाय तत्र गच्छेत् २ (गत्वा) चैव वदेत् आयुष्मन्तः श्रमणा. ! सन्ति मम पुर. सस्तुता वा पश्चात्० तद्यथा-आचार्यो वा १ उपाध्यायो वा २ प्रवृति० (प्रवर्त्तकः) वा ३ स्थविरो वा ४ गणी वा ५ गणधरो वा ६ गणावच्छेदको वा ७ अपि च, एतान् एतेभ्यः प्रभूतं प्रभूतं दास्यामि, तस्यैव वदन्तः परो वदेत्—काम खलु आयुष्मन् ! यथा प्राप्त निसृज यावत् २ परो वदेत् तावत् २ निसृजेत् सर्वमेतत् परो वदेत् सर्वमेतन्निसृजेत् (दद्यात्)।

पदार्थ– से-वह-भिक्षु। एगइओ-कभी। साहारण-सब के लिए। वा-अथवा। पिडवाय-आहार को। पडिगाहित्ता-ग्रहण करके। ते-उन। साहम्मिए-साधर्मिको को। अणापुच्छित्ता-पूछे बिना। जस्स जस्स-जिस-जिस को। इच्छइ-उस आहार की आवश्यकता है। तस्स तस्स-उस-उस के लिए। खद्ध खद्धं-अधिक से अधिक। दलइ-आहार दे देता है, तो। माइट्ठाण-माया के स्थान को। सफासे-स्पर्श करता है अत । एव-इस प्रकार। नो-नहीं। करेज्जा-करे किन्तु। से-वह-भिक्षु। तं-उस आहार को। आयाय-लेकर। तत्थ-वहा-गुरुजनादि

के पास। गच्छिज्जा-जाए और वहां जाकर। **एवं**-इस प्रकार। **वइज्जा**-कहे कि। **आउसंतो**-हे आयुष्मन्! **समणा**-श्रमणो! **मम**-मेरे। **पुरेसथुया**-पूर्व परिचित अर्थात् जिनके पास दीक्षा ग्रहण की है। **वा**-और। **पच्छासथुया**-पश्चात् परिचित अर्थात् जिनके पास सूत्र आदि का अध्ययन किया है। **तंजहा**-जैसे कि। **आयरिए वा**-आचार्य। **उवज्झाए वा**-उपाध्याय। **पवित्ती वा**-साधुओ को यथा योग्य वैयावृत्य आदि मे नियुक्त करने वाले प्रवर्तक। **थेरे वा**-धर्म से भ्रष्ट होने वाले साधुओं को तथा श्रावको को पुन धर्म मे स्थिर करने वाले स्थविर। **गणी वा**-गण समूह की व्यवस्था करने वाले गणि। **गणहरे वा**-गुरुजनो की आज्ञा से आचार्य रूप मे साधुओ को लेकर स्वतन्त्र रूप से विहार करने वाले गणधर और। **गणावच्छेइए वा**-गच्छ के कार्यों की चिता-देखभाल करने वाले गणावच्छेदक। **अवियाइ**-इत्यादि को कहे कि आप की आज्ञा हो तो। **एएसि**-इन साधुओ को। **खद्ध खद्ध**-पर्याप्त आहार। **दाहामि**-दू ? **से णेव**-उसके इस प्रकार। **वयत**-बोलने पर। **परो**-आचार्यादि। **वइज्जा**-कहे कि। **आउसो**-हे आयुष्मन्! श्रमण! **काम खलु**-तू अपनी इच्छानुसार। **अहापज्जत्त**-यथापर्याप्त। **निसिराहि**-दे ? **जावइय २**-जितना-जितना। **परो**-आचार्य आदि गुरुजन। **वदइ**-कहे। **तावइय २**-उतना- उतना आहार उन्हे। **निसिरिज्जा**-दे देवे यदि। **परो**-आचार्य। **वइज्जा**-कहे कि। **सव्वमेय**-सभी पदार्थ दे-दे तो। **सव्वमेय**-सभी पदार्थ। **निसिरिज्जा**-दे-दे।

***मूलार्थ*—कोई भिक्षु गृहस्थ के यहा से सम्मिलित आहार को लेकर अपने स्थान पर आता है और अपने साधर्मियो को पूछे बिना जिस-जिस को रुचता है उस-उस के लिए वह दे देता है तो ऐसा करने से वह मायास्थान का सेवन करता है। अत साधु को ऐसा नही करना चाहिए। परन्तु, उसे यह चाहिए कि उपलब्ध आहार को लेकर जहा अपने गुरुजनादि हो जैसे कि-आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर और गणावच्छेदक आदि, वहा जाए और उनसे प्रार्थना करे कि हे गुरुदेव! मेरे पूर्व और पश्चात् परिचय वाले दोनो ही भिक्षु यहाँ उपस्थित है यदि आपकी आज्ञा हो तो मै इन उपस्थित सभी साधुओ को आहार दे दू ? उस भिक्षु के ऐसा कहने पर आचार्य कहे कि– आयुष्मन् श्रमण! जिस साधु की जैसी इच्छा हो, उसी के अनुसार उसे पर्याप्त आहार दे दो। आचार्य की आज्ञानुसार सबको यथोचित बाट कर दे देवे। यदि आचार्य कहे कि जो कुछ लाए हो, सभी दे दो, तो बिना किसी सकोच के सभी आहार उन्हे दे दे।**

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई मुनि अपने साभोगिक साधुओ का आहार लेकर आया है, तो उसे पहले आचार्य आदि की आज्ञा लेनी चाहिए कि मैं यह आहार लाया हूँ, आपकी आज्ञा हो तो सभी साधुओ मे विभक्त कर दू। उसके प्रार्थना करने पर आचार्य आदि जो आज्ञा प्रदान करे उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि साधु को सघ की व्यवस्था करने वाले आचार्य आदि प्रमुख मुनियो की आज्ञा लेकर ही साधु जीवन की प्रत्येक क्रिया मे प्रवृत्त होना चाहिए।

आचार्य अभयदेव सूरि ने सात पदवियो का निम्न अर्थ किया है–

१-आचार्य - प्रतिबोधक प्रव्राजकादि, अनुयोगाचार्यो वा।

२-उपाध्याय.-सूत्रदाता।

३-प्रवर्त्तक - प्रवर्तयति साधूनाचार्योपदिष्टेषु वैयावृत्यादिष्विति प्रवर्ती।

४-स्थविर - प्रवर्तिव्यापारितान् साधून् मयमयोगेषु सीदत

स्थिरीकरोतीति स्थविर ।

५-गणी-गणोऽस्यातीति गणी-गणाचार्य ।

६-गणधर -गणधरो-जिनशिष्यविशेष ।

७-गणावच्छेदक·-गणस्यावच्छेदो-विभागोऽशोऽस्यास्तीति यो हिगणाश गृहीत्वा गच्छोपष्टम्भायैवोपधिमार्गणादि निमित्त विहरति स गणावच्छेदक ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त सातो उपाधिया गण की, सघ की सुरक्षा एव सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए रखी गई हैं। इनमे गणावच्छेदक का कार्य साधुओ की उपधि आदि की आवश्यकता को पूरा करना है। जब कि आचाराङ्ग सूत्र के वृत्तिकार आचार्य शीलाक ने गणावच्छेदक को गण, गच्छ या सघ का चिन्तक बताया है[१]। परन्तु, आचार्य अभयदेव सूरि ने जो अर्थ किया है, वह दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र मे वर्णित आठ गणि सपदाओ से सबन्ध रखता है।

प्रस्तुत सूत्र मे '**पुरे सथुवा**' और '**पच्छा संथुवा**' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य दीक्षाचार्य एव वाचनाचार्य से है। उक्त सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि दीक्षाचार्य एव वाचनाचार्य (आगम का ज्ञान कराने वाले) अलग-अलग होते थे।

प्रस्तुत सूत्र मे साधु के वात्सल्य भाव का वर्णन किया गया है और साथ मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उसे प्रत्येक कार्य आचार्य आदि की आज्ञा से करना चाहिए। उन्हे बिना बताए या उन्हे बिना पूछे न स्वय आहार करना चाहिए एव न अन्य साधुओ को देना चाहिए। ऐसे आहार आदि कार्यो मे माया, छल, कपट आदि का परित्याग करके सरल भाव से साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

साधु को माया-कपट से सदा दूर रहना चाहिए इसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से एगइओ मणुन्नं भोयणजायं पडिगाहित्ता पंतेण भोयणेण पलिच्छाएइ मा मेयं दाइयं संतं दट्ठूणं सयमाइए आयरिए वा जाव गणावच्छेए वा, नो खलु मे कस्सइ किंचि दायव्वं सिया, माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा। से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे पडिग्गहं कट्टु इमं खलु इमं खलुत्ति आलोइज्जा, नो किंचिवि निगूहिज्जा। से एगइओ अन्नयरं भोयणजायं पडिगाहित्ता भद्दयं २ भुच्चा विवन्नं विरसमाहरइ माइ॰ नो एवं ॥५७॥

छाया- स एकतर. मनोज्ञं भोजनजात प्रतिगृह्य प्रान्तेन भोजनेन प्रतिच्छादयेत् ममेदं दर्शितिं सत् दृष्ट्वा स्वयं आदद्यात् आचार्यः वा यावत् गणावच्छेदक : वा नो खलु मे कस्यापि किचिद् दातव्यं स्यात्, मातृस्थानं संस्पृशेत्, नो एवं कुर्यात्। स तमादाय तत्र गच्छेत् गत्वा पूर्वमेव उत्तानके हस्ते प्रतिग्रहं कृत्वा इद खलु इद खलु इति आलोचयेत् दर्शयेत्, न किञ्चिदपि

---

१ गणावच्छेदकस्तु गच्छकार्यचिन्तक ।

निगूहयेत्। स एकतरः अन्यतरद् भोजनजातं प्रतिगृह्य भद्रकं भद्रकं भुक्त्वा विवर्णं विरसमाहरति, मातृस्थानं संस्पृशेत् न एवं कुर्यात्।

पदार्थ– **से**-वह। **एगइओ**-कोई एक भिक्षु। **मणुन्न**-मनोज्ञ। **भोयणजाय**-भोजन को। **पडिगाहित्ता**-ग्रहण करके। **पंतेण भोयणेण**-नीरस भोजन से। **परिच्छाएइ**-आच्छादित करे। **मा**-मत। **मेय**-यह आहार। **दाइयं सत**-दिखाने पर, फिर। **दट्ठूण**-देखकर। **सयमाइए**-स्वय ही ले ले। **आयरिए**-आचार्य। **वा**-अथवा। **जाव**-यावत्। **गणावच्छेयए**-गणावच्छेदक। **खलु**-निश्चय ही। **मे**-मेरे को। **कस्सइ**-किसी भी भोजन का। **किंचि**-कुछ भी भाग। **नो**-नहीं। **दायव्व सिया**-दे। ऐसा करने से भिक्षु। **माइट्ठाण**-मातृस्थान का। **सफासे**-स्पर्श करता है अत वह। **एव**-इस प्रकार। **नो करिज्जा**-न करे। **से**-वह-भिक्षु। **त**-उस आहार को। **आयाए**-लेकर। **तत्थ**-जहा आचार्य आदि गुरुजन हो वहा। **गच्छिज्जा**-जाए और वहा जाकर। **पुव्वामेव**-पहले ही। **उत्ताणए**-पसारे हुए। **हत्थे**-हाथ मे। **पडिग्गह**-पात्र को। **कट्टु**-करके। **इम खलु-इम खलुत्ति**-यह पदार्थ यह है और यह पदार्थ यह है-इस प्रकार एक-एक करके सब पदार्थ। **आलोइज्जा**-दिखावे। **किंचिवि**-किंचिन्मात्र भी। **नो निगूहिज्जा**-छिपावे नहीं। **से**-वह। **एगइओ**-कोई एक भिक्षु। **अन्नयरं भोयणजायं**-अन्य किसी प्रकार का भी भोजन। **पडिगाहित्ता**-ग्रहण करके और गृहस्थ के वहीं। **भद्दय भद्दय**-अच्छा-अच्छा भोजन। **भुच्चा**-खाकर के। **विवन्न विरस**-बचा हुआ विरस और निकृष्ट भोजन। **आहरइ**-निवास स्थान पर आचार्य के पास लाता है, ऐसा करने से। **माइट्ठाणं**-मातृ स्थान का। **सफासे**-सेवन करता है अत भिक्षु को। **एवं**-इस प्रकार। **नो**-नहीं। **करिज्जा**-करना चाहिए।

***मूलार्थ*—यदि कोई मुनि भिक्षा मे प्राप्त सरस, स्वादिष्ट आहार को आचार्य आदि न ले लेवे इस दृष्टि से उसे रूखे-सूखे आहार से छिपा कर रखता है, तो वह माया का सेवन करता है। अत साधु को सरस एव स्वादिष्ट आहार के लोभ मे आकर ऐसा छल-कपट नहीं करना चाहिए। जैसा भी आहार प्राप्त हुआ हो उसे ज्यो का त्यो लाकर आचार्य आदि के सामने रख दे और झोली एव पात्र को हाथ मे ऊपर उठाकर एक-एक पदार्थ को बता दे कि मुझे अमुक-अमुक पदार्थ प्राप्त हुए है। इस तरह साधु को थोड़ा भी आहार छिपाकर नहीं रखना चाहिए।**

यदि कोई साधु गृहस्थ के घर पर ही प्राप्त पदार्थों में से अच्छे-अच्छे पदार्थो को उदरस्थ करके बचे-खुचे पदार्थ आचार्य आदि के पास लेकर आता है, तो वह भी माया का सेवन करता है। अत साधु को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे साधु जीवन की सरलता एव स्पष्टता का दिग्दर्शन कराया गया है। इसमे बताया गया है कि साधु को अपने स्वादेन्द्रिय का परिपोषण करने के लिए सरस को न तो नीरस आहार से छुपाकर रखना चाहिए और न उसे गृहस्थ के घर मे या मार्ग मे ही उदरस्थ कर लेना चाहिए। साधु को चाहिए कि उसे गृहस्थ के घरो से जो भी आहार उपलब्ध हुआ है, उसमे किसी तरह की आसक्ति नहीं रखते हुए अपने-अपने स्थान पर ले आए और आहार के पात्र को अपने हाथ मे ऊपर उठाकर आचार्य आदि से निवेदन करे कि मुझे भिक्षा मे ये पदार्थ प्रास हुए हैं। परन्तु, उसे उसमे से थोडा सा भी छुपाना नहीं चाहिए। आगम मे यह भी कहा गया है कि जो साधु प्राप्त पदार्थो का सबसे समान भाग नहीं देता है तो वह मुक्ति नही पा सकता। अत साधु को चाहिए कि वह बिना किसी सकोच एव बिना

किसी तरह की स्वाद-लोलुपता को रखते हुए सब साभोगिक साधुओ मे सम विभाजन करके आहार करे[१]। परन्तु, ऐसा न करे कि अच्छे-अच्छे पदार्थ स्वय खा ले और बचे-खुचे पदार्थ अन्य साधुओ को देवे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**मणुन्न**' और '**पतेणं**' पदो से सामूहिक आहार की परम्परा सिद्ध होती है। क्योकि विविध प्रकार के सरस आहार की प्राप्ति अनेक घरो मे ही हो सकती है। और अनेक घरो मे कई साधुओ के लिए ही घूमा जाता है। केवल एक साधु के लिए एक-दो घर ही पर्याप्त होते हैं। इस तरह इस सूत्र से सामूहिक गोचरी का स्पष्ट निर्देशन मिलता है।

इस सूत्र मे यह भी बताया गया है कि साधु को सदा सरल एव स्पष्ट भाव रखना चाहिए। उसे अपने स्वाद एव स्वार्थ के लिए किसी भी वस्तु को छुपाकर नहीं रखना चाहिए और गुरु एव आचार्य आदि के सामने सभी पदार्थ इस तरह रखने चाहिए कि वे आसानी से सभी पदार्थो को देख सके । न तो उन्हे देखने मे कोई कष्ट हो और न कोई पदार्थ उनकी दृष्टि से ओझल रह सके।

इस सूत्र से विशेष कारण होने पर गृहस्थ के घर मे आहार करने की ध्वनि भी प्रस्फुटित होती है। यह ठीक है कि उस सभय वह इतनी ईमानदारी एव प्रामाणिकता रखे कि वह स्वय ही सभी सरस पदार्थ न खा जाए। उस समय उस पर अपनी प्रामाणिकता को निभाने का बहुत बडा उत्तरदायित्व आ जाता है। परन्तु, विशेष परिस्थिति मे गृहस्थ के घर मे खाने का पूर्णतया निषेध नहीं है। आगम मे इसकी आज्ञा भी दी गई है[२]।

साधु को किस तरह का आहार ग्रहण करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० से जं० अतंरुच्छियं वा उच्छुगंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा, उच्छुडालगं वा, सिंबलिं वा सिंबलथालगं वा अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए तहप्पगारं अंतरुच्छुयं वा० अफा०॥ से भिक्खू वा २ से जं० बहुअट्ठियं वा मंसं वा मच्छं वा बहुकंटयं अस्सिं खलु० तहप्पगारं बहुअट्ठियं वा मंसं० लाभे संते०। से भिक्खू

१　असविभागी न हु तस्स मोक्खो।　　— दशवैकालिक सूत्र, ९, २ ।

२　सिया एगइओ लद्धु, विविह पाणभोयण।
भद्दग- भद्दग भुच्चा, विवन्न विरसमाहरे॥
जाणतु ता इमे समणा, आययट्ठी अय मुणी।
संतुट्ठो सेवए पत, लूहवित्ती सतोसओ॥
पूयणट्ठा जसोकामी, माण समाण कामए।
बहु पसवइ पाव, मायासल्ल च कुव्वइ॥
— दशवैकालिक सूत्र, ५, २, ३३-३५।

वा॰ सिया णं परो बहुअट्ठिएण मंसेण वा बहुकंटएण मच्छेण वा उवनिमंतिज्जा आउसंतो समणा! अभिकंखसि बहुअट्ठियं मंसं॰ पडिगाहित्तए ? एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोइज्जा--आउसोत्ति वा २ नो खलु मे कप्पइ बहु॰ पडिगा॰, अभिकंखसि मे दाउं जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि, मा य अट्ठियाइं, से सेवं वयंतस्स परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहंसि बहु॰ परिभाइत्ता निहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफा॰ नो। से आहच्च पडिगाहिए सिया तं नोहित्ति वइज्जा नो अणिहित्ति वइज्जा, से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा २ अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अप्पंडे जाव संताणए मंसगं मच्छगं भुच्चा अट्ठियाइं कंटए गहाय से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा २ अहेज्झामथंडिलंसि वा जाव पमज्जिय पमज्जिय परट्ठविज्जा ॥५८ ॥

छाया– स भिक्षु वा स यत्॰ अंतरिक्षुकं वा इक्षुगंडिका वा इक्षुचोयग वा इक्षुमेरुक वा इक्षुशालकं वा इक्षुडालकं वा सिंबलिं वा सिंबलस्थालक वा अस्मिन् खलु प्रतिग्रहे अल्पे भोजनजाते बहूज्झितधर्मके तथाप्रकार अन्तरिक्षुकं वा अप्रासुक यावत् नो प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षु वा॰ स यत्॰ बहवस्थिकं मास वा मत्स्यं वा बहुकण्टकं अस्मिन् खलु॰ तथाप्रकारं बह्वस्थिकेन वा मास लाभे सति यावत् न प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षुः, वा॰ स्यात् पर. बह्वास्थिकेन मासेन वा मत्स्यकेन वा उपनिमन्त्रयेत् आयुष्मन्त॰ श्रमणाः ! अभिकांक्षसि बह्वस्थिक मास प्रतिग्रहीतुम् ? एतत्प्रकार निर्घोष श्रुत्वा निशम्य स पूर्वमेव आलोचयेत्– आयुष्मन् इति वा २ नो मे खलु कल्पते बह्वस्थिकं मांस प्रतिग्रहीतुम्। अभिकांक्षसि मे दातु यावतिक तावतिक पुद्गल देहि, मा च अस्थिकानि, तस्य एवं वदतः परः अभ्याहृत्य अन्त प्रतिग्रहे बहु॰ परिभाज्य निहृत्य दद्यात्, तथाप्रकार प्रतिग्रहं परहस्ते वा पर पात्रे वा अप्रासुकं॰ नो प्रतिगृण्हीयात्। स आहृत्य प्रतिग्राहित स्यात् तं नो ही इति वदेत् नो अही इति वदेत् स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् अपक्रम्य अथ आरामे वा अथ उपाश्रये वा अल्पाडे यावत् अल्पसन्तान के मास मत्स्यक भुक्त्वा अस्थिकानि कण्टकान् गृहीत्वा स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् अपक्रम्य अथ ज्झामस्थडिले वा प्रमृज्य प्रमृज्य परिष्ठापयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू-भिक्षु। वा-अथवा भिक्षुणी गृहस्थ के घर मे गया हुआ। से जं॰-फिर वह ग्राह्य पदार्थ को जाने, जैसे कि। अतरुच्छिय वा-इक्षुका छिला हुआ पर्व का मध्य भाग अथवा। उच्छुगंडिय वा-छिला हुआ इक्षुखण्ड। उच्छुचोयग वा-अथवा इक्षु के पीले जाने पर जो नि सार छिलके रह जाते है वे। उच्छुमेरगं वा-अथवा इक्षु का छिला हुआ अग्रभाग। उच्छुसालग वा-अथवा इक्षु की छिली हुई शाखा।

उच्छुडालग वा-अथवा छिली हुई इक्षु शाखा का एक भाग। **सिबलि वा**-अथवा मूँग आदि की किसी भी प्रयोग से प्रासुक हुई अचित फलिया, अथवा। **सिबलथालग वा**-बल्ली आदि की अग्नि प्रयोग से अचित्त हुई फलियां। **खलु**-वाक्यालकार में है। **असिंस पडिग्गहियंसि**-इस प्रकार का आहार गृहस्थ के पात्र में पड़ा हुआ है। **अप्पे सिया भोयणजाए**-जिस मे भोजन योग्य अश अल्प है और। **बहुउज्झियधम्मिए**-परठने-फैंकने योग्य अश अधिक है। **तहप्पगारं**- तथाप्रकार के। **अतरुच्छुयं वा**-छिला हुआ इक्षु पर्व का मध्य भाग आदि मिलने पर। **अफा०**-साधु उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। **से भिक्खू वा २**-वह साधु अथवा साध्वी गृहपति के घर मे गया हुआ। **से ज०**-वह आहार को जाने जैसे कि-**बहुअट्ठिय वा मंस**-बहुत अस्थि वाला गूदा अर्थात् जिस वनस्पति के फलो मे गुठलिया अधिक हो और गुद्दा कम हो अथवा। **मच्छ वा बहुकटय**-मत्स्य नामक वनस्पति, जिसके फल मे काटे विशेष होते हैं। **असिस खलु०**- इस प्रकार का आहार गृहस्थ के पात्र मे है तथा। **तहप्पगार**-तथा प्रकार का। **बहुअट्ठियं वा मस**-बहुत अस्थि वाला अर्थात् बहुत गुठली वाला गूदा और बहुत काटो वाला अचित्तफल। **लाभे सते०**-मिलने पर अकल्पनीय जान कर ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा०-वह भिक्षु अथवा भिक्षुकी गृहस्थ के घर मे गया हुआ। **ण**-वाक्यालकार मे है। **सिया**-कदाचित्। **बहुअट्ठिएण मसेण वा**-बहुत गुठलियो वाले गूदे से और। **मच्छेण वा**-बहुत काटो वाली मत्स्य नामक वनस्पति के फलो से। **उवनिमतिज्जा**-उपनिमन्त्रित करे कि। **आउसतो समणा !**-हे आयुष्मन् श्रमणो ! **बहुअट्ठियं मस**-बहुत अस्थियो वाले गुदे को। **पडिगाहित्तए**-ग्रहण करना। **अभिकखसि**-चाहते हो? **एयप्पगारं**-इस प्रकार के। **निग्घोस**-निर्घोष-शब्द को। **सुच्चा**-सुन कर और। **निसम्म**-हृदय मे विचार कर। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोएज्जा**-देखे और गृहस्थ के प्रति कहे कि। **आउसोत्ति वा०**-हे आयुष्मन् गृहपते ! या बहन ! **खलु**-निश्चय ही। **मे**-मुझे। **बहुअट्ठिय वा मंसं**-बहुत गुठलियो वाला गूदा। **पडिगाहित्तए**-ग्रहण करना। **नो कप्पइ**-नहीं कल्पता किन्तु यदि तू। **मे**-मेरे को। **दाउ**-देना। **अभिकखसि**-चाहता है या चाहती है तो। **जावइय**-इसमे से जितना। **पुग्गल**-पुद्गल खाद्य अश है। **तावइय**-उतना ही। **दलयाहि**-दे,दे। **मा य अट्ठियाइं**-अस्थिया-गुठलिया मत दे। **से**-वह, गृहस्थ। **सेवं**-उस भिक्षु के इस प्रकार। **वयतस्स**-कहने पर। **परो**-वह। **अभिहट्टु**-लाकर। **अन्तो पडिग्गहंसि**-घर मे जाकर अन्य पात्र मे। **बहु**-बहुत गुठलियो वाला गूदा। **परिभाइत्ता**-अविभक्त कर और। **निहट्टु**-बाहर लाकर। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगारं**- तथा प्रकार वा। **पडिग्गह**-प्रतिग्रह पात्रगत आहार । **परहत्थंसि वा**-गृहस्थ के हाथ में हो अथवा। **परपायसि वा**-गृहस्थ के पात्र मे हो। **अफासुयं**-उसे अप्रासुक जानकर मिलने पर ग्रहण न करे। **से**-उस भिक्षु ने। **आहच्च**-कदाचित्। **पडिगाहिए सिया**-ऐसा आहार ले लिया हो अर्थात् गृहस्थ ने पात्र मे डाल दिया हो, तो फिर। **त**-उस गृहस्थ को। **नोहित्ति वइज्जा**-न अच्छा कहे और। **नो**-नाहीं। **अणिहित्ति वा**-बुरा कहे किन्तु। **स**-वह भिक्षु। **त**-उस आहार को **आयाय**-लेकर। **एगत**-एकान्त स्थान मे। **अवक्कमिज्जा**-चला जाए और वहा जाकर। **अहे आरामंसि वा**-बाग मे अथवा। **अहे उवस्सयंसि वा**-उपाश्रय मे ही। **अप्पडे जाव सताणे**-जहा चींटी आदि के अण्डे और मकड़ी आदि के जाले न हो। **मंसगं मच्छगं**-वहा फल के गूदे और मत्स्य वनस्पति फल को। **भुच्चा**-खाकर। **अट्ठियाइ**-गुठलियो और। **कंटए**-काटो को। **गहाए**-ग्रहण कर और। **से**-वह भिक्षु। **त**-उसको। **आयाय**-लेकर। **एगंतं**-एकान्त स्थान के । **अवक्कमिज्जा**-चला जाए और वहा जाकर। **अहेज्झामथंडिलसि वा**-अग्नि द्वारा दग्ध भूमि आदि अचित्त एव निर्दोष स्थान को। **जाव**-यावत्। **पमज्जिय २**-अच्छी तरह प्रमार्जित करके। **परट्ठविज्जा**- उन गुठलियो को वहा पर ही फैक दे।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर में आहार आदि के लिए गया हुआ भिक्षु, इक्षु खंड आदि जो छिले हुए हैं एवं सब प्रकार से अचित्त हैं, तथा मूंग और बल्ली आदि की फली, जो किसी निमित्त से अचित्त हो चुकी हैं, परन्तु उसमें खाद्य भाग स्वल्प है और फैंकने योग्य भाग अधिक है तो इस प्रकार का आहार मिलने पर भी अकल्पनीय जानकर ग्रहण न करे।**

फिर वह भिक्षु किसी गृहस्थ के यहा गया हुआ बहुत गुठलियो युक्त फल के गूदे को और बहुत काटों वाली मत्स्य नामक वनस्पति को भी उपर्युक्त दृष्टि के कारण ग्रहण न करे। यदि गृहस्थ उक्त दोनों पदार्थों की निमत्रणा करे तो मुनि उसे कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! यदि तू मुझे यह आहार देना चाहता है तो उक्त दोनो पदार्थों का खाद्य भाग ही मुझे दे दे, शेष गुठली तथा कांटे मत दे।

यदि शीघ्रता में गृहस्थ ने उक्त पदार्थ मुनि के पात्र मे डाल दिए हो तो गृहस्थ को भला-बुरा न कहता हुआ वह मुनि बगीचे या उपाश्रय मे आए और वहा एकान्त स्थान में जाकर खाने योग्य भाग खाले और शेष गुठली तथा काटों को ग्रहण कर एकान्त अचित्त एवं प्रासुक स्थान पर परठ छोड़ दे।

***हिन्दी विवेचन*—**प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को ऐसे पदार्थ ग्रहण नहीं करने चाहिए जिनमे से थोडा भाग खाया जाए और अधिक भाग फैंकने मे आए। जैसे– छिला हुआ इक्षु खण्ड–गण्डेरी, मूग, एव बल्ली आदि की फली जो आग आदि के प्रयोग से अचित्त हो चुकी हैं, साधु को नहीं लेनी चाहिए। आग मे भुनी हई मूगफली, पिस्ते, नोजे (छिलके सहित) भी नहीं लेने चाहिए। इसी तरह अग्नि पर पके हुए या अन्य तरह से अचित्त हुए फल भी नहीं लेने चाहिए। जिनमे गुठली, काटे आदि फैंकने योग्य भाग अधिक हो। यदि कभी शीघ्रतावश गृहस्थ ऐसे पदार्थ पात्र मे डाल दे तो फिर मुनि को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए, प्रत्युत उक्त पदार्थों को लेकर अपने स्थान पर आ जाए और उनमे से खाने योग्य भाग खा लेवे और अवशेष भाग (गुठली, काटे आदि) एकान्त प्रासुक स्थान मे परठ–फैंक दे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**बहु अट्ठियं मसं**' और '**मच्छ वा बहु कटय**' पाठ कुछ विवादास्पद है। कुछ विचारक इसका प्रसिद्ध शाब्दिक अर्थ ग्रहण करके जैन साधुओ को भी मास भक्षक कहने का साहस करते हैं। वृत्तिकार आचार्य शीलाक ने इसका निराकरण करने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। वे स्वय लिखते हैं कि बाह्य भोग के लिए अपवाद मे मास आदि का उपयोग किया जा सकता है[१]।

परन्तु, वृत्तिकार के पश्चात् आचाराङ्ग सूत्र पर बालबोध व्याख्या लिखने वाले उपाध्याय पार्श्वचन्द्र सूरि वृत्तिकार के विचारो का विरोध करते हैं। उन्होने लिखा है कि आगम मे अपवाद एव उत्सर्ग का कोई भेद नहीं किया गया है और जो कटक आदि को एकान्त स्थान मे परठने का विधान किया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अस्थि एव कण्टक आदि फलो मे से निकलने वाले बीज(गुठली) या काटे

---

१ **एव माससूत्रमपि नेयम्, अस्य चोपादान क्वचिल्लूतादयुपशमनार्थं सद्वैद्योपदेशतो बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना ज्ञानाद्युपकारकत्वात्फलवद्दृष्ट, भुजिश्चात्र बहि परिभोगार्थे नाभ्यवहारार्थे पदाति भोगवदिति।**

– आचाराग वृति।

आदि ही हो सकते हैं। प्रज्ञापना सूत्र में बीज(गुठली) के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा- '**एगट्ठिया बहुट्ठिया**' एक अस्थि (बीज) वाले हरड आदि और बहुत अस्थि (बीज) वाले अनार, अमरूद आदि। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त शब्दो का वनस्पति अर्थ मे प्रयोग हुआ है। अत वृत्तिकार का कथन सगत नहीं जचता[1]।

जब हम प्रस्तुत प्रकरण का गहराई से अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि वृत्तिकार का कथन प्रसग से बाहर जा रहा है। उक्त सूत्र मे गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट साधु का आहार के सम्बन्ध मे गृहस्थ के साथ होने वाले सम्वाद का वर्णन किया गया है, न कि औषध के सम्बन्ध मे। यदि वृत्तिकार के कथनानुसार यह मान ले कि बाह्य लेप के लिए साधु मास ग्रहण कर सकता है। तो यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहेगा कि बाह्य लेप के लिए कच्चे मास की आवश्यकता पडेगी, न कि पक्व मास की और कच्चे मास के लिए किसी के घर न जाकर कसाई की दुकान पर जाना होता है। और यहा कसाई की दुकान का वर्णन न होकर गृहस्थ के घर का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि वृत्तिकार का अपवाद मे मास ग्रहण करने का कथन आगम के अनुकूल प्रतीत नहीं होता। क्योकि प्रस्तुत पाठ मे इसका कहीं भी सकेत नहीं किया गया है कि रोग को उपशान्त करने के लिए मास को बान्धना चाहिए। अत. वृत्तिकार का कथन प्रस्तुत सूत्र से विपरीत होने के कारण मान्य नहीं हो सकता।

प्रस्तुत सूत्र के पूर्व भाग मे वनस्पति का स्पष्ट निर्देश है और उत्तर भाग मे मास शब्द का उल्लेख है। इस तरह पूर्व एव उत्तर भाग का परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होता है। एक ही प्रकरण मे वनस्पति एव मास का सम्बन्ध घटित नहीं हो सकता। और अस्थि एव मास शब्द का आगम एव वैद्यक ग्रन्थो मे गुठली एव गुद्दा अर्थ मे प्रयोग मिलता है। आचाराङ्ग सूत्र मे जहा धोवन (प्रासुक) पानी का वर्णन किया गया है, वहा अस्थि शब्द को प्रयोग किया गया है। उसमे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ आम्र आदि के धोवन को साधु क सामने छानकर एव अस्थि (गुठली) निकाल कर दे तो ऐसा धोवन पानी साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिए। यहा गुठली के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग हुआ है[2]। और यह भी स्पष्ट है कि आम्र के धोवन अस्थि (हड्डी) के होने की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती। उसमे गुठली

---

१ ते मास शुद्धिइ जे कुलिया विना आहार न उ दलछइ ते जिमी नद् कुलिया कटकादि लेई एकाति निरवद्य स्थडिलइग्झाम थडिलसि कहता अग्निदग्ध स्थानक नीवाहादिक तिहा आवी पडिलेही २ प्रमार्जी २ परिठवइ। ए परठवि वा नी विधि जाणवी जिणि कारणी एकेक वनस्पति माहिला कुलिया आहारी न सकिवइ पान न कराय कंटक गलइ न अतरइ तिणी कारणि परठविवा कह्या। इहा वृत्तिकार लोक प्रसिद्ध मांस मत्स्यादिक न उ भाव वखाणय उछ इ पर सूत्र स्यउ विरोध भणिए अर्थ न सभवइ। पछइ वली श्री जिनमतना जाण गितार्थ जे प्रमाण करेइ ते प्रमाण। शास्त्र माहिं अस्थि शब्द इ कुलिया घणे ठामे कह्या छइ। श्री पन्नवणा माहिं वनस्पति अधिकारि "एगट्ठिया, बहुअट्ठिया" एहवा शब्द छइ एगट्ठिया हरड़इ प्रभृति बहुअट्ठिया दाड़िम प्रभृति आणि वा इमइज इहा अस्थि न इ शब्दइ कुलिया बोल्या छइ, त उ मास शब्दिइ माहिल उ गिर सभावियइ, एह भणी वनस्पति विशेष मास मत्स शब्दिइ फलाख्या छइ इम चारित्रिया नइ मास अने मत्स उधाडइ भावि कारणि पुण आहारवा योग्य न दीसइ, तथा वली सूत्र माहिं ए साधु नइ उत्सर्गिग कह्यउ छइ, वृत्ति माहिं अपकादि पद वखाणि उ छइ, तिणि विशादि सूत्र स्यउ मिलतु पण नथी, तिणि कारणि वनस्पति विशेष कहता सूत्र नउ अर्थ जिम उत्सर्गि छइ तिमइ ज मिलइ इति भाव । — उपाध्याय पार्श्वचन्द्र सूरि।

२ आचाराग सूत्र, २, १, ८, ४३।

का होना ही उचित प्रतीत होता है। और आम्र के धोए हुए पानी में गुठली के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि अस्थि शब्द का गुठली के अर्थ मे प्रयोग होता रहा है।

प्रज्ञापना सूत्र मे वनस्पति के प्रसग मे '**मसकडाहं**' शब्द का प्रयोग किया गया है[1]। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'समास सगिर' अर्थात् फलो का गुदा किया है । और वृक्षो का वर्णन करते हुए लिखा है कि कुछ वृक्ष एक अस्थि वाले फलो के होते हैं– जैसे-आम्र, जामुन आदि के वृक्ष। अर्थात् आम्र, जामुन आदि फलो मे एक गुठली होती है[2]। यह तो स्पष्ट है कि फलो मे गुठली ही होती है, न कि हड्डी। इससे स्पष्ट है कि आगम मे अस्थि शब्द गुठली के अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है।

जैनागमो के अतिरिक्त आयुर्वेद के ग्रन्थो मे भी अस्थि शब्द का गुठली के अर्थ मे अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है–

पथ्याया मज्जनिस्वादु , स्नायावम्लो व्यवस्थित ।
वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिस्थस्तुवरो रस ॥

अर्थात्– हरड की मज्जा स्वादु है, इसकी नाडियो मे खट्टापन है, बृन्त मे तिक्त रस है, त्वचा मे कटुपन और अस्थि-गुठली मे कसैला रस है[3]।

मज्जा पनसजा वृष्या, वातपित्तकफापहा.।

अर्थात् कटहर की मज्जा वृष्य, वात, पित्त और कफ को नाश करती है।

अभिनव निघण्टु पृ० १६०

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता, श्रावणी च तपोधना।
श्रावणाह्वा मुण्डतिका, तथा श्रवणशीर्षका॥
महाश्रावणिकाऽन्यातु, सा स्मृता भूकदम्बिका।
कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथाति तपस्विनी॥

अर्थात्-मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना श्रावणाह्वा, मुण्डतिका, श्रवणशीर्षका, भूतघ्नी, पलकषा कदम्बपुष्पा अरुणा, मुण्डीरिका, कुम्भला, तपस्विनी, प्रव्रजिता और परिव्रजिका ये मुण्डी के नाम हैं। – भावप्रकाश पृ० २३१,२३२

भाव प्रकाश मे और भी इसी प्रकार की वनस्पतियो के नामो का उल्लेख है, जैसे कि–

हयपुच्छिका	माषपर्णी वनस्पति	२९६
व्याघ्रप्रच्छ	एरण्ड	२०७
सिहतुण्ड	डडा थोहर	२०९
सिहास्य वृष	वासा	२११
जीव	वकापण-डेक	२१२

१ प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम पद।
२ प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम पद।
३ भावप्रकाश निघ० हरीतक्यादि० व० पृ० ५६।

वत्स, कीट, इन्द्र	कुटज-कोरडसक	२१५
मर्कटी, वायसी	करजुआ (मींचका)	२१६
मर्कटी	कौंचबीज	२१७
गोलोमी	श्वेतदूर्वा-सफेद दूब	२२५
मत्स्याक्षी	गाठदूब	२२५
मृगाक्षी	इन्द्रायण (तुम्मा)	२२९-२३०
गान्धारी	जवासा	२३१
शिखरी मयूरक, मर्कटी	अपामार्ग (पुठकडा)	२३२
भिक्षु	तालमखाणा	२३३
कुमारी, कन्या	घीकुआर	२३४
गोपी, गोपा, कन्या] गोपवधू, कृशोदरी]	काला बासा	२३५
भृग	भगरा	२३६
वायसी, काका	मकोच	२३७
काकनासा	कोआटूण्टी	२३८
काकजघा	एक वनस्पति	२३८
मेष शृङ्गी	मेढासिगी	'' ''
मत्स्याक्षी	मछोछी	२४१
मत्स्यादनी	जल पिप्पली	२४६
गो जिव्हा	गोभी (गाउजबा)	२४७
नाम्र चूड	ककरौंदा	२४७
व्याल, चित्रक	चित्रक-वनस्पति	१४९
मयूर	अजवैण	१५०
धेनुका	धनिया	१५२
मत्स्यपित्ता, मत्स्य शकला	कुटकी	११६
चन्द्र	कबीला	१६०
रामसेवक	चिरायता	१६२
निशा	हलदी	१६९
गजाख्य	पमाड	१७१
मातुलानी	भग	१७४
चन्द्र	काफूर	१७९

क्या यहा व्युत्पतिलभ्य अर्थ ग्रहण करना उचित होगा ? कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रस्तुत प्रकरणों मे भी लोक प्रसिद्ध अर्थ का ग्रहण न करके प्रकरण सगत और शास्त्र सम्मत वनस्पति विशेष अर्थ ही उपयुक्त हो सकता है।

तथा– वैद्यक के सुप्रसिद्ध सुश्रुतसहिता तथा चरक सहिता से भी हमारे उक्त कथन का समर्थन होता है, यथा–

आम्रफलेऽपरिपक्वे केशरमासास्थिमज्जा न पृथक् दृश्यन्ते।

–सुश्रुत सहिता अध्याय ३, श्लोक ३२, पृ० ६४२।

अर्थ– पके आम्र फल मे केशर, अस्थि, मास अस्थि, मज्जा प्रत्यक्ष रूप मे दीखते हैं। परन्तु, कच्चे आम मे ये अग सूक्ष्म अवस्था मे होने के कारण भिन्न- भिन्न नहीं दीखते, उन सूक्ष्म केशरादि को सुपक्व आम्र ही व्यक्त रूप देता है।

प्रस्तुत पाठ मे फलो मे केशर, गुद्दे, गुठली आदि के लिए मास, अस्थि एव मज्जा शब्द का प्रयोग किया गया है।

तथा चरक सहिता मे महर्षि चरक मिश्री का नाम 'मत्स्यडिका' लिखते हैं यथा–

ततो मत्स्यडिका खड शर्करा विमला परम्।
यथा यथैषा वैमल्य भवेच्छैत्य तथा तथा॥

– चरक सहिता पृष्ठ २९५

इसके अतिरिक्त वैद्यक के सुप्रसिद्ध मदनपाल निघण्टु के भी कुछ प्रमाणो को पाठक देख ले, यथा–

माता	घीकुआर	४३
मार्जारी	जवादि वनस्पति	५५
कुक्कुटी	शेमल	६७
तापस, मार्जार	तिगोटी	६८
कुक्कुर	श्लिष्ठपूर्ण, विकीर्ण, शीर्ण रोमक (ये ग्रन्थि पर्ण वनस्पति के नाम हैं)	६८
शठ, कुटिल	तगर	१८३
पिशुन	केसर	१९०
जटायु, कौशिका, धूर्त	गुग्गुल	१८३
गौरी	गोरोचन	११०
कुक्कुट	सुनिषण्णक वनस्पति।	७५४
केश	सुगन्ध बाला	१९१
तपस्विनी	वालछड	१९२
मेघ वारिद	मोथा	१९३
दैत्या	मुरा वनस्पति	१९४
बधू	कपूर कचरी	१९४
अङ्गना, प्रिया	प्रियगु औषधि	१९४
राज पुत्री, द्विजा	सम्भालू के बीज	१९५
कुक्कुर,शुक, मयुर	थुनेर	१९६

ब्राह्मणी, देवी, देवपुत्री	असबर्ग वनस्पति	१९८
जननी	पपडी	१८८
नटी, धमनी	नली-सुगन्धित द्रव्य	१९९

इन उपर्युक्त नामो को देखते हुए, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि के नामो से अनेकानेक वनस्पतिये-अभिहित हुई हैं। अतएव प्रस्तुत प्रकरण मे भी शठ का अर्थ धूर्त, कुटिल का वक्र और पिशुन का चुगलखोर अर्थ करना सगत नहीं है, किन्तु इन शब्दो के वनस्पति रूप अर्थ ही प्रसगोचित हैं।

भल्लूक	आलू बुखारा	९२
मत्स्य	पोई नामक वनस्पति	१०२
कपोतिका	मूली	१०४

इन प्रमाणो से यह भली-भाति सिद्ध हो जाता है कि- फलो के गुद्दे को मास, और गुठली को अस्थि के नाम से निर्दिष्ट करना भी उस युग की प्रणाली रही है। ऊपर प्राचीन वैद्यक ग्रन्थो के प्रमाणो से अस्थि और मास का गुठली और गुद्दे के अर्थ मे प्रयुक्त होना प्रमाणित किया गया है। आयुर्वेद साहित्य के नवीन ग्रथो मे भी इस तरह का वर्णन मिलता है। देखिए हरिताल भस्म की विधि का वर्णन करते हुए ग्रथकार लिखते है-

ताल सुधा प्रस्तार नीरमग्न, कूष्माडमासै पुटित विधाय।
दहेदृशप्रस्थ वनोपलेषु, गुजोन्मित स्यात् सकल ज्वरेषु॥१॥

अर्थात् - हरिताल को चूने के पानी मे रखने के अनन्तर कूष्माड के मास से (पेठे के गुद्दे से) सम्पुटित करके १० सेर बन्योपलो (पाथियो) मे फूक देने से उत्तम भस्म बन जाती है और उसकी १ रत्ति की मात्रा है तथा वह सभी प्रकार के ज्वरो को शान्त करने के लिए हितकर है। (सिद्ध भेषज मणिमाला ज्वराधिकार) इसमे कूष्माड (पेठा) का 'मास' उसके गुद्दे के अतिरिक्त अन्य कोई भी पदार्थ सम्भव नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि उक्त श्लोक मे मास शब्द का प्रयोग गुद्दे के अर्थ मे ही हुआ है। इसके अतिरिक्त सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ मे भी मास शब्द का गुद्दा अर्थ किया है[१]। इस प्रकार वैद्यक के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थो से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि अस्थि और मास ये लोक प्रसिद्ध अर्थ के ही बोधक नहीं अपितु गुठली और गुद्दे के भी बोधक हैं। दूसरे शब्दो मे यह भी कह सकते हैं कि इनका वाच्यार्थ केवल लोक प्रसिद्ध अर्थ अस्थि (हड्डी) और मास (रुधिर निष्पन्न धातु) ही नहीं अपितु गुठली और गुद्दा भी होता है।

वृक्ष के कठिन भाग एव फलो के बीज (गुठली) के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग हम वैद्यक एव जैन साहित्य मे अनेक स्थलो पर देख चुके हैं। परन्तु, वैद्यक साहित्य मे कपास के अदर के कठिन भाग के लिए भी अस्थि शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षेमकुतूहल मे लिखा है-'कपास का फल अति उष्ण प्रकृति वाला कषाय एव मधुर रस वाला और गुरु होता है। वह वात, कफ को दूर करने वाला तथा

---

१ मास (न०) १ गोश्त। २ मछली। ३ फल का गूदा।
-सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ ६५५।

रुचिकर होता है। इसमे से अस्थि (बीच का कठिन भाग) निकाल कर प्रयोग करने से लाभदायक होता है[१]।

'अज' शब्द का वर्तमान मे सामान्य विद्वान बकरे एव विष्णु के अर्थ मे प्रयोग करते हैं। परन्तु, यह शब्द इसके अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता रहा है । जैसे – सुवर्णमाक्षिक धातु, पुराने धान्य, जो अकुरित होने के काल को अतिक्रान्त कर चुके हैं[२]।

इसी तरह **'कपोत'** शब्द केवल कबूतर का वाचक नही रहा है। परन्तु, सुरमे एव सज्जी (खार) के लिए भी कपोत शब्द का प्रयोग होता रहा है। क्योकि इन पदार्थो का कपोत जैसा रग होने के कारण इन्हे कपोत शब्द से अभिव्यक्त करते थे।

श्यामा, गोपी, गोपवधू इन शब्दो का प्रयोग गोप कन्या या ग्वालो की स्त्री के लिए ही प्रयोग न होकर कृष्ण-सारिवा वनस्पति के लिए भी प्रयोग होता था। धवला- सारिवा नामक वनस्पति को गोपी और गोप कन्या कहा जाता था[३]।

श्वेत और कृष्ण कापोतिका शब्दो से पाठक सफेद और काले मादा कबूतर का ही अर्थ समझेगे, परन्तु वैद्यक ग्रन्थो मे इनका अन्य अर्थों मे प्रयोग हुआ है। कल्पद्रुम कोष मे लिखा है कि जो स्वल्प आकार और लाल अग वाली होती है, वह श्वेत कापोतिका कहलाती है। श्वेत कापोतिका वनस्पति दो पत्तो वाली और कन्द के मूल मे उत्पन्न होने वाली, ईषद् (थोडी) रक्त (लाल) तथा कृष्ण पिगला, हाथ भर ऊची, गाय के नाक जैसी और फणधारी सर्प के आकार वाली, क्षारयुक्त, रोगटे वाली, कोमल स्पर्श वाली और गन्ने जैसी मीठी होती है।

इसी प्रकार के स्वरूप एव रस वाली कृष्ण कापोतिका होती है। वह (कृष्ण कापोतिका) काले साप जैसी वाराही कन्द के मूल मे उत्पन्न होती है। वह एक पत्ते वाली महावीर्य दायिनी और बहुत काले अजन समूह जैसी काली होती है। उसके पत्ते मध्य से उत्पन्न प्ररोह पर लगे हुए गहरे नील मयूरपख के समान होते हैं और वह बारह पत्तो के छत्र वाली, राक्षसो की नाशक, कन्द-मूल से उत्पन्न होने वाली और जरा-मरण को निवारण करने वाली ये दोनो कापोतिकाए होती हैं[४]।

---

१ **कर्पास फलमत्युष्ण, कषाय मधुर गुरु।**
वातश्लेमघ्नर रुच्य, विशेषेणास्थिवर्जितम्॥

- क्षेमकुतूहले।

२ **शालिग्रामौषध शब्द सागर।**

३ **कृष्णा तु सारिवा श्यामा, गोपी गोपवधूश्च सा।**
धवला सारिवा गोपी, गोपकन्या च सारिवा॥

— भावप्रकाश निघण्टु।

४ **स्वल्पाकारा लोहितागा, श्वेतकापोतिकोच्यते।**
द्विपर्णिनी मूलमावा-मरूणा कृष्णपिगलाम्॥

इसी ग्रथ मे आगे कहा गया है कि जो शख, कुन्द, पुष्प और चन्द्र के समान श्वेत वर्ण की हो उसे अजा नामक महौषधि समझना चाहिए[१]।

इस तरह हम देख चुके हैं कि जैनागमो मे ही नहीं, अपितु वैद्यक एव अन्य ग्रन्थो मे भी मास, मत्स्य एव पशु-पक्षी के वाचक शब्दो का वनस्पति अर्थ मे प्रयोग हुआ है। अत प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त मास एव मत्स्य शब्द वनस्पति वाचक हैं, न कि मास और मछली के वाचक हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त शब्दो के आधार पर जैन मुनियो को मास-मछली खाने वाला कहना नितान्त गलत है।

आचाराङ्ग सूत्र के आधार पर आचार्य शयभव द्वारा रचित दशवैकालिक सूत्र मे इस तरह का पाठ आता है। फलो के प्रकरण मे अस्थि शब्द का गुठली के अर्थ मे प्रयोग किया गया है[२]। और ७वीं शताब्दी मे होने वाले आचार्य हरिभद्र ने अस्थि का अर्थ फलो की गुठली एव पुद्गल का अर्थ गुद्दा किया है[३]। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि यहा फलो के वर्णन का प्रसग होने के कारण उक्त शब्द गुठली एव गुद्दे के ही परिबोधक हैं और पुराने आचार्यो ने भी ऐसा ही अर्थ किया है[४]। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य हरिभद्र से पूर्व भी मास एव मत्स्य आदि शब्दो का वनस्पति अर्थ किया जाता था।

द्विरत्निमात्रा जानीयाद्, गोनसीं गोनसाकृतिम्।
सक्षारा रोमशा मृद्वीं, रसनेक्षुरसोपमाम्॥
एव रूप रसा चापि, कृष्णकापोतिमादिशेत्।
कृष्णसर्पस्य रूपेण, वाराहीकन्दसम्भवाम्॥
एकपर्णां महावीर्यां, भिन्नाञ्जनचयोपमाम्।
छत्रातिच्छत्रके विद्येत, रक्षोघ्ने कन्दसभवे॥
जरा मृत्युनिवारिण्यौ, श्वेतकापोतिसम्भवे।
कान्तैर्द्वादिशभि पत्रैर्मयूराङ्गरुहोपमैः॥

— कल्पद्रुम कोष ५९८

१ अजामहौषधिर्ज्ञेया शखकुन्देन्दुपाण्डुरा। — कल्पद्रुम कोष ५९८

२ बहु अट्ठिय पोग्गल, अणिमिस वा बहुकटय।
उच्छिअ तिदुअ बिल्ल, उच्छुखड च सिबलि॥
अप्पेसिया भोयणजाए, बहु उज्झिय धम्मिय।
दितिय पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिस॥

— दशवैकालिक ५, १, ७३-७४।

३ 'बहुअट्ठिय' त्ति सूत्रम् बहृवस्थि, पुद्गल 'अनिमिष वा' बहुकण्टक। अय किल कालाद्यपेक्षया ग्रहणे प्रतिषेध अन्येत्वभिदधति — वनस्पत्यधिकारात् तथाविध फलाभिधाने एते इति। तथा चाह — 'अस्थिक' अस्थिकवृक्षफलम्, 'तेन्दुक' तेदुरुकीफलम्, बिल्वम् इक्षुखण्डमिति च प्रतीते, शाल्मलि वा बल्लादि फलि वा। वा शब्दस्य व्यवहित सम्बन्ध इति सूत्रार्थ। अत्रैव दोषमाह-'अप्पे' त्ति सूत्रम्, अल्प स्याद् भोजनजातमत्रअपितु बहूज्झनधर्मकमेतत्। यतश्चैवमतोददती प्रत्याचक्षीत न मम कल्पते तादृशमिति सूत्रार्थ।

— दशवैकालिक वृत्ति।

४ अन्येत्वभिदधति— वनस्पत्यधिकारात् तथाविध फलभिधाने एते इती।

— दशवैकालिक सूत्र, वृत्ति।

उक्त वृत्ति मे ' पुद्गल' शब्द का जो मास अर्थ किया है, वह भी युक्ति सगत नहीं है। क्योकि जब अस्थि शब्द का गुठली अर्थ स्पष्ट परिलक्षित होता है, तो ऐसी स्थिति मे पुद्गल शब्द मास परक कैसे हो सकता है। जिसमे बहुत अस्थियाँ (गुठलिया) हो ऐसे पुद्गल का तात्पर्य बहुत गुठलियो वाला मास नहीं, प्रत्युत बहुत गुठलियो वाला फलों का गुद्दा ही होगा। अर्द्धमागधी कोष मे भी इसका अर्थ – गर्भ (फलो का गुद्दा) फल के मध्य का मनोरम अश किया गया है[1]।

आगमो मे साधु के लिए कहीं भी मास ग्रहण करने का उल्लेख नहीं किया गया है। अनेक स्थलो पर निषेध अवश्य किया है। साधु की आहार विधि के वर्णन मे कहीं भी मास आहार के ग्रहण का उल्लेख नहीं मिलता है। यहा हम कुछ पाठो का उल्लेख कर दे तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि उक्त सूत्र मे प्रयुक्त शब्द फलो के अर्थ से सबन्धित हैं। वे पाठ इस प्रकार हैं–

अताहारा पताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा
अन्तजीवी, पन्तजीवी आयाम्बिलिया, पुरिमड्ढिया निव्विगइया
अमज्जमसासिणो नो नियामरसभोई।– सूत्रकृताङ्ग द्वि श्रु० द्वि० अ०।

सूत्रकृताङ्ग सूत्र के इस पाठ मे मुनि के अन्य विशेषणो के साथ 'अमज्जमसासिणो' यह विशेषण भी दिया है, जिसका आशय है कि– साधु कभी मद्य और मास का सेवन न करे। क्या इतने पर भी जैन भिक्षु को मासाहारी कहने का साहस किया जा सकता है ? और भी देखिए –

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए खीर वा दहि वा णवणीय
वा सप्पि वा गुल वा खड वा सक्कर वा मच्छडिय वा अण्णयर
वा पणीय आहार आहारेइ, आहारत वा साइज्जइ[2]।

निशीथ सूत्र के इस पाठ का भाव यह है कि– 'साधु मैथुन के लिए दूध, दही, मक्खन, घी, गुड, खाड और शर्करा आदि पौष्टिक पदार्थ का कभी सेवन न करे। उक्त सूत्र मे साधु के खाने के पदार्थ मे मास को बिल्कुल नहीं गिना, इससे स्पष्ट है कि जैन आगमो का आशय साधु को मास खाने के निषेध मे है। और भी –

कप्पइ मे समणे निग्गथे फासुएण एसणिज्जेण– असणपाण–
खाइमसाइमेण वत्थपडिग्गहकम्बलपायपुच्छणेण पीढफलय–
सिज्जासथारएण ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए।
त्तिकट्टु इम एयारूव अभिग्गह अभिगिण्हइ।– उपा० दशा० प्र० अ० सूत्र ८।

प्रस्तुत सूत्र मे भगवान् महावीर के पास आनन्द श्रावक ने साधु को आहार देने का नियम लिया है। इस पाठ मे साधु को क्या-क्या आहार देना चाहिए, यह लिखा है। इसमे अशन आदि का तो उल्लेख है परन्तु मास देने का उल्लेख नहीं है। अगर भिक्षुओ मे मास खाने की भी प्रथा होती तो उसका भी

१ अर्द्धमागधी कोष, भाग ३, पृष्ठ ५९५।
२ निशीथ सूत्र ६ उद्देशक ७९ सूत्र।

उल्लेख होता।

आगमो से स्पष्ट होता है कि साधु के लिए मास सर्वथा त्याज्य रहा है। आर्द्रकुमार ने मासभक्षक बौद्ध भिक्षुओ का उपहास करते हुए कहा है–

थूल उरब्भ इह मारियाण, उदिट्ठभत्त च पगप्पएत्ता।
त लोण तेल्लेण उवक्खडेत्ता, सपिप्पलीय पगरति मस॥
त भुञ्जमाणा पिसिय पभूय, नो ओवलिप्पामु वय रएण।
इच्चेव माहसु अणज्जधम्मा, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा॥
सव्वेसि जीवाण दयट्ठयाए, सावज्जदोस परिवज्जयता।
तस्सकिणो इसिणो नायपुत्ता, उद्दिट्ठभत्त परिवज्जयति॥
भूयाभिसकाए दुगुच्छमाणा, सव्वेसि पाणाण निहाय दण्ड।
तम्हा न भुञ्जन्ति तहप्पगार, एसोऽणुधम्मो इह सजयाण[१]॥

आर्द्र कुमार का कथन जैन आचार-विचार को स्पष्ट कर देता है। वह बौद्ध-भिक्षुओ से कहता है कि आप बकरे का मास खाकर भी अपने आप को पाप से लिप्त नहीं मानते। परन्तु, यह कैसे हो सकता है ? मास भक्षण का कार्य तो स्पष्टत· अनार्य कर्म है। उसका सेवन करने वाला पाप कर्म के बन्ध से कैसे बच सकता है ? निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान महावीर के साधु कभी भी मासाहार नहीं करते। आर्द्रकुमार की यह स्पष्ट आलोचना सुनकर बौद्ध भिक्षु चुप हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जैन साधु मासाहारी नहीं थे और न हैं। यदि जैन साधु स्वय मासाहार करते होते तो वे बौद्धो के सामिष भोजन की आलोचना नहीं करते। और यदि करने का दु.साहस करते भी तो बौद्ध भिक्षु उन्हे सचोट उत्तर देने से कभी नहीं चूकते कि तुम भी तो सामिष भोजन करते हो, तुम कौन से पवित्र व्यक्ति हो। परन्तु, जैन मुनियो की कहीं ऐसी आलोचना नही की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि जैन मुनि आमिष भोजन से सर्वथा निवृत्त हैं। आगम मे तो मासाहार को साधु के लिए तो क्या मनुष्य के लिए भी उपयुक्त नहीं बताया है। उसे मनुष्यो का नहीं पशुओ का, जगली जानवरो का आहार कहा है[२]।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे बताया गया है कि उत्सर्पिणी काल चक्र का पहला आरा समाप्त होकर जब दूसरा लगेगा तब ४९ दिन तक अनवरत वर्षा होगी। उससे पृथ्वी मे सरसता आएगी और वह विविध वनस्पतियो से शस्य-श्यामला हो जाएगी। उस समय बिलो मे रहने वाले मनुष्य बाहर आएगे और फल-फूल खाकर अत्यधिक प्रसन्न होगे और यह सामाजिक नियम बनाएगे कि आज तक हमने विवश होकर मासाहार किया, परन्तु, अब कभी भी मासाहार नहीं करेगे। जो सामिष आहार करेगा उसका बहिष्कार

---

१ सूत्रकृताग श्रुत॰ २ अध्य॰ ३, ३७, ३८, ४०, ४१।

२ तिरिक्खजोणियाण चउव्विहे आहारे पन्नत्ते-तजहा कक्कोवमे, विलोवमे, पाणमसोवमो, पुत्तमसोवमे। मणुस्साण चउव्विहे आहारे पन्नत्ते तजहा— असणे जाव सातिमे।

— स्थानाग सूत्र, स्थान ४, ३४०।

करेगे और उसकी छाया से भी दूर रहेगे[१]। आचार्य शान्तिचन्द्र ने प्रस्तुत सूत्र की टीका मे लिखा है कि मासाहारी लोगो के अपवित्र शरीर को छूना तो दूर रहा, उनकी छाया तक को भी नहीं छुएगे[२]। अर्थात् उनकी छाया को स्पर्श करना भी पाप माना जाएगा। इससे बढकर मासाहार के प्रति और अधिक क्या कहा जा सकता है ? इसे पढने के पश्चात् क्या कोई समझदार व्यक्ति यह कल्पना कर सकता है कि इतने कडे शब्दो मे मासाहार का विरोध करने वाले जैनागम साधु के लिए सामिष भोजन का विधान कर सकते हैं ? बिल्कुल नहीं।

आगमो मे चार गति मानी गई हैं – १-नरक, २-तिर्यञ्च, ३-मनुष्य और ४-देव गति। औपपातिक सूत्र मे प्रत्येक गति मे जाने के कारणो का उल्लेख किया गया है। उसमे मास भक्षण को नरक गति का कारण बताया गया है[३]। उत्तराध्ययन सूत्र मे भी बताया गया है कि मास मद्य का आहार करने वाला व्यक्ति अकाम मृत्यु को प्राप्त होकर नरक मे जाता है[४]। मृगापुत्र ने भी मास एव मद्य का सेवन करने से नरक गति का मिलना कहा है[५]।

इन सब पाठो से यह स्पष्ट होता है कि आगम मे सामिष भोजन का कडे शब्दो मे निषेध किया गया है। इसे मनुष्य का भोजन नही, अपितु पशु का भोजन कहा है। मासाहार करने वाला खूखार भेडिये से भी भयानक है, जो अपने आहार को छोडकर अपने पेट को जीवित पशुओ की कब्र बनाता है। अत इन सब उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त मास एव मत्स्य शब्द सामिष आहार से नहीं, अपितु फलो से सम्बन्धित है। अत उक्त शब्दो का वनस्पति विशेष अर्थ करना ही उचित एव आगम सम्मत प्रतीत होता है।

---

१ तएण ते मणुआ भरह वास परूढरूक्खगुच्छगुम्मगुम्मलयवल्लीतणपव्वयहरिआ ओसहीय उवचियतयपत्तपवालपल्लवकुरपुप्फफल समुइअ सुहोवभोग जाय २ चाव पासिहिन्ति पासित्ता बिलेहिंतो णिद्धाइस्सति णिद्धाइत्ता हट्ठतुट्ठा अण्णमण्ण सद्दाविस्सति २ त्ता एव वदिस्सति – जाते ण देवाणुप्पिया ! भरहे वासे परूढरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्ली तणपव्वयहरिय जाव सुहोवभोगे, त जे देवाणुप्पिया ! अम्ह केइ अज्जप्पभिइ असुभ कुणिमं आहार आहारिस्सइ से ण अणेगाहि छायाहिं वज्जणिज्जे त्ति कट्टु सठिय ठवेंति २ त्ता भरहे वासे सुहसुहेण अभिरममाणा २ विहरिस्सति।

– जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २, ३९।

२ आस्ता तेषामस्पृश्याना शरीरस्पर्श तच्छरीरच्छायास्पर्शोपि वर्जनीय ।

३ चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयताए कम्म पकरेति, णेरइयत्ताए कम्म पकरेत्ता णेरइएसु उववज्जति, तजहा– १-महारभयाए २-महापरिग्गहयाए ३-पचिंदियवहेण ४-कुणिमाहारेण। – औपपातिक सूत्र, भगवद्देशना।

४ हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुजमाणे सुर मस, सेयमेय त्ति मन्नई॥ – उत्तरा० ५, ९।
इत्थीविसयगिद्धे य, महारभ परिग्गहे।
भुजमाणे सुर मस, परिवूढे पर दमे॥
अय कक्करभोई य, तुदिल्ले चियलोहिए।
आउय नरय कखे, जहाएस वा एलए॥ – उत्तरा० ७, ६, ७।

५ तुह पियाइ मसाइ, खडाणि सोल्लगाणि य।
खाइओ मिसमसाइ, अग्गिवण्णाइऽणेगसो॥
तुह पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य।
पाइओमि जलन्तीओ, वसाओ रुहिराणि य॥ – उत्तरा०, १९, ६९-७०।

आहार के विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ सिया से परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहे बिलं वा लोणं वा उब्भियं वा लोणं परिभाइत्ता नीहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहं परहत्थंसि वा २ अफासुयं नो पडि॰। से आहच्च पडिगाहिए सिया, तं च नाइदूरगए जाणिज्जा, से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ पुव्वामेव आलोइज्जा– आउसोत्ति वा २ इमं किं ते जाणया दिन्नं उदाहु अजाणया ? से य भणिज्जा नो खलु मे जाणया दिन्नं, अजाणया दिन्नं कामं खलु आउसो ! इयाणिं निसिरामि, तं भुंजह वा णं परिभाएह वा णं तं परेहि समणुन्नायं समणुसट्ठं तओ संजयामेव भुंजिज्ज वा पीइज्ज वा, जं च नो संचाएइ भोत्तए वा पायए वा साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुन्ना अपरिहारिया अदूरगया, तेसिं अणुप्पयायव्वं सिया, नो जत्थ साहम्मिया जहेव बहुपरियावन्नं कीरइ तहेव कायव्वं सिया, एवं खलु॰ ॥५९ ॥

छाया– स भिक्षुः॰ स्यात् स पर. अभिहृत्य अन्तः पतद्ग्रहे विड वा लवणं वा उद्भिज्ज वा लवण परिभाज्य निर्हृत्य दद्यात् तथाप्रकार पतद्ग्रहं परहस्ते वा २ अप्रासुकं नो प्रतिगृण्हीयात्। स आहृत्य प्रतिगृहीतं स्यात् तं च नातिदूरगत जानीयात् (ज्ञात्वा) स तमादाय तत्र गच्छेत् गत्वा च पूर्वमेव आलोकयेत् – आयुष्मन् इति वा २ इदं किं त्वया जानता दत्त, उत अजानता ? स च भणेत् नो खलु मया जानता दत्त, अजानता दत्त, काम खलु आयुष्मन्! इदानीं निसृजामि त भुक्षध्वम् वा परिभाजयत तद् परैः समनुज्ञात, समनुसृष्ट तत. सयतमेव भुजीत पिबेद् वा। यच्च नो शक्नोति भोक्तु वा पातु वा साधर्मिकाः यत्र वसति संभोगिकाः समनोज्ञाः अपरिहारिकाः अदूरगता. तेभ्योऽनुप्रदातव्य स्यात् नो यत्र साधर्मिकाः यथैव बहुपर्यापन्न क्रियेत तथैव कर्तव्य स्यात्। एवं खलु॰ (सूत्र ५९) – पिंडैषणा दशम उद्देशक ।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू॰-भिक्षु गृहपति कुल मे गया हुआ। से-वह। परो-गृहस्थ के। अन्तो-घर के अदर प्रवेश करके। पडिग्गहे-अपने पात्र मे। बिल वा लोण-अर्थात् खान का लवण। उब्भियं वा लोण-लवणाकर का लवण। परिभाएत्ता-देने योग्य विभाग करके। नीहट्टू-पात्र मे डालकर और लाकर। दलइज्जा-देवे। तहप्पगार-तथा प्रकार का द्रव्य। पडिग्गह-गृहस्थ के भाजन मे अथवा। परहत्थंसि वा-गृहस्थ के हाथ मे, या गृहस्थ के पात्र मे हो तो उसे। अफासुय-अप्रासुक जानकर। नो पडि॰-ग्रहण न करे-स्वीकार न करे। से-वह लवणादि आहार। आहच्च-कदाचित्। पडिगाहिए सिया-ग्रहण कर लिया है तो फिर। त-उस गृहस्थ को। नाइदूरगए जाणिज्जा-बहुत दूर गया न जानकर अर्थात् पास मे ही जानकर। से-वह भिक्षु। त-उस लवणादि पदार्थ को। आयाए-लेकर। तत्थ-जहा वह गृहस्थ है वहा जाए और वहा जाकर। पुव्वामेव-पहले ही। आलोइज्जा-लवणादि पदार्थ दिखलाए और कहे कि। आउसोत्ति वा-हे आयुष्मन् गृहस्थ। अथवा भगिनि ! । इम-यह

लवणादि। **कि**-क्या। **ते**-तूने। **जाणया**-जानते हुए। **दिन्न**-दिया है। **उदाहु**-अथवा। **अजाणया**-नहीं जानते हुए दिया है? **से**-वह गृहस्थ । **भणेज्जा**-कहे कि। **खलु**-निश्चय ही। **मे**-मैने। **जाणया**-जानकर। **नो**-नहीं। **दिन्नं**-दिया किन्तु। **अजाणया**-अनजानपने मे। **दिन्न**-दिया है। **खलु**-पूर्ववत्। **काम**-अतिशयार्थक अव्यय। **आउसो**-हे आयुष्मन् ! श्रमण ! **इयाणिं**-इस समय। **निसिरामि**-तुम्हे देता हूँ या देती हूँ। **तं**-इसे तुम। **भुञ्जह वा**-खा लो। **णं**-वाक्यालंकार मे है। **वा**-अथवा। **परिभाएह**-आपस मे बाट लो। **ण**-पूर्ववत्। **त**-वह। **परेहिं**-गृहस्थो की ओर से। **समणुन्नाय**-आज्ञा मिलने पर। **समणुसट्ठ**-सम्यक् प्रकार से प्राप्त कर। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु यत्ना पूर्वक। **भुंजिज्जा वा**-खा ले अथवा। **पिइज्ज वा**-पी ले। **जं च**-यदि वह। **भोत्तए वा**-खाने मे तथा। **पायए वा**-पीने म। **नो संचाएइ**-समर्थ नहीं है। **तत्थ**-वहा पर। **साहम्मिया**-जो साधर्मिक साधु। **वसति**-रहते है, जो। **संभोइया**-एक माडले के सभोगी हैं। **समणुन्ना**-समनोज्ञ है तथा। **अपरिहारिया**-अपरिहार्य अर्थात् त्यागने योग्य नहीं है--निर्दोष है। **अदूरगया**-दूर भी नहीं-अर्थात् समीपवर्ती है। **तेसिं**-उनको। **अणुप्पयायव्व सिया**-उनको प्रदान करना चाहिए यदि। **जत्थ**-जहा पर। **साहम्मिया**-साधर्मिक। **नो**-नहीं है तो। **जहेव**-जिस प्रकार। **बहुपरियावन्न**-अधिक आहार मिलने पर जो परठने की विधि बताई है। **कीरइ**-पूर्व किया है। **तहेव**-उसी प्रकार। **कायव्वं सिया**-करना चाहिए। **एव खलु॰**-इस प्रकार मुनि का समग्र आचार वर्णन किया है।

मूलार्थ—**यदि कोई गृहस्थ घर में भिक्षार्थ आए हुए भिक्षु को अंदर-घर मे अपने पात्र में बिड़ अथवा उद्भिज्ज लवण को विभक्त कर उसमे से कुछ निकाल कर साधु को दे तो तथा प्रकार लवणादि को गृहस्थ के पात्र में अथवा हाथ में अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।**

यदि कभी अकस्मात् वह ग्रहण कर लिया है तो मालूम होने पर गृहस्थ को समीपस्थ ही जानकर लवणादि को लेकर वहा जाए और वहां जाकर पहले दिखाए और कहे कि—हे आयुष्मन्! अथवा भगिनि ! तुमने यह लवण मुझे जानकर दिया है या बिना जाने दिया है ? यदि वह गृहस्थ कहे कि मैने जानकर नहीं दिया, किन्तु भूल से दिया है। परन्तु, हे आयुष्मन् ! अब मैं तुम्हे जानकर दे रहा हू, अब तुम्हारी इच्छा है-तुम स्वय खाओ अथवा परस्पर मे बांट लो। अस्तु, गृहस्थ की ओर से सम्यक् प्रकार से आज्ञा पाकर अपने स्थान पर चला जाए, और वहा जाकर यत्न पूर्वक खाए तथा पीए। यदि स्वयं खाने या पीने को असमर्थ हो तो जहां आस-पास में एक मांडले के संभोगी, समनोज्ञ और निर्दोष साधु रहते हो वहा जाए और उनको दे दे। यदि साधर्मिक पास मे न हो तो जो परठने की विधि बताई है उसी के अनुसार परठ दे। इस प्रकार मुनि का आचार धर्म बताया गया है।

हिन्दी विवेचन-प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ ने साधु को भूल से अचित्त नमक दे दिया है तो साधु उस गृहस्थ से पूछे कि यह नमक तुमने भूल से दिया है या जानकर ? वह कहे कि मैंने दिया तो भूल से है, फिर भी मैंने आपको दे दिया है अत. अब आप इसे खा सकते हैं या अपने अन्य साधुओ को भी दे सकते हैं। ऐसा कहने पर वह साधु उस अचित्त नमक को यदि स्वय खा सकता है तो स्वय खा ले, अन्यथा अपने साभोगिक, मनोज्ञ एव चारित्रनिष्ठ साधुओ को बाट दे। यदि स्वय एव अन्य साधु नही खा सकते हो तो उसे एकान्त एव प्रासुक स्थान मे जाकर परठ दे।

इसमे यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि नमक सचित्त होता है और उसके लिए अप्रासुक शब्द

का प्रयोग भी हुआ है, फिर उस खाने एव साभोगिक साधुओ मे विभक्त करने की आज्ञा कैसे दी गई ? इसका समाधान यह है कि आगम मे जो खाने का आदेश दिया गया है, वह अचित्त नमक की अपेक्षा से दिया गया है। किसी शस्त्र के प्रयोग से जो नमक अचित हो गया है और वह भूल से आ गया है तो गृहस्थ को पूछकर उसके कहने पर साधु खा सकता है। प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त अप्रासुक शब्द सचित्त के अर्थ मे प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि भूल से आए हुए नमक के विषय मे गृहस्थ से पूछकर यह निर्णय करे कि यह नमक भूल से दिया गया है या जानकर और यदि भूल से दिया गया है तो अब गृहस्थ की इसे खाने के लिए आज्ञा है या नहीं - आज्ञा लिए बिना साधु को उसे खाना नहीं कल्पता। अत अप्रासुक शब्द सचित्त के अर्थ मे नहीं, अपितु अकल्पनीय के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है और वह कब तक अकल्पनीय है इसकी स्पष्ट व्याख्या ऊपर कर चुके हैं।

जैसे आचाराङ्ग मे स्थित सचित्त एव अकल्पनीय दोनो अर्थों मे अप्रासुक शब्द का प्रयोग हुआ है उसी तरह दशवैकालिक सूत्र मे अग्रहणीय सचित्त वस्तु एव जो वस्तु लेने की इच्छा न हो उन दोनो के लिए '**न कप्पइ तारिसं**' शब्द का प्रयोग हुआ है[1]। और भगवती सूत्र मे भगवान महावीर ने सचित्त उडद के लिए भी अभक्ष्य शब्द का प्रयोग किया है और किसी गृहस्थ के द्वारा बिना याचना किए हुए उडद को भी साधु के लिए अभक्ष्य कहा है[2]। इसी तरह थावच्चा पुत्र के शुकदेव सन्यासी को और भगवान पार्श्वनाथ ने सोमल ब्राह्मण को भी ऐसे शब्द कहे थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह आगम की एक शैली रही है कि एक शब्द कई अर्थो मे प्रयुक्त होता है। अत यहा अप्रासुक शब्द अकल्पनीय अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई पदार्थ बिना इच्छा के भूल से आ गया है तो उसके लिए गृहस्थ से पूछकर उसकी आज्ञा मिलने पर उसे खा सकता है, उपने समान आचार-विचार-निष्ठ साधुओ को दे सकता है और उसे खाने मे समर्थ न हो तो साधु मर्यादा के अनुसार आचारण कर सकता है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ दशम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ दशवैकालिक सूत्र ५, १, ७९ ।

२ भगवती सूत्र १८, उ १० ।

प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा
एकादशम उद्देशक

प्रस्तुत उद्देशक मे यह बताया गया है कि साधु को जो आहार प्राप्त हुआ है, उसे उसका कैसे उपयोग करना चाहिए। इस बात का निर्देश करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– भिक्खागा नामेगे एवमाहंसु-समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे मणुन्नं भोयणजायं लभित्ता से भिक्खू गिलाइ, से हंदह णं तस्साहरह, से य भिक्खू नो भुंजिज्जा तुमं चेव णं भुंजिज्जासि, से एगइओ भोक्खामित्ति कट्टु पलिउंचिय २ आलोइज्जा, तंजहा-इमे पिंडे इमे लोए इमे तित्ते इमे कडुयए इमे कसाए इमे अंबिले इमे महुरे, नो खलु इत्तो किंचि गिलाणस्स सयइत्ति माइट्ठाणं संफासे, नो एवं करिज्जा, तहाठियं आलोइज्जा जहाठियं गिलाणस्स सयइत्ति, तं तित्तयं तित्तएत्ति वा कडुयं कडुअं कसायं कसायं अंबिलं अंबिलं महुरं महुरं ॥६०॥

छाया– भिक्षाका नामैके एवमाहु. समाना वा वसन्तो वा ग्रामानुग्रामं वा दूयमाना. मनोज्ञ भोजनजात लब्ध्वा स भिक्षु. ग्लायति, स गृहूणीत यूयम् ण तस्य आहरत. स च भिक्षु. न भुक्ते त्वमेव भुंक्ष्व स एकक. भोक्ष्ये इति कृत्वा परिकुच्य परिकुंच्य आलोकयेत् तद्यथा– अय पिण्ड· अय रूक्षः अय तिक्तः अय कटुक अयं कषाय. अय अम्लः, अय मधुरः, नो खलु इत. किंचिद् ग्लानस्य स्वदतीति, मातृस्थान संस्पृशेत् , नो एव कुर्यात् , तथास्थितं अलोकयेत् यथास्थित ग्लानस्य स्वदतीति, तद् तिक्तक तिक्तक इति वा कटुकं कटुक, कषाय कषायं, अम्ल अम्ल, मधुर मधुरम्।

पदार्थ– भिक्खागा-भिक्षु-साधु। नाम-सम्भावनार्थक अव्यय है। एगे-कितने एक। एव-इस प्रकार। आहसु-कहने लगे। समाणे वा-सभोगी साधु तथा असभोगी साधु। वसमाणे वा-रोगादि के कारण से एक स्थान मे रहते हुए। गामाणुगाम दूइज्जमाणे-अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विचरते हुए, वहा आ गए उनमे कोई साधु रोगी है उसके लिए। मणुन्नं-मनोज्ञ। भोयणजाय-भोजन पदार्थ। लभित्ता-प्राप्त करके कहने लगे। से-वह। भिक्खू-

भिक्षु। गिलाइ-रोगी है। से हदह-यह आहार तुम ले लो। णं-वाक्यालकार मे है। तस्साहरह-उसके लिए दे दो। से य भिक्खू-यदि रोगी-वह भिक्षु। न भुजिज्जा-न खावे तो। तुम-चेव-तुम ही। भुंजिज्जासि-भोग लेना। ण-वाक्यालकार मे है। से एगइओ-वह कोई एक भिक्षु गृहस्थ से आहार लेकर मन में विचारता है कि। भोक्खामित्ति कट्टु-इस आहार को मैं ही भोगूगा-मै ही खाऊगा। पलिउचिय पलिउचिय-अस्तु मनोज्ञ आहार को छुपा छुपाकर वातादि रोगो को उद्देश्य कर। आलोइज्जा-दिखलाता है। तंजहा-जैसे कि। इमे पिडे-यह जो आहार साधुओ ने आपके लिए दिया है, यह अपथ्य है, क्योंकि। इमे लोए-यह रूक्ष आहार है। इमे तित्ते-यह तिक्त है। इमे कडुयए-यह कटुक है। इमे कसाए-यह कषाय है। इमे अंबिले-यह खट्टा है। इमेमहुरे-यह मीठा है। खलु-निश्चय ही। इत्तो-इससे। किंचि-किंचिन्मात्र भी। गिलाणस्स-रोगी को। नो सयइत्ति-लाभ नहीं होगा, ऐसा करने से वह भिक्षु। माइट्ठाणं-मातृस्थान-छल के स्थान का। संफासे-सेवन करता है। एव-इस प्रकार। नो करिज्जा-वह न करे किन्तु। तहाठिय-तथावस्थित। आलोइज्जा-दिखलावे। जहाठिय-यथावस्थित। गिलाणस्स-रोगी को। सयइत्ति-लाभ पहुचे। त-जैसे कि। तित्तयं तित्तएति-तिक्त को तिक्त। वा-और। कडुय कडुअ-कटुक को कटुक। कसाय कसाय-कषाय को कषाय। अंबिलं अंबिल-खट्टे को खट्टा। महुर महुर-मधुर को मधुर कहे।

मूलार्थ—एक क्षेत्र मे किसी कारण से साधु रहते है, वहा पर ही ग्रामानुग्राम विचरते हुए अन्य साधु भी आ गए है और वे भिक्षाशील मुनि मनोज्ञ भोजन को प्राप्त कर उन पूर्वस्थित भिक्षुओ को कहे कि अमुक भिक्षु रोगी है उसके लिए तुम यह मनोज्ञ आहार ले लो। यदि वह रोगी भिक्षु न खाए तो तुम खा लेना ? अस्तु, किसी एक भिक्षु ने उनके पास से आहार लेकर मन मे विचार किया कि यह मनोज्ञ आहार मै ही खाऊंगा। इस प्रकार विचार कर उस मनोज्ञ आहार को अच्छी तरह छिपा कर, रोगी भिक्षु को अन्य आहार दिखाकर कहे कि यह आहार भिक्षुओ ने आप के लिए दिया है। किन्तु यह आहार आपके लिए पथ्य नहीं है, क्योंकि यह रूक्ष है, तिक्त है, कटुक है, कसैला है, खट्टा है, मधुर है, अत रोग की वृद्धि करने वाला है, आपको इससे कुछ भी लाभ नहीं होगा। जो भिक्षु इस प्रकार कपट चर्या करता है, वह मातृस्थान का स्पर्श करता है, अत भिक्षु को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। किन्तु जैसा भी आहार हो उसे वैसा ही दिखाए— अर्थात् तिक्त को तिक्त, कटुक को कटुक, कषाय को कषाय, खट्टे को खट्टा और मीठे को मीठा बताए। तथा जिस प्रकार रोगी को शाति प्राप्त हो उसी प्रकार पथ्य आहार के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रूषा करे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे रोगी साधु की निष्कपट भाव से सेवा शुश्रूषा करने का आदेश दिया गया है। यदि किसी साधु ने किसी रोगी साधु के लिए मनोज्ञ आहार दिया हो तो सेवा करने वाले साधु का कर्त्तव्य है कि जिस साधु ने जैसा आहार दिया है उसे उसी रूप मे बताए। ऐसा न करे कि उस मनोज्ञ आहार को स्वय के लिए छिपाकर रख ले और बीमार साधु से कहे कि तुम्हारे लिए अमुक साधु ने यह रूखा-सूखा, खट्टा, कषायला आदि आहार दिया है जो आपके लिए अपथ्यकर है। यदि स्वाद लोलुपता के वश साधु इस तरह से सरस आहार को छुपाकर उस रोगी साधु को दूसरे पदार्थ दिखाता है और उसके सम्बन्ध मे गलत बाते बताता है तो वह माया-कपट का सेवन करता है। कपट आत्मा को गिराने वाला है। इससे महाव्रतों मे दोष लगता है और साधु साधुत्व से गिरता है। अत साधु को अपने-

अपने स्वाद का पोषण करने के लिए छल-कपट नहीं करना चाहिए। जैसा आहार दिया गया है, उसे उसी रूप मे रोगी साधु के सामने रख देना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– भिक्खागा नामेगे एवमाहंसु-समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा मणुन्नं भोयणजायं लभित्ता से य भिक्खू गिलाइ से हंदह णं तस्स आहरह, से य भिक्खू नो भुंजिज्जा आहारिज्जा, से णं खलु मे अंतराए आहरिस्सामि, इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम्म ॥६१ ॥

छाया– भिक्षाकाः नामेके एवमाहुः समानान् वा वसमानान् वा ग्रामानुग्रामं दूयमानान् वा मनोज्ञं भोजनजातं लब्ध्वा स च भिक्षु ग्लायति स गृह्णीत, णं तस्य आहरत स च भिक्षु नो भुंक्ते आहरेत् स न खलु मे अन्तराय आहरिष्यामि इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य।

पदार्थ– नाम-संभावना अर्थ मे है। एगे-कोई एक। **भिक्खागा**-भिक्षा से जीवन व्यतीत करने वाले भिक्षु-साधु। **एवमाहसु**-इस प्रकार साधुओ के समीप आकर कहने लगे। **समाणे वा**-सभोगी साधुओ को। **वसमाणे**-अथवा एक क्षेत्र मे स्थिर वास रहने वालो को अथवा। **गामाणुगाम दूइज्जमाणे वा**-ग्रामानुग्राम विहार करने वालो को। **मणुन्न**-मनोज्ञ। **भोयणजाय**-भोजन पदार्थ। **लभित्ता**-प्राप्त कर। **से**-वह। **भिक्खू**-साधु, बसते हुए या विहार करने वाले आगन्तुक साधु को कहे कि। **गिलाइ**-जो भिक्षु रोगी है उसके लिए। **हदह**-यह आहार ले लो। **तस्स**-उसको। **आहरह**-दे दो। **ण**-वाक्यालकार मे है, यदि। **से**-वह। **भिक्खू**-रोगी साधु। **नो भुजिज्जा**-न खावे, तो। **आहारिज्जा**-वापिस लाकर हमको दे देना क्योकि हमारे यहा भी रोगी साधु है। **य ण**-प्राग्वत्। **से**-वह-भिक्षु, लेने वाला कहने लगा कि यदि। **मे**-मुझे। **नो अतराए**-कोई अतर न हुआ अर्थात् आने मे कोई विघ्न उपस्थित न हुआ तो। **आहरिस्सामि**-मै वापिस लाकर दे दूगा, इस प्रकार प्रतिज्ञा कर, वह आहार रोगी को न देकर आप ही खा जाता है तो। **इच्चेयाइ**-इस प्रकार यह कार्य। **आयतणाइ**-कर्म बन्धन का कारण है। **उवाइक्कम्म**-इनको सम्यक् प्रकार से दूर करके रोगी साधु की सेवा करनी चाहिए। क्योंकि छल-कपटादि से कर्म का बन्ध होता है।

मूलार्थ—एक भिक्षाशील साधु, सभोगी साधु वा एक क्षेत्र में स्थिरवास रहने वाला साधु गृहस्थ के वहा से मनोज्ञ आहार प्राप्त करके ग्रामानुग्राम विचरने वाले अतिथि रूप मे आए हुए साधुओ से कहे कि तुम रोगी साधु के लिए यह मनोज्ञ आहार ले लो, यदि वह रोगी साधु इसे न खाए तो यह आहार हमे वापिस लाकर दे देना, क्योंकि हमारे यहा भी रोगी साधु है। तब वह आहार लेने वाला साधु उनसे कहे कि यदि मुझे आने मे कोई विघ्न न हुआ तो मै इस आहार को वापिस लाकर दे दूंगा, परन्तु रस लोलुपी वह साधु उस आहार को रोगी को न देकर स्वय खा जाए और पूछने पर कहे मेरे शूल उत्पन्न हो गया था अर्थात् मेरे पेट मे बहुत दर्द हो गया था इस लिए मैं नहीं आ सका, इस प्रकार वह साधु मायास्थान का सेवन करता है, अत इस तरह के पापकर्मों के स्थानो को सम्यक्तया दूर करके, रोगी साधु की आहार आदि के द्वारा सेवा करनी चाहिए।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे पूर्व सूत्र मे कथित विषय को कुछ विशेषता के साथ बताया गया है। पूर्व सूत्र मे कहा गया था कि यदि कोई साधु रोगी साधु की सेवा मे स्थित साधु को यह कहकर मनोज्ञ आहार दे गया हो कि इस आहार को रोगी को दे देना यदि वह न खाए तो तुम खा लेना, तो साधु उस आहार को अपने लिए छुपाकर नहीं रखे। और प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि यदि किसी साधु ने प्रतिज्ञा पूर्वक यह कहा हो कि यह मनोज्ञ आहार रोगी साधु को ही देना यदि वह न खाए तो हमे वापिस लाकर दे देना, तो उस साधु को चाहिए कि वह आहार रोगी साधु को दे। स्वय उसका उपभोग न करे। यदि वह स्वाद की लोलुपता से उस आहार को अपने लिए छुपाकर रखता है, तो माया का सेवन करता है। और उसकी इस वृत्ति से उसका दूसरा महाव्रत भी भग होता है और रोगी को आहार की अनराय देने के कारण अन्तराय कर्म का भी बन्ध होता है। इस तरह स्वाद के वश साधु अपना अध पतन कर लेता है। वह आध्यात्मिक साधना से भ्रष्ट हो जाता है। अत साधक को अपनी क्रिया मे छल-कपट नही करना चाहिए। पदार्थों के स्वाद की अपेक्षा साधना, सरलता, सेवा एव सत्यता का अधिक मूल्य है, उस से आत्मा का विकास होता है। इस लिए साधु को शुद्ध एव निष्कपट भाव से रोगी की सेवा करनी चाहिए और उसके लिए जो आहार दिया गया हो उसे बिना छुपाए उसी रूप मे उसको देना चाहिए। वृत्तिकार का भी यही अभिमत है[१]।

अब सूत्रकार सप्त पिडैषणा के विषय मे कहते हैं-

मूलम्— अह भिक्खू जाणिज्जा सत्त पिंडेसणाओ सत्त पाणेसणाओ, तत्थ खलु इमा पढमा पिंडेसणा-असंसट्ठे हत्थे असंसट्ठे मत्ते, तहप्पगारेण असंसट्ठेण हत्थेण वा मत्तेण वा असणं वा ४ सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं पडिगाहिज्जा, पढमा पिंडेसणा ॥१ ॥ अहावरा दुच्चा पिंडेसणा संसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते, तहेव दुच्चा पिण्डेसणा ॥२ ॥ अहावरा तच्चा पिंडेसणा इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइआ सड्ढा भवंति-गाहावई वा जाव कम्मकरी वा, तेसिं च णं अन्नयरेसु विरूवरूवेसु भायणजाएसु उवनिक्खित्तपुव्वे सिया तंजहा- थालंसि वा, पिढरंसि वा सरगंसि वा परगंसि वा वरगंसि वा, अह पुणेवं जाणिज्जा— असंसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते, संसट्ठे वा हत्थे असंसट्ठे मत्ते, से य पडिग्गहधारी सिया पाणिपडिग्गहिए वा, से पुव्वामेव०-आउसोत्ति वा ! २ एएण तुमं असंसट्ठेण हत्थेण, संसट्ठेण मत्तेण संसट्ठेण वा हत्थेण असंसट्ठेण

---

१ सचैवमुक्त सन् एव वदेत्— यथाऽन्तरायमतरेणाहरिष्यामीति प्रतिज्ञयाऽऽहारमादाय ग्लानातिक गत्वा प्राक्तनान् भक्तादिरूक्षादिदोषानुद्घाट्य ग्लानायादत्वा स्वतएव लौल्याद् भुक्त्वा ततस्तस्य साधोर्निवेदयति, यथा मम शूल वैयावृत्यकालापर्याप्यादिकमन्तरायिकमभूदतोऽह तद् ग्लानभक्त गृहीत्वा नायात इत्यादि मातृस्थान सस्पृशेत् एतदेव दर्शयति— इत्येतानि-पूर्वोक्तान्यायतनानि— कर्मोपादानस्थानानि 'उपातिक्रम्य' सम्यक परिहृत्य मातृस्थानपरिहारेण ग्लानाय वा दद्याद् दातृसाधुसमीप वाऽऽहरेदिति। — आचाराङ्ग वृत्ति।

मत्तेण अस्सिं पडिग्गहगंसि वा पाणिंसि वा निहट्टु उचित्तु दलयाहि तहप्पगारं भोयणजायं सयं वा णं जाइज्जा २फासुयं॰ पडिगाहिज्जा, तइया पिंडेसणा ॥३ ॥ अहावरा चउत्था पिंडेसणा-से भिक्खू वा॰ से जं॰ पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे अप्पे पज्जवजाए, तहप्पगारं पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा सयं वा णं॰ जाव पडि॰, चउत्था पिंडेसणा ॥४ ॥ अहावरा पंचमा पिंडेसणा-से भिक्खू वा२ उग्गहियमेव भोयणजायं जाणिज्जा, तंजहा- सरावंसि वा डिंडिमंसि वा कोसगंसि वा, अह पुणेवं जाणिज्जा बहुपरियावन्ने पाणीसु दगलेवे, तहप्पगारं असणं वा ४ सयं॰ जाव पडिगाहि॰, पंचमा पिंडेसणा ॥५ ॥ अहावरा छट्ठा पिंडेसणा- से भिक्खू वा २ पग्गहियमेव भोयणजायं जाणिज्जा, जं च सयट्ठाए पग्गहियं, जं च परट्ठाए पग्गहियं, तं पायपरियावन्नं, तं पाणिपरियावन्नं फासुयं पडि॰, छट्ठा पिंडेसणा ॥६ ॥ अहावरा सत्तमा पिंडेसणा-से भिक्खू वा॰ बहुउज्झियधम्मियं भोयणजायं जाणिज्जा, जं चऽन्ने बहवे दुपयचउप्पयसमणमाहणअतिहिकिवणवणीमगा नावकंखंति, तहप्पगारं उज्झियधम्मियं भोयणजायं सयं वा णं जाइज्जा, परो वा से दिज्जा जाव पडि॰, सत्तमा पिंडेसणा ॥७ ॥ इच्चेयाओ सत्त पिंडेसणाओ, अहावराओ सत्त पाणेसणाओ, तत्थ खलु इमा पढमा पाणेसणा असंसट्ठे हत्थे, असंसट्ठे मत्ते, तं चेव भाणियव्वं, नवरं चउत्थाए नाणत्तं-से भिक्खू वा॰ से जं॰ पुण पाणगजायं जाणिज्जा, तंजहा-तिलोदगं वा ६, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे तहेव पडिगाहिज्जा ॥६२ ॥

छाया- अथ भिक्षुर्जानीयात् सप्त पिंडैषणा सप्तपानैषणाः तत्र खलु इय प्रथमा पिंडैषणा असंसृष्टो हस्त असंसृष्टं मात्रम्, तथाप्रकारेण असंसृष्टेन हस्तेन वा मात्रेण वा अशन वा ४ स्वय वा याचेत् परो वा स दद्यात् प्रासुक प्रतिगृह्णीयात्, प्रथमा पिंडैषणा ॥१ ॥ अथापरा द्वितीया पिंडैषणा-संसृष्टो हस्तः संसृष्टं मात्र तथैव द्वितीया पिंडैषणा ॥२ ॥ अथापरा तृतीया पिंडैषणा- इह खलु प्राचीन वा ४ सन्त्येकका. श्राद्धा भवंति गृहपति· वा यावत् कर्मकरा वा तेषा च अन्यतरेषु विरूपरूपेषु भाजनजातेषु उपनिक्षिप्तपूर्वः स्यात्, तद्यथा- स्थाले वा पिठरे वा सरके वा परके वा वरके वा, अथ पुनरेवं जानीयात्, असंसृष्टो हस्तः संसृष्टं मात्र संसृष्टो वा हस्तः असंसृष्टं मात्र स च प्रतिग्रहधारी स्यात् पाणिप्रतिग्राहित· वा स पूर्वमेव आयुष्मन् ! इति वा एतेन त्व असंसृष्टेन हस्तेन संसृष्टेन मात्रेण संसृष्टेन वा हस्तेन

असंसृष्टेन मात्रेण अस्मिन् पतद्ग्रहे वा पाणौ वा निर्हृत्य उच्चित्य ददस्व, तथाप्रकार भोजनजातं स्वय वा याचेत् २ प्रासुकं प्रतिगृह्णीयात्, तृतीया पिंडैषणा ॥३ ॥ अथापरा चतुर्थी पिंडैषणा– स भिक्षुः वा स यत् पृथुकं वा यावत् ओदनपलम्ब वा अस्मिन् खलु पतद्ग्रहे अल्पं पश्चात् अल्पं पर्यायजात, तथाप्रकारं पृथुकं वा यावत् तन्दुलपलंबं वा स्वयं वा यावत् प्रतिगृह्णीयात्, चतुर्थी पिण्डैषणा ॥४ ॥ अथापरा पचमी पिण्डैषणा- स भिक्षुर्वा॰ उपहृतमेव भोजनजात जानीयात्, तद्यथा-शरावे वा डिण्डिमे वा कोशके वा अथ पुनरेवं जानीयात् बहुपर्यापन्न. पाणिषु दकलेप. तथाप्रकार अशन वा ४ स्वय यावत् प्रतिगृह्णीयात्, पचमी पिंडैषणा ॥५ ॥ अथापरा षष्ठी पिण्डैषणा स भिक्षुर्वा २ प्रगृहीतमेव भोजनजात जानीयात्, यच्च स्वार्थाय प्रगृहीतं यच्च परार्थाय प्रगृहीतं तत् पात्रपर्यापन्नं वा तत् पाणिपर्यापन्नं वा प्रासुक प्रतिगृह्णीयात्, षष्ठी पिण्डैषणा ॥६ ॥ अथापरा सप्तमी पिण्डैषणा-स भिक्षु वा बहुउज्झितधर्मिक भोजनजातं जानीयात् यच्च अन्ये बहव· द्विपद-चतुष्पद-श्रमण-ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-वनीपका नावकाक्षन्ति तथाप्रकार उज्झितधर्मिक भोजनजात स्वय वा याचेत् परो वा स दद्यात् प्रतिगृह्णीयात्, सप्तमी पिण्डैषणा ॥७ ॥ इत्येता: सप्त पिंडैषणा ॥ अथापरा सप्त पानैषणा·– तत्र खलु इय प्रथमा पानैषणा– असंसृष्टो हस्त असंसृष्ट मात्र तच्चैव तथैव पूर्ववत् भणितव्य, नवर चतुर्थ्यां नानात्वम् - स भिक्षुर्वा॰ स यत् पुनः पानकजातं जानीयात्, तद्यथा तिलोदकं वा ६ अस्मिन् खलु पतद्ग्रहे अल्प पश्चात्कर्म तथैव प्रतिगृह्णीयात्।

पदार्थ– अथ-अथ। भिक्खू-भिक्षु। जाणिज्जा-इस बात को जाने कि। सत्त पिडेसणाओ-सात पिडैषणा और। सत्त पाणेसणाओ-सात पानैषणा है। खलु-निश्चयार्थक है। तत्थ-उन सात पिडैषणाओ में से। इमा-यह। पढमा-पहली। पिडेसणा-पिडैषणा है कि। असंसट्ठे हत्थे-हाथ लेने वाले पदार्थों से लिप्त न हो। असंसट्ठे मत्ते-और पात्र भी भोज्य पदार्थों से लिप्त न हो। तहप्पगारेण-तथा प्रकार के। असंसट्ठेण हत्थेण-अलिप्त हाथ से। वा-अथवा। मत्तेण-अलिप्त पात्र से। असण वा-अशनादिक चतुर्विध आहार की। सय वा-जाइज्जा-याचना करे अथवा। परो वा से दिज्जा-वह गृहस्थ दे तो उसे। फासुय-प्रासुक जानकर। पडिगाहिज्जा-ग्रहण कर ले। ण-वाक्यालकार मे है। पढमा पिडेसणा-यह पहली पिडैषणा है। अहावरा-अथ-अब अन्य। दुच्चा पिडेसणा-दूसरी पिडैषणा कहते है। संसट्ठे हत्थे-अचित्त पदार्थ से हाथ लिप्त है और। संसट्ठे मत्ते-पात्र-भाजन भी अचित्त पदार्थ से लिप्त है। तहेव-तो उसे उसी प्रकार प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। दुच्चा पिंडेसणा-यह दूसरी पिडैषणा है। अहावरा-अब इसके आगे। तच्चा पिडेसणा-तीसरी पिडैषणा कहते है। खलु-वाक्यालकार मे है। इह-इस ससार मे या क्षेत्र मे। पाईणं वा ४-पूर्वादि चारो दिशाओ मे। संतेगइया-कई एक अर्थात् बहुत से लोग है उनमे कोई २। सड्ढा भवंति-श्रद्धालु-श्रद्धा वाले भी होते हैं यथा। गाहावई वा-गृहपति, गृहपत्नी। जाव-यावत्। कम्मकरी वा-दासी पर्यन्त। च-पुन। णं-वाक्यालकार मे है। तेसिं-उनके। अण्णयरेसु-अन्यतर। विरूवरूवेसु-नाना प्रकार के। भायणजाएसु-पात्रो मे। उवणिक्खित्तपुव्वे सिया-पहले ही अशनादिक चतुर्विध आहार रखा हुआ हो। तंजहा-जैसे कि। थालंसि वा-थाल मे। पिढरंसि वा-पिठर-बटलोही या हांडी में। सरगंसि वा-सूपादि मे। परगंसि वा-अथवा बांस की टोकरी मे। वरगंसि वा-

किसी विशिष्ट महार्घ पात्र मे। **अह**-अथ। **पुण**-फिर। **एव**-इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने जैसे कि। **असंसट्ठे हत्थे**-सचित्त व अचित पदार्थ से हाथ लिप्त नहीं है किन्तु। **संसट्ठे मत्ते**-भाजन लिप्त है तथा। **संसट्ठे वा हत्थे**-हाथ लिप्त है और। **असंसट्ठे मत्ते**-भाजन पात्र लिप्त नहीं है। **य**-फिर। **से**-वह भिक्षु-साधु। **पडिग्गहधारी सिया**-पात्रो के धारण करने से स्थविरकल्पी हो। **वा**-अथवा। **पाणिपडिग्गहिए**-हाथ ही जिसका पात्र है ऐसा जिनकल्पी हो। **से पुव्वामेव**-वह पहले ही। **आलोइज्जा**-देखे- विचारे और कहे। **आउसोत्ति वा**-हे आयुष्मन्! गृहस्थ अथवा भगिनि! **तुम एएण**-तुम इस। **असंसट्ठेण हत्थेण**-असंसृष्ट-अलिप्त हाथ से। **संसट्ठेण मत्तेण**-और लिप्त भाजन से। **वा**-अथवा। **संसट्ठेण हत्थेण**-लिप्त हाथ से। **असंसट्ठेण मत्तेण**-और अलिप्त भाजन से। **अस्सि पडिग्गहसि**-इस हमारे पात्र मे। **वा**-अथवा। **पाणिसि वा**-हमारे हाथ मे। **निहट्टु**-लाकर। **उचित्तु दलयाहि**-हमे दे दो। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के अर्थात् ऐसे। **भोयणजाय**-भोजन को। **सयं वा**-स्वय। **जाइज्जा**-याचना करे। **वा**-अथवा। **परो वा से दिज्जा**-गृहस्थ स्वयमेव दे तो। **फासुयं**-उसे प्रासुक जानकर। **पाडिगाहेज्जा**-ग्रहण कर ले। **तइया पिडेसणा**-यह तीसरी पिंडैषणा है। **अहावरा**- अब इसके अनन्तर। **चउत्था पिडेसणा**-चौथी पिंडैषणा कहते है। **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज०**- गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर इस प्रकार जाने यथा। **पिहुय वा**-अग्नि से परिपक्व तुष रहित शाल्यादि। **जाव**-यावत्। **चाउलपलब वा**-तुष-रहित चावल। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **अस्सि पडिग्गहसि**-हमारे इस पात्र मे। **अप्पे पच्छाकम्मे**-जहा पश्चात् कर्म नहीं तथा। **अप्पे पज्जवजाए**-तुषादि रहित है। **तहप्पगार**-तथाप्रकार के। **पिहुय वा**-अचित्त शाल्यादि को। **जाव**-यावत्। **चाउलपलब वा**-तुष-रहित चावलो को। **सय वा ण जाव पडि०**-स्वय याचना करे अथवा गृहस्थ स्वय दे तो उसे प्रासुक जानकर स्वीकार कर ले, यह। **चउत्था पिडेसणा**-चौथी पिंडैषणा है। **अहावरा**-अब इसके अनन्तर। **पचमा पिडेसणा**-पाचवी पिंडैषणा के विषय मे कहते है यथा-। **से भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। **उग्गहियमेव भोयणजाय जाणिज्जा**-खाने के लिए पात्र मे रखे हुए भोजन को जाने, यथा। **सरावसि वा**-शराब मे-मिट्टी के सकोरे मे। **डिडिमसि वा**-कांसी के बर्तन मे अथवा। **कोसगसि वा**-कोशक-मिट्टी के बने हुए पात्र विशेष मे। **अह पुण एव जाणिज्जा**- अथवा फिर इस प्रकार जाने। **बहुपरियावन्ने**-कि सचित्त जल से हाथ आदि धोए हुए उसे बहुत देर हो गई है जिससे वह अचित्त हो गया है और। **पाणिसु दगलेवे**-हाथ आदि मे लिप्त जल अचित्त हो रहा है। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **असण वा ४**-अशनादि चार प्रकार के आहार को। **सय वा ण० जाव पडि०**-स्वय याचना करे या गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर स्वीकार कर ल। **पचमा पिडेसणा**-यह पाचवी पिंडैषणा है। **अहावरा**-अब अन्य। **छट्ठा पिडेसणा**-छठी पिंडैषणा के सम्बन्ध मे कहते है। **से भिक्खू वा०**-वह साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर गया हुआ। **पग्गहियमेव**-भाजन से निकाली गई वस्तु दूसरे ने अभी ग्रहण नहीं की उस समय अभिग्रहधारी भिक्षु। **भोयणजाय**-भोजनादि पदार्थ को जाने। **च**-पुन फिर। **ज**-जो वस्तु। **सयट्ठाए पग्गहिय**-अपने लिए बर्तन आदि से निकाली है। **ज च**-और जो फिर। **परट्ठाए पग्गहिय**-दूसरे के लिए निकाली है। **त पायपरियावन्नं**-वह भोजनादि वस्तु गृहस्थ के पात्र मे है अथवा। **त पाणिपरियावन्न**-हाथ मे है, तो। **फासुय जाव पडिगाहिज्जा**-उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। **छट्ठा**-यह छठी। **पिडेसणा**-पिंडैषणा है। **अहावरा**-अब इसके बाद। **सत्तमा पिडेसणा**-सातवीं पिंडैषणा के सम्बन्ध में कहते है। **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा**-वह साधु अथवा साध्वी गृहपति के घर मे गया हुआ। **बहुउज्झियधम्मिय**-उज्झित धर्म वाले। **भोयणजायं**-भोजनादि पदार्थ को। **जाणिज्जा**-जाने। **जं चऽन्ने**-और जिसको फिर अन्य। **बहवे**-बहुत से। **दुपय-चउप्पय-समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा**-

द्विपद-चतुष्पद, (दो पैर और चार पैर वाले) श्रमण-शाक्यादि भिक्षु माहण-ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वणीमग-भिखारी आदि। **नावकंखंति**-नहीं चाहते है। **तहप्पगार**-तथा प्रकार का आहार। **उज्झियधम्मियं**-जिसको लोग नहीं चाहते ऐसे। **भोयणजायं**-भोजन को। **सय वा णं जाइज्जा**-स्वयमेव गृहस्थ से याचना करे अथवा। **से**-उस साधु को। **परो वा दिज्जा**-गृहस्थ दे। **जाव**-यावत्-मिलने पर। **पडिगाहिज्जा**-प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। **सत्तमा पिंडेसणा**-यह सातवीं पिंडैषणा है। **इच्चेयाओ**-इस प्रकार ये। **सत्त पिंडेसणाओ**-सात पिंडैषणा कही गई है। **अहावराओ**-अब इसके अनन्तर। **सत्त**-सात। **पाणेसणाओ**-पानैषणा-पानी की एषणा कहते है। **खलु**-निश्चय ही। **तत्थ**-उन सात पानैषणाओ मे से। **इमा पढमा**-यह पहली पानैषणा है। **असंसट्ठे हत्थे**-असंसृष्ट हाथ-अलिप्त हाथ और। **असंसट्ठे मत्ते**-अलिप्त पात्र है अर्थात् हाथ और पात्र दोनो ही अछूत है, इत्यादि। **तं चेव भाणियव्व**-सब कुछ पूर्व कथित की भाति जानना। **णवर**-इतना विशेष है कि। **चउत्थाए**-चौथी मे। **नाणत्त**-नानात्व है, विशेषता है। **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा**-वह साधु या साध्वी। **से ज०**-गृहपति कुल मे प्रवेश करने पर फिर इस प्रकार। **पाणगजाय**-पानी के विषय मे। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **तिलोदग वा ६**-तिलादि का धोवन। **खलु**-निश्चय ही। **अस्सि पडिग्गहियसि**-इसके ग्रहण करने मे। **अप्पे पच्छाकम्मे**-पश्चात्कर्म नहीं है। **तहेव पडिगाहिज्जा**-तो उसे उसी प्रकार प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले।

मूलार्थ—सयमशील साधु सात पिण्डैषणाओ तथा सात पानैषणाओ को जाने। उन सातो मे से पहली पिंडैषणा यह है कि अचित्त वस्तु से न हाथ लिप्त और न पात्र ही लिप्त है, तथा प्रकार के अलिप्त हाथ और अलिप्त पात्र से अशनादि चतुर्विध आहार की स्वय याचना करे अथवा गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले, यह प्रथम पिंडैषणा है, इसके अनन्तर दूसरी पिंडैषणा यह है कि अचित्त वस्तु से हाथ और भाजन लिप्त है तो पूर्ववत् प्रासुक जान कर उसे ग्रहण कर ले, यह दूसरी पिंडैषणा है। तदनन्तर तीसरी पिण्डैषणा कहते है – इस ससार या क्षेत्र मे पूर्वादि चारो दिशाओ मे बहुत पुरुष है उन मे से कई एक श्रद्धालु-श्रद्धा वाले भी हैं, यथा गृहपति, गृहपत्नी यावत् उनके दास और दासी आदि रहते है। उनके वहा नानाविध भाजनो मे भोजन रखा हुआ होता है यथा-थाल मे, पिठर-बटलोही मे, सरक [छाज जैसा] मे, टोकरी मे और मणिजटित महार्घ पात्र मे। फिर साधु यह जाने कि गृहस्थ का हाथ तो लिप्त नहीं है भाजन लिप्त है, अथवा हाथ लिप्त है, भाजन अलिप्त है, तब वह स्थविर कल्पी अथवा जिनकल्पी साधु प्रथम ही उसको देख कर कहे कि-हे आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि ! तू मुझ को इस अलिप्त हाथ से और लिप्त भाजन से हमारे पात्र वा हाथ मे वस्तु लाकर दे दे। तथा प्रकार के भोजन को स्वय माग ले अथवा बिना मागे ही गृहस्थ लाकर दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। यह तीसरी पिण्डैषणा है। अब चौथी पिण्डैषणा कहते है-वह भिक्षु तुषरहित शाल्यादि को यावत् भुग्न शाल्यादि के चावल को जिसमे पश्चात्कर्म नहीं है, और न तुषादि गिराने पड़ते है, इस प्रकार का भोजन स्वय मांग ले या बिना मागे गृहस्थ दे तो प्रासुक जान कर ले ले, यह चौथी पिण्डैषणा है। पांचवीं पिण्डैषणा-गृहस्थ ने सचित्त जल से हस्तादि को धोकर अपने खाने के लिए, सकोरे में, कांसे की थाली मे अथवा मिट्टी के किसी भाजन मे भोजन रक्खा हुआ है-उसके हाथ जो सचित्त जल से धोए थे अचित्त हो चुके है तथा प्रकार के अशनादि आहार को प्रासुक जानकर साधु ग्रहण कर ले, यह

पाचवीं पिण्डैषणा है। छठी पिण्डैषणा यह है– गृहस्थ ने अपने लिए अथवा किसी दूसरे के लिए बर्तन मे से भोजन निकाला है परन्तु दूसरे ने अभी उसको ग्रहण नहीं किया है तो उस प्रकार का भोजन गृहस्थ के पात्र मे हो या उसके हाथ मे हो तो मिलने पर प्रासुक जानकर उसे ग्रहण कर ले। यह छठी पिण्डैषणा है। सातवीं पिडैषणा यह है-वह साधु या साध्वी, जिसे बहुत से पशु-पक्षी मनुष्य-श्रमण (बौद्ध भिक्षु) ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी लोग नहीं चाहते, तथाप्रकार के उज्झित धर्म वाले भोजन की स्वय याचना करे अथवा गृहस्थ दे दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले, यह सातवीं पिडैषणा है। इस प्रकार ये सात पिडैषणाए कही है। तथा अपर सात पानैषणा अर्थात् पानी की एषणाए है। जैसे कि अलिप्त हाथ और अलिप्त भाजन आदि, शेष सब वर्णन पूर्व की भाति समझना चाहिए और चौथी पानैषणा मे नानात्व का विशेष है। वह साधु या साध्वी पानी के विषय मे जाने जैसे कि तिलादि का धोवन जिसके ग्रहण करने पर पश्चात्कर्म नहीं लगता है तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। शेष पानैषणा पिडैषणा की तरह जाननी चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे विशिष्ट अभिग्रहधारी मुनियो के सात पिडैषणा एव सात पानैषणा का वर्णन किया गया है। इसमे आहार एव पानी ग्रहण करने के एक जैसे ही नियम हैं। ये सातो एषणाए इस प्रकार हैं–

१-अलिप्त हाथ एव अलिप्त पात्र से आहार ग्रहण करना प्रथम पिण्डैषणा है और अलिप्त हाथ एव अलिप्त पात्र से पानी ग्रहण करना प्रथम पानैषणा है।

२-लिप्त हाथ और लिप्त पात्र से आहार ग्रहण करना द्वितीय पिण्डैषणा है और ऐसी ही विधि से पानी ग्रहण करना द्वितीय पानैषणा है।

३-अलिप्त हाथ और लिप्त पात्र या लिप्त हाथ और अलिप्त पात्र से आहार एव इसी विधि से पानी ग्रहण करना तृतीय पिण्ड एव पानैषणा है।

४-साधु को आहार देने के बाद सचित्त जल से हाथ या पात्र आदि धोने या पुन. आहार बनाने आदि का पश्चात्कर्म नहीं करना चतुर्थ पिण्डैषणा है, इसी तरह पानी देने के बाद भी पश्चात् कर्म नहीं लगाना चतुर्थ पानैषणा है। इसमे तिल, तुष, यव (जौ) का धोवन, आयाम- जिस पानी मे गर्म वस्तु ठण्डी की जाती है, काजी का पानी और उष्ण जल आदि ६ प्रकार के प्रासुक जल का नाम निर्देश किया है। परन्तु उपलक्षण से अन्य प्रासुक पानी को भी समझ लेना चाहिए।

५-गृहस्थ ने अपने पात्र मे खाद्य पदार्थ रखे हैं और उसके बाद वह सचित्त जल से हाथ धोता है, यदि हाथ धोने के बाद वह जल अचित्त रूप मे परिवर्तित हो गया है तो मुनि उसके हाथ से आहार ले सकता है। इस तरह पानी भी ले सकता है, यह पाचवीं पिण्डैषणा एव पानैषणा है।

६- गृहस्थ ने अपने या अन्य के खाने के लिए पात्र मे खाद्य पदार्थ रखा है, परन्तु न स्वय-ने खाया है और न अन्य ने ही खाया है, ऐसा आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करना छठी पिण्डैषणा है और ऐसा पानी लेने का सकल्प करना छठी पानैषणा है।

७-जिस आहार को बहुत से लोग खाने की इच्छा नहीं रखते हो ऐसा रूक्ष आहार लेने का सकल्प करना सातवीं पिण्डैषणा है। इसी तरह ऐसे पानी को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करना सातवीं

पानैषणा है।

उक्त अभिग्रह जिनकल्प एव स्थविरकल्प दोनो तरह के मुनियो के लिए हैं। तृतीय पिण्डैषणा मे '**पडिग्गहधारी सिया पाणि पडिग्गहिए वा**' तथा छठी पिण्डैषणा मे, '**पाय परियावन्न पाणि परियावन्न**' दो पदो का उल्लेख करके यह स्पष्ट कर दिया है कि दोनो ही कल्प वाले मुनि इन अभिग्रहो को ग्रहण कर सकते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे उस युग के गृहस्थो के रहन-महन, आचार-विचार एव उस युग की सभ्यता का स्पष्ट परिचय मिलता है। ऐतिहासिक अन्वेषको के लिए प्रस्तुत सूत्र महत्त्वपूर्ण है।

'**उज्झित धर्म वाला**' अर्थात् जिस आहार को कोई नहीं चाहता हो। इसका तात्पर्य इतना ही है कि जो अधिक मात्रा मे होने के कारण विशेष उपयोग मे नहीं आ रहा है। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह पदार्थ खाने योग्य नहीं है। इस अभिग्रह का उद्देश्य यही है कि अधिक मात्रा मे अवशिष्ट आहार मे से ग्रहण करने से पश्चात्कर्म का दोष नहीं लगता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**बहुपरियावन्ने पाणीसु दगलेवे**' का अर्थ है-यदि सचित्त जल से हाथ धोए हो, परन्तु हाथ धोने के बाद वह जल अचित्त हो गया है तो साधु उस व्यक्ति के हाथ से आहार ले सकता है।

''**सय वा जाइज्जा परो वा से दिज्जा**'' का तात्पर्य है- जिस प्रकार मुनि गृहस्थ से आहार की याचना करे उसी प्रकार गृहस्थ के लिए भी यह विधान है कि वह भक्ति एव श्रद्धा पूर्वक साधु को आहार ग्रहण करने की प्रार्थना करे।

उक्त अभिग्रह ग्रहण करने वाले मुनि को अन्य मुनियो के साथ -जिन्होने अभिग्रह नही किया है या पीछे से ग्रहण किया है, कैसा बर्ताव रखना चाहिए, इस सबध मे सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- इच्चेयासिं सत्तण्हं पिंडेसणाणं सत्तण्हं पाणेसणाणं अन्नयरं पडिमं पडिवज्जमाणे नो एवं वइज्जा-मिच्छा पडिवन्ना खलु एए भयंतारो, अहमेगे सम्मं पडिवन्ने, जे एए भयंतारो एयाओ पडिमाओ पडिवज्जित्ता णं विहरंति, जो य अहमंसि एयं पडिमं पडिवज्जित्ताणं विहरामि सव्वेवि ते उ जिणाणाए उवट्ठिया अण्णुन्नसमाहीए, एवं च णं विहरंति,एयं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं ॥६३॥

छाया- इत्येतासां सप्तानां पिण्डैषणाना सप्ताना पानैषणानां अन्यतरा प्रतिमां प्रतिपद्यमानो नैतद् वदेत्, तद्यथा- मिथ्या प्रतिपन्नाः खलु एते भयत्रातार. (भगवन्त.) अहमेवैक सम्यक् प्रतिपन्नः ये एते भयत्रातार. एताः प्रतिमा. प्रतिपद्य विहरन्ति अहमस्मि एतां प्रतिमां प्रतिपद्य विहरामि सर्वेऽपि ते जिनाज्ञाया समुत्थिता अन्योऽन्यसमाधिना एव च विहरन्ति। एवं खलु तस्य भिक्षोः भिक्षुक्या वा सामग्र्यम्।

पदार्थ- **इच्चेयासिं**-इस प्रकार ये। **सत्तण्हं**-सात। **पिंडेसणाणं**-पिंडैषणा और। **सत्तण्हं**

पाणेसणाणं-सात पानैषणा मे से। **अन्नयर**-अन्यतर-कोई एक। **पडिमं**-प्रतिमा को। **पडिवज्जमाणे**-ग्रहण करता हुआ फिर। **एव**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न बोले। **खलु**-निश्चय। **एए भयंतारो**-ये सब अभिग्रह धारण करने वाले भगवत अर्थात् साधु लोग। **मिच्छा पडिवन्ना**-मिथ्या प्रतिपन्न अर्थात् पिंडैषणादि अभिग्रह को इन्होंने अच्छी तरह ग्रहण नहीं किया है। **अहमेगे**-मै ही एक अकेला। **सम्म पडिवन्ने**-सम्यक्-भली प्रकार से अभिग्रह को ग्रहण करने वाला हूँ अर्थात् जिस प्रकार अभिग्रह धारण किया है उस प्रकार का और कोई नहीं है इस प्रकार मुनि को अहंकार वृत्ति से नहीं बोलना चाहिए किन्तु इस तरह बोलना चाहिए यथा-। **जे**-जो **एए**-ये सब। **भयतारो**-भय से रक्षा करने वाले भगवान-साधु। **एयाओ पडिमाओ**-इन प्रतिमाओ को। **पडिवज्जिता**-ग्रहण करके। **ण**-वाक्यालकार मे है। **विहरति**-विचरते है। **य**-और। **जो**-जो। **अहमंसि**-मै। **एयं**-इस। **पडिमं**-प्रतिज्ञा रूप प्रतिमा को। **पडिवज्जिताण**-ग्रहण करके। **विहरामि**-विचरता हूँ। **सव्वे वि ते**-ये सर्व ही। **उ**-वितर्क-वितर्क अर्थ मे है। **जिणाणाए**-जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मे। **उवट्ठिया**-उपस्थित हुए। **अन्नुन्नसमाहिए**-अन्योन्य परस्पर समाधि मे। **एव च ण**-इस प्रकार। **विहरति**-विचरते है। चकार पुनरर्थक है। **ण**-वाक्यालकार मे है। **एय खलु**-इस प्रकार निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु। **वा**-अथवा। **भिक्खुणीए**-भिक्षुकी-साध्वी का। **सामग्गियं**-समग्र श्रमण भाव है-सम्पूर्ण आचार है।

मूलार्थ—**इन सातो पिण्डैषणाओ तथा पानैषणाओ मे से किसी एक प्रतिमा-प्रतिज्ञा अभिग्रह को ग्रहण करता हुआ साधु फिर इस प्रकार न कहे कि ये सब अन्य साधु सम्यक्तया प्रतिमाओ को ग्रहण करने वाले नहीं है, केवल एक मै ही सम्यक् प्रकार से प्रतिमा ग्रहण करने वाला हूँ। उसे किस तरह बोलना चाहिए ? इस विषय मे कहते है– ये सब साधु महाराज इन प्रतिमाओ को ग्रहण करके विचरते है। ये सब जिनाज्ञा मे उद्यत हुए परस्पर समाधि पूर्वक विचरते है। इस तरह जो साधु- साध्वी अहभाव को नहीं रखता उसी में साधुत्व है और अहकार नहीं रखना सम्यक् आचार है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधना मे अहकार का निषेध किया गया है। साधना का उद्देश्य जीवन को ऊचा उठाना है, अपनी आत्मा को शुद्ध बनाना है। अत साधक को चाहिए कि वह दूसरे की निन्दा एव असूया से ऊपर उठकर क्रिया करे। यदि कोई साधु उसके समान अभिग्रह या प्रतिमा स्वीकार नहीं करता है , तो उसे अपने से निम्न श्रेणी का मानना एव उससे घृणा करना साधुत्व से गिरना है। साधना की दृष्टि से की जाने वाली प्रत्येक क्रिया महत्वपूर्ण है और उसका मूल्य बाह्य त्याग के साथ आभ्यन्तर दोषो के त्याग मे स्थित है। यदि बाह्य साधना की उत्कृष्टता के साथ-साथ उस त्याग का अहकार है और दूसरे के प्रति ईर्ष्या एव घृणा की भावना है तो वह बाह्य त्याग आत्मा को ऊपर उठाने मे असमर्थ ही रहेगा। अस्तु, प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को अपने त्याग का, अपने अभिग्रह आदि का गर्व नहीं करना चाहिए और अन्य साधुओ को अपने से हीन नहीं समझना चाहिए। उसे तो साधना के पथ पर गतिशील सभी साधुओ का समान भाव से आदर करना चाहिए। गुण सम्पन्न पुरुषो के गुणो को देखकर प्रसन्न होना चाहिए और उनके गुणो की प्रशसा करनी चाहिए। इसी से आत्मा का विकास होता है।

आगम मे यह स्पष्ट शब्दो मे बताया गया है कि साधु को परस्पर एक-दूसरे की निन्दा नहीं

करनी चाहिए। एक वस्त्र रखने वाले मुनि को दो वस्त्रधारी मुनि की और दो वस्त्र सम्पन्न मुनि को तीन या बहुत वस्त्र रखने वाले मुनि की निन्दा नहीं करनी चाहिए। इसी तरह अचेलक मुनि को सवस्त्र मुनि का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। साधु को निन्दा-चुगली से सर्वथा निवृत्त रहना चाहिए[१]। क्योकि आत्मा का विकास निन्दा एव चुगली से निवृत्त होने मे है। साधना का महत्त्व आभ्यन्तर दोषो के त्याग मे है, न कि केवल बाह्य साधना मे। माता मरुदेवी एव भरत चक्रवर्ती ने आभ्यन्तर दोषो का त्याग करके ही गृहस्थ के वेश मे पूर्णता को प्राप्त किया था।

प्रस्तुत सूत्र मे सात पिण्डैषणाओ का वर्णन करके अभिग्रह की सख्या सीमित कर दी है। सात से ज्यादा या कम अभिग्रह नहीं होते। और '**विहरति**' वर्तमान क्रिया का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया है कि चारित्र की साधना वर्तमान मे ही होती है । ज्ञान एव दर्शन पूर्व भव से भी साथ मे आते हैं और एक गति से दूसरी गति मे जाते समय भी रहते हैं। परन्तु, चारित्र न पूर्वभव से साथ मे आता है और न साथ मे जाता है। उसकी साधना-आराधना इसी भव मे की जा सकती है।

अभिग्रह के सम्बन्ध मे वृत्तिकार का मत है कि स्थविर कल्पी मुनि सात अभिग्रह स्वीकार कर सकता है और जिन कल्पी मुनि ५ अभिग्रह स्वीकार कर सकता है[२]।

आगमोदय समिति की प्रति मे प्रस्तुत उद्देशक के अन्त मे '**त्तिबेमि**' नहीं दिया है। किन्तु, अन्य कई प्रतियो मे '**त्तिबेमि**' शब्द दिया है। '**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझनी चाहिए।

॥ ग्यारहवा उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

---

१ जेऽवि दुवत्थतिवत्थो बहुवत्थो अचेलओव्व सथरइ, न हु ते हीलति पर सव्वेविअ ते जिणाणाए।

२ अत्र च द्वये साधवो-गच्छान्तर्गता गच्छविनिर्गताश्च तत्र गच्छान्तर्गताना सप्तानामपि ग्रहणमनुज्ञात, गच्छनिर्गताना पुनराद्योर्द्वयोरग्रह पचस्वभिग्रह इति।

—आचाराङ्ग वृत्ति।

द्वितीय अध्ययन शय्यैषणा

प्रथम उद्देशक

आध्यात्मिक चिन्तन के लिए शरीर प्रमुख साधन है और शरीर की स्वस्थता के लिए आहार ग्रहण करना पडता है। इसलिए प्रथम उद्देशक मे यह बताया गया है कि साधु को आहार कैसा और किस तरह से ग्रहण करना चाहिए। आहार ग्रहण करने के पश्चात् यह प्रश्न पैदा होता है कि आहार किस स्थान मे किया जाए और कहा ठहरा जाए तथा विहार कहा किया जाए ? उक्त प्रश्न का समाधान प्रस्तुत अध्ययन मे किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन का नाम है -शय्या-एषणा। शय्या चार प्रकार की बताई गई है- १-द्रव्य शय्या, २-क्षेत्र शय्या, ३-काल शय्या और ४-भाव शय्या। इसमे द्रव्य शय्या- १-सचित्त, २-अचित्त और ३-मिश्र के भेद से तीन तरह की बताई गई है। सजीव पृथ्वी आदि को सचित्त शय्या, अचित्त [निर्जीव] पृथ्वी आदि को अचित्त शय्या और अर्द्धपरिणत पृथ्वी आदि- जो अभी तक पूर्णतया अचित्त नहीं हुई है, को मिश्र शय्या कहा गया है। ग्राम, शहर आदि स्थान विशेष मे की जाने वाली शय्या को क्षेत्र-शय्या और ऋतुबद्ध काल मे की जाने वाली शय्या को काल-शय्या कहते है। भावशय्या के दो भेद हैं- १-काय विषयक भाव शय्या और २-भाव विषयक भाव शय्या। गर्भ मे स्थित जीवो की शय्या को काय विषयक भवाशय्या कहते हैं। क्योकि, गर्भस्थ जीवो की स्थिति माता की दशा (हालत) के अनुरूप बताई गई है। और जो जीव जिस समय औदयिक आदि जिस भाव मे परिणमन करते है, उस समय उनकी वही भाव-विषयक भावशय्या कहलाती है। यथा-'**शयनं शय्या**' इस भाव-प्रधान व्युत्पत्ति के अनुरुप भावशय्या का वर्णन किया गया है।

इस तरह प्रस्तुत उद्देशक मे शय्या के गुण-दोषो का वर्णन किया गया है और आधाकर्म आदि दोषो से युक्त शय्या का त्याग करके निर्दोष शय्या को स्वीकार करने का आदेश देते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० अभिकंखिज्जा, उवस्सयं एसित्तए अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा , से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणयं तहप्पगारे उवस्सए नो ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेइज्जा॥

से भिक्खू वा० से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणयं, तहप्पगारे उवस्सए पडिलेहित्ता, पमज्जित्ता तओ संजयामेव ठाणं वा ३ चेइज्जा॥

से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं ४ समारब्भ समुद्दिस्स, कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसट्ठं, अभिहडं, आहट्टु चेएइ, तहप्पगारे उवस्सए पुरिसंतरकडे वा जाव अणासेविए वा नो ठाणं वा ३ चेइज्जा। एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं बहवे साहम्मिणीओ। से भिक्खू वा० से जं पुण उ० बहवे समणवणीमए पगणिय २ समुद्दिस्स तं चेव भाणियव्वं॥

से भिक्खू वा० से ज० बहवे समण० समुद्दिस्स पाणाइं ४ जाव चेएति, तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए नो ठाणं वा ३ चेइज्जा ३, अह पुणेवं जाणिज्जा, पुरिसंतरकडे जाव सेविए पडिलेहित्ता २ तओ संजयामेव चेइज्जा॥

से भिक्खू वा० से जं पुण अस्संजए भिक्खूपडियाए कडिए वा उक्कंबिए वा छन्ने वा लित्ते वा घट्ठे वा मट्ठे वा संमट्ठे वा संपधूमिए वा तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए नो ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेइज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडे जाव आसेविए पडिलेहित्ता २ तओ चेइज्जा॥६४॥

छाया– स भिक्षु. वा० अभिकाङ्क्षेत्, उपाश्रयं एषितुं अनुप्रविश्य ग्रामं वा यावत् राजधान्यां वा स यत् पुनः उपाश्रय जानीयात् साण्डं यावत् ससन्तानकम्। तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थान वा शय्यां वा निषीधिका वा चेतयेत्, स भिक्षुर्वा० यत् पुनः उपाश्रय जानीयात् अल्पाण्डं यावत् अल्पसन्तानकं तथाप्रकारे उपाश्रये प्रतिलिख्य प्रमृज्य तत· संयतमेव स्थानं वा ३ चेतयेत्। स यत् पुन. उपाश्रय जानीयात् एतत्प्रतिज्ञया एकं साधर्मिक समुद्दिश्य प्राणानि ४ समारभ्य समुद्दिश्य क्रीत प्रामृत्य आच्छेद्य अनिसृष्टं अभ्याहृतं आहृत्य, चेतयति तथाप्रकारे उपाश्रये पुरुषान्तरकृते यावत् अनासेविते नो स्थानं वा ३ चेतयेत्, एव बहव· साधर्मिकाः एका साधर्मिकां बह्वीः साधर्मिकाः? स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः उपाश्रयं० बहून् श्रमणवनीपकान् प्रगण्य २ समुद्दिश्य, तच्चैव भणितव्यम्। स भिक्षुर्वा० स यत् बहून् श्रमण० समुद्दिश्य प्राणानि ४ यावत् चेतयति तथाप्रकारे उपाश्रये अपुरुषान्तरकृते यावत् अनासेविते नो स्थानं वा ३ चेतयेत्। अथ पुनरेव जानीयात् पुरुषान्तरकृत. यावत् सेवित. प्रतिलिख्य २ तत. संयतमेव चेतयेत्। स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः असंयतः भिक्षुप्रतिज्ञया कटकितो वा उत्कबितो वा छन्नो वा लिप्तो वा घृष्टो वा मृष्टो वा संमृष्टो वा संप्रधूपितो वा तथाप्रकारे उपाश्रये अपुरुषान्तारकृते

यावत् अनासेविते नो स्थानं वा शय्यां वा निषीधिकां वा चेतयेत्। अथ पुनरेवं जानीयात्, पुरुषान्तरकृतः यावत् आसेवितः प्रतिलिख्य २ ततः चेतयेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **उवस्सय**-उपाश्रय की। **एसित्तए**-गवेषणा करनी। **अभिकखेज्जा**-चाहे तब। **गाम वा**-ग्राम मे अथवा। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **अणुपविसित्ता**-प्रवेश करके। **से**-वह-भिक्षु। **ज पुण**-जो फिर। **उवस्सयं**-उपाश्रय को। **जाणिज्जा**-जाने। **सअंड**-अडादि से युक्त। **जाव**-यावत्। **ससताणयं**-मकड़ी आदि के जालो से युक्त। **तहप्पगारे**-तथा प्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **ठाण वा**-कायोत्सर्ग का स्थान अथवा। **सिज्ज वा**-शय्या-सस्तारक-सथारे का स्थान। **निसीहिय वा**-अथवा स्वाध्याय भूमि का स्थान। **नो चेइज्जा**-न करे।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **से ज पुण**-जो कि फिर। **उवस्सयं जाणिज्जा**-उपाश्रय को जाने। **अप्पड**-अडो से रहित। **जाव**-यावत्। **अप्पसंताणय**-मकड़ी आदि के जालो से रहित। **तहप्पगारे उवस्सए**-इस प्रकार के उपाश्रय की। **पडिलेहित्ता**-प्रतिलेखना कर। **पमज्जित्ता**-प्रमार्जना कर। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-सयत-साधु। **ठाण वा ३**-कायोत्सर्ग-शय्या और स्वाध्याय भूमि का स्थान। **चेइज्जा**-बनावे।

से ज पुण-वह साधु फिर। **उवस्सय जाणिज्जा**-उपाश्रय को जाने, यथा। **अस्सि पडियाए**-इस प्रतिज्ञा-अर्थात् साधु की प्रतिज्ञा से। **एग साहम्मिय**-एक साधर्मिक साधु का। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य रख कर। **पाणाइं**-प्राणी आदि का। **समारब्भ**-समारम्भ करके अर्थात् षट्काय की विराधना-हिंसा करके। **समुद्दिस्स**-तथा साधु के उद्देश्य से। **कीयं**-मोल लेकर। **पामिच्च**-दूसरे से उधारा लेकर। **अच्छिज्ज**-अन्य से छीन कर। **अणिसिट्ठ**-दो या दो से अधिक की मालकियत के उपाश्रय को एक की आज्ञा के बिना ग्रहण करके। **अभिहड**-अन्य से आज्ञा। **आहट्टु**-लेकर। **चेएति**-देता है तो। **तहप्पगारे उवस्सए**-तथाप्रकार के उपाश्रय मे। **पुरिसतरकडे**-पुरुषान्तर कृत। **वा**-अथवा अपुरुषान्तरकृत। **जाव**-यावत्। **अणासेविए**-अनासेवित सेवित-अर्थात् सेवन नहीं किया या सेवन किया हो उसमे। **ठाणं ३ वा**-स्थानादि-कायोत्सर्गादि। **नो चेइज्जा**-न करे। **एवं**-इसी प्रकार। **बहवे साहम्मिया**-बहुत से साधर्मी साधु अथवा। **एगं साहम्मिणिं**-एक साध्वी तथा। **बहवे साहम्मिणीओ**-बहुत साध्वियो के विषय मे भी जानना चाहिए।

से भिक्खू वा०-वह साधु अथवा साध्वी। **से जं पुण**-वह फिर। **उवस्सय-जाणिज्जा**-उपाश्रय को जाने, जैसे कि। **बहवे समणवणीमए**-श्रमण तथा भिखारियो को। **पगणिय २**-गिन-गिन कर। **समुद्दिस्स**-एक-एक का उद्देश्य करके। **त चेव भाणियव्व**-शेष वर्णन पूर्व की ही भाति जानना चाहिए। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **से ज०**-फिर वह उपाश्रय को जाने। **बहवे**-बहुत से। **समण०**-श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियो का। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके। **पाणाइ ४**-प्राणी, भूत, जीव और सत्वो की हिंसा करके। **जाव**-यावत्। **चेएति**-उपाश्रय बनाया है। **तहप्पगारे**-तथा प्रकार का उपाश्रय। **अपुरिसंतरकडे**-अपुरुषान्तर कृत। **जाव अणासेविए**-यावत् अनासेवित अर्थात् जिसे किसी ने भी सेवन नहीं किया है ऐसे उपाश्रय मे। **ठाण वा ३**-कायोत्सर्ग, सस्तारक तथा स्वाध्याय आदि। **नो चेइज्जा**-न करे। **अह पुण एवं जाणिज्जा**-अथ फिर इस प्रकार जाने कि। **पुरिसतरकडे**-यह उपाश्रय पुरुषान्तर कृत है। **जाव**-यावत्। **सेविए**-दूसरो से सेवित है उसे। **पडिलेहित्ता २**-प्रतिलेखन करके। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु कायोत्सर्गादि-। **चेइज्जा**-करे।

से भिक्खू वा०- वह साधु या साध्वी। **से ज पुण**-वह जो फिर। **असंजए**-गृहस्थ ने। **भिक्खूपडियाए**-

साधु के लिए। **कडिए वा**-काष्ठादि से दीवार आदि का सस्कार किया। **उक्कंबिए वा**-अथवा बांस आदि से बाधा है। **छन्ने वा**-तृणादि से आच्छादित किया है। **लित्ते वा**-गोबर आदि से उपलिप्त किया है। **घट्ठे वा**-या सवारा है अथवा। **मट्ठे वा**-ऊची-नीची भूमि को समतल बनाया है। **समट्ठे वा**-उसे घोट कर कोमल बनाया है और दुर्गन्ध आदि को दूर करने के लिए। **सपधूमिए वा**-धूप आदि के द्वारा सुगन्धित किया हो। **तहप्पगारे**-तथा प्रकार का। **उवस्सए**-उपाश्रय जो कि। **अपुरिसतरकडे**-पुरुषान्तर कृत नहीं है। **जाव**-यावत्। **अणासेविए**-अनासेवित है उसमे। **ठाण वा ३**-कायोत्सर्ग। **सेज्ज वा**-अथवा शैय्या-संस्तारक या। **णिसीहिय वा**-स्वाध्याय। **नो चेइज्जा**-न करे। **अह पुण एव जाणिज्जा**-फिर वह इस प्रकार जाने कि जो उपाश्रय। **पुरिसतरकडे**-पुरुषान्तर कृत। **जाव**-यावत्। **आसेविए**-आसेवित है तो उसका। **पडिलेहित्ता**-प्रतिलेखन करके। **तओ**-तदनन्तर उसमे कायोत्सर्गादि कार्य। **चेइज्जा**-करे।

मूलार्थ—वह साधु या साध्वी उपाश्रय की गवेषणा के लिए ग्राम यावत् राजधानी मे जाकर उपाश्रय को जाने, जो उपाश्रय अण्डो से यावत् मकड़ी आदि के जालो से युक्त है तो उसमे वह कायोत्सर्ग, सस्तारक (सथारा) और स्वाध्याय न करे। वह साधु या साध्वी जिस उपाश्रय को अण्डो और मकड़ी के जालो आदि से रहित जाने, उसे प्रतिलेखित और प्रमार्जित करके उसमे कायोत्सर्गादि करे।

जो उपाश्रय एक साधर्मी के उद्देश्य से प्राणी, भूत, जीव और सत्वादि का समारम्भ करके, मोल लेकर, उधार लेकर, किसी निर्बल से छीन कर, यदि सर्व साधारण का है तो किसी एक की भी बिना आज्ञा लिए साधु को देता है तो इस प्रकार का उपाश्रय पुरुषान्तरकृत हो अथवा अपुरुषान्तरकृत, एव सेवित हो या अनासेवित, उसमें साधु कायोत्सर्ग आदि कार्य न करे। इसी प्रकार जो बहुत से साधर्मियो के लिए बनाया गया हो तथा एक साधर्मिणी या बहुत सी साधर्मिणियो के लिए बनाया गया है उसमे भी स्थानादि कायोत्सर्गादि न करे। और जो उपाश्रय बहुत से श्रमणो तथा भिखारियो के लिए बनाया गया हो उसमें भी स्थान न करे।

जो उपाश्रय शाक्यादि भिक्षुओ के निमित्त षट्काय का समारम्भ करके बनाया गया है, जब तक वह अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित है तब तक उसमे स्थानादि–कायोत्सर्गादि न करे, और यदि वह पुरुषान्तरकृत या आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन करके यत्नापूर्वक वहां स्थानादि कार्य कर सकता है।

जो उपाश्रय गृहस्थ ने साधु के लिए बनाया हुआ है उसका काष्ठादि से संस्कार किया है, बांस आदि से बान्धा है, तृणादि से आच्छादित किया है, गोबरादि से लीपा है, सवारा है तथा ऊंची- नीची भूमि को समतल बनाया है, सुकोमल बनाया है और दुर्गन्धादि को दूर करने के लिए सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित किया है तो इस प्रकार का उपाश्रय जब तक अपुरुषान्तरकृत या अनासेवित है, तब तक उस में नहीं ठहरना चाहिए, और यदि वह पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित हो गया हो तो उस का प्रतिलेखन करके उसमे स्थानादि कार्य कर सकता है, अर्थात् कायोत्सर्ग, संथारा और स्वाध्याय आदि कर सकता है।

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गाव या शहर मे ठहरने के इच्छुक साधु-साध्वी को उपाश्रय (ठहरने के स्थान) की गवेषणा करनी चाहिए। उसे देखना चाहिए कि उस स्थान मे अण्डे एव मकडी के जाले आदि न हो और बीज एव अनाज के दाने बिखरे हुए न हो। क्योकि अण्डे, बीज एव सब्जी आदि से युक्त मकान मे ठहरने से उनकी विराधना होने की सम्भावना है। अत· साधु को ऐसे मकान की गवेषणा करनी चाहिए कि जिसमे सयम की विराधना न हो। यदि किसी मकान मे चींटी आदि क्षुद्र जन्तु हो तो उस मकान का प्रमार्जन करके उन त्रस जीवो को एकान्त मे छोड दे। इस तरह साधु ऐसे मकान मे ठहरे जिसमे किसी भी प्राणी की विराधना (हिसा) न हो।

स्थान की गवेषणा करते समय क्षुद्र प्राणियो से रहित स्थान के साथ-साथ यह भी देखना चाहिए कि वह स्थान साधु के उद्देश्य से न बनाया गया हो, साधु के लिए किसी निर्बल व्यक्ति से छीन कर न लिया गया हो, अनेक व्यक्तियो के साझे का न हो तथा सामने लाया हुआ न हो। यदि वह उपरोक्त दोषो से युक्त है तो वह स्थान चाहे गृहस्थो ने अपने काम मे लिया हो या न लिया हो, चाहे उसमे गृहस्थ ठहरे हो या न ठहरे हो, साधु के लिए अकल्पनीय है, साधु उस स्थान मे न ठहरे।

साझे के मकान के विषय मे इतना अवश्य है कि यदि वह मकान साधु के लिए नहीं बनाया गया है और जिन व्यक्तियो का उस पर अधिकार है वे सब व्यक्ति इस बात मे सहमत हैं कि साधु उक्त मकान मे ठहरे तो साधु उस मकान मे ठहर सकते हैं। यदि उन मे से एक भी व्यक्ति यह नही चाहता कि साधु उक्त मकान मे ठहरे तो साधु को उस मकान मे नहीं ठहरना चाहिए।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या मकान भी सामने लाकर दिया जाता है ? इसका समाधान यह है कि तम्बू आदि सामने लाकर खडे किए जा सकते हैं। लकडी के बने हुए मकान भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा सकते है। और आजकल तो ऐसे मकान भी बनने लगे है कि उन्हे स्थानान्तर किया जा सकता है।

इससे स्पष्ट होता है कि साधु के निमित्त ६ काय की हिसा करके जो मकान बनाया गया है, साधु को उस मकान मे नहीं ठहरना चाहिए। और जो मकान साधु के लिए नही बनाया गया है, परन्तु उसमे साधु के निमित्त फर्श आदि को लीपा-पोता गया है या उसमे सफेदी आदि कराई गई है, तो साधु को उस मकान मे तब तक नहीं ठहरना चाहिए जब तक वह पुरुषान्तरकृत नहीं हो गया है। इसी तरह जो मकान अन्य श्रमणो[१] के लिए या अन्य व्यक्तियो के ठहरने के लिए बनाया गया है- जैसे धर्मशाला आदि। ऐसे स्थानो मे उनके ठहरने के पश्चात् पुरुषान्तरकृत होने पर साधु ठहर सकता है।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं॰ पुण उवस्सयं जा॰ अस्संजए भिक्खुपडियाए खुड्डियाओ दुवारियाओ महल्लियाओ कुज्जा, जहा पिंडेसणाए जाव संथारगं संथारिज्जा बहिया वा निन्नक्खु तहप्पगारे उवस्सए अपु॰ नो ठाणं ३ अह पुणेवं॰

---

१ 'श्रमण' शब्द का प्रयोग निर्ग्रन्थ (जैन मुनि), शाक्य (बौद्ध भिक्षु), तापस, गैरुक और आजीवक (गौशालक के अनुयायी) सप्रदाय के लिए होता रहा है।

पुरिसंतरकडे आसेविए पडिलेहित्ता २ तओ संजयामेव जाव चेइज्जा। से भिक्खू वा० से जं० अस्संजए भिक्खुपडियाए उदग्गप्पसूयाणि कंदाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा ठाणाओ ठाणं साहरइ, बहिया वा निण्णक्खू तं० अणु० नो ठाणं वा चेइज्जा, अह पुण० पुरिसंतरकडे चेइज्जा। से भिक्खू वा से जं० अस्संज० भि० पीढं वा फलगं वा निस्सेणिं वा उदूखलं वा ठाणाओ ठाणं साहरइ बहिया वा निण्णक्खू तहप्पगारे उ० अपु० नो ठाणं वा चेइज्जा, अह पुण० पुरिसं० चेइज्जा ॥६५ ॥

छाया– स भिक्षुः वा स यत् पुनः उपाश्रयं जानीयात्, असंयत भिक्षुप्रतिज्ञया क्षुद्रद्वार महाद्वार कुर्यात् यथा पिण्डैषणायां यावत् संस्तारक संस्तरेत् , बहिर्वा निस्सारयति तथाप्रकारे उपाश्रये अपुरुषान्तरकृते नो स्थानं० ३। अथ पुनरेवं जानीयात् पुरुषान्तरकृत. आसेवित. प्रतिलिख्य २ तन. सयतमेव यावत् चेतयेत्। स भिक्षुर्वा० स यत् भिक्षुप्रतिज्ञया उदकप्रसूतानि कन्दानि वा मूलानि वा पत्राणि वा पुष्पाणि वा, फलानि वा, बीजानि वा, हरितानि स्थानात् स्थानं साहरति– सक्रामयति बहिर्वा निस्सारयति त० अपु० नो स्थान वा ३ चेतयेत्। अथ पुनरेव जानीयात् पुरुषान्तरकृत चेतयेत्। स भिक्षुर्वा स यत् असयत भिक्षुप्रतिज्ञया पीठं वा फलकं वा निश्रेणिं वा उदूखलं वा स्थानत. स्थानं संक्रामयति बहिर्वा निस्सारयति तथाप्रकारे उपाश्रये अपुरुषान्तरकृते नो स्थानं वा ३ चेतयेत्, अथ पुनरेव जानीयात् पुरुषान्तरकृत चेतयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। से ज० पुण उवस्सय जा०-वह जो फिर उपाश्रय को जाने। अस्सजए-असयत-गृहस्थ। भिक्खुपडियाए-भिक्षु-साधु के लिए। खुड्डियाओ दुवारियाओ-छोटे द्वार को। महल्लियाओ-बड़ा। कुज्जा-बनाए। जहा पिंडेसणाए-जैसे पिडैषणा अध्ययन मे बताया है। जाव-यावत्। संथारग संथारिज्जा-सस्तारक (बिछौना) को बिछावे। वा-अथवा। बहिया-कोई पदार्थ उपाश्रय से बाहर। निन्नक्खु-निकाले। तहप्पगारे-तथा प्रकार के। उवस्सए-उपाश्रय मे। अपुरिसतरकडे-जो कि पुरुषान्तरकृत नहीं है तो। नो ठाण ३-साधु वहा स्थानादि कायोत्सर्गादि न करे। अह पुणेव०-साधु पुन यह जाने कि यदि उक्त उपाश्रय। पुरिसतरकडे-पुरुषान्तरकृत है। आसेविए-आसेवित है तो फिर उसका। पडिलेहित्ता २-प्रतिलेखन करके। तओ-तदनन्तर। सजयामेव-साधु। जाव-यावत्। चेइज्जा-उसमे स्थानादि करे कायोत्सर्गादि करे। से भिक्खू वा०-वह साधु या साध्वी। से ज०-वह फिर यह जाने कि। असजए-गृहस्थ ने। भिक्खुपडियाए-भिक्षु के लिए। उदग्गप्पसूयाणि-पानी से उत्पन्न हुए। कंदाणि वा-कन्द। मूलाणि वा-अथवा मूल। पत्ताणि-पत्र। वा-अथवा। पुप्फाणि वा-पुष्प। फलाणि वा-फल अथवा। बीयाणि वा-बीज, अथवा। हरियाणि वा-हरी सब्जी को। ठाणाओ-एक स्थान से। ठाण-अन्य स्थान पर। साहरइ-रखा है। वा-अथवा। बहिया निण्णक्खू-भीतर से बाहर फैंका है तो। त०-वैसे उपाश्रय मे जो कि। अपु०-अपुरुषान्तरकृत है। नो ठाण वा-३

चेइज्जा-कायोत्सर्गादि न करे।

अह-अथ। **पुण०**-फिर जो ऐसा जाने कि यह। **पुरिसतरकडे**-पुरुषान्तर कृत है तो। **चेइज्जा**-उसमे कायोत्सर्गादि करे अर्थात् निवास-कर ले वे। **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज पुण**-जो कि उपाश्रय को जाने कि। **अस्सज०**-गृहस्थ। **भि०**-भिक्षु के लिए। **पीढं वा**-पीठ। **फलग वा**-फलक। **निस्सेणिं वा**-लकड़ी की सीढिये। **उदूखल वा**-अथवा ऊखल को। **ठाणाओ ठाणं साहरइ**-एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखता है। **बहिया वा निण्णक्खू**-अथवा भीतर से बाहर निकालता है। **तहप्पगारे**-तो इस तरह के। **उ०**-उपाश्रय मे जो। **अपु०**-अपुरुषान्तरकृत है। **नो ठाण वा ३ चेइज्जा**-साधु निवास न करे। **अह पुण**-अथ यदि वह यह जाने कि। **पुरिस०**-यह पुरुषान्तरकृत है तो। **चेइज्जा**-उस मे निवास करे।

***मूलार्थ*—वह साधु या साध्वी उपाश्रय के विषय मे यह जाने कि गृहस्थ ने साधु के लिए उपाश्रय के छोटे द्वार को बड़ा बनाया है और बड़े को छोटा कर दिया है, तथा भीतर से कोई पदार्थ बाहर निकाल दिया है तो इस प्रकार के उपाश्रय में जब तक वह अपुरुषान्तरकृत एवं अनासेवित है तब तक वहा कायोत्सर्गादि न करे, और यदि वह पुरुषान्तरकृत अथवा आसेवित हो गया है, तो उसमे स्थानादि कर सकता है।**

इसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ साधु के लिए उदक से उत्पन्न होने वाले कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरी का एक स्थान से स्थानान्तर मे संक्रमण करता है, या भीतर से किसी पदार्थ को बाहर निकालता है, तो इस प्रकार का उपाश्रय भी अपुरुषान्तरकृत और अनासेवित हो तो साधु के लिए अकल्पनीय है। और यदि पुरुषान्तरकृत अथवा आसेवित है तो उसमें वह कायोत्सर्गादि कर सकता है।

इसी भाति यदि गृहस्थ साधु के लिए पीठ [चौकी] फलक और ऊखल आदि पदार्थो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखता है या भीतर से बाहर निकालता है, तो इस प्रकार के उपाश्रय मे जो कि अपुरुषान्तरकृत और अनासेवित है तो साधु उसमे कायोत्सर्ग आदि कार्य न करे, और यदि वह पुरुषान्तरकृत अथवा आसेवित हो चुका है तो उसमे वह कायोत्सर्गादि क्रियाए कर सकता है।

हिन्दी विवेचन-प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ ने साधु के निमित्त उपाश्रय के दरवाजे छोटे-बडे किए हैं, या कन्द, मूल, वनस्पति आदि को हटाकर या काट-छाट कर उपाश्रय को ठहरने योग्य बनाया है तथा उसमे स्थित तख्त आदि को भीतर से बाहर या बाहर से भीतर रखा है और इस तरह की क्रियाए करने के बाद उस उपाश्रय मे गृहस्थ ने निवास किया हो या अपने सामायिक सवर आदि धार्मिक क्रियाए करने के काम मे लिया हो तो साधु उस मकान मे ठहर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि जो मकान मूल से साधु के लिए बनाया हो, उस मकान मे साधु किसी भी स्थिति-परिस्थिति मे नही ठहर सकता। परन्तु, जो स्थान मूल से साधु के लिए नहीं बनाया गया है, केवल उसकी मुरम्मत की गई है या उसके कमरो या दरवाजो आदि की छोटाई-बडाई मे कुछ परिवर्तन किया गया है या उसका अभिनव सस्कार किया गया है तो वह पुरुषान्तर होने के बाद साधु के लिए कल्पनीय है।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं० तंजहा– खंधंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासा० हम्मि० अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि, नन्नत्थ आगाढागाढेहिं कारणेहिं ठाणं वा नो चेइज्जा। से आहच्च चेइए सिया नो तत्थ सीयोदगवियडेण वा २ हत्थाणि वा पायाणि वा अच्छीणि वा दंताणि वा मुहं वा उच्छोलिज्ज वा पहोइज्ज वा, नो तत्थ ऊसढं पकरेज्जा, तंजहा– उच्चारं वा पासवणं वा खेलं वा सिंघाणं वा वंतं वा पित्तं वा पूयं वा सोणियं वा अन्नयरं वा सरीरावयवं वा, केवली बूया आयाणमेयं, से तत्थ ऊसढं पगरेमाणे पयलिज्ज वा २, से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा हत्थं वा जाव सीसं वा अन्नयरं वा कायंसि इंदियजालं लूसिज्ज वा पाणिं ४ अभिहणिज्ज वा जाव ववरोविज्ज वा, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए अंतलिक्खजाए नो ठाणं वा ३ चेइज्जा॥६६॥

छाया– स भिक्षुर्वा० स यत्-तद्यथा– स्कन्धे वा मंचे वा माले वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा अन्तरिक्षजाते नान्यत्र अगाढागाढ़ै· कारणै· स्थानं वा नो चेतयेत्, स आहृत्य चित – गृहीत. स्यात् न तत्र शीतोदकविकटेन वा २ हस्तौ वा पादौ वा अक्षिणी वा दन्तान् मुख वा उत्सोलयेत् वा प्रधावेद् वा न तत्र उत्सृष्टं प्रकुर्यात्, तद्यथा उच्चारं वा प्रस्त्रवणं वा खेलं वा सिंघानं वा वान्तं वा पित्त वा पूतिं वा शोणितं वा अन्यतर वा शरीरावयव वा केवली ब्रूयात् आदानमेतत् स तत्र उत्सृष्टं प्रकुर्वन् प्रचलेद् वा २ स तत्र प्रचलन् वा पतन वा हस्तौ वा यावत् शीर्षं वा अन्यतर वा काये इन्द्रियजात लूषयेद्– विनाशयेद् वा प्राणिनः वा ४ अभिहन्यात् यावद् व्यपरोपयेद् वा अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्ट ४ यत् तथाप्रकारे उपाश्रये अन्तरिक्ष-जाते नो स्थानं वा ३ चेतयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। से ज०-वह फिर उपाश्रय के सम्बन्ध मे जाने। तंजहा-जैसे कि। खधसि वा-एक स्कन्ध पर अथवा। मचसि वा-मच पर। मालंसि वा-माल पर। पासायसि वा-प्रासाद पर दूसरी भूमिका-मजिल पर। हम्मियतलंसि वा-महल पर। अण्णयरसि वा-अन्य कोई। तहप्पगारसि-इसी प्रकार के। अतलिक्खजायंसि वा-आकाश मे अर्थात् ऊचे स्थान मे है उसमे। ठाण वा ३-कायोत्सर्गादि। नो चेइज्जा-न करे। णण्णत्थ-इतना विशेष है अर्थात्। अगाढागाढेहिं-किसी विशेष या प्रगाढ कारण के उपस्थित हुए बिना उपाश्रय को स्वीकार न करे। आहच्च-यदि कभी। से-उसने। चेइए सिया-उसे ग्रहण कर लिया है तो। तत्थ-वह वहा पर। सीओदगवियडेण वा-प्रासुक शीतल या उष्ण जल से। हत्थाणि वा-हाथ। पायाणि वा-पैर। अच्छीणि वा-आख। दंताणि वा-दान्त। मुह वा-मुख आदि को। नो उच्छोलिज्ज वा-प्रक्षालन न करे। पहोएज्ज वा-बार २ प्रक्षालन न करे और। तत्थ-वहा पर। ऊसढं-मल मूत्रादि। नो

पकरेज्जा-न करे। **तंजहा**-जैसे कि। **उच्चार वा**-उच्चार-विष्ठा। **पासवणं वा**-मूत्र। **खेल वा**-मुख की मैल। **सिघाणं वा**-नाक का मल। **वंत वा**-वान्ति-वमन। **पित्तं वा**-पित्त। **पूयं वा**-पीप। **सोणिय वा**-शोणित-रुधिर या। **अन्नयरं वा**-अन्य कोई। **सरीरावयवं वा**-शरीर का अवयव वहा पर परठे नहीं। **केवली**-केवली भगवान। **बूया**-कहते है। **आयाणमेयं**-यह कर्म आने का मार्ग है। **से तत्थ**-यदि वह वहां पर। **ऊसढ पगरेमाणे**-उच्चार आदि करता हुआ। **पयलेज्ज वा** २-फिसल पड़ेगा या गिर पड़ेगा फिर। **से**-उसके। **तत्थ**-वहा पर। **पयलमाणे वा**-फिसलने अथवा। **पवडमाणे वा**-गिरने से। **हत्थं वा**-हाथ। **जाव**-यावत्। **सीसं वा**-सिर या। **कायंसि**-शरीर का। **अन्नयर वा**-कोई। **इदियजालं**-अवयव विशेष। **लूसिज्ज वा**-टूट जाएगा तथा। **पाणि वा** ४-द्वीन्द्रिय आदि प्राणियो को। **अभिहणेज्ज वा**-विराधना होगी। **जाव**-यावत्। **ववरोविज्ज वा**-विनाश होगा। **अह**-अत । **भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा**-भगवान ने भिक्षुओ के लिए पहले ही आदेश दे रखा है कि। **ज**-जो। **तहप्पगारे**-इस तरह के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे जो कि। **अन्तलिक्खजाए**-आकाश मे अर्थात् ऊचे स्थान मे स्थित है। **ठाणं वा** ३-कायोत्सर्गादि। **नो चेइज्जा**-न करे और ऐसे उपाश्रय मे न ठहरे।

***मूलार्थ*—वह साधु या साध्वी उपाश्रय को जाने, जैसे कि-जो उपाश्रय एक स्तम्भ पर है, मंचान पर है, माले पर है, प्रासाद पर-दूसरी मंजिल पर या महल पर बना हुआ है, तथा इसी प्रकार के अन्य किसी ऊचे स्थान पर स्थित है तो किसी असाधारण कारण के बिना, उक्त प्रकार के उपाश्रय में स्थानादि न करे। यदि कभी विशेष कारण से उसमे ठहरना पडे तो वहा पर प्रासुक शीतल या उष्ण जल से, हाथ, पैर, आख, दान्त और मुख आदि का एक या एक से अधिक बार प्रक्षालन न करे। वहा पर मल आदि का उत्सर्जन न करे यथा-उच्चार (विष्ठा) प्रस्त्रवण (मूत्र) मुख का मल, नाक का मल, वमन, पित्त, पूय, और रुधिर तथा शरीर के अन्य किसी अवयव के मल का वहां त्याग न करे। क्योंकि केवली भगवान ने इसे कर्म आने का मार्ग कहा है। यदि वह मलादि का उत्सर्ग करता हुआ फिसल पड़े या गिर पड़े, तो उसके फिसलने या गिरने पर उसके हाथ-पैर, मस्तक एव शरीर के किसी भी भाग में चोट लग सकती है और उसके गिरने से स्थावर एवं त्रस प्राणियो का भी विनाश हो सकता है। अत· भिक्षुओ के लिए तीर्थंकरादि का पहले ही यह उपदेश है कि इस प्रकार के उपाश्रय मे जो कि अन्तरिक्ष मे अवस्थित है, साधु कायोत्सर्गादि न करे और न वहा ठहरे।**

हिन्दी विवेचन-प्रस्तुत सूत्र मे उपाश्रय के विषम स्थान मे रहने का निषेध किया गया है। जो उपाश्रय एक स्तम्भ या मचान पर स्थित हो और उसके ऊपर नि श्रेणी (लकडी की सीढी) लगाकर चढना पडे, तो ऐसे स्थानो मे बिना किसी विशेष कारण के नहीं ठहरना चाहिए। क्योकि उस पर चढने के लिए नि श्रेणी लाने (लगाने) की व्यवस्था करनी होगी और उस पर से गिरने से शरीर पर चोट लगने या अन्य प्राणियो की हिसा होने की सम्भावना रहती है। अत: जहा इस तरह के अनिष्ट की सभावना हो ऐसे विषम स्थानो मे नहीं ठहरना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे अन्तरिक्षजात स्थानो मे जो ठहरने का निषेध किया गया है, वह स्थान की विषमता के कारण किया गया है। यदि किसी उपाश्रय मे ऊपर बने हुए आवासस्थल पर पहुचने के लिए सुगम रास्ता है, उसमे गिरने आदि का भय नहीं है और ऊपर छत इतनी मजबूत है कि चलने-फिरने से

हिलती नहीं है या ऊपर से मिट्टी आदि नहीं गिरती है तो ऐसे स्थानो मे ठहरने का निषेध नहीं किया गया है। आगम मे यत्र-तत्र विषम स्थानो पर ठहरने या ऐसे विषम स्थानो पर रखी हुई वस्तु यदि कोई गृहस्थ उतार कर देवे तो साधु को ग्रहण करने का निषेध किया गया है[१]। इसी तरह जो उपाश्रय दुर्बद्ध (विषम स्थान पर स्थित) है, तो वहा साधु को नहीं ठहरना चाहिए। परन्तु, जिस उपाश्रय मे ऊपर पहुचने का मार्ग सुगम है और उसमें किसी भी प्राणी की हिसा नहीं होती हो तो ऐसे स्थान मे साधु को ठहरने का निषेध नहीं किया गया है[२]।

इसी तरह ऊपर की छत पर जो हाथ-पैर धोने एव दात आदि साफ करने का निषेध किया है उसमे भी यही दृष्टि रही हुई है। यदि विषम स्थान नहीं है तो साधु उस पर आ-जा सकता है और दन्त आदि प्रक्षालन करने का जो निषेध किया है वह विभूषा की दृष्टि से किया गया है, न कि कारण विशेष की दृष्टि से। छेद सूत्रो मे स्पष्ट कहा गया है कि जो साधु विभूषा, के लिए दान्तो का प्रक्षालन करते हैं उन्हे प्रायश्चित आता है[३]। अस्तु, कारण विशेष से उपाश्रय मे स्थित ऊपर के ऐसे स्थानो मे जिन पर पहुचने का मार्ग सुगम है, उन पर दन्त आदि का प्रक्षालन करने का निषेध नहीं है।

उपाश्रय के विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० से जं० सइत्थियं सखुड्डं सपसुभत्तपाणं, तहप्पगारे सागारिए उवस्सए नो ठाणं वा ३ चेइज्जा। आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइकुलेण सद्धिं संवसमाणस्स अलसगे वा विसूइया वा छड्डी वा उव्वाहिज्जा अन्नयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जिज्जा, अस्संजए कलुणवडियाए तं भिक्खुस्स गायं तिल्लेण वा घएण वा नवणीयेण वा वसाए वा अब्भंगिज्ज वा मक्खिज्ज वा, सिणाणेण वा कक्केण वा लुद्धेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा पउमेण वा आघंसिज्ज वा पघंसिज्ज वा उव्वलिज्ज वा उव्वट्टिज्ज वा सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पक्खालिज्ज वा सिणाविज्ज वा सिंचिज्ज वा, दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालिज्ज वा पज्जालिज्ज वा उज्जालित्ता २ कायं आयाविज्जा वा प०, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा० जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए नो ठाणं वा ३ चेइज्जा ॥६७॥

छाया- स भिक्षुर्वा स यत् सस्त्रियं सक्षुद्रं सपशुभक्तपानं तथाप्रकारके सागारिके उपाश्रये नो स्थानं वा ३ चेतयेत्। आदानमेतत् भिक्षोः गृहपतिकुलेन सार्द्ध संवसतः अलसकः

१ दशवैकालिक सूत्र, ५, १, ६७-६८।

२ निशीथ सूत्र, उद्देशक १४, सूत्र ३८, ३९।

३ जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दते सीओदगवियडेण वा जाव पधोवंतं वा साइज्जइ।

– निशीथ सूत्र, उ० १५, सूत्र १४१

वा विसूचिका वा छर्दी वा उद्बाधेरन्, अन्यतरद् वा दुःखं रोगातंकः समुत्पद्येत असंयतः कारुण्यप्रतिज्ञया तद् भिक्षोः गात्र तैलेन वा घृतेन वा नवनीतेन वा वसया वा अभ्यज्यात् वा मृक्षयेद् वा स्नानेन वा कलकेन वा लोध्रेण वा वर्णेन वा चूर्णेन वा पद्मेन वा आघर्षेत् प्रघर्षेत् उद्वलेत् उद्वर्तेत् वा, शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उच्छालयेद् वा प्रक्षालयेद् वा स्नपयेद् वा सिञ्चेद् वा, दारुणा वा दारुपरिणामं कृत्वा अग्निकायं उज्वालयेद् वा प्रज्वालयेद् वा उज्ज्वाल्य काय वा आतापयेत् वा प्रतापयेद् वा अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टं॰ यत् तथाप्रकारे सागारिके उपाश्रये नो स्थानं वा ३ चेतयेत्।

पदार्थ— **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से ज॰**-उपाश्रय को जाने जैसे कि। **सइत्थिय**-यह उपाश्रय स्त्री युक्त है। **सखुड्ड**-क्षुद्र पशुओ और बालको से युक्त है। **सपसुभत्तपाणं**-पशुओ तथा उनके खाने योग्य अन्न-पानी से युक्त है। **तहप्पगारे**-तथाप्रकार के। **स गारिए**-सागारिक-गृहस्थो से युक्त। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **ठाण वा**-कायोत्सर्गादि। **नो चेइज्जा**-न करे। **आयाणमेय**-यह कर्म बन्धन का कारण है। **भिक्खुस्स**-भिक्षु को। **गाहावइकुलेण संद्धि**-यदि गृहपति के कुटुम्ब के साथ। **सवसमाणस्स**-बसते-निवास करते हुए कदाचित्। **अलसके**-हाथ-पैर आदि का स्तम्भन हो जाए अथवा उनमे सोजन आ जाए अथवा। **विसूइया वा**-विसूचिका-हैजा हो जाए या। **छड्डी वा**-वमन। **उब्बाहिज्जा**-होने लगे। **से अन्नयरे वा**-अथवा उसे अन्य कोई। **दुक्खे**-दु ख। **रोगायके**-या ज्वरादि रोग अथवा शूल आदि प्राणनाशक रोग। **समुप्पज्जेज्जा**-उत्पन्न हो जाए तो इस प्रकार के रोग से पीड़ित साधु को देखकर। **असजए**-गृहस्थ। **कलुणापडियाए**-करुणा से। **त**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु के। **गाय**-शरीर को। **तेल्लेण वा**-तेल से। **घएण वा**-घृत से। **नवणीएण वा**-नवनीत-मक्खन से अथवा। **वसाए वा**-चर्बी से। **अब्भगेज्ज वा**-उसके शरीर का एक बार मालिश करेगा अथवा। **मक्खिज्ज वा**-अनेक बार मालिश करेगा तथा। **सिणाणेण वा**-सुगन्धित द्रव्य मिश्रित जल से स्नान कराएगा या। **कक्केण**-कषाय द्रव्य से मिश्रित जल से। **लोद्धेण वा**-लोद से। **वन्नेण वा**-कम्पिल्लकादि वर्ण से। **चुण्णेण वा**-जवादि केचूर्ण से। **पउमेण वा**-पद्म से। **आघसिज्ज वा**-उसके शरीर का थोड़ा सा घर्षण करेगा। **पघसिज्ज वा**-बार बार घर्षण करेगा। **उव्वलिज्ज वा**-उक्त पदार्थों को मसल कर शरीर की स्निग्धता को दूर करेगा। **उव्वट्टिज्ज वा**-उबटन करेगा तथा। **सीओदगवियडेण वा**-उसे प्रासुक शीतल जल से। **उसिणोदगवियडेण वा**-या उष्ण जल से। **उच्छोलेज्ज वा**-एक बार धोएगा या। **पक्खलिज्ज वा**-अनेक बार प्रक्षालन करेगा। **सिणाविज्ज वा**-बार-बार मस्तक को धोएगा। **सिंचेज्ज वा**-जल के द्वारा गात्र-शरीर का सिचन करे अथवा। **दारुणा वा दारुपरिणाम कट्टु**-अरणी के काष्ठ को घर्षण करके। **अगणिकायं**-अग्नि को। **उज्जालेज्ज वा**-उज्वलित करेगा। **पजालिज्ज वा**-प्रज्वलित करेगा और। **उज्जलित्ता**-उज्वलित वा प्रज्वलित करके। **काय**-साधु के शरीर को। **आयाविज्जा**-एक बार तपाएगा। **पयाविज्ज वा**-या बार-बार तपाएगा। **अह**-इसलिए। **भिक्खूण**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठा**-तीर्थंकरादि ने पहले ही आदेश किया है कि। **जं**-जो कि। **तहप्पगारे**-तथा प्रकार के। **सागारिए**-सागारिक-गृहस्थादि से युक्त। **उवस्सए**-उपाश्रय हैं, उनमे। **ठाण वा**-स्थानादि। **नो चेइज्जा**-न करे, अर्थात् ऐसे स्थान मे न ठहरे।

मूलार्थ—**जो उपाश्रय स्त्री, बालक और पशु तथा उनके खाने योग्य पदार्थों से युक्त है तो इस प्रकार के गृहस्थादि से युक्त उपाश्रय मे साधु-साध्वी न ठहरे। क्योंकि यह कर्म आने का**

मार्ग है। भिक्षु को गृहस्थ के कुटुम्ब के साथ बसते हुए कदाचित् शरीर का स्तम्भन या सूजन हो जाए या विसूचिका, वमन, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो जाए, तो वह गृहस्थ करुणाभाव से प्रेरित होकर साधु के शरीर का तेल से, घी से, नवनीत (मक्खन) से और वसा से मालिश करेगा। और फिर उसे प्रासुक शीतल या उष्ण जल से स्नान कराएगा या लोध्र से, चूर्ण से तथा पद्म से एक अथवा अनेक बार उसके शरीर को घर्षित करेगा, तथा शरीर की स्निग्धता को उबटन आदि से दूर करेगा। उस मैल को साफ करने के लिए उसके शरीर का प्रासुक शीतल या उष्ण जल से प्रक्षालन करेगा। उसके मस्तक को धोएगा या उसे जल से सिंचित करेगा, अथवा अरणी के काष्ठ को परस्पर रगड़ कर अग्नि प्रज्वलित करेगा और उससे साधु के शरीर को गर्म करेगा। इस तरह गृहस्थ के परिवार के साथ उसके घर मे ठहरने से अनेक दोष लगने की सभावना देखकर भगवान ने ऐसे स्थान पर ठहरने का निषेध किया है।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु –साध्वी को ऐसे मकान मे नहीं ठहरना चाहिए जिसमे गृहस्थ सपरिवार रहता हो और अपने परिवार एव पशुओ के पोषण के लिए सब तरह के सुख-साधन एव भोगोपभोग की सामग्री रखी हो। क्योकि, गृहस्थ के साथ ऐसे मकान मे ठहरने पर यदि कभी वह बीमार हो गया तो वह अनुरागी गृहस्थ अनेक तरह की सावद्य एव निरवद्य औषधियो से , तेल आदि के लेपन से या अग्नि जलाकर उसके शरीर को तपाकर उसे व्याधि से मुक्त करने का प्रयत्न करेगा और साधु को उसका प्रतिकार करना होगा। यदि वह प्रतिकार नहीं करेगा तो उसके सयम का नाश होगा। इसलिए साधु को ऐसे स्थान मे नहीं ठहरना चाहिए , जिससे उसके महाव्रतो मे किसी तरह का दोष लगे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**वसा**' शब्द का अर्थ चर्बी नहीं, किन्तु स्निग्ध (चिकनाहट से युक्त) औषधि विशेष है। और '**पसुभत्तपाण**' का अर्थ है-पशुओं के काम मे आने वाले खाद्य पदार्थ, '**सखुड्ड**' (क्षुद्र) शब्द से कुत्ता, बिल्ली आदि पशुओ का एव पशु शब्द से गाय, भैंस आदि पशुओ का ग्रहण किया गया है।

यह स्पष्ट है कि बीमार साधु को देखकर गृहस्थ के मन मे दयाभाव विशेष रूप से जागृत होता है। इसलिए साधु को गृहस्थ के परिवार के साथ नही ठहरना चाहिए। इससे और भी अनेक दोष लगने की सभावना है। स्त्री आदि के साथ अधिक परिचय रहने से ब्रह्मचर्य मे भी शिथिलता आ सकती है। यही कारण है कि आगम मे साधु को स्त्री, पशु और नपुसक युक्त मकान मे और साध्वी को पुरुष, पशु और नपुसक सहित मकान मे रहने का निषेध किया गया है और इनसे रहित मकान मे रहने वाले साधु को ही निर्ग्रन्थ कहा गया है[१]। यह बात अलग है कि जिस मकान मे केवल पुरुष ही रहते हो तो उस मकान मे साधु और जिस मकान मे केवल स्त्रिया निवसित हो तो उस मकान मे साध्विया ठहर सकती हैं[२]।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– आयाणमेयं भिक्खुस्स सागारिए उवस्सए संवसमाणस्स इह

---

१ **नो इत्थीपसुपण्डगससत्ताइ सयणासणाइ सेविता से निग्गन्थे।** – **उत्तराध्ययन सूत्र, १६।**

२ – **कल्पसूत्र।**

खलु गाहावई वा जाव कम्मकरी वा अन्नमन्नं अक्कोसंति वा पचंति वा रुंभंति वा उद्दविंति वा, अह भिक्खूणं उच्चावयं मणं नियंछिज्जा, एए खलु अन्नमन्नं अक्कोसंतु वा मा वा अक्कोसंतु जाव मा वा उद्दविंत्तु , अह भिक्खूणं पुव्वो॰ जं॰ तहप्पगारे सा॰ नो ठाणं वा ३ चेइज्जा॥ ६८॥

छाया— आदानमेतत् भिक्षोः सागारिके उपाश्रये संवसतः इह खलु गृहपतिः वा यावत् कर्मकरी वा अन्योऽन्य आक्रोशयन्ति वा पचन्ति वा रुधन्ति वा उपद्रावयन्ति वा अथ भिक्षु उच्चावच मन कुर्यात् , एते खलु अन्योऽन्यं आक्रोशन्तु मा वा आक्रोशन्तु यावत् उपद्रावयन्तु , अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्ट यत् तथाप्रकारे सागारिके उपाश्रये नो स्थानं वा ३ चेतयेत्।

पदार्थ – **सागारिए उवस्सए**-गृहस्थ से युक्त उपाश्रय मे। **सवसमाणस्स**-निवास करना। **भिक्खुस्स**-साधु के लिए। **आयाणमेय**-कर्म बन्ध का कारण है, क्योकि। **इह खलु**-इस उपाश्रय मे। **गाहावई वा**-गृहपति। जाव-यावत्। **कम्मकरी वा**-उसकी दासी आदि। **अन्नमन्न**-परस्पर। **अक्कोसति वा**-एक-दूसरे को कोसती है। **पचति वा**-खाना पकाती हैं। **रुभति वा**-रोकती है। **उद्दविंति वा**-उपद्रव करती है। **अह**-अत उन्हे ऐसा करते देखकर। **भिक्खूण**-भिक्षु के। **उच्चावय मण नियंच्छिज्जा**-मन मे ऊचे-नीचे परिणाम आ सकते है, वह सोच सकता है कि। **एए खलु**-यह सब निश्चय ही। **अन्नमन्न**-परस्पर। **अक्कोसतु वा**-आक्रोश करे। **मा वा अक्कोसतु वा**-अक्रोश न करे। जाव-यावत्। **मा वा उद्दविंतु**-उपद्रव न करे। **अह भिक्खूण**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठा**-तीर्थकरो ने पहले ही उपदेश दिया है कि। **ज**-जो। **तहप्पगारे**-ऐसा स्थान है, जिसमे। **सा॰**-गृहस्थ निवास करता है, उसमे। **नो ठाण वा३ चेइज्जा**-साधु निवास न करे।

***मूलार्थ*—गृहस्थों से युक्त उपाश्रय में निवास करना साधु के लिए कर्म बन्ध का कारण कहा है। क्योकि उसमे गृहपति, उसकी पत्नी, पुत्रिया, पुत्रवधु , दास-दासिया आदि रहती हैं और कभी वे एक-दूसरी को मारे, रोके या उपद्रव करे तो उन्हे ऐसा करते हुए देखकर मुनि के मन मे ऊचे-नीचे भाव आ सकते है। वह यह सोच सकता है कि ये परस्पर लड़ें, झगड़े या लड़ाई-झगड़ा न करे आदि। इसलिए तीर्थंकरो ने साधु को पहले ही यह उपदेश दिया है कि वह गृहस्थ से युक्त उपाश्रय मे न ठहरे।**

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भी परिवार से युक्त मकान मे ठहरने का निषेध किया है। क्योकि कभी पारिवारिक सघर्ष होने पर साधु के मन मे भी अच्छे एव बुरे सकल्प-विकल्प आ सकते हैं। वह किसी को कहेगा कि तुम मत लडो और किसी को सघर्ष के लिए प्रेरित करेगा। इस तरह वह साधना के पथ से भटककर झझटो मे उलझ जाएगा। यहा प्रश्न हो सकता है कि किसी को लडने से रोकना तो अच्छा है, फिर यहा उसका निषेध क्यो किया गया है? इसका समाधान यह है कि परिवार के साथ रहने के कारण उसका मन तटस्थ न रहकर राग-द्वेष से युक्त हो जाता है और इस कारण वह अपने अनुरागी व्यक्ति का पक्ष लेकर विरोधी को रोकना चाहता है और अनुरागी को भडकाता है, उसकी यह राग-द्वेष

युक्त प्रवृत्ति कर्म बन्ध का कारण होने से साधु के लिए इसका निषेध किया है। यदि कोई साधु तटस्थ एव मध्यस्थ भाव से सघर्ष को शान्त करने का प्रयत्न करता है तो उसका कहीं निषेध नहीं किया गया है, भगवान महावीर ने कहा है कि साधु जनता को शान्ति का मार्ग बताए और उपदेश के द्वारा कलह को शान्त करने का प्रयत्न करे[1]। अस्तु, प्रस्तुत प्रसग मे जो निषेध किया है वह राग-द्वेष युक्त भाव से किसी का पक्ष लेकर हा या ना करने का निषेध किया गया है, और इसी भावना को सामने रख कर साधु को परिवार युक्त मकान मे ठहरने का निषेध किया गया है, जिससे वह पारिवारिक सघर्ष से अलग रहकर अपनी साधना मे सलग्न रह सके।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावईहिं सद्धिं संवसमाणस्स, इह खलु गाहावई अप्पणो सयट्ठाए अगणिकायं उज्जालिज्जा वा पज्जालिज्ज वा, विज्झविज्ज वा, अह भिक्खू उच्चावयं मणं नियंच्छिज्जा एए खलु अगणिकायं उ॰ वा २ मा वा उ॰ पज्जलिंतु वा मा वा प॰, विज्झविंतु वा मा वा वि॰ , अह भिक्खूणं पु॰ जं तहप्पगारे उ॰ नो ठाणं वा ३ चेइज्जा ॥६९ ॥

छाया– आदानमेतद् भिक्षो· गृहपतिभिः सार्द्धं संवसतः इह खलु गृहपति. आत्मनः स्वार्थमग्निकाय उज्ज्वालयेद् वा प्रज्वालयेद् वा विध्यापयेद् वा अथ भिक्षुः उच्चावच मनः कुर्यात् एते खलु अग्निकायमुज्ज्वालयन्तु वा २ मा वा उज्ज्वालयन्तु, प्रज्वालयन्तु वा मा वा विध्यापयन्तु अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्ट यत् तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं वा ३ चेतयेत्।

पदार्थ– **भिक्खुस्स**-भिक्षु को। **गाहावईहिं**-गृहपतियो-गृहस्थो के। **सद्धिं**-साथ। **संवसमाणस्स**-निवास करना। **आयाणमेय**-यह कर्म बन्धन का कारण है। **इह खलु**-निश्चय ही उस उपाश्रय मे। **गाहावई**-गृहस्थ। **अप्पणो सयट्ठाए**-अपने स्वार्थ के लिए– आत्म-प्रयोजन के लिए। **अगणिकायं**-अग्निकाय को। **उज्जालिज्जा वा**-उज्ज्वलित करे अथवा। **पज्जालिज्जा**-प्रज्वलित करे। **वा**-अथवा। **विज्झविज्ज वा**-बुझावे, इस प्रकार के काम करते हुए को देखकर। **अह**-अथ। **भिक्खू**-भिक्षु कभी। **उच्चावयं**-ऊचा-नीचा। **मणं नियंच्छिज्जा**-मन करे, यथा-। **खलु**-निश्चय ही। **एए**-ये गृहस्थ लोग। **अगणिकायं**-अग्निकाय-अग्नि को। **उ॰ वा २**-उज्वलित करें। **मा वा उ॰**-अथवा उज्वलित न करे, तथा। **पज्जालितु**-प्रज्वलित करे। **मा वा प॰**-अथवा प्रज्वलित न करे। **विज्झावितु वा**-बुझा दे। **मा वा वि॰**-अथवा न बुझाएं। **अह**-अथ। **भिक्खूणं**-भिक्षुओं को। **पु॰**-तीर्थंकरादि का पहले ही यह उपदेश है। **ज**-जो। **तहप्पगारे**-तथाप्रकार के। **उ॰**-उपाश्रय मे। **ठाणं वा ३**-स्थानादि। **नो चेइज्जा**-न करे- ठहरे।

***मूलार्थ*—गृहस्थादि से युक्त उपाश्रय में ठहरना साधु के लिए कर्म-बन्ध का कारण है। क्योंकि वहां पर गृहस्थ लोग अपने प्रयोजन के लिए अग्नि को उज्वलित और प्रज्वलित करते हैं**

१ उत्तराध्ययन सूत्र १०

या प्रज्वलित आग को बुझाते हैं। अतः उनके साथ बसते हुए भिक्षु के मन मे कभी ऊचे-नीचे परिणाम भी आ सकते है। कभी वह यह भी सोच सकता है कि ये गृहस्थ अग्नि को उज्वलित और प्रज्वलित करे या ऐसा न करें, यह अग्नि को बुझा दे या न बुझाए। इसलिए तीर्थंकरादि ने भिक्षु को पहले ही यह उपदेश दिया है कि वह इस प्रकार के सागारिक उपाश्रय मे न ठहरे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भी गृहस्थ के साथ गृहवास करने का निषेध किया गया है और बताया गया है कि उसके साथ निवास करने से मन विभिन्न सकल्प-विकल्पो मे चक्कर काटता रहेगा। कभी गृहस्थ दीपक प्रज्वलित करेगा और कभी जलते हुए दीपक को बुझा देगा। उसके इन कार्यो से साधु की साधना मे रुकावट पडने के कारण उसके मन मे ऊचे-नीचे सकल्प- विकल्प उठ सकते हैं। इन सब सकल्प-विकल्पो से बचने के लिए साधु को गृहस्थ के साथ नहीं ठहरना चाहिए।

इस सबन्ध मे सूत्रकार और भी बताते हैं-

मूलम्– आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावईहिं सद्धिं संवसमाणस्स, इह खलु गाहावइस्स कुंडले वा गुणे वा मणी वा मुत्तिए वा हिरण्णे वा सुवण्णे वा कडगाणि वा तुडियाणि वा तिसराणि वा पालंबाणि वा हारे वा अद्धहारे वा एगावली वा कणगावली वा मुत्तावली वा रयणावली वा तरुणियं वा कुमारिं अलंकियविभूसियं पेहाए , अह भिक्खू उच्चाव॰ एरिसिया वा सा नो वा एरिसिया इय वा णं बूया इय वा णं मणं साइज्जा। अह भिक्खूणं पु॰ ४ जं तहप्पगारे उवस्सए नो ठा॰ ॥७० ॥

छाया– आदानमेतत् भिक्षो. गृहपतिभि. सार्द्धं सवसतः इह खलु गृहपते कुडलं वा गुण वा मणि वा मौक्तिकं वा हिरण्येषु वा सुवर्णेषु वा कटकानि वा त्रुटितानि वा त्रिसराणि वा प्रालम्बानि वा, हार वा अर्द्धहारं वा, एकावलिं वा कनकावलि वा मुक्तावलि वा रत्नावलि वा तरुणिका वा कुमारी वा अलकृतविभूषितां प्रेक्ष्य, अथ भिक्षुः उच्चावचं॰ मन कुर्यात् ईदृशी वा सा नो वा ईदृशी इति वा ब्रूयात् इति वा मनः स्वदेत अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्टम् ४ यत् तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं ३ चेतयेत्।

पदार्थ·– **आयाणमेय**-गृहस्थो के साथ निवास करना साधु के लिए कर्मबन्ध का कारण है। **भिक्खुस्स**-साधु को। **गाहावईहिं सद्धिं**-गृहस्थो के साथ। **सवसमाणस्स**-बसते हुए ये दोष लग सकते हैं, जैसे कि। **इह खलु**-निश्चय ही उस स्थान मे। **गाहावइस्स**-गृहस्थ के। **कुंडले वा**-कुण्डल-कानो मे डालने के आभूषण। **गुणे वा**-धागे मे पिरोया हुआ आभूषण विशेष, अथवा मेखला-तगड़ी। **मणी वा**-चन्द्रकान्तादि मणि। **मुत्तिए वा**-अथवा मोती। **हिरण्णे वा**-दीनार-मोहर आदि। **सुवण्णे वा**-सुवर्ण-सोना। **कडगाणि वा**-कड़े। **तुडियाणि वा**-भुजाओ के आभूषण। **तिसराणि वा**-तीन लड़ी का हार। **पालबाणि वा**-गले मे धारण करने वाली एक लम्बी माला। **हारे वा**-अठारह लड़ी का हार। **अद्धहारे वा**-नौ लड़ी का अर्द्धहार। **एगावली वा**-

एक लड़ी का हार। **मुत्तावली वा**-मोतियो की माला-हार। **कणगावली वा**-सोने का हार अथवा। **रयणावली वा**-रत्नो की माला का हार तथा। **तरुणिय वा**-जवान स्त्री को अथवा। **कुमारिं**-कुमारी कन्या को। **अलंकिय-विभूसियं**-अलकृत अथवा विभूषित स्त्री को। **पेहाए**-देखकर। **अह**-अथ। **भिक्खू**-भिक्षु के। **उच्चावय**-मन मे ऊंचे-नीचे विचार आ सकते हैं। **एरिसिया वा**-वह सोचने लगे कि मेरी स्त्री भी इसके समान थी, अथवा। **सा**-वह स्त्री। **णो एरिसिया**-ऐसी नहीं थी, तथा इसके समान ही मेरे घर में आभूषणादि थे अथवा नहीं थे। **इय वा ण बूया**-वह इस प्रकार के वचन बोलने लगे। **इय वा णं मण साइज्जा**-मन में राग-द्वेष करने लगे। **अह**-अत । **भिक्खूण**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठा ४**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह उपदेश दिया है कि। **जं**-जो। **तहप्पगारे**-तथाप्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **णो ठाण वा ३ चेइज्जा**-न ठहरे।

_मूलार्थ_—गृहस्थ के साथ ठहरना भिक्षु के लिए कर्म बन्धन का कारण है। जो भिक्षु गृहस्थ के साथ बसता है उसमे निम्नलिखित कारणो से राग-द्वेष के भावो का उत्पन्न होना सभव है। यथा-गृहपति के कुण्डल, या धागे मे पिरोया हुआ आभरण विशेष, मणि, मुक्ता-मोती, चादी, सोना या स्वर्ण के कड़े, बाजूबन्द-भुजाओं में धारण करने के आभूषण, तीन लड़ी का हार, फूल माला, अठारह लड़ी का हार, नौ लड़ी का हार, एकावली हार, सोने का हार, मोतियों और रत्नो के हार तथा वस्त्रालकारादि से अलकृत और विभूषित युवती स्त्री और कुमारी कन्या को देखकर भिक्षु के मन मे ये संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं, कि ये पूर्वोक्त आभूषणादि मेरे घर मे भी थे अथवा मेरे घर मे ये आभूषण नहीं थे। एव मेरी स्त्री या कन्या भी इसी प्रकार की थी अथवा नहीं थी। इन्हे देखकर वह ऐसे वचन बोलेगा या मन मे उन का अनुमोदन करेगा। इसलिए तीर्थंकरो ने पहले ही भिक्षुओं को यह उपदेश दिया है कि वे इस प्रकार के उपाश्रय मे न ठहरे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे गृहस्थ के साथ ठहरने का निषेध करते हुए बताया गया है कि गृहस्थ के यहा विभिन्न तरह के वस्त्राभूषण एव वस्त्राभूषणो से सुसज्जित नवयुवतियो एव उसकी कुमारी कन्याओ को देखकर उसके मन मे अपने पूर्व जीवन की स्मृति जाग सकती है। वह यह सोच सकता है कि मेरे घर मे भी ऐसा ही या इससे भी अधिक वैभव था या मेरे घर मे इतनी प्रचुर भोग सामग्री नहीं थी, मैंने अपने जीवन मे इतने भोग नहीं भोगे। इस तरह गृहस्थ के वैभव सपन्न जीवन को देखकर उसका मन भोगो के चिन्तन मे लग सकता है। अत इसे कर्म बन्ध का कारण जानकर साधु को ऐसे स्थानो मे नहीं ठहरना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावईहिं सद्धिं संवसमाणस्स, इह खलु गाहावइणीओ वा गाहावइधूयाओ वा गा० सुण्हाओ वा गा० धाईओ वा गा० दासीओ वा गा० कम्मकरीओ वा तासिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ--जे इमे भवंति समणा भगवंतो जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ, नो खलु एएसिं कप्पइ मेहुणधम्मं परियारणाए आउट्टित्तए, जा य खलु एएहिं सद्धिं मेहुणधम्मं

परियारणाए आउट्टाविज्जा पुत्तं खलु सा लभिज्जा ओयस्सिं तेयस्सिं वच्चस्सिं जसस्सिं संपराइयं आलोयणदरसणिज्जं, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म तासिं च णं अन्नयरी सड्ढी तं तवस्सिं भिक्खुं मेहुणधम्मपडियारणाए आउट्टाविज्जा, अह भिक्खूणं पु० जं तहप्पगारे सा० उ० नो ठा० ३ चेइज्जा। एयं खलु तस्स०॥ पढमा सिज्जा सम्मत्ता॥७१॥

छाया– आदानमेतत् भिक्षो. गृहपतिभि· सार्द्धं संवसतः इह खलु गृहपतन्य. वा गृहपतिदुहितरो वा गृहपतिस्नुषा वा गृहपतिधात्र्यो वा गृहपतिदास्यो वा गृहपतिकर्मकर्यो वा, तासां च एवं उक्तपूर्वं भवति-ये इमे श्रमणा भगवन्तः यावद् उपरता मैथुनाद् धर्मात् नो खलु एतेषा कल्पते मैथुनधर्मपरिचारणया आकुटयितुं-अभिमुखं कर्तुम्। या च खलु एतैः सार्द्धं मैथुनधर्मपरिचारणया आकुट्टियेत्-अभिमुखं कुर्वीत पुत्रं खलु लभेत-ओजस्विन, तेजस्विनं, वर्चस्विनं, यशस्विनं संपरायं आलोकं दर्शनीयं, एतत् प्रकार निर्घोष श्रुत्वा निशम्य तासा च अन्यतरा श्राद्धी तं तपस्विनं भिक्षुं मैथुनधर्मपरिचारणायामभिमुख कुर्यात्, अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्ट यत् तथाप्रकारे सागारिके उपाश्रये नो स्थानं वा ३ चेतयेत्। एतत् खलु तस्य भिक्षो. भिक्षुक्या. वा सामग्र्यम्। प्रथमा शय्या समाप्ता।

पदार्थ – **आयाणमेय**-यह कर्म बन्धन का कारण है। **भिक्खुस्स**-भिक्षु को। **गाहावईहिं सद्धि**-गृहस्थो के साथ। **सवसमाणस्स**-बसते हुए को, ये दोष उत्पन्न हो सकते है, यथा। **इह खलु**-निश्चय ही सागारिक उपाश्रय मे। **गाहावइणीओ वा**-गृहपति की भार्याए अथवा। **गाहावइधूयाओ**-गृहपति की पुत्रिया। **गाहावइसुण्हाओ**-गृहपति की पुत्रवधुएं। **गाहावइधाइओ वा**-गृहपित की धायमाताएं अथवा। **गाहावइदासीओ**-गृहपति की दासियां अथवा। **गाहावइकम्मकरीओ वा**-गृहपति का काम करने वाली अनुचरिए। **ण**-वाक्यालकार मे है। **च**-फिर। **तासिं**-उन्हो का। **एव**-इस प्रकार। **वुत्तपुव्व भवइ**-पहले ही यह कथन होता है अर्थात् वे परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करते है। **जे इमे**-जो ये। **भगवतो समणा**-पूज्य श्रमण है। **जाव**-यावत्। **मेहुणाओ धम्माओ**-मैथुन धर्म से। **उवरया भवंति**-सर्वथा उपरत रहते है अर्थात् ये मैथुन धर्म का कभी सेवन नहीं करते। **खलु**-निश्चय ही। **एएसिं**-इनको। **मेहुणधम्म**-मैथुन धर्म के। **परियारणाए**-सेवनार्थ-सेवन करने के लिए। **आउट्टित्तए**-सन्मुख होना। **नो कप्पइ**-नहीं कल्पता, किन्तु। **य**-और। **जा**-जो स्त्री। **एएहिं सद्धि**-इनके साथ। **मेहुणधम्मं**-मैथुन धर्म के। **परियारणाए**-सेवन के लिए। **आउट्टाविजा**-सन्मुख करे अर्थात मैथुन सेवन करे। **खलु**-निश्चय ही। **सा**-वह स्त्री। **ओयस्सि**-ओजस्वी-बलवान। **तेयस्सि**-तेजस्वी तेज वाला। **वच्चस्सि**-वर्चस्वी-रूपवान। **जसस्सिं**-यशस्वी-यशवाला। **संपराइयं**-सग्राम मे शूरवीर। **आलोयणदरसणिज्जं**-आलोकनीय और दर्शनीय। **पुत्तं**-पुत्र को। **लभिज्जा**-प्राप्त करती है। **एयप्पगारं**-इस प्रकार के। **निग्घोस**-शब्द को। **सुच्चा**-सुनकर। **निसम्म**-और विचार कर-हृदय में धारण कर। **तासिं च णं**-उनमे से। **अन्नयरी**-कोई एक। **सड्ढी**-स्त्री। **तं**-उस। **तवस्सिं**-तपस्वी। **भिक्खुं**-भिक्षु को। **मेहुणधम्मपडियारणाए**-मैथुन धर्म के सेवनार्थ। **आउट्टाविज्जा**-सन्मुख करे। **अह**-अथ। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ को। **पु०**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह

उपदेश किया है। जं-जो कि। तहप्पगारे-तथाप्रकार के। उवस्सए-उपाश्रय मे। ठाणं वा ३-भिक्षु स्थानादि न करे-न ठहरे। एय-यह। खलु-निश्चय ही। तस्स-उस। भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा-भिक्षु-साधु या साध्वी का। सामग्गिय-यह सम्पूर्ण भिक्षु-भाव भिक्षुत्व है। पढमा सिज्जा सम्मत्ता-पहली शय्या समाप्त हुई।

***मूलार्थ*—भिक्षु को गृहस्थों के साथ बसने से निम्नलिखित दोष लग सकते है। जब वह गृहस्थो के साथ रहेगा तब उन गृहस्थो की गृहपत्निया, उनकी पुत्रिया, पुत्रवधुए, धायमाताए, दासिया और अनुचरिया आपस में मिल कर यह वार्तालाप भी करने लगती है कि-ये साधु मैथुन धर्म से सदा उपरत रहते हैं अर्थात् ये मैथुन क्रीड़ा नहीं करते। अत इन्हे मैथुन सेवन करना नहीं कल्पता। परन्तु , जो कोई स्त्री इनके साथ मैथुन क्रीड़ा करती है,उसको बलवान, तेजस्वी, रूप वाला और कीर्तिमान, सग्राम में शूरवीर एव दर्शनीय पुत्र की प्राप्ति होती है। इस प्रकार के शब्द को सुनकर उनमे से कोई एक पुत्र की इच्छा रखने वाली स्त्री उस तपस्वी भिक्षु को मैथुन सेवन के लिए तैयार कर लेवे। इस तरह की सभावना हो सकती है, इसलिए तीर्थंकरों ने ऐसे स्थान मे ठहरने का निषेध किया है।**

***हिन्दी विवेचन*–**प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गृहस्थ के साथ ठहरने से साधु के ब्रह्मचर्य व्रत मे दोष आ सकता है। क्योकि साधु को अपने बीच मे पाकर स्त्रिया उसकी ओर आकर्षित हो सकती हैं और पारस्परिक वार्तालाप से यह जानकर कि ब्रह्मचारी के सपर्क से होने वाला पुत्र बलवान एव तेजस्वी होता है, तो पुत्र की अभिलाषा रखने वाली कोई स्त्री मुनि से मैथुन क्रीडा करने की प्रार्थना भी कर सकती है और अपने हाव-भाव से वह मुनि को भी इस कार्य के लिए तैयार कर सकती है। इस तरह महाव्रतो से गिरने की सभावना देखकर भगवान ने साधु को गृहस्थ के परिवार के साथ ठहरने का निषेध किया है।

वस्तुत देखा जाए तो वीर्य ही जीवन है। क्योकि इस शरीर का निर्माण वीर्य से ही होता है। आगम मे बताया गया है कि मनुष्य की अस्थि, मज्जा, केश एव रोम का निर्माण पिता के वीर्य से होता है और मास--मस्तक आदि का ढाचा माता के रुधिर (रज) से बनता है। अस्तु माता और पिता का जीवन जितना सयमित, नियमित एव मर्यादित होगा उतना ही सन्तान का शरीर शक्तिसम्पन्न एव तेजस्वी होगा। अत जीवन को शक्तिसम्पन्न एव नेजस्वी बनाए रखने के लिए वीर्य की सुरक्षा करना आवश्यक है। इसी कारण गृहस्थ के लिए भी स्वदारसन्तोष व्रत का उल्लेख किया गया है। स्वपत्नी के साथ भी मर्यादा से अधिक मैथुन का सेवन करना अपनी शक्ति का नाश करना एव सन्तति का दुर्बल एव रोगी बनाना है। असयत एव अमर्यादित जीवन चाहे गृहस्थ का हो या साधु का, किसी के लिए भी हितप्रद नही है। अत साधु को अपने सयम एव ब्रह्मचर्य की रक्षा मे सदैव सावधान रहना चाहिए। क्योकि ब्रह्मचर्य साधना का महत्वपूर्ण स्तम्भ है, इसलिए साधु को ऐसे स्थान मे नहीं ठहरना चाहिए, जहा ब्रह्मचर्य के स्खलित होने की सभावना हो।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**आउट्टिटत्तए, आउट्टिविज्जा**' का प्राकृत महार्णव मे आवृत करना, भुलाना, व्यवस्था करना, सम्मुख करना एव तत्पर होना अर्थ किया है[1] और अर्द्धमागधी कोष मे आउट

१ प्राकृत शब्द महार्णव, पृ० १३०।

(आ+कुट्ट) धातु को हिसार्थक माना है और आउट्टइ, आउट्टेइ, आउट्टानी, आउट्टिया, आउट्टे, आउट्टेजा, आउट्टितए और आउट- आवृत्त शब्द से भी दिया है[२]। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे '**आउट्टिए**' पद का सम्मुख करना अर्थ ही सगत प्रतीत होता है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ अर्द्धमागधी कोष, भाग २, पृ० ११

द्वितीय अध्ययन शय्यैषणा
द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे उपाश्रय के दोषो का वर्णन किया गया है, और प्रस्तुत उद्देशक मे निवास स्थान सबन्धी कुछ विशेष दोषो का उल्लेख किया है। साधु को स्त्री-पशु एव नपुसक से युक्त मकान मे क्यो नहीं ठहरना चाहिए, इसका स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- गाहावई नामेगे सुइसमायारा भवंति, से भिक्खू य असिणाणए मोयसमायारे, से तग्गंधे दुग्गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ, जं पुव्वंकम्मं तं पच्छाकम्मं जं पच्छाकम्मं तं पुरेकम्मं, तं भिक्खू पडियाए वट्टमाणा करिज्जा वा नो करिज्जा वा अह भिक्खूणं पु० जं० तहप्पगारे उ० नो ठाणं० ॥ ७२ ॥

छाया-गृहपतयो नामैके शुचिसमाचारा भवन्ति, स भिक्षुश्च अस्नानतया मोकसमाचारः स तद्गन्ध दुर्गन्धः प्रतिकूलः प्रतिलोमश्चापि भवति, यत् पूर्वकर्म तत् पश्चात्कर्म यत् पश्चात्कर्म तत् पुराकर्म तद् भिक्षुप्रतिज्ञया वर्तमाना· कुर्यु वा नो कुर्युः वा अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्टमेतत् यत् तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं वा ३ कुर्यात्।

पदार्थ- **नाम**-सभावनार्थक है अथवा आमन्त्रण अर्थ मे आता है। **एगे**-कई एक। **गाहावई**-गृहपति-गृहस्थ लोग। **सुइसमायारा**-शुचि धर्म के मानने वाले। **भवंति**-होते है। **य**-और। **से**-वह। **भिक्खू**-भिक्षु। **असिणाणए**-स्नान न करने से और। **मोयसमायारे**-मोक प्रतिमा का आचरण करने से। **से**-वह भिक्षु। **तग्गंधे**-तद्गन्ध वाला और। **दुग्गंधे**-दुर्गन्ध वाला। **पडिकूले**-प्रतिकूल और। **पडिलोमे यावि भवइ**-प्रतिलोम होता है, अत । **जं पुव्वकम्म**-गृहस्थ साधु के कारण से जो पहले कार्य करना है। **तं पच्छकम्म**-उसे पीछे करने लगता है। **ज पच्छाकम्मं**-जो पीछे कर्म करना है। **त पुरेकम्मं**-उसे पहले करने लगता है। **तं भिक्खुपडियाए**-वह भिक्षु के कारण से भोजन आदि क्रिया प्राप्त काल में। **वट्टमाणा**-वर्तता हुआ। **करिज्जा वा**-आगे-पीछे करे अथवा। **नो करिज्जा वा**-न करे, तथा साधु गृहस्थ के कारण से प्रत्युपेक्षणादि क्रिया आगे-पीछे करने लगे अथवा कालातिक्रम करके क्रिया करे या कम करे या सर्वथा ही न करे। **अह**-अत । **भिक्खूणं**-भिक्षुओ को। **पु०**-तीर्थंकरो ने पहले ही यह उपदेश दिया है। **जं**-जो। **तहप्पगारे**-साधु तथाप्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **नो ठाण०**-न ठहरे।

***मूलार्थ*—कई एक गृहस्थ शुचि धर्म वाले होते हैं, और साधु स्नानादि नहीं करते और विशेष कारण उपस्थित होने पर मोक का आचरण भी कर लेते है। अत· उनके वस्त्रों से आने वाली दुर्गन्ध गृहस्थ के लिए प्रतिकूल होती है। इस लिए वह गृहस्थ जो कार्य पहले करना है उसे पीछे करता है और जो कार्य पीछे करना है उसे पहले करने लगता है और भिक्षु के कारण भोजनादि क्रियाएं समय पर करे, या न करे। इसी प्रकार भिक्षु भी प्रत्युपेक्षणादि क्रियाए समय पर नहीं कर सकेगा, अथवा सर्वथा ही नहीं करेगा। इसलिए तीर्थंकरादि ने भिक्षुओ को पहले ही यह उपदेश दिया है कि वे इस प्रकार के उपाश्रय मे न ठहरे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे गृहस्थ एव साधु जीवन के रहन-सहन का अन्तर बताते हुए कहा है कि कुछ गृहस्थ शुद्धि वाले होते हैं। वे स्नान आदि से अपने शरीर को शुद्ध बनाने मे ही व्यस्त रहते हैं और साधु सदा आत्मशुद्धि मे सलग्न रहता है। वह ज्ञान रूपी सागर की अनन्त गहराई मे डुबकिया लगाता रहता है। वह गृहस्थो की तरह स्नान आदि नहीं करता और यदि कभी उसके शरीर पर घाव आदि हो जाता है तो वह औषध के रूप मे अपने मूत्र का प्रयोग करके उस घाव को ठीक कर लेता है[१]। इस तरह उसका आचरण गृहस्थ से भिन्न होता है। इसलिए अधिक शौच का ध्यान रखने वाला व्यक्ति मुनि के जीवन को देखकर उससे घृणा कर सकता है। और इस कारण वह गृहस्थ साधु के कारण अपनी क्रियाओ को आगे-पीछे कर सकता है और साधु भी गृहस्थो के सकोच से अपनी आवश्यक क्रियाओ को यथासमय करने मे असमर्थ हो जाता है। इस तरह गृहस्थ के कारण साधु की साधना मे अन्तराय पडती है और साधु के कारण गृहस्थ के दैनिक कार्यो मे विघ्न होता है, इससे दोनो के मन मे चिन्ता एव एक-दूसरे के प्रति कुछ बुरे भाव भी आ सकते हैं। अत मुनि को गृहस्थ के साथ नही ठहरना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**मोय समायारे**' का पाठ भी विचारणीय है। वृतिकार ने इसका अर्थ कायिक मूत्र माना है। परन्तु, वृत्तिकार ने उसके आचरण करने के विशिष्ट कारण का भी उल्लेख नहीं किया है और उसके पीछे किसी तरह का विशेषण नहीं होने से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि वह मूत्र सामान्य है या विशिष्ट? मूत्र सामान्य की अपेक्षा से गो मूत्र का भी ग्रहण हो सकता है और उसे वैदिक एव लौकिक परम्परा मे भी अशुद्ध नहीं माना है।[२] इसके अतिरिक्त '**मोय**' शब्द के सस्कृत मे मोक, मोच और मोद तीन रूप बनते हैं। इस अपेक्षा से '**मोय समायारे**' की सस्कृत छाया '**मोद समाचार** ' बनेगी और इसका अर्थ होगा-प्रसन्नता पूर्वक स्नान का त्याग करने वाला। अर्थात्-ज्ञान के पवित्र सागर मे गोते लगाने वाला मुनि। महाभारत आदि ग्रन्थो मे भी मुनि के लिए बाह्य स्नान के स्थान मे अन्तर स्नान को महत्व दिया गया है। क्योकि पानी से केवल शरीर की शुद्धि होती है, आत्मा की शुद्धि नहीं होती।

---

१ इसका यह अर्थ नहीं है कि वह पानी से नफरत करता है या शरीर को अशुचि से आवृत्त रखता है। वह अशुचि दूर करने के लिए अचित्त जल का उपयोग भी करता है। परन्तु वह बिना किसी प्रयोजन के केवल शृगार के लिए स्नान आदि नहीं करता।

२ वैदिक परम्परा मे अशुद्धि को दूर करने तथा पाप आदि की निवृत्ति के लिए पचगव्य का पान करना श्रेष्ठ माना है और प्रसूता स्त्री को गोमूत्र का पान करा कर या गोमूत्र प्रधान पचगव्य से स्नान कराकर शुद्ध करने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

आत्मशुद्धि के लिए ज्ञान एव तप-त्याग का स्नान ही आवश्यक माना गया है[1]। इस तरह '**मोय**' का सस्कृत रूप मोद मान लेने पर अर्थ मे किसी तरह की असगति नहीं रहती है। उत्तराध्ययन सूत्र म भी '**मोय**' शब्द् का '**मोद**' के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। उसमे बताया गया है कि जैसे पक्षी स्वेच्छा पूर्वक आकाश मे उडाने भरता है, उसी तरह काम-भोग का परित्याग करके लघुभूत बना हुआ मुनि '**अमोयमाणा-प्रमोदमना**'[2] अर्थात् प्रसन्नता पूर्वक देश मे विचरण करे। इस तरह '**मोय**' शब्द का प्रसन्नता अर्थ ही अधिक सगत एव उपयुक्त प्रतीत होता है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावईहिं सद्धिं सं॰ इह खलु गाहवइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवे भोयणजाए उवक्खडिए सिया, अह पच्छा भिक्खुपडियाए असणं वा ४ उवक्खडिज्ज वा उवकरिज्ज वा, तं च भिक्खू अभिकंखिज्जा भुत्तए वा पायए वा, वियट्टित्तए वा अह भि॰ जं नो तह॰ ॥७३ ॥

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइणा सद्धिं संव॰ इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिन्नपुव्वाइं भवंति, अह पच्छा भिक्खुपडियाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिंदिज्ज वा किणिज्ज वा पामिच्चेज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उ॰ प॰, तत्थ भिक्खू अभिकंखिज्जा आयावित्तए वा पयावित्तए वा वियट्टित्तए वा, अह भिक्खू॰ जं नो तहप्पगारे॰ ॥७४ ॥

छाया– आदानमेतद् भिक्षो. गृहपतिभि सार्द्धं संवसतः, इह खलु गृहपतिना आत्मना स्वार्थं विरूपरूप भोजनजातं उपस्कृत स्यात् , अथ पश्चाद् भिक्षुप्रतिज्ञया अशन वा ४ उपस्कुर्यात् वा उपकुर्यात् वा तं च भिक्षु. अभिकाक्षेद् भोक्तु वा पातु वा विवर्तितु वा, अथ भिक्षु॰ यत् नो तथाप्रकारे उपाश्रये स्थानं वा ३ चेतयेत्॥ ७३ ॥

आदानमेतद् भिक्षो. गृहपतिना सार्द्धं सवसत·, इह खलु गृहपतिना आत्मना स्वार्थाय विरूपरूपाणि दारूणि भिन्नपूर्वाणि भवन्ति, अथ पश्चाद् भिक्षुप्रतिज्ञया विरूपरूपाणि दारुकाणि भिंद्याद् वा क्रीणीयाद् वा अपमिमीत दारुणा वा दारुपरिणामं कृत्वा अग्निकायं, उज्वालयेत् प्रज्वालयेत् वा तत्र भिक्षुः अभिकांक्षेत् आतापयितुं वा परितापयितुं वा, विवर्तितु वा, अथ भिक्षुः यत् तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानादि चेतयेत्-कुर्यात्॥ ७४ ॥

---

१ ज्ञान पाल परिक्षिसे ब्रह्मचर्य दयाम्भसि, स्नात्वाति विमले तीर्थे पाप पंकापहारिणि। –स्याद्वादमजरी, कारिका ११ (व्याख्या) तत्राभिषेक कुरु पाडुपुत्र । न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।

२ उत्तरा॰ अ॰ १४ गा॰ ४४

पदार्थ– **भिक्खुस्स**-भिक्षु के लिए। **आयाणमेयं**-यह एक और भी कर्म बन्ध का कारण है, जैसे कि। **गाहावईहिं सद्धिं**-गृहस्थो के साथ। **सवसमाणस्स**-बसते हुए को यथा। **इह खलु**-निश्चय ही इस उपाश्रय में। **गाहावइस्स**-गृहपति ने। **अप्पणो सयट्ठाए**-स्वय अपने लिए। **विरूवरूवे**-नाना प्रकार के। **भोयणजाए**-खाद्य पदार्थों को। **उवक्खडिए सिया**-तैयार किया है। **अह**-अथ-फिर। **पच्छा**-पश्चात्-पीछे से। **भिक्खुपडियाए**-भिक्षुओ के लिए अर्थात् उनके निमित्त। **असण वा ४**-चार प्रकार के अशनादिक आहार को। **उवक्खडिज्ज वा**-बनाता है अथवा। **उवकरिज्ज वा**-उनके लिए सामग्री एकत्रित करता है। **तं च**-और उस बनते हुए आहार को साधु। **भुत्तए वा**-खाना अथवा। **पायए वा**-पीना। **अभिकखिज्जा**-चाहते है और। **वियद्दित्तए वा**-उस आहार का अच्छी तरह से आस्वाद लेना चाहे। **अह भि०**-अत तीर्थंकरादि ने भिक्षुओ को पहले ही उपदेश किया है कि साधु इस प्रकार के उपाश्रय मे। **ज नो तह०**-न ठहरे।

गाहावइणा सद्धि-गृहस्थो के साथ। **सवसमाणस्स**-बसते हुए। **भिक्खुस्स**-भिक्षु को। **आयाणमेयं**-यह एक और भी कर्म बन्ध का हेतु हो सकता है, यथा। **इह खलु**-निश्चय ही उस स्थान मे। **गाहावइस्स**-गृहपति ने। **अप्पणो सयट्ठाए**-स्वय अपने लिए। **विरूवरूवाइ**-नाना प्रकार के। **दारुयाइ**-काष्ठ। **भिन्नपुव्वाइ भवंति**-जो भेदन करके पहले ही रखे हुए है। **अह पच्छा**-अथ फिर पश्चात् पीछे से। **भिक्खूपडियाए**-भिक्षु-साधु के लिए। **विरूवरूवाइ**-नाना प्रकार के। **दारुयाइ**-काष्ठो को। **भिंदिज्ज वा**-भेदन करे अथवा। **किणिज्ज वा**-मोल ले अथवा। **पामिच्चेज्ज वा**-किसी से उधार ले, फिर। **दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु**-काष्ठ से काष्ठ को सघर्षित करके। **अगणिकाय**-अग्नि को। **उ०**-उज्ज्वलित करे। **प०**-प्रज्वलित करे। **तत्थ**-वहां पर। **भिक्खू**-साधु। **आयावित्तए**-आताप लेना अथवा। **पयावित्तए वा**-विशेष रूप से आताप लेना और। **वियद्दित्तए वा**-अग्नि के आताप मे विशेष आसक्त होना। **अभिकखेज्जा**-चाहे तो। **अह भिक्खू०**-तीर्थंकरादि ने भिक्षु के लिए यह पहले उपदेश दिया है कि। **ज नो तहप्पगारे**-भिक्षु इस प्रकार के उपाश्रय मे स्थानादि न करे।

मूलार्थ—गृहस्थों के साथ निवास करते हुए भिक्षु के लिए यह भी एक कर्म बन्धन का कारण हो सकता है, जैसे कि-गृहस्थ अपने लिए नाना प्रकार का भोजन तैयार करके फिर साधु के लिए चतुर्विध आहार को तैयार करने एव उसके लिए सामग्री एकत्रित करने मे लगेगा, उस आहार को देखकर साधु भी उसका आस्वादन करना चाहेगा या उसमे आसक्त हो जाएगा। इसलिए तीर्थंकर भगवान ने पहले ही यह प्रतिपादन कर दिया है कि साधु को इस प्रकार के उपाश्रय मे नहीं ठहरना चाहिए।

इसी प्रकार गृहस्थो के साथ ठहरने से भिक्षु को एक यह भी दोष लगेगा कि गृहस्थ ने अपने लिए नाना प्रकार का काष्ठ-ईंधन एकत्रित कर रखा है, फिर वह साधु के लिए नाना प्रकार के काष्ठो का भेदन करेगा, मोल लेगा अथवा किसी से उधार लेगा, और काष्ठ से काष्ठ को सघर्षित करके अग्निकाय को उज्ज्वलित और प्रज्वलित करेगा, और उस गृहस्थ की तरह साधु भी शीत निवारणार्थ अग्नि का अताप लेगा और उसमें आसक्त हो जाएगा। इस लिए भगवान ने साधु के लिए ऐसे मकान मे ठहरने का निषेध किया है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत [illegible] सूत्रो मे यह बताया गया है कि यदि साधु गृहस्थ के साथ

ठहरेगा तो गृहस्थ अपने लिए भोजन बनाने तथा सर्दी निवारणार्थ ताप के लिए लकडी आदि की व्यवस्था कर चुकने के बाद अतिथि रूप मे ठहरे हुए साधु के लिए भोजन बनाने की सामग्री एकत्रित करेगा और उसके शीत को दूर करने के लिए लकडिया खरीदेगा, उसका छेदन-भेदन कराएगा। उसे ऐसा करते हुए देखकर साधु के भावो मे भी परिवर्तन आ सकता है और वह उस भोजन एव आताप मे आसक्त होकर सयम पथ से गिर भी सकता है। क्योकि आत्मा का विकास एव पतन भावो पर ही अधारित है। भावो के बनते एव बिगडते विशेष देर नहीं लगती है। जैसे अपस्मार (मृगी) का रोगी पानी को देखते ही मूर्छित होकर गिर पडता है। इसी तरह आत्मा मे सत्ता रूप से स्थित औदयिक भाव बाहर का निमित्त पाकर जागृत हो उठते हैं और आत्मा को सन्मार्ग के शिखर से पतन के गर्त्त मे गिरा देते हैं। इसलिए साधु को सदा सावधान रहना चाहिए और उसे सदा ऐसे निमित्तो से बचकर रहना चाहिए जिससे उसकी आत्मा पतन की ओर गतिशील हो। इसीलिए आगम मे यह आदेश दिया गया है कि साधु को गृहस्थ के साथ नहीं ठहरना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**गाहावइस्स**' पद मे तृतीया विभक्ति के अर्थ मे षष्ठी-विभक्ति का प्रयोग किया गया है और '**उवस्सए**' अर्थात् उपाश्रय शब्द का प्रयोग स्थानक के अर्थ मे नहीं, प्रत्युत मकान मात्र के अर्थ मे हुआ है। और जब हम प्रस्तुत पाठ का गहराई से अध्ययन करते है तो उपाश्रय का अर्थ गृहस्थो से युक्त **एव** भोजनशाला के निकटवर्ती स्थान विशेष पर ही स्पष्ट होता है। इसे अन्तरगृह भी कहते हैं और कल्पसूत्र मे साधु-साध्वी को अन्तरगृह मे ठहरने एव मल-मूत्र के त्याग करने आदि क्रियाओ का निषेध किया गया है और दशवैकालिक सूत्र मे भी अन्तरगृह मे निवास करने एव पर्यंक आदि पर बैठने का निषेध किया गया है।[१] इससे स्पष्ट होता है कि सयम की सुरक्षा के लिए मुनि को ऐसे मकान मे नही ठहरना चाहिए जिसमे गृहस्थ अपने परिवार सहित निवसित हो।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा॰ उच्चारपासवणेण उव्वाहिज्जमाणे, राओ वा वियाले वा गाहावइकुलस्स दुवारबाहं अवंगुणिज्जा, तेणे य तस्संधिचारी अणुपविसिज्जा, तस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ, एवं वइत्तए-अयं तेणो पविसइ वा नो वा पविसइ, उवल्लियइ वा नो वा॰, आवयइ वा नो वा॰, वयइ वा नो वा॰, तेण हडं अन्नेण हडं, तस्स हडं अन्नस्स हडं, अयं तेणे, अयं उवचरए अयं हंता, अयं इत्थमकासी, तं तवस्सिं भिक्खुं अतेणं तेणंति संकइ। अह भिक्खूणं पु॰ जाव नो ठा॰ ॥ ७५ ॥

छाया- स भिक्षुर्वा उच्चारप्रस्त्रवणेन उद्बाध्यमान. रात्रौ वा विकाले वा गृहपतिकुलस्य द्वारभागम् अपवृणुयात् स्तेनश्च तत्संधिचारी अनुप्रविशेत्, तस्य भिक्षो नो

१ सिज्जायरपिंड च आसदीपलियकए।
गिहतर निसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य। — दशवैकालिक सूत्र, ३,५।

कल्पते एवं वक्तुम्-अयं स्तेनः प्रविशति, वा नो वा प्रविशति उपलीयते वा नो वा॰ आपतति वा नो वा॰ वदति वा नो वा॰ तेन हृतं, अन्येन हृतं, तस्य हृत अन्यस्य हृतं अयं स्तेन. अयं उपचारकः अयं हन्ता अयमत्राकार्षीत्, तं तपस्विन भिक्षुं अस्तेनं स्तेनमिति शंकेत, अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टं यावन्नो स्थान चेतयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू-भिक्षु-साधु। उच्चारपासवणेण-मल-मूत्र से। उव्वाहिज्जमाणे-बाधित-पीड़ित होने से। राओ वा-रात्रि मे। वियाले वा-अथवा विकाल में। गाहावइकुलस्स-गृहपति के घर के। दुवारबाहं-द्वार को। अवंगुणिज्जा-खोल कर बाहर निकले। य-और फिर। तेणे-चोर। तस्संधिचारी-और छिद्र देखने वाला व्यक्ति। अणुपविसिज्जा-घर मे प्रवेश कर जाए तो। तस्स-उस। भिक्खुस्स-भिक्षु को। एवं-इस प्रकार। वइत्तुं-बोलना। नो कप्पइ-नहीं कल्पता, यथा। अय तेणो-यह चोर। पविसइ वा-प्रवेश कर रहा है। नो वा पविसइ-अथवा नहीं प्रवेश कर रहा है। उवल्लियइ वा-यह यहा छिप रहा है। नो वा॰-अथवा नहीं छिप रहा है। आवयइ वा-नीचे कूदता है। नो वा॰-अथवा नीचे नहीं कूदता है। वयइ वा-बोलता है। नो वा॰-अथवा नहीं बोलता है। तेण हडं-उसने चोरी की है। अन्नेण हडं-या अन्य ने चोरी की है। तस्स हडं-इसने उसका माल चुराया है। अन्नस्स हड-या अन्य का चुराया है। अय तेणे-यह चोर है। अयं उवचरए-यह उसका उपचारक-संरक्षक है। अयं हन्ता-यह मारने वाला है। अयं इत्थमकासी-इस चोर ने यहां यह काम किया। त-उस। तवस्सि-तपस्वी। भिक्खु-भिक्षु के प्रति। अतेण-जो चोर नहीं है। तेणंति-चोरपने की। संकइ-अशका करता है। अह भिक्खूणं-भिक्षुओ को। पु॰-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह उपदेश दिया है कि इस प्रकार के उपाश्रय मे साधु। जाव-यावत्। नो ठा॰-कायोत्सर्गादि न करे।

मूलार्थ—रात्रि मे अथवा विकाल मे साधु ने मल-मूत्रादि की बाधा होने पर गृहस्थ के घर का द्वार खोला और उसी समय कोई चोर या उसका साथी घर में प्रविष्ट हो गया तो उस समय साधु तो मौन रहेगा। वह हल्ला नहीं मचाएगा, कि यह चोर घर मे घुसता है, अथवा नहीं घुसता है, छिपता है, अथवा नहीं छिपता है, नीचे कूदता है अथवा नहीं कूदता है, बोलता है अथवा नहीं बोलता है, उसने चुराया है, अथवा अन्य ने चुराया है, उसका धन चुराया है, अथवा अन्य का धन चुराया है, यह चोर है, यह उसका उपचारक है, यह मारने वाला है, और इस चोर ने यहा यह कार्य किया है। और साधु के कुछ नहीं कहने पर उसे उस तपस्वी साधु पर जो वास्तव में चोर नहीं है, चोर होने का सन्देह हो जाएगा। इसलिए भगवान ने गृहस्थ से युक्त मकान मे ठहरने एवं कायोत्सर्ग का निषेध किया है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु रात्रि मे या विकाल मे मल-मूत्र का त्याग करने के लिए द्वार खोलकर बाहर आए और यदि उसी समय कोई चोर घर मे प्रविष्ट होकर छुप जाए और समय पाकर चोरी करके चला जाए। ऐसी स्थिति मे साधु उस चोर को चोर नहीं कह सकता है और न हो-हल्ला ही कर सकता है। वह उस चोर को उपदेश दे सकता है। यदि उसने साधु का उपदेश नहीं माना तो उसके चोरी करके चले जाने के बाद गृहस्थ को मालूम पडने पर उस साधु पर चोरी का सदेह हो जाएगा, अत साधु को ऐसे स्थान मे नहीं ठहरना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि जिस मकान मे मल-मूत्र के परिष्ठापन का योग्य स्थान न हो वहा साधु को नहीं ठहरना चाहिए तथा यह भी स्पष्ट होता है कि मल-मूत्र के त्याग के लिए साधु द्वार खोलकर जा सकता है एव वापिस आने पर बन्द भी कर सकता है।

इस सूत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि साधु को ऐसे मकान मे नहीं ठहरना चाहिए, जिसमे गृहस्थ का कीमती सामान पडा हो। इस तरह गृहस्थ के साथ ठहरने से साधु की साधना मे अनेक दोष आने की सभावना है। इसलिए साधु को गृहस्थ से युक्त मकान मे नहीं ठहरना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा से जं० तणपुंजेसु वा, पलाल-पुंजेसु वा सअंडे जाव ससंताणए, तहप्पगारे उ० नो ठाणं वा ३। से भिक्खू वा० से जं० तणपुं० पलाल० अप्पंडे जाव चेइज्जा ॥७६॥

छाया– स भिक्षुर्वा स यत० तृणपुंजेषु वा पलालपुजेषु वा साण्ड: यावत् ससन्तानक: तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थान वा ३। स भिक्षुर्वा स यत्० तृणपुजेषु वा पलालपुं० अल्पाण्डे यावत् चेतयेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-भिक्षु अथवा भिक्षुणी। **से**-वह। **ज०**-जो फिर उपाश्रय के सम्बन्ध मे जाने, जैसे कि-। **तणपुञ्जेसु वा**-तृण के समूह मे। **पलालपुञ्जेसु वा**-पलाल के समूह मे। **सअडे**-अण्डे। **जाव**- यावत्। **ससताणए**-मकड़ी के जाले है तो। **तहप्पगारे**-इस प्रकार के। **उ०**-उपाश्रय मे साधु। **नो ठाणं वा ३**-कायोत्सर्गादि क्रिया न करे। **से**-वह। **भिक्खू वा०**-भिक्षु-साधु या साध्वी। **से**-वह। **ज०**-उपाश्रय को जाने, जैसे कि। **तणपु०**-तृण का समूह। **पलाल०**-अथवा पलाल के समूह मे। **अप्पडे**-अडो से रहित है। **जाव**-यावत् मकड़ी आदि के जालो से रहित है तो इस प्रकार के उपाश्रय मे। **चेइज्जा**-कायोत्सर्गादि क्रिया करे एव ठहरे।

***मूलार्थ*—साधु अथवा साध्वी उपाश्रय के सबन्ध मे यह जाने कि यदि तृण एव पलाल का समूह अण्डो से युक्त है, अथवा मकड़ी के जालो से युक्त है तो इस प्रकार के उपाश्रय मे कायोत्सर्गादि न करे। वह भिक्षु यदि यह जाने कि यह उपर्युक्त प्रकार का उपाश्रय अण्डो से रहित यावत् मकड़ी के जालो से रहित है, तो इस प्रकार के उपाश्रय में कायोत्सर्गादि क्रियाएं कर सकता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि तृण और पलाल (घास) के पुजो से निर्मित्त उपाश्रय अण्डे आदि से युक्त हो तो साधु को वहा नहीं ठहरना चाहिए और न कायोत्सर्ग (ध्यान) ही करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि उस युग मे साधु गावो मे अधिक भ्रमण करते थे। क्योकि, घास-फूस की झोपडिए (मकान) प्राय. गाँवो मे ही मिलती हैं। और इस पाठ से यह भी ध्वनित होता है कि मकान के जिस भाग मे साधु को कायोत्सर्ग आदि क्रियाए करनी हो, उस भाग मे अण्डा एव त्रस जीव आदि न हो। दशवैकालिक सूत्र मे भी बताया गया है कि कायोत्सर्ग करते समय या अन्य समय मे मुनि के शरीर पर या वस्त्र-पात्र आदि पर ऊपर से त्रस जीव गिर गया हो तो मुनि उसे बिना किसी तरह

का कष्ट पहुचाए एकान्त स्थान मे छोड देवे।[1] इस तरह प्रस्तुत पाठ विधि और निषेध दोनो का परिबोधक है। जिस स्थान मे साधु को ठहरना हो, कायोत्सर्ग आदि क्रियाए करनी हो उस स्थान मे अडा आदि नहीं होना चाहिए।

साधु को किस स्थिति मे किस तरह के मकान मे नहीं ठहरना चाहिए, इस सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा अभिक्खणं साहम्मिएहिं उवयमाणेहिं नो उवइज्जा ॥७७॥

छाया– स आगन्तागारेषु, वा आरामागारेषु वा गृहपतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अभीक्ष्ण साधर्मिकै अवपतद्भि न अवपतेत्।

पदार्थ– **आगतारेसु**-गाव के बाहर स्थित धर्मशाला आदि जिसमे यात्री ठहरते है। **आरामागारेसु**-बगीचे आदि मे लोगो की विश्रान्ति के लिए बने हुए मकान मे। **गाहावइकुलेसु वा**-गृहपति के कुल मे। **परियावसहेसु वा**-तापस आदि के मठ मे, यदि। **साहम्मिएहिं**-अन्य मत के साधु-सन्यासी। **अभिक्खण**-बार-बार आते हो, **उवयमाणेहिं**-और ठहरते हो तो। **से**-वह निर्ग्रन्थ जैन मुनि, ऐसे स्थानो पर। **नो उवइज्जा**-मासकल्प आदि न करे।

मूलार्थ—**धर्मशाला, उद्यान मे बने हुए विश्रामगृह, गृहपति कुल एव तापस आदि के मठो मे जहा अन्य मत के साधु बार-बार आते-जाते हो, वहा जैन मुनि को मासकल्प नही करना चाहिए।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे धर्मशाला, विश्रामगृह, गृहपति के अतिथ्यालय एव तापस आदि के मठो मे यदि अन्य मत के साधुओ का अधिक आवागमन रहता हो तो साधु को ऐसे स्थानो मे मासकल्प नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि उनके अत्यधिक आवागमन से वहा का वातावरण शान्त नही रह पाएगा और उस कोलाहलमय वातावरण मे साधु एकाग्र एव शान्त मन से स्वाध्याय, ध्यान एव चिन्तन-मनन नही कर सकेगा। दूसरी बात यह है कि जैन मुनि की वृत्ति उनसे कठिन होने के कारण उनकी अधिक प्रतिष्ठा को देखकर वे उससे ईर्ष्या रखने लगेगे और उसे तग करने का भी प्रयत्न करेगे और इस कारण सक्लेश का वातावरण भी बन सकता है और उनके साथ अधिक परिचय होने से श्रद्धा मे विपरीतता आने की सभावना रहती है। इसलिए साधु को अन्य मत के भिक्षुओ के अधिक आवागमन वाले स्थान मे मासकल्प या चतुर्मास कल्प नहीं करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि साधु को ऐसे स्थानो मे परिस्थिति वश एक-दो दिन ठहरना पडे तो उसका निषेध नहीं है। प्रस्तुत पाठ से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग मे यात्रियो के ठहरने की सुविधा के लिए गाव के बाहर धर्मशालाए, विश्रामगृह एव मठ आदि होते थे और गाव या शहर मे गृहपतियो के अतिथ्यालय बने होते थे और उनमे बिना किसी जाति-पाति एव सम्प्रदाय या पथ भेद के सबको समान

---

१ दशवैकालिक सूत्र, ४।

रूप से ठहरने की सुविधा मिलती थी।

प्रस्तुत सूत्र मे '**साहम्मिएहिं**' पद का केवल साधर्मिक साधुओ के लिए नहीं, अपितु सभी साधुओ के लिए सामान्य रूप से प्रयोग किया गया है। अत प्रस्तुत प्रसग मे इसका अर्थ अन्य मत के साधु सन्यासी करना चाहिए। वृत्तिकार ने भी यही अर्थ किया है।

साधु को अपनी विहार मर्यादा मे काल का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, इस सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से आगंतारेसु वा ४ जे भयंतारो उडुबद्धियं वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणित्ता तत्थेव भुज्जो २ संवसंति अयमाउसो ! कालाइक्कंतकिरियावि भवति ॥७८॥

छाया– स आगन्तागारेषु वा ४ भयत्रातार ऋतुबद्ध वा वर्षावास वा कल्पमुपनीय तत्रैव भूय. २ संवसन्ति अयमायुष्मन् ! कालातिक्रान्तक्रियापि भवति।

पदार्थ– से-वह-भिक्षु। **आगतारेसु वा** ४-धर्मशाला आदि मे। **जे भयतारो** जो पूज्य भगवान। **उडुबद्धिय**-शीतोष्णकाल मे मासकल्पादि तथा। **वासावासिय वा**-वर्षाकाल-चातुर्मास। **कप्प**-कल्प की मर्यादा को। **उवाइणित्ता**-बिताकर। **तत्थेव**-वहीं पर। **भुज्जो** २-पुन पुन । **सवसति**-बिना कारण रहते है। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य! यह। **कालाइक्कतकिरियावि**-कालातिक्रान्त क्रिया। **भवति**-होती है।

मूलार्थ—**धर्मशाला आदि स्थानों मे जो मुनिराज शीतोष्ण काल मे मास कल्प एव वर्षाकाल मे चातुर्मासकल्प को बिताकर बिना कारण पुन वहीं पर निवास करते है तो वे काल का अतिक्रमण करते है।**

हिन्दी विवेचन - प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि जिस स्थान मे साधु ने मास कल्प या वर्षावासकल्प किया हो उसे उसके बाद उस स्थान मे बिना कारण के नहीं ठहरना चाहिए। यदि बिना किसी विशेष कारण के वे उस स्थान मे ठहरते हैं तो कालातिक्रमण दोष का सेवन करते हैं। क्योकि मर्यादा से अधिक समय तक एक स्थान मे रहने से गृहस्थो के साथ अधिक घनिष्ठ परिचय हो जाता है और इससे उनके साथ राग-भाव हो जाता है और इस कारण आहार मे भी उद्गमादि दोषो का लगना सम्भव है। और दूसरी बात यह है कि एक ही स्थान पर रुक जाने से अन्य गावो मे धर्म प्रचार भी नहीं होता है। अत सयम शुद्धि एव शासनोन्नति की दृष्टि से साधु को मर्यादित काल से अधिक नहीं ठहरना चाहिए। क्योकि प्रत्येक क्रिया काल-मर्यादा मे ही होनी चाहिए। इससे जीवन की व्यवस्था बनी रहती है और तप-सयम भी निर्मल रहता है। आगम मे एक प्रश्न किया गया है कि काल की प्रतिलेखना करने से अर्थात् कालमर्यादा का पालन करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ? इसका उत्तर देते हुए श्रमण भगवान महावीर ने फरमाया है कि काल मर्यादा का सम्यक्तया परिपालन करने वाला व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्मों की निर्जरा करता है[१]। इसका कारण यह है कि प्रत्येक क्रिया समय पर करने के कारण

१ कालपडिलेहणयाए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कालपडिलेहणाए ण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ। – उत्तराध्ययन सूत्र, २९, १५।

वह स्वाध्याय, ध्यान एव चिन्तन-मनन के समय का उल्लघन नहीं करेगा और स्वाध्याय आदि के करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय या क्षयोपशम होगा और उसके ज्ञान मे अभिवृद्धि होगी। और समय पर क्रियाए न करके आगे-पीछे करने से अधिक स्वाध्याय आदि के लिए भी व्यवस्थित समय नहीं निकाल सकेगा। अत मुनि को मास कल्प एव वर्षावासकल्प के पश्चात् बिना किसी कारण के काल का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए

अब सूत्रकार उपस्थान क्रिया के सम्बन्ध मे कहते हैं

मूलम्– से आगंतारेसु वा ४ जे भयंतारा उडुबद्धियं वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणावित्ता तं दुगुणतिगुणेण वा अपरिहरित्ता तत्थेव भुज्जो॰ संवसंति, अयमाउसो ! उवट्ठाणकिरिया यावि भवति ॥७९ ॥

छाया– स आगन्तागारेषु वा ४ ये भयंतार:(भयत्रातार·) ऋतुबद्धं वा वर्षावास वा कल्पमुपनीय तं द्विगुणत्रिगुणेन वा अपरिहृत्य तत्रैव भूय संवसन्ति, अयमायुष्मन् ! उपस्थानक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **से**-वह-भिक्षु। **आगतारेसु वा ४**-धर्मशाला आदि स्थानो मे। **जे भयतारो**-पूज्य मुनिराज। **उडुबद्धिय**-शीतोष्ण काल में मासकल्प तथा। **वासावासिय वा**-वर्षाऋतु मे चातुर्मास। **कप्प**-कल्प को। **उवाइणित्ता**-बिता कर। **तं**-वह अन्यत्र। **दुगुणतिगुणेण वा**-द्विगुण त्रिगुण काल को। **अपरिहरित्ता**-न बिता कर। **तत्थेव**-वहीं। **भुज्जो॰**-पुन । **संवसंति**-निवास करते है। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **उवट्ठाण-किरिया यावि**-उपस्थान क्रिया। **भवति**-होती है, अर्थात् इसे उपस्थान क्रिया कहते है।

मूलार्थ—**हे आयुष्मन् (शिष्य) ! जो साधु धर्मशाला आदि स्थानो मे, शेषकाल मे मास कल्प आदि और वर्षा काल मे चातुर्मासकल्प को बिताकर अन्य स्थानों मे द्विगुण या त्रिगुण काल को न बिताकर जल्दी ही फिर उन्हीं स्थानो मे निवास करते है, तो उन्हे उपस्थान क्रिया लगती है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु-साध्वी ने जिस स्थान मे मास कल्प या वर्षावासकल्प किया है, उससे दुगुना या तिगुना काल व्यतीत किए बिना उक्त स्थान मे फिर से मास या वर्षावास कल्प नहीं करना चाहिए। यदि कोई साधु-साध्वी अन्य क्षेत्र मे मर्यादित काल बिताने से पहले पुन उस क्षेत्र मे आकर मास या वर्षावास कल्प करते हैं तो उन्हे उपस्थान क्रिया लगती है। इससे स्पष्ट है कि जिस स्थान मे एक महीना ठहरे हो उस स्थान पर दो या तीन महीने अन्य क्षेत्रो मे लगाए बिना मास कल्प करना नहीं कल्पता। इसी तरह जहा चातुर्मास किया है उस क्षेत्र मे दो या तीन वर्षावास अन्य क्षेत्रो मे किए बिना पुन· वर्षावास करना नहीं कल्पता। इस प्रतिबन्ध का कारण यह है कि नए-नए क्षेत्रो मे घूमते रहने से साधु का सयम भी शुद्ध रहता है और अनेक क्षेत्रो को उनके उपदेश का लाभ भी मिलता है। और अनेक प्राणियो को आत्म विकास करने का अवसर मिलता है। मुनियो का आवागमन कम होने से कई बार लोगो की श्रद्धा मे शिथिलता एव विपरीतता भी आ जाती है। नन्दन-मणियार का उदाहरण हमारे सामने है। वह व्रतधारी श्रावक था, परन्तु साधुओ का सपर्क कम रहने से, साधुओ का दर्शन न होने से

तथा अन्य धर्म के विचारको एव भिक्षुओ का सपर्क रहने से उसकी श्रद्धा मे विपरीतता आ गई थी[१]। इसी तरह भगवान पार्श्वनाथ के पास से श्रावक व्रत स्वीकार करने के बाद सोमल ब्राह्मण को साधुओ का सपर्क नहीं मिला और परिणाम स्वरूप वह भी पथभ्रष्ट हो गया था[२]। इस लिए साधुओ को किसी स्थान विशेष से बधकर नहीं रहना चाहिए, प्रत्युत उन्हे समभाव पूर्वक सभी क्षेत्रो को सभालते रहना चाहिए। इससे उनकी साधना भी शुद्धरूप से गतिशील रहती है और लोगो की श्रद्धा एव चारित्र मे भी अभिवृद्धि होती है।

अब तृतीय अभिक्रान्त क्रिया का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया सड्ढा भवंति, तंजहा-गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा तेसिं च णं आयारगोयरे नो सुनिसंते भवइ, तं सद्दहमाणेहिं, पत्तियमाणेहिं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ २अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तंजहा-आएसणाणि वा आयतणाणि वा देवकुलाणि वा सहाओ वा पवाणि वा पणियगिहाणि वा पणियसालाओ वा जाणगिहाणि वा जाणसालाओ वा सुहाकम्मंताणि वा दब्भकम्मंताणि वा वद्धकं॰ बक्कयकं॰ इंगालकम्मं॰ कट्ठक॰ सुसाणक॰ सुण्णागारगिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणकम्मंताणि वा भवणगिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा तेहिं उवयमाणेहिं उवयंति अयमाउसो ! अभिक्कंतकिरिया यावि भवइ ३ ॥८०॥

छाया– इह खलु प्राचीन वा ४ सन्ति एकका श्राद्धा भवन्ति, तद्यथा-गृहपतिर्वा यावत् कर्मकर्यो वा तेषां च आचारगोचर. न सुनिशान्तो भवति, तत् श्रद्दधानै प्रतीयमानै. रोचमानै. बहव. श्रमण-ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-वनीपकान् समुद्दिश्य तत्र २ अगारिभिः अगाराणि चेतितानि भवन्ति, तद्यथा– आदेशनानि वा आयतनानि वा देवकुलानि वा सभा वा प्रपा वा पण्यगृहाणि वा पण्यशाला. वा यानगृहाणि वा यानशाला वा सुधाकर्मान्तानि वा दर्भकर्मान्तानि वा वर्धकर्मान्तानि वा वल्कजकर्मान्तानि वा अंगारकर्मान्तानि वा काष्ठकर्मान्तानि वा श्मशानकर्मान्तानि वा शून्यागारागिरि-कदर शान्ति-शैलोपस्थानकर्मान्तानि वा भवनगृहाणि वा ये भयत्रातार. तथाप्रकाराणि आदेशनानि वा यावत् गृहाणि वा तै. अवपतद्भि. अवपतन्ति अयमायुष्मन् । अभिक्रान्तक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– इह-प्रज्ञापक की अपेक्षा से। खलु-वाक्यालकार मे है। पाईण-पूर्वादि दिशाओ मे।

---

१ ज्ञाता सूत्र, अध्या॰ १३।

२ पुष्फिया सूत्र।

संतेगइया-कई एक। **सड्ढा भवति**-श्रद्धालु गृहस्थ होते है। **तजहा**-यथा। **गाहावई वा**-गाथापति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-दासियां। **णं**-वाक्यालकार मे है। **तेसि च**-उन्होने। **आयारगोयरे**-साधु का आचार-विचार। **नो सुनिसंते**-भली-भाति श्रवण नहीं किया। **भवइ**-है, किन्तु उपाश्रय आदि का दान देने से स्वर्गादि का श्रेष्ठ फल मिलता है यह सुन रखा है। **त**-उसकी। **सद्दहमाणेहिं**-श्रद्धा करने से। **पत्तियमाणेहिं**-प्रतीति करने से। **रोयमाणेहिं**-रूचि करने से। **बहवे**-बहुत से। **समण**-शाक्यादि श्रमण। **माहण**-ब्राह्मण। **अतिहि**-अतिथि। **किवण**-कृपण। **वणीमग**-दरिद्र-भिखारी इनको। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके। **आगारीहिं**-गृहस्थो ने। **तत्थ तत्थ**-जहा-तहा। **आगाराइ**-अपने और श्रमण आदि के लिए घर एव। **चेइयाइ भवति**-उपाश्रय बनाए हुए है। **तजहा**-जैसे कि। **आएसणाणि वा**-लुहार आदि की शाला। **आयतणाणि वा**-धर्मशाला। **देवकुलाणि वा**-देवमदिर-देहरा। **सहाओ वा**-सभाभवन। **पवाणि वा**-प्रपा-पानी पिलाने का स्थान-प्याऊ आदि। **पणियगिहाणि वा**-दुकान। **पणियसालाओ वा**-पुण्यशाला-मालगोदाम आदि। **जाणगिहाणि वा**-रथ शाला-जहा रथ आदि ठहराए जाते है। **जाणसालाओ वा**-यानशाला-जहां रथ आदि यान बनाए जाते है। **सुहाकम्मंताणि वा**-चूने का कारखाना। **दब्भकम्मंताणि वा**-जहा कुशा की वस्तुए बनाई जाती है। **बद्धक०**-जहा चमड़े की बाध बनाई जाती है। **बक्कयक०**-जहा छाल आदि तैयार की जाती है। **इगालकम्म०**-जहा कोयले बनाए जाते है। **कट्ठक०**-जहा काठ आदि घड़ा जाता है। **सुसाणक०**-जहाँ श्मशान मे कूपादि बनाए जाते है। **सुण्णागार**-शून्यागार-शून्यगृह। **गिरिकदर**-पहाड़ के ऊपर बने हुए घर और गुफा आदि। **सति**-शान्ति कर्म के लिए बने हुए मन्दिर। **सेलोवट्ठाण कम्मताणि वा**-पर्वत-भवन, पाषाणमण्डप। **भवणगिहाणि वा**-तलघर इत्यादि। **जे भयतारो**-जो पूज्य साधु। **तहप्पगाराइं**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि वा जाव गिहाणि**-लुहारशाला आदि को। **तेहिं उवयमाणेहिं**-अन्य मत के भिक्षुओ या गृहस्थो ने भोग लिया है और उन स्थानो मे। **उवयति**-साधु ठहरते है तो। **आउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य! **अय**-यह। **अभिक्कतकिरिया**-अभिक्रान्तक्रिया। **भवइ**-होती है अर्थात् इस प्रकार के स्थानो मे उतरने से साधु को कोई दोष नहीं लगता है।

मूलार्थ—हे आयुष्मन् शिष्य! इस ससार मे पूर्वादि दिशाओ मे कई व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति से युक्त होते हैं। जैसे कि-गृहपति यावत् उनके दास-दासिया। उन्होंने साधु का आचार और व्यवहार तो सम्यक्तया नहीं सुना है परन्तु यह सुन रखा है कि उन्हे उपाश्रय आदि का दान देने से स्वर्गादि का फल मिलता है और इस पर श्रद्धा, विश्वास एव अभिरुचि रखने के कारण उन्होने बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदि का उद्देश्य करके तथा अपने कुटुम्ब का उद्देश्य रख कर अपने-अपने गावो या शहरो मे उन गृहस्थो ने बड़े-बड़े मकान बनाए है। जैसे कि लोहकार की शालाएं, धर्मशालाए, देवकुल, सभाएं, प्रपाए, प्याऊ, दुकाने, मालगोदाम, यानगृह, यानशालाए, चूने के कारखाने, कुशा के कारखाने, बर्ध के कारखाने, बल्कल के कारखाने, कोयले के कारखाने, काष्ठ के कारखाने, श्मशान भूमि मे बने हुए मकान, शून्यगृह, पहाड़ के ऊपर बने हुए मकान, पहाड़ की गुफा शान्तिगृह, पाषाण मण्डप भूमिघर-तहखाने इत्यादि और इन स्थानो में श्रमण-ब्राह्मणादि अनेक बार ठहर चुके हैं। यदि ऐसे स्थानो मे जैन भिक्षु भी ठहरते है तो उसे अभिक्रान्त क्रिया कहते है अर्थात् साधु को ऐसे मकान मे ठहरना कल्पता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु के आचार एव व्यवहार से अपरिचित श्रद्धा-निष्ठ, भद्रपरिणामो वाले गृहस्थो ने शाक्य आदि अन्यमत के भिक्षुओ के ठहरने के लिए या अपने व्यवसाय आदि के लिए कुछ मकान बनाए हैं और वे मकान अन्यमत के साधु-सन्यासियो एव गृहस्थो द्वारा अभिक्रान्त हो चुके हैं अर्थात् भोग लिए गए हैं तो साधु उसमे ठहर सकता है और उसकी इस वृत्ति को अभिक्रान्त क्रिया कहा गया है। अन्य भिक्षुओ एव गृहस्थो द्वारा मकान के अभिक्रान्त होने की क्रिया के आधार पर ही इस क्रिया का नाम अभिक्रान्त क्रिया रखा गया है।

प्रस्तुत पाठ मे अभिव्यक्त किए गए मकानो के नाम से उस युग मे चलने वाले विविध व्यापारो का स्पष्ट परिचय मिलता है। और यह भी स्पष्ट होता है कि उस युग मे देवी-देवताओ के मन्दिर, भिक्षुओ के लिए मठ, धर्मशालाए एव पहाडो पर विश्रामगृह तथा गुफाए बनाने की परम्परा रही है। वर्तमान मे उपलब्ध अनेक विशाल गुफाओ से-जिनमे रहने के लिए प्रकोष्ठ भी बने हैं, उस युग की प्रवृत्तियो का स्पष्ट परिज्ञान होता है।

'**सड्ढा**' शब्द का वृत्तिकार ने '*श्रावका· वा प्रकृति भद्रका अर्थात् भद्र प्रकृति के श्रावक*' अर्थ किया है। परन्तु, मूल पाठ मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ऐसे श्रदालु भक्त जो साध्वाचार से अपरिचित है। इससे स्पष्ट होता है कि वे श्रद्धालु व्यक्ति श्रावक नहीं हो सकते। क्योकि श्रावक साध्वाचार से अपरिचित नही हो सकता, अत वृत्तिकार का अर्थ मूलपाठ से सगत प्रतीत नहीं होता।

इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि साधु को निर्दोष एव सीधे-सादे मकानो मे ठहरना चाहिए। जिससे उनकी साधना मे किसी तरह का दोष न लगे। इसी कारण आगम मे मनोहर एव सुसज्जित मकानो मे तथा गृहस्थ के साथ ठहरने का निषेध किया गया है। जितना एकान्त, सादा एव निर्दोष स्थान होगा जीवन मे उतनी ही अधिक समाधि एव शान्ति रहेगी। इसलिए साधक को बगीचो मे, श्मशान एव शून्य गृहो मे ठहरने का भी आदेश दिया गया है[१]। और इस पाठ से भी स्पष्ट होता है कि उस युग मे श्मशान, जगल एव गिरिकन्द्राओ मे भी स्थान बने होते थे, जिनमे वानप्रस्थ सन्यासी निवास किया करते थे और ऐसे निर्दोष एव शान्त वातावरण वाले स्थानो मे जैन साधु भी ठहर जाते थे और ऐसे स्थान उनकी आत्मसमाधि एव चिन्तन मे सहायक होते थे।

अब अनभिक्रान्त क्रिया का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इह खलु पाईणं वा जाव रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं० आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराणि

---

१ इदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइ निवारेउ, कामरागविवड्ढणे॥
सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व इक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा, वास तत्थाभिरोयए॥

– (उत्तराध्ययन सूत्र) अ० ३५, ५-६।

आएसणाणि जाव गिहाणि वा तेहिं अणोवयमाणेहिं उवयंति अयमाउसो ! अणभिक्कंतकिरिया यावि भवइ ॥८१॥

छाया– इह खलु प्राचीनं वा यावत् रोचमानैः बहून् श्रमण-ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-वनीपकान् समुद्दिश्य तत्र तत्र अगारिभिः अगाराणि चेतितानि भवन्ति, तद्यथा-आदेशनानि वा यावत् भवनगृहाणि वा, ये भयत्रातार. तथाप्रकाराणि आदेशनानि यावद् गृहाणि वा तै· अनवपतद्भिः अवपतन्ति, अयमायुष्मन् ! अनभिक्रान्तक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **इह**-इस ससार मे। **खलु**-निश्चय ही। **पाईण**-पूर्वादि दिशाओ मे जो श्रद्धालु गृहस्थ रहते हैं, साधु क्रिया को नहीं जानते हैं परन्तु बसती दान का स्वर्गफल उन्होने सुना है और उस पर। **जाव**-यावत् श्रद्धा और। **रोयमाणेहिं**-रूचि करने से। **बहवे**-बहुत से। **समणमाहणअतिहिकिवणवणीमए**-शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपकों को। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके। **तत्थ तत्थ**-जहा तहा। **अगारीहिं**-उन-गृहस्थों ने। **अगाराइं**-गृह। **चेइयाइ**-बड़े विशाल रूप मे बनाए है। **त०**-जैसा कि। **आएसणाणि**-लोहकार शाला। **जाव**-यावत्। **भवणगिहाणि**-तलघर आदि। **जे**-जो। **भयतारो**-पूज्य मुनिराज। **तहप्प०**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि**-लोहकार शाला। **जाव**-यावत्। **गिहाणि**-तलघरो मे जो कि। **तेहिं**-उन गृहस्थो और शाक्यादि श्रमणो से। **अणोवयमाणेहिं**-उपयोग मे नहीं लिए गए है। **उवयति**-ठहरते है तो। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **अणभिक्कंतकिरिया यावि भवइ**-अनभिक्रान्त क्रिया है।

मूलार्थ—हे आयुष्मन् शिष्य ! ससार में बहुत से श्रद्धालु गृहस्थ ऐसे है जो साधु के आचार विचार को नहीं जानते हैं, परन्तु बसती दान के स्वर्गादि फल को जानते है। अस्तु , उन लोगो ने उक्त स्वर्ग के फल पर श्रद्धा और अभिरुचि करते हुए शाक्यादि श्रमणो का उद्देश्य करके लोहकार शाला यावत् तलघर आदि बनाए है। यदि ये लोहकारशाला यावत् तलघर आदि स्थान, गृहस्थो ने तथा शाक्यादि श्रमणो ने अपने उपभोग मे नहीं लिए हैं, अर्थात् बनने के बाद वे खाली ही पड़े रहे है। ऐसे स्थानो में यदि जैन साधु ठहरते है तो उन्हे अनभिक्रान्त क्रिया लगती है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे पूर्व सूत्र मे अभिव्यक्त की गई बात को दोहराते हुए कहा गया है कि यदि किसी श्रद्धालु गृहस्थ द्वारा शाक्य आदि श्रमणो एव अपने उपभोग के लिए बनाए गए स्थानो मे वे अन्यमत के श्रमण एव गृहस्थ ठहरे नही हैं, उन्होने उस मकान को अपने उपभोग मे नहीं लिया है, तो जैन साधु को वहा नहीं ठहरना चाहिए। इसमे आरम्भ आदि के दोष की दृष्टि के अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि यदि कालान्तर मे उस मकान मे कोई उपद्रव हो गया या उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ तो लोगो मे यह अपवाद फैल सकता है कि इसमे सबसे पहले जैन मुनि ठहरे थे। अत इस तरह की भ्रान्ति न फैले इस दृष्टि से भी साधु को पुरुषान्तरकृत मकान मे ही ठहरना चाहिए।

अब वर्ज्याभिधान क्रिया का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इह खलु पाईणं वा ४ जाव कम्मकरीओ वा, तेसिं च णं एवं

वुत्तपुव्वं भवइ- जे इमे भवंति समणा भगवंतो जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ, नो खलु एएसिं भयंताराणं कप्पइ आहाकम्मिए उवस्सए वत्थए, से जाणिमाणि अम्हं अप्पणो सयट्ठाए चेइयाइं भवंति, तं-आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा, सव्वाणि ताणि समणाणं निसिरामो, अवियाइं वयं पच्छा अप्पणो सयट्ठाए चेइस्सामो, तं-आएसणाणि वा जाव०, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म जे भयंतारो तहप्प० आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति, अयमाउसो ! वज्जकिरिया यावि भवइ ॥८२ ॥

छाया– इह खलु प्राचीन वा ४ यावत् कर्मकर्यो वा तेषा च एवमुक्त-पूर्वं भवति- ये इमे भवति श्रमणाः भगवन्तो यावत् उपरता. मैथुनाद् धर्मात्, नो खलु एतेषा भयत्रातृणा कल्पते आधाकर्मिक उपाश्रये वसितु, अथ यानि इमानि अस्माभि. आत्मन. स्वार्थाय चेतितानि भवन्ति, तद्यथा-आदेशनानि वा यावत् गृहाणि वा सर्वाणि तानि श्रमणेभ्यो निसृजाम । अपि च वयं पश्चाद् आत्मनः स्वार्थाय करिष्यामः। तद्यथा आदेशनानि वा यावत्० एतत् प्रकार निर्घोष श्रुत्वा निशम्य ये भयत्रातार. तथाप्रकाराणि आदेशनानि वा यावत् गृहाणि वा उपागच्छन्ति इतरेतरेषु प्राभृतेषु वर्तन्ते अयमायुष्मन् ! वर्ज्यक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **इह**-इस ससार मे। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **पाईण ४**-पूर्वादि दिशाओ मे कई एक श्रद्धालु व्यक्ति होते है यथा-। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ**-दासी आदि वे सब। **एव वुत्तपुव्व भवइ**-वे परस्पर ऐसा कहते है। **जे**-जो। **इमे**-ये। **समणा**-श्रमण। **भगवतो**-भगवान्। **जाव**-यावत्। **मेहुणाओ धम्माओ**-मैथुन धर्म से। **उवरया**-उपरत हैं। **खलु**-पूर्ववत्। **एएसि**-इन। **भयंताराण**-भगवन्तों को। **आहाकम्मिए**-आधाकर्मिक। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **वत्थए**-वसना। **नो कप्पइ**-नहीं कल्पता है। **से**-वह। **जाणि**-जो। **इमाणि**-ये। **अम्हं**-हमने। **अप्पणो**-अपने। **सयट्ठाए**-निजी प्रयोजन के लिए। **चेइयाइं भवति**-ये विशाल मकान बनाए है। **त०**-जैसे कि। **आएसणाणि वा**-लोहकारशाला। **जाव**-यावत्। **गिहाणि**-तलघर आदि। **ताणि**-वे। **सव्वाणि**-सब। **समणाणं**-इन श्रमणो के लिए। **निसिरामो**-दे देते है। **अवियाइ**-अपि च। **वय**-हम। **पच्छा**-बाद मे। **अप्पणो सयट्ठाए**-अपने लिए और मकान। **चेइस्सामो**-बना लेगे। **तं०**-जैसे कि। **आएसणाणि**-लोहकार शाला आदि। **जाव**-यावत् तलघर आदि। **एयप्पगारं**-इस प्रकार के। **निग्घोस**-निर्घोष-वचन को। **सुच्चा**-सुनकर। **निसम्म**-हृदय मे विचार कर। **जे**-जो। **भयतारो**-मुनिराज। **तहप्पगा०**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि**-लोहकारशाला। **जाव**-यावत्। **गिहाणि वा**-तलघर आदि मे। **उवागच्छंति**-आकर ठहरते है और। **इयराइयरेहिं पाहुडेहिं**-छोटे-बड़े दिए हुए घरो को। **वट्टति**-वर्तते है-उपयोग मे लाते है। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य। **वज्जकिरिया यावि भवइ**-यह वर्ज्य क्रिया होती है।

मूलार्थ—संसार में पूर्वादि दिशाओं मे बहुत से ऐसे श्रद्धालु गृहस्थ यावत् दास-दासी

अनेक व्यक्ति हैं जो साधु के आचार-विचार को जानते है, फलत. परस्पर बातचीत करते हुए कहते है कि-ये पूजनीय जैन साधु मैथुन धर्म से सर्वथा उपरत है एवं सावद्य क्रियाओं से विरक्त हैं। अत. इन्हें आधाकर्मिक- आधाकर्म दोष से दूषित उपाश्रय मे बसना नहीं कल्पता है। अस्तु, हमने अपने लिए जो लोहकार शाला आदि मकान बनाए हैं, वे सब इन श्रमणों को दे देते है। और हम अपने लिए दूसरे नए लोहकार शाला आदि मकान बना लेगे। गृहस्थों के उक्त निर्घोष को सुनकर तथा समझ कर भी जो मुनि -साधु तथा प्रकार के छोटे-बड़े लोहकार शाला आदि, गृहस्थो द्वारा दिए गए मकानों में उतरते है तो हे आयुष्मन् शिष्य ! उन्हे वर्ज्यक्रिया लगती है, अर्थात् जो साधु ऐसे स्थानो मे ठहरता है उसे वर्ज्यक्रिया का दोष लगता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जो श्रद्धालु गृहस्थ साध्वाचार से परिचित हैं, वे अपने-अपने परिजनो को बताते है कि ये जैन साधु आधाकर्म आदि दोष युक्त उपाश्रय मे नहीं ठहरते हैं। अत हम अपने लिए बनाए हुए मकान इन्हे ठहरने को दे देते हैं। अपने रहने के लिए दूसरा मकान बना लेगे। इस तरह के विचारो को सुनकर साधु को उस मकान मे नहीं ठहरना चाहिए। यदि यह जानने के पश्चात् भी वह उस मकान मे ठहरता है तो उसे वर्ज्यक्रिया लगती है।

स्थानाग सूत्र मे '**वज्ज**' शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरि ने लिखा है– '**वज्जंति-वर्ज्यंति इतिवर्ज्यं, अवद्यं व अकार लोपात् वज्रवत् वज्र वा गुरुत्वात् हिंसा नृतादि पाप कर्म**' अर्थात् 'वज्र की तरह भारी हिसा, झूठ आदि पापो को वर्ज्य कहते हैं। और तत्सम्बन्धी क्रिया को वर्ज्य क्रिया कहते हैं।' इस अपेक्षा से ५ आश्रव वज्र या वर्ज्य हैं। अत साधु के निमित्त इन दोषो से आहार या उपाश्रय यदि बनाया गया हो और साधु उसे जानते हुए भी उसका उपभोग कर रहा हो तो उसे वर्ज्य दोष लगता है। अत साधु को ऐसे मकान मे ठहरना नहीं कल्पता।

अब महावर्ज्य क्रिया का स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया सड्ढा भवंति, तेसिं च णं आयारगोयरे जाव तं रोयमाणेहिं बहवे समणमाहण जाव वणीमगे पगणिय २ समुद्दिस्स तत्थ तत्थ आगारिहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं०-आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं अयमाउसो ! महावज्जकिरियायावि भवइ ॥८३॥

छाया– इह खलु प्राचीनं वा ४ सन्ति एकका: श्राद्धा भवन्ति, तेषां च आचारगोचर: यावत् तद् रोचमानै बहून श्रमणब्राह्मणान् यावत् वनीपकान् प्रगणय्य प्रगणय्य समुद्दिश्य अगारिभि अगाराणि कृतानि भवन्ति, तद्यथा-आदेशनानि वा यावद् गृहाणि वा ये भयत्रातार. तथाप्रकाराणि आदेशनानि वा यावद् गृहाणि वा उपागच्छन्ति इतरेतरेषु प्राभृतेषु), अयमायुष्मन्, महावज्रक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **इह**-इस ससार मे। **खलु**-वाक्यालकार सूचक अव्यय है। **पाईणं वा ४**-पूर्वादि दिशाओ मे। **एगइया**-कई एक। **सड्ढा**-श्रद्धा वाले गृहस्थ। **भवंति**-रहते है। **तेसिं च णं**-उन्होने। **आयारगोयरे**-आचार-विचार। **जाव**-यावत्। **त**-उसके स्वर्गादि फल की। **रोयमाणेहिं**-रुचि करने से। **बहवे**-बहुत से। **समणमाहण**-श्रमण और ब्राह्मण। **जाव**-यावत्। **वणीमगे**-भिखारी आदि को। **पगणिय पगणिय**-गिन-गिन कर और। **समुद्दिस्स**-उनको उद्देश्य करके। **तत्थ तत्थ**-जहा तहा। **अगारिहिं**-गृहस्थो ने। **अगाराइं**-कई मकान। **चेइयाइं भवंति**-बनाए हैं। **तंजहा**-जैसे कि। **आएसणाणि वा**-लोहकारशाला आदि। **जाव**-यावत्। **गिहाणि वा**-गृह-तलघर आदि। **जे भयतारो**-जो पूज्य मुनिराज। **तहप्पगाराइ**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि वा**-लोहकार शाला आदि। **जाव**-यावत्। **गिहाणि**-गृहो मे। **इयराइयरेहिं**-छोटे-बड़े। **पाहुडेहिं**-प्राभृत स्वरूप दिए गए उपाश्रयो मे। **उवागच्छंति**-आते है और रहते है। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **महावज्जकिरिया यावि भवइ**-महावर्ज्य क्रिया होती है।

***मूलार्थ*—इस ससार मे पूर्वादि दिशाओ मे बहुत से ऐसे श्रद्धालु गृहस्थ है जो साधु (जैन मुनि) के आचार-विचार को सम्यक्तया नहीं जानते है, परन्तु साधु को बसती दान देने के स्वर्गादि फल को सम्यक्तया जानते है और उस पर श्रद्धा-विश्वास तथा अभिरुचि रखते है। उन गृहस्थो ने बहुत से श्रमण, ब्राह्मण यावत् भिखारियों को गिन-गिन कर तथा उनका लक्ष्य करके लोहकार शाला आदि विशाल भवन बनाए है। जो पूज्य मुनिराज तथाप्रकार के छोटे-बड़े और गृहस्थों द्वारा सहर्ष भेट किए गए उक्त लोहकार शाला आदि गृहो में आकर ठहरते है तो हे आयुष्मन् शिष्य ! यह उनके लिए महावर्ज्य क्रिया होती है, अर्थात् उनको यह क्रिया लगती है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि कुछ श्रद्धालु लोग साध्वाचार से अनभिज्ञ हैं, परन्तु वे साधु को मकान का दान देने मे स्वर्ग आदि की प्राप्ति के फल को जानते हैं और इस कारण उन्होने श्रमण, भिक्षु आदि को लक्ष्य मे रखकर उनके ठहरने के लिए मकान बनाए हैं। साधु को ऐसे मकान मे नहीं ठहरना चाहिए, यदि वह ऐसे मकानो मे ठहरता है तो उसे महावर्ज्य दोष लगता है। इस पर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि गृहस्थ ने शाक्य आदि श्रमणो के लिए मकान बनाया है और वे उस मकान मे ठहर भी चुके हैं, तो फिर साधु उस मकान मे ठहरता है तो उसे महावर्ज्य क्रिया कैसे लगती है ? इसका समाधान यह है कि श्रमण शब्द का प्रयोग निर्ग्रन्थ के लिए भी होता है। आगम मे बताया गया है– १-निर्ग्रन्थ (जैन साधु), २-बौद्ध भिक्षु, ३-तापस, ४-गैरिक (सन्यासी) और ५-आजीवक (गौशालक मत के साधु) आदि ५ सम्प्रदायो के साधुओ के लिए श्रमण शब्द का प्रयोग होता रहा है[१]। अत श्रमण शब्द से जैन साधु का ग्रहण किया गया है, क्योकि बौद्ध भिक्षुओ आदि के लिए भिक्षु शब्द का भी प्रयोग

---

१ से कि त पासड नामे ? समणे य पडुरगे भिक्खू, कावालिए अ तावसिए परिवायगे से त पासडनामे।

— अनुयोगद्वार सूत्र।

वृत्ति – इह येन यत् पाषण्डमाश्रित तस्य तन्नाम स्थाप्यमान पाषण्ड स्थापना नामाभिधीयते तत्र निग्गथ, सक्क, तावस, गेरुक्य, आजीव पचहा समणा इति वचनात् निर्ग्रन्थादि पच पाषण्डान्याश्रित्य श्रमण उच्यते एव नैयायिकादि पाषण्डमाश्रिता पाडुरगादयो भावनीया, नवर भिक्षुर्बुद्धदर्शनाश्रित ।

— आचार्य श्री मल्लधारी हेमचन्द्र।

किया गया है। अत: जिस मकान को बनाने मे जैन साधु का लक्ष्य रखा गया हो उस मकान के पुरुषान्तर होने पर भी जैन साधु को उसमे नहीं ठहरना चाहिए। यदि वह उसमे ठहरता है तो उसे महावर्ज्य क्रिया (दोष) लगती है।

अब सावद्य क्रिया को अभिव्यक्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया जाव तं सद्दहमाणेहिं तं पत्तियमाणेहिं तं रोयमाणेहिं बहवे समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे पगणिय २ समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा जे भयंतारो तहप्पगाराणि आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं अयमाउसो ! सावज्ज-किरिया यावि भवइ ॥८४॥

छाया– इह खलु प्राचीनं वा ४ सन्त्येकका यावत् तत् श्रद्दधानै. तत् प्रतीयमानै तद् रोचयमानै. बहून् श्रमणब्राह्मणातिथिकृपणवनीपकान् प्रगण्य प्रगण्य समुद्दिश्य तत्र तत्र अगारिभिः अगाराणि कृतानि भवति, तद्यथा-आदेशनानि वा यावद् भवनगृहाणि वा ये भयत्रातारः तथा प्रकाराणि आदेशनानि वा यावत् भवनगृहाणि उपागच्छन्ति, इतरेतरेषु प्राभृतेषु, इयमायुष्मन् ! सावद्यक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **इह**-ससार मे। **खलु**-निश्चय। **पाईण वा ४**-पूर्वादि दिशाओ मे। **सतेगइया**-कई एक श्रद्धालु गृहस्थ ऐसे है, जिन्होने उपाश्रय के दान के फल को सुन रखा है। **तं**-उस फल के प्रति। **सद्दहमाणेहिं**-श्रद्धा करने से। **त पत्तियमाणेहिं**-उस पर प्रतीति करने से। **त रोयमाणेहिं**-उस पर रुचि करने से। **बहवे**-बहुत से। **समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे**-श्रमण-ब्राह्मण-अतिथि-कृपण और वनीपको को। **पगणिय २**-गिन- गिनकर तथा उनको। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य करके। **अगारीहिं**-गृहस्थों ने। **तत्थ तत्थ**-जहा- तहा। **आगाराइ**-मकान। **चेइयाइ**-बनाए। **भवंति**-है। **तंजहा**-जैसे कि। **आएसणाणि वा**-लोहकार शाला। **जाव**-यावत्। **भवणगिहाणि वा**-तल घर आदि । **जे**-जो। **भयतारो**-पूज्य मुनिराज। **तहप्पगाराणि**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि वा**-लोहकार शाला। **जाव**-यावत्। **भवणगिहाणि**-तलघर आदि उक्त। **इयराइयरेहिं**-छोटे-बड़े। **पाहुडेहिं**-भेट स्वरूप दिए हुए उपाश्रयो मे। **उवागच्छंति**-उतरते हैं तो। **इयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **सावज्जकिरिया यावि भवइ**-यह सावद्य क्रिया होती है।

मूलार्थ—इस संसार में बहुत पूर्वादि दिशाओ मे बहुत से ऐसे श्रद्धालु गृहस्थ है जो उपाश्रय दान के फल पर श्रद्धा करने से, प्रीति करने से और रुचि करने से बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियो का उद्देश्य रखकर लोहकार शालादि भवनो का निर्माण करते है अर्थात् उन्होने बनाए हैं। जो मुनिराज तथाप्रकार के भेंटस्वरूप दिए गए छोटे-बड़े भवनो में उतरते है, तो हे आयुष्मन् शिष्य ! उनके लिए यह सावद्य क्रिया होती है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भी पूर्व सूत्र की बात को दुहराया गया है। इसमे यह बताया गया है कि यदि श्रमण, भिक्षु आदि को लक्ष्य मे रखकर किसी मकान मे सावद्य क्रिया की गई हो तो साधु को उसमे नहीं ठहरना चाहिए। यदि कोई उसमे ठहरता है तो उसे सावद्य क्रिया लगती है।

अब महासावद्य क्रिया का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इह खलु पाईणं वा ४ जाव तं रोयमाणेहिं एगं समणजायं समुद्दिस्स तत्थ २ अगारीहिं अगाराइ चेइयाइं भवंति, तं०–आएसणाणि जाव गिहाणि वा महया पुढविकायसमारंभेणं जाव महया तसकायसमारंभेणं महया विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं, तंजहा–छायणओ लेवणओ संथारदुवारपिहणओ सीओदए वा परट्ठवियपुव्वे भवइ, अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवइ, जे भयंतारो तह० आएसणाणि वा० उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति दुपक्खं ते कम्मं सेवंति अयमाउसो ! महासावज्जकिरिया यावि भवइ ॥८५ ॥

छाया– इह खलु प्राचीनं यावत् तद् रोचमानै. एकं श्रमणजातं समुद्दिश्य तत्र तत्र अगारिभि अगाराणि कृतानि भवन्ति। तद्यथा–आदेशनानि यावद् गृहाणि वा महता पृथ्वीकायसमारम्भेन यावत् महता त्रसकायसमारम्भेन महद्भि विंरूपरूपैः पापकर्मकृत्यैः, तद्यथा– छादनतो, लेपनतः, संस्तारकद्वारपिधापनतः शीतोदकं वा परिष्ठापितपूर्वं भवति। अग्निकायो वा उज्ज्वालितपूर्वो भवति, ये भयत्रातार तथाप्रकाराणि आदेशनानि वा, उपागच्छन्ति, इतरेतरेषु प्राभृतेषु द्विपक्षं ते कर्म सेवन्ते, इयमायुष्मन् ! महासावद्यक्रिया चापि भवति।

पदार्थ– **खलु**–वाक्यालकार मे है। **इह**–इस ससार मे। **पाईण वा ४**–पूर्वादि दिशाओ मे। **जाव**–यावत्। **तं**–उपाश्रय प्रदान के स्वर्गादि फल की। **रोयमाणेहिं**–रुचि करने से। **एग समणजाय**–किसी एक श्रमण को। **समुद्दिस्स**–उद्देश्य करके। **तत्थ २**–जहा-तहा। **अगारीहिं**–गृहस्थो ने। **अगाराइ**–भवन। **चेइयाइ**–बनाए हुए हैं। **त०**–जैसे कि। **आएसणाणि**–लोहकार शाला। **जाव**–यावत्। **गिहाणि वा**–तलघर आदि। **महया पुढविकायसमारंभेण**–महान् पृथ्वीकाय के समारम्भ से। **जाव**–यावत्। **महया तसकायसमारभेण**–महान् त्रसकाय के समारम्भ से। **महया विरूवरूवेहिं**–नाना प्रकार के महान्। **पावकम्मकिच्चेहिं**–पापकर्मकृत्यो से। **तंजहा**–जैसे कि साधु के लिए। **छायणओ**–मकान पर छत आदि डाली हुई है। **लेवणओ**–लीपी-पोती हुई है। **संथारदुवारपिहणओ**–सस्तारक के स्थान को सम-बराबर बनाया है, दरवाजे बनाए है और। **सीओदए वा परट्ठवियपुव्वे भवइ**–ठडक करने के लिए शीतल जल का छिड़काव किया है, तथा। **अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवइ**–शीत निवारणार्थ अग्नि प्रज्वलित की है। ये **भयंतारो**–जो मुनिराज। **तह०**–तथा प्रकार के। **आएसणाणि**–लोहकार शाला आदि मे। **उवागच्छति**–आते हैं तथा। **इयराइयरेहिं**–साधु के लिए बने हुए

छोटे-बड़े। पाहुडेहिं-भेट स्वरूप दिए गए उपाश्रयां में जो ठहरते है। **ते**-वे। **दुपक्खं**-द्विपक्ष अर्थात् द्रव्य से साधु और भाव से गृहस्थ रूप। **कम्मं**-कर्म का। **सेवंति**-सेवन करते हैं। **इयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **महासावज्जकिरिया यावि भवइ**-महासावद्य क्रिया होती है।

***मूलार्थ*—इस संसार में पूर्वादि चारो दिशाओ मे बहुत से श्रद्धालु व्यक्ति हैं, जिन्होने साधु का आचार तो सम्यक्तया नहीं सुना, केवल उपाश्रय दान के स्वर्गादि फल को सुना है। वे साधु के लिए ६ काय का समारम्भ करके लोहकार शाला आदि स्थान-मकान बनाते हैं। यदि साधु उनमे ज्ञात होने पर भी ठहरता है तो वह द्रव्य से साधु और भाव से गृहस्थ है, अर्थात् साधु का वेश होने से साधु और षट्काय के आरम्भ की अनुमति आदि से युक्त होने के कारण भाव से गृहस्थ जैसा है। अत हे शिष्य ! इस क्रिया को महासावद्य क्रिया कहते है।**

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जो उपाश्रय-मकान साधु के उद्देश्य से बनाया गया है और साधु के उद्देश्य से ही लोप-पोत कर साफ-सुथरा बनाया है और छप्पर आदि से आच्छादित किया है तथा दरवाजे आदि बनवाए हैं और गर्मी मे ठण्डे पानी का छिडकाव करके मकान को शीतल एव शरद् ऋतु मे आग जलाकर गर्म किया गया है तो साधु को ऐसे मकान मे नहीं ठहरना चाहिए। यदि साधु जानते हुए भी ऐसे मकान मे ठहरता है तो उसे महासावद्य क्रिया लगती है। और ऐसे मकान मे ठहरने वाला केवल भेष से साधु है, भावो से नहीं। क्योकि उसमे साधु के लिए ६ काय के जीवो का आरभ समारम्भ हुआ है। इसलिए सूत्रकार ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है- '**दुपक्ख ते कम्म सेवति।**' आचार्य शीलाक ने प्रस्तुत पद की व्याख्या करते हुए लिखा है- '**ते द्विपक्षं कर्मा सेवन्ते तद्यथा- प्रव्रज्यामाधाकर्मिकवसत्यासेवद् गृहस्थत्व च रागद्वेष इर्यापथ साम्परायिकं च।**'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे सदोष मकान मे ठहरने वाले साधु साधुत्व के महापथ से गिर जाते हैं, उनकी साधना शुद्ध नही रह पाती। अत साधु को सदा निर्दोष एव निरवद्य मकान मे ठहरना चाहिए।

अब अल्प सावद्य क्रिया का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- इह खलु पाईणं वा० रोयमाणेहिं अप्पणो सयट्ठाए तत्थ २ अगारिहिं जाव उज्जालियपुव्वे भवइ, जे भयंतारो तहप्प० आएसणाणि वा० उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं एगपक्खं ते कम्मं सेवंति, अयमाउसो ! अप्पसावज्जा किरिया यावि भवइ ९। एवं खलु तस्स०॥८६॥

छाया- इह खलु प्राचीन वा ४ रोचमानै आत्मन स्वार्थाय तत्र तत्र अगारिभि यावत् उज्ज्वालितपूर्वं भवति, ये भयत्रातारः तथाप्रकाराणि आदेशनानि वा० उपागच्छन्ति इतरेतरेषु प्राभृतेषु एकपक्ष ते कर्म सेवते। इयमायुष्मन् ! अल्पसावद्यक्रिया चापि भवति। एव खलु तस्य भिक्षो सामग्र्यम् ।

पदार्थ- **इह**-इस ससार मे। **खलु**-वाक्यालकार सूचक अव्यय है। **पाईण वा०**-पूर्वादि दिशाओं मे

किसी भद्र परिणामी गृहस्थ ने उपाश्रय दान का महत्व सुना है और उस पर। **रोयमाणेहिं**-रुचि करने से। **अप्पणो-सयट्ठाए**-अपने निज के प्रयोजन के लिए। **तत्थ २**-जहा-तहा। **अगारिहिं**-गृहस्थों ने स्थान बनाए हुए है। **जाव**-यावत्। **उज्जालियपुव्वे भवइ**-जिसमे अग्नि प्रज्वलित की गई हो। **जे भयंतारो**-जो पूज्य मुनिराज। **तहप्प०**-तथाप्रकार के। **आएसणाणि वा**-लोहकार शाला आदि भवनो-स्थानो मे। **उवागच्छन्ति**-आते है और। **इयराइयरेहिं**-छोटे-बड़े। **पाहुडेहिं**-दिए गए उक्त स्थानो मे उतरते है। **ते**-वे। **एगपक्ख**-एक पक्ष अर्थात् एक मात्र पूर्ण साधुता सम्बन्धि। **कम्म**-कर्म का। **सेवति**-सेवन करते है। **अयमाउसो**-हे आयुष्मन् शिष्य ! यह। **अप्पसावज्जकिरिया यावि भवइ**-अल्प सावद्य क्रिया होती है। **एव खलु तस्स०**-इस प्रकार भिक्षु का यह समग्रभाव अर्थात् साधुता का भाव है।

***मूलार्थ*—इस ससार मे स्थित कुछ श्रद्धालु गृहस्थ जो यह जानते है कि साधु को उपाश्रय का दान देने से स्वर्ग आदि फल की प्राप्ति होती है, वे अपने उपयोग के लिए बनाए गए मकान को तथा शीतकाल में जहां अग्नि प्रज्वलित की गई हो ऐसे छोटे-बड़े मकान को सहर्ष साधु को ठहरने के लिए देते है। ऐसे मकान मे जो साधु ठहरते हैं वे एकपक्ष-पूर्ण साधुता का पालन करते हैं और इसे अल्पसावद्य क्रिया कहते है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जो मकान गृहस्थ ने अपने लिए बनाया हो और उसमे अपने लिए अग्नि आदि प्रज्वलित करने की सावद्य क्रियाए की हो। साधु के उद्देश्य से उसमे कुछ नहीं किया हो तो ऐसे मकान मे ठहरने वाला साधु पूर्ण रूप से साधुत्व का परिपालन करता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**अप्प**' शब्द अभाव का परिबोधक है। वृत्तिकार ने भी इसका अभाव अर्थ किया है[१]। और मूलपाठ जो "**एक पक्ख ते कम्म सेवयि**"-अर्थात् जो द्रव्य और भाव से एक रूप अर्थात् साधुत्व का परिपालक है।" यह पद दिया है, इससे '**अप्प**' शब्द अभाव सूचक ही सिद्ध होता है।

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे उक्त नव क्रियाओ की एक गाथा भी मिलती है[२]। उक्त नव प्रकार के उपाश्रयो मे अभिक्रान्त और अल्प सावद्य क्रिया वाले दो प्रकार के मकान साधु के लिए ग्राह्य हैं, शेष सातो प्रकार के स्थान अकल्पनीय हैं।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ अल्प शब्दोऽभाववाचीति। – आचाराग वृत्ति।

२ कालाइक्कत, व ठाण, अभिकता, चेव अणभिकता य।
वज्जा य महावज्जा, सावज्जा महऽप्पकिरिया य॥

द्वितीय अध्ययन शय्यैषणा
तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक के अन्तिम सूत्र मे शुद्ध वस्ती (मकान) का वर्णन किया गया है । अब प्रस्तुत उद्देशक मे अशुद्ध वस्ती का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से य नो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे नो य खलु सुद्धे इमेहिं पाहुडेहिं, तंजहा-छायणओ लेवणओ संथारदुवारपिहणओ पिंडवाएसणाओ, से य भिक्खू चरियारए ठाणरए निसीहियारए सिज्जासंथारपिंडवाएसणारए, संति भिक्खुणो एवमक्खाइणो उज्जुया नियागपडिवन्ना अमायं कुव्वमाणा वियाहिया, संतेगइया पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवइ, एवं निक्खित्तपुव्वा भवइ, परिभाइयनिक्खित्तपुव्वा भवइ, परिभाइयपुव्वा भवइ, परिभुत्तपुव्वा भवइ, परिट्ठवियपुव्वा भवइ, एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरेइ ? हंता भवइ ।।८७ ।।

छाया– स च नो सुलभः प्रासुकः उञ्छः अथ एषणीय., न च खलु शुद्ध. एभि. प्राभृतै., तद्यथा-छादनतः लेपनत. सस्तार-द्वार पिधानत. पिंडपातैषणात. ते च भिक्षव. चर्यारता· स्थानरताः निषीधिकारता· शय्यासंस्तार-पिडपातैषणारता. सति भिक्षव· एवमाख्यायिन. ऋजवः नियागप्रतिपन्नाः अमायां कुर्वाणा. व्याख्याताः सन्ति एकका प्राभृतिका उत्क्षिप्तपूर्वा भवति, एवं निक्षिप्त पूर्वा भवति, परिभाजितपूर्वा भवति, परिभुक्तपूर्वा भवति, परिस्थापितपूर्वा भवति एवं व्याकुर्वन् कथयन् सम्यग् व्याकरोति ? हन्त भवति।

पदार्थ– से-वह भिक्षु किसी ग्रामादि मे भिक्षा के लिए गया तब किसी गृहस्थ ने उसे वहा ठहरने की विनती की कि भगवन् ! आप यहा पर ही कृपा करे। इस नगर मे अन्न-पानी का सयोग सुख पूर्वक मिल सकता है, इसके उत्तर मे मुनि ने कहा, भद्र ! प्रासुक आहार-पानी का मिलना तो कठिन नहीं है, किन्तु जहा पर बैठकर शुद्ध निर्दोष आहार किया जाता है उस उपाश्रय का मिलना। **नो सुलभे**-सुलभ नहीं है। अब सूत्रकार उपाश्रय के विषय मे वर्णन करते है। **फासुए**-प्रासुक-आधाकर्मादि दोषो से रहित। **उछे**-छादनादि उत्तरगुणीय दोषो से रहित। **अहेसणिज्जे**-मूल एव उत्तर गुणीय दोषो से शून्य होने के कारण एषणीय। **य**-और। **खलु**-निश्चय ही। **नो सुद्धे**-उत्तर गुणो से जो शुद्ध नहीं है। **इमेहिं**-इन। **पाहुडेहिं**-पाप कर्मों के उपादान से बनाए गए हैं। **तंजहा**-जैसे कि। **छायणओ**-साधु के लिए आच्छादन करने से। **लेवणओ**-गोबर आदि का लेपन करने से।

संथारदुवारपिहणओ-संस्तारक भूमि को सम करने और द्वार बन्द करने के लिए किवाड़ आदि बनाने से। **पिंडवाएसणाओ**-तथा पिंडपानैषणा की दृष्टि से भी शुद्ध उपाश्रय का मिलना कठिन है अर्थात् जिसके उपाश्रय मे साधु ठहरता है वह गृहस्थ प्राय आहार का आमत्रण करता है। अत साधु वह आहार लेता है तो उसे दोष लगता है, और नहीं लेता तो गृहस्थ के मन को ठेस लगती है। अत यह कारण भी उपाश्रय की प्राप्ति मे विशेष कर बाधक है। यदि उत्तरदोष से शुद्ध उपाश्रय मिल भी गया है तो फिर स्वाध्याय आदि की अनुकूलता से युक्त उपाश्रय का मिलना तो और भी कठिन है, अब सूत्रकार यही बताते हैं कि। **य**-फिर। **से**-वे। **भिक्खू**-भिक्षु-मुनिराज। **चरियारए**-नव कल्पी विहार की चर्या मे रत हैं। **ठाणरए**-तथा कायोत्सर्गादि करने मे रत हैं। **निसीहियारए**-स्वाध्याय करने मे रत है। **सिज्जासंथारपिडवाएसणारए**-शय्या-वस्ती-सस्तार-अढाई हाथ प्रमाण शयन करने का स्थान अथवा रोगादि कारण से शय्या सस्तारक मे रत है अर्थात् अगार एव धूम आदि दोषो से रहित आहार करते। **संति**-हैं। **भिक्खुणो**-कोई-कोई भिक्षु। **एवमक्खाइणो**-इस प्रकार वसती के यथावस्थित गुण-दोषों के कहने वाले है। **उज्जुया**-सरल है। **नियागपडिवन्ना**-सयम एव मोक्ष से प्रतिपन्न है। **अमायं कुव्वमाणा**-माया नहीं करने वाले। **वियाहिया**-कहे गए है।

अब सूत्रकार गृहस्थो द्वारा साधु को वस्ती दान देने सम्बन्धि छल करने के विषय मे बताते है। **सति**-कितने ही गृहस्थ ऐसे है जो साधु को उपाश्रय देने मे छल करते है यथा- । **पाहुडिया**-जो उपाश्रय साधु के उद्देश्य से बनाया गया है उसको। **उक्खित्तपुव्वा भवइ**-दिखाकर कहते हैं कि आप इस उपाश्रय मे रहें क्योंकि यह उपाश्रय। **निक्खित्तपुव्वा भवइ**-हमने अपने लिए बनाया है तथा। **परिभाइयपुव्वा भवइ**-हमने पहले ही आपस के बटवारे मे बाट लिया है। **परिभुत्तपुव्वा भवइ**-वह हम लोगो द्वारा पहले ही भोगा जा चुका है। **परिट्ठवियपुव्वा भवइ**-हमने बहुत पहले से इसे छोड़ा हुआ है अत आपके लिए निर्दोष होने के कारण ग्राह्य है। गृहस्थ इस प्रकार कुछ भी छल-बल करे परन्तु साधु उनके प्रपच को जानकर कदापि उक्त उपाश्रय मे न रहे। यदि कोई गृहस्थ उपाश्रय के गुण दोषादि के विषय मे पूछे तो साधु उसको शास्त्रानुसार उपाश्रय के गुण दोष बता दे। अब शिष्य प्रश्न करता है कि- हे भगवन् ' साधु उपाश्रय के गुणदोषो के सम्बन्ध मे। **एवं वियागरेमाणे**-इस प्रकार कहता हुआ। **समियाए वियागरेइ ?**-क्या सम्यक् कथन करता है ? आचार्य उत्तर देते है। **हंता भवइ**-हा, वह सम्यक् कथन करता है।

मूलार्थ— **भिक्षा के लिए ग्राम में गए हुए साधु को यदि कोई भद्र गृहस्थ यह कहे कि भगवन् ' यहां आहार-पानी की सुलभता है, अत आप यहा रहने की कृपा करे। इसके उत्तर मे साधु यह कहे कि यहां आहार-पानी आदि तो सब कुछ सुलभ है परन्तु निर्दोष उपाश्रय का मिलना दुर्लभ है। क्योंकि साधु के लिए कहीं उपाश्रय मे छत डाली हुई होती है, कहीं लीपा-पोती की हुई होती है, कहीं सस्तारक के लिए ऊंची-नीची भूमि को समतल किया गया होता है और कहीं द्वार बन्द करने के लिए दरवाजे आदि लगाए हुए होते हैं, इत्यादि दोषो के कारण शुद्ध निर्दोष उपाश्रय का मिलना कठिन है। और दूसरी यह बात भी है कि शय्यातर का आहार साधु को लेना नहीं कल्पता है। अत. यदि साधु उसका आहार लेते हैं तो उन्हें दोष लगता है और उनके नहीं लेने से बहुत से शय्यातर गृहस्थ रुष्ट हो जाते हैं। यदि कभी उक्त दोषों से रहित उपाश्रय मिल भी जाए, फिर भी साधु की आवश्यक क्रियाओं के योग्य उपाश्रय का मिलना कठिन है। क्योंकि साधु**

विहारचर्या वाले भी हैं, कायोत्सर्ग करने वाले भी हैं, एकान्त स्वाध्याय करने वाले भी हैं, तथा शय्या-संस्तारक और पिडपात की शुद्ध गवेषणा करने वाले भी हैं। अस्तु , उक्त क्रियाओ के लिए योग्य उपाश्रय मिलना और भी कठिन है। इस प्रकार कितने ही सरल-निष्कपट एव मोक्ष पथ के गामी भिक्षु उपाश्रय के दोष बता देते है।

कुछ गृहस्थ मुनि के लिए ही मकान बनाते है, और फिर यथा अवसर आगन्तुक मुनि से छल युक्त वार्तालाप करते हैं। वे साधु से कहते है कि 'यह मकान हमने अपने लिए बनाया है', आपस मे बांट लिया है, परिभोग मे ले लिया है, परन्तु अब नापसद होने के कारण बहुत पहले से वैसे ही खाली छोड रखा है। अत पूर्णतया निर्दोष होने के कारण आप इस उपाश्रय मे ठहर सकते है। परन्तु विचक्षण मुनि इस प्रकार के छल मे न फसे, तथा सदोष उपाश्रय मे ठहरने से सर्वथा इन्कार कर दे। गृहस्थो के पूछने पर जो मुनि इस प्रकार उपाश्रय के गुण-दोषो को सम्यक् प्रकार से बता देता है, उसके सबन्ध मे शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! क्या वह सम्यक् कथन करता है? सूत्रकार उत्तर देते है कि हा, वह सम्यक् कथन करता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु किसी गाव या शहर मे भिक्षा के लिए गया, उस समय कोई श्रद्धानिष्ठ गृहस्थ उक्त मुनि से प्रार्थना करे कि हमारे गाव या शहर मे आहार-पानी आदि की सुविधा है, अत आप इसी गाव मे ठहरे। गृहस्थ के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर मुनि सरल एव निष्कपट भाव से कहे कि आहार-पानी की तो यहा सुलभता है, परन्तु ठहरने के लिए निर्दोष मकान का उपलब्ध होना कठिन है। मूल एव उत्तर गुणो की दृष्टि से निर्दोष मकान सर्वत्र सुलभ नहीं होता। कही मकानो की कमी के कारण मूल से ही साधु के लिए मकान बनाया जाता है। कही साधु के उद्देश्य से नहीं बने हुए मकान पर साधु के लिए छत डाली जाती है, उसमे सफेदी करवाई जाती है, शय्या के लिए योग्य स्थान बनाया जाता है, दरवाजे तथा खिडकिया लगाई जाती है। इस तरह मूल उत्तर गुण मे दोष लगने की सभावना रहती है।

यदि कही सब तरह से निर्दोष मकान मिल जाए तो दूसरा प्रश्न यह सामने आएगा कि हम शय्यातर (मकान मालिक) के घर का आहार-पानी आदि ग्रहण नही करते। कभी वह भक्तिवश आहार आदि के लिए आग्रह करे और हमारे द्वारा इन्कार करने पर क्रोधित होकर धर्म से या साधु-सन्तो से विमुख होकर उनका विरोध कर सकता है। वृत्तिकार ने भी यही भाव अभिव्यक्त किया है।

निर्दोष मकान एव शय्यातर के अनुकूल मिलने के बाद तीसरी समस्या साधना की रह जाती है। कुछ साधु विहार चर्या वाले होते हैं, कुछ कायोत्सर्ग करने मे अनुरक्त रहते हैं, कुछ स्वाध्याय एव चिन्तन-मनन मे व्यस्त रहते हैं। अत इन सब साधनाओ की दृष्टि से भी मकान अनुकूल होना आवश्यक है, अर्थात् साधना के लिए एकान्त एव शान्त वातावरण का होना जरूरी है। इस तरह मुनि स्थान सम्बन्धी निर्दोषता एव सदोषता को स्पष्ट रूप से बता दे और सभी दृष्टियो से शुद्ध एव निर्दोष मकान की गवेषणा करने के पश्चात् उसमे ठहरे।

साधु से मकान सम्बन्धी सभी गुण-दोष सुनने के बाद यदि कोई गृहस्थ साधु के लिए बनाए गए मकान को भी शुद्ध बताए और छल कपट के द्वारा उसकी सदोषता को छिपाने का प्रयत्न करे तो

साधु को उसके धोखे मे नहीं आना चाहिए और उसकी तरह स्वय को भी छल-कपट का सहारा नहीं लेना चाहिए। साधु को सदा सरल एव निष्कपट भाव ही रखना चाहिए। यदि कोई गृहस्थ छल-कपट रखकर उपाश्रय के गुण-दोष जानना चाहे, तब भी साधु को बिना हिचकिचाहट के उपाश्रय सम्बन्धी सारी जानकारी करा देनी चाहिए। इसी से साधु की साधना सम्यक् रह सकती है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**चरियारए**' पद से विहार चर्या का '**ठाणरए**' से ध्यानस्थ होने का, '**निसिहियाए**' से स्वाध्याय का, '**उज्जुया**' से छल-कपट रहित सरल स्वभाव वाला होने का एव '**नियाग पडिवन्ना**' से सयम मे मोक्ष के ध्येय को सिद्ध करने वाला बताया गया है। और '**संतेगइय पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवइ**' पद से यह स्पष्ट किया गया है कि साधु के उद्देश्य से बनाए गए उपाश्रय को निर्दोष बताना तथा '**एव परिभु क्षुत्तव्व भवइ, परिट्ठवियपुव्वा भवइ**' आदि पदो से इस बात को बताया गया है कि कुछ श्रद्धालु भक्त रागवश सदोष मकान को भी छल कपट से निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, साधु को उनकी बातो मे नहीं आना चाहिए

यदि कभी परिस्थितिवश साधु को चरक आदि अन्य मत के भिक्षुओ के साथ ठहरना पडे, तो किस विधि से ठहरना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा खुड्डियाओ खुड्डदुवारियाओ निययाओ संनिरुद्धाओ भवंति, तहप्पगा० उवस्सए राओ वा वियाले वा निक्खममाणे वा प० पुरा हत्थेण वा पच्छा पाएण वा, तओ संजयामेव निक्खमिज्ज वा २। केवली बूया-आयाणमेयं, जे तत्थ समणाण वा माहणाण वा छत्तए वा मत्तए वा दंडए वा लट्ठिया वा भिसिया वा नालिया वा चेलं वा चिलिमिली वा चम्मए वा चम्मकोसए वा चम्मछेयणए वा दुब्बद्धे दुन्निक्खित्ते अणिकंपे चलाचले, भिक्खू य राओ वा वियाले वा निक्खममाणे वा २ पयलिज्ज वा २, से तत्थ पयलमाणे वा० हत्थं वा० लूसिज्ज वा पाणाणि वा ४ जाव ववरोविज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठं जं तह० उवस्सए पुराहत्थेण निक्ख० वा पच्छा पाएणं तओ संजयामेव नि० पविसिज्ज वा॥८८॥

छाया- स भिक्षुर्वा० स यत् पुनरुपाश्रय जानीयात्-क्षुद्रिकाः क्षुद्रद्वाराः नीचाः संनिरुद्धा भवन्ति, तथाप्रकारे उपाश्रये रात्रौ वा विकाले वा निष्क्रममाण वा प्रविशन् पुरो हस्तेन वा पश्चात् पादेन वा तत. संयतमेव निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा, केवली ब्रूयाद आदानमेतत्, ये तत्र श्रमणानां ब्राह्मणानां वा छत्रको वा मात्रक वा दण्डको वा यष्टिर्वा वृशिका वा नलिका वा चेलं वा चिलिमिली वा चर्मको वा चर्मकोशको वा चर्मछेदनं वा दुर्बद्धः दुर्निक्षिप्तोऽनिष्कम्पः चलाचलः भिक्षुश्च रात्रौ वा विकाले वा निष्क्रममाणः प्रविशन् वा प्रस्खलेत् वा पतेद् वा स तत्र प्रस्खलन् वा पतन् वा हस्तं वा लूषयेत् वा प्राणानि ४ यावद्

व्यपरोपयेद् वा, अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टं यत्- तथाप्रकारे उपाश्रये पुरो हस्तेन वा निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा पश्चात् पादेन तत संयतमेव निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से जं**-वह साधु जो आगे कहा जाता है। **पुण**-फिर। **उवस्सय**-उपाश्रय को। **जाणिज्जा**-जाने। **खुड्डियाओ**-छोटा उपाश्रय। **खुड्डदुवारियाओ**-लघु द्वार वाला उपाश्रय। **निययाओ**-नीचा है। **सनिरुद्धाओ**-जो चरक आदि अन्य मत के भिक्षुओ के। **भवति**-ठहरने से खाली नहीं है। **तहप्पगा॰**-ऐसे। **उवस्सए**-उपाश्रय मे ठहरा हुआ साधु। **राओ वा**-रात्रि मे। **वियाले वा**-विकाल मे। **निक्खममाणे वा**-भीतर से बाहर निकलता हुआ अथवा। **पविसमाणे वा**-बाहर से भीतर प्रवेश करता हुआ। **पुरा**-पहले। **हत्थेण वा**-हाथ से अर्थात् हाथ आगे करके भूमि को देखकर। **पच्छा**-पीछे। **पाएण वा**-पैर से गमन करे जिससे चरक आदि भिक्षुओ के उपकरण का तथा उनके किसी अवयव का उपघात न हो। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-सयत-साधु यत्नपूर्वक। **निक्खमिज्ज वा**-निकले अथवा प्रवेश करे क्योंकि। **केवली**-केवली भगवान। **बूया**-कहते है कि। **आयाणमेय**-यह कर्म आने का मार्ग है, जैसे कि-। **जे**-यदि। **तत्थ**-वहा पर। **समणाण वा**-शाक्यादि श्रमणो के। **माहणाण वा**-ब्राह्मणो के। **छत्तए वा**-छत्र। **मत्तए वा**-भाजन विशेष। **दंडए वा**-दड अथवा। **लट्ठिया वा**-लाठी। **भिसिया वा**-योग आसन विशेष। **नालिया वा**-अपने शरीर से चार अगुल लम्बी लाठी। **चेल वा**-वस्त्र। **चिलिमिली वा**-यवनिका-परदा अर्थात् मच्छर दानी। **चम्मए वा**-मृगचर्म। **चम्मकोसए वा**-चर्म कोष- मृगचर्म की थैली या झोली। **चम्मछेयणए वा**-चर्म छेदने का उपकरण इत्यादि उपकरण, जोकि। **दुब्बद्धे**-अच्छी तरह से नहीं बान्धा हुआ। **दुन्निक्खित्ते**-भली प्रकार से नहीं रखा हुआ तथा। **अणिकपे**-जो थोड़ा बहुत हिलता है। **चलाचले**-जो विशेष रूप से हिल रहा है, अत । **भिक्खू**-भिक्षु। **य**-फिर। **राओ वा**-रात्रि मे। **वियाले वा**-विकाल मे। **निक्खममाणे वा॰**-भीतर से बाहर निकलता हुआ अथवा बाहर से भीतर प्रवेश करता हुआ। **पयलिज्ज वा** २-फिसल पड़े या गिर पड़े। **से**-भिक्षु के। **तत्थ**-वहा पर। **पयलमाणे वा** २-फिसलने या गिर पड़ने से उनके उपकरण आदि गिर पड़े अथवा। **हत्थ वा॰**-हाथ-पैर आदि। **लूसिज्ज वा**-टूट जावे या। **पाणाणि वा॰**-क्षुद्र जीव-जन्तुओ की। **जाव**-यावत् विराधना और। **ववरोविज्ज वा**-नाश हो जाए। **अह**-इसलिए। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ को। **पुव्वोवइट्ठ**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह उपदेश किया है। **ज**-जो कि। **तह॰**-तथाप्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **पुरा**-पहले। **हत्थेण वा**-हाथ से देखभाल कर। **पच्छा पाएण वा**-पीछे पैर रखे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-सयत साधु यत्न पूर्वक। **नि॰**-बाहर निकले। **पविसिज्ज वा**-अथवा भीतर प्रवेश करे।

मूलार्थ—वह साधु या साध्वी फिर उपाश्रय को जाने, जैसे कि-जो उपाश्रय छोटा है अथवा छोटे द्वार वाला है, तथा नीचा है और चरक आदि भिक्षुओ से भरा हुआ है, इस प्रकार के उपाश्रय मे यदि साधु को ठहरना पड़े तो वह रात्रि मे और विकाल मे, भीतर से बाहर निकलता हुआ या बाहर से भीतर प्रवेश करता हुआ, प्रथम हाथ से देखकर पीछे पैर रखे। इस प्रकार साधु यत्नापूर्वक निकले या प्रवेश करे। क्योंकि केवली भगवान कहते है कि यह कर्म बन्धन का कारण है,क्योंकि वहा पर जो शाक्यादि श्रमणो तथा ब्राह्मणो के छत्र, अमत्र (भाजन विशेष) मात्रक, दड, यष्टी, योगासन, नलिका (दण्ड विशेष) वस्त्र, यमनिका (मच्छर-दानी) मृगचर्म, मृगचर्मकोष, चर्मछेदन-उपकरण विशेष जो कि कुछ अच्छी तरह से बन्धे हुए और ढंग से रखे हुए नहीं हैं, कुछ

हिलते हैं और कुछ अधिक चंचल हैं उनको आघात पहुंचने का डर है, क्योंकि रात्रि में और विकाल में अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर निकलता या प्रवेश करता हुआ साधु यदि फिसल पड़े या गिर पड़े तो वे उपकरण टूट जाएंगे, अथवा उस भिक्षु के फिसलने या गिर पड़ने से उसके हाथ-पैर आदि के टूटने का भी भय है और उसके गिरने से वहा पर रहे हुए अन्य क्षुद्र जीवों के विनाश का भी भय है, इसलिए तीर्थंकरादि आप्त पुरुषो ने पहले ही साधुओ को यह उपदेश दिया है कि इस प्रकार के उपाश्रय में पहले हाथ से टटोल कर फिर पैर रखना चाहिए और यत्नापूर्वक बाहर से भीतर एवं भीतर से बाहर गमनागमन करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि अपनी आत्मा एव सयम की विराधना से बचने के लिए साधु को रात्रि एव विकाल के समय आवश्यक कार्य से उपाश्रय के बाहर जाते एव पुन उपाश्रय मे प्रविष्ट होते समय विवेक एव यत्नापूर्वक गमनागमन करना चाहिए। यदि किसी उपाश्रय के द्वार छोटे हो या उपाश्रय छोटा हो और उसमे कुछ गृहस्थ रहते भी हो या अन्य मत के भिक्षु ठहरे हुए हो तो साधु को रात के समय बाहर आते-जाते समय पहले हाथ से टटोल कर फिर पैर रखना चाहिए। क्योकि ऐसा करने से उसके कहीं चोट नहीं लगेगी और न किसी से टक्कर खाकर गिरने या फिसलने का भय रहेगा। यदि वह अपने हाथ से टटोल कर सावधानी से नहीं चलेगा तो सभव है दरवाजा छोटा होने के कारण उसके सिर आदि मे चोट लग जाए या वह फिसल पडे या किसी भिक्षु की उपधि पर पैर पड जाने से वह टूट जाए और इससे उसके मन को सक्लेश हो और परस्पर कलह भी हो जाए। इस तरह समस्त दोषो से बचने के लिए साधु को विवेक एव यत्नापूर्वक गमनागमन करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र से उस युग के साधु समाज मे प्रचलित उपधियो का एव उस युग की विभिन्न साधना पद्धतियो का परिचय मिलता है और साथ मे गृहस्थ की उदारता का भी परिचय मिलता है कि वह बिना किसी भेद भाव से सभी सप्रदाय के भिक्षुओ को विश्राम करने के लिए मकान दे देता था। उसके द्वार सभी के लिए खुले थे।

साधु को स्थान की याचना किस तरह करनी चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से आगंतारेसु वा अणुवीइ उवस्सयं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए ते उवस्सयं अणुन्नविज्जा कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिन्नायं वसिस्सामो जाव आउसंतो ! जाव आउसंतस्स उवस्सए जाव साहम्मियाइं ततो उवस्सयं गिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो ॥८९॥

छाया– स आगन्तारेषु वा अनुविचिन्त्य उपाश्रयं याचेत्, यस्तत्र ईश्वरः, यस्तत्र समधिष्ठाता तानुपाश्रयं अनुज्ञापयेत् कामं खलु आयुष्मन् ! यथालंदं यथापरिज्ञातं वत्स्यामः यावद् आयुष्मन्तः ! यावत् आयुष्मत उपाश्रयं यावत् साधर्मिकाः ततः उपाश्रयं ग्रहीष्यामः, ततः परं विहरिष्यामः।

पदार्थ— **से**-वह भिक्षु। **आगतारेसु वा**-धर्मशाला आदि मे प्रवेश करके और। **अणुवीइ**-विचार करके-यह उपाश्रय कैसा है और इसका स्वामी कौन है, फिर। **उवस्सय**-उपाश्रय की। **जाइज्जा**-याचना करे, जैसे कि। **जे**-जो। **तत्थ**-वहा पर। **ईसरे**-उस उपाश्रय का स्वामी है और। **जे**-जो। **तत्थ**-वहा पर। **समहिट्ठाए**-जिनके अधिकार में दिया हुआ है। **ते**-उनको। **अणुन्नविज्जा**-अनुज्ञापन करे अर्थात् उनसे आज्ञा मागे और कहे। **कामं खलु आउसो**-हे आयुष्मन्! निश्चय ही आपकी इच्छानुसार। **अहालदं**-जितना काल आप कहे। **अहापरिन्नायं**-जितना भाग इस उपाश्रय का आप देना चाहे उतने ही भाग मे हम। **वसिस्सामो**-रहेगे, तब मुनि के प्रति गृहस्थ बोले। **जाव**-यावत्। **आउसतो**-हे पूज्य! आप कितना समय यहा ठहरेगे ? तब मुनि ने उसके प्रति कहा कि हे आयुष्मन्- गृहस्थ! हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे तो बिना कारण एक मास तक रह सकते है, और वर्षा ऋतु मे चार मास तक। **जाव**-यावत्। **आउसतस्स**-आयुष्मन् के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे रहेगे। तब गृहस्थ ने कहा कि आयुष्मन् श्रमण! एतावत् इतने समय के लिए यह उपाश्रय और इसका इतना भाग आप को नहीं दिया जा सकता। तब मुनि उस गृहस्थ के प्रति कहे कि आयुष्मन्-गृहस्थ! जितने समय के लिए आपकी आज्ञा हो तथा जितना भाग इस उपाश्रय का आप देना चाहें हम उस मे आपकी आज्ञा से उतना समय रहकर फिर विहार कर देगे। तब उस गृहस्थ ने मुनि के प्रति कहा कि आप कितने साधु है ? इसके उत्तर मे मुनि बोला कि हे सद्गृहस्थ! हमारा साधु वर्ग समुद्र के समान है जिसका कोई प्रमाण नहीं। कुछ साधु अपने पठन-पाठन आदि कार्य के लिए आते है, और अपना कार्य करके चले जाते है अत । **जाव**-यावन्मात्र। **साहम्मियाइ**-साधर्मी साधु आवेगे। **ताव**-जितने काल तक आप कहेगे उतने काल पर्यन्त। **उवस्सय**-उपाश्रय को। **गिण्हिस्सामो**-ग्रहण करेगे। **तेण पर**-तत्पश्चात्। **विहरिस्सामो**-विहार कर जावेगे अर्थात् आपकी आज्ञानुसार रहकर फिर चले जावेगे।

मूलार्थ—वह साधु धर्मशालाओ आदि मे प्रवेश करने के अनन्तर यह विचार करे कि यह उपाश्रय किसका है और यह किसके अधिकार मे है? तदनन्तर उपाश्रय की याचना करे। [इस सूत्र का विषय कुछ क्लिष्ट है इसलिए प्रश्नोत्तर के रूप मे लिखा जाता है]

मुनि— आयुष्मन् गृहस्थ! यदि आप आज्ञा दे तो आपकी इच्छानुकूल जितने समय पर्यन्त और जितने भूमि भाग मे आप रहने की आज्ञा देगे, उतने ही समय और उतने ही भूमि भाग मे हम रहेगे।

गृहस्थ— आयुष्मन् मुनिराज! आप कितने समय तक रहेगे ?

मुनि— आयुष्मन् सद्गृहस्थ! किसी कारण विशेष के बिना हम ग्रीष्म और हेमन्त ऋतु मे एक मास और वर्षा ऋतु मे चार मास पर्यन्त रह सकते है।

गृहस्थ— इतने समय के लिए आप को यह उपाश्रय नहीं दिया जा सकता।

मुनि— यदि इतने समय तक की आज्ञा नहीं दे सकते तो कोई बात नहीं आप जितने समय के लिए कहेगे उतने समय तक यहा ठहर कर फिर हम विहार कर जाएंगे।

गृहस्थ— आप कितने साधु है ?

मुनि— साधु तो समुद्र के समान अनगिनत है। क्योंकि अपने पठन-पाठन आदि कार्य के लिए कई मुनि आते है, और अपना कार्य करके चले जाते हैं। किन्तु जो यहां पर आवेंगे वे सब आपकी आज्ञानुसार रह कर विहार कर जाएगे। इस प्रकार मुनि को गृहस्थ के पास उपाश्रय की

याचना करनी चाहिए।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे उपाश्रय की याचना करने की विधि का उल्लेख किया गया है। इसमे बताया गया है कि साधु को सबसे पहले यह जानना चाहिए कि यह मकान किसके अधिकार मे है अथवा किस का है ? मकान मालिक का परिज्ञान करने के बाद उससे उस मकान मे ठहरने की आज्ञा मागनी चाहिए। यदि वह पूछे कि आप कितने समय तक ठहरेगे तो मुनि उससे कहे कि हम वर्षावास मे ४ महीने और शेष काल मे एक महीने से ज्यादा बिना किसी कारण के एक स्थान मे नहीं ठहरते हैं। यदि वह एक महीने के लिए मकान देने को तैयार न हो तो वह जितने दिन ठहरने की आज्ञा दे उतने दिन उस मकान मे ठहरे। उसकी आज्ञा की अवधि पूरी होने के बाद उसकी पुन· आज्ञा लिए बिना साधु को उस मकान मे नहीं ठहरना चाहिए। गृहस्थ ने जितने समय के लिए जितने भू-भाग को उपभोग मे लेने की आज्ञा दी हो उतने समय तक उतने ही क्षेत्र को अपने काम मे ले। यदि कोई गृहस्थ साधुओ की सख्या के विषय मे पूछे तो मुनि को निश्चित सख्या मे नहीं बधना चाहिए। क्योकि, कई बार स्वाध्याय आदि के लिए स्थान की अनुकूलता देखकर आस-पास के क्षेत्र मे स्थित साधु भी स्वाध्याय, ध्यान आदि के लिए आ जाते हैं और वापिस चले भी जाते हैं। इस तरह सन्तो की सख्या कम-ज्यादा भी होती रहती है। इसलिए इस सम्बन्ध मे उसे इतना ही कहना चाहिए कि साधुओ की सख्या असीम है, उसे नियमित रूप से नहीं बताया जा सकता, परन्तु आपने जितने समय के लिए आज्ञा दी है उससे ज्यादा समय आपकी आज्ञा लिए बिना कोई भी साधु नही ठहरेगा।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**अहालद-यथालद**' पद का अर्द्धमागधी कोष मे निम्न अर्थ किया है- 'जितने समय के लिए कहा गया हो उतने समय तक ठहरे।' पानी से भीगा हुआ हाथ जितनी देर मे सूखे उतने समय को जघन्य यथालन्द काल कहते हैं और पाच दिन की अवधि को उत्कृष्ट यथालन्द काल कहते हैं तथा उन दोनो के बीच के समय को मध्यम यथालन्द काल कहते हैं[१]।

इस तरह उपाश्रय की आज्ञा लेने के बाद साधु को किस तरह रहना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से भिक्खू वा जस्सुवस्सए संवसिज्जा तस्स पुव्वामेव नामगुत्तं जाणिज्जा। तओ पच्छा तस्स गिहे निमंतेमाणस्स वा अनिमंतेमाणस्स वा असणं वा ४ अफासुयं जाव नो पडिगाहेज्जा ॥९०॥

छाया— स भिक्षुर्वा यस्योपाश्रये संवसेत् तस्य पूर्वमेव नामगोत्रं जानीयात् , तत. पश्चात् तस्य गृहे निमंत्रयतः वा अनिमंत्रयतः वा अशनं वा ४ अप्रासुकं यावन्न प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ— **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **जस्सुवस्सए**-जिसके उपाश्रय मे। **संवसिज्जा**-ठहरे। **तस्स**-उसके। **नामगुत्त**-नाम और गोत्र को। **पुव्वामेव**-पहले ही। **जाणिज्जा**-जाने। **तओ पच्छा**-

---

२ अर्द्धमागधी कोष, पृष्ठ ४५७।

तत्पश्चात्। **तस्स गिहे**-उसके घर मे। **निमंतेमाणस्स वा**-निमत्रित करने पर अथवा। **अनिमंतेमाणस्स**-अनिमंत्रित करने पर। **असणं वा॰**-अशनादि चतुर्विध आहार को। **अफासुयं**-अप्रासुक। **जाव**-यावत् अनेषणीय जानकर। **नो पडिगाहेज्जा**-ग्रहण न करे।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी जिस गृहस्थ के उपाश्रय-स्थान मे ठहरे, उसका नाम और गोत्र पहले ही जान ले। तत्पश्चात् उसके घर मे निमत्रित करने या न करने पर भी अर्थात् बुलाने या न बुलाने पर भी उसके घर का अशनादि चतुर्विध आहार ग्रहण न करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मकान मे ठहरने के पश्चात् शय्यातर के नाम एव गोत्र तथा उसके मकान आदि का परिचय करना चाहिए। आगमिक परिभाषा मे मकान मालिक को शय्यातर कहते हैं। शय्या का अर्थ है-मकान और तर का अर्थ है-तैरने वाला, अर्थात् शय्या+तर का अर्थ हुआ- साधु को मकान का दान देकर ससार-समुद्र से तैरने वाला। शय्यातर के नाम आदि का परिचय करने का यह तात्पर्य है कि उसके घर को अच्छी तरह पहचान सके। क्योकि, भगवान ने शय्यातर के घर का आहार-पानी लेने का निषेध किया है। इसका कारण यह रहा है कि अन्य सम्प्रदायो मे यह परम्परा थी कि जो किसी अन्य मत के साधु को ठहरने के लिए स्थान देता था उसे ही उसके आहार-पानी आदि का सारा प्रबन्ध करना पडता था। इस तरह वह भिक्षु उसके लिए बोझ रूप बन जाता था। इस कारण कई व्यक्ति निर्दोष मकान होते हुए भी देने से इन्कार कर देते थे। परन्तु, जैन साधु का जीवन किसी भी व्यक्ति पर बोझ रूप नहीं रहा है। इसी कारण भगवान ने साधुओ को यह आदेश दिया है कि जिस समय से शय्यातर के मकान मे ठहरे तब से लेकर जब तक उस मकान मे रहे तब तक शय्यातर के घर का आहार-पानी आदि ग्रहण न करे अर्थात् मकान का दान देने वाले पर दूसरा किसी तरह का बोझ नहीं डाले। इसलिए शय्यातर के नाम आदि का परिचय करना जरूरी है, जिससे आहारादि के लिए उसके घर को छोडा जा सके।

उपाश्रय की योग्यता एव अयोग्यता के विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं॰ ससागारियं सागणियं सउदयं, नो पन्नस्स निक्खमणपवेसाए जावऽणुचिंताए तहप्पगारे उवस्सए नो ठा॰ ॥९१ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ ससागारिकं साग्निकं सोदकं न प्राज्ञस्य निष्क्रमणप्रवेशाय यावदनुचितया, तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं॰।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-वह फिर उपाश्रय को जाने यथा। **ससागारिय**-गृहस्थो से युक्त। **सागणिय**-अग्नि से युक्त। **सउदयं**-जल से युक्त उपाश्रय। **पन्नस्स**-प्रज्ञावान के लिए। **नो निक्खमणपवेसाए**-निकलने और प्रवेश करने योग्य नहीं है। **जाव**-यावत्। **अणुचिन्ताए**-अनुचिन्तन अर्थात् धर्मानुयोग के चिन्तन करने योग्य भी नहीं है। **तहप्पगारे**-साधु तथाप्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय मे। **नो ठाणं॰**-न ठहरे।

***मूलार्थ*—जो उपाश्रय गृहस्थों से, अग्नि से और जल से युक्त हो, उसमे प्रज्ञावान् साधु**

या साध्वी को निष्क्रमण और प्रवेश नहीं करना चाहिए तथा वह उपाश्रय धर्मचिन्तन के लिए भी उपयुक्त नहीं है। अत· साधु को उसमें कायोत्सर्गादि क्रियाएं नहीं करनी चाहिएं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को ऐसे उपाश्रय मे नहीं ठहरना चाहिए जिसमे गृहस्थो का, विशेष करके साधुओ के स्थान मे बहनो का एव साध्वियो के स्थान मे पुरुषो का आवागमन रहता हो और जिन स्थानो मे अग्नि एव पानी रहता हो[१]। क्योकि इन सब कारणो से साधु के मन मे विकृति आ सकती है। इसलिए साधु को इन सब बातो से रहित स्थान मे ठहरना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं॰ गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पंथए पडिबद्धं वा नो पन्नस्स जाव चिंताए, तह॰ उ॰ नो ठा॰॥९२॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ गृहपतिकुलस्य मध्यमध्येन गन्तुं पंथा. प्रतिबद्धं वा नो प्राज्ञस्य यावच्चिंतया तथाप्रकारे उपाश्रये न स्था॰।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-वह जो फिर उपाश्रय को जाने, जिस उपाश्रय का मार्ग। **गाहावइकुलस्स**-गृहपति के घर के। **मज्झंमज्झेणं**-मध्य मे होकर। **गतुं**-जाने का। **पंथए**-मार्ग है। **वा**-अथवा। **पडिबद्धं**-प्रतिबद्ध है अर्थात् उसके अनेक द्वार हैं तथा वहा पर स्त्री आदि विशेष रूप से आती-बैठती है तो। **पन्नस्स**-प्रज्ञावान साधु को। **जाव चिंताए**-यावत् पाच प्रकार का स्वाध्याय करना। **नो**-नहीं कल्पता है और। **तहप्पगारे**-तथाप्रकार के। **उ॰**-उपाश्रय मे। **नो ठाणं॰**-स्थानादि कायोत्सर्गादि करना योग्य नहीं है।

***मूलार्थ*—जिस उपाश्रय मे जाने के लिए गृहपति के कुल से–गृहस्थ के घर से होकर जाना पड़ता हो, और जिसके अनेक द्वार हो ऐसे उपाश्रय मे बुद्धिमान साधु को स्वाध्याय और कायोत्सर्ग-ध्यान नहीं करना चाहिए अर्थात् ऐसे उपाश्रय मे वह न ठहरे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जिस उपाश्रय मे जाने का मार्ग गृहस्थ के घर मे से होकर जाता हो तो साधु को ऐसे स्थान मे नहीं ठहरना चाहिए। क्योकि,बार-बार गृहस्थ के घर मे से आते-जाते स्त्रियो को देखकर साधु के मन मे विकार जागृत हो सकता है तथा साधु के बार-बार आवागमन करने से गृहस्थ के कार्य मे भी विघ्न पड सकता है या बहिनो के मन मे सकोच या अन्य भावना उत्पन्न हो सकती है। इसी कारण आगम मे ऐसे स्थानो मे ठहरने का निषेध किया गया है, परन्तु साध्वियो के लिए ऐसे स्थान मे ठहरने का निषेध नहीं किया गया है[२]।

---

१ इस संबन्ध मे विशेष जानकारी करने की जिज्ञासा रखने वाले पाठको को बृहत्कल्प सूत्र का १, २ उद्देशक और निशीथ सूत्र का ८वा उद्देशक देखना चाहिए।

२ नो कप्पइ निग्गंथाण गाहावइकुलस्स मज्झमज्झेण ठातु वत्थए। कप्पइ निग्गंथीणं गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गतु वत्थए। – बृहत्कल्प सूत्र, १, ३३, ३४।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं०, इह खलु गाहावई वा० कम्मकरीओ वा अन्नमन्नं अक्कोसंति वा जाव उद्दवंति वा नो पन्नस्स० सेवं नच्चा तहप्पगारे उ० नो ठा० ॥९३ ॥

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं पुण० इह खलु गाहावई वा कम्मकरीओ वा अन्नमन्नस्स गायं तिल्लेण वा नव० घ० वसाए वा अब्भंगेंति वा मक्खेंति वा नो पण्णस्स जाव तहप्प० उव० नो ठा० ॥९४ ॥

मूलम्– से भिक्खू वा० से जं पुण०-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अन्नमन्नस्स गायं सिणाणेण वा क० लु० चु० प० आघंसंति वा पघंसंति वा उव्वलंति वा उव्वट्टिंति वा नो पन्नस्स० ॥९५ ॥

मूलम्– से भिक्खू० से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा, इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरी वा अण्णमण्णस्स गायं सीओदग० उसिणो० उच्छो० पहोयंति वा सिंचंति वा सिणायंति वा नो पन्नस्स जाव नो ठाणं० ॥९६ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा० स यत्० इह खलु गृहपतिर्वा० कर्मकर्यो वा अन्योऽन्यं आक्रोशन्ति वा यावत् उपद्रवन्ति वा नो प्राज्ञस्य० तदेवं ज्ञात्वा तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं० ॥ ९३ ॥

छाया– स भिक्षु० स यत् पुन ० इह खलु गृहपतिः वा० कर्मकर्यो वा अन्योऽन्यस्य गात्रं तैलेन वा नवनीतेन वा घृतेन वा वसया वा अभ्यंगयन्ति वा म्रक्षयन्ति वा नो प्राज्ञस्य यावत् तथाप्रकारे उपाश्रये नो स्थानं० ॥ ९४ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा स यत् पुनः इह खलु गृहपतिर्वा यावत् कर्मकर्यो वा अन्योऽन्यस्य गात्रं स्नानेन वा कर्केण वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा पद्मेन० आघर्षयन्ति वा प्रघर्षयन्ति उद्वलयन्ति वा उद्वर्तयन्ति वा नो प्राज्ञस्य० ॥ ९५ ॥

छाया– स भिक्षुः० स यत् पुनरुपाश्रयं जानीयात् , इह खलु गृहपतिर्वा यावत् कर्मकर्यो वा अन्योन्यस्य गात्रं शीतोदक० उष्णो० उच्छोल० प्रधावयन्ति वा सिंचन्ति वा स्नपयन्ति वा नो प्राज्ञस्य यावत् नो स्थानम्० ॥ ९६ ॥

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। से जं०-फिर वह जो उपाश्रय को जाने जैसे कि। इह खलु-निश्चय ही इस ससार मे। गाहावई-गृहपति। जाव-यावत्। कम्मकरीओ वा-गृहपति की दासिये। अन्नमन्नं-परस्पर। अक्कोसंति वा-आक्रोश करती है। जाव-यावत्। उद्दवंति वा-उपद्रव करती हैं अत वहां। पन्नस्स०-बुद्धिमान साधु को स्वाध्याय आदि नहीं करना चाहिए तथा। सेव नच्चा-वह साधु इस प्रकार जानकर। तहप्पगारे-तथाप्रकार के। उ०-उपाश्रय मे। नो ठा०-कायोत्सर्गादि न करे।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-फिर जो उपाश्रय को जाने जैसे कि। **इह खलु**-निश्चय ही इस ससार मे। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-गृहपति की दासिये। **अन्नमन्नस्स**-परस्पर एक-दूसरे के। **गाय**-शरीर को। **तिल्लेण वा**-तेल से अथवा। **नव॰**-नवनीत-मक्खन से। **घ॰**-घी से। **वसाए वा**-वसा से। **अब्भगेति वा**-मर्दन करते या करती है। **मक्खेंति वा**-तेल आदि लगाती है तो। **नो पण्णस्स**-प्रज्ञावान साधु को वहा पर स्वाध्याय आदि नही करना चाहिए। **जाव**-यावत्। **तहप्प॰**-तथाप्रकार के। **उप॰**-उपाश्रय मे। **नो ठा॰**-स्थानादि नहीं करना चाहिए।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से ज पुण॰**-वह जो फिर उपाश्रय को जाने। **इह खलु**-निश्चय ही इस ससार मे। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-उसकी दासिये। **अन्नमन्नस्स**-परस्पर एक-दूसरे के। **गाय**-शरीर को। **सिणाणेण वा**-पानी से। **क॰**-कर्क-सुगन्धित द्रव्य से। **लु॰**-लोध्र से। **चु॰**-चूर्ण से-**प॰**-पद्म से-पद्म द्रव्य से। **आघसंति वा**-साफ करती है। **पघसति वा**-प्रघर्षित करती है। **उव्वलति वा**-तेल आदि से मर्दन करती है। **उव्वट्टिति वा**- उद्वर्तन करती है-उबटन करती है। **नो पन्नस्स॰**-अत प्रज्ञावान साधु को इस प्रकार के उपाश्रय मे स्वाध्याय और ध्यानादि नही करना चाहिए।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से जं पुण**-फिर वह। **उवस्सय**-उपाश्रय को जाने। **इह खलु**-निश्चय ही इस ससार मे। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-गृहपति की दासिये। **अण्णमण्णस्स**-परस्पर एक-दूसरे के। **गाय**-शरीर को। **सीओदग॰**-शीतल जल से। **उसिणो॰**-उष्ण जल से। **उच्छो॰**-अभिसिक्त करती है, छींटे देती है। **पहोयंति**-धोती है। **सिंचति**-जल से सिचन करती है। **सिणायति वा**-स्नान करती है तो। **नो पन्नस्स जाव नो ठाण॰**-प्रज्ञावान् साधु को इस प्रकार के उपाश्रय मे स्थानादि नहीं करना चाहिए।

_मूलार्थ_—साधु और साध्वी गृहस्थ के उपाश्रय को जाने, जैसे कि जिस उपाश्रय-बसती मे, गृहपति और उसकी स्त्री यावत् दास-दासिए परस्पर एक-दूसरे को आक्रोशती– कोसती है, मारती और पीटती यावत् उपद्रव करती है। तथा परस्पर एक-दूसरे के शरीर को तेल से, मक्खन से, घी से और वसा से मर्दन करती हैं और एक-दूसरे के शरीर को पानी से, कर्क से, लोध्र से, चूर्ण से और पद्मद्रव्य से साफ करती हैं मैल उतारतीं हैं तथा उबटन करती है और एक-दूसरे के शरीर को शीतल जल से, उष्ण जल से छींटे देती हैं, धोती है, जल से सींचन करती हैं और स्नान कराती है, प्रज्ञावान् साधु को इस प्रकार के उपाश्रय मे न ठहरना चाहिए और न कायोत्सर्गादि क्रियाए करनी चाहिएं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत चार सूत्रो मे यह बताया गया है कि जिस वस्ती मे स्त्रिया परस्पर लडती झगडती हो, मार-पीट करती हो, या एक-दूसरी के शरीर पर तेल आदि स्निग्ध पदार्थो की मालिश करती हो, मैल उतारती हो, या परस्पर पानी उछालती हो, छींटे मारती हो या इसी तरह की अन्य क्रीडाए करती हो तो मुनि को ऐसे स्थान मे नही ठहरना चाहिए। ये चारो सूत्र स्त्रियो से सम्बन्धित हैं, अत ऐसे स्थानो मे साधुओ को ठहरने के लिए निषेध किया गया है, क्योकि, इससे उनके मन मे विकार जागृत हो

सकता है। परन्तु, साध्विया ऐसे स्थान मे ठहर सकती हैं। यदि किसी वस्ती मे उपरोक्त क्रियाए पुरुष करते हो तो वहा साध्वियो को नहीं ठहरना चाहिए। छेद सूत्रो मे भी बताया गया है कि जिस मकान मे स्त्रिया रहती हों उस मकान मे साधु को तथा जिस मकान मे पुरुष रहते हो उस मकान मे साध्वियो को ठहरना नहीं कल्पता[१]।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार लिखते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं॰ इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा निगिणा ठिया निगिणा उल्लीणा मेहुणधम्मं विन्नविंति रहस्सियं वा मंतं मंतंति नो पन्नस्स जाव नो ठाणं वा ३ चेइज्जा ॥९७॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ इह खलु गृहपतिर्वा यावत् कर्मकर्यो वा नग्ना· स्थिताः नग्नाः उपलीनाः मैथुनधर्मं विज्ञपयन्ति रहस्यं वा मंत्रं मंत्रयन्ते न प्राज्ञस्य यावन्न स्थानं वा ३ चेतयेत्।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा॰**-साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-यदि उपाश्रय के सम्बन्ध मे जाने कि। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **इह**-इस ससार में। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-उसकी दासिया। **निगिणा ठिया**-नग्न हो कर खड़ी है। **निगिणा उल्लीणा**-नग्न प्रच्छन्न। **मेहुणधम्म**-मैथुन धर्म विषयक। **रहस्सियं**-किचित् रहस्य को। **विन्नविंति**-परस्पर- आपस मे कह रही है अथवा। **मंत मंतति**-अकार्य के लिए परस्पर गुप्त मन्त्रणा, गुप्त विचार करती है इसलिए। **नो पन्नस्स जाव**-प्रज्ञावान साधु को इस प्रकार के उपाश्रय मे निष्क्रमण और प्रवेश नहीं करना चाहिए तथा। **नो ठाण वा ३ चेइज्जा**-कायोत्सर्गादि भी नहीं करना चाहिए।

_मूलार्थ_—जिस उपाश्रय-वस्ती मे गृहपति यावत् उसकी स्त्रियां और दासियां आदि नग्न अवस्था मे खड़ी हैं, और नग्न होकर मैथुनधर्म विषय परस्पर वार्तालाप करती है, अथवा कोई रहस्यमय अकार्य के लिए गुप्तमंत्रणा-गुप्त विचार करती है तो बुद्धिमान साधु को ऐसे उपाश्रय मे नहीं ठहरना चाहिए और उसमे कायोत्सर्गादि भी नहीं करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जिस मकान मे स्त्री - पुरुष नग्न होकर आमोद-प्रमोद मे व्यस्त हो, विषय-भोग सम्बन्धी वार्तालाप करते हो, रात्रि मे मैथुन सेवन के लिए परस्पर प्रार्थना करते हो या किसी रहस्यमय कार्य के लिए गुप्त मन्त्रणा कर रहे हो, तो विवेक सम्पन्न साधु को ऐसे

---

१ नो कप्पइ निग्गथाण इत्थीसागारिए उवस्सए वत्थए।
कप्पइ निग्गथाण पुरिससागारिए उवस्सए वत्थए।
नो कप्पइ निग्गथीण पुरिससागारिए उवस्सए वत्थए।
कप्पइ निग्गथीण इत्थीसागारिए उवस्सए वत्थए।
नो कप्पइ निग्गथाण पडिबद्धए सेजाए वत्थए।
कप्पइ निग्गथीण पडिबद्धए सेजाए वत्थए।
– बृहत्कल्प सूत्र, १, २७-३२।

स्थान मे नहीं ठहरना चाहिए। क्योकि इससे साधु के स्वाध्याय, ध्यान एव चिन्तन-मनन मे विघ्न पडेगा और उसके मन मे भी विकार भावना जागृत हो सकती है। इसलिए साधु को सदा ऐसे स्थानो से बचकर ही रहना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि जब मानव मन मे विषय-वासना की आग प्रज्वलित होती है तो उस समय वह अपना सारा विवेक भूल जाता है। कभी-कभी तो वह मानवीय सभ्यता को त्याग कर पशुता के स्तर पर भी पहुँच जाता है। उस समय उसे वस्त्रो का त्याग करने मे भी हिचक नहीं होती और अश्लील शब्दो पर तो उसका जरा भी प्रतिबन्ध नही रहता है। इसलिए साधु-साध्वियो को ऐसे अश्लील वातावरण से सदा दूर रहना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा से जं पुण उ० आइन्नसंलिक्खं नो पन्नस्स० ॥९८॥

छाया– स भिक्षुर्वा स यत् पुन. उ० आकीर्णसलेख्य नो प्राज्ञस्य०।

पदार्थ– **से**-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **से ज पुण उ०**-फिर वह उपाश्रय के सम्बन्ध मे यह जाने कि। **आइन्नसलिक्खं**-जो मकान स्त्री-पुरुष आदि के चित्रो से सुसज्जित है तो। **नो पन्नस्स**-प्रज्ञावान साधु को उस स्थान पर नहीं ठहरना चाहिए और वहा स्वाध्याय आदि भी नहीं करना चाहिए।

***मूलार्थ*—जो उपाश्रय स्त्री-पुरुष आदि के चित्रों से सज्जित हो रहा है तो उस उपाश्रय मे प्रज्ञावान साधु को नहीं ठहरना चाहिए और वहां पर स्वाध्याय अथवा ध्यानादि भी नहीं करना चाहिए।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को चित्रो से आकीर्ण उपाश्रय मे नहीं ठहरना चाहिए। इसमे चित्र मात्र का उल्लेख किया गया है। यहा स्त्रियो एव पुरुषो आदि के चित्र का भेद नहीं किया गया है। इससे यह ध्वनित होता है कि केवल चित्र का अवलोकन करने मात्र से ही विकार की जागृति नही होती। यदि स्त्री का चित्र देखते ही साधु का मन साधना के बाध को तोडकर वासना की ओर प्रवहमान होने लगे तो फिर कोई भी साधु सयम मे स्थिर नहीं रह सकेगा। क्योकि, व्याख्यान सुनने एव दर्शन के लिए आने वाली बहिनो को प्रत्यक्ष रूप मे देखकर तथा आहार-पानी के समय भी उन्हे देखकर या उनसे बाते करके तो वह न मालूम कहा जा गिरेगा। अस्तु, सयम का नाश केवल स्त्री के चित्र या शरीर को देखने मात्र से नहीं होता, अपितु विकारी भाव से देखने पर होता है।

इससे प्रश्न पैदा होता है कि फिर सूत्रकार ने चित्रो से युक्त मकान मे ठहरने का निषेध क्यो किया ? इसका समाधान यह है कि चित्र केवल विकृति के ही साधन नहीं हैं, उसका और रूप मे भी प्रभाव पडता है। यदि केवल विकार उत्पन्न होने की दृष्टि से ही निषेध किया जाता तो यह उल्लेख अवश्य किया जाता कि साधु को स्त्री के चित्रो से चित्रित उपाश्रय मे तथा साध्वी को पुरुषो के चित्र युक्त उपाश्रय मे नहीं ठहरना चाहिए। परन्तु, प्रस्तुत सूत्र मे तो केवल स्त्री-पुरुष के चित्र ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी एव नदी, पर्वत, जगल आदि के प्राकृतिक चित्रो से युक्त उपाश्रय मे भी ठहरने का निषेध किया है।

जब कि पशु-पक्षी एव प्रकृत्ति सम्बन्धी चित्रो को देखकर विकार भाव जागृत नहीं होते हैं। फिर भी इसका निषेध किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि उपाश्रय मे चित्रित चित्र चाहे स्त्री-पुरुष के हो या अन्य किन्हीं प्राणियो एव प्राकृतिक दृश्यो के हो, साधु उन्हे देखने मे व्यस्त हो जाएगा और उसका स्वाध्याय एव ध्यान का समय चक्षुइन्द्रिय के पोषण मे लग जाएगा। इस तरह उसकी ज्ञान और ध्यान की साधना मे विघ्न पडेगा और यदि उन चित्रो मे आसक्ति उत्पन्न हो गई तो मन मे विकृत भाव भी उत्पन्न हो सकते हैं। अस्तु ज्ञान-दर्शन की साधना के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए साधु को ऐसे स्थानो मे ठहरने का निषेध किया गया है। छेद सूत्रो मे भी ऐसे स्थानो मे ठहरने का निषेध किया गया है[1]।

मकान मे ठहरने के बाद तख्त आदि की आवश्यकता होती है, अत साधु को कैसा तख्त ग्रहण करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० अभिकंखिज्जा संथारगं एसित्तए, से जं० संथारगं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणयं, तहप्पगारं संथारं लाभे संते नो पडि० १। से भिक्खू वा से जं० अप्पंडं जाव संताणगरुयं तहप्पगारं नो प० २। से भिक्खू वा० अप्पंडं लहुयं अपाडिहारियं तह० नो प० ३। से भिक्खू वा० अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं लहुयं पाडिहारियं नो अहाबद्धं, तहप्पगारं लाभे संते नो पडिगाहिज्जा ४। से भिक्खू वा २ से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव संताणगं लहुअं पाडिहारियं अहाबद्धं, तहप्पगारं संथारगं लाभे संते पडिगाहिज्जा ५ ॥९९।

छाया- स भिक्षुर्वा० अभिकाक्षेत् सस्तारक एषितुं स यत्० सस्तारक जानीयात् साण्डं यावत् संसतानक तथाप्रकार संस्तारकं लाभे सति न प्रति० १। स भिक्षुर्वा स यत्० अल्पाड यावत् सन्तानगुरुकं तथाप्रकार नो प्र० २। स भिक्षुर्वा० अल्पांडं लघुकं अप्रतिहारकं तथाप्रकारं न प्र० ३। स भिक्षुर्वा० अल्पाडं यावत् अल्पसन्तानकं लघुकं प्रतिहारकं नो यथाबद्ध तथाप्रकारं लाभेसति नो प्रतिगृह्णीयात् ४। स भिक्षुर्वा २ स यत् पुन. संस्तारकं जानीयात् अल्पाड यावत् सन्तानकं लघुकं प्रतिहारक यथाबद्धं तथाप्रकार संस्तारकं लाभे सति प्रतिगृह्णीयात् ५।

पदार्थ- से-वह। भिक्खू वा०-साधु या साध्वी। सथारग-फलक आदि सस्तारक की। एसित्तए-गवेषणा करनी। अभिकखेज्जा-चाहे तो। से जं०-वह भिक्षु-साधु। सथारगं-सस्तारक तख्त आदि जो। सअंड-अडो से युक्त है। जाव-यावत्। ससंताणयं-मकड़ी के जालों आदि से युक्त है। जाणिज्जा-जाने। तहप्पगारं-तथाप्रकार के। सथार-सस्तारक को। लाभे सते-मिलने पर भी। नो पडि०-ग्रहण न करे।

से-वह। भिक्खू वा-साधु या साध्वी। से ज०-वह फिर ससतारक को जाने जो। अप्पंडं-अंडो से

1 बृहत्कल्प सूत्र, १,२१।

रहित है। **जाव**-यावत्। **संताणगं**-जालो से रहित है, किन्तु। **गुरुयं**-गुरु-भारी है। **तहप्पगारं॰**-तथाप्रकार के संस्तारक को मिलने पर ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा॰**-साधु या साध्वी सस्तारक को जाने, जैसे कि। **अप्पंड**-अडो से रहित है। **लहुयं**-लघु-हल्का भी है किन्तु। **अप्पडिहारियं**-गृहस्थ उसे देने के बाद वापिस लेना नहीं चाहता है। **तह॰**-तथाप्रकार के सस्तारक मिलने पर भी। **नो प॰**-ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी सस्तारक को जाने जैसे कि। **अप्पंडं**-जो अंडो से रहित है। **जाव**-यावत्। **अप्पसताणग**-जाले आदि से रहित है। **लहुय**-लघु भी है। **पाडिहारिय**-गृहस्थ देकर वापिस लेना भी स्वीकार करता है किन्तु। **नो अहाबद्धं**-उसके बन्धन शिथिल है तो। **तहप्पगार**-इस प्रकार का सस्तारक। **लाभे संते**-मिलने पर भी। **नो पडिगाहिज्जा**-ग्रहण न करे।

से-वह। **भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। **से ज पुण**-फिर जो। **संथारग**-सस्तारक है उसे। **जाणिज्जा**-जाने। **अप्पंडं**-जो अडो से रहित है। **जाव**-यावत्। **सताणग**-जाला आदि से रहित है। **लहुअं**-लघु है। **पाडिहारियं**-गृहस्थ देकर फिर पीछे लेना स्वीकार करता है और। **अहाबद्ध**-उसके बन्धन भी दृढ है। **तहप्पगारं**-इस प्रकार का। **सथारग**-संस्तारक। **लाभे संते**-मिलने पर। **पडिगाहिज्जा**-ग्रहण कर ले।

मूलार्थ—**जो साधु या साध्वी फलक आदि संस्तारक की गवेषणा करनी चाहे तो वह सस्तारक के सम्बन्ध मे यह जाने कि जो सस्तारक अण्डो से यावत् मकड़ी आदि के जालो से युक्त है, ऐसे संस्तारक को मिलने पर भी ग्रहण न करे।**

इसी प्रकार जो संस्तारक अण्डो और जाले आदि से तो रहित है, किन्तु भारी है, ऐसे सस्तारक का भी मिलने पर ग्रहण न करे।

जो सस्तारक अण्डो आदि से रहित है एव लघु भी है किन्तु गृहस्थ उसे देकर फिर वापिस लेना नहीं चाहता है, तो ऐसा सस्तारक भी मिलने पर स्वीकार न करे।

इसी तरह जो सस्तारक अण्डादि से रहित है, लघु है और गृहस्थ ने उसे वापिस लेना भी स्वीकार कर लिया है परन्तु उसके बन्धन शिथिल है तो ऐसा सस्तारक भी स्वीकार न करे।

जो संस्तारक अण्डो आदि से रहित है, लघु है , गृहस्थ ने वापिस लेना भी स्वीकार कर लिया है और उसके बन्धन भी सुदृढ़ है, तो ऐसे संस्तारक को मिलने पर साधु ग्रहण कर ले।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे सस्तारक-तख्त, पट्टा आदि के ग्रहण करने की विधि बताई गई है। इसमे बताया गया है कि जो तख्त अण्डे एव जीव-जन्तुओ से युक्त हो, भारी हो, जिसे गृहस्थ ने वापिस लेने से इन्कार कर दिया हो तथा जिसके बन्धन शिथिल (ढीले) हो, वह तख्त ग्रहण नहीं करना चाहिए। या चारो या इसमे से कोई भी एक कारण उपस्थित हो तो साधु-साध्वी को वैसा तख्त ग्रहण नहीं करना चाहिए। परन्तु , जो तख्त इन चारो कारणो से रहित हो वही तख्त साधु ग्रहण कर सकता है।

इसका कारण यह है कि अण्डे आदि से युक्त तख्त ग्रहण करने से जीवो की हिसा होगी, अत·

सयम की विराधना होगी। और भारी तख्त उठाकर लाने से शरीर को सक्लेश होगा, कभी अधिक बोझ के कारण रास्ते मे पैर के इधर-उधर पडने से पैर आदि मे चोट भी आ सकती है, इस तरह आत्म विराधना होगी। यदि गृहस्थ उस तख्त को वापिस नहीं लेता है तो फिर साधु के सामने यह प्रश्न उपस्थित होगा कि वह उसे कहा रखे। क्योकि उसे उठाकर तो वह विहार कर नहीं सकता, और एक व्यक्ति के यहा से ली हुई वस्तु दूसरे के यहा रख भी नहीं सकता, और यदि वह उसे यो ही त्याग देता है तो उसे परित्याग करने का दोष लगता है और शिथिल बन्धन वाला तख्त लेने से उसे पलिमथ दोष लगेगा। क्योकि यदि उसकी कोई कील निकल गई या वह कहीं से टूट गया तो, साधु क्या करेगा। अत साधु को इन सब दोषो से मुक्त तख्त ही ग्रहण करना चाहिए।

अस्तु जो तख्त अण्डे, जाले आदि से रहित हो, वजन मे हल्का हो[१], साधु की आवश्यकता पूरी होने पर गृहस्थ उसे वापिस लेने के लिए कह चुका हो और जिसके बधन मजबूत हो, वही तख्त साधु-साध्वी को ग्रहण करना चाहिए।

सस्तारक ग्रहण करने के लिए किए जाने वाले अभिग्रहो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम-अह भिक्खू जाणिज्जा इमाइं चउहिं पडिमाहिं संथारगं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा-से भिक्खू वा २ उद्दिसिय २संथारगं जाइज्जा, तंजहा-इक्कडं वा, कढिणं वा, जंतुयं वा, परगं वा, मोरगं वा, तणगं वा, सोरगं वा, कुसं वा, कुच्चगं वा, पिप्पलगं वा, पलालगं वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसो त्ति वा भ० दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं संथारगं ? तह० संथारगं सयं वा णं जाइज्जा, परो वा देज्जा, फासुयं एसणिज्जं जाव पडि०, पढमा पडिमा ॥१००॥

छाया– इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य-अथ भिक्षु· जानीयात् आभि. चतसृभि· प्रतिमाभि सस्तारकमेषितु तत्र खलु इय प्रथमा प्रतिमा-स भिक्षु. वा २ उद्दिश्य २ सस्तारक याचेत् , तद्यथा– इक्कड वा, कठिनं वा, जन्तुकं वा, परक वा, मयूरक वा, तृणकं वा, सोरक वा, कुशं वा, कुर्चक वा, पिप्पलकं वा, पलालकं वा, स पूर्वमेव आलोचयेत्-आयुष्मन् ! इति वा भगिनि ! (इति वा) दास्यसि मे इतोऽन्यतरं संस्तारकं ? तथाप्रकार संस्तारकं स्वयं वा याचयेत् परो वा दद्यात् प्रासुकमेषणीय यावत् प्रतिगृह्णीयात्, प्रथमा प्रतिमा।

पदार्थ– इच्चेयाइ-ये सब पूर्वोक्त। आयतणाइ-वस्ती और संस्तारक के दोषो का स्थान है। उवाइक्कम-इसे अतिक्रम करके अर्थात् तद्गत दोषो को दूर करके। अह भिक्खू-अथ साधु। जाणिज्जा-यह

---

१ व्यवहार भाष्य मे बताया गया है कि जिस तख्त को साधु सहज ही अर्थात् बिना किसी खेद के साथ एक ही हाथ से (बिना दूसरे हाथ मे बदलते हुए) ला सके, ऐसा तख्त ग्रहण करना चाहिए।

जाने। **इमाइं**-इन। **चउहिं**-चार। **पडिमाहिं**-प्रतिमाओ-प्रतिज्ञाओ से साधु को। **संथारगं**-सस्तारक को। **एसित्तए**-गवेषणा करनी चाहिए। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **तत्थ**-इन चार प्रतिमाओ-प्रतिज्ञाओ मे से। **इमा**-यह। **पढमा**-पहली। **पडिमा**-प्रतिमा-प्रतिज्ञा है अर्थात् अभिग्रह विशेष है। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **उद्दिसिय २**-नाम ले ले कर। **संथारग**-सस्तारक की। **जाइज्जा**-याचना करे। **तंजहा**-जैसे कि। **इक्कडं वा**-तृण विशेष से निर्मित। **कढिण वा**-बास की त्वचा से निर्मित। **जंतुय वा**-तृण से निष्पन्न। **परग वा**-परक-जिससे पुष्पादि गून्थे जाते है, वह तृण। **मोरगं वा**-मयूर-पिच्छ से निर्मित। **तणग वा**-तृण विशेष। **सोरग वा**-कोमल तृण विशेष से निर्मित। **कुसं वा**-दूर्वा आदि से निष्पन्न। **कुच्चग वा**-कूर्चक-जिससे कूर्चक बनाए जाते है उसका बना हुआ। **पिप्पलग वा**-पीपल के काष्ठ विशेष से निर्मित और। **फलग वा**-शाली आदि के घास से बना हुआ संस्तारक। **से**-वह साधु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आलोइज्जा**-देखे और कहे कि। **आउसोत्ति वा**-हे आयुष्मन् ! गृहस्थ ! **भ०**-हे भगिनि ! **मे**-मुझको। **इत्तो**-इन सस्तारको मे से। **अन्नयरं**-कोई एक। **सथारग**-सस्तारक। **दाहिसि**-दोगी ? **तह०**-तथाप्रकार के। **संथारगं**-सस्तारक की। **सयं वा ण**-स्वय-अपने आप। **जाइज्जा**-याचना करे। **वा**-अथवा। **परो**-गृहस्थ बिना याचना किए ही। **देज्जा**-दे तो। **फासुय**-उसे प्रासुक अथवा। **एसणीयं**-एषणीय मिलने पर। **जाव**-यावत्। **पडि०**-ग्रहण करे। **पढमा पढिमा**-यह पहली प्रतिमा अर्थात् अभिग्रह विशेष है।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी को बस्ती और सस्तारक सम्बन्धि दोषो को छोड़कर इन चार प्रतिज्ञाओ से सस्तारक की गवेषणा करनी चाहिए, इन चार प्रतिज्ञाओ मे से पहली प्रतिज्ञा यह है— साधु तृण आदि का नाम ले लेकर याचना करे। जैसे— इक्कड़-तृण विशेष, कठिन बांस से उत्पन्न हुआ तृण विशेष, तृण विशेष, तृणविशेषोत्पन्न पुष्पादि के गुन्थन करने वाला मयूर पिच्छ से निष्पन्न सस्तारक, दूब, कुशादि से निर्मित सस्तारक पिप्पल और शाली आदि की पलाल आदि को देख कर साधु कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनि ! बहन ! क्या तुम मुझे इन सस्तारकों मे से किसी एक सस्तारक को दोगी ? इस प्रकार के प्रासुक और निर्दोष सस्तारक की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ ही बिना याचना किए दे तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। यह प्रथम अभिग्रह की विधि है।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे निर्दोष सस्तारक की गवेषणा के लिए उदिष्ट, प्रेक्ष्य, तस्यैव और यथासस्तृत[1] चार प्रकार के अभिग्रह का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत प्रसग मे सूत्रकार को सस्तारक से तृण, घास -फूस आदि बिछौना ही अभिप्रेत है। अत यदि साधु-साध्वी को बिछाने के लिए तृण आदि की आवश्यकता पडे तो, उन्हे ग्रहण करने के लिए वह साधु या साध्वी जिस प्रकार का तृण या घास ग्रहण करना हो उसका नाम लेकर उसकी गवेषणा करे। अर्थात् तृण आदि की याचना के लिए जाने से पूर्व यह उद्देश्य बना ले कि मुझे अमुक प्रकार के तृण का सस्तारक ग्रहण करना है। जैसे-इक्कड आदि के तृण, जिनका नाम मूलार्थ मे दिया गया है। इस तरह उस समय एव आज भी साधु-साध्वी विभिन्न तरह के तृण एव घास-फूस के बिछौने का प्रयोग करते हैं। अत. सस्तारक सबन्धी पहली प्रतिमा (अभिग्रह) है कि साधु यह निश्चय करके गवेषणा करे कि मुझे सस्तारक के लिए अमुक तरह का तृण ग्रहण करना है। इस

---

१ प्रस्तुत चार प्रतिमाओ मे से जिनकल्पी मुनि को तस्यैव और यथासस्तृत ये दो प्रतिमाए ही कल्पती है। परन्तु, स्थविरकल्पी मुनि को चारो प्रतिमाए कल्पती हैं। — आचाराङ्ग वृत्ति।

तरह साधु किसी भी एक प्रकार के तृण का नाम निश्चित करके उसकी याचना करता है और यदि कोई गृहस्थ उसे उस तरह के तृण का आमत्रण करे तब भी वह उसे ग्रहण कर सकता है। यह प्रथम प्रतिमा हुई।

अब दूसरी एव तीसरी प्रतिमा का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– अहावरा दुच्चा पडिमा–से भिक्खू वा॰ पेहाए संथारगं जाइज्जा, तंजहा–गाहावइं वा कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा–आउ॰ ? भइ॰ ? दाहिसि मे? जाव–पडिगाहिज्जा, दुच्चा पडिमा।

अहावरा तच्चा पडिमा–से भिक्खू वा॰–जस्सुवस्सए संवसिज्जा जे तत्थ अहासमन्नागए, तंजहा–इक्कडे इ वा जाव पलाले इ वा तस्स लाभे संवसिज्जा, तस्सालाभे उक्कुडुए वा नेसज्जिए वा विहरिज्जा, तच्चा पडिमा ॥१०१॥

छाया– अथापरा द्वितीया प्रतिमा, स भिक्षुर्वा॰ प्रेक्ष्य सस्तारकं याचेत् तद्यथा– गृहपतिं वा कर्मकरीं वा स पूर्वमेव आलोचयेद् आयुष्मन्! भगिनि ! दास्यसि मे ? यावत् प्रतिगृह्णीयाद्, द्वितीया प्रतिमा।

अथापरा तृतीया प्रतिमा स भिक्षुर्वा॰ यस्योपाश्रये संवसेद् ये तत्र यथा- समन्वागताः तद्यथा-इक्कड इति वा यावत् पलाल इति वा तस्य लाभे सवसेत् तस्यालाभे उत्कटुको वा निषण्णो वा विहरेत्, तृतीया प्रतिमा।

पदार्थ– अहावरा-अथ अन्य। दुच्चा पडिमा-दूसरी प्रतिमा के सम्बन्ध मे कहते है। से भिक्खू वा॰-अभिग्रह करने वाला साधु या साध्वी। संथारग-सस्तारक को। पेहाए-देख कर। जाइज्जा-याचना करे। तंजहा-जैसे कि। गाहावइ वा-गृहपति को अथवा। कम्मकरिं वा-दासी को। से-वह भिक्षु-साधु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोइज्जा-देखे और उनके प्रति कहे। आउ॰-हे आयुष्मन् ! गृहपते ! अथवा। भइ॰-हे भगिनि ! मे-मुझे। दाहिसि-यह सस्तारक दोगी ? जाव-यावत्। पडिगाहिज्जा-उसके देने पर उसे ग्रहण करे। दुच्चा-पडिमा-यह दूसरी प्रतिमा है।

पदार्थ– अहावरा-अथ अन्य। तच्चा पडिमा-तीसरी प्रतिमा के सम्बन्ध मे कहते है जैसे कि। से भिक्खू वा॰-वह साधु या साध्वी। जस्सुवस्सए-जिसके उपाश्रय मे। सवसिज्जा-निवास करे। जे-जो। तत्थ-वहा पर अर्थात् उस उपाश्रय मे। अहासमन्नागए-यावन्मात्र उस उपाश्रय मे सस्तारक हैं-जैसे कि। इक्कडे इ वा-इक्कड़ तृण विशेष। जाव-यावत्। पलाले इ वा-पलाल आदि से निर्मित्त सस्तारक है। तस्स लाभे-अत उसके मिलने पर। संवसिज्जा-वह वहा पर निवास करे अर्थात् उसके ऊपर शयनादि क्रिया करे। तस्सालाभे-उसके न मिलने पर अर्थात् उपाश्रय मे उक्त प्रकार के तृण आदि के सस्तारकों के न मिलने पर। उक्कुडुए वा-वह उत्कुटुक आसन। नेसज्जिए वा-पद्म आसन आदि के द्वारा। विहरिज्जा-विचरे अर्थात् रात्रि व्यतीत करे। तच्चा पडिमा-यह तीसरी प्रतिमा है।

मूलार्थ—**द्वितीया प्रतिमा यह है कि साधु या साध्वी गृहपति आदि के परिवार में रखे हुए संस्तारक को देखकर उस की याचना करे— यथा-हे आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा बहन ! क्या तुम मुझे इन संस्तारकों मे से अमुक संस्तारक दोगी ? तब यदि निर्दोष और प्रासुक संस्तारक मिले तो उसे लेकर वह सयम साधना में सलग्न रहे।**

तृतीया प्रतिमा यह है कि साधु जिस उपाश्रय मे रहना चाहता है यदि उसी उपाश्रय मे सस्तारक विद्यमान हो तो गृहस्वामी की आज्ञा लेकर संस्तारक को स्वीकार करके विचरे, यदि उपाश्रय में संस्तारक विद्यमान नहीं है तो वह उत्कुटुक आसन, पद्मासन आदि आसनो के द्वारा रात्रि व्यतीत करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गृहस्थ के घर मे जो तृण आदि रखे हुए हैं, उन्हे देखकर साधु उसकी याचना करे और यदि वह प्रासुक एव निर्दोष हो तो वह उन्हे ग्रहण करे। यह दूसरी प्रेक्ष्य प्रतिमा है। तीसरी प्रतिमा को स्वीकार करने वाला मुनि जिस उपाश्रय मे ठहरना चाहता है उसी उपाश्रय मे स्थित प्रासुक एव निर्दोष तृण ही ग्रहण कर सकता है। यदि उपाश्रय मे तृण आदि नहीं हैं तो वह उत्कुटुक या पद्मासन आदि आसनो से ध्यानस्थ होकर रात व्यतीत करे, परन्तु अन्य स्थान से लाकर तृण आदि न बिछाए। ये दोनो आसन कायोत्सर्ग से ही सम्बद्ध हैं। अत इनका उल्लेख कायोत्सर्ग के लिए किया गया है। क्योकि, कायोत्सर्ग का प्रमुख साधन आसन ही होता है। अत प्रस्तुत उभय आसनो का उल्लेख करने का उद्देश्य यही है कि यदि तृतीया प्रतिमाधारी मुनि को उपाश्रय मे सस्तारक प्राप्त न हो तो वह अपना समय ध्यान एव चिन्तन-मनन मे व्यतीत करे।

अब चतुर्थ प्रतिमा का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूलम्— अहावरा चउत्था पडिमा-से भिक्खू वा अहासंथडमेव संथारगं जाइज्जा, तंजहा-पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहासंथडमेव, तस्स लाभे संते संवसिज्जा, तस्सालाभे उक्कुडुए वा २ विहरिज्जा, चउत्था पडिमा ४॥१०२॥

छाया— अथापरा चतुर्थी प्रतिमा-स भिक्षुर्वा यथासस्तृतमेव सस्तारक याचेत् तद्यथा पृथ्वीशिला वा काष्ठशिलां वा यथासस्तृतमेव तस्य लाभे सति संवसेत् तस्यालाभे उत्कुटुको वा २ विहरेत्, चतुर्थी प्रतिमा।

पदार्थ— **अहावरा**-अथ अन्य। **चउत्था पडिमा**-चतुर्थी प्रतिमा के सम्बन्ध मे कहते हैं, जैसे कि। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **अहासंथडमेव**-जिस उपाश्रय मे रहना चाहता है उस उपाश्रय में बिछाए हुए। **सथारगं**-सस्तारक की। **जाइज्जा**-याचना करे। **तंजहा**-जैसे कि। **पुढविसिलं वा**-पृथ्वी की शिला अथवा। **कट्ठसिलं वा**-काष्ठ की शिला-फलक आदि अथवा। **अहासंथडमेव**-जो तृणादि पहले से बिछाए हुए हैं। **तस्स लाभे संते**-उसके मिलने पर। **संवसिज्जा**-वह वहा निवास करे। **तस्स अलाभे**-और उसके न मिलने पर। **उक्कुडुए वा०**-वह उत्कुटुक आसन वा पद्म आसनादि के द्वारा रात्रि व्यतीत करता हुआ। **विहरिज्जा**-विचरे-समय बिताए। **चउत्था-पडिमा**-यह चौथी प्रतिमा है।

***मूलार्थ*— चतुर्थी प्रतिमा मे यह अभिग्रह होता है कि -उपाश्रय मे सस्तारक पहले से ही बिछा हुआ हो, या पत्थर की शिला या काष्ठ का तख्त बिछा हुआ हो तो वह उस पर शयन कर सकता है। यदि वहाँ कोई भी सस्तारक बिछा हुआ न मिले तो पूर्व कथित आसनों के द्वारा रात्रि व्यतीत करे, यह चौथी प्रतिमा है।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे चतुर्थी प्रतिमा के सम्बन्ध मे यह बताया गया है कि उक्त प्रतिमा को स्वीकार करने वाला मुनि जिस उपाश्रय मे ठहरे उस उपाश्रय मे प्रासुक एव निर्दोष तृण आदि पहले से बिछे हुए हो या पत्थर की शिला या लकडी का तख्त बिछा हुआ हो तो वह उस पर शयन कर सकता है, अन्यथा तृतीया प्रतिमा मे उल्लिखित आसनो के द्वारा रात्रि को आध्यात्मिक चिन्तन करते हुए व्यतीत करता है, परन्तु स्वय सस्तारक बिछाकर शयन नहीं कर सकता है।

इससे स्पष्ट होता है कि अन्तिम की दोनो प्रतिमाए ध्यान एव स्वाध्याय आदि की दृष्टि से रखी गई हैं। वृत्तिकार का भी यही मन्तव्य है। प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**कट्ठसिल**' पद का तात्पर्य काष्ठ के तख्त से ही है।

सस्तारक सम्बन्धी प्रतिमाओ के विषय का उपसहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं अन्नयरं पडिमं पडिवज्जमाणे तं चेव जाव अन्नोऽन्नसमाहिए एवं च णं विहरंति॥१०३॥

छाया— इत्येतासा चतसृणा प्रतिमानामन्यतरा प्रतिमा प्रतिपद्यमान. तच्चैव यावद् अन्योऽन्यसमाधिना एव च विहरन्ति।

पदार्थ— **इच्चेयाण**-इन। **चउण्हं**-चार। **पडिमाण**-प्रतिमाओ मे से। **अन्नयर पडिम**-किसी एक प्रतिमा को। **पडिवज्जमाणे**-ग्रहण करता हुआ अन्य प्रतिमाधारी साधु की हीलना न करे किन्तु। **तं चेव**-शेष वर्णन पिण्डैषणा की तरह जानना। **जाव**-यावत्। **अन्नोऽन्नसमाहिए**-परस्पर समाधि के द्वारा बुद्धिमान साधु। **एव**-इस प्रकार से। **विहरति**-विचरते है। **च ण**-पूर्ववत्।

***मूलार्थ*— इन चार प्रतिमाओ मे से किसी एक प्रतिमा को धारण करके विचरने वाला साधु, अन्य प्रतिमाधारी साधुओ की अवहेलना निन्दा न करे। किन्तु, सब साधु जिनेन्द्र देव की आज्ञा मे विचरते है ऐसा समझ कर परस्पर समाधि-पूर्वक विचरण करे।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान की आज्ञा के अनुरूप आचरण करने वाले सभी साधु समाधियुक्त एव मोक्ष मार्ग के आराधक होने से वन्दनीय एव पूजनीय हैं। अत उक्त चारो प्रतिमाओ मे से किसी एक प्रतिमा को धारण करने वाले मुनि को अन्य मुनियो को अपने से तुच्छ समझकर गर्व नहीं करना चाहिए। क्योकि, त्याग चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अनुरूप ही ग्रहण किया जाता है। अत· प्रत्येक चारित्र निष्ठ मुनि का सम्मान करना चाहिए और अपने अहकार का त्याग करके सबके साथ प्रेम-स्नेह रखना चाहिए।

गृहस्थ से ग्रहण किए गए सस्तारक को वापिस लौटाने की विधि का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा अभिकंखिज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तए, से जं पुण संथारगं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणयं तहप्प॰ संथारगं नो पच्चप्पिणिज्जा ॥१०४॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ अभिकाक्षेत् सस्तारकं प्रत्यर्पयितु स यत् पुन संस्तारकं जानीयात् साण्डं यावत् ससन्तानकं तथाप्रकारं संस्तारकं न प्रत्यर्पयेत्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **सथारगं**-सस्तारक को। **पच्चप्पिणित्तए**-गृहस्थ को पीछे देना। **अभिकखिज्जा**-चाहे तब। **से**-वह भिक्षु। **ज पुण**-जो फिर। **सथारगं**-सस्तारक को। **जाणिज्जा**-जाने कि। **सअड**-जो सस्तारक अण्डो से युक्त। **जाव**-यावत्। **ससताणय**-मकड़ी आदि के जालो से युक्त है। **तहप्पगार**-उस प्रकार के। **संथारग**-सस्तारक को। **नो पच्चप्पिणिज्जा**-गृहस्थ को प्रत्यर्पण न करे अर्थात् गृहस्थ को वापिस न देवे।

मूलार्थ— **साधु या साध्वी यदि प्रतिहारिक संस्तारक, गृहस्थ को वापिस देना चाहे तो वह सस्तारक अण्डो यावत् मकडी के जाले आदि से युक्त नहीं होना चाहिए। यदि वह इन से युक्त है तो वह उसे गृहस्थ को वापिस न करे।**

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को अपनी नेश्राय मे स्थित प्रत्येक वस्तु की प्रतिलेखना करते रहना चाहिए। चाहे वह वस्तु गृहस्थ को वापिस लौटाने की भी क्यो न हो, फिर भी जब तक साधु के पास है, तब तक प्रतिदिन नियत समय पर उसका प्रतिलेखन करना चाहिए। जिससे उस मे जीव-जन्तु की उत्पत्ति न हो। और उसे वापिस लौटाते समय भी प्रतिलेखन करके लौटानी चाहिए। यदि कभी सस्तारक पर किसी पक्षी ने अडे दे दिए हो या मकडी ने जाले बना लिए हो तो वह सस्तारक गृहस्थ को वापिस नही देना चाहिए। क्योकि, गृहस्थ उसे शुद्ध बनाने का प्रयत्न करेगा और परिणामस्वरूप उन जीवो की घात हो जाएगी। इस तरह साधु के प्रथम महाव्रत मे दोष लगेगा, अत उन जीवो की रक्षा के लिए ऐसे सस्तारक को वापिस नहीं लौटाना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू॰ अभिकंखिज्जा सं॰ से जं॰ अप्पंडं॰ तहप्पगारं संथारगं पडिलेहिय २ प॰ २ आयाविय २ विहुणिय २ तओ संजयामेव पच्चप्पिणिज्जा ॥१०५॥

छाया– स भिक्षुः॰ अभिकांक्षेत् सं॰ स यत् अल्पाड॰ तथाप्रकारं संस्तारक प्रतिलिख्य २ प्र॰ २ आताप्य २ विधूय २ तत. संयतमेव प्रत्यर्पयेत्।

पदार्थ – **से भिक्खू॰**-वह साधु या साध्वी। **संथारगं**-सस्तारक को गृहस्थ के प्रति अर्पण करना। **अभिकंखिज्जा**-चाहे तो। **से**-वह साधु। **जं**-जो सस्तारक। **अप्पंडं**-अंडादि से रहित हो। **तहप्पगारं**-तथाप्रकार के संस्तारक को। **पडिलेहिय २**-दृष्टि से प्रतिलेखन करके। **पमज्जिय २**-रजोहरण आदि से प्रमार्जित करके।

आयाविय २-सूर्य की आतापना देकर और। विहुणिय २-यत्नापूर्वक झाड़कर। तओ-तदनन्तर। संजयामेव-यत्नापूर्वक। पच्चप्पिणिज्जा-गृहस्थ को वापिस लौटाए।

***मूलार्थ*—अण्डे एव मकड़ी के जाले आदि से रहित जिस संस्तारक को साधु-साध्वी वापिस लौटाना चाहे, तो वह उसका प्रतिलेखन करके, रजोहरण से प्रमार्जित करके, सूर्य की धूप में सुखा कर एव यत्ना पूर्वक झाड़ कर फिर गृहस्थ को लौटावे।**

***हिन्दी विवेचन*–** इस सूत्र मे बताया गया है कि साधु को गृहस्थ के घर से लाए हुए सस्तारक को वापिस लौटाते समय उसकी शुद्धता का पूरा ख्याल रखना चाहिए। प्रतिदिन उसकी प्रतिलेखना करनी चाहिए जिससे उस पर जीव-जन्तु पैदा न हो, और वापिस लौटाते समय भी उसे अच्छी तरह से देख लेना चाहिए और रजोहरण से प्रमार्जन कर लेना चाहिए जिससे उस पर कूडा-कर्कट भी न जमा रहे। इतना ही नहीं, फिर उसे सूर्य की धूप मे रखकर और भली-भाति झाड-पोछकर लौटाना चाहिए। इससे साधु जीवन की व्यवहारिकता पर विशेष प्रकाश डाला गया है। यदि वह उस सस्तारक को बिना साफ किए ही दे आएगा, तो गृहस्थ उसे साफ करके रखेगा और यह भी स्पष्ट है कि वह सफाई करते समय साधु जितना विवेक नहीं रख सकेगा, अत॰ साधु को ऐसी स्थिति ही नहीं आने देनी चाहिए कि उसके द्वारा उपभोग किए गए सस्तारक को साफ करने के लिए कोई अयत्नापूर्वक प्रयत्न करे। दूसरे मे साफ की हुई वस्तु को देखकर गृहस्थ के मन मे फिर से किसी साधु को देने की भावना सहज ही जागृत होगी और अस्वच्छ रूप मे प्राप्त करके उसके मन मे कुछ रोष भी आ सकता है। अत गृहस्थ के यहा से लाए हुए सस्तारक आदि को यत्नापूर्वक साफ करके ही लौटाना चाहिए।

साधु को बस्ती मे किस तरह निवास करना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा पुव्वामेव पन्नस्स उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहिज्जा, केवली बूया-आयाणमेयं, अपडिलेहियाए उच्चारपासवणभूमीए, से भिक्खू वा॰ राओ वा वियाले वा उच्चारपासवणं परिट्ठवेमाणे पयलिज्ज वा २, से तत्थ पयलमाणे वा २ हत्थं वा पायं वा जाव लूसेज्ज वा पाणाणि वा ४ ववरोविज्जा, अह भिक्खूणं पु॰ जं पुव्वामेव पन्नस्स उ॰ भूमिं पडिलेहिज्जा ॥१०६॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ समानो वा बसन् वा ग्रामानुग्रामं गच्छन् वा पूर्वमेव प्राज्ञस्य उच्चारप्रस्रवणभूमि प्रतिलेखयेत्। केवली ब्रूयात्-आदानमेतत् अप्रतिलिखितायां उच्चारप्रस्रवणभूमौ, स भिक्षुः वा॰ रात्रौ वा विकाले वा उच्चारप्रस्रवणं-परिष्ठापयन् प्रस्खलेद् वा सः तत्र प्रस्खलन् वा॰ हस्तं वा पादं वा यावत् लूषयेत् प्राणान् वा ४ व्यपरोपयेत्, अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टं यत् पूर्वमेव प्राज्ञस्य उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। समाणे वा-जघादि बल से क्षीण होने के कारण किसी एक स्थान में रहता हुआ। वसमाणे वा-वस्ती मे मास कल्पादि करके निवास करता हुआ। गामाणुगाम दूइज्जमाणे वा-ग्रामानुग्राम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे विहार करता हुआ जहा पर जाकर रहे वहा पर। पुव्वामेव-पहले ही। पन्नस्स-प्रज्ञावान् साधु को योग्य है कि वह। उच्चारपासवणभूमिं-उच्चार-मल-मूत्र त्यागने की भूमि को। पडिलेहिज्जा-अपनी दृष्टि से भली-भाति अवलोकन करे, क्योंकि। केवली बूया-केवली भगवान कहते हैं। आयाणमेयं-कि यह कर्म बन्धन का कारण है। क्योंकि। अपडिलेहियाए-बिना प्रतिलेखन की हुई। उच्चारपासवणभूमिए-मल-मूत्र परित्याग करने की भूमि मे। से भिक्खू-वह भिक्षु कदाचित्। राओ वा-रात्रि मे। वियाले वा-विकाल मे। उच्चारपासवण-मल-मूत्र को। परिट्ठवेमाणे-परठता हुआ। पयलिज्ज वा २-फिसल जाए या गिर पड़े तो। तत्थ-वहा पर। पयलमाणे वा २-उसके फिसलने एव गिरने से। से-उसके। हत्थ वा-हाथ। पाय वा-या पैर। जाव-यावत् अन्य कोई शरीर का अग ही। लूसेज्ज वा-टूट जाएगा या। पाणाणि वा-अन्य किसी त्रस प्राणी का। ववरोविज्ज वा-विनाश हो जाएगा। अह भिक्खूणं-इस लिए साधु को। पु०-तीर्थंकरादि ने पहले ही उपदेश दिया है कि। जं-जो। पन्नस्स-प्रज्ञावान् साधु को चाहिए कि वह। पुव्वामेव-पहले ही। उ० भूमिं-मल-मूत्र त्यागने की भूमि का। पडिलेहिज्जा-सम्यक्तया अवलोकन करे।

मूलार्थ—जो साधु या साध्वी जघादि बल से क्षीण होने के कारण एक स्थान मे स्थित हो, या उपाश्रय मे मास कल्पादि से रहता हो या ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ उपाश्रय मे आकर रहे तो उस बुद्धिमान साधु को चाहिए कि वह जिस स्थान मे ठहरे, वहा पर पहले मल-मूत्र का त्याग करने की भूमि को अच्छी तरह से देख ले। क्योंकि भगवान ने बिना देखी भूमि को कर्म बन्धन का कारण कहा है। बिना देखी हुई भूमि मे कोई भी साधु या साध्वी रात्रि मे अथवा विकाल मे मल-मूत्रादि को परठता हुआ यदि कभी पैर फिसलने से गिर पड़े, तो उसके फिसलने या गिरने से उसके हाथ-पैर या शरीर के किसी अवयव को आघात पहुचेगा या उसके गिरने से वहा स्थित अन्य किसी क्षुद्र जीव का विनाश हो जाएगा। यह सब कुछ सभव है, इसलिए तीर्थंकरादि आप्त पुरुषों ने पहले ही भिक्षुओ को यह आदेश दिया है कि साधु को उपाश्रय में निवास करने से पहले वहा मल-मूत्र त्यागने की भूमि की अवश्य ही प्रतिलेखना कर लेनी चाहिए।

हिन्दी विवेचन—इस सूत्र मे साधु को यह आदेश दिया गया है कि वह जिस मकान मे स्थानापति रहना चाहे या मास एव वर्षावास कल्प के लिए ठहरे या विहार करते हुए कुछ समय के लिए ठहरे, तो उसे उस मकान मे मल-मूत्र त्याग करने की भूमि अवश्य देख लेनी चाहिए। क्योकि, यदि वह दिन मे उक्त भूमि की प्रतिलेखना नहीं करेगा तो सम्भव है कि रात्रि के समय भूमि की विषमता आदि का ज्ञान न होने से उसका पैर फिसल जाए और परिणामस्वरूप उसके हाथ-पैर में चोट आ जाए और उसके शरीर के नीचे दब कर छोटे-मोटे जीव-जन्तु भी मर जाए। इस लिए भगवान ने सबसे पहले मल-मूत्र का त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन करना जरुरी बताया है और बिना देखी भूमि मे मल-मूत्र का त्याग करने की प्रवृत्ति को कर्म बन्ध का कारण बताया है।

अब सस्तारक भूमि का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ अभिकंखिज्जा सिज्जासंथारगभूमिं

पडिलेहित्तए, नन्नत्थ आयरिएण वा उ० जाव गणावच्छेएण वा बालेण वा वुड्ढेण वा सेहेण वा गिलाणेण वा आएसेण वा अंतेण वा मज्झेण वा समेण वा विसमेण वा पवाएण वा निवाएण वा तओ संजयामेव पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ संजयामेव बहुफासुयं सिज्जासंथारगं संथरिज्जा ॥१०७॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ अभिकाक्षेत् शय्यासंस्तारकभूमिं प्रतिलेखयितुं नान्यत्र आचार्येण वा उपाध्यायेन वा यावत् गणावच्छेदकेन वा बालेन वा वृद्धेन वा शैक्षेण वा ग्लानेन वा आदेशेन वा अन्तेन वा मध्येन वा समेन वा विषमेण वा प्रवातेन वा निर्वातेन वा तत. सयतमेव प्रतिलिख्य प्रतिलिख्य प्रमृज्य प्रमृज्य ततः संयतमेव बहुप्रासुकं शय्यासंस्तारकं सस्तरेत्।

पदार्थ– से भिक्खू वा–वह साधु या साध्वी। सिज्जासथारगभूमि०–शय्या सस्तारक की भूमि का। पडिलेहित्तए–प्रतिलेखन करना। अभिकखेज्जा–चाहे। नन्नत्थ–इतना विशेष है कि। आयरिएण वा–आचार्य। उ०–उपाध्याय। जाव–यावत्। गणावच्छेएण वा–गणावच्छेदक अथवा। बालेण वा–बालक साधु। वुड्ढेण वा–वृद्ध साधु। सेहेण वा–नव दीक्षित साधु। गिलाणेण वा–रोगी या। आएसेण वा–मेहमान, साधु ने शयन करने के लिए जो भूमि स्वीकार कर रखी है उसको छोड़कर उपाश्रय के। अंतेण वा–अन्दर या। मज्झेण वा–मध्य स्थान मे। समेण वा–सम स्थान मे। विसमेण वा–विषम स्थान में। पवाएण वा–अत्यन्त वायु युक्त स्थान मे। निवाएण वा–वायु रहित स्थान मे। तओ–तदनन्तर। सजयामेव–यतना पूर्वक। पडिलेहिय २–भूमि की प्रतिलेखना करके। पमज्जिय २–और प्रमार्जना करके। तओ–तत् पश्चात्। संजयामेव–यत्ना पूर्वक। बहुफासुय–अत्यन्त प्रासुक। सिज्जासंथारग–शय्या सस्तारक को। सथरिज्जा–बिछाए।

मूलार्थ— साधु या साध्वी यदि शय्या सस्तारक भूमि की प्रतिलेखना करनी चाहे तो आचार्य, उपाध्याय यावत् गणावच्छेदक, बाल, वृद्ध, नव दीक्षित, रोगी और मेहमान रूप से आए साधु के द्वारा स्वीकार की हुई भूमि को छोड़कर उपाश्रय के अन्दर, मध्यस्थान मे या सम और विषम स्थान मे या वायु युक्त और वायु रहित स्थान मे भूमि की प्रतिलेखना, और प्रमार्जना करके तदनन्तर अत्यन्त प्रासुक शय्या-सस्तारक को बिछाए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे शयन करने की विधि का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि साधु को आसन बिछाते समय यह देखना चाहिए कि आचार्य, उपाध्याय आदि ने कहा आसन लगाया है। उन्होंने जिस स्थान पर आसन किया हो उस स्थान को छोड़कर शेष अवशिष्ट भाग मे सम-विषम, हवादार या बिना हवा वाली जैसी भी भूमि हो उसका प्रतिलेखन करके वहा पर आसन कर ले। इसका तात्पर्य यह है कि वह आचार्य आदि की सुविधा का ध्यान अवश्य रखे। इसके लिए वह विषम एव बिना हवादार भूमि पर आसन अवश्य कर ले, परन्तु उसके लिए किसी के स्थान का परिवर्तन न करे और न परिवर्तन करने के लिए सघर्ष करे। इससे साधु समाज के पारस्परिक प्रेम-स्नेह का भाव अभिव्यक्त होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**सिज्जा सथारगं**' का अर्थ है शय्या या आसन करने का उपकरण[१]।

साधु को सस्तारक पर कैसे बैठना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ बहु॰ संथरित्ता अभिकंखिज्जा– बहुफासुए सिज्जासंथारए दुरूहित्तए॥ से भिक्खू॰ बहु॰ दुरूहमाणे पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिय २ तओ संजयामेव बहु॰ दुरूहित्ता तओ संजयामेव बहु॰ सइज्जा ॥१०८॥

छाया– स भिक्षु वा॰ बहु॰ संस्तीर्य अभिकांक्षेत् बहुप्रासुके शय्यासस्तारके दूरोहितु, स भिक्षु.॰ बहु॰ दूरोहन् पूर्वमेव सशीर्षोपरिक कायं पादौ च प्रमृज्य २ तत संयतमेव बहु॰ दूरुह्य तत सयतमेवबहु॰ शयीत।

पदार्थ– **से भिक्खू वा॰**-वह साधु या साध्वी। **बहु॰**-बहु प्रासुक शय्या सस्तारक को। **सथरित्ता**-बिछा करके। **बहुफासुए**-बहु प्रासुक। **सिज्जासथारए**-शय्या सस्तारक पर। **दुरूहित्तए**-बैठना। **अभिकखिज्जा**-चाहे तो-अब सूत्रकार बैठने के विषय मे कहते है। **से भिक्खू॰**- वह साधु या साध्वी। **बहु॰**-बहु प्रासुक शय्या सस्तारक पर। **दुरूहमाणे**-बैठता हुआ। **पुव्वामेव**-बैठने से पहले ही। **ससीसोवरियं कायं**-शीर्ष-सिर के ऊपर का भाग और सर्व शरीर, तथा। **पाए**-पैर पर्यन्त। **पमज्जिय २**-सारे शरीर को प्रमार्जित करके। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु या साध्वी यत्ना पूर्वक। **बहु॰**-बहु प्रासुक शय्या सस्तारक पर बैठे। **दुरूहित्ता**-बैठकर। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-सयत-साधु या साध्वी। **बहु॰**-बहु प्रासुक शय्या सस्तारक पर यतना पूर्वक। **सइज्जा**-शयन करे।

मूलार्थ— **साधु या साध्वी प्रासुक शय्यासस्तारक पर जब बैठकर शयन करना चाहे तब पहले सिर से लेकर पैरो तक शरीर को प्रमार्जित करके फिर यतना पूर्वक उस पर शयन करे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु सस्तारक को यत्ना पूर्वक बिछाने के बाद उस पर शयन करने से पहले अपने शरीर का सिर से लेकर पैरो तक प्रमार्जन कर ले। क्योकि, यदि शरीर पर कोई क्षुद्र जन्तु चढ गया हो या बैठ गया हो तो उसकी हिसा न हो जाए और शरीर पर लगी हुई धूल से वस्त्र भी मैले न हो। अस्तु, सयम की साधना को शुद्ध बनाए रखने के लिए साधु को शरीर का प्रमार्जन करके ही शयन करना चाहिए।

शयन किस तरह करना चाहिए, उसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ सयमाणे नो अन्नमन्नस्स हत्थेण हत्थं, पाएण पायं, कायेण कायं आसाइज्जा, से अनासायमाणे तओ संजयामेव बहु॰ सइज्जा॥ से भिक्खू वा॰ उस्सासमाणे वा, नीसासमाणे वा, कासमाणे वा, छीयमाणे वा, जंभायमाणे वा, उड्डोए वा, वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा,

१ अर्द्धमागधी कोष पृष्ठ ७४२।

पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्ता तओ संजयामेव ऊससिज्जा वा जाव वायनिसग्गं वा करेज्जा ॥१०९॥

छाया— स भिक्षु र्वा॰ बहु॰ शयान न अन्योऽन्यस्य हस्तेन हस्तं, पादेन पादं, कायेन कायं आशातयेत् स अनाशातयन् ततः सयतमेव बहु॰ शयीत। सभिक्षुः वा॰ उच्छ्वसन् वा निश्श्वसन् वा कासमान· वा क्षुतंकुर्वाण. वा जृम्भमाणो वा उद्गिरन् वा वातनिसर्गं कुर्वन् वा पूर्वमेव वा आस्य वा पोष्य वा पाणिना परिपिधाय ततः सयतमेव उच्छ्वसेत् वा यावत् वातनिसर्गं वा कुर्यात्।

पदार्थ— **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **बहु॰**-बहु प्रासुक शय्या संस्तारक पर। **सयमाणे**-शयन करता हुआ। **अन्नमन्नस्स**-परस्पर-एक साधु दूसरे साधु के प्रति। **हत्थेण हत्थ**-अपने हाथ से दूसरे के हाथ को। **पाएण**-पैर से दूसरे के। **पाय**-पैर को। **कायेण काय**-शरीर से दूसरे के शरीर को। **नो आसाइज्जा**-आशातना न करे। **से**-वह साधु। **अणासायमाणे**-आशातना न करता हुआ। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्ना पूर्वक। **बहु॰**-प्रासुक शय्या सस्तारक पर। **सइज्जा**-शयन करे।

से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। **उस्सासमाणे वा**-उच्छ्वास लेता हुआ, अथवा। **नीसासमाणे वा**-निश्वास लेता हुआ इसी प्रकार। **कासमाणे वा**-खांसता हुआ। **छीयमाणे वा**-छींकता हुआ। **जभायमाणे वा**-उवासी लेता हुआ। **उड्डोए वा**-डकार लेता हुआ अथवा। **वायनिसग्ग वा करेमाणे**-अपान वायु को छोड़ता हुआ। **पुव्वामेव**-पहले ही। **आसय वा पोसय वा**-मुख को, या गुदा को। **पाणिणा**-हाथ से। **परिपिहित्ता**-ढाप कर। **तओ**-तत् पश्चात्। **सजयामेव**-यत्ना पूर्वक। **ऊससिज्जा वा**-उच्छ्वास ले। **जाव**-यावत्। **वायनिसग्गं वा**-अपान वायु का निस्सरण। **करेज्जा**-करे अर्थात् अधो द्वार से वायु को छोड़े।

***मूलार्थ*— साधु या साध्वी शयन करते हुए परस्पर-एक-दूसरे को अपने हाथ से दूसरे के हाथ की, पैर से दूसरे के पैर की और शरीर से दूसरे के शरीर की आशातना न करे। अर्थात् इनका एक-दूसरे से स्पर्श न हो। किन्तु आशातना न करते हुए ही शयन करे।**

इसके अतिरिक्त साधु या साध्वी उच्छ्वास अथवा निश्वास लेता हुआ, खासता हुआ, छीकता हुआ, उवासी लेता हुआ अथवा अपान वायु को छोड़ता हुआ पहले ही मुख या गुदा को हाथ से ढाप कर उच्छ्वास ले या अपान वायु का परित्याग करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को शयन करते समय अपने हाथ-पैर से एक-दूसरे साधु की आशातना नहीं करनी चाहिए। अपने शरीर एव हाथ-पैर का दूसरे के शरीर आदि से स्पर्श नही करना चाहिए। क्योकि, ऐसी प्रवृत्ति से शारीरिक कुचेष्टा एव अविनय प्रकट होता है, और मनोवृत्ति की चञ्चलता एव मोहनीय कर्म की उदीरणा के कारण मोहनीय कर्म का उदय भी हो सकता है। अत. साधु को शयन करते समय किसी भी साधु के शरीर को हाथ एव पैर आदि से स्पर्श नहीं करना चाहिए।

यदि साधु को श्वासोच्छ्वास,छींक आदि के आने पर मुह एव गुदा स्थान पर हाथ रखने को

कहा गया है, उसका अभिप्राय इतना ही है कि उससे वायुकायिक जीवो की हिसा न हो। प्रस्तुत प्रसग मे इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि यह वर्णन सामान्य रूप से चलने वाले श्वासोच्छ्वास के लिए नहीं, अपितु विशेष प्रकार के श्वासोच्छ्वास के लिए है। आगम में लिखा है कि फूक आदि मारने से वायु काय की हिसा होती है। इसलिए साधु को इस तरह से यत्ना करने का आदेश दिया गया है[१]।

कुछ लोगो का कहना है कि भाषा के पुद्गल चार स्पर्श वाले होते हैं। अत वे आठ स्पर्श वाले वायुकाय की हिसा कैसे कर सकते हैं ? इसका समाधान यह है कि भाषा-वर्गणा के पुद्गल उत्पन्न होते समय चार स्पर्श वाले होते हैं, परन्तु भाषा के रूप मे व्यक्त होते समय आठ स्पर्श वाले हो जाते हैं। इसी कारण शरीर से उत्पन्न होने वाली अचित्त वायुकाय को आठ स्पर्श युक्त माना गया है और वह ५ प्रकार की मानी गई है[२]। अत मुह से निकलने वाली वायु से वायुकायिक जीवो की हिसा होती है।

यहा एक प्रश्न पैदा हो सकता है कि जब साधु-साध्वी मुख पर मुखवस्त्रिका लगाते हैं, तब फिर श्वासोच्छ्वास से होने वाली वायुकायिक जीवो की हिसा को रोकने के लिए मुह पर हाथ रखने की क्या आवश्यकता है ? हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि यहा सामान्य रूप से चलने वाले श्वासोच्छ्वास के समय मुह पर हाथ रखने का विधान नहीं किया है। यह विधान विशेष परिस्थिति के लिए है- जैसे उबासी, डकार एव छींक आदि के समय जोर से निकलने वाली वायु का वेग मुखवस्त्रिका से नहीं रुक सकता है, ऐसे समय पर मुह पर हाथ रखने का आदेश दिया गया है और मुख के साथ नाक का भी ग्रहण किया गया है। जैसे मुख से निकलने वाली वायु के वेग को रोकने के लिए मुख पर हाथ रखने को कहा है, उसी तरह अपान वायु के वेग को रोकने के लिए गुदा स्थान पर भी हाथ रखने का आदेश दिया है। इससे यह मानना पडेगा कि उस समय साधु चोलपट्टक (धोती के स्थान मे पहनने का वस्त्र) भी नहीं रखते थे। परन्तु, ऐसी बात नहीं है। आगम मे चोलपट्टक एव मुखवस्त्रिका दोनो का विधान मिलता है। अत इन प्रसगो पर उक्त स्थानो पर हाथ रखने का उद्देश्य केवल वायुकायिक जीवो की रक्षा करना ही है।

अब सामान्य रूप से शय्या का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा० समा वेगया सिज्जा भविज्जा विसमा वेगया सि० पवाया वे० निवाया वे० ससरक्खा वे० अप्पससरक्खा वे० सदंसमसगा वे० अप्पदंसमसगा० सपरिसाडा वे० अपरिसाडा वे० सउवसग्गा वे० निरुवसग्गा वे० तहप्पगाराहिं सिज्जाहिं संविज्जमाणाहिं पग्गहियतरागं विहारं विहरिज्जा नो किंचिवि गिलाइज्जा, एवं खलु० जं सव्वट्ठेहिं सहिए सया जए त्ति बेमि ॥११०॥

छाया– स भिक्षु र्वा० समा वा एकदा शय्या भवेत् विषमा वा एकदा शय्या० प्रवाता वा० निर्वाता वा० सरजस्का वा० अल्परजस्का वा० सदशमशका वा० अल्पदंशमशका वा०

१ प्रश्न व्याकरण सूत्र, अ० १, दशवैकालिक सूत्र, अ० ४।

२ पचविहा अचित्ता वाउकाइया प० त० अक्कते, धते, पीलिए, सरीराणुगए, समुच्छिमे।

– स्थानाग सूत्र, ५।

सपरिशाटा वा० अपरिशाटा वा० सोपसर्गा वा० निरुपसर्गा वा तथाप्रकाराभिः शय्याभिः संविद्यमानाभिः प्रगृहीततरं विहारं विहरेत् न किञ्चिदपि ग्लायेत् एव खलु० यत् सर्वार्थैः सहितः सदा यतेत इति ब्रवीमि।

पदार्थ– से-उस। **भिक्खू वा०**-साधु अथवा साध्वी को। **वेगया**-किसी समय। **समा सिज्जा**-सम शय्या। **भविज्जा**-मिलती है। **वेगया**-अथवा किसी समय। **विसमा सि०**-विषम शय्या मिलती है। **वे०**-कभी। **पवाया**-वायु युक्त शय्या मिलती है। **निवाया वे०**-कभी वायु रहित शय्या मिलती है। **ससरक्खा वे०**-कभी रज से युक्त शय्या मिलती है तो। **अप्पससरक्खा वे०**-कभी रज से रहित शय्या प्राप्त होती है। **वेगया**-किसी समय। **सदसमसगा**-डास-मच्छर युक्त शय्या उपलब्ध होती है। **अप्पदसमसगा**-किसी समय दशमशकादि से रहित शय्या मिलती है। **सपरिसाडा वे०**-अथवा किसी समय सर्वप्रकार से गिरी हुई शय्या मिलती है। **अपरिसाडा०**-या दृढ बनी हुई तथा जनाकीर्ण शय्या मिलती है। **सउवसग्गा वे०**-अथवा किसी समय उपसर्गादि युक्त शय्या मिलती है। **निरुवसग्गा वे०**-या कभी उपसर्ग रहित शय्या प्राप्त होती है। **तहप्पगाराहिं**-तथा प्रकार की। **सिज्जाहिं**-शय्याओ की। **सविज्जमाणाहिं**-उपस्थिति मे। **पग्गहियतराग**-उन्हे ग्रहण करके। **विहारं विहरिज्जा**-विहार करता हुआ विचरे। **नो किंचिवि गिलाइज्जा**-किन्तु किंचिन्मात्र भी खेद को प्राप्त न हो। **एवं खलु**-इस प्रकार निश्चय ही वह साधु या साध्वी-साधु के सम्पूर्ण आचार से निष्पन्न होता है। **ज**-जो। **सव्वट्ठेहिं**-ज्ञान दर्शन और चारित्र से। **सया**-सदा। **सहिए**-युक्त होकर विचरने का। **जए**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

_मूलार्थ_—सयम शील साधु या साध्वी को किसी समय सम या विषम शय्या मिले, हवादार या कम हवा वाला स्थान प्राप्त हो, इसी प्रकार धूलियुक्त या धूलिरहित, अथवा डांस, मच्छर युक्त या उसके बिना की शय्या मिले, इसी भाति सर्वथा गिरी हुई, जीर्ण-शीर्ण अथवा सुदृढ शय्या मिले या उपसर्ग युक्त या उपसर्ग रहित शय्या मिले, इन सब प्रकार की शय्याओ के प्राप्त होने पर वह उनमे समभाव से निवास करे। किन्तु मानसिक दु·ख एव खेद का बिल्कुल अनुभव न करे। यही भिक्षु का सम्पूर्ण भिक्षु भाव है। जो कि सर्व प्रकार से ज्ञान दर्शन और चारित्र से युक्त होकर तथा सदा समाहित होकर विचरने का यत्न करे। इस प्रकार मै कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को हर परिस्थिति मे समभाव रखना चाहिए। चाहे उसे सम शय्या मिले या विषम मिले, सर्दी-गर्मी के अनुकूल स्थान मिले या प्रतिकूल मिले, डास-मच्छर एव धूल आदि से युक्त मिले या इनसे रहित मिले। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुकूल एव प्रतिकूल दोनो अवस्थाओ मे उसे समभाव रखना चाहिए। अनुकूल स्थान मिलने पर उसमे आसक्त नहीं होना चाहिए और प्रतिकूल मिलने पर द्वेष नहीं करना चाहिए। साधु को राग-द्वेष से ऊपर उठकर विचरना चाहिए। वस्तुत यही साधुता है और इस पथ पर गतिशील साधक ही अपनी साधना मे सफल होकर साध्य को प्राप्त कर सकता है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन ईर्येषणा

प्रथम उद्देशक

द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन मे सयम साधना को गतिशील बनाए रखने के लिए साधु को कैसा आहार-पानी ग्रहण करना चाहिए, इसका उल्लेख किया गया है और द्वितीय अध्ययन मे यह बताया गया है कि गृहस्थ के घरो से ग्रहण किया गया निर्दोष आहार-पानी करने तथा ठहरने के लिए साधु को कैसे मकान की, किस तरह से गवेषणा करनी चाहिए। और प्रस्तुत अध्ययन मे ईर्या समिति का वर्णन किया गया है। आहार आदि लाने के लिए तथा एक गाव से दूसरे गाव को जाते समय साधु को गमन करना पडता है। अत साधु को कब, क्यो और कैसे गमन करना चाहिए, यह प्रस्तुत अध्ययन मे बताया गया है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता पडने पर विवेक एव यत्ना पूर्वक गमन करने की क्रिया को आगमिक भाषा मे ईर्या समिति कहते हैं। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से ४ चार प्रकार की होती है। सचित्त, अचित्त एव मिश्रित पदार्थों के गतिशील होने की क्रिया को द्रव्य ईर्या कहते हैं। जिस क्षेत्र मे गमन किया जाए वह क्षेत्र ईर्या और जिस काल मे गति की जाए वह काल ईर्या कहलाती है। भाव ईर्या सयम और चरण के भेद से दो प्रकार की है। १७ प्रकार के सयम मे गति करना सयम ईर्या है और चरण ईर्या आलम्बन, काल, मार्ग और यत्ना के भेद से ४ प्रकार की है। शासन, सघ, गच्छ आदि की सेवा के प्रयोजन से गति करना आलम्बन है। गति करने योग्य काल मे गमन करना काल ईर्या है, सुमार्ग पर गति करना मार्ग ईर्या है और सघ आदि के प्रयोजन से उपयुक्त काल मे अच्छे मार्ग पर विवेक एव यत्ना पूर्वक गति करना यत्ना ईर्या है। यत्ना और विवेक के साथ चलने वाला साधक पाप कर्म का बन्ध नहीं करता है[१]।

इस ईर्या-एषणा अध्ययन के तीन उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक मे बताया गया है कि साधु को कब विहार करना चाहिए और यदि कहीं मार्ग मे नदी हो तो उसे कैसे पार करना चाहिए। द्वितीय उद्देशक मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि नौका से नदी पार करते समय नाविक छल-कपट से बर्ताव करे तो उस समय साधु को क्या करना चाहिए। और तृतीय उद्देशक मे गति करते समय अहिसा, सत्य आदि की रक्षा कैसे करनी चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक मे वर्षावास कल्प समाप्त होते ही विहार करने का आदेश देते हुए सूत्रकार कहते हैं-

---

१ जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जय भुञ्जन्तो-भासन्तो, पावकम्म न बंधइ ॥ – दशवैकालिक सूत्र, ४,८।

मूलम्– अब्भुवगए खलु वासावासे अभिपवुट्ठे बहवे पाणा, अभिसंभूया बहवे बीया अहुणाभिन्ना अंतरा से मग्गा बहुपाणा, बहुबीया जाव ससंताणगा अणभिक्कंता पंथा नो विन्नाया मग्गा सेवं नच्चा नो गामाणुगामं दूइज्जिज्जा, तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिइज्जा॥१११॥

छाया– अभ्युपगते खलु वर्षावासे अभिप्रवृष्टे बहव प्राणिनः अभिसभूताः बहूनि बीजानि अधुना भिन्नानि अन्तराले तस्य मार्गा. बहुप्राणिन. बहुबीजा यावत् संसन्तानका अनभिक्रान्ता पन्थान. नो विज्ञाता मार्गा स एव ज्ञात्वा न ग्रामानुग्रामं यायात् तत. संयतमेव वर्षावासम् उपलीयेत।

पदार्थ– **खलु**-वाक्यालकार मे है। **वासावासे**-वर्षाकाल के सामने। **अब्भुवगए**-आ जाने पर। **अभिपवुट्ठे**-वर्षा ऋतु अर्थात् आषाढ चातुर्मास के पहले ही वर्षा के हो जाने से। **बहवे पाणा**-बहुत से द्वीन्द्रिय आदि जीव। **अभिसभूया**-उत्पन्न हो गए है और। **बहवे बीया**-बहुत से बीज। **अहुणाभिन्ना**-अकुरित हो गए हैं अर्थात् बरसात के कारण उत्पन्न हुए अकुरो से पृथ्वी हरी-भरी हो गई है। **अन्तरामग्गा**-मार्ग के मध्य मे। **से**-उस भिक्षु को विहार करना कठिन हो गया है, क्योंकि मार्ग मे। **बहुपाणा**-बहुत से प्राणी और। **बहुबीया**-बहुत से बीज। **जाव**-यावत्। **ससताणगा**-बहुत से जाले उत्पन्न हो गए है नथा वर्षा के कारण। **अणभिक्कता पंथा**-जनता के गमनागमन के अभाव से मार्ग अवरुद्ध हो गया है तथा रास्ते मे हरियाली के उत्पन्न हो जाने से। **नो विन्नाया मग्गा**-मार्ग एव उन्मार्ग का पता नहीं लगता है। **सेवं**-वह साधु इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **गामाणुगामं**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर। **नो दूइज्जिज्जा**-विहार न करे किन्तु। **सजयामेव**-सयत-साधु। **तओ**-तदनन्तर। **वासावास**-वहीं वर्षाकाल। **उवल्लिइज्जा**-करे।

मूलार्थ—**वर्षाकाल मे वर्षा हो जाने से मार्ग मे बहुत से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं तथा बीज अकुरित हो जाते है, पृथ्वी घास आदि से हरी हो जाती है। मार्ग में बहुत से प्राणी, बहुत से बीज तथा जाले आदि की उत्पत्ति हो जाती है, एव वर्षा के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाने से मार्ग और उन्मार्ग का पता नहीं लगता। ऐसी परिस्थिति मे साधु को एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार नहीं करना चाहिए। किन्तु वर्षाकाल के समय एक स्थान पर ही स्थित रहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि साधु वर्षा-काल पर्यन्त भ्रमण न करे किन्तु एक ही स्थान पर ठहरे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु को वर्षाकाल मे विहार करने का निषेध किया गया है। एक वर्ष मे तीन चातुर्मास होते हैं– १-ग्रीष्म, २-वर्षा और ३-हेमन्त। इनमे वर्षाकाल मे ही साधु को एक स्थान मे स्थित होने का आदेश दिया गया है क्योकि वर्षाकाल मे पृथ्वी शस्य-श्यामला हो जाती है, क्षुद्र जन्तुओ की उत्पत्ति बढ जाती है और हरियाली एव पानी की अधिकता के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। अत उस समय विहार करने से अनेक जीवो की विराधना होना सभव है। इस कारण साधु को वर्षाकाल मे विहार नहीं करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि आषाढ पूर्णिमा के बाद कार्तिक पूर्णिमा तक विहार नहीं करना चाहिए। यदि कभी आषाढी पूर्णिमा से पूर्व ही वर्षा प्रारम्भ हो जाए और चारो तरफ हरियाली छा जाए तो साधु को उसी समय से एक स्थान पर स्थित हो जाना चाहिए और वर्षावास के लिए आवश्यक वस्त्र आदि ग्रहण कर लेना चाहिए। क्योकि, वर्षावास मे वस्त्र आदि ग्रहण करना नहीं कल्पता, इसलिए साधु उनका वर्षावास के पूर्व ही सग्रह कर ले।

वर्षावास का प्रारम्भ चन्द्रमास से माना गया है। अत वह श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है और कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को समाप्त होता है। शाकटायन ने भी आषाढ, कार्तिक एव फाल्गुन की पूर्णिमा को चातुर्मास की पूर्णिमा स्वीकार किया है। उसने भी वर्ष मे तीन चातुर्मासी को मान्य किया है[१]।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचे कि साधु को वर्षाकाल मे विहार नहीं करना चाहिए। परन्तु, वर्षावास के लिए साधु को किन बातो का विशेष ख्याल रखना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव राय॰ नो महई विहारभूमि नो महई वियारभूमी नो सुलभे पीढफलगसिज्जासंथारगे नो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे जत्थ बहवे समण॰ वणीमगा उवागया उवागमिस्संति य अच्चाइन्ना वित्ती नो पन्नस्स निक्खमण जाव चिंताए, सेवं नच्चा तहप्पगारं गामं वा नगरं वा जाव रायहाणिं वा नो वासावासं उवल्लिइज्जा॥

से भि॰ से जं॰ गामं वा जाव राय॰ इमंसि खलु गामंसि वा जाव महई विहारभूमि महई वियार॰ सुलभे जत्थपीढ ४ सुलभे फा॰ नो जत्थ बहवे समण॰ उवागमिस्संति वा अप्पाइन्ना वित्ती जाव रायहाणिं वा तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिइज्जा॥११२॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ ग्रामे वा यावत् राजधान्यां वा अस्मिन् खलु ग्रामे वा यावद् राजधान्या वा न महती विहारभूमि., न महती विचारभूमि. न सुलभानि पीठफलकशय्यासंस्तारकानि न सुलभ· प्रासुकः उञ्छः अथैषणीयः यत्र बहव. श्रमण॰ वनीपका. उपागता., उपागमिष्यन्ति च अत्याकीर्णा वृत्तिः नो प्राज्ञस्य निष्क्रमणं यावत् चिन्तायै, तदेवं ज्ञात्वा तथाप्रकारे ग्रामे वा नगरे वा यावद् राजधान्यां वा न वर्षावासं उपलीयेत। स भिक्षु॰ स

---

१ चातुर्मासान्नाम्नि, ३,१,१२१॥

अणिति वर्तते। चतुर्मास शब्दात् तत्र भवे अण् भवति प्रत्ययान्ते नाम्नि। चतुर्षुमासेषु भवा चातुर्मासी, पौर्णमासी-आषाढ़ी, कार्तिकी, फाल्गुनी चोच्यते। अन्यत्र चातुर्मास श्लुब् द्विगोरिति श्लुक्। – शाकटायन व्याकरण।

यत्० ग्रामे वा यावत् राजधान्यां वा अस्मिन् खलु ग्रामे वा यावत् महती विहारभूमिः, महती विचारभूमि· सुलभानि यत्र पीठ० ४ सुलभः प्रासुक·० न यत्र बहव· श्रमण० उपागमिष्यन्ति वा अल्पाकीर्णा वृत्तिः यावत् राजधान्यां वा तत. संयतमेव वर्षावासं उपलीयेत।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **से जं**-यदि वह यह जाने। **गामं वा**-ग्राम को अथवा नगर। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी को। **खलु**-वाक्यालकार मे । **इमसि**-इस। **गामंसि**-ग्राम। **जाव**-यावत्। **राय०**-राजधानी मे। **विहारभूमी**-स्वाध्याय करने के लिए। **नो महई**-विशाल स्थान नही है। **वियारभूमी**-और नगर से बाहर मल-मूत्रादि के त्याग करने की भूमि भी। **न महई**-विशाल नहीं है। **पीढ**-और पीठ। **फलग**-पाटिया। **सिज्जा**-शय्या और। **संथारगे**-तृणादि के सस्तारक भी। **नो सुलभे**-सुलभ नहीं है और। **फासुए**-उसे जो प्रासुक। **उछे**-थोड़ा २ आहार ग्रहण करना है। **अहेसणिज्जे**-उस निर्दोष आहार का मिलना भी। **नो सुलभे**-सुलभ नहीं है और। **जत्थ**-जहा पर। **बहवे**-बहुत से। **समण०**-शाक्यादि श्रमण। **जाव**-यावत्। **वणीमगा**-वनीपक रक भिखारी आदि। **उवागया**-आए हुए है । **य**-या। **उवागमिस्सति**-आवेगे। **अच्चाइन्ना वित्ती**-अत्यन्ताकीर्ण वृत्ति अर्थात् भिक्षा जाते समय तथा स्वाध्याय, ध्यान और बाहर गमन करते समय वे लोग अधिक सख्या मे बार-बार मिलते रहते हैं। **पन्नस्स**-जिस से प्रज्ञावान साधु। **नो निक्खमण जाव चिंताए**-न तो सुख पूर्वक निकल सकता है, और न प्रवेश ही कर सकता है तथा वह पाच प्रकार का स्वाध्याय भी नहीं कर सकता है। **सेव नच्चा**-अत वह साधु इस प्रकार जानकर। **तहप्पगार गाम वा**-तथाप्रकार के ग्राम मे। **नगर वा**-नगर मे। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **वासावासं**-वर्षाकाल अर्थात् चतुर्मास। **नो उवल्लिइज्जा**-न करे।

से भिक्खू वा०-वह साधु या साध्वी। **से ज०**-यदि वह यह जाने कि। **गामं वा जाव राय० वा**-ग्राम, नगर यावत् राजधानी को। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **इमसि गामसि**-इस ग्राम मे। **जाव**-यावत् राजधानी मे। **महई विहारभूमी**-स्वाध्याय के लिए विशाल भूमि है और। **महई वियारभूमी**-मलमूत्रादि के त्यागने की भूमि भी विशाल है। **जत्थ**-जहा पर। **पीढ ४**-पीठ, फलक, शय्या और सस्तारक की प्राप्ति। **सुलभे फा०**-सुलभ हैं प्रासुक एषणीय आहार का मिलना भी। **सुलभे**-सुलभ है। **जत्थ**-जहा पर। **बहवे**-बहुत से। **समण०**-शाक्यादि भिक्षुगण। **नो उवागमिस्सति**-भी आए हुए नहीं है और न आयेगे। **अप्पाइन्ना वित्ती**-मार्ग मे भीड़ भी नहीं है, अर्थात् भिक्षा आदि के समय जाते-आते वे मिलते भी नहीं है। **जाव**-यावत् स्वाध्याय आदि भी ठीक हो सकता है। इस प्रकार के ग्राम, नगर यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **तओ**-तत् पश्चात्। **सजयामेव**-सयत-सयमशील साधु। **वासावासं**-वर्षाकाल। **उवल्लिइज्जा**-रहे।

मूलार्थ—**वर्षावास करने वाले साधु या साध्वी को ग्राम, नगर, यावत् राजधानी की स्थिति को भली-भाति जानना चाहिए। जिस ग्राम, नगर यावत् राजधानी में एकान्त स्वाध्याय करने के लिए कोई विशाल भूमि न हो, नगर से बाहर मल-मूत्रादि के त्यागने की भी कोई विशाल भूमि न हो, और पीठ-फलक-शय्या-सस्तारक की प्राप्ति भी सुलभ न हो, एवं प्रासुक और निर्दोष आहार का मिलना भी सुलभ न हो और बहुत से शाक्यादि भिक्षु यावत् भिखारी लोग आए हुए हो जिससे ग्रामादि मे भीड़-भाड़ बहुत हो और साधु-साध्वी को सुखपूर्वक स्थान से निकलना और**

प्रवेश करना कठिन हो तथा स्वाध्याय आदि भी न हो सकता हो तो ऐसे ग्रामादि में साधु वर्षाकाल व्यतीत न करे।

जिस ग्राम या नगर आदि मे विहार और विचार के लिए अर्थात् स्वाध्याय और मल-मूत्रादि का त्याग करने के लिए विशाल भूमि हो, पीठ-फलकादि की सुलभता हो, निर्दोष आहार-पानी भी पर्याप्त मिलता हो और शाक्यादि भिक्षु या भिखारी लोग भी आए हुए न हो एव उनकी अधिक भीड़-भाड़ भी न हो तो ऐसे गाव या शहर आदि मे साधु-साध्वी वर्षाकाल व्यतीत कर सकता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे वर्षावास के क्षेत्र को चुनते समय ५ बातो का विशेष ख्याल रखने का आदेश दिया गया है १-स्वाध्याय एव चिन्तन मनन के लिए विशाल भूमि, २-शहर या गाव के बाहर मल-मूत्र का त्याग करने के लिए विशाल निर्दोष भूमि, ३-साधु-साध्वी के ग्रहण करने योग्य निर्दोष शय्या- तख्त आदि की सुलभता, ४ प्रासुक एव निर्दोष आहार-पानी की सुलभता और ५-शाक्यादि अन्य मत के साधुओ तथा भिखारियो के जमघट का नही होना। जिस क्षेत्र मे उक्त सुविधाए न हो वहा साधु को वर्षावास नही करना चाहिए। क्योकि विचार एव चिन्तन की शुद्धता के लिए शान्त एकान्त स्थान का होना आवश्यक है। बिना एकान्त स्थान के स्वाध्याय एव ध्यान मे मन एकाग्र नहीं हो सकता और मन की एकाग्रता के अभाव मे साधना मे तेजस्विता नहीं आ सकती। इसलिए सबसे पहले अनुकूल स्वाध्याय भूमि का होना आवश्यक है।

सयम की शुद्धता को बनाए रखने के लिए परठने के लिए भी निर्दोष भूमि, निर्दोष आहार-पानी एव निर्दोष शय्या-तख्त आदि की प्राप्ति भी आवश्यक है और इनकी निर्दोषता के लिए यह भी आवश्यक है कि उस क्षेत्र मे अन्यमत के भिक्षुओ का अधिक जमाव न हो। यदि वे भी अधिक सख्या मे होगे तो शुद्ध आहार-पानी आदि की सुलभता नहीं मिल सकेगी।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस युग मे अन्य मत के भिक्षु भी वर्षाकाल मे एक स्थान पर रहते थे। और इस सूत्र से यह भी ध्वनित होता है कि उस युग मे साप्रदायिक बाडे बन्दी भी अधिक नहीं थी। यदि वर्तमान की तरह उस युग मे भी जनता सप्रदायो मे विभक्त होती तो सूत्रकार के सामने यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। क्योकि, फिर तो साधु अपनी सप्रदाय के भक्तो से सबद्ध मकान मे ठहर जाता और उनके यहा उसे किसी तरह की असुविधा नहीं रहती। परन्तु उस समय ऐसी परिस्थिति नहीं थी, गृहस्थ लोग सभी तरह के साधुओ को स्थान एव आहार आदि देते थे। इसी दृष्टि से साधु के लिए यह निर्देश किया गया कि उसे वर्षावास करने के पूर्व अपने स्वाध्याय की अनुकूलता एव सयम शुद्धि आदि का पूरी तरह अवलोकन कर लेना चाहिए। क्योकि वर्षावास जीवो की रक्षा, सयम की साधना एव ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए किया जाता है। अत इन मे तेजस्विता लाने का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यदि वर्षाकाल के समाप्त होने के पश्चात् भी वर्षा होती रहे तो साधु को क्या करना चाहिए, इसके लिए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– अह पुणेवं जाणिज्जा-चत्तारि मासा वासावासाणं वीइक्कंता

हेमंताण य पंचदसरायकप्पे परिवुसिए, अंतरा से मग्गे बहुपाणा जाव ससंताणगा नो जत्थ बहवे जाव उवागमिस्संति, सेवं नच्चा नो गामाणुगामं दूइज्जिज्जा। अह पुणेवं जाणिज्जा चत्तारि मासा॰ कप्पे परिवुसिए, अंतरा से मग्गे अप्पंडा जाव असंताणगा बहवे जत्थ समणा॰ उवागमिस्संति, सेवं नच्चा तओ संजयामेव॰ दूइज्जिज्जा ॥११३॥

छाया– अथ पुनरेवं जानीयात् चत्वारो मासा वर्षावासाना व्यतिक्रान्ता. हेमन्तानां च पचदशरात्रकल्पे पर्युषिते अन्तरा ते मार्गा बहु प्राणिनो यावत् ससन्तानका. न यत्र बहव. यावद् उपागमिष्यन्ति स एव ज्ञात्वा न ग्रामानुग्राम यायात्। अथ पुनरेव जानीयात् चत्वारो मासा॰ कल्पे पर्युषिते अन्तरा ते मार्गा. अल्पाडा. यावत् असतानका बहव. यत्र श्रमण॰ उपागमिष्यति स एव ज्ञात्वा तत. संयतमेव॰ यायात्।

पदार्थ– अह-अथ। पुण-फिर। एव-इस प्रकार । जाणिज्जा-जाने। वासावासाण-वर्षाकाल के। चत्तारि मासा-चार मास। वीइक्कता-अतिक्रान्त हो जाने पर अर्थात् कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के पश्चात् मार्गशीर्ष प्रतिपदा को साधु को विहार कर देना चाहिए। यह उत्सर्ग मार्ग है। अब सूत्रकार अपवाद मार्ग के विषय मे कहते है। य-और। हेमताण-यदि वर्षा फिर हो जाए तो हेमन्तकाल के। पचदसरायकप्पे-पचदशरात्र कल्प मे अर्थात् मर्यादा मे। परिवुसिए-रहे। अतरा से मग्गे-उस मार्ग के मध्य मे। बहुपाणा-बहुत प्राणी। जाव-यावत्। ससंताणगा-जालो से युक्त मार्ग हो रहा हो और। जत्थ-जहा पर। बहवे-बहुत से श्रमण आदि। जाव-यावत्। नो उवागमिस्सति-मार्ग के ठीक न होने के कारण वे नहीं आएगे। सेव नच्चा-वह साधु इस प्रकार जानकर। गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम। नो दूइज्जिज्जा-विहार न करे, एक ग्राम से दूसरे ग्राम न जाए। अह-अथ। पुण-फिर यदि। एव-इस प्रकार। जाणिज्जा-जाने कि। चत्तारिमासा॰ कप्पे परिवुसिए-वर्षाकाल के चार मास व्यतीत हो गए है, तदनन्तर हेमन्त काल के भी पचदशरात्र १५ दिवस व्यतीत हो गए है। अतरा से मग्गे-मार्ग के मध्य मे। अप्पडा-अण्डादि से रहित। जाव-यावत्। असताणगा-जाला आदि से रहित मार्ग हो गया है। जत्थ-जहा पर। बहवे-बहुत से। समण॰-शाक्यादि श्रमण आ गए है तथा। उवागमिस्सति-और भी आ जाएगे। सेव नच्चा-वह साधु इस प्रकार जानकर। तओ-तदनन्तर। सजयामेव-यत्ना-पूर्वक ग्रामानुग्राम। दूइज्जिज्जा-विहार करे।

मूलार्थ—वर्षाकाल के चार मास व्यतीत हो जाने पर साधु को अवश्य विहार कर देना चाहिए, यह मुनि का उत्सर्गमार्ग है। यदि कार्तिक मास मे पुन वर्षा हो जाए और उसके कारण मार्ग आवागमन के योग्य न रहे और वहा पर शाक्यादि भिक्षु नहीं आए हो तो मुनि को चतुर्मास के पश्चात् वहा १५ दिन और रहना कल्पता है। यदि १५ दिन के पश्चात् मार्ग ठीक हो गया हो, अन्यमत के भिक्षु भी आने लगे हो तो मुनि ग्रामानुग्राम विहार कर सकता है। इस तरह वर्षा के कारण मुनि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के पश्चात् मार्गशीर्षकृष्णा अमावस पर्यन्त ठहर सकता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे वर्षावास समाप्त होने के बाद ठहरने के सम्बन्ध मे उत्सर्ग एव अपवाद मार्ग को सामने रखकर आदेश दिया गया है। इस मे बताया गया है कि यदि वर्षाकाल के अन्तिम

दिनो मे वर्षा हो जाए और उसके कारण मार्ग हरियाली से ढक जाए, जीवो की उत्पत्ति हो जाए और अन्य मत के भिक्षु भी अधिक सख्या मे न आए हो तो वर्षाकाल के समाप्त होने पर भी मुनि हेमन्त काल के १५ दिन तक उस स्थान मे ठहर सकता है, इससे स्पष्ट होता है कि मुनि का जीवन जीव रक्षा के लिए है। क्षुद्र जीवो की यत्ना के लिए ही वह चार महीने एक स्थान पर स्थित होता है। अत उसके पश्चात् भी क्षुद्र जीवो की एव वनस्पति की अधिक उत्पत्ति हो तो वह १५ दिन और रुक जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे इससे अधिक समय का उल्लेख नहीं किया गया है और प्राय हेमन्त काल मे मार्ग भी साफ हो जाता है। फिर भी यदि कभी अकस्मात् वर्षा की अधिकता से मार्ग मे हरियाली एव क्षुद्र जन्तुओ की अधिक उत्पत्ति हो जाए और उससे सयम की विराधना होने की सभावना देखकर साधु कुछ दिन और ठहर जाता है, तो भी वह आज्ञा का उल्लघन नहीं करता। क्योकि वह केवल सयम की विशुद्ध आराधना के लिए ही ठहरता है। यदि वर्षाकाल के पश्चात् मौसम साफ हो, मार्ग मे किसी तरह की रुकावट न हो तो साधु को मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को विहार कर देना चाहिए।

आगम मे स्पष्ट शब्दो मे आदेश दिया गया है कि साधु-साध्वी को वर्षाकाल मे विहार करना नहीं कल्पता परन्तु हेमन्त और ग्राष्म काल मे विहार करना कल्पता है[1]। आचाराग सूत्र मे भी एक स्थल पर कहा है कि यदि साधु मास या वर्षावास कल्प के बाद उसी स्थान पर ठहरता है तो उसे कालातिक्रम दोष लगता है[2]। और श्रमण भगवान महावीर ने भी कार्तिक चातुर्मासी (पुर्णिमा) के पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को विहार कर दिया था[3]। इससे स्पष्ट होता है कि वर्षा आदि विशिष्ट कारणो के उपस्थित हुए बिना साधु को वर्षा काल के पश्चात् उसी स्थान पर नही ठहरना चाहिए।

वृत्तिकार ने यह भी लिखा है कि यदि वृष्टि आदि न हो तो उत्सर्ग मार्ग मे साधु को वर्षावास के समाप्त होने पर चातुर्मासी के तप का पारणा अन्य स्थान पर जाकर करना चाहिए। परन्तु आगम मे ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, इसलिए यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। आगम मे वर्षावास के पश्चात् बिना कारण रात को ठहरना नहीं कल्पता अर्थात् जिस स्थान मे वर्षावास किया हो साधु को वहा मार्गशीर्ष कृष्णा की प्रतिपदा की रात को नही ठहरना चाहिए।

विहार के समय साधु को मार्ग की यत्ना कैसे करनी चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ जुगमायाए पेहमाणे दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पायं रीइज्जा साहट्टु पायं रीइज्जा वितिरिच्छं वा कट्टु पायं रीइज्जा, सइ परक्कमे संजयामेव परिक्कमिज्जा नो उज्जुयं गच्छिज्जा,

---

१ नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा वासावासासु चारए।
कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा हेमन्तगिम्हासु चारए।
– बृहत्कल्प सूत्र, १, ३६-३७।

२ श्री आचाराग सूत्र, २, २, २।

३ श्री भगवती सूत्र, शतक १५।

तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

से भिक्खू वा० गामा० दूइज्जमाणे अंतरा से पाणाणि वा बी० हरि० उदए वा मट्टिया वा अविद्धत्थे० सइ परक्कमे जाव नो उज्जुयं गच्छिज्जा, तओ संजया० गामा० दूइज्जिज्जा॥११४॥

छाया– स भिक्षुर्वा० ग्रामानुग्राम गच्छन् पुरत युगमात्रया पश्यन् दृष्ट्वा त्रसान् प्राणिन उद्धृत्य पाद रीयेत सहृत्य पादं रीयेत (गच्छेत्) तिरश्चीन वा कृत्वा पाद रीयेत-गच्छेत् सति पराक्रमे सयतमेव पराक्रमेन्नो ऋजुना गच्छेत्, तत. संयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्। स भिक्षुर्वा० ग्रामा० गच्छन् अन्तराले स प्राणिन· वा बीजानि, हरितानि, उदक वा मृत्तिका वा अविध्वसमान सति पराक्रमे यावन्नो ऋजुना गच्छेत् ततः संयतमेव ग्रामानुग्राम गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम-एक गाव से दूसरे गाव को। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **पुरओ**-मुख के आगे की ओर। **जुगमायाए**-चार हाथ प्रमाण भूमि को। **पेहमाणे**-देखता हुआ चले तथा मार्ग मे। **तसे पाणे**-त्रस प्राणियो को। **दट्ठूण**-देखकर। **पाय**-पाद का अग्रभाग। **उद्धट्टु**-उठाकर। **रीइज्जा**-ईर्यासमिति पूर्वक चले। **साहट्टु पाय रीइज्जा**-यदि अपने से दक्षिण और उत्तर मे जीव को देखे तो उनकी रक्षा के लिए पैर को सकोच कर चले अथवा। **वितिरिच्छ वा कट्टु पाय रीइज्जा**-जीव रक्षा के निमित्त दोनो ओर जीव हो तो तिर्यक् पाद करके चले। **सइ परक्कमे सजयामेव परिक्कमिज्जा**-यदि अन्य मार्ग हो तो उस मार्ग से यत्नापूर्वक गमन कर, अर्थात् यह विधि तो अन्य मार्ग के अभाव मे कथन की गई है, किन्तु। **उज्जुय**-सरल मार्ग मे अर्थात् सीधा। **न गच्छिज्जा**-गमन न करे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **गामाणुगाम** एक गाव से दूसरे गाव को। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **गामा० दूइज्जमाणे**-ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ। **अन्तरा से**-उस मार्ग के मध्य मे। **पाणाणि वा** द्वीन्द्रियादि जीव अथवा। **बीयाणि वा**-शाली आदि के बीज। **हरि०**-अथवा हरि वनस्पति। **उदए वा**-अथवा जल, अथवा। **मट्टिया वा**-मिट्टी, जो व्यवहार पक्ष मे अचित्त प्रतीत नहीं होती हो तो। **सइ परक्कमे**-अन्य मार्ग के होने पर साधु उस मार्ग मे गमन न करे। **जाव**-यावत् प्राणियो से युक्त। **उज्जुय**-सरल मार्ग से। **न गच्छिज्जा**-गमन न करे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **गामा०**-ग्रामानुग्राम-एक गाव से दूसरे गाव को। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे।

मूलार्थ—साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ अपने मुख के सामने चार हाथ प्रमाण भूमि को देखता हुआ चले और मार्ग मे त्रस प्राणियो को देखकर पैर के अग्रभाग को उठाकर चले। यदि दोनो ओर जीव हो तो पैरो को सकोच कर या तिर्यक्-टेढ़ा पैर रखकर चले। यह विधि अन्यमार्ग के अभाव मे कही गई है। यदि अन्य साफ मार्ग हो तो उस मार्ग से चलने का प्रयत्न करे, किन्तु जीव युक्त सरल (सीधे) मार्ग पर न चले। यदि मार्ग में प्राणी, बीज, हरी, जल और मिट्टी आदि अचित न हुए हो तो साधु को अन्य मार्ग के होने पर उस मार्ग से नहीं जाना चाहिए।

यदि अन्य मार्ग न हो तो उस मार्ग से यत्नापूर्वक जाना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को विहार करते समय अपनी दृष्टि गन्तव्य मार्ग पर रखनी चाहिए। अपने सामने की साढे तीन हाथ भूमि को देखकर चलना चाहिए। उस समय अपने मन, वचन एव काय योग को भी इधर-उधर नहीं लगाना चाहिए। यहा तक कि साधु को चलते समय स्वाध्याय एव आत्मचिन्तन भी नही करना चाहिए। उस समय उसका ध्यान विवेक पूर्वक चलने की ओर होना चाहिए और रास्ते मे आने वाले क्षुद्र जन्तुओ एव हरित काय की रक्षा करते हुए गति करनी चाहिए। यदि रास्ते मे बीज, हरियाली एव क्षुद्र जन्तु अधिक हो और उस गाव को दूसरा रास्ता जाता हो– चाहे वह कुछ लम्बा भी पडता हो, परन्तु जीवो से रहित हो, तो मुनि को वह जीव-जन्तुओ से युक्त सीधा रास्ता छोडकर उस निर्दोष मार्ग से जाना चाहिए। यदि दूसरा मार्ग न हो तो यत्नापूर्वक पैरो को सकोच कर या टेढे-मेढे पैर रखकर या अगूठे आदि के बल पर उस रास्ते को तय करे अर्थात् उस मार्ग को विवेकपूर्वक पार करे जिससे जीवो को किसी तरह की पीडा एव कष्ट न पहुचे।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ गामा॰ दूइज्जमाणे अंतरा से विरूवरूवाणि पच्चंतिगाणि दस्सुगाययाणि मिलक्खूणि अणायरियाणि दुस्सन्नप्पाणि दुप्पन्नवणिज्जाणि, अकालपडिबोहीणि अकालपरिभोईणि सइ लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जाणवएहिं नो विहारवडियाए पवज्जिज्जा गमणाए, केवली बूया आयाणमेयं, ते णं बाला अयं तेणे अयं उवचरए अयं ततो आगए त्तिकट्टु तं भिक्खुं अक्कोसिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा वत्थं प॰ कं॰ पाय॰ अच्छिंदिज्ज वा भिंदिज्ज वा अवहरिज्ज वा परिट्ठविज्ज वा, अह भिक्खूणं पु॰ जं तहप्पगाराइं विरू॰ पच्चंतियाणि दस्सुगा॰ जाव विहारवत्तियाए नो पवज्जिज्ज वा गमणाए तओ संजया गा॰ दू॰ ॥११५॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले स विरूपरूपाणि प्रात्यन्तिकानि दस्युकायतनानि म्लेच्छानि अनार्याणि दुःसंज्ञाप्यानि दुष्प्रज्ञाप्यानि अकालप्रतिबोधीनि अकालभोजीनि सति लाढे विहाराय सस्तरमाणेषु जनपदेषु न विहारप्रतिज्ञया प्रतिपद्येत गमनाय। केवली ब्रूयात् आदानमेतत् ते बालाः अयंस्तेनः अयमुपचारकः अयं ततः आगतः इति कृत्वा तं भिक्षुं आक्रोशेयु. वा यावत् उपद्रवेयुः वा वस्त्रं वा पतद्ग्रह (पात्रं) वा कबल वा पादप्रोञ्छनं वा आच्छिन्द्युः वा भिन्द्युः वा अपहरेयुः वा परिष्ठापयेयुः वा अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्टं यत् तथाप्रकाराणि विरूपरूपाणि प्रात्यन्तिकानि दस्युकायतनानि यावत् विहार- प्रत्ययाय न प्रतिपद्येत वा गमनाय ततः संयतः ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा॰**-वह साधु या साध्वी। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **अन्तरा से**-जिस मार्ग के मध्य मे। **विरूवरूवाणि**-नाना प्रकार के। **पच्चंतिगाणि**-देश की सीमा में रहने वाले। **दस्सुगायणाणि**-चोरो के स्थान हो। **मिलक्खूणि**-म्लेच्छो के स्थान हो। **अणायरियाणि**-अनार्यों के स्थान हो। **दुस्सन्नप्पाणि**-जिन्हे आर्य देश की भाषा आदि कठिनाई से समझाई जा सकती है और। **दुप्पन्नवणिज्जाणि**-जिन्हे कष्ट पूर्वक उपदेश दिया जा सकता है अर्थात् कष्टपूर्वक उपदेश देने पर भी जो धर्म मार्ग मे नहीं आते। **अकालपडिबोहीणि**-अकाल मे जागने वाले और अकाल मे ही मृगया-शिकार के लिए उठकर जाने वाले। **अकालपरिभोईणि**-अकाल मे भोजन करने वाले। **सइ लाढे विहाराए**-अन्य अच्छे आर्य देश के। **सथरमाणेहिं**-विद्यमान होने पर तथा। **जाणवएहिं**-अच्छे अन्य भद्र देश के विद्यमान होने पर। **विहारवडियाए**-ऐसे देश मे विचरने की प्रतिज्ञा से-विहार करने का। **नो पवज्जिज्जा गमणाए**-मन मे विचार न करे अर्थात् ऐसे देशो मे विहार करने के लिए कभी सकल्प न करे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है। **आयाणमेय**-यह कर्म के आने का कारण है अर्थात् वहा जाने पर कर्म का बन्ध होता है यथा। **ते**-वे। **ण**-वाक्यालकार मे है। **बाला**-बाल-अज्ञानी साधु को देखकर साधु के प्रति कहते है। **अय**-यह। **तेणे**-चोर है। **अय**-यह व्यक्ति। **उवचरए**-उपचर अर्थात गुप्तचर (जासूस) है। **अय**-यह। **ततो**-वहा से-हमारे शत्रु के गाव से। **आगए**-आया है अर्थात् हमारा भेद लेने को आया है। **त्तिकट्टु**-ऐसा कहकर। **त भिक्खु**-उस भिक्षु को। **अक्कोसिज्ज वा**-कठोर वचन बोलेगे। **जाव**-यावत्। **उद्दविज्ज वा**-मारणातिक उपसर्ग देगे, या मारेगे या साधु के। **वत्थं वा**-वस्त्र। **प॰**-पात्र। **क॰**-कम्बल। **पाय॰**-पादप्रोञ्छन तथा रजोहरण या पैर पूछने के वस्त्र आदि का। **अच्छिंदिज्ज**-छेदन करेगे। **वा**-अथवा। **भिदिज्ज**-भेदन करेंगे या। **अवहरिज्ज वा**-उनका अपहरण करेगे अर्थात् छीन ले। **परिट्ठविज्ज वा**-या उस मुनि के उपकरणो को तोड़-फोड़ कर फैंक दे। **अह भिक्खूण**-अत भिक्षुओ को। **पु॰**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह उपदेश दिया है कि। **ज**-जो। **तहप्पगाराइं**-तथा प्रकार के। **विरूव॰**-नानाविध। **पच्चतियाणि**-देश की सीमा मे होने वाले। **दस्सुगा॰**-चोरो के स्थान मे। **जाव**-यावत्। **विहारवत्तियाए**-विहार करने के लिए। **नो पवज्जिज्ज वा गमणाए**-मन मे विचार भी न करे। **तओ**-तदनन्तर उक्त स्थानो को छोड़ता हुआ। **सजया**-सयमशील साधु। **गा॰ दू॰**-ग्रामानुग्राम-एक गाव से दूसरे गाव को विहार करे।

मूलार्थ—साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरता हुआ जिस मार्ग मे नाना प्रकार के देश की सीमा मे रहने वाले चोरो के, म्लेच्छो के और अनार्यों के स्थान हो तथा जिनको कठिनता पूर्वक समझाया जा सकता है या जिन्हे आर्य धर्म बड़ी कठिनता से प्राप्त हो सकता है ऐसे अकाल (कुसमय) मे जागने वाले, अकाल (कुसमय) मे खाने वाले मनुष्य रहते हों, तो अन्य आर्य क्षेत्र के होते हुए ऐसे क्षेत्रो मे विहार करने को कभी मन मे भी सकल्प न करे। क्योंकि केवली भगवान कहते है कि वहा जाना कर्म-बन्धन का कारण है। वे अनार्य लोग साधु को देखकर कहते हैं कि यह चोर है, गुप्तचर है, यह हमारे शत्रु के गांव से आया है, इत्यादि बाते कह कर वे उस भिक्षु को कठोर वचन बोलेगे, उपद्रव करेगे और उस साधु के वस्त्र,पात्र, कम्बल और पाद प्रोंछन आदि का छेदन-भेदन या अपहरण करेंगे या उन्हें तोड़-फोड़कर दूर फैंक देंगे क्योंकि ऐसे स्थानों मे यह सब सभव हो सकता है। इसलिए भिक्षुओ को तीर्थंकरादि ने पहले ही यह उपदेश दिया है कि साधु इस

प्रकार के प्रदेशों मे विहार करने का संकल्प भी न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को ऐसे प्रान्तो मे विचरना चाहिए जहा आर्य एव धर्म-निष्ठ भद्र लोग रहते हो। परन्तु, सीमान्त पर जो अनार्य देश हैं, जहा पर चोर-डाकू, भील, अनार्य एव म्लेच्छ लोग रहते हो उन देशो मे नहीं जाना चाहिए। क्योकि, ये लोग दुर्लभ बोधि होते हैं अर्थात् धर्म एव आर्यत्व को जल्दी ग्रहण नहीं कर पाते। ये कुसमय मे जागृत रहते हैं अर्थात् जिस समय सभ्य एव सज्जन लोग शयन करते है, उस समय उनका धन लूटने के लिए ये लोग जागते रहते हैं और कुसमय मे ही भोजन करते हैं तथा उन्हे भक्ष्य-अभक्ष्य का भी विवेक नहीं होता है। यदि ऐसे अनार्य व्यक्तियो के निवास स्थानो की ओर साधु चला जाए तो वे उसे चोर, गुप्तचर आदि समझकर कष्ट देगे, मारेगे-पीटेगे तथा उसके उपकरण एव वस्त्र आदि छीन लेंगे या तोड-फोडकर दूर फैक देगे। इसलिए मुनि को ऐसे प्रदेशो की ओर विहार नहीं करना चाहिए।

इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग की तरह उस समय भी एक-दूसरे देश की सीमाओ पर तथा अपने राज्य की आन्तरिक स्थिति का तथा चोर-डाकुओ के गुप्त स्थानो का पता लगाने के लिए गुप्तचरो की नियुक्ति की जाती थी।

प्रस्तुत सूत्र मे ऐसे स्थानो पर जाने का निषेध साधु के लिए ही किया गया है, न कि सम्यग्दृष्टि एव श्रावक के लिए। सम्यग्दृष्टि एव श्रावक अनुकूल साधनो के प्राप्त होने पर वहा जाकर उन्हे सस्कारित एव सभ्य बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू० दूइज्जमाणे अंतरा से अरायाणि वा गणरायाणि वा जुवरायाणि वा दोरज्जाणि वा वेरज्जाणि वा विरुद्धरज्जाणि सइ लाढे विहाराए संथ० जण० नो विहारवडियाए०, केवली बूया आयाणमेयं, ते णं बाला तं चेव जाव गमणाए तओ सं० गा० दू० ॥११६॥

छाया– स भिक्षुर्वा० गच्छन् अन्तराले स अराजानि वा गणराजानि वा युवराजानि वा द्विराज्यानि वा वैराज्यानि वा विरुद्धराज्यानि वा सति लाढे विहाराय संस्तरमाणेषु जनपदेषु नो विहारप्रत्ययाय० केवली ब्रूयात् आदानमेतत् ते बाला तच्चैव यावत् गमनाय ततः संयतः ग्रामानुग्राम गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-साधु या साध्वी। **दूइज्जमाणे**-ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ। **अन्तरा से**-उस मार्ग के मध्य में। **अरायाणि वा**-जिस देश मे राजा की मृत्यु हो गई हो, और नवीन राजा को अभी तक सिंहासनारूढ नहीं किया गया हो उस अराजक देश मे। **गणरायाणि वा**-प्रजा की सर्व सम्मति या बहु सम्मति से कुछ समय के लिए किसी व्यक्ति को राज्य सिहासन पर बैठाया गया हो। **जुवरायाणि वा**-अथवा राजकुमार-

जिसका अभी राज्याभिषेक नहीं हुआ हो। **दोरज्जाणि वा**-अथवा जिस देश मे दो राजाओ का शासन हो अथवा। **वेरज्जाणि वा**-परस्पर राजकुमारो का जहा वैर-विरोध हो अथवा। **विरुद्धरज्जाणि वा**-जहा राजा और प्रजा का आपस मे विरोध हो तो। **सइ लाढे विहाराए सथ० जण०**-अन्य किसी विहार के योग्य देश के होने पर साधु। **नो विहारवडियाए०**-उक्त स्थानो मे विचरने का सकल्प न करे क्योकि। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है कि। **आयाणमेय**-ये कर्म बन्धन के कारण है। **ण**-यह वाक्यालकार मे है। **ते बाला**-वे अज्ञानी पुरुष। **त चेव**-पूर्ववत्। **जाव**-यावत्। **गमणाए**-जाने के लिए सकल्प न करे। **तओ**-तदनन्तर अन्य देश मे। **सजया०**-साधु यत्नापूर्वक। **गा०**-ग्रामानुग्राम। **दू०**-विहार करे।

_मूलार्थ_—साधु या साध्वी विहार करते हुए जिस देश में राजा का शासन नहीं है, अथवा अशातियुक्त गणराज्य है, अथवा केवल युवराज है, जो कि राजा नहीं बना है, दो राजाओ का शासन चलता है, या दो राजकुमारो मे परस्पर वैर-विरोध है, या राजा तथा प्रजा मे परस्पर विरोध है, तो विहार के योग्य अन्य प्रदेश के होते हुए इस प्रकार के स्थानो मे विहार करने का सकल्प न करे। साधु को विहार योग्य अन्य स्थानो मे विहार करना चाहिए शेष वर्णन पूर्ववत् समझे।

_हिन्दी विवेचन_– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जिस राज्य मे राजा न हो या जिस राज्य मे या गणतन्त्र मे अशान्ति हो, कलह हो, राज्य प्रबन्ध ठीक न हो, राजा और प्रजा मे सघर्ष चल रहा हो, एक ही प्रदेश के दो राजा या दो राजकुमार शासक हो और दोनो मे सघर्ष चल रहा हो तो ऐसे देश मे साधु को नहीं जाना चाहिए। क्योकि उसे किसी देश का गुप्तचर आदि समझकर वे उसके साथ दुर्व्यवहार कर सकते है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग मे भारत मे गणराज्य की व्यवस्था भी थी। काशी और कौशल मे मल्ल और लिच्छवी जाति के क्षत्रियो का गणराज्य था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय भी भारत कई प्रान्तो (देशो) मे विभक्त था, जिनमे अलग-अलग राजाओ का शासन था और एक-दूसरे देश के राजा सीमाओ आदि के परस्पर सघर्ष भी करते रहते थे।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा गा० दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणिज्जा एगाहेण वा दुआहेण वा तिआहेण वा चउआहेण वा पंचाहेण वा पाउणिज्ज वा नो पाउणिज्ज वा तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं सइ लाढे जाव गमणाए, केवली बूया आयाणमेयं, अतंरा से वासे सिया पाणेसु वा पणएसु वा बीएसु वा हरि० उद० मट्टियाए वा अविद्धत्थाए, अह भिक्खू जं तह० अणेगाह० जाव नो पव० तओ सं० गा० दू० ॥११७॥

छाया– स भिक्षुर्वा ग्रामानुग्रामं गच्छन्, अन्तराले तस्य विहं स्यात्, स यत् पुनः विहं जानीयात् एकाहेन वा द्वयहेन वा त्र्यहेन वा चतुरहेण वा पचाहेन वा प्रापणीयं वा नो प्रापणीयं वा तथाप्रकारं विहं अनेकाहगमनीयं सति लाढे यावद् गमनाय, केवली ब्रूयात् आदानमेतत्

अन्तराले तस्य वर्षा स्यात् प्राणेषु वा पनकेषु वा बीजेषु वा हरितेषु उदकेषु वा मृत्तिकाया वा अविध्वस्तायां, अथ भिक्षु यत् तथाप्रकारमनेकाहगमनीयं यावत् न प्रतिपद्येत् तत. संयत· ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

***पदार्थ*– से भिक्खू** वा-वह साधु या साध्वी। **गा०**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **अन्तरा से**-मार्ग मे। **विह सिया**-अटवी हो तो। **से जं**-वह भिक्षु जो। **पुण**-फिर। **विहं जाणिज्जा**-अटवी के सम्बन्ध में यह जाने कि वह अटवी। **एगाहेण वा**-एक दिन मे उलघी जा सकती है। **दुआहेण वा**-दो दिन मे या। **तिआहेण वा**-तीन दिन मे या। **चउआहेण वा**-चार दिन मे या। **पंचाहेण वा**-पाच दिन मे । **पाउणिज्ज वा**-उल्लघी जा सकती है। **नो पाउणिज्ज वा**-नहीं उलघी जा सकती है। **तहप्पगार**-तथाप्रकार की। **विह**-अटवी जो कि। **अणेगाहगमणिज्ज**-अनेक दिनो मे उलघी जा सकती है तो। **सइ लाढे जाव गमणाए**-विहार योग्य अन्य प्रदेश के होने पर साधु इस प्रकार की अटवी को उलघ कर जाने का विचार न करे क्योकि। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं कि। **आयाणमेयं**-यह कर्म बन्धन का कारण है, क्योंकि। **अन्तरा से वासे सिया**-उस मार्ग के मध्य मे वर्षा हो जाए तो फिर। **पाणेसु वा**-द्वीन्द्रियादि प्राणियो के उत्पन्न होने पर या। **पणएसु वा**-पाच वर्ण की नीलन फूलन के उत्पन्न होने पर। **बीएसु वा**-बीजो के अकुरित हो जाने। **हरि०**-हरियाली के उत्पन्न हो जाने। **उद०**-पानी के भर जाने पर या। **मट्टियाए वा**-सचित्त मिट्टी के उत्पन्न हो जाने से। **अविद्धत्थाए**-सयम एव आत्मा की विराधना होगी। **अह**-अत । **भिक्खू**-भिक्षु-साधु। **ज तह०**-तथा प्रकार की अटवी जो। **अणेगाह०**-अनेक दिनो मे उलघी जा सकती है। **जाव**-यावत्-उस मे जाने के लिए। **नो पव०**-मन मे विचार भी न करे। **तओ**-तदनन्तर। **स०**-साधु, अन्य विहार करने योग्य। **गा०**-गाव को। **दू०**-विहार करे।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मार्ग मे उपस्थित होने वाली अटवी को जाने, जिस अटवी को एक दिन मे, दो दिन मे, तीन और चार अथवा पाच दिन मे उल्लंघन किया जा सके, अन्य मार्ग होने पर उस अटवी को लाघकर जाने का विचार न करे। केवली भगवान कहते है कि यह कर्म बन्धन का कारण है। क्योकि मार्ग मे वर्षा हो जाने पर, द्वीन्द्रियादि जीवो के उत्पन्न हो जाने पर, नीलन-फूलन, एव सचित्त जल और मिट्टी के कारण सयम की विराधना का होना सम्भव है। इस लिए ऐसी अटवी जो कि अनेक दिनो मे पार की जा सके मुनि उसमें जाने का संकल्प न करे, किन्तु अन्य सरल मार्ग से अन्य गावो की ओर विहार करे।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि मुनि को ऐसी अटवी मे से होकर नहीं जाना चाहिए जिसे पार करने मे लम्बा समय लगता हो। क्योकि, इस लम्बे समय मे वर्षा होने से द्वीन्द्रिय आदि क्षुद्र जन्तुओ एव निगोदकाय तथा हरियाली आदि की उत्पत्ति हो जाने से सयम की विराधना होगी और कीचड आदि हो जाने के कारण यदि कभी पैर फिसल गया तो शरीर मे चोट आने से आत्म-विराधना भी होगी। और बहुत दूर तक जगल होने के कारण रास्ते मे विश्राम करने को स्थान की प्राप्ति एव आहार-पानी की प्राप्ति मे भी कठिनता होगी। इसलिए मुनि को सदा सरल एव सहज ही समाप्त होने वाले मार्ग से विहार करना चाहिए।

यदि कभी विहार करते समय मार्ग मे नदी पड जाए तो साधु को क्या करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भि० गामा० दूइज्जिज्जा० अंतरा से नावासंतारिमे उदए सिया, से जं पुण नावं जाणिज्जा असंजए भिक्खुपडियाए किणिज्ज वा पामिच्चेज्ज वा नावाए वा नावं परिणामं कट्टु थलाओ वा नावं जलंसि ओगाहिज्जा जलाओ वा नावं थलंसि उक्कसिज्जा पुण्णं वा नावं उस्सिंचिज्जा सन्नं वा नावं उप्पीलाविज्जा तहप्पगारं नावं उड्ढगामिणिं वा अहेगा० तिरियगामि० परं जोयणमेराए अद्धजोयणमेराए अप्पतरे वा भुज्जतरे वा नो दुरूहिज्जा गमणाए ॥

से भिक्खू वा० पुव्वामेव तिरिच्छसंपाइमं नावं जाणिज्जा, जाणित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा २ भंडगं पडिलेहिज्जा२ एगओ भोयणभंडगं करिज्जा२ सीसोवरियं कायं पाए पमज्जिज्जा सागारं भत्तं पच्चक्खाइज्जा, एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा तओ सं० नावं दुरूहिज्जा ॥११८॥

छाया– स भिक्षुर्वा० ग्रामानुग्रामं गच्छेत्० अन्तराले तस्य नौसन्तार्यमुदकं स्यात्, स यत् पुन· नावं जानीयात् असंयतश्च भिक्षुप्रतिज्ञया क्रीणीयात् पापमिमीत वा नावा वा नावं परिणामं कृत्वा स्थलाद् वा नावं जले अवगाहेत, जलाद् वा नावं स्थले उत्कर्षयेत् , पूर्णां वा नाव उत्सिचेत सन्नां वा नाव उत्प्लावयेत् तथाप्रकारां नावं ऊर्ध्वगामिनीं वा अधोगामिनीं वा तिर्यग्गामिनीं वा परं योजनमर्यादया अर्द्धयोजनमर्यादया अल्पतरो वा भूयस्तरो वा नो दुरूहेत् गमनाय, स भिक्षुर्वा० पूर्वमेव तिर्यक् संपातिमां नाव जानीयात् ज्ञात्वा स. तामादाय एकान्तमपक्रमेत् अपक्रम्य भंडग प्रतिलेखयेत् प्रतिलिख्य एकतः भोजनभण्डक कुर्यात् कृत्वा सशीर्षोपरिक काय पादं प्रमृज्यात्, सागारं भक्तं प्रत्याख्यायात् एक पादं जले कृत्वा एक पाद स्थले कृत्वा तत सयतः नावं दूरोहेत्।

पदार्थ– से भि० वा०–वह साधु या साध्वी। गामाणुगाम–ग्रामानुग्राम। दूइज्जिज्जा–विहार करते हुए। अंतरा से–उस मार्ग के मध्य मे। नावासंतारिमे उदए सिया–नौका द्वारा तैरने योग्य जल हो तो, इस प्रकार के जल से पार होने के लिए। से ज–वह साधु जो। पुण–फिर। नाव जाणिज्जा–नौका के सम्बन्ध मे जाने कि। अ–यदि। असजए–गृहस्थ। भिक्खुपडियाए–भिक्षु के लिए। किणिज्ज वा–नौका खरीद ले या। पामिच्चेज्ज वा–नौका को उधार लेकर साधु को पार उतारे या। नावाए नाव परिणाम कट्टु–एक नौका से दूसरी नौका का परिवर्तन करके साधु को पार उतारे या। थलाओ वा नाव जलसि ओगाहिज्जा–स्थल भूमि पर स्थित नौका को साधु के लिए स्थल से जल में लाए। वा–या। जलाओ वा नावं थलसि उक्कसिज्जा–जल से स्थल मे लाए। वा–या। पुण्ण नाव उस्सिंचिज्जा–जल से भरी हुई नौका को साधु के लिए खाली करे या। सन्नं वा नाव उप्पीलाविज्जा–कीचड़ मे डूबी हुई नौका को निकाल कर चलने के लिए तैयार करे। तहप्पगारं–तथा प्रकार की नौका। उड्ढगामिणिं–

चाहे जल के ऊपर चलने वाली हो अर्थात् पानी के स्रोत के सामने चलने वाली हो या। **अहेगा॰**–जल के नीचे चलने वाली हो। **तिरियगामि॰**–तिर्यक् चलने वाली हो। **परं जोयणमेराए**–उत्कृष्ट योजन की मर्यादा से (एक घण्टे मे ८ मील की चाल से) चलने वाली हो। **अद्धजोयणमेराए**–या अर्द्धयोजन की मर्यादा से चलने वाली। **अप्पतरे वा**–ऐसी नौका पर थोड़े काल या। **भुज्जतरे वा**–बहुत काल के लिए। **गमणाए**–नदी से पार जाने के लिए। **नो दुरूहिज्जा**–सवार न हो।

से भिक्खू वा॰–वह साधु अथवा साध्वी। **पुव्वामेव**–पहले ही। **तिरिच्छसपाइमं**–तिर्यक् जल मे चलने वाली। **नावं जाणिज्जा**–नौका के सम्बन्ध मे जाने। **जाणित्ता**–और जानकर। **से**–वह भिक्षु। **तमायाए**–उस गृहस्थ की आज्ञा लेकर। **एगतमवक्कमिज्जा**–एकान्त स्थान मे चला जाए और वहा जाकर। **भडग पडिलेहिज्जा २**–भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करे और प्रतिलेखन करके। **एगओ भोयणभंडग करिज्जा २**–फिर भडोपकरण को एकत्रित करके। **ससीसोवरिय काय**–सिर से लेकर शरीर को और। **पाए**–पैरो को। **पमज्जिज्जा**–प्रमार्जित करे, उसके पश्चात्। **सागार भत्त पच्चक्खाइज्जा**–आगार पूर्वक अन्न-पानी का त्याग करे अर्थात् यदि मै सकुशल पार हो गया तो आहार-पानी करूगा अन्यथा जीवन पर्यन्त के लिए मेरे आहार-पानी का त्याग है, इस प्रकार आगार सहित प्रत्याख्यान करे। **एग पाय जले किच्चा**–एक पैर जल मे रखे और। **एग पाय थले किच्चा**–एक पैर स्थल मे रखे। **तओ**–तदनन्तर। **सं॰**–वह साधु। **नाव दुरूहिज्जा**–नौका पर चढे।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ यदि मार्ग में नौका द्वारा तैरने योग्य जल हो तो नौका से नदी पार करे। परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि यदि गृहस्थ साधु के निमित्त मूल्य देता हो या नौका उधार लेकर या परस्पर परिवर्तन करके या नौका को स्थल से जल मे या जल से स्थल में लाता हो, या जल से परिपूर्ण नौका को जल से खाली करके या कीचड़ मे फसी हुई को बाहर निकाल कर और उसे तैयार कर के साधु को उस पर चढ़ने की प्रार्थना करे, तो इस प्रकार की ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी या तिर्यग् गामिनी नौका, जो कि उत्कृष्ट एक योजन क्षेत्र प्रमाण मे, चलने वाली है या अर्द्धयोजन प्रमाण मे चलने वाली है, ऐसी नौका पर थोड़े या बहुत समय तक गमन करने के लिए साधु सवार न हो अर्थात् ऐसी नौका पर बैठ कर नदी को पार न करे। किन्तु, पहले से ही तिर्यग् चलने वाली नौका को जानकर, गृहस्थ की आज्ञा लेकर फिर एकान्त स्थान मे चला जाए और वहा जाकर भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करके उसे एकत्रित करे, तदनन्तर सिर से पैर तक सारे शरीर को प्रमार्जित करके अगार सहित भक्त पान का परित्याग करता हुआ एक पाव जल मे और एक स्थल मे रखकर नौका पर यत्नापूर्वक चढ़े।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि विहार करते हुए यदि मार्ग में नदी आ जाए और उसे बिना नौका के पार करना कठिन हो तो साधु अपनी मर्यादा का परिपालन करते हुए विवेक एव यत्नापूर्वक नौका का उपयोग कर सकता है। यदि मुनि को नदी के किनारे खडा देखकर कोई गृहस्थ उसे पार पहुचाने के लिए नाविक को पैसा देता हो या उससे नौका उधार लेता हो या उससे नाव का परिवर्तन करता हो, तो साधु को उस नाव पर नहीं बैठना चाहिए। इसी तरह यदि कोई नाविक साधु को नदी से पार करने के लिए अपनी नौका को जल मे से स्थल पर लाता हो या स्थल पर से जल में ले जाता हो या कर्दम मे फसी हुई नाव को निकाल कर लाता हो, तो साधु उस नौका पर भी सवार न

हो, भले ही वह नाव एक योजन गामिनी हो या इससे भी अधिक तेज गति से चलने वाली क्यो न हो। जिस नौका के लिए गृहस्थ को पैसा देना पडे या जिसमे साधु के लिए नए रूप से आरम्भ करना पडे साधु उस नाव मे न बैठे। परन्तु, जो नाव पहले से ही पानी मे हो, तो उस नाव से पार होने के लिए वह नाविक से याचना करे और उसके स्वीकार करने पर एकान्त स्थान मे जाकर अपने भण्डोपकरणो को एकत्रित करे और अपने शरीर का सिर से लेकर पैर तक प्रमार्जन करे। उसके पश्चात् सागारिक सथारा करके विवेक पूर्वक एक पैर पानी मे और एक पैर स्थल पर रखकर यत्ना से नौका पर चढे।

प्रस्तुत सूत्र मे ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी और तिर्यग् गामिनी नौकाओ का उल्लेख किया गया है। और इसमे ऊर्ध्व और अधोगामिनी नौकाओ मे बैठने का निषेध किया गया है। कारणवश केवल तिर्यग् गामिनी नौका पर सवार होने का ही आदेश दिया गया है। निशीथ सूत्र मे भी ऊर्ध्व और अधोगामिनी नौकाओ पर सवार होने वाले को प्रायश्चित का अधिकारी बताया गया है[१]। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय आकाश मे उडने एव पानी के भीतर चलने वाली नौकाए भी होती थी। उर्ध्वगामी नौका से वर्तमान युग के हवाई जहाज जैसे यान का होना सिद्ध होता है और अधोगामी नौका से पनडुबी का होना भी प्रमाणित होता है। वृत्तिकार ने उक्त तीनो तरह की नौकाओ का कोई स्पष्टीकरण नही किया है। उपाध्याय पार्श्वचन्द्र ने इन्हे स्रोत के सामने और स्रोत के अनुरूप और जल के मध्य मे गतिशील नौकाए बताया है। परन्तु यह अर्थ उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। क्योकि आकाश एव जल के भीतर चलने वाली नौकाओ के निषेध का तात्पर्य तो स्पष्ट रूप से समझ मे आ जाता है, परन्तु, स्रोत के सामने एव जल के मध्य मे चलने वाली नौका पर सवार नहीं होने का तात्पर्य समझ मे नहीं आता। इससे निष्कर्ष यह निकला कि साधु तिर्यग् गामिनी (पानी के ऊपर गति करने वाली) नौका पर सवार हो सकता है[२]।

प्रस्तुत सूत्र मे एक या अर्ध योजन (८ या ४ मील) तक पानी मे रहने वाली नौका पर सवार होने का निषेध किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इतनी या इससे अधिक दूरी का मार्ग नौका के द्वारा तय करना नहीं कल्पता।

नौका मे सवार होने के पूर्व जो सागारी अनशन करने का उल्लेख किया गया है,उसका तात्पर्य यह है कि यदि मैं कुशलता पूर्वक किनारे पहुच जाऊ तो मेरे आहार-पानी का त्याग नहीं है। परन्तु, कभी

---

१ जे भिक्खू उड्ढगामिणि वा णाव अहोगामिणि वा णाव दुरूहति दुरूहूत वा साइज्जइ।

— निशीथसूत्र, १८, १७।

२ यह अपवाद मार्ग है। यदि दूसरा साफ मार्ग हो-जिसमे नदी नहीं पड़ती हो तो साधु को उस मार्ग से जाना चाहिए। यदि अन्य मार्ग न हो और नदी मे पानी की अधिकता हो तो मुनि नौका द्वारा उसे पार कर सकता है और यह अपवाद मार्ग उत्सर्ग मार्ग की भाति सयम मे सहायक एव निर्दोष माना गया है। क्योंकि, आगम मे इसके लिए कहीं भी प्रायश्चित का विधान नहीं किया गया है। वर्तमान मे नदी पार करने पर जो प्रायश्चित लेने की परम्परा है, वह नौका पर सवार होने या नदी पार करने का प्रायश्चित नहीं है। परन्तु, उसके लेने का उद्देश्य यह है कि आगम में जिस विधि स नदी पार करने एव नौका में सवार होने का उल्लेख किया गया है, उस विधि का यथार्थ पालन नहीं होता है। अत प्रमादवश जो आगम की विधि का उल्लघन होता है, उसका प्रायश्चित लिया जाता है, न कि अपवाद मार्ग में नौका मे सवार होने का। क्योंकि, अपवाद भी उत्सर्ग की तरह का सन्मार्ग है, यदि आगम में उल्लिखित विधि के अनुरूप समभाव से उसका सेवन किया जाए।

— लेखक

प्रसगवश बीच मे कोई दुर्घटना हो जाए तो मेरे आहार-पानी आदि का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग है।

एक पैर पानी मे तथा दूसरा पैर स्थल पर रखने का विधान अप्कायिक जीवो की दया के लिए किया गया है और यहा स्थल का अर्थ पानी के ऊपर का आकाश-प्रदेश है, न कि पृथ्वी। इसका तात्पर्य यह है कि साधु को पानी को मथते हुए-आलोडित करते हुए नहीं चलना चाहिए, परन्तु विवेक पूर्वक धीरे से एक पैर पानी मे और दूसरा पैर पानी के ऊपर आकाश मे रखना चाहिए, इसी विधि से नौका तक पहुच कर विवेक के साथ नौका पर सवार होना चाहिए।

नौका से सम्बन्धित विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भिक्खू वा० नावं दुरूहमाणे नो नावाओ पुरओ दुरूहिज्जा, नो नावाओ मग्गओ दुरूहिज्जा, नो नावाओ मज्झओ दुरूहिज्जा, नो बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए उद्दिसिय २ ओणमिय २ उन्नमिय २ निज्झाइज्जा। से णं परो नावागओ नावागयं वइज्जा-आउसंतो ! समणा एयं ता तुमं नावं उक्कसाहिज्जा वा वुक्कसाहि बा खिवाहि वा रज्जुयाए वा गहाय आकासाहि, नो से तं परिन्नं परिजाणिज्जा तुसिणीओ उवेहिज्जा। से णं परो नावागओ नावाग० वइ०-- आउसं० नो संचाएसि तुमं नावं उक्कसित्तए वा ३ रज्जुयाए वा गहाय आकसित्तए वा आहर एयं नावाए रज्जुयं सयं चेव णं वयं नावं उक्कसिस्सामो वा जाव रज्जुए वा गहाय आकसिस्सामो, नो से तं प० तुसि०। से णं प० आउसं० एयं ता तुमं नावं आलित्तेण वा पीढएण वा वंसेण वा बलएण वा अवलुएण वा वाहेहि, नो से तं प० तुसि०। से णं परो० एयं ता तुमं नावाए उदयं हत्थेण वा पाएण वा मत्तेण वा पडिग्गहेण वा नावाउस्सिंचणेण वा उस्सिंचाहि, नो से तं० से णं परो० समणा ! एयं तुमं नावाए उत्तिंगं हत्थेण वा पाएण वा बाहुणा वा उरुणा वा उदरेण वा सीसेण वा काएण वा उस्सिंचणेण वा चेलेण वा मट्टियाए वा कुसपत्तएण वा कुविंदएण वा पिहेहि, नो से तं०॥ से भिक्खू वा २ नावाए उत्तिंगेण उदयं आसवमाणं पेहाए उवरुवरिं नावं कज्जलावेमाणिं पेहाए नो परं उवसंकमित्तु एवं बूया-आउसंतो! गाहावइ एयं ते नावाए उदयं उत्तिंगेण आसवइ उवरुवरिं नावा वा कज्जलावेइ, एयप्पगारं मणं वा वायं वा नो पुरओ कट्टु विहरिज्जा अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे एगंतगएण अप्पाणं विउसेज्जा समाहीए, तओ सं० नावा संतारिमे उदए आहारियं रीइज्जा, एयं खलु० सया

जइज्जासि त्तिबेमि ॥११९ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा० नावं दूरोहन् न नाव· पुरतो दूरोहेत्- (आरोहेत्) न नाव. मार्गत. दूरोहेत्-आरोहेत् नो नाव· मध्यतः आरुहेन्न बाहुभ्या प्रगृह्य २ अङ्गुल्या उद्दिश्य २ अवनम्य २ उवनम्य २ निध्यायेत्। स पर नौगत नौगत वदेद् आयुष्मन्त. श्रमणाः! एतां तावत् त्वं नावमुत्कर्षस्व, व्युत्कर्षस्व, क्षिपस्व वा रज्वा वा गृहीत्वा आकर्षस्व ? न स ता परिज्ञां परिजानीयात् तूष्णीक उपेक्षेत। स परो नौगतो नौगतं वदेद्-आयुष्मन्तः श्रमणा. ! न शक्नोषि त्व नावमुत्कर्षियतु वा ३ रज्वा वा गृहीत्वा आकर्षियतुं वा आहर एतां नावः रज्जूकां स्वयं चैव वय नावं उत्कर्षिष्यामः वा यावद् रज्वा गृहीत्वा आकर्षिष्याम., न स तां परिज्ञां परिजानीयात् तूष्णीक उपेक्षेत। स पर. आयुष्मन्तः श्रमणा ! एता त्व नावमालिप्तेन वा पीठकेन वा वंशेन वा वलकेन वा अवलुकेन वा वह, न स तां परिज्ञां परिजानीयात् तूष्णीक· उपेक्षेत। स पर एता तावत् त्वं नावि उदक हस्तेन वा पादेन वा अमत्रेण वा पतद्ग्रहेण वा नावुत्सिंचनेन वा उत्सिचस्व ? न स ता०। स परः० श्रमणा. ! एतां त्व नाव. रन्ध्र हस्तेन वा पादेन वा बाहुना वा उरुणा वा उदरेण वा शीर्षेण वा कायेन वा उत्सिचनेन वा चेलेन वा मृत्तिकया वा कुशपत्रेण वा कुविन्दकेन वा पिधेहि न स ता०। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा नाव रन्ध्रोदकमाश्रवमाण प्रेक्ष्य उपर्युपरि नाव प्लाव्यमाना प्रेक्ष्य न पर उपसंक्रमितुमेव ब्रूयात् आयुष्मन्! गृहपते ! एतत् ते नावि उदक रन्ध्रेण आस्त्रवति, उपर्युपरि नौ वा प्लवते, एतत् प्रकार मनो वा वाच वा न पुरत. कृत्वा विहरेत्। अल्पोत्सुक. अबहिर्लेश्य एकान्तगतेन आत्मान व्युत्सृजेत् समाधिना, तत. सयत नौ सन्तार्यं चोदकं यथाऽऽर्यं रीयेत– गच्छेत् एतां खलु सदा यायात् इति ब्रवीमि।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **नाव**-नौका पर। **दुरूहमाणे**-चढता हुआ। **नावाओ**-नौका के। **पुरओ**-आगे। **नो दुरूहिज्जा**-न बैठे। **नावाओ**-नौका के। **मज्झओ**-मध्य मे। **नो दुरूहिज्जा**-न बैठे। **नावाओ**-नौका के। **मग्गओ**-पीछे। **नो दुरूहिज्जा**-न बैठे। **बाहओ**-नौका की दोनो ओर की बाहो को। **पगिज्झिय २**-पकड़ कर २। **अगुलियाए**-अगुली को। **उद्दिसिय २**-उद्देश्य करके। **ओणमिय**-अगुली ऊची करके और। **उन्नमिय २**-विशेष ऊची करके। **नो निज्झाइज्जा**-पानी को न देखे। **ण**-वाक्यालकार मे है। **से**-वह नाविक। **परो**-अन्य। **नावागओ**-नाव मे बैठा हुआ। **नावागय**-नौका मे सवार साधु के प्रति यदि। **वइज्जा**-कहे कि। **आउसतो समणा**-हे आयुष्मन् श्रमण ! **ता**-पहले। **एय**-इस। **नाव**-नौका को। **तुमं**-तू। **उक्कसाहिज्जा**-अमुक दिशा की ओर खींच ले अथवा। **वुक्कसाहि वा**-विशेष रूप से खींच ले। **खिवाहि वा**-अथवा अमुक वस्तु को नौका मे रखकर इसे चला ले या। **रज्जुयाए वा गहाय**-रस्सी को पकड़ कर खींच ले। **से**-वह भिक्षु। **त**-उस नाविक के। **परिन्नं**-इस प्रकार के वचन को। **नो परिजाणिज्जा**-स्वीकार न करे, किन्तु। **तुसिणीओ**-मौन रूप मे। **उवेहिज्जा**-स्थित रहे अर्थात् उसको हा या ना कुछ भी न कहे। **ण**-वाक्यालकार मे है।

से-वह। **परो**-अन्य। **नावागओ**-नौका मे बैठा हुआ नाविक। **नावाग०**-नौका मे स्थित साधु के प्रति।

वइ॰-कहे कि। आउसं॰-हे आयुष्मन् श्रमण ! यदि। तुमं-तू। नावं-नौका को। उक्कसित्तए वा-खींचने के लिए। नो संचाएसि-समर्थ नहीं है तो फिर। रज्जुयाए वा-रस्सी को। गहाय-पकड़ कर। आकसित्तए वा-यह रस्सी। आहर-मुझे दे दे। एयं-इस। नावाए-नौका को। रज्जूए-रज्जू से। सय-मै स्वय अपने आप। च-फिर। एवं-निश्चय ही। ण-वाक्यालंकार मे है। वय-हम लोग। नाव-नौका को। उक्कसिस्सामो-दृढ़ कर लेंगे। जाव-यावत्। रज्जूए-रज्जू को। गहाय-ग्रहण करके। आकसिस्सामो-रज्जू बान्ध कर विशेष रूप से दृढ करेगे। से-वह भिक्षु। तं-उस नाविक के। प॰-इस वचन को भी। नो परिजाणिज्जा-स्वीकार न करे किन्तु। तुसि॰-मौन भाव मे रहे अर्थात् चुप रहे।

से-वह गृहस्थ। ण-वाक्यालकार मे है। प॰-पर-अन्य नाव मे बैठा हुआ नाविक साधु के प्रति कहता है कि। आउसं-हे आयुष्मन् श्रमण ! ता-पहले। तुम-तू। एय-इस। नाव-नाव को। आलित्तेण वा-नौका के चलाने वाले चप्पू से या। पीढएण वा-पीठ से या। वंसेण वा-बास से अथवा। वलएण वा-वल्ली से-नौका के उपकरण विशेष से या। अवलुएण वा-नौका को चलाने का बास विशेष, उससे। वाहेहि-नौका को आगे चला। से-वह भिक्षु। त-उस नाविक के। प॰-इस वचन को भी। नो परिजाणिज्जा-स्वीकार न करे किन्तु। तुसि॰-मौन भाव से चुप रहे। णं-वाक्यालंकार मे है।

से-वह। परो॰-अन्य नाव मे बैठा हुआ नाविक, नावागत साधु के प्रति कहने लगा कि हे आयुष्मन् श्रमण ! ता-पहले। तुम-तू। एयं-इस। नावाए-नौका मे। उदयं-भरे हुए पानी को। हत्थेण वा-हाथ से। पाएण वा-अथवा पैर से या। मत्तेण वा-पात्र से। पडिग्गहेण वा-या बर्तन से या। नावाउस्सिंचणेण वा-नौका मे रखे हुए पानी उलीचने के पात्र से। उस्सिंचाहि-इस पानी को नौका से बाहर निकाल। नो से त-वह साधु उस नाविक के उन वचनो को भी स्वीकार न करे किन्तु मौन धारण करके बैठा रहे। ण-वाक्यालंकार में है।

से-वह । परो-अन्य नावा मे बैठा हुआ नावागत साधु के प्रति कहने लगा। समणा !-हे आयुष्मन् श्रमण ! तुमं-तू। एय-इस। नावाए-नौका के। उत्तिंगं-छिद्र को। हत्थेण वा-हाथ से। पाएण वा-पैर से। बाहुणा वा-बाहु-भुजा से। उरुणा वा-जघादि से। उदरेण वा-पेट से। सीसेण वा-सिर से। काएण वा-शरीर से। उस्सिंचणेण वा-उत्सिचन-नौका से जल निकालने के पात्र विशेष से या। चेलेण वा-वस्त्र से। मट्टिया वा-मिट्टी से या। कुसपत्तेण वा-कुशापत्र से। कुविंदएण वा-कुविन्द नामक तृण विशेष से। पिहेहि-बन्द कर दे। नो से त॰-वह साधु उस नाविक के इस वचन को भी स्वीकार न करे किन्तु मौनावलम्बन करके बैठा रहे।

से भिक्खू वा॰-वह साधु अथवा साध्वी। नावाए-नौका के। उत्तिगेण-छिद्र के द्वारा। उदयं-पानी को। आसवमाण-आता हुआ। पेहाए-देखकर। उवरुवरिं -बहुत से जल से। नावं-नौका को। कज्जलावेमाणिं-भरी हुई। पेहाए-देखकर। परं-अन्य गृहस्थ के। उवसंकमित्तु-पास जाकर। नो एयं बूया-इस प्रकार न कहे कि। आउसंतो गाहावइ-हे आयुष्मन् गृहपते ! एयं ते-तुम्हारी इस। नावाए-नौका मे। उत्तिगेण-छिद्र के द्वारा। उदयं-जल। आसवइ-आ रहा है। उवरुवरिं -ऊपर २ बहुत जल से। नावा वा-नौका। कज्जलावेइ-भर रही है। एयप्पगारं-इस प्रकार के। मणं वा वायं वा-मन अथवा वचन को। पुरओ कट्टु-आगे करके अर्थात्

प्रधान रखकर। नो विहरिज्जा-विहरण न करे किन्तु। अप्पुस्सुए-शरीर तथा उपकरणादि पर ममत्व न रखता हुआ, और। अबहिल्लेसे-जिस की सयम से बाहर लेश्या नहीं है तथा। एगंतगएण-एकान्त गत अर्थात् राग-द्वेष से रहित होकर। अप्पाणं-आत्मा को– आत्मगत ममत्व भाव को। विउसेज्जा-छोड़कर और। समाहीए-ज्ञानदर्शन तथा चारित्र मे समाहित होकर रहे। तओ-तदनन्तर। सजयामेव-सयत साधु। नावासंतारिमे-नौका से तरने योग्य। उदए-जल मे। आहारिय-जिस प्रकार अनन्त तीर्थंकरो ने ईर्या का वर्णन किया है उसी प्रकार। रीइज्जा-चले। एवं खलु-निश्चय ही यह। सया-सदा ही। जइज्जासि-यतनाशील बने। त्तिबेमि-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—साधु या साध्वी नौका पर चढते हुए नौका के आगे, पीछे और मध्य में न बैठे। और नौका के बाजु को पकड़कर या अगुली द्वारा उद्देश्य (स्पर्श) करके तथा अंगुली ऊची करके जल को न देखे। यदि नाविक साधु के प्रति कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण ! तू इस नौका को खींच या अमुक वस्तु को नौका मे रखकर और रज्जू को पकड़कर नौका को अच्छी तरह से बान्ध दे। या रज्जू के द्वारा जोर से कस दे। इस प्रकार के नाविक के वचनो को साधु स्वीकार न करे किन्तु मौन वृत्ति को धारण कर अवस्थित रहे।

यदि नाविक फिर कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! यदि तू इस प्रकार नहीं कर सकता तो मुझे रज्जू लाकर दे। हम स्वय नौका को दृढ़ बन्धनो से बान्ध लेगे और उसे चलाएंगे फिर भी साधु चुप रहे।

यदि नाविक कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! तू इस नौका को चप्पू से, पीठ से, बांस से, बलक और अबल्लुक से आगे कर दे। नाविक के इस वचन को भी स्वीकार न करता हुआ साधु मौन रहे।

फिर नाविक बोले कि आयुष्मन् श्रमण ! तू नाव मे भरे हुए जल को हाथ से, पांव से, भाजन से, पात्र से और उत्सिचन से बाहर निकाल दे। नाविक के इस कथन को भी अस्वीकार करता हुआ साधु मौन रहे। यदि फिर नाविक कहे कि-आयुष्मन् श्रमण ! तू नावा के इस छिद्र को हाथ से, पैर से, भुजाओ से, जघा से, उदर से, सिर से और शरीर से, नौका से जल निकालने वाले उपकरणो से, वस्त्र से, मिट्टी से, कुश पत्र और कुबिद से रोक दे– बन्द कर दे। साधु नाविक के उक्त कथन को भी अस्वीकार कर मौन धारण करके बैठा रहे।

साधु या साध्वी नौका मे छिद्र के द्वारा जल भरता हुआ देखकर एवं नौका को भरती हुई देखकर, नाविक के पास जाकर ऐसे न कहे कि हे आयुष्मन् गृहपते ! तुम्हारी यह नौका छिद्र द्वारा जल से भर रही है और छिद्र से जल आ रहा है। इस प्रकार के मन और वचन को उस ओर न लगाता हुआ विचरे। वह शरीर एव उपकरणादि पर मूर्छा न करता हुआ, लेश्या को संयम में रखे तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे समाहित होकर आत्मा को राग और द्वेष से रहित करने का प्रयत्न करे। और नौका के द्वारा तैरने योग्य जल को पार करने के बाद जिस प्रकार तीर्थंकरों ने जल के विषय मे ईर्या समिति का वर्णन किया है– उसी प्रकार उसका पालन करे। यही साधु का समग्र आचार है अर्थात् इसी मे उसका साधु भाव है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि नाविक साधु को नौका के बाधने एव खोलने तथा चलाने आदि का कोई भी कार्य करने के लिए कहे तो साधु को उसके वचनो को स्वीकार नहीं करना चाहिए। परन्तु, मौन रहकर आत्म-चिन्तन मे सलग्न रहना चाहिए। इसी तरह नौका मे पानी भर रहा हो तो साधु को उसकी सूचना भी नहीं देनी चाहिए। इन सूत्रो से कुछ पाठको के मन मे यह सन्देह हो सकता है कि यह सूत्र दया-निष्ठ साधु की अहिसा एव दया भावना का परिपोषक नहीं है। परन्तु, यदि इस सूत्र पर गहराई से सोचा-विचारा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रस्तुत सूत्र साधु के अहिसा महाव्रत का परिपोषक है। क्योकि, साधु छह काय का सरक्षक है, यदि वह नाव को खींचने, बाधने एव चलाने आदि का प्रयत्न करेगा तो उसमे अनेक त्रस एव स्थावर कायिक जीवो की हिसा होगी और नौका मे छिद्र आदि का कथन करने से एकाएक लोगो के मन मे भय की भावना का सचार होगा। जिससे उनमे भाग दौड मच जाना सम्भव है और परिणाम स्वरूप नाव खतरनाक स्थिति मे पहुच सकती है। इसलिए साधु को इन सब झझटो से दूर रहकर अपने आत्म-चिन्तन मे सलग्न रहना चाहिए। इसमे उन अन्य व्यक्तियो के साथ साधु स्वय भी तो उसी नौका मे सवार है। यदि नौका मे किसी तरह की गडबड होती है तो उसमे साधु का जीवन भी तो खतरे मे पडता है। फिर भी साधु अपने लिए किसी तरह का प्रयत्न नहीं करता। क्योकि, जिस प्रवृत्ति मे अन्य जीवो की हिसा हो वैसी प्रवृत्ति करना साधु को नहीं कल्पता। प्रस्तुत सूत्र मे साधुत्व की उत्कृष्ट साधना को लक्ष्य मे रखकर यह आदेश दिया है कि वह मृत्यु का प्रसग उपस्थित होने पर भी नाव मे होने वाली किसी तरह की सावद्य प्रवृत्ति मे भाग नहीं ले परन्तु मौन भाव से आत्म-चिन्तन मे लगा रहे।

यदि कोई साधारण साधु कभी परिस्थितिवश व्यावहारिक दृष्टि को सामने रखकर नौका को सकट से बचाने के लिए कोई प्रयत्न करे तो उसे भगवान द्वारा दी गई आज्ञा के उल्लघन का प्रायश्चित लेना चाहिए। निशीथ सूत्र मे नौका सम्बन्धी कार्य करने का जो प्रायश्चित बताया गया है वह– जो लोगो के प्रति मुनि की दया भावना है, उनकी रक्षा की दृष्टि है, उसका नहीं है। वह प्रायश्चित केवल मर्यादा भग का है। क्योकि, उक्त प्रवृत्ति मे प्रमादवश हिसा का होना भी सम्भव है, इसलिए उक्त दोष का निवारण करने के लिए ही प्रायश्चित का विधान किया गया है। और उक्त क्रियाओ के करने का लघु चौमासिक प्रायश्चित बताया गया है[१]।

कुछ प्रतियो मे प्रस्तुत सूत्र का अन्तिम अश इस प्रकार भी मिलता है– '**एव खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिते सदा जएज्जासि।**' परन्तु, इससे अर्थ मे कोई विशेष अन्तर नही पडता है।

प्रस्तुत सूत्र मे साधु की विशिष्ट साधना एव उत्कृष्ट अध्यवसायो का उल्लेख किया गया है। नौका मे आरूढ हुआ साधु अपने विचार एव चिन्तन को इधर-उधर न लगाकर आत्म चिन्तन मे लगाए रहता है और ६ काय की रक्षा के लिए अपने जीवन का व्यामोह भी नहीं रखता है। इसलिए नौका मे पानी भरने की स्थिति मे भी जब कि उसका अपना जीवन भी सकट मे पडा हो, आध्यात्मिक विचारणा मे

---

१ निशीथ सूत्र, उद्देशक १८, सूत्र १ से १८ और ८४।

व्यस्त रहना उसकी विराट् साधना का प्रतीक है, इससे उसके आत्म-चिन्तन की स्थिरता का स्पष्ट परिचय मिलता है। इस तरह प्रस्तुत सूत्र मे दिया गया आदेश साधुत्व की विशुद्ध साधना के अनुकूल ही प्रतीत होता है।

'त्तिबेमि' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन ईर्यैषणा

द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक के अन्तिम दो सूत्रो मे नौका से नदी पार करने का उल्लेख किया गया है। अब प्रस्तुत उद्देशक मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि नौका पर सवार होने के पहले और बाद मे साधु को किन किन बातो का ध्यान रखना चाहिए। इस विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से णं परो णावा० आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं छत्तगं वा जाव चम्मछेयणगं वा गिण्हाहि, एयाणि तुमं विरूवरूवाणि सत्थजायाणि धारेहि, एयं ता तुमं दारगं वा पज्जेहि, नो से तं० ॥१२०॥

छाया– स पर नाविगत नाविगत वदेत् आयुष्मन् श्रमण ! एतत् तावत् त्व छत्रक वा यावत् चर्मछेदनक वा गृहाण एतानि त्वं विरूपरूपाणि शस्त्रजातानि धारय। एत तावत् त्व दारक वा पायय, न स तां परिज्ञा परिजानीयात्, तूष्णीक: उपेक्षेत्।

पदार्थ– ण–वाक्यालकार मे है। से–वह। **परो णावा०**–यदि नाविक नौका मे बैठे हुए मुनि को इस प्रकार। **वदेज्जा**–कहे। **आउसंतो समणा**–हे आयुष्मन् श्रमण ! **ता**–पहले। **तुमं**–तू। **एयं**–मेरे इस। **छत्तगं वा**–छत्र। **जाव**–यावत्। **चम्मछेयणगं वा**–चर्म छेदिका–चमड़े को काटने के शस्त्र विशेष को। **गिण्हाहि**–ग्रहण कर और फिर। **तुम**–तू। **एयाणि**–ये। **विरूवरूवाणि**–नाना प्रकार के जो। **सत्थजायाणि**–शस्त्र आयुध विशेष है इनको। **धारेहि**–धारण कर, तथा। **ता**–पहले। **तुमं**–तू। **एय**–इस। **दारगं**–बालक को। **पज्जेहि**–पानी आदि पिला दे। **से**–वह साधु। **तं**–उस नाविक–गृहस्थ के इस। **परिन्नं**–वचन को। **नो परिजाणिज्जा**–स्वीकार न करे किन्तु। **तुसिणीओ**–मौन धारण करके। **उवेहेज्जा**–बैठा रहे।

_मूलार्थ_यदि नाविक नाव पर सवार मुनि को यह कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण ! पहले तू मेरा छत्र यावत् चर्मछेदन करने के शस्त्र को ग्रहण कर। इन विविध शस्त्रो को धारण कर और इस बालक को पानी पिला दे। वह साधु उसके उक्त वचन को स्वीकार न करे, किन्तु मौन धारण करके बैठा रहे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि नाविक साधु को छत्र, शस्त्र आदि धारण करने के लिए कहे या अपने बालक को पानी पिलाने के लिए कहे तो साधु उसकी बात स्वीकार न करे, किन्तु मौन भाव से आत्म–चिन्तन मे सलग्न रहे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाविक मुनि जीवन से सर्वथा अपरिचित होने के कारण उसे ऐसे आदेश देता है। यदि वह साधु के त्यागनिष्ठ जीवन से परिचित

हो तो वह साधु के साथ ऐसा व्यवहार नही कर सकता। अत उसके भाषण करने के ढग से उसकी अनभिज्ञता प्रकट होती है और साधु के मौन रहकर उसके आदेश को अस्वीकार करने के पीछे एकमात्र प्राणी जगत की रक्षा एव सयम साधना को विशुद्ध रखने का भाव स्पष्ट होता है। क्योकि, यदि साधु छत्र, शस्त्र आदि धारण करेगा तथा नाविक के बच्चो को पानी पिलाएगा या उसके ऐसे ही अन्य कार्य करेगा तो उसमे त्रस एव स्थावर अनेक जीवो की हिसा होगी और परिणाम स्वरूप उसकी सयम साधना भी टूट जाएगी। अत साधु को नाविक के आदेशानुसार कार्य नही करना चाहिए, परन्तु मौन भाव से उसे अस्वीकार करके अपनी आध्यात्मिक साधना मे व्यस्त रहना चाहिए।

नाविक का कार्य न करने पर यदि कोई नाविक क्रुद्ध होकर साधु के साथ दुष्टता का व्यवहार करे, उसे उठाकर नदी की धारा मे फैक दे तो उस समय साधु को क्या करना चाहिए। इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से णं परो नावागए नावागयं वएज्जा-आउसंतो ! एस णं समणे नावाए भंडभारिए भवइ, से णं बाहाए गहाय नावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म से य चीवरधारी सिया खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढिज्ज वा निवेढिज्ज वा उप्फेसं वा करिज्जा, अह० अभिक्कंत-कूरकम्मा खलु बाला बाहाहिं गहाय ना० पक्खिविज्जा से पुव्वामेव वइज्जा-आउसंतो ! गाहावई मा मेत्तो बाहाए गहाय नावाओ उदगंसि पक्खिवह, सयं चेव णं अहं नावाओ उदगंसि ओगाहिस्सामि, से णेवं वयंतं परो सहसा बलसा बाहाहिं ग० पक्खिविज्जा तं नो सुमणे सिया, नो दुम्मणे सिया, नो उच्चावयं मणं नियंछिज्जा नो तेसिं बालाणं घायए वहाए समुट्ठिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समाहीए तओ सं० उदगंसि पविज्जा ॥१२१॥

छाया- स परो नौगत· नौगत वदेत्-आयुष्मन् ! एष श्रमण. नावि भाण्डभारो भवति, तदेन बाहुभ्यां गृहीत्वा नावः उदके प्रक्षिपत एतत् प्रकारं निर्घोषं श्रुत्वा निशम्य स च चीवरधारी स्यात्, क्षिप्रमेव चीवराणि उद्वेष्टयेद् वा निर्वेष्टयेद् वा, उप्फेसं-शिरोवेष्टनं वा कुर्यात्, अथ पुनरेव जानीयाद् अभिक्रान्तक्रूरकर्माणः खलु बालाः बाहुभ्यां गृहीत्वा नावः उदके प्रक्षिपेयु. स पूर्वमेव वदेत्-आयुष्मन् गृहपते ! मा मां, इतो बाहुभ्यां गृहीत्वा नावः उदके प्रक्षिपत ! स्वय चैव अह नावः उदके अवगाहिष्ये तम् एवं वदन्तं परः सहसा बलेन बाहुभ्यां गृहीत्वा नावः उदके प्रक्षिपेत् तदा न सुमना· स्यान्न दुर्मनाः स्यान्न उच्चावचं मनः नियच्छेन्न तेषां बालानां घाताय वधाय समुत्तिष्ठेद् अल्पोत्सुकः यावत् समाधिना ततः संयतमेव उदके प्लवेत।

पदार्थ– णं-वाक्यालंकार मे है। से-वह। परो नावागए-नौका पर सवार नाविक। नावागयं-यदि नौका पर चढे हुए अन्य गृहस्थ को। वएज्जा-इस प्रकार कहे। णं-वाक्यालंकार मे है। आउसंतो-हे आयुष्मन् गृहस्थ। एस-यह। समणे-साधु। नावाए-नौका मे बैठा हुआ साधु। भंडभारिए भवइ-चेष्टारहित भाण्डोपकरण की भाति भार रूप है। ण-प्राग्वत्। से-इसको। बाहाए-भुजाओ से। गहाय-पकड़कर। नावाओ-नाव से बाहर। उदगंसि-जल मे। पक्खिविज्जा-फैक दो-गिरा दो। एयप्पगारं-इस प्रकार के। निग्घोसं-निर्घोष शब्द को। सुच्चा-सुनकर। निसम्म-दिल मे विचार कर। य-फिर। से-वह साधु। चीवरधारी सिया-यदि वस्त्रधारी हो तो। खिप्पामेव-जल्दी ही। चीवराणि-वस्त्रो को। उव्वेढिज्जा-पृथक् कर दे। वा-अथवा। निवेढिज्जा वा-एकत्र कर उन्हे भली-भान्ति बान्ध ले या। उप्फेस वा करिज्जा-सिर पर लपेट ले। अह पुणेव जाणिज्जा-और फिर इस प्रकार जाने। खलु-निश्चयार्थक है। अभिकतकूरकम्मा-अत्यन्त क्रूर कर्म करने वाला। बाला-ये अज्ञानी जीव। बाहाहिं गहाय-मुझे-भुजाओ से पकड़ कर। नावाओ-नौका से बाहर। उदगंसि-जल मे। पक्खिविज्जा-गिरावेगे। से-वह साधु। पुव्वामेव-उससे पूर्व ही उनके प्रति इस प्रकार। वइज्जा-कहे। आउसतो गाहावई-आयुष्मन् गृहस्थो ! मेत्तो-मुझे इस नीका से। बाहाए-गहाय-भुजाओ से पकड़ कर। नावाओ-नौका से बाहर। उदगसि-जल मे। मा पक्खिवह-मत फैको। च-फिर। एव-निश्चय। णं-वाक्यालकार मे है। अहं-मै। सयं-स्वय ही। नावाओ-तुम्हारी नौका से। उदगंसि-जल मे। ओगाहिस्सामि-उतर जाऊगा। से-उस साधु के। ण-प्राग्वत्। एव-इस प्रकार। वयंत-बोलते हुए यदि। परो-अन्य गृहस्थ। सहसा-साहस पूर्वक शीघ्र ही। बलसा-बलपूर्वक। बाहाहिं गहाय-उसे भुजाओ से पकड़ कर। पक्खिविज्जा-जल मे फैक दे। त-तो वह साधु। सुमणे-श्रेष्ठ मन वाला। नो सिया-न हो तथा। दुम्मणे-दुष्ट मन वाला भी। नो सिया-न होवे और। नो उच्चावयं मण नियछिज्जा-अपने मन को ऊचा-नीचा भी न करे तथा। तेसिं बालाणं-उन बाल अज्ञानी जीवो का। घायाए-घात करने के लिए। वहाए-वध करने के लिए भी। नो समुट्ठिज्जा-उद्यत न हो अर्थात् उनके विनाश का उद्योग न करे किन्तु। अप्पुस्सुए-राग-द्वेष से रहित होकर। जाव-यावत्। समाहीए-समाधि से सयम मे विचरे। तओ-तदनन्तर। स०-साधु। उदगसि-जल मे। पविज्जा-शाति पूर्वक प्रविष्ट हो जाए, तात्पर्य यह है कि जल मे बहता हुआ मन मे उन गृहस्थादि के प्रति किसी प्रकार का राग-द्वेष न रखे।

मूलार्थ– यदि नाविक नौका पर बैठे हुए किसी अन्य गृहस्थ को इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! यह साधु जड़ वस्तुओं की तरह नौका पर केवल भार भूत ही है। यह न कुछ सुनता है और ना कोई काम ही करता है। अत· इसको भुजा से पकड़ कर इसे नौका से बाहर जल में फैंक दो। इस प्रकार के शब्दों को सुनकर और उन्हें हृदय में धारण करके वह मुनि यदि वस्त्रधारी है तो शीघ्र ही वस्त्रों को फैलाकर, फिर उन्हें अपने सिर पर लपेट कर विचार करे कि ये, अत्यन्त क्रूर कर्म करने वाले अज्ञानी लोग मुझे भुजाओं से पकड़कर नौका से बाहर जल में फैंकना चाहते हैं। ऐसा विचार कर वह उनके द्वारा फैके जाने के पूर्व ही उन गृहस्थों को सम्बोधित करके कहे कि आयुष्मन् गृहस्थो ! आप लोग मुझे भुजाओं से पकड़ कर जबरदस्ती नौका से बाहर जल में मत फैको। मैं स्वय ही इस नौका को छोड़ कर जल में प्रविष्ट हो जाऊंगा। साधु के ऐसे कहने पर भी यदि कोई अज्ञानी जीव शीघ्र ही बलपूर्वक साधु की भुजाओ को पकड़ कर उसे नौका से बाहर

जल में फैंक दे, तो जल में गिरा हुआ साधु मन में हर्ष-शोक न करे। वह मन में किसी तरह का संकल्प-विकल्प भी न करे और उनकी घात-प्रतिघात करने का तथा उनसे प्रतिशोध लेने का विचार भी न करे, इस तरह वह मुनि राग-द्वेष से रहित होकर समाधिपूर्वक जल मे प्रवेश कर जाए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु को हर परिस्थिति मे समभाव बनाए रखने का आदेश दिया गया है। साधुता का आदर्श ही यह है कि वह दु खो की तपती हुई दोपहरी मे भी समभाव की सरस धारा को न सूखने दे। अपने आदेश का पालन होते हुए न देखकर यदि कोई नाविक उसे नदी की धारा मे फैंकने की योजना बनाए और साधु उसे सुन ले तो उस समय साधु उस पर क्रोध न करे और न उसका अनिष्ट करने का प्रयत्न करे, प्रत्युत वह उससे मधुर शब्दो मे कहे कि तुम मुझे फैंकने का कष्ट क्यो करते हो। यदि मैं तुम्हे बोझ रूप प्रतीत होता हूँ और तुम मुझे तुरन्त नौका से हटाना चाहते हो तो लो मैं स्वय ही सरिता की धारा मे उतर जाता हूँ। उसके इतना कहने पर भी यदि कोई अज्ञानी नाविक उसका हाथ पकडकर उसे जल मे फैंक दे, तो साधु उस समय शात भाव से अपने भौतिक देह का त्याग कर दे। परन्तु, उस समय उन व्यक्तियो पर मन से भी क्रोध न करे और न उनसे प्रतिशोध लेने का ही सोचे और उन्हे किसी तरह का अभिशाप भी न दे और न दुर्वचन ही कहे।

प्रस्तुत सूत्र मे साधुता के आदर्श एव उज्ज्वल स्वरूप का एक चित्र उपस्थित किया गया है। साधु की इस विराट् साधना का यथार्थ रूप तो अनुभव गम्य ही है, शब्दो के द्वारा उस स्वरूप को प्रकट करना कठिन ही नही, असम्भव है। आत्मा के इस विशुद्ध आचरण के सामने दुनिया की सारी शक्तिया निस्तेज हो जाती हैं। इसके प्रखर प्रकाश के सामने सहस्र-सहस्र सूर्यों का प्रकाश भी धूमिल सा प्रतीत होता है। आत्मा की यही महान् शक्ति है जिसकी साधना करके मानव आत्मा से परमात्मा बनता है, साधक से सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है।

इस सूत्र मे सचेलक साधु को ही निर्देश करके यह आदेश दिया गया है। क्योकि, जिनकल्पी मुनि मुखवस्त्रिका एव रजोहरण ही रखते हैं, परन्तु, यहा पर वस्त्रो को फैलाकर फिर उन्हे समेटने का आदेश दिया गया है। इससे यही स्पष्ट होता है कि यह पाठ स्थविर कल्पी मुनि को लक्ष्य करके कहा गया है। परन्तु, सूत्रकार ने प्रस्तुत प्रकरण मे वस्त्र की तरह पात्र का स्पष्ट उल्लेख क्यो नहीं किया, यह विद्वानो के लिए विचारणीय है।

यदि कोई नाविक साधु को जल मे फैंक दे तो उस समय उसे क्या करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० उदगंसि पवमाणे नो हत्थेण हत्थं पाएण पायं काएण कायं आसाइज्जा, से अणासायणाए अणासायमाणे तओ सं० उदगंसि पविज्जा॥ से भिक्खू वा० उदगंसि पवमाणे नो उम्मुग्गनिमुग्गियं करिज्जा, मामेयं उदगं कन्नेसु वा अच्छीसु वा नक्कंसि वा मुहंसि वा परियावज्जिज्जा, तओ० संजयामेव उदगंसि पविज्जा॥ से भिक्खू वा उदगंसि पवमाणे दुब्बलियं

पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, नो चेव णं साइज्जिज्जा, अह पु॰ पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए, तओ संजयामेव उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा॥ से भिक्खू वा॰ उदउल्लं वा २ कायं नो आमज्जिज्जा वा णो पमज्जिज्जा वा संलिहिज्जा वा निल्लिहिज्जा वा उव्वलिज्जा वा उव्वट्टिज्जा वा आयाविज्ज वा पया॰, अह पु॰ विगओदओ मे काए छिन्नसिणेहे काए तहप्पगारं कायं आमज्जिज्ज वा पयाविज्ज वा तओ सं॰ गामा॰ दूइज्जिज्जा॥१२२॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ उदके प्लवमानः नो हस्तेन हस्त पादेन पादं कायेन काय आसादयेत्, स अनासादनया अनासादमानः ततः सयतमेव उदके प्लवेत। स भिक्षुर्वा॰ उदके प्लवमान नो उन्मज्जननिमज्जने कुर्यात् मा मे एतद् उदक कर्णयो वा अक्ष्णो वा नासिकयो. वा मुखे वा पर्यापद्येत, तत संयतमेव उदके प्लवेत। स भिक्षुर्वा उदके प्लवमान. दौर्बल्य प्राप्नुयात्। क्षिप्रमेव उपधि विगिंचेत्-त्यजेत् वा विशोधयेत् वा नो चैवंसादयेत्। अथ पुनरेवं जानीयात् पारगः स्याद् उदकात् तीर प्राप्तु तत. सयतमेव उदकार्द्रेण सस्निग्धेन वा कायेन उदकतीरे तिष्ठेत्। स भिक्षुर्वा॰ उदकार्द्रं वा २ कायं नो आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा सलिखेद् वा निलिखेद् वा उद्वलेद् वा उद्वेष्टयेद् वा आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, अथ पुनरेवं जानीयात् विगतोदको मे कायः छिन्नस्नेहः कायः तथाप्रकारं कायं आमर्जयेद् वा प्रतापयेद् वा ततः सयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। उदगसि-जल मे। पवमाणे-बहता हुआ। हत्थेण हत्थ-हाथ से हाथ को। पाएण पाय-पैर से पैर को। काएण काय-शरीर से शरीर को। नो आसाइज्जा-स्पर्श न करे। से-वह भिक्षु। अणासायणाए-हस्तादि का परस्पर स्पर्श न करने से फिर। अणासायमाणे-स्पर्श न करता हुआ। तओ-तदनन्तर। स॰-साधु। उदगसि-जल मे। पविज्जा-बहे या तरे किन्तु अप्कायिक जीवो की रक्षा के लिए काया के द्वारा किंचिन्मात्र भी पुरुषार्थ न करे। से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। उदगंसि-जल मे। पवमाणे-बहता हुआ। उम्मुग्गनिमुग्गिय-नीचे से ऊपर आने-जाने अर्थात् डुबकिए लगाने का यत्न। नो करिज्जा-न करे। मे-मेरे। एयं-यह। उदगं-जल। कन्नेसु वा-कानो मे। अच्छीसु वा-आखो मे। नक्कसि वा-नासिका में। मुहंसि वा-अथवा मुख मे। मा परियावज्जिज्जा-मत प्रवेश करे, इस प्रकार की भावना भी न करे। तओ-तदनन्तर। संजयामेव-साधु। उदगंसि-जल मे। पविज्जा-बहता जाए। से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। उदगंसि-जल मे। पवमाणे-बहता हुआ। दुब्बलियं-दुर्बलता अर्थात् कष्ट को। पाउणिज्जा-प्राप्त करे तो। खिप्पामेव-शीघ्र ही। उवहिं-उपधि वस्त्रादि का। विगिंचिज्ज वा-त्याग कर दे या। विसोहिज्ज वा-थोड़े से उपकरणो का त्याग कर दे। च-पुन। एव-निश्चय। णं-वाक्यालकार में है। नो साइज्जा-उपधि पर ममत्व न करे।

अह-अथ। **पुण**-फिर। **एवं**-इस प्रकार। **जाणिज्जा**-जाने कि यदि वह उपधि युक्त ही। **पारए सिया**-किनारे पर पहुचने मे समर्थ है। **उदगाओ**-पानी से। **तीर**-तीर को। **पाउणित्तए**-प्राप्त करने के समर्थ है। **तओ**-तो तीर पर पहुचकर। **संजयामेव**-सयम पूर्वक। **उदउल्लेण वा**-जल से भीगे हुए शरीर से अर्थात् जब तक शरीर से जल बिन्दु टपक रहे है या। **ससिणिद्धेण वा**-जल से उसका शरीर स्निग्ध है। **काएण वा**-या जब तक शरीर भीगा हुआ है तब तक। **उदगतीरे**-नदी के किनारे पर ही। **चिट्ठिज्जा**-ठहरे। **से भिक्खू वा०**-वह साधु या साध्वी। **उदउल्लं वा**-जलार्द्र-जब तक जल बिन्दु टपक रहे हो। **काय**-तब तक उस भीगे हुए शरीर को। **नो आमज्जिज्जा**-हाथ से स्पर्श न करे। **नो पमज्जिज्जा**-प्रमार्जित न करे तथा। **सलिहिज्जा**-पूछे नहीं। **निल्लिहिज्ज वा**-बार २ पोछे नहीं, और। **उव्वलिज्ज वा**-हाथ से मले नही तथा। **उव्वट्टिज्जा वा**-उबटन की भाति शरीर को मल कर मैल को उतारे नहीं। **आयाविज्ज वा पया०**-सूर्य के थोड़े या अधिक आताप से शरीर को सुखाए भी नहीं। **अह पु०**-फिर इस प्रकार जाने कि। **विगओदओ**-मेरा शरीर जल बिन्दुओ से रहित और। **छिन्नसिणेहे**-स्नेह से रहित हो गया है अर्थात् अब गीला नहीं रहा है। **मे काए**-मेरे शरीर से न तो जल बिन्दु टपक रहे है और न वह गीला ही है। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **काय**-शरीर को। **आमज्जिज्ज वा**-हाथ से स्पर्श करे। **जाव**-यावत्। **पयाविज्ज वा**-धूप मे आतापना दे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-सयमशील साधु। **गामा०**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जिज्जा**-विचरे।

मूलार्थ- साधु या साध्वी जल मे बहते समय अप्काय के जीवो की रक्षा के लिए अपने एक हाथ से दूसरे हाथ का एवं एक पैर से दूसरे पैर का और शरीर के अन्य अवयवो का भी स्पर्श न करे। इस तरह वह परस्पर मे स्पर्श न करता हुआ जल मे बहता हुआ चला जाए वह बहते समय डुबकी भी न मारे, एव इस बात का भी विचार न करे कि यह जल मेरे कानों मे, आखों मे, नाक और मुख मे प्रवेश न कर जाएगा। तदनन्तर जल मे बहता हुआ साधु यदि दुर्बलता का अनुभव करे तो शीघ्र ही थोडी या समस्त उपधि का त्याग कर दे वह उस पर किसी प्रकार का ममत्व न रखे। यदि वह यह जाने कि मै उपधि युक्त ही इस जल से पार हो जाऊगा तो किनारे पर आकर जब तक शरीर से जल टपकता रहे, शरीर गीला रहे तब तक नदी के किनारे पर ही ठहरे किन्तु जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या एक से अधिक बार हाथ से स्पर्श न करे, मसले नहीं और न उद्वर्तन की भाति मैल उतारे, इसी प्रकार भीगे हुए शरीर और उपधि को धूप मे सुखाने का भी प्रयत्न न करे। वह यह जान ले कि मेरा शरीर तथा उपधि पूरी तरह सूख गई है तब अपने हाथ से शरीर का स्पर्श या मर्दन कर एव धूप मे खड़ा हो जाए फिर किसी गाव की ओर अर्थात् विहार कर दे।

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे मुनि की अहिसा साधना का विशिष्ट परिचय दिया गया है। इसमे बताया गया है कि नाविक द्वारा जल मे फैके जाने पर भी मुनि अपने जीवन की ओर विशेष ध्यान नहीं देता। उसे अपने जीने एव मरने की परवाह नही है। परन्तु, ऐसी विकट परिस्थिति मे भी वह अन्य जीवो की दया का पूरा-पूरा ध्यान रखता है। उसके जीवन के कण-कण मे दया का दरिया प्रवहमान रहता है। वह नदी मे बहता हुआ भी अपने हाथो एवं पैरो का तथा शरीर के अन्य अग-प्रत्यगो का इसलिए परस्पर स्पर्श नहीं करता है कि इससे अप्कायिक जीवो की एव उसमे स्थित अन्य प्राणियो की हिसा न हो। इसी दया भावना से न वह डुबकी लगाता है और न अपने कान, नाक, आख आदि मे भरते हुए पानी को ही निकालता है। इस तरह वह यत्नापूर्वक बहता चलता है।

यदि सरिता की धारा मे बहते समय कमजोरी के कारण वह उपकरणो के बोझ को सहने मे असमर्थ हो तो उसे चाहिए कि उन्हे विवेक पूर्वक धीरे से नदी मे त्याग दे। इस प्रकार नदी के तट पर पहुचने के पश्चात् वह तब तक स्थिर खडा रहे जब तक उसका शरीर एव उसके वस्त्र आदि सूख न जाए। परन्तु, वह अपने भीगे हुए वस्त्रो को निचोड कर धूप मे सुखाने का तथा अपने शरीर को वस्त्र से पोछकर या धूप मे खडा होकर सुखाने का प्रयत्न भी नहीं करे। जब उसका शरीर स्वभाविक रूप से सूख जाए तब वह वहा से गाव की ओर विहार करे।

इस सम्बन्ध मे वृत्तिकार का कहना है कि यदि वहा चोर आदि का भय हो तो वह अपने हाथो को लम्बा फैलाकर गीला शरीर भी सुखाकर गाव की ओर जा सकता है परन्तु, आगम मे इस अपवाद का उल्लेख नहीं मिलने से यह जरा विचारणीय एव चिन्तनीय है।

प्रस्तुत पाठ मे नदी पार करके किनारे पर आने के पश्चात् उसे ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करने का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु वृत्तिकार ने इसका उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि यदि आगम मे बताई गई विधि से प्रवृत्ति न की गई हो तो उसकी शुद्धि के लिए ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करना चाहिए। अन्यथा प्रतिक्रमण की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है।

आगम मे मास मे दो या तीन बार महानदी का उल्लघन करने का निषेध किया गया है[१] तथा उसका प्रायश्चित भी बताया गया है[२]। इससे स्पष्ट होता है कि मास मे एक बार महानदी पार करने का निषेध नहीं है, न उसे सबल दोष ही माना गया है और न उसके लिए प्रायश्चित का ही विधान[३] किया गया है। आगम मे यह भी बताया गया है कि यदि कोई साध्वी जल मे गिर गई हो तो साधु उसे पकडकर निकाल ले[४]। आगम मे यह भी बताया गया है कि एक समय मे समुद्र के जल में[५] दो एव नदी के जल मे ३ जीव सिद्ध हो सकते हैं। इससे सूर्य के उजाले की तरह यह साफ हो जाता है कि आत्मा की शुद्धि एव अशुद्धि भावो पर आधारित है। दुर्भाव पूर्वक की गई द्रव्य हिसा ही पापकर्म के बन्ध का कारण हो सकती है। आगम मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि विवेक एव यत्ना पूर्वक चलते समय यदि साधु के पैर के नीचे आकर कुक्कट आदि कोई जीव मर जाए तब भी साधु को ईर्यापथिक क्रिया अथवा पुण्य कर्म का बन्ध होता है, साप्रायिकी क्रिया का बन्ध नही होता[६]। अस्तु वीतराग भगवान की आज्ञा के अनुसार विवेक पूर्वक नदी पार करने का कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया है और न उसके लिए ईर्यापथिक प्रतिक्रमण का ही उल्लेख किया गया है। क्योकि प्रायश्चित विवेक पूर्वक, सावधानी से कार्य करने का नहीं होता, वह तो असावधानी एव आज्ञा के उल्लघन करने का होता है।

साधु-साध्वी को रास्ते मे किस तरह चलना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

---

१ बृहत्कल्प सूत्र, उ॰ ४।
२ निशीथ सूत्र , उ॰ १२।
३ समवायाग सूत्र, २१।
४ स्थानांग सूत्र, स्थान ५, उ॰ २।
५ उत्तराध्ययन सूत्र, ३६, ५०-५४।
६ भगवती सूत्र, १८, ८।

मूलम्– से भिक्खू वा० गामाणुगामं दूइज्जमाणे नो परेहिं सद्धिं परिजविय २ गामा० दूइ०, तओ० सं० गामा० दूइज्जिज्जा ॥१२३॥

छाया– स भिक्षुर्वा० ग्रामानुग्राम गच्छन् न परै. सार्द्धं परियाप्य २ ग्रामानुग्रामं गच्छेत् ततः संयतमेव ग्रामानुग्राम गच्छेत्।

पदार्थ – से-वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। गामाणुगाम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। दूइज्जमाणे-जाता हुआ। परेहि-गृहस्थो के। सद्धि-साथ। परिजविय २-बहुत बोलता हुआ। नो दूइ०-न जाए। तओ स०-तदनन्तर साधु यत्नापूर्वक। गामा० दूइ०-ग्रामानुग्राम विहार करे।

मूलार्थ– साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहस्थो के साथ वार्तालाप करता हुआ गमन न करे। किन्तु ईर्यासमिति का यथाविधि पालन करता हुआ ग्रामानुग्राम विहार करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु या साध्वी को विहार करते समय या चलते समय अपने साथ के अन्य साधु से या गृहस्थ से बाते नहीं करनी चाहिए। क्योकि, बाते करने से मार्ग मे आने वाले जीव-जन्तुओ को बचाया नहीं जा सकेगा तथा मार्ग का सम्यक्तया अवलोकन भी नहीं हो सकेगा। आगम मे यहा तक कहा गया है कि साधु को चलते समय पाचो तरह का स्वाध्याय- १ वाचना, २ पृच्छना, ३ परियटना, ४ अनुप्रेक्षा और ५ धर्मकथा का स्वाध्याय भी नहीं करना चाहिए[1]। इस तरह अपने योगो को सब ओर से हटाकर ईर्यासमिति का पालन करना चाहिए।

जिस नदी मे जघा प्रमाण पानी हो उस नदी को साधु किस तरह पार करे, इस विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० गामा० दू० अंतरा से जंघासंतारिमे उदगे सिया, से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिज्जा २ एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा तओ सं० उदगंसि अहारियं रीएज्जा ॥ से भिक्खू वा० अहारियं रीयमाणे नो हत्थेण हत्थं जाव आणासायमाणे तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीएज्ज। से भिक्खू वा० जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीयमाणे नो सायावडियाए नो परिदाहवडियाए महइ महालयंसि उदयंसि कायं विउसिज्जा, तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीएज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए, तओ संजयामेव उदउल्लेण वा २ काएण दगतीरए चिट्ठिज्जा ॥ से भि० उदउल्लं वा कायं ससि० कायं नो आमज्जिज्ज वा नो० अह पु० विगओदए मे काए छिन्नसिणेहे तहप्पगारं कायं आमज्जिज्ज वा० पयाविज्ज वा तओ सं० गामा० दूइ० ॥१२४॥

---

१ उत्तराध्ययन सूत्र, २४, ८।

छाया– स भिक्षुर्वा॰ ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले तस्य जंघासंतार्यमुदकं स्यात्, स पूर्वमेव सशीर्षोपरिकं कायं पादं च प्रमृज्य २ एकं पादं जले कृत्वा– एकं पाद स्थले कृत्वा– ततः संयतमेव उदके यथाऽऽर्यं रीयेत्। स भिक्षुः॰ यथार्यं रीयमाणो (गच्छन्) न हस्तेन हस्त यावद् अनासादयन् ततः संयतमेव जघासन्तार्यमुदक यथार्यं रीयेत। स भिक्षुर्वा॰ जंघासन्तार्यमुदक यथार्यं रीयमाणो न साताप्रतिपत्त्या, नो परिदाहप्रतिपत्त्या महतिमहालये उदके कायं व्युत्सृजेत्, तत· सयतमेव जघासतार्यमुदकं यथार्यं रीयेत, अथ पुनरेवं जानीयात् पारगः स्यादुदकात् तीर प्राप्तु, तत. सयतमेव उदकार्द्रेण वा २ कायेन दकतीरके तिष्ठेत्। स भिक्षुर्वा॰ उदकार्द्र वा कायं सस्निग्धं वा कायं न आमृज्यात् वा न॰। अथ पुनरेवं जानीयात् विगतोदक· मे काय. छिन्नस्नेहः तथाप्रकारं कायं आमृज्याद् वा॰ प्रतापयेद् वा तत· सयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू** वा॰-साधु अथवा साध्वी। **गामा॰ दू॰**-ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ। **से**-उसके। **अतरा**-मार्ग मे। **जंघासंतारिमे**-जघा से तैरने-पार करने योग्य। **उदगे**-पानी। **सिया**-हो तो। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **सीसोवरिय कायं**-अपने शरीर को मस्तक। **य**-से लेकर। **पाए**-पैरो तक। **पमज्जिज्ज वा**-प्रमार्जित करे और प्रमार्जित करके। **एग पाय**-एक पैर को। **जले किच्चा**-जल मे रखकर। **एग पाय**-दूसरे पैर को। **थले किच्चा**-स्थल मे-जल से बाहर रखकर। **तओ**-तदनन्तर। **सं॰**-संयम-पूर्वक। **उदगंसि**-जल मे। **अहारियं**-जिस प्रकार तीर्थंकरों ने ईर्यासमिति विषयक कथन किया है उसी प्रकार। **रीइज्जा**-गमन करे। **से भि॰**-वह साधु या साध्वी। **अहारिय**-जघा प्रमाण जल मे ईर्यासमिति पूर्वक। **रीयमाणे**-चलता हुआ। **नो हत्थेण हत्थ जाव**-हाथ से हाथ यावत् शरीर के अवयवो का स्पर्श न करे और। **अणासायमाणे**-हाथ आदि का स्पर्श न करता हुआ। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **जंघासतारिमे उदए**-जघा द्वारा तैरने-पार करने योग्य पानी मे। **अहारिय**-जैसे तीर्थंकरादि ने ईर्यासमिति का वर्णन किया है उसी प्रकार। **रीइज्जा**-उसमे गमन करे। **से भिक्खू वा॰**-वह साधु या साध्वी। **जघासतारिमे**-जघाप्रमाण-जघा द्वारा तरने योग्य। **उदए**-जल मे। **अहारिय**-यथार्ह-ईर्यासमिति पूर्वक। **रीयमाणे**-चलता हुआ साधु। **सायावडियाए**-साता के लिए। **परिदाहवडियाए**-दाह शाति के लिए। **महइमहालयसि**-बड़े विस्तृत और गहरे। **उदगसि**-पानी मे। **काय**-शरीर को। **नो विउसिज्जा**-प्रविष्ट न करे, अर्थात् साता के लिए गहरे जल में प्रवेश न करे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **जघासतारिमे उदए**-जघा-प्रमाण जल मे। **अहारियं**-यथार्ह-ईर्यासमिति पूर्वक। **रीएज्जा**-चले गमन करे। **अह पुण एव जाणिज्जा**-अथ पुन इस प्रकार जाने, यथा। **पारए सिया**-मै उपधि के साथ पार हो सकता हू। तब उपधि का परित्याग न करे और। **उदगाओ**-जल मे से। **तीरं**-तीर को। **पाउणित्तए**-प्राप्त करे। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-सयमपूर्वक। **उदउल्लेण वा २ कायेण**-जब तक शरीर पर से जल बिन्दु गिरते हैं और शरीर गीला है तब तक। **दगतीरए चिट्ठिज्जा**-पानी के किनारे पर ही खड़ा रहे। **से भि॰**-वह साधु या साध्वी। **उदउल्लं वा कायं**-जलार्द्र काय को, अर्थात् जिससे जल बिन्दु टपक रहे हो तथा। **ससिणिद्ध वा कायं**-जल से भीगे हुए शरीर को।

नो आमज्जिज्ज वा-स्पर्श न करे। **जाव**-यावत्। **नो०**-आतापित न करे, धूप मे न बैठे। **अह पु०**-अथ फिर इस प्रकार जाने कि। **मे**-मेरा। **काए**-शरीर। **विगओदए**-विगतोदक-सचित्त जल से रहित हो गया है तथा। **छिन्न-सिणेहे**-किंचिन्मात्र भी आर्द्र-गीला नहीं रहा। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के। **काय**-शरीर को। **आमज्जिज्ज वा**-हाथ से स्पर्श यावत् पोछे और। **पयाविज्ज वा**-सूर्य का आताप दे अर्थात् जल को अचित्त हुआ जानकर शरीर आदि को पोछे सुखावे। **तओ**-तदनन्तर। **स०**-यत्नापूर्वक। **गामा०**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे।

_मूलार्थ_– साधु या साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यदि मार्ग मे जंघा प्रमाण जल पड़ता हो तो उसे पार करने के लिए साधु सिर से लेकर पैर तक शरीर की प्रतिलेखना करके एक पैर जल मे और एक पैर स्थल मे रखकर, जैसे भगवान ने ईर्यासमिति का वर्णन किया है उस के अनुसार उस पानी के स्रोत को पार करना चाहिए। उस नदी मे चलते समय मुनि को हाथों और पैरो का परस्पर स्पर्श नहीं करना चाहिए। और शारीरिक शान्ति के लिए या दाह उपशान्त करने के लिए गहरे और विस्तार वाले जल मे भी प्रवेश नहीं करना चाहिए और उसे यह अनुभव होने लगे कि मै उपधि अर्थात् उपकरणादि के साथ जल से पार नहीं हो सकता तो उपकरणादि को छोड दे, और यदि यह जाने कि मै उपकरणादि के साथ पार हो सकता हूं तब उपकरण सहित पार हो जाए। परन्तु, पार पहुचने के पश्चात् जब तक उसके शरीर से जल बिन्दु टपकते रहे और जब तक शरीर गीला रहे तब तक जल के किनारे पर ही खड़ा रहे और तब तक अपने शरीर को हाथ से स्पर्श भी न करे यावत् आतापना भी न देवे। जब तक शरीर बिलकुल सूख न जाए अर्थात् उसको यह निश्चय हो जाए कि मेरा शरीर पूर्णतया सूख गया है, तब शरीर को प्रमार्जना करके ईर्यासमिति पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरने का प्रयत्न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि विहार करते समय रास्ते मे नदी आ जाए और उसमे जघा प्रमाण पानी हो और उसके अतिरिक्त अन्य मार्ग न हो तो मुनि उसे पार करके जा सकता है। इसके लिए पहले वह सिर से पैर तक अपने शरीर का प्रमार्जन करे। इस प्रसग मे वृत्तिकार का कहना है कि मुख से नीचे के भाग का रजोहरण से और उससे ऊपर के भाग का मुखवस्त्रिका से प्रमार्जन करे। परन्तु, मुखवस्त्रिका से प्रमार्जन की बात आगम अनुकूल प्रतीत नहीं होती। क्योकि, मुखवस्त्रिका का प्रयोग भाषा की सावद्यता को रोकने एव वायुकायिक जीवो की रक्षा की दृष्टि से किया जाता है न कि मुह आदि पोछने के लिए। शरीर आदि का प्रमार्जन करने के लिए रजोहरण एव प्रमार्जनिका रखने का विधान है। और प्रमार्जनिका शरीर के प्रमार्जन के लिए ही रखी गई है। अत यहा रजोहरण एव प्रमार्जनिका से शरीर का प्रमार्जन करना ही युक्ति सगत प्रतीत होता है।

इस तरह शरीर का प्रमार्जन करके विवेक पूर्वक नौका पर सवार होने के प्रकरण मे बताई गई विधि के अनुसार साधु एक पैर जल मे और दूसरा पैर स्थल (पानी के ऊपर के आकाश प्रदेश) पर रखकर गति करे। परन्तु, भैंसे की तरह पानी को रौंदता हुआ न चले और मन मे यह भी कल्पना न करे कि मैं पानी मे उतर तो गया हूँ अब कुछ गहराई मे डुबकी लगाकर शरीर की दाह को शान्त कर लू। उसे चाहिए कि वह अपने हाथ-पैरो को भी परस्पर स्पर्श न करता हुआ, अप्कायिक जीवो को विशेष पीडा न

पहुचाता हुआ नदी को पार करे। यदि नदी पार करते समय उसे अपने उपकरण बोझ रूप प्रतीत होते हो और उन्हें लेकर नदी से पार होना कठिन प्रतीत होता हो, तो वह उन्हे वहीं छोड दे। यदि उपकरण लेकर पार होने मे कठिनता का अनुभव न होता हो तो उन्हे लेकर पार हो जाए। परन्तु, नदी के किनारे पर पहुचने के पश्चात् जब तक शरीर एव वस्त्रो से पानी टपकता हो या वे गीले हो तब तक वह वहीं खडा रहे। उस समय वह अपने हाथ से शरीर का स्पर्श न करे और न वस्त्रो को ही निचोडे। उनके सूख जाने पर अपने शरीर का प्रतिलेखन करके विहार करे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त जघा का अर्थ साथल पर्यन्त पानी नहीं, परन्तु गोडे से नीचे के भाग तक पानी समझना चाहिए। क्योकि, यदि साथल या कमर तक पानी होगा तो ऐसी स्थिति मे पैरो को उठाकर आकाश मे रखना कठिन होगा। और कोष मे भी इस का अर्थ गोडे से नीचे का भाग ही किया है[1]। वृत्तिकार ने भी इसी बात को पुष्ट किया है। अत जानु का अर्थ जघा या गोडे तक पानी का होना ही युक्तिसगत प्रतीत होता है।

नदी पार करने के पश्चात् साधु को किस प्रकार चलना चाहिए, इस सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० गामा० दूइज्जमाणे नो मट्टियागएहिं पाएहिं हरियाणि छिंदिय २, विकुज्जिय २, विफालिय २ उम्मग्गेण हरियवहाए, गच्छिज्जा जमेयं पाएहिं मट्टियं खिप्पामेव हरियाणि अवहरंतु, माइट्ठाणं संफासे नो एवं करिज्जा से पुव्वामेव अप्पहरियं मग्गं पडिलेहिज्जा तओ० सं० गामा०॥ से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा फ० पा० तो० अ० अग्गलपासगाणि वा गड्डाओ वा दरीओ वा सइ परक्कमे संजयामेव परिक्कमिज्जा नो उज्जु० केवली० से तत्थ परक्कममाणे पयलिज्ज वा २ से तत्थ पयलमाणे वा २ रुक्खाणि वा गुच्छाणि वा गुम्माणि वा लयाओ वा वल्लीओ वा तणाणि वा गहणाणि वा हरियाणि वा अवलंबिय २ उत्तरिज्जा, जे तत्थ पाडिपहिया उवागच्छंति ते पाणी जाइज्जा २, तओ सं० अवलंबिय २ उत्तरिज्जा तओ सं० गामा० दू०। से भिक्खू वा० गा० दूइज्जमाणे अंतरा से जवसाणि वा सगडाणि वा रहाणि वा सचक्काणि वा परचक्काणि वा से णं वा विरूवरूवं संनिरुद्धं पेहाए सइ परक्कमे सं० नो उ०, से णं परो सेणागओ वइज्जा आउसंतो! एस णं समणो सेणाए अभिनिवारियं करेइ, से णं बाहाए गहाय आगसह, स णं

---

[1] जंघा (स्त्री०) जाघ, जानु के नीचे का भाग। प्राकृ० श० म० पृ० ४२८।

परो बाहाहिं गहाय आगसिज्जा, तं नो सुमणे सिया जाव समाहिए तओ सं॰ गामा॰ दू॰ ॥१२५॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ ग्रामानुग्रामं गच्छन् न मृत्तिकागतै पादैः हरितानि छित्वा २ विकुब्न्य २ विपाट्य २ उन्मार्गेण हरितवधाय गच्छेत्। यदेना पादाभ्या मृत्तिका क्षिप्रमेव हरितानि अपहरन्तु, मातृस्थानं सस्पृशेत् न एव कुर्यात् स पूर्वमेव अल्पहरित मार्गं प्रतिलेखयेत् ततः सयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्। स भिक्षुर्वा॰ वा ग्रामानुग्राम गच्छन् अन्तराले तस्य वप्राणि वा परिखा वा प्राकाराणि वा तोरणानि वा अर्गलानि वा अर्गलपाशका वा गर्ता वा दर्यो वा सति परक्रमे सयतमेव परिक्रामेन्न ऋजुकं गच्छेत्, केवली ब्रूयाद् आदानमेतत्, स तत्र पराक्रममाण प्रस्खलेद् वा २ स तत्र प्रस्खलन् वा २ वृक्षान् वा गुच्छानि वा गुल्मानि वा लताः वा तृणानि वा गहनानि वा हरितानि वा अवलम्ब्य २ उत्तरेत् ये तत्र प्रातिपथिका उपागच्छन्ति तेभ्य पाणि याचेत् याचित्वा तत· सयतमेव अवलम्ब्य २ उत्तरेत् तत. सयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्। स भिक्षुर्वा॰ ग्रामानुग्राम गच्छन् अन्तराले तस्य यवसानि वा शकटानि वा रथा वा स्वचक्राणि वा परचक्राणि वा सैन्य वा विरूवरूपं संनिरुद्धं प्रेक्ष्य सति परक्रमे सयतमेव पराक्रमेत् न ऋजुक गच्छेत् स परः सेनागतः वदेत्, आयुष्मन् ! एष श्रमण. सेनाया अभिनिवारिका करोति एनं बाहुना गृहीत्वा आकर्षत स पर· बाहुभ्या गृहीत्वा आकर्षेत् तन्न सुमना स्यात्, यावत् समाधिना, संयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा**-साधु अथवा साध्वी। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-जाते हुए। **मट्टियाहिं**-मिट्टी या कीचड़ से भरे हुए। **पाएहिं**-पैरो की मिट्टी या कीचड़ उतारने के लिए। **हरियाणि**-हरी वनस्पति को। **छिदिय २**-छेद २ कर। **विकुज्जिय २**-या हरे पत्ते एकत्रित करके। **विफालिय २**-हरित वनस्पति को छील कर मिट्टी को न उतारे तथा मिट्टी को उतारने के लिए। **हरियवहाए**-हरित काय के वध के लिए। **उम्मग्गेण**-उन्मार्ग से। **नो गच्छेज्जा**-गमन न करे। **जमेय**-जैसे यह। **पाएहिं**-पैरो की। **मट्टियं**-मिट्टी को। **खिप्पामेव**-शीघ्र ही। **हरियाणि**-हरितकाय। **अवहरतु**-अपहरण करे, अर्थात् हरित काय के स्पर्श से स्वयमेव मिट्टी उतर जाएगी, यदि इस प्रकार के भाव लाकर वह हरियाली पर चलता है, तो। **माइट्ठाण सफासे**-मातृस्थान-कपट का सेवन करता है अत । **एव**-इस प्रकार। **नो करिज्जा**-न करे किन्तु। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **अप्पहरिय**-हरितकाय से रहित। **मग्ग**-मार्ग का। **पडिलेहिज्जा**-प्रतिलेखन करे। **तओ**-तदनन्तर। **स॰**-यत्नापूर्वक। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दू॰**-विहार करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **गामाणुगाम**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। **दूइज्जमाणे**-जाता हुआ। **से**-उसके। **अतरा**-मार्ग मे यदि। **वप्पाणि वा**-खेत की क्यारिये या। **क॰**-कोट की खाई या। **प॰**-प्रकोट। **तो॰**-तोरण-द्वार या। **अ॰**-अर्गला-कपाट निरोधक कीली। **अग्गलपासगाणि वा**-अर्गला पाशक। **गड्डाओ वा**-गर्त खड्डे अथवा। **दरीओ**-पर्वत की गुफाए आ जाए तो। **सइ परक्कमे**-अन्य मार्ग के होने पर वह उस मार्ग से। **संजयामेव**-यत्नापूर्वक। **परिक्कमिज्जा**-गमन करे।

नो उज्जु०-किन्तु सीधा न जाए अर्थात् अन्य मार्ग के सद्भाव मे उक्त विषम मार्ग से गमन न करे। केवली०-केवली भगवान कहते हैं कि यह कर्म बन्धन का कारण है। से-वह साधु। तत्थ-उस निषिद्ध मार्ग मे। परक्कममाणे-चलता हुआ कदाचित्। पयलिज्ज वा २-फिसल कर गिर पड़े, अथवा। से-वह भिक्षु। तत्थ-उस स्थान पर। पयलमाणे वा-फिसलता एव गिरता हुआ। रुक्खाणि वा-वृक्षो को अथवा। गुच्छाणि वा-गुच्छों को। गुम्माणि वा-अथवा गुल्मो को। लयाओ-लताओ को। बल्लीओ वा-वल्लियो अथवा। तिणाणि-तृणो को। गहणाणि वा-अथवा आकीर्ण वनस्पति को। अवलंबिय २-पकड़ २ कर। उत्तरिज्जा-उतरे अथवा। जे तत्थ-जो वहा पर। पडिपहिया-प्रति पथिक प्रतिपान्थ। उवागच्छंति-आते है। ते-उनसे। पाणी जाइज्जा २-हाथ माग २ कर, जैसे कि हे आयुष्मन् ! तू मुझे अपना हाथ दे जिसे पकड़कर मै उतर सकू। तओ-तदनन्तर। संजयामेव-यत्नापूर्वक। अवलंबिय २-उसका सामने से आने वाले पथिक का हाथ पकड़ २ कर। उत्तरिज्जा-उतरे इन दोषो को देखता हुआ साधु विषम मार्ग को छोड़कर। तओ-तदनन्तर। स०-यत्नायुक्त साधु। गा०-ग्रामानुग्राम। दू०-विहार करे। से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। गामा० दूइज्जमाणे-ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ। से-उसके। अतरा-मार्ग मे अर्थात् मार्ग के मध्य मे। जवसाणि वा-यव और गोधूमादि धान वा। सगडाणि वा-शकट आदि गड्डा-गड्डी आदि। रहाणि वा-अथवा रथ अथवा। सचक्काणि-स्वचक्र-स्वकीय राज्य सेना। परचक्काणि वा-पर चक्र पर राजा की सेना। सेण वा-सेना को। विरूवरूव-नाना प्रकार के। संनिरुद्ध-एकत्र मिले हुए सघ को। पेहाए-देखकर। सइपरक्कमे-जाने योग्य अन्य मार्ग के सद्भाव मे। संजयामेव-यत्नापूर्वक। परक्कमिज्जा-उसी मार्ग मे जाने का प्रयत्न करे किन्तु। नो० उ०-सरल-सीधे मार्ग से न जाए कारण कि उधर से जाने पर अनेक प्रकार के कष्टो की सम्भावना है यथा-जब साधु सेना युक्त मार्ग मे प्रयाण करेगा तब। णं-वाक्यालकार मे है। से-वह। परो-सेनापति आदि साधु को देखकर। सेणागओ-सेना मे रहने वाला पुरुष किसी से। वइज्जा-कहे कि। आउसतो-हे आयुष्मन् सद् गृहस्थ ! एस ण-यह। समणे-श्रमण साधु। सेणाए-सेना का। अभिनिवारिय-गुप्तचरी (जासूसी)। करेइ-करता है अर्थात् यह श्रमण हमारी सेना का भेद लेता फिरता है। ण-वाक्यालकार मे है। से-इसकी। बाहाए-भुजाओ को। गहाय-पकड़ कर। आगसह-आकर्षित करो अर्थात् आगे-पीछे खैचो। ण-पूर्ववत्। से-वह। परो-अन्य आज्ञा पाने वाला व्यक्ति उस साधु को। बाहाहिं-भुजाओ से। गहाय-पकड़ कर। आगसिज्जा-खींच कर आगे-पीछे करे। त-तो वह साधु। नो सुमणे सिया-न तो प्रसन्न हो और न रुष्ट हो किन्तु। जाव-यावत्। समाहिए-समभाव से विचरे। तओ-तदनन्तर। सं०-सयत-साधु। गामा०-ग्रामानुग्राम। दूइ०-विहार करे।

मूलार्थ- साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम में विचरते हुए मिट्टी और कीचड़ से भरे हुए पैरों को , हरितकाय का छेदन कर, तथा हरे पत्तों को एकत्रित कर उनसे मसलता हुआ मिट्टी को न उतारे, और न हरितकाय का वध करता हुआ उन्मार्ग से गमन करे। जैसे कि-ये मिट्टी और कीचड़ से भरे हुए पैर हरी पर चलने से हरितकाय के स्पर्श से स्वत. ही मिट्टी रहित हो जाएगे, ऐसा करने पर साधु को मातृस्थान (कपट) का स्पर्श होता है। अत साधु को इस प्रकार नहीं करना चाहिए। किन्तु, पहले ही हरी से रहित मार्ग को देखकर यत्नपूर्वक गमन करना चाहिए। और यदि मार्ग के मध्य में खेतों के क्यारे हों, खाई हो, कोट हो, तोरण हो, अर्गला और अर्गलापाश हो, गर्त हो तथा गुफाए

हो, तो अन्य मार्ग के होते हुए इस प्रकार के विषम मार्ग से गमन न करे। केवली भगवान कहते हैं कि यह मार्ग दोष युक्त होने से कर्म बन्धन का कारण है। जैसे कि-पैर आदि के फिसलने तथा गिर पड़ने से शरीर के किसी अंग-प्रत्यंग को आघात पहुंचने के साथ-साथ जो वृक्ष, गुच्छ-गुल्म और लताये एवं तृण आदि हरितकाय को पकड़ कर चलना या उतरना है और वहा पर जो पथिक आते हैं उनसे हाथ मागकर अर्थात् हाथ के सहारे की याचना करके और उसे पकड़ कर उतरना है, ये सब दोष युक्त है, इसलिए उक्त सदोष मार्ग को छोड़कर अन्य निर्दोष मार्ग से एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर प्रस्थान करे। तथा यदि मार्ग मे यव और गोधूम आदि धान्य, शकट, रथ, स्वकीय राजा की या पर राजा की सेना चल रही हो, तब नाना प्रकार की सेना के समुदाय को देखकर, यदि अन्य गन्तव्य मार्ग हो तो उसी मार्ग से जाए किन्तु कष्टोत्पादक इस सदोष मार्ग से जाने का प्रयत्न न करे। इस मार्ग से जाने मे कष्टोत्पत्ति की सम्भावना है। जैसे कि जब उस मार्ग से साधु जाएगा तो सम्भव है उसे देखकर कोई सैनिक किसी दूसरे सैनिक को कहे कि आयुष्मन् ! यह श्रमण हमारी सेना का भेद लेने आया है। अत· इसे भुजाओ से पकड़ कर खैचो अर्थात् आगे-पीछे करो, और तदनुसार वह सैनिक साधु को पकड़ कर खैचे, परन्तु साधु को उस समय उस पर न प्रसन्न और न रुष्ट होना चाहिए, किन्तु उसे समभाव एव समाधि पूर्वक एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु को तीन बातो का ध्यान रखने का आदेश दिया है–१ नदी पार करके किनारे पर पहुचने के बाद वह अपने पैरो मे लगा हुआ कीचड हरितकाय (हरी वनस्पति-घास आदि) से साफ न करे और न इस भावना से हरियाली पर चले कि इस पर चलने से मेरे पैर स्वत ही साफ हो जाएगे, २ यदि अन्य मार्ग हो तो जिस मार्ग मे खेत की क्यारिया, खड्डे, गुफाए आदि पडती हो उस विषम मार्ग से भी न जाए, क्योकि पैर फिसल जाने से वह गिर पडेगा और परिणाम स्वरूप शरीर मे चोट आएगी या कभी बचाव के लिए वृक्ष आदि को पकडना पडेगा, इससे वनस्पति कायिक जीवो की हिसा होगी और ३ जिस मार्ग पर सेना का पडाव हो या सैनिक घूम रहे हो तो अन्य मार्ग के होते हुए उस मार्ग से भी न जाए। क्योकि वे साधु को गुप्तचर समझकर उसे परेशान कर सकते हैं एव कष्ट भी दे सकते हैं। कभी अन्य मार्ग न होने पर जिस मार्ग पर सेना का पडाव हो उस मार्ग से जाते हुए साधु को यदि कोई सैनिक पकड कर कष्ट देने लगे तो उस समय उसे उस पर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। ऐसे विकट समय मे भी उसे समभाव पूर्वक उस वेदना को सहन करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होना है कि साधु को अपने पैरो मे लगी हुई मिट्टी को साफ करने के लिए वनस्पति काय की हिसा नहीं करनी चाहिए। जैसे अपवाद मार्ग मे मास मे एक बार महानदी पार करने का आदेश दिया गया है, वैसे वृक्ष पर चढने एव हरितकाय को कुचलते हुए चलने का आदेश नहीं दिया गया है, अपितु उसका निषेध किया गया है और वृक्ष पर चढने वाले को प्रायश्चित का अधिकारी बताया है[१]।

इस तरह साधु को वनस्पति काय की हिसा न करते हुए एव विषम मार्ग तथा सेना से युक्त रास्ते का त्याग करके सम मार्ग से विहार करना चाहिए। जिससे स्व एव पर की विराधना न हो।

१ जे भिक्खू सचित्त रुक्खं दुरूहइ दुरूहंत वा साइज्जइ। – निशीथ सूत्र, ११, १३।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा० गामा० दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छिज्जा, ते णं पाडिवहिया एवं वइज्जा–आउ० समणा ! केवइए एस गामे जाव रायहाणी वा ? केवइया इत्थ आसा हत्थी गामपिंडोलगा मणुस्सा परिवसंति? से बहुभत्ते बहुउदए बहुजणे बहुजवसे से अप्पभत्ते अप्पुदए अप्पजणे अप्पजवसे ? एयप्पगाराणि पसिणाणि पुच्छिज्जा, एयप्प० पुट्ठो वा अपुट्ठो वा नो वागरिज्जा, एवं खलु० जं सव्वट्ठेहिं० ॥१२६॥

छाया– स भिक्षुर्वा० ग्रामानुग्राम गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिकाः उपागच्छेयु., ते प्रतिपथिकाः एवं वदेयुः आयुष्मन् श्रमण ! कियान् एष ग्राम. ? वा यावत् राजधानी वा कियन्तः अत्र अश्वा. हस्तिन ग्रामपिण्डावलका मनुष्याः परिवसन्ति ? स बहुभक्त. बहूदकः बहुजनो स (अथ) अल्पभक्त अल्पोदक· अल्पजनः अल्पयवस. ? एतत्प्रकारान् प्रश्नान् पृच्छेत् एतत् प्रकारान् प्रश्नान् पृष्टो वा अपृष्टो वा नो व्याकुर्यात्। एवं खलु यत्० सर्वार्थैः०। इति ब्रवीमि।

पदार्थ– से भिक्खू वा–वह साधु या साध्वी। गामाणुगामं–ग्रामानुग्राम। दूइज्जमाणे–विहार करता हुआ। अतरा से–उसके मार्ग मे। पाडिवहिया–सम्मुख–सामने आने वाले पथिक मुसाफिर–यदि। उवागच्छिज्जा–आ जावे और। णं–वाक्यालकार मे। ते–वे पथिक। एवं वइज्जा–इस प्रकार कहें। आउ० समणा–आयुष्मन् श्रमण !। केवइया–कितने प्रमाण मे। एस–यह। गामे वा–ग्राम है। जाव–यावत्। रायहाणी वा–राजधानी है? और। केवइया–कितने। इत्थ–यहा पर। आसा–अश्व–घोड़े। हत्थी–हाथी है, तथा यहा पर कितने। गामपिडोलगा–ग्राम याचक ग्राम मे भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले भिखारी लोग है, तथा यहा पर कितने। मणुस्सा–मनुष्य। परिवसति–निवास करते है तथा। से–इस ग्राम आदि मे क्या। बहुभत्ते–आहारादि खाद्य पदार्थ प्रचुर है ? बहुउदए–यहा पानी पर्याप्त है ? बहुजणे–बहुत लोग बसते हैं। बहुजवसे–बहुत धान्यादि है ? से–अथवा। अप्पभत्ते–आहार। अप्पुदए–पानी आदि थोड़ा है। अप्पजणे–लोग भी कम है और। अप्पजवसे–अल्प धान्यादि है ? एयप्पगाराणि–इस प्रकार के। पसिणाणि–प्रश्नो को यदि। पुच्छिज्जा–पूछे तब साधु। एयप्प०–इस प्रकार के प्रश्नो का। पुट्ठो वा–पूछने पर या। अपुट्ठो वा–न पूछने पर भी। नो वागरिज्जा–उत्तर न दे। एवं–इस प्रकार। खलु–निश्चय ही। तस्स–उस। भिक्खुस्स–साधु या साध्वी का। सामग्गिय–समग्र–सम्पूर्ण आचार है। जं–जो। सव्वट्ठेहि–ज्ञान, दर्शन और चारित्र से तथा। समिए–समिति मे। सहिए–युक्त हुआ। सया–सदा। जएज्जासि–यत्न करे। त्तिबेमि–इस प्रकार मे कहता हू।

मूलार्थ– साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ उसके मार्ग में यदि कोई सामने से और पथिक आ जाए और साधु से पूछे कि– आयुष्मन् श्रमण ! यह ग्राम यावत् राजधानी कैसी है ? यहां पर कितने घोड़े, हाथी और ग्राम याचक हैं, तथा कितने मनुष्य निवास करते हैं ? क्या

इस ग्राम यावत् राजधानी में अन्न, पानी, मनुष्य एवं धान्य बहुत है या थोड़ा है ? ऐसे प्रश्नों को पूछने पर साधु जवाब न देवे और उसके बिना पूछे भी ऐसी बातें न करे। परन्तु, वह मौन भाव से विहार करता रहे और सदा सयम साधना में सलग्न रहे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि विहार करते समय रास्ते मे यदि कोई पथिक मुनि से पूछे कि-जिस गाव या शहर से तुम आ रहे हो उसमे कितने हाथी-घोडे हैं, कितना अन्न है, कितने मनुष्य हैं अर्थात् वह गाव धन-धान्य से सम्पन्न है या अभाव ग्रस्त है ? तो मुनि को इसका कोई उत्तर नही देना चाहिए। क्योकि, इस चर्चा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और न यह चर्चा आत्म विकास मे ही सहायक है। यह तो एक तरह की विकथा है, जो आध्यात्मिक प्रगति मे बाधक मानी गई है। इसलिए साधु को उस समय मौन रहना चाहिए। यदि पूछने वाला कोई आध्यात्मिक साधक हो और उससे आध्यात्मिक विचारो के प्रसार होने की सम्भावना हो तो साधु के लिए उक्त प्रश्नो का उत्तर देने का निषेध नहीं है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यह प्रतिबन्ध इस लिए लगाया गया है कि केवल व्यर्थ की बातो मे साधक का समय नष्ट न हो।

कुछ हस्त लिखित प्रतियो मे "**अप्पजवसे**" पद के आगे यह पाठ मिलता है- "**एयप्पगाराणि पसिणाणि पुट्ठो वा अपुट्ठो वा नो आइक्खेज्जा एयप्पगाराणि पसिणाणि नो पुच्छेज्जा।**" और उपाध्याय पार्श्वचन्द्र एव राजकोट से प्रकाशित आचाराङ्ग सूत्र (मूल एव भाषान्तर) मे यह पाठ उपलब्ध होता है- "**एयप्पगाराणि पसिणाणि पुट्ठो नो आइक्खेज्जा एयप्पगाराणि पसिणाणि नो पुच्छेज्जा।**" इन उभय पाठो मे केवल शब्दो के हेर-फेर हैं, परन्तु इनके अर्थ मे कोई विशेष अन्तर नहीं पडता है।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि उस युग मे हाथी-घोडे का अधिक उपयोग होता था और उन्हीं के आधार पर गाव के वैभव का अनुमान लगाया जाता था। इस कारण प्रश्नो की पक्ति मे सबसे पहले उनका उल्लेख किया गया है।

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे '**त्तिबेमि**' पद भी मिलता है, जिसकी व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन-ईर्यैषणा
तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक के अन्तिम सूत्रो मे जो गमन विधि का उल्लेख किया गया है, उसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० गामा० दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा जाव दरीओ वा जाव कूडागाराणि वा पासायाणि वा नूमगिहाणि वा रुक्खगिहाणि वा पव्वयगि० रुक्खं वा चेइयकडं थूभं वा चेइयकडं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा नो बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए उद्दिसिय २ ओणमिय २ उन्नमिय २ निज्झाइज्जा, तओ सं० गामा०॥ से भिक्खू वा गामा० दू० माणे अंतरा से कच्छाणि वा दवियाणि वा नूमाणि वा वलयाणि वा गहणाणि वा गहणविदुग्गाणि वा वणाणि वा वणवि० पव्वयाणि वा पव्वयवि० अगडाणि वा तलागाणि वा दहाणि वा नईओ वा वावीओ वा पुक्खरिणीओ वा दीहियाओ वा गुंजालियाओ वा सराणि वा सरपंतियाणि वा सरसरपंतियाणि वा नो बाहाओ पगिज्झिय २ जाव निज्झाइज्जा, केवली०, जे तत्थ मिगा वा पसू वा पंखी वा सरीसिवा वा सीहा वा जलचरा वा थलचरा वा, खहचरा वा सत्ता ते उत्तसिज्ज वा वित्तसिज्ज वा वाडं वा सरणं वा कंखिज्जा, वारेइत्ति मे अयं समणे, अह भिक्खूणं पु० जं नो बाहाओ पगिज्झिय २ निज्झाइज्जा, तओ संजयामेव आयरियउवज्झायएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ॥१२७॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले तस्य वप्राणि वा यावत्, दर्यो वा यावत् कूटागाराणि वा प्रासादा वा नूमगृहाणि (भूमी-गृहाणि) वा वृक्षगृहाणि वा पर्वतगृहाणि वा वृक्षं वा चैत्यकृतं, स्तूपं वा चैत्यकृतं आदेशनानि वा यावत् भवनगृहाणि वा नो बाहू प्रगृह्य २ अंगुल्या उद्दिश्य २ अवनम्य २ उन्नम्य २ निध्यायेत्। ततः संयतमेव ग्रामानुग्रामं गच्छेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले तस्य कच्छा वा,

द्रविकानि वा निम्नानि वा बलानि वा गहनानि वा गहनविदुर्गानि वा वनानि वा वनवि॰ वा पर्वता वा पर्वतवि॰ वा अवटा वा तडागा वा ह्रदा वा नद्यो वा वाप्यो वा पुष्करिण्यो वा दीर्घिका वा गुञ्जालिका वा सरासि वा सर.-पंक्तय· वा सर सर पक्तयः वा नो बाहु प्रगृह्य २ यावत् निध्यायेत्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत्। ये तत्र मृगा वा पशवो वा पक्षिणो वा सरिसृपा वा सिहा वा जलचरा वा स्थलचरा वा खेचरा वा सत्त्वास्ते उत्त्रसेयु वा वित्रसेयु· वा वाटं वा शरणं वा काक्षेयु. वारयतीति मे अय श्रमण अथ भिक्षूणा पूर्वोपदिष्ट यत् नो बाहू प्रगृह्य २ निध्यायेत् तत. सयतमेव आचार्योपाध्यायै. सार्द्धं ग्रामानुग्राम गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**–वह साधु या साध्वी। **गामा॰**–ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**–विहार करता हुआ। **अतरा**–मध्य मे। **से**–उसके अर्थात् उसके मार्ग मे यदि। **वप्पाणि वा**–खेत की क्यारिए। **जाव**–यावत्। **दरीओ वा**–पर्वत की गुफाए। **जाव**–यावत्। **कूडागाराणि**–पर्वत के ऊपर के घर अथवा। **पासायाणि**–प्रासाद-महल। **नूमगिहाणि वा**–भूमि घर-तहखाने आदि। **रुक्खगिहाणि वा**–वृक्ष के आश्रित घर अथवा वृक्ष के ऊपर का निवास स्थान। **पव्वयाणि**–पर्वत की गुफा आदि। **रुक्ख वा**–वृक्ष अथवा। **चेइयकड**–वृक्ष के नीचे का व्यन्तर स्थान। **थूभ वा**–व्यन्तर का स्तूप। **चेइयकड**–चैत्यकृत अर्थात् व्यन्तर-आदि के आकार युक्त स्तूप। **आएसणाणि वा**–लोहकार शाला आदि। **जाव**–यावत्। **भवणगिहाणि वा**–भवन गृह आदि आ जाए तो वह इनको। **बाहाओ**–भुजाओ को। **पगिज्झिय २**–उठा-उठा कर। **अगुलियाए**–अगुलियो को। **उद्दिसिय २**–फैला-फैला कर। **ओणमिय २**–शरीर को नीचा करके। **उन्नमिय २**–शरीर को ऊचा करके। **नो निज्झाइज्जा**–न देखे। **तओ**–तदनन्तर। **स॰**–साधु। **गामा॰**–ग्रामानुग्राम विहार करे। **से भिक्खू वा**–वह साधु या साध्वी। **गामा॰**–ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**–विहार करता हुआ। **अतरा**–मध्य मे। **से**–वह। **कच्छाणि वा**–नदी के समीपवर्ती निम्नप्रदेश तथा खरबूजे आदि के खेत, या। **दवियाणि वा**–जगल मे घास आदि के लिए राजा के द्वारा रोकी हुई भूमि। **नूमाणि वा**–खड्ड आदि। **वलयाणि वा**–अथवा नदी आदि से वेष्टित भूमि भाग। **गहणाणि वा**–जल से रहित प्रदेश अरण्यक्षेत्र तथा। **गहणविदुग्गाणि वा**–अरण्य मे विषम स्थान। **वणाणि वा**–अथवा वन। **वणविदुग्गाणि वा**–वन मे विषम स्थान। **पव्वयाणि वा**–पर्वत। **पव्वयविदुग्गाणि वा**–पर्वत मे विषम स्थान। **अगडाणि वा**–अथवा कूप। **तलागाणि वा**–तालाब अथवा। **दहाणि वा**–झील। **नईओ वा**–नदिये अथवा। **वावीओ वा**–कमल रहित बावड़ी। **पुक्खरिणीओ वा**–पुष्करणी-कमल युक्त बावड़ी। **दीहियाओ वा**–दीर्घिका-लम्बी बावड़ी जिसमे जनता जल-क्रीड़ा करती है। **गुञ्जालियाओ वा**–अथवा दीर्घ गम्भीर और कुटिल जलाशय। **सराणि वा**–अथवा बिना खोदा हुआ तालाब। **सरपतियाणि वा**–परस्पर मिले हुए बहुत से सरोवर। **सरसरपतियाणि वा**–बहुत से सरोवरो की पक्तिए आदि रास्ते मे हो तो वह साधु। **बाहाओ**–भुजाओ को। **पगिज्झिय २**–ऊची कर के। **जाव**–यावत्। **नो निज्झाइज्जा**–उन्हे न देखे क्योंकि। **केवली॰**–केवली भगवान कहते है कि ये कर्म बन्धन के कारण है जैसे कि। **जे**–जो। **तत्थ**–वहा पर। **मिगा वा**–मृग-हरिण है। **पसू वा**–पशु अर्थात् अन्य पशु है। **पक्खी वा**–पक्षी है। **सरीसिवा**–अथवा साप हैं। **सीहा वा**–सिह-शेर हैं अथवा। **जलचरा**–जलचर जीव है। **थलचरा वा**–स्थलचर जीव है। **खहचरा वा**–खेचर-अकाश मे विचरने वाले जीव हैं, इस प्रकार

के जो। **सत्ता**-सत्व-जीव हैं वो साधु की उक्त चेष्टा को देखकर। **उत्तसिज्ज वा**-त्रास को प्राप्त होगे। **वित्तसिज्ज वा**-विशेष रूप से त्रास पाएगे। **वाड वा सरण वा**-आश्रय को। **करिवज्जा**-चाहेगे अथवा। **मे**-मुझे। **अयं समणे**-यह श्रमण। **वारेइत्ति**-हटाता है इस प्रकार जान कर भागेगे। **अह**-इसलिए। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ को। **पुव्वो वा दिट्ठा**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह आदेश दिया है कि। **ज**-साधु इस प्रकार के स्थानो की। **बाहाओ**-भुजाओ को। **पगिज्झिय**-ऊपर उठाकर के। **नो निज्झाइज्जा**-न देखे। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-साधु यत्नापूर्वक। **आयरियउवज्झाएहिं-सद्धि**-आचार्य और उपाध्यायादि के साथ। **गामाणुगामं**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे।

मूलार्थ— साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग मे यदि खेत की क्यारिया यावत् गुफाए, पर्वत के ऊपर के घर, भूमिगृह, वृक्ष के नीचे या ऊपर का निवास स्थान, पर्वत-गुफा, वृक्ष के नीचे व्यन्तर का स्थान, व्यन्तर का स्तूप और व्यन्तरायतन, लोहकारशाला यावत् भवनगृह आए तो इनको अपनी भुजा ऊपर उठाकर, अंगुलियो को फैला कर, शरीर को ऊंचा-नीचा करके न देखे। किन्तु यत्नापूर्वक अपनी विहार यात्रा में प्रवृत्त रहे। यदि मार्ग मे नदी के समीप निम्न-प्रदेश हो या खरबूजे आदि का खेत हो या अटवी मे घोड़े आदि पशुओ के घास के लिए राजाज्ञा से छोडी हुई भूमी-बीहड़ एव खड्डा आदि हो, नदी से वेष्टित भूमि हो, निर्जल प्रदेश और अटवी हो, अटवी मे विषम स्थान हो, वन हो और वन मे भी विषम स्थान हो, इसी प्रकार पर्वत, पर्वत पर का विषम स्थान, कूप, तालाब, झीलें, नदिया, बावड़ी, और पुष्करिणी और दीर्घिका अर्थात् लम्बी बावड़िए, गहरे एव कुटिल जलाशय, बिना खोदे हुए तालाब, सरोवर, सरोवर की पक्तिया और बहुत से मिले हुए तालाब हो तो इनको भी अपनी भुजा ऊपर उठाकर या अंगुली पसार कर, शरीर को ऊंचा-नीचा करके न देखे, कारण कि, केवली भगवान इसे कर्मबन्धन का कारण बताते हैं, जैसे कि-उन स्थानो मे मृग, पशु-पक्षी, साप, सिह, जलचर, स्थलचर और खेचर जीव होते है, वे साधु को देखकर त्रास पाएगे, वित्रास पाएगे और किसी बाड की शरण चाहेगे तथा विचार करेगे कि यह साधु हमें हटा रहा है, इसलिए भुजाओ को ऊची करके साधु न देखे किन्तु यत्ना पूर्वक आचार्य और उपाध्याय आदि के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ सयम का पालन करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को विहार करते समय रास्ते मे पडने वाले दर्शनीय स्थलो को अपने हाथ को ऊपर उठाकर या अगुलियो को फैलाकर या कुछ ऊचा होकर या झुक कर नहीं देखना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि इससे वह अपने गन्तव्य स्थान पर कुछ देर से पहुंचेगा, जिससे उसकी स्वाध्याय एव ध्यान साधना मे अन्तराय पडेगी और किसी सुन्दर स्थल को देखकर उसके मन में विकार भाव भी जाग सकता है और उसे इस तरह झुककर या ऊपर उठकर ध्यान से देखते हुए देखकर किसी के मन में साधु के प्रति सन्देह भी उत्पन्न हो सकता है। यदि सयोग से उस दिन या उस समय के आस-पास उक्त स्थान मे आग लग जाए या चोरी हो जाए तो उसके अधिकारी साधु पर इसका दोषारोपण भी कर सकते हैं। अत: इन सब दोषो से बचने के लिए साधु को मार्ग मे पडने वाले

दर्शनीय स्थलो की ओर अपना ध्यान न लगाकर यत्नापूर्वक अपना रास्ता तय करना चाहिए।

यहा यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि सूत्रकार ने दर्शनीय स्थलो को इस तरह से देखने के लिए इन्कार किया है, जिससे किसी के मन मे साधु के प्रति सन्देह उत्पन्न होता हो या उसके मन मे विकारी भाव जागृत होता हो। परन्तु, इसका अर्थ यह नही है कि साधु उस तरफ से निकलते हुए आखो को मूद कर चले। साधु अपनी गति से चलता है और आखो के सामने आने वाले दृश्य उसके सामने आए तो वह आखे बन्द नही करेगा, परन्तु उस तरफ विशेष गौर से न देखता हुआ स्वाभाविक गति से अपना रास्ता तय करेगा।

प्रस्तुत सूत्र मे दर्शनीय स्थानो के प्रसग मे- व्यन्तर आदि देव मन्दिर का वर्णन किया गया है, परन्तु जिन मन्दिर का उल्लेख नही किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय जिन मन्दिर नहीं थे। यदि उस समय जिन मन्दिर की परम्परा होती तो सूत्रकार उसका भी अवश्य उल्लेख करते।

इस सूत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय राजा गाव या शहर के बाहर जगल मे गायो एव घोडे आदि पशुओं के चरने के लिए कुछ गोचर भूमि या चरागाह छोडते थे, जिन पर किसी तरह का कर नहीं लिया जाता था। इससे यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि उस समय पशु रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त खेत, जलाशय, गुफाओ आदि का उल्लेख करके उस युग की वास्तु कला एव सस्कृति पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

यदि साधु को आचार्य एव उपाध्याय आदि के साथ विहार करना हो तो उन्हे किस तरह चलना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा २ आयरियउवज्झा० गामा० नो आयरियउवज्झायस्स हत्थेण वा हत्थं जाव अणासायमाणे तओ संजयामेव आयरियउ० सद्धिं जाव दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू वा आय० सद्धिं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छिज्जा, ते णं० पा० एवं वइज्जा–आउसंतो ! समणा ! के तुब्भे ? कओ वा एह ? कहिं वा गच्छिहिह ? जे तत्थ आयरिए वा उवज्झाए वा से भासिज्ज वा वियागरिज्ज वा, आयरियउवज्झायस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा नो अंतरा भासं करिज्जा, तओ सं० अहाराइणिए वा दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू वा अहाराइणियं गामा० दू० नो राइणियस्स हत्थेण हत्थं जाव अणासायमाणे तओ सं० अहाराइणियं गामा० दू०॥ से भिक्खू वा २ अहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवगच्छिज्जा, ते णं पाडिवहिया एवं वइज्जा– आउसंतो ! समणा ! के तुब्भे ? जे तत्थ सव्वराइणिए से भासिज्ज वा वागरिज्ज वा, राइणियस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा नो अंतरा भासं भासिज्जा, तओ संजयामेव अहाराइणियाए गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥१२८॥

छाया– भिक्षुर्वा० आचार्योपाध्यायै. सार्द्धं ग्रामानुग्रामं गच्छन् न आचार्योपाध्यायस्य हस्तेन वा हस्तं यावत् अनासादमान. तत. संयतमेव आचार्योपाध्यायैः सार्द्धं यावत् गच्छेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा आचार्योपाध्यायैः सार्द्धं गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिका उपागच्छेयु. ते प्रातिपथिका. एव वदेयु· आयुष्मन्त· श्रमणाः ! के यूयम् ? कुतो वा आगच्छथ ? कुत्र वा गमिष्यथ ? य· तत्र आचार्यो वा उपाध्यायो वा स भाषेत वा व्यागृणीयाद् वा आचार्योपाध्यायस्य भाषमाणस्य व्यागृणत वा नो अतरा-मध्ये भाषां कुर्यात्, तत संयतमेव यथा रात्निकै सार्द्धं गच्छेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यथारात्निक ग्रामानुग्रामं गच्छन् न रात्निकस्य हस्तेन हस्त-यावत् अनासादमानः तत. सयतमेव यथारात्निक ग्रामानुग्राम गच्छेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यथा रात्निक ग्रामानुग्राम गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिका उपागच्छेयु·, ते प्रातिपथिका. एवं वदेयुः आयुष्मन्त. श्रमणाः ! के यूय ? यस्तत्र सर्वरात्निक· स भाषेत व्यागृणीयात् वा रात्निकस्य भाषमाणस्य वा व्यागृणत वा न अन्तराले भाषा भाषेत तत सयतमेव यथा-रात्निकै सार्द्धं ग्रामानुग्रामं गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **आयरियउवज्झाएहिं**-आचार्य और उपाध्याय के। **सद्धिं**-साथ। **गामा॰**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **आयरियउवज्झायस्स**-आचार्य और उपाध्याय के। **हत्थेण हत्थं**-हाथ से हाथ। **जाव नो॰**-यावत् स्पर्श न करे अर्थात् हाथ से हाथ पकड़ कर न चले। **जाव**-यावत्। **अणासायमाणे**-आशातना न करता हुआ। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **आयरियउवज्झाएहिं**-आचार्य और उपाध्याय के। **सद्धिं**-साथ। **जाव**-यावत्। **दूइज्जिज्जा**-गमन करे-विहार करे।

से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। **आय॰**-आचार्य और उपाध्याय के। **सद्धिं**-साथ। **दूइज्जमाणे**-गमन करते हुए। **अतरा से**-उसके मार्ग मे यदि कोई। **पाडिवहिया**-पथिक। **उवागच्छिज्जा**-सामने आ जाए। **ण**-और। **ते**-वह। **पाडिवहिया**-पथिक। **एव**-साधु को इस प्रकार। **वइज्जा**-कहे। **आउसतो समणा**-आयुष्मन् श्रमण ! **के तुब्भे**-आप कौन हैं ? **कओ वा एह**-कहा से आ रहे हो ? **कहिं वा गच्छिहिह**-कहा पर जाएगे, तो। **तत्थ**-वहा पर। **जे**-जो। **आयरिए**-आचार्य। **वा**-या। **उवज्झाए वा**-उपाध्याय है तो। **से**-वह। **भासिज्जा**-उसे उत्तर दे या। **वियागरिज्जा**-विशेष प्रकार के उत्तर दे तब। **आयरियउवज्झायस्स**-आचार्य अथवा उपाध्याय के। **भासमाणस्स**-उत्तर देते हुए या। **वियागरेमाणस्स**-विशिष्ट उत्तर देते हुए वह साधु। **अतरा**-बीच मे। **नो भास करिज्जा**-किसी प्रकार का उत्तर प्रत्युत्तर न करे अर्थात् बीच में न बोले। **तओ**-तदनन्तर। **सं**-साधु। **अहाराइणिए वा**-यथारत्नाधिक के साथ। **दूइज्जिज्जा**-गमन करे।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **अहाराइणियं**-रत्नाधिक के साथ। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दू॰**-विहार करता हुआ। **राइणियस्स**-रत्नाधिक के। **हत्थेण**-हाथ से। **हत्थं**-हाथ को। **नो**-स्पर्श न करे। **जाव**-यावत्। **अणासायमाणे**-आशातना न करता हुआ। **तओ**-तदनन्तर। **सं॰**-साधु। **अहाराइणियं**-रत्नाधिक के

साथ। गामा०-ग्रामानुग्राम। दू०-विहार करे। से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। अहाराइणियं-रत्नाधिक के साथ। गामाणुगाम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम के प्रति। दूइज्जमाणे-विहार करते हुए। अतरा से-उसके मार्ग मे यदि कोई। पाडिवहिया-पथिक (मुसाफिर) सामने से। उवागच्छिज्जा-आ जाए। ण-और। ते-वे। पाडिवहिया-पथिक, उस साधु को। एव वइज्जा-इस प्रकार कहे। आउसतो समणा-आयुष्मन् श्रमणो ! के तुब्भे-आप कौन है ? तो । जे-जो। तत्थ-वहा पर। सव्वराइणिए-सर्वरत्नाधिक है अर्थात् जिसका दीक्षा पर्याय सब से अधिक है। से-वह। भासिज्ज वा-उत्तर दे। वागरिज्ज वा-अथवा विशेष रूप से सभाषण करे। राइणियस्स-उस ज्येष्ठ साधु के। भासमाणस्स-भाषण करते या। वियागरेमाणस्स-विशेष रूप से उत्तर देते समय। अतरा-उसके बीच मे। नो भास भासिज्जा-सभाषण न करे अर्थात् बीच मे न बोले। तओ-तदनन्तर। संजयामेव-सयत-साधु। अहाराइणियाए-रत्नाधिक के साथ। गामाणुगामं-ग्रामानुग्राम। दूइज्जिज्जा-विहार करे।

मूलार्थ— साधु अथवा साध्वी आचार्य और उपाध्याय के साथ विहार करता हुआ, आचार्य और उपाध्याय के हाथ से अपने हाथ का स्पर्श न करे, और आशातना न करता हुआ ईर्यासमिति पूर्वक उनके साथ विहार करे। उनके साथ विहार करते हुए मार्ग मे यदि कोई व्यक्ति मिले और वह इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं ? कहा से आये है ? और कहां जाएगे ? तो आचार्य या उपाध्याय जो भी साथ मे है वे उसे सामान्य अथवा विशेष रूप से उत्तर देवे। परन्तु, साधु को उनके बीच मे नहीं बोलना चाहिए। किन्तु, ईर्यासमिति का ध्यान रखता हुआ उनके साथ विहार चर्या मे प्रवृत्त रहे। और यदि कभी साधु रत्नाधिक (अपने से दीक्षा मे बड़े साधु) के साथ विहार करता हो तो उस रत्नाधिक के हाथ से अपने हाथ का स्पर्श न करे और यदि मार्ग मे कोई पथिक सामने मिले और पूछे कि आयुष्मन् श्रमणो ! तुम कौन हो ? तो वहा पर जो सबसे बड़ा साधु हो वह उत्तर देवे उसके संभाषण मे अर्थात् उत्तर देने के समय उसके बीच में कोई साधु न बोले किन्तु यत्नापूर्वक रत्नाधिक के साथ विहार मे प्रवृत्त रहे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु आचार्य, उपाध्याय एव रत्नाधिक (अपने से दीक्षा मे बडे साधु) के साथ विहार करते समय अपने हाथ से उनके हाथ का स्पर्श करता हुआ न चले और यदि रास्ते मे कोई व्यक्ति मिले और वह पूछे कि आप कौन हैं ? कहा से आ रहे हैं ? और कहा जाएगे ? आदि प्रश्नो का उत्तर साथ मे चलने वाले आचार्य, उपाध्याय या बडे साधु दे, परन्तु छोटे साधु को न तो उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिए और न बीच मे ही बोलना चाहिए। क्योकि आचार्य आदि के हाथ एव अन्य अङ्गोपाग का अपने हाथ आदि से स्पर्श करने से तथा वे किसी के प्रश्नो का उत्तर दे रहे हो उस समय उनके बीच मे बोलने से उनकी अशातना होगी और वह साधु भी असभ्य सा प्रतीत होगा। अत उनकी विनय एव शिष्टता का ध्यान रखते हुए साधु को विवेक पूर्वक चलना चाहिए।

यदि कभी आचार्य, उपाध्याय या बडे साधु छोटे साधु को प्रश्नो का उत्तर देने के लिए कहे तो वह उस व्यक्ति को उत्तर दे सकता है और इसी तरह यदि आचार्य आदि के शरीर मे कोई वेदना हो गई हो या चलते समय उन्हे उसके हाथ के सहारे की आवश्यकता हो तो वह उस स्थिति मे उनके हाथ आदि का स्पर्श भी कर सकता है। अस्तु, यहा जो निषेध किया गया है, वह बिना किसी कारण से एव उनकी

आज्ञा के बिना उनके हाथ आदि का स्पर्श करने एव उनके बीच मे बोलने के लिए किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे आचार्य आदि के साथ विहार करने के प्रसग मे जो साधु-साध्वी का उल्लेख किया है, वह सूत्र शैली के अनुसार किया गया है। परन्तु, साधु-साध्वी एक साथ विहार नहीं करते हैं, अत: आचार्य आदि के साथ साधुओ का ही विहार होता है, साध्वियो का नहीं। उनका विहार आचार्या (प्रवर्तिनी) आदि के साथ होता है। साधु और साध्वी दोनो के नियमो मे समानता होने के कारण दोनो का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है। अत· जहा साधुओ का प्रसग हो वहा आचार्य आदि का और जहा साध्वियो का प्रसग हो वहा प्रवर्तिनी आदि का प्रसग समझना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू वा॰ दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छिज्जा, ते णं पा॰ एवं वइज्जा-आउ॰ स॰ ! अवियाइं इत्तो पडिवहे पासह, तं॰ मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा सिरीसिवं वा जलयरं वा से आइक्खह दंसेह, तं नो आइक्खिज्जा नो दंसिज्जा, नो तस्स तं परिन्नं परिजाणिज्जा, तुसिणीए उवेहिज्जा, जाणं वा नो जाणंति वइज्जा, तओ सं॰ गामा॰ दू॰। से भिक्खू वा॰ गा॰ दू॰ अंतरा से पाडि॰ उवा॰, तेणं पा॰ एवं वइज्जा-आउ॰ स॰ ! अवियाइं इत्तो पडिवहे पासह, उदगपसूयाणि कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा उदगं वा संनिहियं अगणिं वा संनिखित्तं से आइक्खह जाव दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू वा॰ गामा॰ दूइज्जमाणे अंतरा से पाडि॰ उवा॰, ते णं पाडि॰ एवं आउ॰ स॰ अवियाइं इत्तो पडिवहे पासह जवसाणि वा जाव सेणं वा विरूवरूवं संनिविट्ठं से आइक्खह, जाव दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू वा॰ गामा॰ दूइज्जमाणे अंतरा पा॰ जाव आउ॰ स॰ केवइए इत्तो गामे वा जाव रायहाणी वा से आइक्खह जाव दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से पाडिपहिया आउसंतो समणा ! केवइए इत्तो गामस्स नगरस्स वा जाव रायहाणीए वा मग्गे से आइक्खह, तहेव जाव दूइज्जिज्जा॥१२९॥

छाया– स भिक्षुर्वा ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिकाः उपागच्छेयुः, ते प्रातिपथिकाः एवं वदेयुः–आयुष्मन्त. श्रमणाः ! अपि चेतः प्रतिपथे पश्यथ, तद् यथा– मनुष्यं वा गोणं वा महिषं वा पशुं वा पक्षिण वा सरीसृपं वा जलचरं वा तं आचक्षध्वम् दर्शयत तं न आचक्षीत, न दर्शयेत् न तस्य तां परिज्ञां परिजानीयात्, तूष्णीकः उपेक्षेत जानन् वा न जानन्ति- (जानन्नपि जानामि इति) नो वदेत् । ततः संयतमेव ग्रामानुग्रामं दूयेत। स

भिक्षुः भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं दूयमानः-गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिकाः उपागच्छेयुः, ते प्रातिपथिकाः एवं वदेयु·- आयुष्मन्त श्रमणाः ! अपि च इत· प्रतिपथे पश्यथ? उदकप्रसूतानि कन्दानि वा मूलानि वा त्वचो वा पत्राणि पुष्पाणि फलानि बीजानि हरितानि उदकं वा सन्निहितं अग्नि वा संनिक्षिप्त तं आचक्षध्वम् च यावत् दूयेत। स भिक्षुर्वा॰ ग्रामानुग्रामं गच्छन् अन्तराले तस्य प्रातिपथिका उपागच्छेयु ते प्रातिपथिकाः एवं वदेयुः आयुष्मन्तः श्रमणा ! अपि च इतः प्रतिपथे पश्यथ यवसानि वा यावत् स वा विरूपरूपं सनिविष्टं तम् आचक्षध्वम् यावत् दूयेत-गच्छेत्। स भिक्षुर्वा ग्रामानुग्राम दूयमान -गच्छन् अन्तराले प्रातिपथिका· यावत् आयुष्मन्त. श्रमणाः ! कियत् इतः ग्रामो वा यावद् राजधानी वा तदाचक्षध्व यावत् दूयेत। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्राम गच्छेत् अन्तराले तस्य प्रातिपथिका·॰ आयुष्मन्त· श्रमणा ! कियान् इत· ग्रामस्य वा नगरस्य वा यावत् राजधान्या वा मार्गः तदाचक्षध्वम् तथैव यावत् , दूयेत।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **दूइज्जमाणे**-विहार करते हुए। **अतग से**-उसके मार्ग मे। **पाडिवहिया**-पथिक लोग सामने से। **उवागच्छिज्जा**-आ जाए। **ण**-और। **ते**-वे साधु को। **एव**-इस प्रकार। **वइज्जा**-कहे कि। **आउसंतो समणा !**-आयुष्मन् श्रमण ! **अवियाइ**-क्या आपने। **इत्तो पडिवहे**-इस मार्ग मे आते हुए किसी को। **पासह**-देखा है। **त॰**-जैसे कि। **मणुस्स वा**-मनुष्य को। **गोण वा**-बैल को। **महिस वा**-महिष को। **पसुं वा**-पशु को। **पक्खि वा**-पक्षी को। **सिरीसिवं वा**- सर्प को अथवा। **जलयरं वा**-जलचर को। **से**-उसको। **आइक्खह**-कहो और। **दसेह**-दिखलाओ, इस प्रकार के प्रश्न किए जाने पर साधु। **तं**-उसे। **नो आइक्खिज्जा**-न तो कुछ कहे और। **नो दंसिज्जा**-न दिखलावे। **तस्स**-उसके। **त परिन्न**-इस कथन को। **नो परिजाणिज्जा**-स्वीकार न करे किन्तु। **तुसिणीए उवेहेज्जा**-मौन वृत्ति मे रहे अर्थात् चुप रहे। **जाण वा**-अथवा जानता हुआ भी। **जाणति**-मैं जानता हूँ इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न कहे अर्थात् चुप रहे। **तओ**-तदनन्तर। **स॰**-यतना पूर्वक। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दू॰**-विहार करे।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **गा॰**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। **दू॰**-गमन करता हुआ। **अतरा से**-उसके मार्ग मे यदि। **पाडि॰**-पथिक लोग। **उवा॰**-सामने आ जाए। **ण**-और। **ते**-वे। **पा॰**-पथिक लोग। **एवं वइज्जा**-इस प्रकार कहे। **आउ॰ स॰**-आयुष्मन् श्रमण ! **अवियाइ**-अपिच-क्या आपने। **इत्तो**-इस। **पडिवहे**-मार्ग मे इनको। **पासह**-देखा है ? जैसे कि। **उदगपसूयाणि**-उदकप्रसूत-जल से उत्पन्न हुए। **कदाणि**-कन्द। **मूलाणि वा**-अथवा मूल। **तयाणि**-त्वचा-वृक्ष की छाल। **पत्ताणि**-पत्र। **पुप्फाणि**-पुष्प-फूल। **फलाणि**-फल। **बीयाणि**-बीज। **हरियाणि**-हरित काय। **उदग**-उदक-पानी। **वा**-अथवा। **संनिहियं**-सनिहित पानी के स्थान तड़ाग आदि। **अगणिसंनिखित्त**-अप्रज्वलित हुई अग्नि। **ते**-उसको। **आइक्खह**-कहो। **जाव**-यावत्। **दूइजिज्जा**-विहार करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **से**-उसके। **अतरा**-मार्ग मे यदि। **पाडि॰**-पथिक लोग। **उवा॰**-आ जाए। **ण**-और। **ते**-वे। **पाडि॰**-पथिक लोग। **एव**-इस प्रकार कहे। **आउ॰ स॰**-आयुष्मन् श्रमण। **अवियाइं**-क्या आप ने। **इत्तो पडिवहे**-इस मार्ग में।

पासह-देखा है जैसे कि। **जवसाणि वा**-यव, गोधूमादि धान्य को। **जाव**-यावत्। **सेणं वा**-राजा की सेना को। **विरूवरूवं**-नाना प्रकार के। **संनिविट्ठं**-उतरे हुए राजा के कटक-सेना को। **से**-उसे। **आइक्खह**-कहो-बताओ। **जाव**-यावत्। **दूइज्जिज्जा**-ग्रामानुग्राम विहार करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **गामा०** **दूइज्जमाणे**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाते हुए। **अतरा**-मार्ग में। **पा०**-पथिक लोग। **जाव**-यावत् आ जाए और साधु के प्रति कहें कि। **आउ० स०**-आयुष्मन् श्रमण। **केवइए**-कितनी दूर। **इत्तो**-यहा से। **गामे वा**-ग्राम है। **जाव**-यावत्। **रायहाणी वा**-राजधानी है। **से**-उसे। **आइक्खह**-कहो। **जाव**-यावत्। **दू०**-मौनवृत्ति से विहार करे। **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **गामाणुगामं**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम के प्रति। **दूइज्जमाणे**-विहार करते हुए। **से**-उसके। **अंतरा**-मार्ग मे यदि। **पाडिवहिया**-पथिक आ जाए और पूछे कि। **आउसंतो समणा**-आयुष्मन् श्रमण! **केवइए**-कितनी दूर। **इत्तो**-यहां से। **गामस्स वा**-ग्राम का अथवा। **नगरस्स वा**-नगर का। **जाव**-यावत्। **रायहाणीए वा**-राजधानी का। **मग्गे**-मार्ग है। **से**-उसे। **आइक्खह**-कहो अर्थात् बताओ? **शेष**। **तहेव**-उसी प्रकार। **जाव**-यावत्। **दूइज्जिज्जा**-मौन वृत्ति से विहार करे।

मूलार्थ- **सयमशील साधु या साध्वी को विहार करते हुए यदि मार्ग के मध्य मे सामने से कोई पथिक मिले और वे साधु से कहे कि आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने मार्ग में मनुष्य को, मृग को, महिष को, पशु को, पक्षी को, सर्प को और जलचर को जाते हुए देखा है? यदि देखा हो तो बताओ वे किस ओर गए हैं? साधु इन प्रश्नो का कोई उत्तर न दे और मौन भाव से रहे, तथा उसके उक्त वचन को स्वीकार न करे, तथा जानता हुआ भी यह न कहे कि मैं जानता हूँ। और ग्रामानुग्राम विचरते हुए साधु को मार्ग में वे पथिक यह पूछे कि आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने इस मार्ग मे जल से उत्पन्न होने वाले कन्दमूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरित, एवं जल के स्थान और अप्रज्वलित हुई अग्नि को देखा है तो बताओ कहां देखा है? इसके उत्तर मे भी साधु कुछ न कहे अर्थात् चुप रहे। तथा ईर्यासमिति पूर्वक विहार चर्या मे प्रवृत्त रहे और यदि यह पूछे कि इस मार्ग मे धान्य और राजाओ की सेना कहां पर है? तो इस प्रश्न के उत्तर मे भी मौन रहे। यदि वे पूछें कि आयुष्मन् श्रमण! यहां से ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर है? तथा यहां से ग्राम नगर यावत् राजधानी का मार्ग कितना शेष रहा है? इनका भी उत्तर न दे तथा जानता हुआ भी मै जानता हूँ ऐसे न कहे, किन्तु मौन धारण करके ईर्यासमिति पूर्वक अपना रास्ता तय करे।**

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि विहार करते समय कोई पथिक पूछे कि हे मुनि! आपने इधर से किसी मृग, गाय आदि पशु-पक्षी या मनुष्य आदि को जाते हुए देखा है? इसी तरह जलचर एव वनस्पतिकाय या अग्नि आदि के सम्बन्ध मे भी पूछे और कहे कि यदि आपने इन्हे देखा है तो बताइए वे कहा हैं या किस ओर गए हैं? उसके ऐसा पूछने पर साधु को मौन रहना चाहिए। क्योकि, यदि साधु उसे उनका सही पता बता देता है तो उसके द्वारा उन प्राणियो की हिसा होना सम्भव है। अत: पूर्ण अहिसक साधु को प्राणीमात्र के हित की भावना को ध्यान मे रखते हुए उस समय मौन रहना चाहिए।

प्रस्तुत प्रसग मे प्रयुक्त '**जाणं वा नो जाणंति वइज्जा**' के अर्थ मे दो विचार-धाराए हमारे

सामने हैं। परन्तु, इस बात मे सभी विचारक एकमत हैं कि साधु को ऐसी भाषा का बिल्कुल प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे अनेक प्राणियो की हिसा होती हो। इस दया की भावना को ध्यान मे रखते हुए वृत्तिकार उक्त पदो का यह अर्थ करते है- साधु जानते हुए भी यह कहे कि मैं नहीं जानता। स्व० आचार्य श्री जवाहर लाल जी महाराज ने भी सद्धर्म मण्डन मे इसी अर्थ का समर्थन किया है। इसमे साधु की भावना असत्य बोलने की नहीं, प्रत्युत उसकी उपेक्षा करके जीवो की रक्षा करने की भावना है। परन्तु, फिर भी इस भाषा मे कुछ असत्य का अश रह ही जाता है, अत: यह विचारणीय है कि साधु ऐसी भाषा का प्रयोग कैसे कर सकता है।

यह भी तो स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रसग मे प्रयुक्त 'वा' शब्द अपि (भी) के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है और 'नो' शब्द '**वइज्जा**' क्रिया से सबद्ध है। इस तरह इसका अर्थ हुआ कि साधु जानते हुए भी यह नहीं कहे कि मैं जानता हूँ। मोरबी से प्रकाशित आचाराग सूत्र के गुजराती अनुवाद मे भी यही अर्थ किया गया है कि 'खरु जाणता छता जाणु छु एम न बोलबु[१]। उपाध्याय पार्श्वचन्द्र ने भी आचाराग की बालावबोध टीका मे उपरोक्त अर्थ को ही स्वीकार किया है।

आगम मे प्राय. 'नो' शब्द का क्रिया के साथ ही सम्बन्ध माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है- '**न मिणेहिं कहिचि कुव्वेज्जा**' अर्थात् कहीं पर भी स्नेह न करे[२]। इस सूत्र मे 'न' का क्रिया के साथ ही सम्बन्ध माना गया है। इसके अतिरिक्त आगम मे ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमे 'नो' शब्द को क्रिया के साथ ही सम्बद्ध माना है[३]। इसलिए प्रस्तुत प्रसग मे 'नो' शब्द को '**वइज्जा**' क्रिया से सम्बद्ध मानना ही युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। यदि इस तरह से 'नो' शब्द को क्रिया के साथ जोडकर अर्थ नहीं करेगे तो फिर मौन रखने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाएगा। फिर तो साधु सीधा ही यह कहकर आगे बढ जाएगा कि मैं नहीं जानता। परन्तु, आगम मे जो मौन रखने को कहा गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को जानते हुए भी यह नहीं कहना चाहिए कि मैं नहीं जानता। साधु को जीवो की हिसा एव असत्य भाषा दोनो से बचना चाहिए।

आगम मे कहा गया है कि जिस भाषा के प्रयोग से जीवो की हिसा होती हो वैसी सत्य भाषा

---

१ आचाराङ्ग सूत्र (गुजराती अनुवाद) पृष्ठ २७०।

२ उत्तराध्ययन सूत्र, ८, १८।

३ णेरइयाण भते ! जीवा कि चलिय कम्म बधति, अचलिय कम्म बन्धन्ति ?

गोयमा ! णो चलिय कम्म बन्धन्ति, अचलिय कम्म बन्धन्ति।

यहा पर 'णो' शब्द का बन्धति क्रिया के साथ सम्बन्ध है।

णेरइयाण भते जीवा कि चलिय कम्म उदीरति, अचलिय कम्म उदीरन्ति ?

गोयमा ! णो चलिय कम्म उदीरति, अचलिय कम्म उदीरति।

यहा पर ''उदीरति'' क्रिया के साथ 'नो' पद का सम्बन्ध है।

सा भते ! कि अत्तकडा कज्जइ, परकडा कज्जइ, तदुभय कडा कज्जइ ?

गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ, णो परकडा कज्जइ, णो तदुभयकडा कज्जइ।

– भगवती सूत्र, शतक, १-उद्दे० १

भी साधु को नहीं बोलनी चाहिए[१]। और यह भी बताया गया है कि साधु को सत्य एव व्यवहार भाषा बोलनी चाहिए और मिश्र एव असत्य भाषा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए[२]। साधु दूसरे महाव्रत मे असत्य भाषण का सर्वथा त्याग करता है[३] और आगम मे उसे अणुमात्र (स्वल्प) झूठ बोलने का भी निषेध किया गया है[४]। इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को ऐसे प्रसगो पर मौन रहना चाहिए। चाहे उस पर कितना भी कष्ट क्यो न आए, फिर भी जानते हुए भी उसे यह नहीं कहना चाहिए कि मैं जानता हूँ और झूठ भी नहीं बोलना चाहिए।

इसी विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से भिक्खू० गा० दू० अंतरा से गोणं वियालं पडिवहे पेहाए जाव चित्तचिल्लडं वियालं प० पेहाए नो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छिज्जा नो मग्गाओ उम्मग्गं संकमिज्जा नो गहणं वा वणं वा दुग्गं वा अणुपविसिज्जा नो रुक्खंसि दुरूहिज्जा नो महइमहालयंसि उदयंसि कायं विउसिज्जा नो वाडं वा सरणं वा सेणं वा सत्थं वा कंखिज्जा अप्पुस्सुए जाव समाहीए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ से भिक्खू० गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणिज्जा, इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा उवगरणपडियाए संपिंडिया गच्छिज्जा, नो तेसिं भीओ उम्मग्गेण गच्छिज्जा जाव समाहीए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा॥१३०॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं दूयमान. अन्तराले तस्य गा व्यालं प्रतिपथे प्रेक्ष्य यावत् चित्रकं व्याल प्रतिपथे प्रेक्ष्य न तेभ्यो भीत: उन्मार्गेण गच्छेत्, न मार्गत· उन्मार्गं संक्रामेत्, न गहनं वा वनं वा दुर्गं वा अनुप्रविशेत्त् न वृक्षं आरोहेत् न महति महालये उदके काय व्युत्सृजेत्, न वाटं वा शरण वा सेनां वा सार्थं वा कांक्षेत् अल्पोत्सुक: यावत् समाधिना, ततः संयतमेव ग्रामानुग्रामं दूयेत। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं दूयमानः

---

१ तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो॥ – दशवैकालिक सूत्र ७, ११

२ चउण्ह खलु भासाण परिसंखाय पन्नवं।
दुण्ह विणय सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो॥ – दशवैकालिक सूत्र ७, १

३ अहावरे दुच्चे भन्ते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमण।
सव्वं भंते ! मुसावाय पच्चक्खामि॥ – दशवैकालिक सूत्र ४

४ एयं च दोस दट्ठूर्णं, नायपुत्तेण भासियं।
अणुमायपि मेहावी, मायामोस विवज्जए। – दशवैकालिक सूत्र ५, ५१।

अन्तराले तस्य विहं स्यात् स यत् पुनः विहं जानीयात् अस्मिन् खलु विहे बहवः आमोषकाः उपकरणप्रतिज्ञया सपिण्डिता· आगच्छेयु· न तेभ्यो भीत उन्मार्गेण गच्छेत्, यावत् समाधिना, ततः सयतमेव ग्रामानुग्राम दूयेत गच्छेत्।

पदार्थ– **से भिक्खू॰**-वह साधु या साध्वी। **गा॰ दू॰**-ग्रामानुग्राम विहार करते हुए। **से**-उसके। **अन्तरा**-मार्ग के मध्य मे आए हुए। **गोण**-वृषभ को। **वियाल**-सर्प को। **पडिवहे**-रास्ते मे देखकर। **जाव**-यावत्। **चित्तचिल्लड**-चीते को, चीते के बच्चे को। **वियाल**-क्रूर साप को। **प॰**-मार्ग मे। **पेहाए**-देखकर। **तेसि**-उनसे। **भीओ**-डरता हुआ। **उम्मग्गेण**-उन्मार्ग से। **नो गच्छिज्जा**-गमन न करे और। **मग्गाओ**-मार्ग से। **उम्मग्गं**-उन्मार्ग को। **नो सकमिज्जा**-सक्रमण न करे। **गहण वा**-गहन-वृक्ष समूह से युक्त स्थान। **वण वा**-वन। **दुग्ग वा**-विषम स्थान इनमे। **न पविसिज्जा**-प्रवेश न करे और। **रुक्खंसि**-वृक्ष पर। **नो दुरूहिज्जा**-न चढे। **महइमहालयसि**-अति विस्तृत गहरे जल मे। **काय**-शरीर को। **नो विउसिज्जा**-तिरोहित न करे। **वाड वा**-बाड़ का। **सरण**-शरण। **सेणं वा**-सेना का अथवा। **सत्थं वा**-किन्हीं अन्य साथियो का आश्रय। **नो कंखिज्जा**-न चाहे। **अप्पुस्सुए**-राग-द्वेष से रहित होकर। **जाव**-यावत्। **समाहीए**-समाधि युक्त होकर। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-सयमशील साधु। **गामाणुगाम**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे। **से भिक्खू॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **अतरा से**-उसके मार्ग मे। **विह सिया**-अटवी हो तो। **से**-वह साधु। **ज**-जो। **पुण**-फिर। **विह**-अटवी को। **जाणिज्जा**-जाने। **खलु**-निश्चयार्थक है। **इमसि**-इस। **विहंसि**-अटवी मे। **बहवे**-बहुत से। **आमोसगा**-चोर। **उवगरणपडियाए**-साधु के उपकरण को लेने के लिए। **सपिडिया**-एकत्र होकर यदि सामने। **गच्छिज्जा**-आ जाए तो। **तेसि**-उनसे। **भीओ**-डर कर। **उम्मग्गेण**-उन्मार्ग से। **नो गच्छिज्जा**-गमन न करे। **जाव**-यावत्। **समाहीए**-समाधियुक्त होकर। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-यत्नापूर्वक। **गामाणुगामं**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जिज्जा**-विहार करे।

मूलार्थ– सयमशील साधु अथवा साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग मे यदि मदोन्मत्त वृषभ-बैल या विषैले साप या चीते आदि हिंसक जीवो का साक्षात्कार हो तो उसे देखकर साधु को भयभीत नहीं होना चाहिए तथा उनसे डरकर उन्मार्ग में गमन नहीं करना चाहिए और मार्ग से उन्मार्ग का सक्रमण भी नही करना चाहिए। और गहन वन एवं विषम स्थान में भी साधु प्रवेश न करे, एव न विस्तृत और गहरे जल मे ही प्रवेश करे और न वृक्ष पर ही चढ़े। इसी प्रकार वह सेना और अन्य साथियो का आश्रय भी न ढूढे, किन्तु राग-द्वेष से रहित होकर यावत् समाधि-पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

यदि साधु या साध्वी को विहार करते हुए मार्ग मे अटवी आ जाए तो साधु उसको जान ले, जैसे कि अटवी मे चोर होते है और वे साधु के उपकरण लेने के लिए इकट्ठे होकर आते है, यदि अटवी मे चोर एकत्रित हो कर आए तो साधु उनसे भयभीत न हो तथा उनसे डरकर उन्मार्ग की ओर न जाए किन्तु राग-द्वेष से रहित होकर यावत् समाधि-पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करने मे प्रवृत्त रहे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु की निर्भयता के सर्वोत्कृष्ट रूप का वर्णन किया गया

है। इसमें बताया गया है कि यदि साधु को रास्ते मे उन्मत्त बैल, शेर आदि हिसक जन्तु मिल जाए या कभी मार्ग भूल जाने के कारण भयकर अटवी मे गए हुए साधु को चोर, डाकू आदि मिल जाए तो मुनि को उनसे भयभीत होकर इधर-उधर उन्मार्ग पर नहीं जाना चाहिए, न वृक्ष पर चढना चाहिए और न विस्तृत एव गहरे पानी मे प्रवेश करना चाहिए, परन्तु राग-द्वेष से रहित होकर अपने मार्ग पर चलते रहना चाहिए।

प्रस्तुत प्रसग साधु की साधुता की उत्कृष्ट साधना का परिचायक है। वह अभय का देवता न किसी को भय देता है और न किसी से भयभीत होता है। क्योकि, प्राणी जगत को अभयदान देने वाला साधक कभी भय ग्रस्त नहीं होता। भय उसी प्राणी के मन मे पनपता है, जो दूसरो को भय देता है या जिसकी साधना मे, अहिसा मे अभी पूर्णता नही आई है। क्योकि भय एव अहिसा का परस्पर विरोध है। मानव जीवन मे जितना-जितना अहिसा का विकास होता है उतना ही भय का ह्रास होता है और जब जीवन मे पूर्ण अहिसा साकार रूप मे प्रकट हो जाती है तो भय का भी पूर्णत नाश हो जाता है। अस्तु अहिसा निर्भयता की निशानी है।

यह वर्णन पूर्ण अहिसक साधक को ध्यान मे रखकर किया गया है। सामान्यत सभी साधु हिसा के त्यागी होते हैं, फिर भी सबकी साधना के स्तर मे कुछ अन्तर रहता है। सब के जीवन का समान रूप से विकास नही होता। इसी अपेक्षा से वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र को जिनकल्पी मुनि की साधना के लिए बताया है। क्योकि स्थविर कल्पी मुनि की यदि कभी समाधि भग होती हो तो हिसक जीवो से युक्त मार्ग का त्याग करके अन्य मार्ग से भी आ-जा सकता है। आगम मे भी लिखा है कि यदि मार्ग मे हिसक जन्तु बैठे हो या घूम-फिर रहे हो तो मुनि को वह मार्ग छोड देना चाहिए[१]।

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र जो जिनकल्पी मुनि से सम्बद्ध बताया है। हिसक जन्तुओ से भयभीत न होने के प्रसग मे तो यह युक्ति सगत प्रतीत होता है। परन्तु, अटवी मे चोरो द्वारा उपकरण छीनने के प्रसग मे जिनकल्पी की कल्पना कैसे घटित होगी ? क्योकि उनके पास वस्त्र एव पात्र आदि तो होते ही नहीं, अत उनके लूटने का प्रसग ही उपस्थित नहीं होगा। इसका समाधान यह है कि आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे वृत्तिकार ने एक, दो और तीन चादर रखने वाले जिनकल्पी मुनि का भी वर्णन किया है, उन्होने कुछ जिनकल्पी मुनियो के उत्कृष्ट १२ उपकरण स्वीकार किए हैं। अत· इस दृष्टि से इस साधना को जिनकल्पी मुनि की साधना मानना युक्तिसगत ही प्रतीत होता है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० गा० दू० अन्तरा से आमोसगा-संपिंडिया गच्छिज्जा, ते णं आ० एवं वइज्जा आउ० स० ! आहर एयं वत्थं वा ४ देहि निक्खिवाहि, तं नो दिज्जा निक्खिविज्जा, नो वंदिय २ जाइज्जा, नो अञ्जलिं कट्टु जाइज्जा, नो कलुणवडियाए जाइज्जा, धम्मियाए जायणाए जाइज्जा, तुसिणीयभावेण वा उवेहिज्जा ते णं आमोसगा सयं करणिज्जंति कट्टु

१ साणं सूइय गावि, दित्त गोण हय गय।
सडिब्भं कलहं जुद्ध, दूरओ परिवज्जए॥ – दशवैकालिक सूत्र, ५, १२।

अक्कोसंति वा जाव उद्दविंति वा वत्थं वा ४ अच्छिंदिज्ज वा जाव परिट्ठविज्ज वा, तं नो गामसंसारियं कुज्जा, नो रायसंसारियं कुज्जा, नो परं उवसंकमित्तु बूया– आउसंतो ! गाहावई ! एए खलु आमोसगा उवगरणवडियाए सयं करणिज्जंति कट्टु अक्कोसंति वा जाव परिट्ठवंति वा, एयप्पगारं मणं वा वायं वा नो पुरओ कट्टु विहरिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समाहीए तओ संजयामेव गामा० दू०। एयं खलु० सया जइ० ॥१३१॥ त्तिबेमि॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं दूयमानः अन्तराले तस्य आमोपका· संपिण्डिता. आगच्छेयु· ते आमोषकाः एवं वदेयुः– आयुष्मन् श्रमण ! आहर एतद् वस्त्र वा ४ देहि निक्षिप ? तद् नो दद्यात् निक्षिपेत् न वन्दित्वा २ याचेत न अञ्जलिं कृत्वा याचेत, न करुणप्रतिज्ञया याचेत, धार्मिकया याचनया याचेत तूष्णीकभावेन वा उपेक्षेत ते आमोषका स्वयंकरणीयमिति कृत्वा, आक्रोशन्ति वा यावत् अपद्रावयन्ति वा, वस्त्रं वा आछिन्द्युः तद् यावत् परिष्ठापयेयु र्वा तद् न ग्रामसंसारणीयं कुर्यात्, न राजससारणीयं कुर्यात्, न पर उपसक्रम्य ब्रूयात्- आयुष्मन् गृहपते! एते खलु आमोषका. उपकरणप्रतिज्ञया स्वयंकरणीयमिति-कृत्वा आक्रोशन्ति वा यावत् परिष्ठापयन्ति वा एतत् प्रकार मानसं वा वाचं वा न पुरत कृत्वा विहरेत्। अल्पोत्सुक यावत् समाधिना तत. सयतमेव ग्रामानुग्राम दूयेत। एतत् खलु भिक्षो. सामग्र्यं यत् सर्वार्थै. समितः सहितः सदा जयेत्। इति ब्रवीमि। समाप्तमीर्याख्य तृतीयमध्ययनम्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **गा०**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करता हुआ। **अतरा**-मार्ग मे। **से**-उसके सामने। **आमोसगा**-चोर। **संपिंडिया**-एकत्रित होकर। **आगच्छिज्जा**-आ जाए। **णं**-पूर्ववत्। **ते**-वे। **आमोसगा**-चोर। **एवं वइज्जा**-इस प्रकार कहे। **आउ० स०**-आयुष्मन् श्रमण ! **आहर**-लाओ। **एय वत्थं वा० ४**-यह वस्त्रादि। **देहि**-हमे दे दो, और। **निक्खिवाहि**-यहा पर रख दो, तब वह साधु। **त**-उसे। **नो दिज्जा**-न देवे किन्तु उन्हे भूमि पर। **निक्खिविज्जा**-रख दे, परन्तु। **वंदिय २**-उन चोरो की स्तुति करके। **नो जाइज्जा**-उन वस्त्रादि की याचना न करे, तथा। **अजलि कट्टु**-हाथ जोड़ कर। **नो जाइज्जा**-याचना न करे तथा। **कलुणवडियाए**-दीन वचन बोलकर। **नो जाइज्जा**-याचना न करे किन्तु। **धम्मियाए**-धार्मिक। **जायणाए**-याचना से अर्थात् धर्म कथन पूर्वक। **जाइज्जा**-याचना करे अथवा। **तुसिणीयभावेण वा**-मौन भाव से अवस्थित रहे। **ण**-वाक्यालकार मे है। **ते**-वे। **आमोसगा**-चोर। **सयंकरणिज्जंति कट्टु**-चोर का कर्त्तव्य जानकर यदि इस प्रकार करे यथा। **अक्कोसंति वा**-साधु को आक्रोसते हैं। **जाव**-यावत्। **उद्दविंति**-जीवन से रहित कर देते हैं। **वा**-अथवा। **वत्थ वा**-वस्त्रादि को। **अच्छिंदिज्जा**-छीन लेते हैं। **वा**-अथवा। **जाव**-यावत् छीने हुओं को। **परिट्ठविज्जा**-वहां पर ही फैंक देते है, तो भी साधु। **तं**-इस बात को। **गामसंसारियं**-गाव मे जाकर लोगों से। **नो कुज्जा**-न कहे और। **नो रायससारिय कुज्जा**-राजा आदि के पास जाकर भी न कहे तथा। **नो परं उपसंकमित्तु बूया**-न अन्य गृहस्थो के पास जाकर कहे कि। **आउसंतो गाहावई**-आयुष्मन् सद् गृहस्थो ! **एए खलु**

आमोसगा-निश्चय ही इन चोरों ने। **उवगरणवडियाए**-मेरे उपकरण ले लिए। **सयंकरणिज्जंति कट्टु**-उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझ कर मुझे। **अक्कोसति**-कठोर वचन कहे। **जाव**-यावत्। **परिट्ठवंति**-मेरे उपकरण आदि फैंक दिए। **एयप्पगार**-इस प्रकार का। **मणं वा**-मन। **वायं वा**-अथवा वचन को। **पुरओ कट्टु**-आगे करके। **नो विहरिज्जा**-न विचरे किन्तु। **अप्पुस्सुए**-राग-द्वेष से रहित। **जाव**-यावत्। **समाहीए**-समाधि युक्त होकर। **तओ**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **गामा°**-ग्रामानुग्राम। **दूइ°**-विहार करे। **एय खलु°**-निश्चय ही यह उस साधु और साध्वी का सम्पूर्ण आचार है। **सया जइ°**- जो कि सर्व अर्थों से युक्त और समितियो से समित हो सदा यत्नशील रहे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ— **सयमशील साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यदि मार्ग में बहुत से चोर मिले और वे कहे कि-आयुष्मन् श्रमण! ये वस्त्र, पात्र और कंबल आदि हमको दे दो या यहा पर रख दो। तो साधु वे वस्त्र, पात्रादि उनको न देवे, किन्तु भूमि पर रख दे, परन्तु उन्हे वापिस प्राप्त करने के लिए मुनि उनकी स्तुति करके, हाथ जोड़ कर या दीन वचन कह कर उन वस्त्रादि की याचना न करे अर्थात् उन्हें वापिस देने को न कहे। तथा यदि मांगना हो तो उन्हें धर्म का मार्ग समझाकर मागे अथवा मौन रहे। वे चोर अपने चोर के कर्त्तव्य को जानकर साधु को मारें-पीटें या उसका वध करने का प्रयत्न करे और उसके वस्त्रादि को छीन ले, फाड़ डाले या फैंक दें तो भी वह भिक्षु ग्राम मे जाकर लोगो से न कहे और न राजा से कहे एवं किसी अन्य गृहस्थ के पास जाकर भी यह न कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ! इन चोरो ने मेरे उपकरणादि को छीनने के लिए मुझे मारा है और उपकरणादि को दूर फैक दिया है। ऐसे विचारो को साधु मन मे भी न लाए और न वचन से उन्हे अभिव्यक्त करे। किन्तु राग-द्वेष से रहित हो कर समभाव से समाधि मे रहकर ग्रामानुग्राम विचरे। यही उसका यथार्थ साधुत्व-साधु भाव है। इस प्रकार मै कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे भी पहले सूत्र की तरह साधु की निर्भयता एव सहिष्णुता पर प्रकाश डाला गया है। इसमे बताया गया है कि विहार करते समय यदि रास्ते मे कोई चोर मिल जाए और वह मुनि से कहे कि तू अपने उपकरण हमे दे दे या जमीन पर रख दे। तो मुनि शान्त भाव से अपने वस्त्र पात्र आदि जमीन पर रख दे। परन्तु, वह उन्हे वापिस प्राप्त करने के लिए उन चोरो की स्तुति न करे, न उनके सामने दीन वचन ही बोले। यदि बोलना उचित समझे तो उन्हे धर्म का मार्ग दिखाकर उन्हे पथ भ्रष्ट होने से बचाए, अन्यथा मौन रहे। इसके अतिरिक्त यदि कोई चोर साधु से वस्त्र आदि प्राप्त करने के लिए उसे मारे-पीटे या उसका वध करने का प्रयत्न भी करे और उसके सभी उपकरण भी छीन ले या उन्हे तोड-फोड कर दूर फैंक दे, तब भी मुनि उस पर राग-द्वेष न करता हुआ समभाव से गाव मे आ जाए। गाव मे आकर भी वह यह बात किसी भी गृहस्थ, अधिकारी या राजा आदि से न कहे। और न इस सम्बन्ध मे किसी तरह का मानसिक चिन्तन ही करे। वह मन, वचन और काया से उस से (चोर से) किसी भी तरह का प्रतिशोध लेने का प्रयत्न न करे।

इस सूत्र मे साधुता के महान् उज्ज्वल रूप को चित्रित किया गया है। अपना अपकार करने वाले व्यक्ति का कभी बुरा नहीं चाहना एव उसे कष्ट में डालने का प्रयत्न नहीं करना, यह आत्मा की महानता को प्रकट करता है। यह आत्मा के विकास की उत्कृष्ट श्रेणी है जहा पर पहुच कर मानव अपने वधिक के

प्रति भी द्वेष भाव नहीं रखता। वह मारने एव पूजा करने वाले दोनो पर समभाव रखता है, दोनो को मित्र समझता है और दोनो का हित चाहता है। यही श्रेणी आत्मा से परमात्मा पद को प्राप्त करने की या साधक से सिद्ध बनने की श्रेणी है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन-भाषैषणा

प्रथम उद्देशक

तृतीय अध्ययन मे ईर्यासमिति का वर्णन किया गया है। अत सयम पथ पर गतिशील मुनि को किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए, यह प्रस्तुत अध्ययन मे बताया गया है। यह अध्ययन दो उद्देशो मे विभक्त है। पहले उद्देशे मे वचन, विभक्ति आदि का वर्णन किया गया है और दूसरे उद्देश मे ऐसी भाषा का प्रयोग करने का निषेध किया गया है, जिससे अपने या दूसरे के मन मे क्रोध आदि विकारो की उत्पत्ति होती हो। इस तरह साधु को कैसी भाषा बोलनी चाहिए इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से भिक्खू वा २ इमाइं वयायाराइं सुच्चा निसम्म इमाइं अणागाराइं अणारियपुव्वाइं जाणिज्जा जे कोहा वा वायं विउंजंति जे माणा वा० जे मायाए वा० जे लोभा वा वायं विउंजंति जाणओ वा फरुसं वयंति अजाणओ वा फ० सव्वं चेयं सावज्जं वज्जिज्जा विवेगमायाए, धुवं चेयं जाणिज्जा अधुवं चेयं जाणिज्जा असणं वा ४ लभिय नो लभिय भुंजिय नो भुंजिय अदुवा आगओ अदुवा नो आगओ अदुवा एइ अदुवा नो एइ अदुवा एहिइ अदुवा नो एहिइ, इत्थवि आगए इत्थवि नो आगए इत्थवि एति इत्थवि नो एति इत्थवि एहिति इत्थवि नो एहिति॥ अणुवीइ निट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा, तंजहा-एगवयणं १ दुवयणं २ बहुव० ३ इत्थि० ४ पुरिस० ५ नपुंसगवयणं ६ अज्झत्थव० ७ उवणीयवयणं ८ अवणीयवयणं ९ उवणीयअवणीयव० १० अवणीयउवणीय व० ११ तीयव० १२ पडुप्पन्नव० १३ अणागयव० १४ पच्चक्खवयणं १५ परुक्खव० १६ से एगवयणं वइस्सामीति एगवयणं वइज्जा जाव परुक्खवयणं वइस्सामीति परुक्खवयणं वइज्जा, इत्थी वेस पुरिसो वेस, नपुंसगं वेस एयं वा चेयं अन्नं वा चेयं अणुवीइ निट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा, इच्चेयाइं आययणाइं उवातिकम्म॥ अह भिक्खू जाणिज्जा चत्तारि भासज्जायाइं, तंजहा-सच्चमेगं पढमं भासज्जायं १ बीयं मोसं २ तइयं सच्चामोसं ३ जं नेव सच्चं नेव मोसं नेव सच्चामोसं असच्चामोसं नाम तं चउत्थं

भासज्जायं ४॥ से बेमि जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे अणागया अरहंता भगवंतो सव्वे ते एयाणि चेव चत्तारि भासज्जायाइं भासिंसु वा भासंति वा भासिस्संति वा पन्नविंसु वा ३, सव्वाइं च णं एयाइं अचित्ताणि वण्णमंताणि गंधमंताणि, रसमंताणि फासमंताणि चओवचइयाइं, विप्परिणामधम्माइं भवंतीति अक्खायाइं॥१३२॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा इमान् वागाचारान् श्रुत्वा निशम्य इमान् अनाचारान् अनाचीर्ण पूर्वान् जानीयात् ये क्रोधाद् वा वाच विप्रयुजन्ति, ये मानाद् वा वाचं विप्रयुञ्जन्ति, ये मायया वा वाचं विप्रयुञ्जन्ति, ये लोभाद् वा वाच विप्रयुंजन्ति, जानाना वा परुषं वदन्ति, अजानाना वा परुषं वदन्ति, सर्वं चैतत् सावद्यं वर्जयेत् विवेकमादाय, ध्रुव चैतत् जानीयात् अध्रुवं चैतत् जानीयात्॥ अशन वा ४ लब्ध्वा नो लब्ध्वा, भुंक्त्वा नो भुंक्त्वा अथवा आगतः अथवा नो आगत·, अथवा एति, अथवा नो एति अथवा एष्यति अथवा न एष्यति, अत्रापि आगत· अत्रापि नो आगत , अत्रापि एति अत्रापि नो एति अत्रापि एष्यति अत्रापि नो एष्यति। अनुविचिन्त्य निष्ठाभाषी समित्या-(समतया वा) संयतः भाषा भाषेत। तद्यथा-एकवचनं (१) द्विवचनं (२) बहुवचनं (३) स्त्रीवचनम् (४) पुरुषवचनम् (५) नपुसकवचनम् (६) अध्यात्मवचनम् (७) उपनीतवचनम् (८) अपनीतवचनम् (९) उपनीतापनीतवचनम् (१०) अपनीतोपनीतवचनम् (११) अतीतवचनम् (१२) प्रत्युत्पन्नवचनम् (१३) अनागतवचनम् (१४) प्रत्यक्षवचनम् (१५) परोक्षवचनम् (१६) स एकवचनं वदिष्यामीति एकवचनम् वदेत यावत् परोक्षवचनं वदिष्यामीति परोक्षवचनं वदेत्, स्त्री वा एषा, पुरुषो वा एषः नपुसक वा एतत्, एतद् वा चैतद् अन्यद् वा चैतत्, अनुविचिन्त्य निष्ठाभाषी समित्या संयत भाषा भाषेत, इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य। अथ भिक्षुः जानीयात् चत्वारि भाषाजातानि तद्यथा-सत्यमेक प्रथमं भाषाजातम् (१) द्वितीया मृषा (२) तृतीया सत्यामृषा (३) या नैव सत्या नैव मृषा नैव सत्यामृषा असत्यामृषा नाम तत् चतुर्थं भाषाजातम् (४) अथ ब्रवीमि ये अतीता ते प्रत्युत्पन्ना ये अनागता अर्हंतो भगवन्त· सर्वे ते एतानि चैव चत्वारि भाषाजातानि अभाषन्त वा भाषन्ते वा भाषिष्यन्ते वा व्यजिज्ञपन् वा ३ सर्वाणि च एतानि अचित्तानि, वर्णवन्ति, गन्धवन्ति, रसवन्ति, स्पर्शवन्ति चयोपचयिकानि विपरिणामधर्माणि भवन्तीति आख्यातानि।

पदार्थ-से-वह। भिक्खू वा २-साधु या साध्वी। इमाइं-इन कहे जाने वाले। वयायाराइं-वाणी के आचार को। सुच्चा-सुन कर। निसम्म-विचार कर। इमाइं-इन कहे जाने वाले। अणायाराइं-अनाचारो को। अणारियपुव्वाइं-पूर्व साधुओ ने जिनका आचरण नहीं किया उसके सम्बन्ध मे। जाणिज्जा-जाने-जैसे कि-। जे-जो। कोहा वा-क्रोध से। वाय-वचन का। विउंजंति-प्रयोग करते हैं। जे माणा वा०-जो मानपूर्वक वचन

बोलते हैं तथा। जे मायाए वा॰-जो माया-छलपूर्वक बोलते हैं। **जे लोभा वा**-जो लोभ के वशीभूत होकर। **वायं विउजंति**-वचन का प्रयोग करते है। **वा**-अथवा। **जाणओ वा फरुस वयति**-जान कर कठोर वचन बोलते हैं, अर्थात् किसी के दोष को जानते हुए उसे उद्‌घाटन करने के लिए कठोर भाषा का प्रयोग करते है। **वा**-अथवा। **अजाणओ**-नहीं जानते हुए। **फरुसंक॰**-कठोर वचन बोलते है। **सव्व चेयं**-यह सब। **सावज्जं**-सावद्य-हिंसा-पाप युक्त वचन है अत । **विवेगमायाए**-विवेक को ग्रहण करक अर्थात् विवेक युक्त होकर। **वज्जिज्जा**-साधु इन सावद्य वचनो को छोड़ दे अर्थात् सावद्य भाषा न बोले, तथा। **धुवं चेय जाणिज्जा**-यह पदार्थ ध्रुव है-निश्चित है ऐसा जाने। **च**-और । **अधुव चेय जाणिज्जा**-यह पदार्थ अध्रुव अनिश्चित है ऐसा जाने। **असण वा ४**-यह साधु अशनादि चतुर्विध आहार। **लभिय**-लेकर आएगा या। **नो लभिय**-लेकर नहीं आएगा। **भुंजिय**-कोई साधु आहार के लिए गया हो और किसी कारणवश यदि उसे विलम्ब हो गया हो तो अन्य साधु यह न कहे कि वह रास्ते मे ही आहार करके आएगा या। **नो भुंजिय**-बिना आहार किए ही आएगा। **अदुवा**-अथवा। **आगओ**-राजा आदि पीछे आए थे। **अदुवा**-अथवा। **नो आगओ**-नहीं आए थे। **अदुवा**-अथवा। **एइ**-राजा आदि आता है। **अदुवा**-अथवा। **नो एइ**-नहीं आ रहा है। **अदुवा**-अथवा। **एहिइ**-आएगा। **अदुवा**-अथवा। **नो एहिइ**-नहीं आएगा इस प्रकार की निश्चित भाषा न बोले। अब क्षेत्र के विषय मे कहते हैं- । **इत्थवि**-अमुक व्यक्ति यहा पर ही। **आगए**-आया था। **इत्थवि**-यहा पर। **नो आगए**-नहीं आया था। **इत्थवि**-यहा पर। **एइ**-आता है। **इत्थवि**-यहा पर। **नो एति**-नहीं आता है। **इत्थवि**-यहा पर ही। **एहिति**-आएगा। **इत्थवि नो एहिति**-यहा पर नहीं आएगा, इस प्रकार की निश्चय रूप भाषा न बोले किन्तु। **अणुवीइ**-विचार कर। **निट्ठाभासी**-निश्चय पूर्वक बोलने वाला अर्थात् निश्चय किए जाने पर बोलने वाला। **समियाए**-भाषा समिति से युक्त। **सजए**-साधु। **भास भासिज्जा**-भाषा को बोले। **तजहा**-जैसे कि। **एगवयणं १**-एक वचन। **दुवयणं २**-द्विवचन। **बहुव॰ ३**-बहुवचन। **इत्थि॰ ४**-स्त्री वचन। **पुरि॰-५**-पुरुष वचन। **नपुंसगवयणं ६**-नपुसक वचन। **अज्झत्थव॰ ७**-अध्यात्म वचन। **उवणीयवयणं ८**-उपनीत-प्रशसाकारी वचन। **अवणीयवयणं ९**-अपनीत-निन्दाकारी वचन। **उवणीयअवणीयव॰ १०**-प्रशसा और निन्दा युक्त वचन। **अवणीयउवणीय व॰ ११**-निन्दा और प्रशसायुक्त वचन। **तीयव॰ १२**-अतीत काल का वचन। **पडुप्पन्नव॰ १३**-वर्तमान काल का वचन। **अणागयव॰ १४**-अनागत काल का वचन। **पच्चक्खवयण १५**-प्रत्यक्ष वचन। **परोक्खव॰- १६**-और परोक्ष वचन आदि को जान कर। **से**-वह-साधु। **एगवयण**-एक वचन। **वइस्सामीति**-बोलूगा। ऐसा विचार करके। **एगवयण**-एक वचन। **वइज्जा**-बोले **जाव**-यावत्। **परुक्खवयण**-परोक्ष वचन। **वइस्सामीति**-बोलूगा ऐसा विचार करके। **परुक्खवयण**-परोक्ष वचन। **वइज्जा**-बोले। **इत्थि वेस**-यह स्त्री है। **पुरिसो वेस**-यह पुरुष है। **नपुंसग वेस**-यह नपुसक है। **एय वा**-यह स्त्री ही है अथवा। **च**-और। **एयं**-यह। **अन्न वा**-और कोई है। **च**-पुन । **एयं**-यह। **अणुवीइ**-विचार कर। **निट्ठाभासी**-निश्चित एकान्त भाषा बोलने वाला। **संजए**-साधु। **समियाए**-भाषा समिति युक्त। **भासं**-भाषा को। **भासिज्जा**-बोले। **इच्चेयाइं**-ये पूर्वोक्त तथा आगे कहे जाने वाले। **आययणाइं**-भाषा के दोष स्थानो को। **उवातिकम्म**-अति क्रम करके-उल्लघन करके भाषण करे। **अह भिक्खू**-अथ भिक्षु। **चत्तारि**-चार प्रकार की। **भासज्जायं**-भाषाओ को। **जाणिज्जा**-जानने का यत्न करे। **तंजहा**-जैसे कि। **सच्चमेगं पढमं भासजायं**-पहली सत्य भाषा है। **बीयं मोसं**-दूसरी मृषा भाषा है। **तइयं सच्चामोसं**-तीसरी सत्य-मृषा अर्थात् मिश्र भाषा है। **जं**-जो भाषा। **नेव**-न। **सच्चं**-सत्य है। **नेव मोसं**-न मृषा है, तथा। **नेव**-न। **सच्चामोसं**-

सत्य और मृषा है। **तं**-उसका। **चउत्थं नाम**-चौथी। **असच्चामोसं**-असत्यामृषा अर्थात् व्यवहार। **भासज्जायं**-भाषा है। **से बेमि**-यह जो कुछ मै कह रहा हू यह सब। **जे**-जो। **अईया**-अतीत काल मे। **जे य**-और जो। **पडुप्पन्ना**-वर्तमान काल मे तथा। **जे**-जो। **अणागया**-अनागत-भविष्यत् काल में। **अरहता भगवन्तो**-अरिहन्त भगवान हो चुके है, है या होगे। **ते सव्वे**-वे सब। **एयाणि चेव चत्तारि भासज्जायाइं**-यही चार प्रकार की भाषाएं। **भासिसु**-बोलते थे। **भासति**-बोलते हैं और। **भासिस्सति वा**-बोलेगे, तथा इन्हीं भाषाओ की। **पन्नविसु वा ३**-उन्होने प्ररूपणा की, प्ररूपणा करते है और करेगे। **सव्वाइ च ण एयाइं**-ये सभी प्रकार की भाषाए। **अचित्ताइ**-अचित्त है। **वण्णमताणि**-वर्ण युक्त। **गन्धमताणि**-गन्ध युक्त। **रसमताणि**-रस युक्त और। **फासमंताणि**-स्पर्श युक्त है, अर्थात् सभी प्रकार के भाषा द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श युक्त है। **चओवचयाइं**-उपचय और अपचय वाले अर्थात् मिलने और बिछड़ने वाले हैं तथा ये। **विप्परिणामधम्माइ**-विविध प्रकार के परिणाम-धर्म वाले। **भवतीति**-होते है ऐसा। **अक्खायाइ**-तीर्थंकरो ने कहा है।

मूलार्थ-संयमशील साधु और साध्वी वचन के आचार को सुन कर और हृदय में धारण करके वचन अनाचार को (जिनका पूर्व के मुनियो ने आचरण नहीं किया) जानने का प्रयत्न करे। जो मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ से वचन बोलते है अर्थात् इनके वशीभूत होकर भाषण करते हैं, तथा जो किसी के दोष को जानते हुए अथवा न जानते हुए भी उसके मर्म को उदघाटन करने के लिए कठोर वचन बोलते है ऐसी भाषा सावद्य है, अत विवेकशील साधु इसे छोड दे। और वह निश्चयात्मक भाषा भी न बोले, जैसे कि-कल अवश्य ही वर्षा होगी, अथवा नहीं होगी। यदि कोई साधु आहार के लिए गया हो, तब अन्य साधु उसके लिए ऐसा न कहे कि वह साधु अशनादि चतुर्विध आहार अवश्य लेकर आएगा, अथवा बिना लिए ही आएगा। और यदि किसी साधु को भिक्षार्थ गए हुए किसी कारण से कुछ विलम्ब हो गया हो, तो सयमशील साधु अन्य साधुओ के प्रति इस प्रकार भी न कहे कि वह साधु जो कि भिक्षा के लिए गया हुआ है, वहा पर भोजन करके आएगा अथवा आहार किए बिना ही आएगा। इस तरह भूतकाल की किसी बात का जब तक निश्चय न हो जाए तब तक निश्चयात्मक वचन न बोले। तथा-राजा अवश्य आया था, अथवा (वर्तमानकाल मे) आता है अथवा [भविष्यत् काल में] अवश्य आएगा, अथवा तीनो काल मे न आया था, न आता है और न आएगा, इस प्रकार के निश्चयात्मक वचन भी न बोले। जिस प्रकार काल के विषय मे कहा गया है उसी प्रकार क्षेत्र के विषय मे भी समझना चाहिए। यथा पीछे अमुक व्यक्ति अमुक नगरादि मे आया था, अथवा नहीं आया था, इसी प्रकार अमुक व्यक्ति आता है या नही आता है, और अमुक व्यक्ति अमुक नगरादि में आएगा अथवा नहीं आएगा। तात्पर्य यह है कि जिस विषय मे वस्तु तत्त्व का पूर्णतया निश्चय न हो उसके विषय मे निश्चयात्मक वचन साधु को नहीं बोलना चाहिए। अत विचार पूर्वक निश्चय करके भाषा समिति से समित हुआ साधु, भाषा का व्यवहार करे अर्थात् भाषा समिति का ध्यान रखता हुआ संयत भाषा में बोले। एक वचन, द्विवचन और बहुवचन, तथा स्त्रीलिग वचन, पुरुष लिंग वचन और नपुंसक लिंग वचन, एवं अध्यात्म वचन, प्रशसा युक्त वचन, निन्दायुक्त वचन, निन्दा और प्रशंसा युक्त वचन, भूतकाल सम्बन्धि वचन, वर्तमानकाल सम्बन्धि वचन और भविष्यतकाल सम्बन्धि वचन, तथा

प्रत्यक्ष और परोक्ष वचन आदि को भली-भाति जानकर बोले। यदि उसे एक वचन बोलना हो तो वह एक वचन बोले यावत् परोक्ष वचन पर्यन्त जिस वचन को बोलना हो उसी को बोले। तथा स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद अथवा स्त्री-पुरुष और नपुसक वेद या जब तक निश्चय न हो, तब तक निश्चयात्मक वचन न बोले, जैसे कि– यह स्त्री ही है इत्यादि। अत विचार पूर्वक भाषा समिति से युक्त हुआ साधु भाषा के दोषो को त्याग कर सभाषण करे।

साधु को भाषा के चारों भेदो को भी जानना चाहिए, १ सत्य भाषा २ मृषा-असत्य भाषा, ३ मिश्र भाषा और ४ असत्यामृषा-जो न सत्य है, न असत्य और न सत्यासत्य किन्तु असत्यामृषा या व्यवहार भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। जो कुछ मैं कहता हू-भूतकाल मे जो अनन्त तीर्थंकर हो चुके है और वर्तमान काल में जो तीर्थंकर है, तथा भविष्यत् काल मे जो तीर्थंकर होगे, उन सब ने इसी प्रकार से चार तरह की भाषा का वर्णन किया है, करते है और करेगे। तथा ये सब भाषा के पुद्गल अचित्त है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले है, तथा उपचय और अपचय अर्थात् मिलने और बिछुड़ने वाले एव विविध प्रकार के परिणामो को धारण करने वाले होते है। ऐसा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर देवो ने प्रतिपादन किया है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि साधु को भाषा शास्त्र का पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे व्याकरण का भली-भाति बोध होना चाहिए। जिससे वह बोलते समय विभक्ति, लिग एव वचन आदि की गलती न कर सके। इससे स्पष्ट होता है कि साधु के जीवन मे आध्यात्मिक ज्ञान के साथ व्यवहारिक शिक्षा का भी महत्त्व है। साधक को जिस भाषा मे अपने विचार अभिव्यक्त करने हैं, उसे उस भाषा का परिज्ञान होना जरूरी है। यदि उसे उस भाषा का ठीक तरह से बोध नहीं है तो वह बोलते समय अनेक गलतिया कर सकता है और कभी-कभी उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा उसके अभिप्राय से विरुद्ध अर्थ को भी प्रकट कर सकती है। इसलिए साधक को भाषा का इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिए जिससे वह अपने भावो को स्पष्ट एव शुद्ध रूप से अभिव्यक्त कर सके।

भाषा के सम्बन्ध मे दूसरी बात यह है कि साधु-साध्वी को निश्चयात्मक एव सदिग्ध भाषा नही बोलनी चाहिए। इसका कारण यह है कि कभी परिस्थितिवश वह कार्य उसी रूप मे नहीं हुआ तो साधु के दूसरे महाव्रत मे दोष लगेगा। इसी तरह जिस बात के विषय मे निश्चित ज्ञान नहीं है उसे प्रकट करने से भी दूसरे महाव्रत मे दोष लगता है। अत साधु को बोलते समय पूर्णतया विवेक एव सावधानी रखनी चाहिए।

तीसरी बात यह है कि मनुष्य क्रोध, मान, माया और लोभ आदि विकारो के वश भी झूठ बोलता है। जिस समय मनुष्य के मन मे क्रोध की आग धधकती है उस समय वह यह भूल जाता है कि मुझे क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए। इसी तरह जब मनुष्य के जीवन मे अभिमान, माया एव लोभ का अन्धड चलता है तो उस समय भी भाषा के दोष एव गुणो का सही ज्ञान नहीं रख सकता और उन मनोविकारो के वश वह असत्य भाषा का भी प्रयोग कर देता है। इसलिए साधु को सदा इन कषायो से ऊपर उठकर बोलना चाहिए। यदि कभी इनका उदय हो रहा हो तो साधु को उस समय मौन

रहना चाहिए। उसे पहले उदयमान कषायो को उपशान्त करके फिर बोलना चाहिए।

भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे यहा कुछ बताना अनुचित एव अप्रासगिक नहीं होगा। साधारणतया मुह द्वारा बोले जाने वाले शब्दो के समूह को भाषा कहते हैं। जैन आगमो मे शब्द को पुद्गल माना गया है। कुछ भारतीय दर्शन शब्द को आकाश का गुण मानते हैं। परन्तु यह मान्यता उचित प्रतीत नहीं होती। क्योकि आकाश अरूपी है, अत· उसका गुण भी अरूपी ही होगा। परन्तु, शब्द रूपी है, इस लिए वह अरुपी आकाश का गुण नहीं हो मकता। और आज वैज्ञानिक साधनो ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि शब्द आकाश का गुण नहीं, प्रत्युत स्वय एक मूर्त पदार्थ है। वह पुद्गल के द्वारा रोका जाता है, ग्रहण किया जाता है और स्थानान्तर मे भी भेजा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शब्द आकाश का गुण नहीं, प्रत्युत भाषा वर्गणा के पुद्गलो का समूह है। अत भाषा वर्गणा के पुद्गल अचित्त एव वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त हैं तथा परिवर्तनशील हैं।

व्यक्ति द्वारा बोली जाने वाली भाषा चार प्रकार की मानी गई है- १ सत्य भाषा, २ असत्य भाषा, ३ मिश्र भाषा (जिसमे सत्य और असत्य की मिलावट हो) और ४ असत्यामृषा (जिस भाषा मे न झूठ है और न सत्य है, जिसे व्यवहार भाषा कहते हैं)। इसमे साधु पहली और चौथी अर्थात् सत्य एव व्यवहार भाषा का प्रयोग कर सकता है। परन्तु, उसे दूसरी और तीसरी अर्थात् असत्य एव मिश्र भाषा का प्रयोग करना नहीं कल्पता।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि साधु को भाषा के दोषो का परित्याग करके विवेक-पूर्वक बोलना चाहिए। भाषा के दोषो से बचने के लिए सूत्रकार ने १६ प्रकार के वचनो का उल्लेख किया है। इसमे प्रयुक्त द्विवचन सस्कृत व्याकरण के अनुसार रखा गया है। क्योंकि प्राकृत मे एक वचन और बहुवचन ही होता है। द्विवचन का प्रयोग सस्कृत मे होता है। अत. उक्त भाषा को ध्यान मे रखकर ही सूत्रकार ने द्विवचन शब्द का उल्लेख किया हो ऐसा प्रतीत होता है। ये वचनो के १६ प्रकार इस तरह से हैं-

१ एकवचन-(सस्कृत भाषा मे)- वृक्षः, घटः, पट. इत्यादि।

(प्राकृत भाषा मे)- वच्छो-रुक्खो, घडो, पडो इत्यादि

२ द्विवचन-वृक्षौ, घटौ, पटौ इत्यादि, प्राकृत मे द्विवचन होता ही नहीं।

३ बहुवचन-वृक्षा , घटा , पटा·, इत्यादि।

(प्राकृत मे)-वच्छा, रुक्खा, घडा, पडा इत्यादि।

४ स्त्रीलिग वचन- (स०) कन्या, वीणा, राजधानी इत्यादि। (प्रा०) कन्ना, वीणा, रायहाणी इत्यादि।

५ पुरुषलिग वचन-(स०) घट., पटः, कृष्णः, साधुः इत्यादि।

(प्राकृत०) घडो, पडो, कण्हो, साहू इत्यादि।

६ नपुसकलिग व०-पत्रम्, ज्ञानम्, चारित्रम्, दर्शनम् इत्यादि।

(प्राकृत मे-) पत्त, नाण, चरित्त, दसण इत्यादि।

७ अध्यात्म वचन– जिस वचन के बोलने का चित्त मे निश्चय किया गया हो, फिर उसको छिपाने के लिए अन्य वचन के बोलने का विचार होने पर भी अकस्मात् वही वचन मुख से निकले उसे अध्यात्म वचन कहते हैं। जैसे कि– कोई वणिक् रूई के व्यापार के लिए किसी अन्य ग्राम या नगर में गया, उसने अपने मन मे निश्चय किया कि मैं किसी अन्य व्यक्ति के पास रूई का नाम नही लूगा। परन्तु जब वह तृषातुर होकर किसी कूप पर पानी पीने के लिए गया तब उसने वहां पानी भरने वालो से कहा कि मुझे शीघ्र ही रूई पिलाओ। इसी का नाम अध्यात्म वचन है। वृत्तिकार भी यही लिखते हैं– "अध्यात्म-हृदयगत-तत्परिहारेणान्यद् भणिष्यतस्तदेव सहसा पतितम्।"

८ उपनीत वचन– प्रशसा युक्त वचन को उपनीत वचन कहते हैं, यथा-यह स्त्री रूपवती है इत्यादि।

९ अपनीत व०-निन्दा युक्त वचन अपनीत वचन है, यथा-यह स्त्री कितनी कुरूपा-भद्दी है।

१० उपनीतापनीत व०– पहले प्रशसा करना और बाद मे निन्दा करना इसे उपनीतापनीत वचन कहते हैं, यथा– यह स्त्री सुरूपा-रूपवती तो है परन्तु व्यभिचारिणी है।

११ अपनीतोपनीत व०-पहले निन्दा और पीछे प्रशसा युक्त वचन अपनीतोपनीत वचन है। यथा–यह स्त्री रूप हीन होने पर भी सदाचारिणी है।

१२ अतीत काल वचन-भूतकाल के बोधक वचन को अतीतकाल वचन कहते हैं। यथा-(घट कृतवान् देवदत्त) देवदत्त ने घडे को बनाया था।

१३ वर्तमान काल वचन–वर्तमान काल का बोधक वचन, यथा–करोति, पठति–करता है, पढता है इत्यादि।

१४ अनागत काल वचन–भविष्यत् काल का बोधक वचन, यथा–करिष्यति, पठिष्यति, गमिष्यति– करेगा, पढेगा और जाएगा इत्यादि।

१५ प्रत्यक्ष वचन–प्रत्यक्ष के बोधक वचन को प्रत्यक्ष वचन कहते हैं, यथा-देवदत्तोऽयम्-यह देवदत्त है, इत्यादि।

१६ परोक्ष वचन–परोक्ष का बोधक वचन यथा–स देवदत्त:-वह देवदत्त।

अब सूत्रकार शब्द का कृतकत्व सिद्ध करते हुए कहते हैं–

मूलम्–से भिक्खू वा० से जं पुण जाणिज्जा पुव्विं भासा अभासा भासिज्जमाणी भासा भासा भासासमयवीइक्कंता च णं भासिया भासा अभासा।

से भिक्खू वा० से जं पुण जाणिज्जा जा य भासा सच्चा १ जा य भासा मोसा २ जा य भासा सच्चामोसा ३ जा य भासा असच्चाऽमोसा ४ तहप्पगारं

भासं सावज्जं सकिरियं कक्कसं कडुयं निट्ठुरं फरुसं अण्हयकरिं छेयणकरिं भेयणकरिं परियावणकरिं उद्दवणकरिं भूओवघाइयं अभिकंख नो भासिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा, जा य भासा सच्चा सुहुमा जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूओवघाइयं अभिकंख भासं भासिज्जा॥१३३॥

छाया- स भिक्षुर्वा० स यत् पुन. जानीयात् पूर्वं भाषा अभाषा भाष्यमाणा भाषा भाषा भाषासमयव्यतिक्रान्ता च भाषिता भाषा अभाषा।

स भिक्षुर्वा० स यत् पुन जानीयात् या च भाषा सत्या १ या च भाषा मृषा २ या च भाषा सत्यामृषा ३ या च भाषा असत्याऽमृषा ४ तथाप्रकारा भाषां सावद्यां सक्रिया कर्कशा कटुकां निष्ठुरां परुषा, आश्रवकरीं छेदनकरी भेदनकरीं परितापनकरीं, अपद्रावणकरी भूतोपघातिका अभिकाक्ष्य नो भाषेत, स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् पुन. जानीयात् या च भाषा सत्या सूक्ष्मा या च भाषा असत्याऽमृषा तथाप्रकारा भाषा असावद्यां यावत् अभूतोपघातिकाम् अभिकाक्ष्य भाषा भाषेत।

पदार्थ-से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। से-वह। ज-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-जाने। पुव्वि भासा-भाषण करने से पूर्व जो भाषा द्रव्य वर्गणा के पुद्गल एकत्र हुए है वे भाषा के योग्य होने पर भी। अभासा-अभाषा-भाषा नहीं है किन्तु। भासिज्जमाणी भासा-भाषण करते हुए ही वह। भासा-भाषा होती है। च-फिर। णं-वाक्यालकार मे है। भासा समयवीइक्कता-भाषा समय से व्यतिक्रान्त हुई। भासिया भासा-भाषण के पश्चात् वह भाषा। अभासा-अभाषा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि भूत और भविष्यत् काल को छोड़कर केवल वर्तमान काल मे बोली जाने वाली भाषावर्गणा के पुद्गलो को ही भाषा कह सकते है। अब भाषण करने के योग्य तथा अयोग्य भाषा के विषय मे कहते है। से भिक्खू वा०-यह साधु या साध्वी। से जं पुण जाणिज्जा-फिर इस प्रकार जाने। जा य भासा-और जो भाषा। सच्चा-सत्य है। जा य भासा-तथा जो भाषा। मोसा-मृषा असत्य है। जा य भासा-और जो भाषा। सच्चामोसा-सत्यासत्य अर्थात् मिश्र है। जा य भासा-एव जो भाषा। असच्चाऽमोसा-असत्याऽमृषा अर्थात् व्यवहार भाषा है। तहप्पगारं-तथाप्रकार की। भासं-भाषा जो कि। सावज्ज-सावद्य-पाप जनक है तथा। कक्कस-कर्कश-कठोर है। सकिरिय-क्रिया युक्त है। कडुय-कटुक है- चित्त को उद्वेग करने वाली है। निट्ठुर-निष्ठुर है। फरुसं-दूसरे के मर्म को प्रकाश करने वाली है तथा। अण्हयकरिं-कर्मों का आस्रवण करने वाली है। छेयणकरि-जीवो का छेदन करने वाली है तथा। भेयणकरिं-भेदन करने वाली है। परियावणकरि-परिताप देने वाली है एव। उद्दवणकरिं-उपद्रव करने वाली है और। भूओवघाइयं-भूतोपघातिनी है-जीवो का विनाश करने वाली है। अभिकखं-मन मे विचार कर इस प्रकार की सत्य भाषा भी। नो भासिज्जा-न बोले, अर्थात् जिस भाषा से पर प्राणी का अहित होता हो तथा उसे कष्ट पहुचता हो तो ऐसी भाषा यदि सत्य भी हो तो भी साधु न बोले तथा। से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। से-वह। जं-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-यह जाने कि। जा य भासा-जो भाषा। सच्चा-सत्य है-यथार्थ है। सुहुमा-सूक्ष्म विचार परिपूर्ण। जा

य-और जो भाषा। **असच्चामोसा**-असत्याऽमृषा अर्थात् व्यवहार भाषा है। **तहप्पगारं**-तथा प्रकार की। **असावज्ज**-असावद्य-पापरहित। **जाव**-यावत्। **अभूओवघाइयं**-अभूतोपघातिनी-जीवो का विनाश करने वाली नहीं है। **अभिकंख**-विचार कर। **भासं भासिज्जा**-भाषा को बोले-सभाषण करे।

***मूलार्थ*–संयमशील साधु और साध्वी को भाषा के विषय मे यह जानना चाहिए कि भाषावर्गणा के एकत्रित हुए पुद्गल बोलने से पहले अभाषा और भाषण करते समय भाषा कहलाते हैं, और भाषण करने के पश्चात् वह बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है। साधु या साध्वी को भाषा के इन भेदो को भी जानना चाहिए कि-जो सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा है, उन में असत्य और मिश्र भाषा का व्यवहार साधु के लिए सर्वथा वर्जित है, केवल सत्य और व्यवहार भाषा ही उनके लिए आचरणीय है। उसमे भी यदि कभी सत्य भाषा भी सावद्य, सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर और कर्मों का आस्रवण करने वाली, तथा छेदन, भेदन, परिताप और उपद्रव करने वाली एव जीवो का घात करने वाली हो तो विचारशील साधु ऐसी सत्य भाषा का भी प्रयोग न करे, किन्तु सयमशील साधु या साध्वी उसी सत्य और व्यवहार भाषा-जो कि पापरहित यावत् जीवोपघातक नहीं है-का ही विवेक पूर्वक व्यवहार करे। अर्थात् वह निर्दोष भाषा बोले।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे भाषा के सम्बन्ध मे दो बाते बताई गई हैं- १ भाषा की अनित्यता और २-कौन सी भाषा बोलने के योग्य या अयोग्य है। इसमे बताया गया है कि भाषा वर्गणा के पुद्गल जब तक वाणी द्वारा मुखरित नहीं होते, तब तक उन्हे भाषा नहीं कहा जाता। और बोले जाने के बाद भी उन पुद्गलो की भाषा सज्ञा नहीं रह जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि जब तक उनका वाणी के द्वारा प्रयोग होता है तब तक भाषा वर्गणा के उन पुद्गलो को भाषा कहते हैं। अत. ताल्वादि व्यापार से वाणी के रूप मे व्यवहृत होने से पहले और बाद मे वे पुद्गल भाषा के नाम से जाने पहचाने नही जाते। जैसे चाक आदि के सहयोग से घडे के आकार को प्राप्त करने के पहले तथा घडे के टूट जाने के बाद वह मिट्टी घडा नही कहलाती है। उसी तरह भाषा वर्गणा के पुद्गल वाणी के रूप मे मुखरित होने से पहले और बाद मे भाषा नहीं कहलाते हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भाषा नित्य नही, अनित्य है। क्योकि ताल्वादि के सहयोग से भाषा वर्गणा के पुद्गलो को भाषा के आकार मे प्रस्फुटित किया जाता है। इस लिए वह कृतक है और जो पदार्थ कृतक होते हैं, वे अनित्य होते है, जैसे घट। इससे यह स्पष्ट हुआ कि भाषा भाषावर्गणा के पुद्गलो का समूह है, वर्ण, गन्ध, रस एव स्पर्श युक्त है, कृतक है और इस कारण से अनित्य है।

प्रस्तुत सूत्र मे दूसरी बात यह कही गई है कि साधु असत्य एव मिश्र भाषा का बिल्कुल प्रयोग न करे। सत्य एव व्यवहार भाषा मे भी जो सावद्य हो, सक्रिय हो, कर्कश-कठोर हो, कड़वी हो, कर्म बन्ध कराने वाली हो, मर्म का उद्घाटन करने वाली हो तो साधु को ऐसी सत्य भाषा भी नहीं बोलनी चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि साधु को सदा ऐसी सत्य एव व्यवहार भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जो निरवद्य हो, अनर्थकारी न हो। कठोर एव कडवी न हो, दूसरे के मर्म का भेदन करने वाली न हो। अत. साधु को सदा मधुर, निर्दोष एव निष्पापकारी सत्य एव व्यवहार भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

इसके लिए सूत्रकार ने जो 'सुहुमा' शब्द का प्रयोग किया है, उसका यही अर्थ है कि मुनि को कुशाग्र एव सूक्ष्म (गहरी) दृष्टि से विचार करके विवेक पूर्वक भाषा का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु, वृत्तिकार ने इसका अर्थ यह किया है कि सूक्ष्म-कुशाग्र बुद्धि से सम्यक् पर्यालोचन करने पर कभी-कभी असत्य भाषा भी सत्य का स्थान ग्रहण कर लेती है। जैसे किसी शिकारी या हिसक द्वारा मृग आदि के विषय में पूछने पर देखने पर भी सत्य को प्रकट नहीं किया जाता। यह ठीक है कि झूठ नहीं बोलना चाहिए, परन्तु साथ मे यह भी तो है कि ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जो दूसरे प्राणी के लिए कष्टकर हो। इस तरह का सत्य भी झूठ हो जाता है। परन्तु, वृत्तिकार के ये विचार कहा तक आगम से मेल खाते हैं, विद्वानो के लिए विचारणीय हैं।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्-से भिक्खू वा० पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अप्पडिसुणेमाणं नो एवं वइज्जा-होलित्ति वा गोलित्ति वा वसुलेत्ति वा कुपक्खेत्ति वा घडदासित्ति वा साणेत्ति वा तेणित्ति वा चारिएत्ति वा माइत्ति वा मुसावाइत्ति वा, एयाइं तुमं ते जणगा वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं जाव भूओवघाइयं अभिकंख नो भासिज्जा। से भिक्खू वा० पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अप्पडिसुणेमाणे एवं वइज्जा-अमुगे इ वा आउसोत्ति वा आउसंतारोत्ति वा सावगेत्ति वा उवासगेत्ति वा धम्मिएत्ति वा धम्मपिएत्ति वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा। से भिक्खू वा २ इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अप्पडिसुणेमाणिं नो एवं वइज्जा-होली इ वा गोलीति वा इत्थीगमेणं नेयव्वं॥ से भिक्खू वा २ इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अप्पडिसुणेमाणिं एवं वइज्जा-आउसोत्ति वा भइणित्ति वा भोईति वा भगवईति वा साविगेति वा उवासिएत्ति वा धम्मिएत्ति वा, धम्मप्पिएत्ति वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा॥१३४॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा पुमांसम् आमंत्रयन् आमंत्रित वा अशृण्वन्तं नैवं वदेत्-होल इति वा गोल इति वा वृषल इति वा कुपक्ष इति वा घटदास इति वा श्वेति वा स्तेन इति वा चारिक इति वा मायीति वा मृषावादीति वा एतानि त्वं तव जनकौ वा एतत्प्रकारां भाषा सावद्या सक्रियां यावद् भूतोपघातिकाम् अभिकांक्ष्य न भाषेत। स भिक्षुर्वा० पुमांस आमन्त्रयन् आमत्रितो वा अशृण्वन्त एवं वदेत्-अमुक इति वा आयुष्मन्! इति वा, आयुष्मन्त इति वा, श्रावक इति वा, उपासक इति वा, धार्मिक इति वा, धर्मप्रिय इति वा, एतत्प्रकारां भाषामसावद्यां यावत् अभिकांक्ष्य भाषेत। स भिक्षुर्वा २ स्त्रियं आमन्त्रयन् आमंत्रितां वा अशृण्वतीं नो एवं वदेत-होलीति वा, गोलीति वा, स्त्रीगमेन नेतव्यम्। स भिक्षुर्वा २ स्त्रियं

आमन्त्रयन् आमंत्रितां वा अशृण्वतीम् एवं वदेत्-आयुष्मति इति वा, भगिनि ! इति वा, भवतीति वा, भगवतीति वा, श्रावके ! इति वा, उपासिके ! इति वा, धार्मिके ! इति वा, धर्मप्रिये ! इति वा, एतत्प्रकारां भाषामसावद्यां यावद् अभिकांक्ष्य भाषेत।

पदार्थ-**से**-वह। **भिक्खू वा** २-साधु या साध्वी। **पुमं**-पुरुष को। **आमंतेमाणे**-आमन्त्रण करता हुआ। **आमंतिए वा**-अथवा आमन्त्रित किए जाने पर। **अप्पडिसुणेमाणं**-उसे सुनाई न दे तो उसे। **एवं**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न कहे। **होलिति वा**-हे होल। **गोलित्ति वा**-हे गोल ! ये दोनो शब्द अवज्ञा के सूचक है, अथवा। **वसुलेति वा**-हे वृषल ! **कुपक्खेति वा**-हे कुपक्ष ! **घडदासित्ति वा**-हे घटदास ! इस प्रकार तथा। **साणेत्ति वा**-हे श्वान-कुत्ते ! **तेणेति वा**-हे चोर ! **चारिएत्ति वा**-हे गुप्तचर ! **माईत्ति वा**-हे छलिए ! **मुसावाइत्ति वा**-हे मृषावादी-झूठ बोलने वाले ! इस प्रकार न कहे अथवा। **एयाइ तुमं**-तू ऐसा ही है या। **ते जणगा वा**-तेरे माता-पिता भी ऐसे ही है। **एयप्पगार**-इस प्रकार की। **भास**-भाषा जो कि। **सावज्ज**-पाप युक्त। **सकिरिय**-क्रिया युक्त। **जाव**-यावत्। **भूओवघाइय**-प्राणियो की विनाशक है उसे। **अभिकंख**-विचार कर-मन मे सोचकर। **नो भासिज्जा**-साधु ऐसी भाषा न बोले। **से भिक्खू वा**॰-वह साधु या साध्वी **पुमं**-पुरुष को। **आमतेमाणे**-बुलाता हुआ। **आमंतिए वा**-बुलाए जाने पर। **अप्पडिसुणेमाणे**-उसके न सुनने पर। **एव वइज्जा**-इस प्रकार कहे। **अमुगेइ वा**-हे अमुक ! अर्थात् उसका जो नाम हो उस नाम से। **आउसोत्ति वा**-अथवा हे आयुष्मन् ! इस प्रकार। **आउसतारोत्ति वा**-अथवा हे आयुष्मानो ! **सावगेत्ति वा**-हे श्रावक ! **उवासगेत्ति वा**-हे उपासक ! अथवा। **धम्मिएत्ति वा**-हे धार्मिक ! अथवा। **धम्मपिएत्ति वा**-हे धर्म प्रिय ! **एयप्पगार**-इस प्रकार की। **असावज्ज**-असावद्य-पाप रहित। **जाव**-यावत्। **अभिकख**-विचार कर । **भास**-भाषा को। **भासिज्जा**-बोले। **से भिक्खू वा**॰-वह साधु या साध्वी। **इत्थि**-स्त्री को। **आमंतेमाणे**-आमन्त्रित करता हुआ-बुलाता हुआ। **आमतिए वा**-अथवा आमन्त्रित किए जाने पर। **अप्पडिसुणेमाणि**-उसके न सुनने पर। **एवं**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न कहे यथा। **होलीइ वा**-हे होली इस प्रकार तथा। **गोलीति वा**-हे गोली इस प्रकार। **इत्थीगमेण**-पूर्वोक्त सम्पूर्ण आलापक स्त्री के सम्बन्ध मे भी। **नेयव्व**-जान लेने चाहिए। **से भिक्खू वा**॰-वह साधु या साध्वी। **इत्थि**-स्त्री को। **आमतेमाणे**-आमन्त्रित करता हुआ। **आमतिए वा**-अथवा आमन्त्रित किए जाने पर। **अप्पडिसुणेमाणि**-उसके न सुनने पर। **एवं वइज्जा**-इस प्रकार कहे, जैसे कि। **आउसोत्ति वा**-हे आयुष्मति ! **भइणिति वा**-हे भगिनि ! **भोईति वा**-हे पूज्ये ! **भगवईति वा**-हे भगवती ! तथा। **साविगेति वा**-हे श्राविके! **उवासिएत्ति वा**-हे उपासिके! **धम्मिएति वा**-हे धार्मिके ! और। **धम्मपिएति वा**-हे धर्म प्रिये ! **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **भास**-भाषा को जो कि। **असावज्ज**-असावद्य है। **जाव**-यावत्। **अभिकख**-विचार कर। **भासिज्जा**-बोले।

मूलार्थ-**संयमशील साधु या साध्वी पुरुष को आमंत्रित करते हुए उसके न सुनने पर उसे हे होल ! हे गोल ! हे वृषल ! हे कुपक्ष ! हे घटदास ! हे श्वान! हे चोर ! हे गुप्तचर ! हे कपटी ! हे मृषावादी ! तुम हो क्या और तुम्हारे माता-पिता भी इसी प्रकार के है। विवेक शील साधु इस तरह की सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा को न बोले। किन्तु सयमशील साधु अथवा साध्वी कभी किसी व्यक्ति को आमन्त्रित कर रहे हो और वह न सुने तो उसे इस प्रकार संबोधित करे-हे अमुक व्यक्ति ! हे आयुष्मन् ! हे आयुष्मानो ! हे श्रावक ! हे उपासक ! हे धार्मिक ! हे धर्म प्रिय!**

आदि इस प्रकार की निरवद्य पाप रहित भाषा को बोले। इसी तरह संयमशील साधु या साध्वी स्त्री को बुलाते समय उसके न सुनने पर उसे हे होली । हे गोली । इत्यादि जितने सम्बोधन पुरुष के प्रति ऊपर दिए गए हैं, उन नीच सबोधनों से संबोधित न करे। किन्तु उसके न सुनने पर उसे हे आयुष्मति । हे भगिनि । हे बहिन । हे पूज्य । हे भगवति । हे श्राविके । हे उपासिके ! हे धार्मिके और हे धर्मप्रिये । इत्यादि पाप रहित कोमल एव मधुर शब्दो से संबोधित करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु को किसी भी गृहस्थ के प्रति हलके एव अवज्ञापूर्ण शब्दो का प्रयोग करने का निषेध किया गया है। इसमे बताया गया है कि किसी पुरुष या स्त्री को पुकारने पर वह नहीं सुनता हो तो साधु उन्हे निम्न श्रेणी के सम्बोधनो से सम्बोधित न करे, उन्हे हे गोलक, मूर्ख आदि अलकारो से विभूषित न करे। क्योकि, इससे सुनने वाले के मन को आघात लगता है और साधु की असभ्यता एव अशिष्टता प्रकट होती है। इसलिए साधु को ऐसी सदोष भाषा नहीं बोलनी चाहिए। यदि कभी कोई बुलाने पर नहीं सुन रहा हो तो उसे मधुर, कोमल एव प्रियकारी सम्बोधनो से पुकारना चाहिए, उसे हे धर्मप्रिय, देवानुप्रिय, आर्य, श्रावक अथवा हे धर्मप्रिये, देवानुप्रिये, श्राविका आदि शब्दो से सम्बोधित करना चाहिए। इससे प्रत्येक प्राणी के मन मे हर्ष एव उल्लास पैदा होता है और साधु के प्रति भी उसकी श्रद्धा बढती है। अत. साधु-साध्वी को सदा मधुर, निर्दोष एव कोमल भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्—से भि० नो एवं वइज्जा-नभोदेवेत्ति वा गज्जदेवेत्ति वा विज्जुदेवेत्ति वा पवुट्ठदे० निवुट्ठदेवेति वा पडउ वा वासं मा वा पडउ, निप्फज्जउ वा सस्सं मा वा नि० विभाउ वा रयणी मा वा विभाउ, उदेउ वा सूरिए मा वा उदेउ, सो वा राया जयउ वा मा जयउ, नो एयप्पगारं भासं भासिज्जा। पन्नवं से भिक्खू वा २ अंतलिक्खेत्ति वा गुज्झाणुचरिएत्ति वा संमुच्छिए वा निवइए वा पओए वइज्जा वुट्ठबलाहगेत्ति वा, एयं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जइज्जासि, त्तिबेमि॥१३५॥

छाया- स भिक्षु. भिक्षुकी वा नैवं वदेत्-नभो देव इति वा, गर्जति देव इति वा विद्युद् देव इति वा प्रवृष्टो देव इति वा निवृष्टो देव इति वा, पततु वा वर्षा मा वा पततु, निष्पद्यतां वा सस्यं मा वा निष्पद्यताम्, विभातु वा रजनी मा वा विभातु, उदेतु वा सूर्यः मा वा उदेतु, स वा राजा जयतु वा मा जयतु, नो एतत्प्रकारां भाषां भाषेत्। प्रज्ञावान् स भिक्षुर्वा २ अन्तरिक्षमिति वा गुह्यानुचरितमिति वा समूर्छितो वा निपतति वा पयोदः वदेत्-वृष्टो बलाहक इति वा। एतत् खलु तस्य भिक्षो भिक्षुक्या. वा सामग्रयं यत् सर्वार्थैः समितः सहितः सदा यतेत, इति ब्रवीमि।

पदार्थ—**से भिक्खू वा २**-वह साधु अथवा साध्वी। **एवं**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न बोले, यथा-। **नभोदेवेति वा**-आकाश देव है। **गज्जदेवेत्ति वा**-गाज-बादलो की गर्जना देव है। **विज्जुदेवेत्ति वा**-विद्युत देव है या। **पवुट्ठदे०**-देव वर्षता है। **निवुट्ठदेवेत्ति वा**-निरन्तर देव बरसता है। **पडउ वा वास**-वर्षा बरसे। **मा वा पडउ**-या वर्षा न बरसे। **निप्फज्जउ वा सस्सं**-धान्य उत्पन्न हो। **मा वा निप्फज्जउ सस्सं**-धान्य उत्पन्न न हो। **विभाउ वा रयणी**-रात्रि व्यतिक्रान्त या शोभा युक्त हो। **मा वा विभाउ०**-या शोभा युक्त न हो। **उदेउ वा सूरिए**-सूर्य उदय हो। **मा वा उदेउ**-या उदय न हो। **सो वा**-वह। **राया**-राजा। **जयउ**-विजयी बने। **वा**-या। **मा जयउ**-विजयी न बने। **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **भासं**-भाषा को। **नो भासिज्जा**-न बोले। **पन्नव**-प्रज्ञावान्-बुद्धिमान्। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी यदि कारण हो तो। **अंतलिक्खेत्ति वा**-आकाश को आकाश कहे, इस प्रकार यावन्मात्र आकाश के नाम है उन नामो से आकाश को पुकारे। **गुज्झाणुचरिएत्ति वा**-या यह आकाश देवताओ के चलने का मार्ग है इस लिए इसको गुह्यानुचरित भी कहते है अथवा। **संमुच्छिए**-समूर्च्छिम जल। **निवइए**-पड़ता है या। **पयोए**-यह मेघ जल बरसाता है, ऐसा। **वइज्जा**-कहे या। **वुट्ठवलाहगेत्ति**-ऐसा कहे कि बादल बरस रहा है। **एयं खलु**-निश्चय ही यह। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु। **वा**-और। **भिक्खुणीए**-साध्वी का। **सामग्गियं**-सम्पूर्ण आचार है। **ज**-जो। **सव्वट्ठेहिं**-ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप अर्थों से युक्त और। **समिए**-पाच समितियो के। **सहिए**-सहित। **सया**-सदा। **जइज्जासि**-निरवद्य भाषा बोलने का यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—**सयमशील साधु अथवा साध्वी इस प्रकार न कहे कि आकाश देव है, गर्ज (बादल) देव है, विद्युत देव है, देव बरस रहा है, या निरन्तर बरस रहा है, एवं वर्षा बरसे या न बरसे। धान्य उत्पन्न हों या न हों। रात्रि व्यतिक्रान्त हो या न हो। सूर्य उदय हो या न हो। और यह भी न कहे कि इस राजा की विजय हो या इसकी विजय न हो। आवश्यकता पड़ने पर प्रज्ञावान् साधु अथवा साध्वी इस प्रकार बोले कि यह आकाश है, देवताओ के गमनागमन करने से इसका नाम गुह्यानुचरित भी है। यह पयोधर जल देने वाला है। समूर्च्छिम जल बरसाता है, या यह मेघ बरसता है, इत्यादि भाषा बोले। जो साधु या साध्वी साधना रूप पाच समिति तथा तीन गुप्ति से युक्त है उनका यह समग्र आचार है, अत. उसके परिपालन मे वे सदा प्रयत्नशील रहते है, इस प्रकार मै कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि सयमनिष्ठ एव विवेकशील साधु-साध्वी को अयथार्थ भाषा का भी प्रयोग नही करना चाहिए। जैसे-आकाश, बादल, बिजली, वर्षा आदि को देव कहकर नहीं पुकारना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यो मे दैवी शक्ति की कल्पना करके उन्हे देवत्व के सिहासन पर बैठाना यथार्थता से बहुत दूर है। अत इसमे असत्यता का अश भी रहता है। इस कारण साधु को उन्हे देवत्व के सम्बोधन से न पुकार कर व्यवहार में प्रचलित आकाश, बादल, बिजली या विद्युत आदि शब्दो से ही उनका उच्चारण करना चाहिए।

इसी तरह साधु-साध्वी को यह भी नहीं कहना चाहिए कि वर्षा हो या न हो, धान्य एव अन्न उत्पन्न हो या न हो, शीघ्रता से रात्रि व्यतीत होकर सूर्योदय हो या न हो, अमुक राजा विजयी हो या न हो।

क्योंकि इस तरह की भाषा बोलने से सयम मे अनेक दोष लगते हैं, अत· साधु को ऐसी सदोष भाषा का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त '**संमुच्छिए वा निवइए**' पाठ का अर्थ है– बादल सम्मूर्छिम जल बरसाता है। अर्थात् सूर्य की किरणो के ताप से समुद्र, सरिता आदि मे स्थित जल वाष्प रूप मे ऊपर उठता है और ऊपर ठण्डी हवा आदि के निमित्त से फिर पानी के रूप को प्राप्त करके बादलो के रूप मे आकाश मे घूमता है और हवा, पहाड एव बादलो की पारस्परिक टक्कर से बरसने लगता है[१]।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि साधु को सदा मधुर, प्रिय, यथार्थ एव निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ इस विषय में विशेष जानकारी करने के जिज्ञासुओ को स्थानाङ्ग सूत्र के चतुर्थ स्थान का अवलोकन करना चाहिए।

चतुर्थ अध्ययन-भाषैषणा

द्वितीय उद्देशक

साधु को कैसी भाषा बोलनी चाहिए और किस तरह की भाषा नहीं बोलनी चाहिए इसका प्रथम उद्देशक मे विचार किया गया है। अब प्रस्तुत उद्देशक में इसी विषय पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्-से भिक्खू वा २ जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा-तहावि ताइं नो एवं वइज्जा-गंडी गंडीति वा कुट्ठी कुट्ठीति वा जाव महुमेहुणीति वा हत्थच्छिन्नं वा हत्थच्छिन्नेत्ति वा एवं पायच्छिन्नेत्ति वा नक्कछिण्णेइ वा कण्णछिन्नेइ वा उट्ठछिन्नेति वा, जेयावन्ने तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं बुइया २ कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख नो भासिज्जा। से भिक्खू वा० जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा तहावि ताइं एवं वइज्जा, तंजहा-ओयंसी ओयंसित्ति वा तेयंसी तेयंसीति वा जसंसी जसंसीइ वा वच्चंसी वच्चंसीइ वा अभिरूयंसी २ पडिरूवंसी २ पासाइयं २ दरिसणिज्जं दरिसणीयत्ति वा, जेयावन्ने तहप्पगारा तहप्पगाराहिं भासाहिं बुइया २ नो कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख भासिज्जा। से भिक्खू वा० जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा, तंजहा वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा, तहावि ताइं नो एवं वइज्जा, तंजहा-सुक्कडे इ वा सुट्ठुकडे इ वा साहुकडे इ वा कल्लाणे इ वा करणिज्जे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव नो भासिज्जा। से भिक्खू वा० जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा, तंजहा-वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा, तहावि ताइं एवं वइज्जा, तंजहा-आरम्भकडे इ वा सावज्जकडे इ वा पयत्तकडे इ वा पासाइयं पासाइए वा दरिसणीयं दरिसणीयंति वा अभिरूवं अभिरूवंति वा पडिरूवं पडिरूवंति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा ॥१३६॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यथा वैककानि रूपाणि कानिचिद् रूपाणि पश्येत्

तथापि तानि नो एवं वदेत् तद्यथा गंडी गडी इति वा कुष्ठी कुष्ठीति वा यावत् मधुमेही मधुमेहीति वा हस्तछिन्नं हस्तछिन्नइति वा एव पादच्छिन्नं पादच्छिन्न इति वा नासिकाछिन्न इति वा कर्णाछिन्न इति वा ओष्ठछिन्न इति वा, ये यावन्त. तथाप्रकारा (तान्) एतत्प्रकाराभिः भाषाभिः उक्ताः २ कुप्यन्ति मानवाः ताश्चापि तथाप्रकाराभि· भाषाभिः अभिकांक्ष्य नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यथा वैककानि रूपाणि पश्येत् तथापि तानि एवं वदेत्–तद्यथा–ओजस्विन ओजस्वीति वा तेजस्विनं तेजस्वीति वा, यशस्विनं यशस्वीति वा वर्चस्विनं वर्चस्वीति वा अभिरूपवन्त अभिरूपवानिति, प्रतिरूपिणं प्रतिरूपीति वा प्रासादनीय प्रासादनीयमिति, दर्शनीयं दर्शनीयमिति वा, ये यावन्तः तथाप्रकारा. (तान्) तथाप्रकाराभि· भाषाभि उक्ता २ नो कुप्यन्ति मानवा ताश्चापि तथाप्रकारान् एततूप्रकाराभिः भाषाभि अभिकांक्ष्य भाषेत।

स भिक्षुर्वा॰ यथा वैककानि रूपाणि पश्येत् तद्यथा–वप्राणि वा यावद् गृहाणि वा तथापि तानि नो एवं वदेत् तद्यथा–सुकृतमिति वा सुष्ठुकृतमिति वा साधुकृतमिति वा, कल्याणमिति वा करणीयमिति वा, एतत् प्रकारा भाषा सावद्या यावत् नो भाषेत। स भिक्षुर्वा॰ यथा वैककानि रूपाणि पश्येत् तद्यथा वप्राणि वा यावद् गृहाणि वा तथापि तानि एवं वदेत्, तद्यथा आरम्भकृतमिति वा सावद्यकृतमिति वा प्रयत्नकृतमिति वा प्रासादीयं प्रासादीयमिति वा दर्शनीय दर्शनीयमिति वा अभिरूप अभिरूपमिति वा प्रतिरूपं वा प्रतिरूपमिति वा एतत्प्रकारा भाषां असावद्यां यावद् भाषेत।

पदार्थ–से भिक्खू वा–वह साधु या साध्वी। जहावि–यद्यपि। एगइयाइं–कई एक। रूवाइं–रूपो को। पासिज्जा–देखता है। तहावि–तथापि उन्हे देखकर। नो एवं वइज्जा–इस प्रकार न कहे। तंजहा–जैसे कि। गडी–जिसको गण्ड रोग–कण्ठमाला या पादशून्य हो गया हो उसे गण्डी कहते है उसको। गंडीति–हे गण्डी ! ऐसे कहना तथा। कुट्ठी–कुष्टी–कुष्ट रोग वाले को। कुट्ठीति वा–हे कुष्टी ! कहना। जाव–यावत्। महमेहणीति–मधुमेह के रोगी को मधुमेही कहकर पुकारना। वा–अथवा। हत्थछिन्न–जिसका हाथ कट गया हो उसे। हत्थच्छिन्नेति वा–हाथ कटा कहना। एव–इसी प्रकार। पायछिन्नेति वा–पैर कटे को पैर कटा कहना। नक्कछिन्नेइ वा–नाक कटे को नाक कटा या नकटा कहना और। कण्णछिन्नेइ वा–कान कटे को कान कटा तथा। उट्ठछिन्नेति वा–जिसके ओष्ठ का छेदन हो गया हो उसे ओष्ठ कटा कहना। जेयावन्ने–जो जितने भी। तहप्पगारा–तथा प्रकार के है उनको। एयप्पगाराहिं–इस प्रकार की। भासाहिं–भाषाओ से। बुइया–सम्बोधित करने पर। माणवा–वे पुरुष। कुप्पंति–क्रोधित हो जाते है अत । ते यावि–उनको फिर। तहप्पगाराहिं–तथा प्रकार की। भासाहिं–भाषाओ से। अभिकंख–विचार कर अर्थात् यह भाषा सदोष अथ च कष्ट प्रद है ऐसी पर्यालोचना करके। नो भासिज्जा–उन्हे ऐसी भाषा से सम्बोधित न करे।

से भिक्खू वा॰–वह साधु या साध्वी। जहावि–यद्यपि। एगइयाइं रूवाइ–कई रूपो को। पासिज्जा–देखता है। तहावि–तथापि। ताइ–उनको देखकर। एव वइज्जा–इस प्रकार कहे। तजहा–जैसे कि। ओयंसी॰–

ओजस्वी को– यदि व्याधि युक्त व्यक्ति मे कोई विशिष्ट गुण हो तो उसको सामने रखकर उसे आमन्त्रित करे और यदि वह ओजस्वी है तो उसको। **ओयसित्ति वा**-ओजस्वी कह कर सम्बोधित करे, इसी प्रकार। **तेयसी**-तेजस्वी को। **तेयंसीति वा**-तेजस्वी-तेज वाला कहे। **जसंसी**-यशस्वी-यश वाले को। **जससी इ वा**-यशस्वी कह कर पुकारें। **वच्चसी**-वर्चस्वी जिसका वचन आदेय हो अथवा लब्धि युक्त हो तो उसे। **वच्चसी इ वा**-वर्चस्वी कहे। **अभिरूयंसी**-रूप सम्पन्न को रूपवान कहे। **पडिरूवंसी**-प्रतिरूप को प्रतिरूप शब्द से बुलाए, इसी प्रकार। **पासाइयं २**-प्रसाद गुण युक्त को प्रासादीय और। **दरिसणिज्ज**-दर्शनीय को। **दरिसणीयत्ति वा**-दर्शनीय कहकर सम्बोधित करे। **जेयावन्ने**-जो जितने भी। **तहप्पगारा**-तथा प्रकार के हैं उनको। **तहप्पगाराहिं**-तथा प्रकार की। **भासाइ**-भाषाओं से। **बुइया २**-सम्बोधित करने पर वे। **माणवा**-मनुष्य। **नो कुप्पंति**-क्रोधित नहीं होते है। अत । **ते यावि**-वे भी। **तहप्पगारा**-जो कि उक्त प्रकार के हैं उनके प्रति। **एयप्पगाराहिं**-इस प्रकार की। **भासाहि**-भाषाओ द्वारा। **अभिकख**-सोच विचार कर। **भासिज्जा**-बोले।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **जहावि**-यद्यपि। **एगइयाइ**-कितने एक। **रूवाइ**-रूपो को। **पासिज्जा**-देखता है। **तजहा**-जैसे कि-। **वप्पाणि वा**-खेतो की क्यारिए। **जाव**-यावत्। **गिहाणि वा**-घर आदि। **तहावि**-तथापि। **ताइं**-उनको देखकर। **एवं**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न कहे। **तंजहा**-जैसे कि-। **सुक्कडेइ वा**-अमुक वस्तु को देखकर यह अच्छी बनी है। **सुट्ठुकडेइ वा**-यह बहुत सुन्दर बनी है। **साहुकडेइ वा**-साधु कृत है। **कल्लाणे इ वा**-यह कल्याणकारी है। **करणिज्जे इ वा**-यह करने योग्य है इत्यादि। **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **भास**-भाषा जो कि। **सावज्ज**-सावद्य है। **जाव**-यावत्। **नो भासिज्जा**-न बोले। **से भिक्खू वा**-वह साधु या साध्वी। **जहावि**-यद्यपि। **एगइयाइ**-कितने एक। **रूवाइं**-रूपो को। **पासिज्जा**-देखता है। **तंजहा**-जैसे कि-। **वप्पाणि वा**-खेतो की क्यारिए। **जाव**-यावत्। **गिहाणि वा**-घर आदि। **तहावि**-तथापि। **ताइ**-उनको देखकर। **एववइज्जा**-इस प्रकार कहे। **तंजहा**-जैसे कि-। **आरम्भकडेइ वा**-यह आरम्भ कृत है। **सावज्जकडे इ वा**-यह सावद्य कृत है, तथा। **पयत्तकडे इ वा**-यह कार्य प्रयत्नकृत-प्रयत्नसाध्य है, इसी प्रकार। **पासाइयं**-प्रासादीय को। **पासाइए वा**-प्रासादीय और। **दरिसणिज्ज**-दर्शनीय को। **दरिसणीयंति वा**-दर्शनीय कहे तथा। **अभिरूव**-अभिरूप-रूप सम्पन्न को। **अभिरूवंति वा**-अभिरूप और। **पडिरूव**-प्रतिरूप को। **पडिरूवंति वा**-प्रतिरूप बतलावे। **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **भास**-भाषा को। **असावज्ज**-असावद्य। **जाव**-यावत् निर्दोष है। **भासिज्जा**-बोले।

_मूलार्थ_-संयमशील साधु और साध्वी किसी रोगी आदि को देखकर एसा न कहे– हे गंडी! हे कुष्टी ! हे मधुमेही ! इत्यादि इसी प्रकार यावत् मात्र रोग है उनका नाम लेकर उस व्यक्ति को-जो कि उन रोगों से पीड़ित है:– आमन्त्रित न करे। इसी प्रकार जिसका हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ आदि कटे हुए हो, उसे कटे हाथ वाला, लंगड़ा, कटे कान वाला, नकटा या कटे हुए ओष्ठ वाला आदि शब्दों से संबोधित न करे। इस प्रकार की भाषा के बोलने से लोग कुपित हो सकते हैं, उनके मन को आघात लगता है, अतः भाषा समिति का विवेक रखने वाला साधु ऐसी भाषा का प्रयोग न करे। परन्तु, यदि किसी व्यक्ति में कोई गुण हो तो उसे उस गुण से सम्बोधित करके बुला सकता है। जैसे कि-हे ओजस्वी, हे तेजस्वी, हे यशस्वी, हे वर्चस्वी, हे अभिरूप, हे प्रतिरूप, हे प्रेक्षणीय और हे दर्शनीय इत्यादि। इस प्रकार की निरवद्य भाषा के प्रयोग से सुनने वाले मनुष्य

के मन मे क्रोध नहीं, प्रत्युत हर्ष भाव पैदा होता है, अत· वह ऐसी मधुर एवं निर्दोष भाषा बोल सकता है। इसी प्रकार साधु अथवा साध्वी बावड़ी, कुए, खेतों के क्यारे यावत् घरो को देखकर उनके सम्बन्ध मे इस प्रकार न कहे कि यह अच्छा बना हुआ है, बहुत सन्दर बना हुआ है, इस पर अच्छा कार्य किया गया है, यह कल्याणकारी है और यह कार्य करने योग्य है। इस प्रकार की भाषा से सावद्य क्रिया का अनुमोदन होता है अत साधु इस प्रकार की सावद्य भाषा न बोले। किन्तु उन बावड़ी यावत् घरो को देखकर इस प्रकार कहे कि यह आरम्भ कृत है, सावद्य है और यह प्रयत्न साध्य है, तथा यह देखने योग्य है, रूपसम्पन्न है और प्रतिरूप है। इस प्रकार की निरवद्य भाषा का प्रयोग करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति गण्डी, कुष्ट (कोढ) और मधुमेह इत्यादि भयकर रोगो से पीडित हो या उसका हाथ, पैर, नाक, कान ओष्ठ आदि कोई अग कटा हुआ हो, तो साधु को उसे उस रोग एव कटे हुए अगो के नाम से सम्बोधित करके नहीं बुलाना चाहिए। जैसे कि-कोढ के रोगी को कोढी , अन्धे को अन्धा या नाक कटे हुए व्यक्ति को नकटा कह कर पुकारना साधु को नहीं कल्पता। क्योकि, पहले तो वह उक्त बीमारियो एव अगोपागो की हीनता के कारण परेशान, दु.खी एव चिन्तित है। फिर उसे उस रूप मे सम्बोधित करने से उसके मन को अवश्य ही आघात पहुचेगा और उसके मन मे साधु के प्रति दुर्भावना जागृत होगी। वह यह भी सोच सकता है कि यह साधु कितना असभ्य एव असस्कृत है कि साधना के पथ पर गतिशील होने के पश्चात् भी इसकी दूसरे व्यक्ति को चिढाने, परेशान करने एव मजाक उडाने की दुष्ट मनोवृत्ति नही गई है। वस्तुत वेश के साथ अभी इसके अन्तर जीवन का परिवर्तन नहीं हुआ है। इससे उसके मन मे साधु से प्रतिशोध लेने की भावना भी जागृत हो सकती है। अस्तु साधु को किसी के मन को चुभने वाली भाषा भी नही बोलनी चाहिए। इससे दूसरे व्यक्ति की मानसिक हिसा होती है, इसलिए साधु को प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह रोगी हो, अपग हो, अगहीन हो सदा प्रिय एव मधुर सम्बोधनो से सम्बोधित करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे गण्ड, कुष्ट और मधुमेह तीन रोगो का नाम निर्देश किया गया है और '**कुट्ठीति वा जाव**' पद मे यावत् शब्द से उन रोगो की ओर भी इशारा कर दिया है जिसका उल्लेख आचाराग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के धूताध्ययन मे किया गया है। ये तीनो असाध्य रोग माने गए हैं। गण्ड-यह वात प्रधान रोग होता है, इस रोग का आक्रमण होने पर मनुष्य के पैर एव गिट्टे मे सूजन आ जाता है और कोढ एव मधुमेह का रोग तो असाध्य रोग के रूप मे प्रसिद्ध ही है। अत. साधु को इन असाध्य रोगो से पीडित एव अगहीन व्यक्ति को पापकारी एव मर्म भेदी शब्दो से सम्बोधित नहीं करना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्—से भिक्खू वा २ असणं वा ४ उवक्खडियं तहाविहं नो एवं वइज्जा, तं०-सुकडेत्ति वा सुट्ठुकडे इ वा साहुकडे इ वा कल्लाणे इ वा करणिज्जे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव नो भासिज्जा। से भिक्खू वा २ असणं वा ४ उवक्खडियं पेहाय एवं वइज्जा-तं० आरंभकडेत्ति वा सावज्जकडेत्ति वा

पयत्तकडे इ वा भद्दयं भद्देत्ति वा ऊसढं ऊसढे इ वा रसियं २ मणुन्नं २ एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा ॥१३७॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अशनं वा ४ उपस्कृतं तथाविधं नो एवं वदेत्, तद्यथा– सुकृतमिति वा सुष्ठुकृतमिति वा साधुकृतमिति वा कल्याणमिति वा करणीयमिति वा एतत्प्रकारा भाषा सावद्यां यावत् नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अशन वा ४ उपस्कृत प्रेक्ष्य एवं वदेत्, तद्यथा आरम्भकृतमिति वा सावद्यकृतमिति वा प्रयत्नकृतमिति वा भद्रकं भद्रमिति वा उच्छ्रितं उच्छ्रितमिति वा रसितं २ मनोज्ञं २ एतत्प्रकारां भाषां असावद्या यावत् भाषेत्।

पदार्थ–**से भिक्खू वा २**-वह-सयमशील साधु या साध्वी। **असण वा ४**-अशनादिक चतुर्विध आहार अर्थात् अशन पान खादिम और स्वादिम रूप। **उवक्खडियं**-उपस्कृत-तैयार किए हुए। **तहाविहं**-तथाविध आहार-पदार्थ को। **एव**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न कहे-। **त॰**-जैसे कि-। **सुकडेति वा**-यह भोजन अच्छा बनाया हुआ है। **सुट्ठुकडे इ वा**-यह भोजन बहुत अच्छा बनाया गया है। **साहुकडे इ वा**-यह भोजन श्रेष्ठ बनाया गया है। **कल्लाणे इ वा**-यह भोजन कल्याणकारी है तथा। **करणिज्जे इ वा**-यह कार्य अवश्य करने योग्य है। **एयप्पगार**-साधु इस प्रकार की। **सावज्ज**-सावद्य। **जाव**-यावत्-प्राणियो का घात करने वाली। **भास**-भाषा। **नो भासिज्जा**-न बोले। **से भिक्खू वा २**-वह साधु या साध्वी। **उवक्खडिय**-उपस्कृत-तैयार किए हुए। **असण वा ४**-अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चतुर्विध आहार को। **पेहाय**-देखकर। **एव वइज्जा**-इस प्रकार कहे। **तजहा**-जैसे कि। **आरम्भकडेति वा**-यह आहार आरम्भ कृत अर्थात् आरम्भ से बनाया गया है। **सावज कडे इ वा**-यह सावद्य कार्य है। **पयत्तकडे इ वा**-यह आहार बड़े प्रयत्न से तैयार किया गया है, या। **भद्दय**-भद्र पदार्थ को। **भद्देति वा**-भद्र कहे। **ऊसढ**-वर्ण, गन्ध, रसादि से युक्त पदार्थ को। **ऊसढे इ वा**-वर्ण, गन्ध, रसादि युक्त कहे और। **रसिय २**-सरस को सरस तथा। **मणुन्न २**-मनोज्ञ को मनोज्ञ कहे। **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **असावज्ज**-असावद्य-निष्पाप। **जाव**-यावत् प्राणियो का विनाश न करने वाली। **भास**-भाषा को। **भासिज्जा**-बोले।

मूलार्थ–सयमशील साधु और साध्वी उपस्कृत-तैयार हुए-अशनादि चतुर्विध आहार को देखकर इस प्रकार न कहे कि यह आहारादि पदार्थ सुकृत है, सुष्ठुकृत है और साधु कृत है तथा कल्याणकारी और अवश्य करणीय है। साधु इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले।

किन्तु संयमशील साधु या साध्वी उपस्कृत अशनादि चतुर्विध आहार को देखकर इस प्रकार कहे कि यह आहारादि पदार्थ बड़े आरम्भ से बनाया गया है। यह सावद्य पाप युक्त कार्य है यह अत्यन्त यत्न से बनाया हुआ है, यह भद्र अर्थात् वर्णगंध रसादि से युक्त है, सरस है और मनोज्ञ है, साधु ऐसी निरवद्य एवं निष्पाप भाषा का प्रयोग करे ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि साधु-साध्वी को आहार आदि के सम्बन्ध मे यह नहीं कहना चाहिए कि यह आहार अच्छा बना है, स्वादिष्ट बना है, बहुत अच्छे ढग से

पकाया गया है। क्योकि, आहार ६ काय के आरम्भ से बनता है, अत: उसकी प्रशसा एव सराहना करना ६ कायिक जीवो की हिसा का अनुमोदन करना है और साधु हिसा का पूर्णतया अर्थात् तीन करण और तीन योग से त्यागी होता है। अत इस प्रकार की भाषा बोलने से उसके अहिसा व्रत मे दोष लगता है। इस कारण सयमनिष्ठ मुनि को ऐसी सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि कभी प्रसगवश कहना ही हो तो वह ऐसा कह सकता है कि यह आरम्भीय (आरम्भ से बना हुआ) है, सरस, वर्ण, गन्ध, रस एव स्पर्श वाला है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साधु उसके यथार्थ रूप को प्रकट कर सकता है, परन्तु, सावद्य भाषा मे आहार आदि की प्रशसा एव सराहना नहीं कर सकता।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्–से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा मिगं वा पसुं वा पक्खिं वा सरीसिवं वा जलचरं वा सेत्तं परिवूढकायं पेहाए नो एवं वइज्जा-थूले इ वा पमेइले इ वा वट्टे इ वा वज्झे इ वा पाइमे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं नो भासिज्जा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मणुस्सं वा जाव जलयरं वा सेत्तं परिवूढकायं पेहाए एवं वइज्जा-परिवूढकायेत्ति वा उवचियकाएत्ति वा थिरसंघयणेत्ति वा चियमंससोणिएत्ति वा बहुपडिपुन्नइंदिएत्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा। से भिक्खू वा २ विरूवरूवाओ गाओ पेहाए नो एवं वइज्जा, तंजहा-गाओ दुज्झाओत्ति वा दम्मेत्ति वा, गोरहत्ति वा वाहिमत्ति वा रहजोग्गत्ति वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव नो भासिज्जा।

से भि० विरूवरूवाओ गाओ पेहाए एवं वइज्जा, तंजहा-जुवंगवित्ति वा धेणुत्ति वा रसवइत्ति वा हस्से इ वा महल्ले इ वा महव्वए इ वा संवहणित्ति वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा।

से भिक्खू वा० तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाइं वणाणि वा रुक्खा महल्ले पेहाए नो एवं वइज्जा, तं०-पासायजोग्गात्ति वा तोरणजोग्गाइ वा गिहजोग्गाइ वा फलिहजो० अग्गलजो० नावाजो० उदग० दोणजो० पीढचंगबेरनंगलकुलियजंतलट्ठीनाभिगंडीआसणजो० सयणजाणउवस्सयजोग्गाइं वा, एप्पगारं० नो भासिज्जा॥

से भिक्खू वा० तहेव गंतु० एवं वइज्जा, तंजहा-जाइमंता इ वा दीहवट्टा इ

वा महालया इ वा पयायसाला इ वा विडिमसाला इ वा पासाइया इ वा जाव पडिरूवाति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा ॥ से भिक्खू वा० बहुसंभूया वणफला (अंबा) पेहाए तहावि ते नो एवं वइज्जा, तंजहा-पक्काइ वा पायखज्जाइ वा वेलोइया इ वा टाला इ वा वेहिया इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव नो भासिज्जा ॥

से भिक्खू० बहुसंभूया वणफला अंबा पेहाए एवं वइज्जा, तं०—असंथडा इ वा बहुनिवट्टिमफला इ वा० बहुसंभूया इ वा भूयरूवत्ति वा, एयप्पगारं भा० असा० ॥ से० बहुसंभूया ओसही पेहाए तहावि ताओ न एवं वइज्जा, तंजहा—पक्का इ वा नीलिया इ वा छवीइया इ वा लाइमा इ वा भज्जिमा इ वा बहुखज्जा इ वा, एयप्पगा० नो भासिज्जा ॥

से० बहु० पेहाए तहावि एवं वइज्जा, तं०— रूढा इ वा बहुसंभूया इ वा थिरा इ वा ऊसढा इ वा गब्भिया इ वा पसूया इ वा, ससारा इ वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा ॥१३८ ॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा मनुष्य वा गोण वा महिष वा मृगं वा पशु वा पक्षिणं वा सरीसृप वा जलचर वा स तं परिवृद्धकाय प्रेक्ष्य नैवं वदेत्— स्थूल इति वा प्रमेदुर इति वा वृत्त इति वा वध्य इति वा (वाहन योग्य इति वा) पाच्य इति वा, एतत्प्रकारां भाषां सावद्यां यावत् नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा मनुष्यं वा यावत् जलचरं वा स तं परिवृद्धकायं प्रेक्ष्य एवं वदेत्—परिवृद्धकाय इति वा, उपचितकाय इति वा स्थिरसंहनन इति वा, f .सशोणित इति वा बहुप्रतिपूर्णइन्द्रिय इति वा एतत्प्रकारां भाषां असावद्याम् यावद् भाषेत।

स भिक्षुर्वा २ विरूपरूपा· गा· प्रेक्ष्य नो एवं वदेत् , तद्यथा-गाव. दोह्या-दोहन योग्या इति वा दम्य इति वा गोरहक इति वा वाहनयोग्य इति वा रथयोग्य इति वा, एतत्प्रकारां भाषा सावद्यां यावत् नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा० विरूपरूपा: गा: प्रेक्ष्य एवं वदेत् , तद्यथा-युवा गौरिति वा धेनुरिति वा रसवतीति वा, ह्रस्व इति वा महान् इति वा महापया इति वा संवहन इति वा, एतत्प्रकारां भाषां असावद्या यावत् अभिकांक्ष्य भाषेत।

स भिक्षुर्वा० तथैव गत्वा उद्यानानि पर्वतान् वनानि वा वृक्षान् महत: प्रेक्ष्य नैवं वदेत्, तद्यथा—प्रासाद योग्य इति वा तोरणयोग्य इति वा गृहयोग्य इति वा फलकयोग्य इति वा अर्गलायोग्य इति वा, नौ योग्य इति वा उदक० द्रोणयोग्य इति वा पीठचंगबेरलांगलकुलि-

कयन्त्रयष्टिनाभिगंडीआसनयोग्य इति वा शयनयानोपाश्रययोग्य इति वा, एतत्प्रकारां भाषां नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा तथैव गत्त्वा एवं वदेत् तद्यथा-जातिमन्त इति वा दीर्घवृत्ता इति वा महालया इति वा, प्रयातशाखा इति वा विटपिशाखा इति वा, प्रासादीया इति वा यावत् प्रतिरूपा इति वा एततप्रकारा भाषां असावद्यां यावत् भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा बहुसम्भूतानि वनफलानि प्रेक्ष्य तथापि नैव वदेत् , तद्यथा-पक्वानि इति वा, पाकखाद्यानीति वा वेलोचितानि वा टालानीति वा (कोमलास्थीनीति वा) द्वैधिकानीति वा, एततप्रकारां भाषां सावद्यां यावत् नो भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा बहुसम्भूतानि वनफलानि आम्राणि-(आम्रान् वा) प्रेक्ष्य एवं वदेत् तद्यथा– असमर्था इति वा बहुनिर्वर्तितफला इति वा बहुसम्भूता इति वा भूतरूपा इति वा, एतत्प्रकारा भाषाम् असावद्यां यावद् भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा बहुसम्भूता औषधी· प्रेक्ष्य तथापि ता. नैवं, वदेत् तद्यथा पक्वा इति वा, नीला इति वा (आर्द्रा इति वा) छविमत्य इति वा, लाइमा इति वा(लाजायोग्या रोपणयोग्या इति वा) भजिमा इति वा (पचनयोग्या भंजनयोग्या इति वा) बहुखाद्या इति वा, एतत्प्रकारा भाषां सावद्यां न भाषेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा बहुसम्भूता औषधी: प्रेक्ष्य तथापि एवं वदेत् , तद्यथा-रूढा इति वा, बहुसंभूता इति वा स्थिरा इति वा उच्छ्रिता इति वा, गर्भिता इति वा, प्रसूता इति वा ससारा इति वा, एतत्प्रकारा भाषां असावद्या यावद् भाषेत।

पदार्थ– से-वह। भिक्खू वा भिक्खुणी वा-साधु या साध्वी। मणुस्स वा-मनुष्य को। गोणं वा-गोण-वृषभ को। महिस वा-महिष-भैसे को। मिग वा-मृग-हरिण को। पसु वा-अन्य पशु को। पक्खि वा-पक्षी को। सरीसिव वा-सर्प को तथा। जलचर वा-जलचर जीवो को। से-वह भिक्षु। त-उनमे से किसी एक। परिवूढकाय-पुष्ट शरीर वाले को। पेहाए-देखकर। एव-इस प्रकार। नो वइज्जा-न कहे। थूले इ वा-यह स्थूल है इस प्रकार । पमेइले इ वा-यह विशिष्ट मेद से युक्त है इस प्रकार। वट्टे इ वा-यह वृत्त अर्थात् गोलाकार है। वज्झेइ वा-यह वध्य-मारने योग्य है या बोझा ढोने योग्य है। पाइमे इ वा-पकाने योग्य है। एयप्पगारं-इस प्रकार की। भासं-भाषा जो कि। सावज्ज-सावद्य। जाव-यावत्-भूतोपघातिनी है। नो भासेज्जा-न बोले। से भिक्खू वा-भिक्खुणी वा-वह साधु या साध्वी। मणुस्स वा-मनुष्य को। जाव-यावत्। जलचर वा-जलचर जीवो को। से-वह। त-उन जीवो मे से। परिवूढकाय-परिपुष्ट शरीर वाले को। पेहाए-देखकर। एव-इस प्रकार। वइज्जा-कहे-। परिवूढकाएत्ति-यह वृषभादि अमुक जीव परिपुष्ट शरीर वाला है अथवा यह। उवचियकाएत्ति वा-उपचित काय-शरीर वाला है। थिरसंघयणेत्ति वा-इसका संहनन बड़ा दृढ है अर्थात् इसका शरीर बड़ा सगठित है। चियमससोणिएत्ति-इसके शरीर मे मास और रुधिर विशेष रूप से है तथा। बहुपडिपुन्नइंदिएत्ति वा-इसकी सभी इन्द्रिए परिपूर्ण हैं। एयप्पगारं-इस प्रकार की। असावज्जं-असावद्य-पाप रहित। जाव-यावत् जीव विराधना शून्य। भास-भाषा की। भासिज्जा-भाषण करे-बोले।

पदार्थ–**से भिक्खू वा भिक्खुणी वा**–वह साधु अथवा साध्वी। **विरूवरूवाओ**–नाना प्रकार के। **गाओ**–गौ आदि पशुओं को। **पेहाए**–देखकर। **एवं**–इस प्रकार । **नो वइज्जा**–न कहे। **तजहा**–जैसे कि। **गाओ दुज्झाओत्ति वा**–ये गौएं दोहने के योग्य हैं अथवा इनके दोहने का समय हो रहा है। **दम्मेति वा**–या यह बैल दमन करने के योग्य है। **गोरहत्ति वा**–या यह तीन वर्ष का युवक बैल है। **वाहिमत्ति वा**–यह बैल हल वाहन करने योग्य है। **रहजोगत्ति वा**–यह बैल रथ मे जोतने योग्य है। **एयप्पगार**–इस प्रकार की। **सावज्जं**–सावद्य। **जाव**–यावत् भूतोपघातिनी। **भासं**–भाषा को। **नो भासेज्जा**–न बोले। **से**–वह। **भिक्खू वा भिक्खुणी वा**–साधु या साध्वी। **विरूवरूवाओ**–नाना प्रकार के। **गाओ**–गौ आदि पशुओ को। **पेहाए**–देखकर। **एवं**–**वइजा**–इस प्रकार कहे। **तंजहा**–जैसे कि। **जुवंगवित्ति वा**–यह वृषभ बड़ा युवा है अथवा। **धेणुत्ति वा**–यह गाय जवान है या। **रसवइत्ति वा**–बहुत दूध देने वाली है। **हस्सेइ वा**–या यह छोटा बैल है। **महल्लेइ वा**–यह बड़ा बैल है और। **महव्वए इ वा**–यह बैल बड़ी आयु का है। **सवाहणित्ति वा**–यह भार का उद्वहन कर रहा है। **एयप्पगार**–इस प्रकार की। **असावज्ज**–असावद्य-निष्पाप। **भासं**–भाषा को। **जाव**–यावत्। **अभिकंख**–मन मे विचार कर। **भासिज्जा**–बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा–वह साधु या साध्वी। **तहेव**–उसी प्रकार। **गतुमुज्जाणाइ**–उद्यानादि मे जाकर तथा। **पव्वयाइ**–पर्वतो और। **वणाणि**–वनो मे जाकर। **महल्ले**–अत्यन्त मोटे। **रुक्खा**–वृक्षो को। **पेहाए**–देखकर। **एव**–इस प्रकार। **नो वइज्जा**–नहीं बोले। **तजहा**–जैसे कि-। **पासायजोग्गाति वा**–यह वृक्ष प्रासाद (मकान बनाने) के योग्य है। **तोरणजोग्गाइ वा**–अथवा यह तोरण बनाने के योग्य । **गिहजोग्गा इ वा**–अथवा यह घर के योग्य है। **फलिहजो०**–अथवा यह फलक बनाने के योग्य है। **अग्गलजो०**– यह अर्गला के योग्य है और। **नावाजो०**–यह नाव के योग्य है और यह वृक्ष। **उदग० दोणजो०**–उदक द्रोणी के योग्य है इसी प्रकार। **पीढ**–पीढ़ के योग्य है। **चगबेर**–काठ का बर्तन विशेष उसके योग्य है। **नगल**–हल के योग्य है। **कुलिय**–कुलड़ी के योग्य । **जत**–यन्त्र के योग्य है। **लट्ठी**–लाठी के योग्य है अथवा कोल्हू की लट्ठी के योग्य है। **नाभि**–चक्र की नाभि के योग्य है। **गंडी**–सुनार के किसी काष्ठोपकरण के योग्य है और। **आसणजो०**–आसन के योग्य है तथा। **सयण**–शयन-शय्या पलग। **जाण**–शकटादि के और। **उवस्सयजोगाइं वा**–उपाश्रय के योग्य है। **एयप्पगारं**–इस प्रकार की सावद्य भाषा यावत् भूतोपघातिनी भाषा को। **नो भासिज्जा**–नहीं बोले। **से भिक्खू वा**–वह साधु या साध्वी। **तहेव**–उसी प्रकार। **गतु०**–उद्यानादि मे जाकर वहा पर स्थित महान् वृक्षो को देखकर। **एव वइज्जा**–इस प्रकार कहे। **तजहा**–जैसे कि-। **जाइमता इ वा**–ये वृक्ष बड़े उत्तम जाति के है, अर्थात् किसी अच्छी नसल के है। **दीहवट्टा इ वा**–अथवा ये वृक्ष दीर्घ और वृत्त अर्थात् गोलाकार हैं। **महालयाइ वा**–बड़े विस्तार वाले है। **पयायसाला इ वा**–इनकी विस्तृत अनेक शाखाए है। **विडिमसाला इ वा**–इस वृक्ष की मध्य मे चार शाखाए है जिनमे एक ऊंची भी चली गई है अथवा ये वृक्ष। **पासाइया इ वा**–प्रासादीय प्रसन्नता देने वाले है। **जाव**–यावत्। **पडिरूवाति वा**–प्रति रूप-सुन्दर हैं। **एयप्पगारं**–इस प्रकार की। **असावज्ज**–असावद्य-निष्पाप। **जाव**–यावत्। **भासं**–भाषा को। **भासिज्जा**–बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा –वह साधु अथवा साध्वी। **बहुसंभूया**–बहुत परिमाण मे उत्पन्न हुए। **वणफला**–वन के फलो को-अर्थात् वन मे होने वाले वृक्षो के फलो को। **पेहाए**–देखकर। **तहावि**–तथापि। **ते**–उनके सम्बन्ध मे। **एवं**–इस प्रकार। **नो वइज्जा**–न कहे -न बोले। **तजहा**–जैसे कि-। **पक्का इ वा**–ये फल

परिपक्व हो गए अर्थात् पक गए हैं। **पायखज्जाइ वा**-ये फल घास आदि मे पकाकर खाने योग्य है। **वेलोइया इ वा**-अब ये फल तोड़ लेने योग्य हैं। **टाला इ वा**-ये फल अभी कोमल हैं इनमें अभी तक अस्थि नहीं बन्धी, गिटेक नहीं पड़ी। **बोहिया इ वा**-अब ये फल खाने के लिए खण्ड-खण्ड करने योग्य है। **एयप्पगारं**-इस प्रकार की। **सावज्जं**-सावद्य। **जाव**-यावत् भूतोपघातिनी। **भासं**-भाषा को। **नो भासिज्जा**-भाषण न करे। **से भिक्खू वा०**-वह साधु अथवा साध्वी। **बहुसंभूया**-बहु परिमाण मे उत्पन्न हुए । **वणफला**-वन के फलो को। **अंबा**-आम आदि को। **पेहाए**-देखकर। **एव**-इस प्रकार। **वइज्जा**-कहे-बोले। **तंजहा**-जैसे कि-। **असंथडाइ वा**-ये वृक्ष फलो के भार से नम्र हो रहे है, तथा। **बहुनिवट्टिमफला इ वा**-ये वृक्ष बहुत से फल दे रहे है। **बहुसभूया इ वा**-बहुत परिपक्व फल हैं। **भूयरूवत्ति वा**-ये अबद्ध अस्थि वाले कोमल फल है। **एयप्पगार**-इस प्रकार की। **असावज्जं**-असावद्य-पाप रहित। **जाव**-यावत् प्राणि विघात रहित। **भास**-भाषा को। **भासिज्जा**-बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा-वह साधु या साध्वी। **बहुसभूया ओसही**-बहु परिमाण मे उत्पन्न होने वाली औषधियो (धान्य विशेष)। **पेहाए**-देखकर। **तहावि**-तथापि। **ताओ**-उनके सम्बन्ध मे। **एव**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न बोले । **तंजहा**-जैसे कि-। **पक्काइ वा**-यह धान्य परिपक्व हो गया है या यह औषधि पक गई है अथवा। **नीलिया इ वा**-यह अभी नीली अर्थात् कच्ची है। **छवीइया इ वा**-यह सुन्दर छवी-शोभा वाली है। **लाइमा इ वा**-यह काटने योग्य है। **भज्जिमा इ वा**-यह पकाने योग्य है या भुञ्जने योग्य है। **बहुखज्जा इ वा**-यह भली-भाति खाने योग्य है। **एयप्पगार**-इस प्रकार की सावद्य भाषा को। **नो भासिज्जा**-नहीं बोले। **से भिक्खू वा०**-वह साधु या साध्वी। **बहु०**-बहुत परिणाम मे उत्पन्न होने वाली औषधि-धान्य विशेष को। **पेहाए**-देखकर। **तहावि**-तथापि। **एव**-इस प्रकार । **वइज्जा**-बोले-कहे। **तंजहा**-जैसे कि-। **रूढा इ वा**-इसमे अकुर निकला है। **बहुसंभूया इ वा**-बहुत परिमाण मे उत्पन्न हुई है। **थिरा इ वा**-यह औषधि स्थिर है। **ऊसढा इ वा**-यह रस से भरी हुई है। **गब्भिया इ वा**-यह अभी गर्भ मे है। **पसूया इ वा**-यह प्रसूत-उत्पन्न हो गई है। **ससारा इ वा**-इसमे धान्य पड़ गया है। **एयप्पगार** -इस प्रकार की। **असावज्जं**-असावद्य-निष्पाप। **जाव**-यावत् अहिसक। **भास**-भाषा को। **भासि०**-बोले।

मूलार्थ-संयमशील साधु और साध्वी, मनुष्य, वृषभ (बैल), महिष (भैस), मृग, पशु-पक्षी, सर्प और जलचर आदि जीवों में किसी भारी शरीर वाले जीव को देखकर इस प्रकार न कहे कि यह स्थूल है, यह मेदा युक्त है, वृत्ताकार है, वध या वहन करने योग्य और पकाने योग्य है। किन्तु, उन्हे देख कर ऐसी भाषा का प्रयोग करे कि यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचित्त काय है, दृढ़ सहनन वाला है, इसके शरीर मे रुधिर और मांस का उपचय हो रहा है और इसकी सभी इन्द्रिए परिपूर्ण हैं।

संयमशील साधु और साध्वी गाय आदि पशुओ को देख कर इस प्रकार न कहे कि यह गाय दोहने योग्य है अथवा इसके दोहने का समय हो रहा है तथा यह बैल दमन करने योग्य है, यह वृषभ छोटा है, यह वहन के योग्य है और यह हल आदि चलाने के योग्य है, इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा का प्रयोग न करे। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उनके लिए इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करे कि यह वृषभ जवान है, यह गाय प्रौढ़ है, दूध देने वाली है, यह बैल छोटा है, यह बड़ा है और यह शकट आदि को वहन करता है।

संयमशील साधु अथवा साध्वी किसी उद्यान (बगीचे) पर्वत या वन आदि में कुछ विशाल वृक्षों को देख कर उनके सम्बन्ध में भी इस प्रकार न कहे कि यह वृक्ष मकान आदि मे लगाने योग्य है, यह तोरण के योग्य है, और यह गृह के योग्य है तथा इसका फलक बन सकता है, इसकी अर्गला बन सकती है और यह नौका के लिए भी अच्छा है। इसकी उदकद्रोणी (जल भरने की टोकणी) अच्छी बन सकती है और यह पीठ के योग्य है, इसकी चक्र नाभि अच्छी बनेगी, यह गडी के लिए अच्छा है, इसका आसन अच्छा बन सकता है और यह पर्यंक (पलग) के योग्य है, इससे शकट आदि का निर्माण किया जा सकता है और यह उपाश्रय बनाने के लिए उपयुक्त है। साधु को इस प्रकार की सावद्य भाषा का व्यवहार नहीं करना चाहिए। किन्तु, उक्त स्थानों मे अवस्थित विशाल वृक्षो को देख कर उनके सम्बन्ध मे इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करे कि ये वृक्ष अच्छी जाति के है, दीर्घ और वृत्त तथा बड़े विस्तार वाले है। इनकी शाखाएं चारो ओर फैली हुई है, ये वृक्ष मन को प्रसन्न करने वाले अभिरूप और नितान्त सुन्दर है। साधु इस प्रकार की असावद्य-निष्पाप भाषा का व्यवहार करे।

सयमशील साधु अथवा साध्वी वन मे बहुत परिमाण मे उत्पन्न हुए फलो को देख कर उनके सबन्ध मे भी इस प्रकार न कहे कि ये फल पक गए है, अत· खाने योग्य है या ये फल पलाल आदि मे रख कर पकाने के पश्चात् खाने योग्य हो सकते है। इनके तोड़ने का समय हो गया है। ये फल अभी बहुत कोमल है, क्योंकि इनमे अभी तक गुठली नहीं पड़ी है और ये फल खण्ड-खण्ड करके खाने योग्य है। विवेकशील साधु इस प्रकार की सावद्य भाषा न बोले। किन्तु, आवश्यकता पड़ने पर वह इस प्रकार कहे कि ये वृक्ष फलों के भार से नम्र हो रहे हैं। अर्थात् ये उनका भार सहन करने मे असमर्थ प्रतीत हो रहे है। ये वृक्ष बहुत फल दे रहे है। ये फल बहुत कोमल हैं, क्योंकि अभी तक इनमे गुठली नहीं पड़ी है, इत्यादि। साधु इस प्रकार की पाप रहित सयत भाषा का व्यवहार करे।

संयमशील साधु अथवा साध्वी बहुत परिमाण मे उत्पन्न हुई औषधियो को देख कर उनके सम्बन्ध मे भी इस प्रकार न कहे कि यह औषधि (धान्य विशेष) पक गई है। यह अभी नीली अर्थात् कच्ची या हरी है। यह काटने योग्य या भूजने या खाने योग्य है। साधु इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा को न बोले। किन्तु, अधिक परिमाण मे उत्पन्न हुई औषधियों को देखकर यदि उनके सबन्ध मे बोलने की आवश्यकता हो तो साधु इस प्रकार बोले कि यह अभी अकुरित हुई है। यह औषधि अधिक उत्पन्न हुई है। यह स्थिर है और यह बीजो से भरी हुई है, यह सरस है। यह अभी गर्भ में ही है या उत्पन्न हो गई है। साधु इस प्रकार की असावद्य-निष्पाप भाषा का व्यवहार करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे भाषा के प्रयोग मे विशेष सावधानी रखने का आदेश दिया गया है। साधु चाहे सजीव पदार्थों के सम्बन्ध मे कुछ कहे या निर्जीव पदार्थ के सम्बन्ध मे कुछ बोले, परन्तु, उसे इस बात का सदा ख्याल रखना चाहिए कि उसके बोलने से किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। असत्य एव मिश्र भाषा की तरह दूसरे जीवो की हिसा का कारण बनने वाली भाषा भी, भले ही वह सत्य भी क्यो

न हो साधु के बोलने योग्य नहीं है। अत. भाषा समिति में ऐसे शब्द बोलने का भी निषेध किया गया है जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष में किसी जीव की हिंसा की प्रेरणा मिलती हो या हिसा का समर्थन होता हो।

साधु प्राणी मात्र का रक्षक है। अतः बोलते समय उसे प्रत्येक प्राणी के हित का ध्यान रखना चाहिए। प्रस्तुत सूत्र मे इस बात का उल्लेख किया गया है कि साधु को किसी गाय-भैंस, मृग आदि पशु-पक्षी एव जलचर तथा वनस्पति (पेड-पौधो) आदि के सम्बन्ध में भी ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे उन जीवो को किसी तरह का कष्ट पहुचे। किसी भी पशु-पक्षी के मोटापन को देखकर साधु को यह नहीं कहना चाहिए कि इस स्थूल काय जानवर मे पर्याप्त चर्बी है, इसका मास स्वादिष्ट होता है, यह पका कर खाने योग्य है या यह गाय दोहन करने योग्य है, यह बैल गाडी मे जोतने या हल चलाने योग्य है और इसी तरह ये पक्व फल खाने योग्य हैं या इन्हे घास मे रखकर पकाने के पश्चात् खाना चाहिए, या यह धान या औषधि पक गई है, काटने योग्य है या इन वृक्षो की लकडी महलो मे स्तम्भ लगाने, द्वार बनाने, अर्गला बनाने के लिए उपयुक्त है या तोरण बनाने या कुए से पानी निकालने या पानी रखने का पात्र, तख्त, नौका आदि बनाने योग्य है, आदि सावद्य भाषा का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए। साधु को भाषा के प्रयोग मे सदा विवेक रखना चाहिए और सत्यता के साथ जीवो की दया का भी ध्यान रखना चाहिए। उसे सदा निष्पापकारी सत्य भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'उदगदोण जोगाईया' एक पद है और इसका अर्थ है-कुए आदि से पानी निकालने या पानी रखने का काष्ठ पात्र। दशवैकालिक सूत्र मे भी इस का एक पद मे ही प्रयोग किया है[१]। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत सूत्र मे '**रूढाइ वा, थिराइ वा गब्भियाइ वा**' आदि पदो मे जो बार-बार '**इ**' का प्रयोग किया गया है, वह पाद पूर्ति के लिए ही किया गया है[२]।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्-से भिक्खू वा० तहप्पगाराइं सद्दाइं सुणिज्जा तहावि एयाइं नो एवं वइज्जा तंजहा-सुसद्देत्ति वा दुसद्देति वा एयप्पगारं भासं सावज्जं नो भासिज्जा॥ से भि० तहावि ताइं एवं वइज्जा, तंजहा-सुसद्दं-सुसद्दित्ति वा दुसद्दं दुसद्दित्ति वा एयप्पगारं असावज्जं जाव भासिज्जा, एवं रूवाइं किण्हेत्ति वा ५ गंधाइं सुरभिगंधित्ति वा २ रसाइं त्तित्ताणि वा ५ फासाइं कक्खडाणि वा ८ ॥१३९॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा तथाप्रकारान् शब्दान्शृणुयात् तथापि एतान् नैव वदेत्, तद्यथा-सुशब्दः इति वा दुःशब्दः इति वा एतत्प्रकारां भाषां सावद्यां नो भाषेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा तथापि तान् एवं वदेत् तद्यथा सुशब्दं सुशब्द इति वा दुशब्दं दुःशब्द इति

१ अल पासायखभाण, तोरणाणि गिहाणि य।
फलिह अग्गल नावाण, अल उदगदोणिण॥ - दशवैकालिक सूत्र, ७, २७।

२ इ, जे, रा पादपूरणे अर्थात् इकार, जेकार और रकार यह तीनों अव्यय पादपूर्ति के लिए हैं।
- प्राकृत व्याकरण, पा० २, सू० २१७।

वा, एतत् प्रकारां असावद्यां यावत् भाषेत, एवं रूपाणि कृष्ण इति वा ५ गन्धान् सुरभिगन्ध इति वा २ रसान् तिक्तइति वा ५ स्पर्शान्--कर्कश इति वा ८।

पदार्थ–से-वह। **भिक्खू वा** २-साधु या साध्वी। **तहप्पगाराइं**-तथा प्रकार के। **सद्दाइ**-शब्दो को। **सुणिज्जा**-सुने और सुनकर। **तहावि**-तथापि। **एयाइ**-इनके सम्बन्ध मे। **एवं**-इस प्रकार। **नो वइज्जा**-न बोले। **तंजहा**-जैसे कि-। **सुसद्देति वा**-सुन्दर शब्द सुनकर बोलने वाले के प्रति राग भाव लाकर यह कहना, आपने यह बहुत अच्छा कहा यह बड़ा मङ्गलकारी है तथा। **दुसद्देति वा**-दु शब्द-बुरे शब्द को सुन कर बोलने वाले के प्रति द्वेष भाव लाकर यह कहना-तुमने बहुत बुरा कहा, यह बड़ा ही अनिष्टकारी है। **एयप्पगार**-इस प्रकार की। **सावज्ज**-सावद्य। **भास**-भाषा को। **नो भासिज्जा**-न बोले। **से भि०**-वह साधु या साध्वी शब्दो को सुनता हुआ। **तहावि**-तथापि। **ताइ**-उन शब्दो के सम्बन्ध में। **एव**-इस प्रकार। **वइज्जा**-बोले। **तंजहा**-जैसे कि। **सुसद्द**-सुशब्द-सुन्दर शब्द को। **सुसद्दित्ति वा**-यह सुन्दर शब्द है, इस प्रकार कहे तथा। **दुसद्द**-दुष्ट शब्द को। **दुसद्दिति वा**-यह दुष्ट शब्द है इस प्रकार कहे। **एयप्पगार**-इस प्रकार की। **असावज्जं**-असावद्य-निष्पाप। **जाव**-यावत् भाषा को। **भासिज्जा**-बोले। **एवं**-इसी प्रकार। **रूवाइं**-रूप के विषय मे। **किण्हेति वा ५**-कृष्ण को कृष्ण यावत् श्वेत को श्वेत कहे। **गंधाइ**-गन्ध के विषय मे। **सुरभिगंधित्ति वा** २-सुगन्ध को सुगन्ध और दुर्गन्ध को दुर्गन्ध कहे। **रसाइं**-रसादि के विषय मे भी। **तित्ताणि वा ५**-तिक्त को तिक्त यावत् मधुर को मधुर कहे। **फासाइं**-स्पर्श के विषय मे। **कक्खडाणि वा८**-कर्कश को कर्कश यावत् मृदु को मृदु कहे। तात्पर्य कि जो पदार्थ जिस तरह का हो उसको उसी प्रकार का बताए।

***मूलार्थ*–सयमशील साधु और साध्वी किसी भी शब्द को सुनकर वह किसी भी सुशब्द को दु शब्द अर्थात् शोभनीय शब्द को अशोभनीय एवं मांगलिक को अमांगलिक न कहे। किन्तु सुशब्द अच्छे शब्द को सुन्दर और दु शब्द को दुःशब्द और असुन्दर शब्द को असुन्दर ही कहे। इसी प्रकार रूपादि के संबन्ध में भी ऐसी ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए। कुरूप को कुरूप और सुन्दर को सुन्दर तथा सुगन्धित एव दुर्गन्धित पदार्थों को क्रमश सुगध एव दुर्गन्ध युक्त तथा कटु को कटुक और कर्कश को कर्कश कहे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि साधु को ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस और ८ स्पर्श के सम्बन्ध मे कैसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए। इसमे स्पष्ट बताया गया है कि साधु को जैसे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का पदार्थ हो उससे विपरीत नहीं कहना चाहिए। राग-द्वेष के वश अच्छे पदार्थ को उससे विपरीत नहीं कहना चाहिए। राग-द्वेष के वश अच्छे पदार्थ को बुरा और बुरे पदार्थ को अच्छा नहीं बताना चाहिए। कुछ व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए कुरूपवान व्यक्ति को सुन्दर एव रूप सम्पन्न को कुरूप बताने का भी प्रयत्न करते हैं। परन्तु, राग-द्वेष एव स्वार्थ से ऊपर उठे हुए साधु किसी भी पदार्थ का गलत रूप मे वर्णन न करे। उसे सदा सावधानी पूर्वक यथार्थ एवं निर्दोष वचन का ही प्रयोग करना चाहिए। वर्ण की तरह गन्ध, रस एव स्पर्श के सम्बन्ध मे भी यथार्थ एवं निर्दोष भाषा का व्यवहार करना चाहिए [१]।

---

१ सभिक्षुर्यद्यप्येतान् शब्दान् शृणुयात् तथापि नैव वदेत् तद्यथा शोभन शब्दोऽशोभनो वा मागलिको ऽमागलिको वा, इत्यय न व्याहर्तव्य । विपरीतत्वाह-यथावस्थितशब्दप्रज्ञापनाविषये एतद् वदेत्, तद्यथा- ''सुसद्दति'' शोभनशब्द शोभन-मेवब्रूयाद् अशोभनंत्वशोभनमिति॥ एवरूपादिसूत्रमपिनेयम्। (वृत्तिकार)

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं –

मूलम्–से भिक्खू वा० वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च अणुवीइ निट्ठाभासी, निसम्मभासी, अतुरियभासी, विवेगभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा। एवं खलु० तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहितेहिं सया जएज्जासि त्ति बेमि॥१४०॥

छाया– स भिक्षु. भिक्षुकी वा वान्त्वा क्रोधं च मान च माया च लोभ च अनुविचिन्त्य निष्ठाभाषी निशम्यभाषी अत्वरितभाषी विवेकभाषी समित्या संयत भाषा भाषेत ५। एव खलु तस्य भिक्षो २ सामग्र्य यत् सर्वार्थै समित्या सहितः सदा यतेत इति ब्रवीमि।

पदार्थ–**से भिक्खू वा**–वह साधु या साध्वी। **कोहं च**–क्रोध को। **माण च** मान को। **माय च**–माया–कपट युक्त व्यवहार को। **लोभ च**–लोभ को। **वता**–वमन– छोड़ करके और। **अणुवीइ**–विचार पूर्वक पर्यालोचन करके। **निट्ठाभासी**–एकान्त–सर्वथा असावद्य वचन बोलने वाला। **निसम्मभासी**–हृदय मे अत्यन्त विचार कर भाषण करने वाला। **अतुरियभासी**–सम्भाल कर शनै -शनै बोलने वाला और। **विवेगभासी**–विवेक पूर्वक बोलने वाला । **सजए**–साधु। **समियाए**–भाषासमिति युक्त। **भास**–भाषा को। **भासिज्जा**–बोले। **एव खलु**–इस प्रकार निश्चय ही। **तस्स**–उस। **भिक्खुस्स** २–साधु और साध्वी का यह। **सामग्गिय**–समग्र–सम्पूर्ण आचार है। **ज सव्वट्ठहि** –जो ज्ञानादि अर्थों से तथा। **समिए**–पाच समितियो से। **सहिए**–युक्त है अत वह। **सया**–सदा–सर्व काल मे उक्त आचार का परिपालन करने का। **जएज्जासि**–यत्न करे। **त्तिबेमि**–इस प्रकार मै कहता हूँ।

_मूलार्थ_–क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करने वाला, एकान्त निरवद्य भाषा बोलने वाला, विचार पूर्वक बोलने वाला, शनै -शनै बोलने वाला और विवेक पूर्वक बोलने वाला सयत साधु या साध्वी भाषा समिति से युक्त भाषा का व्यवहार करे। यही साधु और साध्वी का समग्र आचार है। इस प्रकार मैं कहता हूं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भाषा अध्ययन का उपसहार करते हुए बताया गया है कि साधु को क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करके भाषा का प्रयोग करना चाहिए और उसे बहुत शीघ्रता से भी नहीं बोलना चाहिए। क्योकि, वह क्रोधादि विकारो के वश झूठ भी बोल सकता है और अविवेक एव शीघ्रता मे भी असत्य भाषण का होना सम्भव है। अत विवेकशील एव सयम निष्ठ साधक को कषायो का त्याग करके, गम्भीरता–पूर्वक विचार करके धीरे–धीरे बोलना चाहिए। इस तरह साधु को सोच–विचार–पूर्वक निरवद्य, निष्पापकारी, मधुर, प्रिय एव यथार्थ भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पंचम अध्ययन-वस्त्रैषणा

प्रथम उद्देशक

चतुर्थ अध्ययन मे भाषा समिति से सम्बद्ध विषय पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत अध्ययन मे यह बताया गया है कि भाषा समिति मे प्रवृत्तशील साधु-साध्वी को किस तरह से और कैसा वस्त्र ग्रहण करना चाहिए। इस अध्ययन के दो उद्देशक हैं, पहले उद्देशक मे वस्त्र ग्रहण करने की विधि तथा द्वितीय उद्देशक मे वस्त्र धारण करने का उल्लेख किया गया है। वस्त्र भी द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का बताया गया है। द्रव्य वस्त्र तीन प्रकार का बताया गया है- १-एकेन्द्रिय जीवो के शरीर से निर्मित कपास (Cotton), सण (Jute) आदि के वस्त्र, २-विकलेन्द्रिय जीवो के बनाए गए तारो से निष्पन्न रेशमी (Silk) वस्त्र और ३-पञ्चेन्द्रिय जीवो के बालो से बनाए गए ऊन (Woollen) के वस्त्र या कम्बल आदि। और ब्रह्मचर्य के अठारह सहस्र गुणो को धारण करना भाव वस्त्र कहलाता है। वस्त्र दूसरो के एव अपने मन मे विकृति पैदा करने वाले गुप्तागो को आवृत्त करने तथा शीत-ताप से बचाने के लिए एक उपयोगी साधन है। इसी तरह मानव मन मे उठने वाले विकारी भावो का क्षय या क्षयोपशम करने तथा साधक को विकारो के शीत-तापमय व अनुकूल-प्रतिकूल आघातो से बचाने के लिए १८ हजार शीलाग गुण सर्वश्रेष्ठ साधन हैं, आत्म-विकास मे अत्यधिक सहयोगी हैं, इसी कारण इन्हे भाव वस्त्र कहा गया है। परन्तु, प्रस्तुत अध्ययन में द्रव्य वस्त्रो के सम्बन्ध मे ही विचार किया गया है। क्योकि, याचना द्रव्य वस्त्र की ही की जाती है, भाव वस्त्र की नहीं। आत्मा मे स्थित अनन्त वीर्य ही भाव वस्त्र है और उसकी प्राप्ति माग कर नहीं, प्रत्युत आत्म साधना से ही की जा सकती है। इस लिए सूत्रकार इस सम्बन्ध मे यहा कुछ नहीं कह कर, यह बताते हैं कि साधक को कैसे वस्त्र की याचना करनी चाहिए। साधु के लिए कल्पनीय वस्त्रो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्- से भि० अभिकंखिज्जा वत्थं एसित्तए, से जं पुण वत्थं जाणिज्जा, तंजहा- जंगियं वा भंगियं वा साणियं वा पोत्तगं वा खोमियं वा तूलकडं वा, तहप्पगारं वत्थं वा जे निग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरसंघयणे से एगं वत्थं धारिज्जा नो बीयं, जा निग्गंथी सा चत्तारि संघाडीओ धारिज्जा, एगं दुहत्थवित्थारं, दो तिहत्थवित्थाराओ, एगं चउहत्थवित्थारं, तहप्पगारेहिं वत्थेहिं असंधिज्जमाणेहिं, अहपच्छा एगमेगं संसिविज्जा ॥१४१॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकांक्षेत् वस्त्रमेषितुं (अन्वेष्टुम्) स यत् पुनः

वस्त्रं जानीयात् तद्यथा-जांगमिकं वा भांगिकं वा साणिकं वा पोतकं वा क्षौमिकं वा तूलकृतं वा तथाप्रकारं वस्त्रं वा यो निर्ग्रन्थ. तरुण· युगवान् बलवान् अल्पातंकः स्थिरसंहननः स एक वस्त्रं धारयेत् नो द्वितीयं, या निर्ग्रन्थी सा चतस्र· सघाटिका धारयेत्, एकां द्विहस्तविस्तारां, द्वे त्रिहस्तविस्तारे, एकां चतुर्हस्तविस्तारा, तथाप्रकारै· वस्त्रै· असंधीयमानैः अथपश्चात् एकमेकेन संसीव्येत्।

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा॰**-साधु अथवा साध्वी। **वत्थ**-वस्त्र की। **एसित्तए**-एषणा। **अभिकखिज्जा**-या गवेषणा करनी चाहे तो। **से**-वह-साधु। **ज**-जो। **पुण**-फिर। **वत्थं**-वस्त्र के विषय मे। **जाणिज्जा**-इस प्रकार जाने। **तजहा**-जैसे कि। **जगियं वा**-जगम-जीवो से उत्पन्न हुआ-(ऊट आदि की ऊन से बना हुआ) अथवा। **भंगियं वा**-विकलेन्द्रिय जीवो के तन्तुओ से बना हुआ रेशमी वस्त्र या। **साणिय वा**-सण (Jute) तथा वल्कल आदि से निष्पन्न वस्त्र। **पोत्तगं वा**-या ताड़ पत्र आदि से बना हुआ वस्त्र। **खोमियं वा**-कपास आदि से बनाया गया वस्त्र या। **तूलकडं वा**-आक आदि की तूली-रूई से बना हुआ वस्त्र। **तहप्पगार**-तथा प्रकार के अन्य। **वत्थ**-वस्त्र को भी। **धारिज्जा**-धारण करे। **जे निग्गंथे**-जो निर्ग्रन्थ। **तरुणे**-तरुण-युवावस्था मे है तथा। **जुगव**-तीसरे या चौथे आरे का जन्मा हुआ है। **बलवं**-बलवान। **अप्पायके**-रोग रहित और। **थिरसघयणे**-दृढ सहनन वाला है। **से**-वह। **एगं वत्थ**-एक वस्त्र को। **धारिज्जा**-धारण करे। **नो बीयं**-दूसरा वस्त्र धारण न करे। **जा निग्गथी**-और जो साध्वी है। **सा**-वह। **चत्तारि संघाडीओ धारिज्जा**-चार चादरे धारण करे। **एगं**-एक चादर। **दुहत्थवित्थारं**-दो हाथ प्रमाण चौड़ी हो। **दो तिहत्थवित्थाराओ**-दो चादरे तीन हाथ प्रमाण चौड़ी हो और। **एगं**-एक। **चउहत्थवित्थारं**-चार हाथ प्रमाण चौड़ी हो। **तहप्पगारेहिं**-तथाप्रकार के। **वत्थेहिं**-वस्त्रो के। **असधिज्जमाणेहिं**-पृथक्-पृथक् न मिलने पर। **अह**-अथ। **पच्छा**-पश्चात्। **एगमेग**-एक को एक के साथ। **ससिविज्जा**-सी ले।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी यदि वस्त्र की गवेषणा करने की अभिलाषा रखते हो तो वे वस्त्र के सम्बन्ध मे इस प्रकार जाने कि– ऊन का वस्त्र, विकलेन्द्रिय जीवो की लारों से बनाया गया रेशमी वस्त्र, सन तथा वल्कल का वस्त्र, ताड़ आदि के पत्तो से निष्पन्न वस्त्र और कपास एव आक की तूली से बना हुआ सूती वस्त्र एव इस तरह के अन्य वस्त्र को भी मुनि ग्रहण कर सकता है। जो साधु तरुण बलवान, रोग रहित और दृढ शरीर वाला है वह एक ही वस्त्र धारण करे, दूसरा न धारण करे। परन्तु साध्वी चार वस्त्र-चादरें धारण करे। उसमे एक-चादर दो हाथ प्रमाण चौडी, दो चादरे तीन हाथ प्रमाण और एक चार हाथ प्रमाण चौड़ी होनी चाहिए। इस प्रकार के वस्त्र न मिलने पर वह एक वस्त्र को दूसरे के साथ सी ले।

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु ६ तरह का वस्त्र ग्रहण कर सकता है– १-जागिक जगम-चलने-फिरने वाले ऊट, भेड आदि जानवरो के बालो से बनाए हुए ऊन के वस्त्र, २-भगिय-विभिन्न विकलेन्द्रिय जीवो की लार से, निर्मित तन्तुओ से निर्मित रेशमी (Silk) वस्त्र[1], ३-

१ एक तरह का वस्त्र, पाट का बना हुआ वस्त्र। – प्राकृतशब्दमहार्णव, पृ॰ ७९२।
भगिय (भागिक-भगायाइदम्) सन का वस्त्र, कीड़ो की लार के रस के द्वारा बना हुआ वस्त्र।
– अर्द्धमागधी कोष, भा॰ ४, पृ॰ २।

साणिय-सण (Jute) या वल्कल से बना हुआ वस्त्र, ४-पोत्तक-ताड पत्रो के रेशो से बनाया हुआ वस्त्र, ५-खोमिय-कपास से निष्पन्न वस्त्र और ६-तूलकडे-आक के डोडो मे से निकलने वाली रूई से बना हुआ वस्त्र। इन ६ तरह के वस्त्रो मे सभी तरह के वस्त्रो का समावेश हो जाता है। अत· वह इनमे से किसी भी तरह का वस्त्र धारण कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे साधु और साध्वी के लिए वस्त्रो का परिमाण भी निश्चित कर दिया गया है। यदि साधु युवक, निरोगी, शक्ति-सम्पन्न एव हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला हो तो वह एक ही वस्त्र ग्रहण कर सकता है, दूसरा नहीं। इससे यह स्वत सिद्ध हो जाता है कि वृद्ध, कमजोर, रोगी एव जर्जरित शरीर वाला साधु एक से अधिक वस्त्र भी रख सकता है।

साध्वी के लिए चार वस्त्रो (चादरो) का विधान किया गया है। उसमे एक चादर दो हाथ की हो, दो चादरे तीन-तीन हाथ की हो और एक चार हाथ की हो। साध्वी को उपाश्रय मे रहते समय दो हाथ वाली चादर का उपयोग करना चाहिए, गोचरी एव जगल आदि जाते समय तीन-तीन हाथ वाली चादरो को क्रमश काम मे लेना चाहिए और अवशिष्ट चौथी (चार हाथ वाली) चादर को व्याख्यान के समय ओढना चाहिए। इसका तात्पर्य इतना ही है कि आहार आदि के लिए स्थान से बाहर निकलते समय एव व्याख्यान मे परिषदा के सामने बैठते समय साध्वी अपने अधिकाश अङ्गोपाङ्गो को आवृत करके बैठे, जिससे उन्हे देखकर किसी के मन मे विकार भाव जागृत न हो।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि उस समय भारतीय शिल्पकला एव वस्त्र उद्योग पर्याप्त उन्नति पर था। यन्त्रो के सहयोग के बिना ही विभिन्न तरह के सुन्दर, आकर्षक एव मजबूत वस्त्र बनाए जाते थे। अग्रेजो के भारत मे आने के पूर्व ढाका मे बनने वाली मलमल इतनी बारीक होती थी कि २० गज की मलमल का पूरा थान एक बास की नली मे समाविष्ट किया जा सकता था। आगम मे भी ऐसे वस्त्राभूषणो का उल्लेख मिलता है, जो वजन मे हलके और बहुमूल्य होते थे। इससे उस युग की शिल्प कला की उन्नति का स्पष्ट परिचय मिलता है।

इस (वस्त्र के) विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है-

मूलम्– से भि॰ परं अद्धजोयणमेराए वत्थपडिया॰ नो अभिसंधारिज्जा गमणाए ॥१४२ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ भिक्षुकी वा परमर्द्धयोजनमर्यादायाः वस्त्रप्रतिज्ञया नो अभिसन्धारयेत् गमनाय।

भंगिय-अतसीमयं अर्थात् अलसी का बना हुआ वस्त्र। – स्थानाङ्ग सूत्र, वृत्ति (आचार्य अभयदेव सूरि)

भंगिय शब्द का रेशमी वस्त्र अर्थ भी होता है और आजकल एक ऐसा रेशमी वस्त्र भी मिलने लगा है, जिसके लिए कीड़ों को मारना नहीं पड़ता। इसे टसर का रेशम कहते हैं। यह रेशम भी कीड़ों से प्राप्त होता है। ये कीड़े इसका निर्माण करने के बाद स्वत बाहर निकल जाते हैं। यह रूई की तरह होता है और उसी तरह कात कर इसका धागा बनाया जाता है। इसे भी भंगिय वस्त्र कह सकते हैं। परन्तु, साधु के लिए अलसी का बना हुआ वस्त्र यह अर्थ करना युक्ति सगत प्रतीत होता है।

– लेखक

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **वत्थपडिया॰**-वस्त्र की याचना करने हेतु। **अद्धजोयणमेराए**-आधे योजन की मर्यादा से। **परं**-आगे। **गमणाए**-जाने का। **नो अभिसंधारिज्जा**-विचार न करे।

मूलार्थ—साधु या साध्वी को वस्त्र की याचना करने के लिए आधे योजन से आगे जाने का विचार नहीं करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे वस्त्र ग्रहण करने के लिए क्षेत्र मर्यादा का उल्लेख किया गया है। साधु या साध्वी को आधे योजन से आगे के क्षेत्र मे जाकर वस्त्र लाने का सकल्प भी नहीं करना चाहिए। जैसे आगम मे साधु-साध्वी को आधे योजन से आगे का लाया हुआ आहार-पानी करने का निषेध किया गया है[1], उसी तरह प्रस्तुत सूत्र मे क्षेत्र का अतिक्रान्त करके वस्त्र ग्रहण करने का भी निषेध किया गया है।

वृत्तिकार ने इस पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है, उन्होने केवल शब्दो का अर्थ मात्र किया है। यह नहीं बताया कि यह आदेश सामान्य सूत्र से सम्बद्ध है या अभिग्रह विशेष से।

इस विषय पर और प्रकाश डालते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि॰ से जं॰ अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं जहा पिंडेसणाए भाणियव्वं। एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं बहवे साहम्मिणीओ बहवे समणमाहण॰ तहेव पुरिसंतरकडा जहा पिंडेसणाए ॥१४३॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यत्॰ स अस्वप्रतिज्ञया एकं साधर्मिकं समुद्दिश्य प्राणानि यथा पिंडैषणायां (तथैव) भणितव्यम्। एवं बहवः साधर्मिकाः एकां साधर्मिणीं वह्वय. साधर्मिण्यः बहवः श्रमणब्राह्मण ॰ तथैव पुरुषान्तरकृताः यथा पि॰डैषणायाम्।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी। **से जं॰**-वस्त्र के विषय मे इस प्रकार जाने। **अस्सिपडियाए**-जिसके पास धन नहीं है उसकी प्रतिज्ञा से। **एगं**-एक। **साहम्मियं**-साधर्मिक का। **समुद्दिस्स**-उद्देश्य रख कर। **पाणाइ**-प्राणियो की हिंसा करके। **जहा**-जैसे। **पिंडेसणाए**-पिंडैषणा अध्ययन मे आहार विषयक वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार इस स्थान में वस्त्र विषयक। **भाणियव्वं**-वर्णन कहना चाहिए। **एवं**-इसी प्रकार। **बहवे-साहम्मिया**-बहुत से साधर्मी साधु। **एगं साहम्मिणिं**-एक साधर्मिणी साध्वी तथा। **बहवे साहम्मिणीओ**-बहुत सी साध्विए और। **बहवे समणमाहण॰**-बहुत से शाक्यादि श्रमण और ब्राह्मणादि। **तहेव**-उसी प्रकार। **पुरिसतरकडा**-पुरुषान्तर कृत। **जहा**-जैसे कि-। **पिंडेसणाए**-पिंडैषणा अध्ययन मे कहा गया है।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी को वस्त्र के विषय में यह जानना चाहिए कि जिसके पास धन नहीं है उसकी प्रतिज्ञा से कोई व्यक्ति एक या अनेक साधु या साध्वियों के लिए प्राण भूत आदि की हिंसा करके वस्त्र तैयार करे तो साधु-साध्वी को वह वस्त्र नहीं लेना चाहिए।

---

१ बृहत्कल्प सूत्र, ४, १२, भगवती सूत्र, श॰ ७, उ॰ १।

यदि वह बहुत से शाक्य आदि श्रमण-ब्राह्मणों के लिए तैयार किया गया है और वह पुरुषान्तर हो गया तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। यह सारा प्रकरण पिण्डैषणा के प्रकरण की तरह समझना चाहिए।

हिन्दी विवेचन — प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु-साध्वी को आधाकर्म आदि दोष युक्त वस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति ने एक या अनेक साधुओ या एक और अनेक साध्वियो को उद्देश्य करके वस्त्र बनाया हो तो साधु-साध्वी को वह वस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि वह वस्त्र किसी शाक्य आदि श्रमण या ब्राह्मणो के लिए बनाया गया हो, परन्तु पुरुषान्तर कृत नहीं हुआ हो तो वह वस्त्र भी स्वीकार न करे। यदि वह पुरुषान्तर कृत हो गया है तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। वस्त्र ग्रहण करने या न करने की सारी विधि आहार ग्रहण करने की विधि की तरह ही है। अत. सूत्रकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रकरण को पिंडैषणा के प्रकरण की तरह समझना चाहिए। अर्थात् साधु को सदा निर्दोष वस्त्र ही ग्रहण करना चाहिए।

अब उत्तर गुणो की शुद्धि को रखते हुए वस्त्र ग्रहण की मर्यादा का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से भि॰ से जं॰ असंजए भिक्खुपडियाए कीयं वा धोयं वा रत्तं वा घट्ठं वा मट्ठं वा संपधूमियं वा तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतरकडं जाव नो॰ अह पु॰ पुरिसं॰ जाव पडिगाहिज्जा ॥१४४॥

छाया— स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ असंयत: भिक्षुप्रतिज्ञया क्रीतं वा धौत वा रक्त वा घृष्टं वा मृष्ट वा सम्प्रधूपितं वा तथाप्रकार वस्त्र अपुरुषान्तरकृतं यावत् नो प्रतिगृह्णीयात्। अथ पुनरेव जानीयात् पुरुषान्तरकृत यावत् प्रतिगृह्णीयात्।

पदार्थ — **से भि॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज॰**-वस्त्र के विषय मे फिर यह जाने कि। **असजए**-असयत-गृहस्थ ने। **भिक्खुपडियाए**-साधु के लिए यदि। **कीय वा**-वस्त्र मोल लिया हो। **धोयं वा**-धोकर रखा हो। **रत्तं वा**-रंग कर रखा हो। **घट्ठं वा**-घिसा हो। **मट्ठं वा**-मसला हो और। **संपधूमियं वा**-धूप से सुवासित किया हो तो। **तहप्पगारं**-तथा प्रकार के। **वत्थं**-वस्त्र को। **अपुरिसंतरकडं**-जो कि पुरुषान्तर कृत नहीं है। **जाव**-यावत्। **नो॰**-ग्रहण न करे। **अह पुण**-और यदि यह जाने कि-। **पुरिसं॰**-पुरुषान्तरकृत है तो। **जाव**-यावत्। **पडिगाहिज्जा**-ग्रहण कर ले।

***मूलार्थ*—संयमशील साधु या साध्वी को वस्त्र के विषय में यह जानना चाहिए कि यदि किसी गृहस्थ ने साधु के लिए वस्त्र खरीदा हो, धोया हो, रंगा हो, घिस कर साफ किया हो, शृंगारित किया हो या धूप आदि से सुगन्धित किया हो और वह पुरुषान्तरकृत नहीं हुआ है तो साधु-साध्वी उसे ग्रहण न करे। यदि वह पुरुषान्तर कृत हो गया है तो साधु-साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे उत्तर गुण मे लगने वाले दोषो से बचने का आदेश दिया गया है। इस मे बताया गया है कि जो वस्त्र साधु के लिए खरीदा गया हो[१], धोया गया हो, रगा गया हो[२], अच्छी तरह से रगड कर साफ किया गया हो, शृगारित किया गया हो या धूप[३] आदि से सुवासित बनाया गया हो तो साधु को वैसा वस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि इस तरह का वस्त्र पुरुषान्तर कृत हो गया हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि जो वस्त्र मूल से साधु के लिए ही तैयार किया गया हो उसे साधु किसी भी स्थिति-परिस्थिति मे स्वीकार न करे-चाहे वह पुरुषान्तर कृत हो या न हो, हर हालत मे वह अकल्पनीय है। परन्तु, जो वस्त्र मूल से साधु के लिए नही बनाया गया है, परन्तु उसके तैयार होने के बाद साधु के निमित्त उसमे कुछ विशेष क्रियाए की गई हैं। ऐसी स्थिति मे साधु उसे तब तक स्वीकृत नहीं कर सकता, जब तक कि वह पुरुषान्तरकृत नहीं हो गया है। यदि किसी व्यक्ति ने उसे अपने उपयोग मे ले लिया है, तो फिर साधु उसे ले भी सकता है।

इस वस्त्र प्रकरण को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ से जाइं पुण वत्थाइं जाणिज्जा, विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं, तंजहा-आईणगाणि वा सहिणाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमियाणि वा दुगुल्लाणि वा पट्टाणि वा मलयाणि वा पन्नुन्नाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जफलाणि वा फालियाणि वा कोयवाणि वा कंबलगाणि वा पावराणि वा, अन्नयराणि वा तह० वत्थाइं महद्धणमुल्लाइं लाभे संते नो पडिगाहिज्जा।

से भि० आइण्णपाउरणाणि वत्थाणि जाणिज्जा तं०-उद्दाणि वा पेसाणि वा पेसलाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा, नीलमिगाईणगाणि वा गोरमि० कणगाणि वा कणगकंताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखइयाणि वा कणगफुसियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा (विगाणि वा) आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा, अन्नयराणि तह० आईणपाउरणाणि वत्थाणि लाभे

---

१ साधु के लिए खरीदा गया वस्त्र साधु को लेना नहीं कल्पता। परन्तु, यदि उसका किसी व्यक्ति ने अपने लिए उपयोग कर लिया हो तो फिर वह वस्त्र साधु के लिए अकल्पनीय नहीं रहता है।

२ यह पाठ तीनो काल के साधुओ को दृष्टि मे रख कर रखा गया है। क्योंकि भगवान अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक के साधु-साध्वी पाचो रग के वस्त्र ग्रहण कर सकते थे। या इसका उद्देश्य किसी ऐसे रङ्ग से है जो लगाने के बाद तुरन्त उड़ जाता हो। जैसे– आजकल कुछ सेण्ट एव इतर रंगीन होते है और वस्त्र पर लगाते समय उनका धुंधला सा रंग भी आता है परन्तु वह तुरन्त उड़ जाता है। उनका प्रयोग केवल सुगन्धि के लिए किया जाता है।

३ पहले से जल रहे धूप मे उस वस्त्र को रख कर सुवासित किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

संते नो॰ ॥१४५॥

छाया— स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यानि पुन वस्त्राणि जानीयात् विरूपरूपाणि महाधनमूल्यानि, तद्यथा आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजकानि वा कायकानि वा क्षौमिकानि वा दूकूलानि वा पट्टानि वा मलयानि वा प्रनुन्नानि वा अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा देशरागाणि वा अमिलानि वा गज्जफलानि वा फालिकानि वा कोयवानि वा कम्बलकानि वा प्रावराणि वा अन्यतराणि वा तथाप्रकाराणि वा वस्त्राणि वा महाधनमूल्यानि लाभे सति न प्रतिगृण्हीयात्॥

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा आजिनप्रावरणीयानि वस्त्राणि जानीयात्, तद्यथा उद्राणि वा पैसानि वा पेशलानि वा कृष्णमृगाजिनानि वा नीलमृगाजिनानि वा, गौरमृगाजिनानि वा कनकानि वा कनककान्तीनि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनकस्पृष्टानि वा व्याघ्राणि वा व्याघ्रचर्मविचित्रितानि वा आभरणानि वा आभरणविचित्राणि वा अन्यतराणि तथाप्रकाराणि आजिनप्रावरणानि वस्त्राणि लाभे सति नो प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ— **से भिक्खू वा॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **से जाइ पुण वत्थाइ**-जिन वस्त्रो के विषय मे। **जाणिज्जा**-जाने। **विरूवरूवाइ**-नाना प्रकार के। **महद्धणमुल्लाइ**-बहुमूल्य वस्त्र। **त॰**-जैसे कि-। **आईणगाणि वा**-मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न। **साहिणाणि वा**-श्लक्ष्ण-अत्यन्त सूक्ष्म। **सहिणकल्लाणाणि वा**-सूक्ष्म और कल्याणकारी। **आयाणि वा**-भेड़ या भेड़ के सूक्ष्म रोमो से निर्मित वस्त्र। **कायाणि वा**-इन्द्र नील वर्ण की कपास से निष्पन्न। **खोमियाणि वा**-सामान्य कपास से बनाया गया वस्त्र। **दुगुल्लाणि**-गौड़ देश मे उत्पन्न होने वाली विशिष्ट-प्रकार की कपास से निष्पन्न। **पट्टाणि**-पट्टसूत्र-रेशम से निष्पन्न। **मलयाणि वा**-मलयज सूत्र से बनाया गया वस्त्र। **पन्नुन्नाणि वा**-वल्कल के ततुओ से निर्मित वस्त्र। **असुयाणि वा**-अशुक देश-विदेश मे उत्पन्न होने वाला महार्घ वस्त्र। **चीणंसुयाणि वा**-चीनाशुक-चीन देश का बना हुआ रेशमी वस्त्र। **देसरागाणि वा**-नाना प्रकार के देशो के बने हुए विशिष्ट वस्त्र या देश राग मे निर्मित वस्त्र। **अमिलाणि वा**-आमिल नामक देश मे उत्पन्न होने वाले वस्त्र। **गज्जफलाणि वा**-गजफल नामक देश के विशिष्ट वस्त्र। **फालियाणि वा**-फलिय देश मे उत्पन्न होने वाले असाधारण वस्त्र। **कोयवाणि वा**-कोयव नाम के देश के बने हुए। **कबलगाणि वा**-विशिष्ट प्रकार के कम्बल। **पावराणि वा**-प्रावरण-कम्बल विशेष तथा इसी प्रकार के। **अन्नयराणि वा**-कई एक अन्य वस्त्र विशेष। **तह॰**-तथाप्रकार के वस्त्र। **महद्धणमुल्लाइं**-जो बहुमूल्य है ऐसे वस्त्रो के। **लाभे सते**-मिलने पर। **नो पडिगाहिज्जा**-साधु उन्हे ग्रहण न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। **अइणणपाउरणाणि**-चर्म निष्पन्न पहरने वाले। **वत्थाणि वा**-वस्त्रो को। **जाणिज्जा**-जाने। **तजहा**-जैसे कि। **उद्दाणि वा**-सिधु देश मे होने वाले मत्स्य के सूक्ष्म चर्म से निष्पन्न वस्त्र। **पेसाणि वा**-सिंधु देश मे होने वाले पशुओ के सूक्ष्म चर्म से बने हुए तथा। **पेसलाणि वा**-उस चर्म पर के सूक्ष्म रोमों से निष्पन्न हुए वस्त्र तथा। **किण्हमिगाईणगाणि वा**-कृष्णमृग के चर्म के बने हुए वस्त्र। **नीलमिगाईणगाणि वा**-नीलमृग के चर्म से निष्पन्न और। **गोरमि॰**-गौर-श्वेत मृगचर्म से निष्पन्न वस्त्र। **कणगाणि वा**-कनक-सोने की झाल से बनाए गए तथा। **कणगकंताणि वा**-कनक के समान काति वाले और। **कणगपट्टाणि वा**-सोने

के रस से बनाए गए एव। **कणगखइयाणि वा**-सोने के तारो से निर्मित। **कणगफुसियाणि वा**-सोने के स्तबकों से युक्त वस्त्र। **वग्घाणि वा**-व्याघ्र चर्म निर्मित वस्त्र अथवा। **विवग्घाणि वा**-नाना प्रकार के व्याघ्र चर्म निष्पन्न वस्त्र अथवा। **विगाणि वा**-वृक चर्म से निष्पादित वस्त्र। **आभरणाणि वा**- प्रधान आभरणो से विभूषित वस्त्र अथवा। **आभरणविचित्ताणि वा**-विचित्र प्रकार के आभरणो से विभूषित और। **अन्नयराणि वा**-अन्य कई एक। **तहप्पगाराणि**-तथा प्रकार के। **आईणपाउरणाणि**-चर्म निष्पन्न पहरने योग्य। **वत्थाणि**-वस्त्र। **लाभे संते**-मिलने पर। **नो पडिगाहिज्जा**-साधु ग्रहण न करे।

_मूलार्थ_—संयमशील साधु अथवा साध्वी को महाधन से प्राप्त होने वाले नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए और मूषकादि के चर्म से निष्पन्न, अत्यन्त सूक्ष्म, वर्ण और सौन्दर्य से सुशोभित वस्त्र तथा देशविशेषोत्पन्न बकरी या बकरे के रोमों से बनाए गए वस्त्र एव देशविशेषोत्पन्न इन्द्रनील वर्ण कपास से निर्मित, समान कपास से बने हुए और गौड़ देश की विशिष्ट प्रकार की कपास से बने हुए वस्त्र, पट्ट सूत्र-रेशम से, मलय सूत्र से और वल्कल तन्तुओं से बनाए गए वस्त्र तथा अंशुक और चीनाशुक, देशराज नामक देश के, अमल देश के तथा गजफल देश के और फलक तथा कोयव देश के बने हुए प्रधान वस्त्र अथवा ऊर्ण कम्बल तथा अन्य बहुमूल्य वस्त्र-कम्बल विशेष और अन्य इसी प्रकार के अन्य भी बहुमूल्य वस्त्र, प्राप्त होने पर भी विचारशील साधु उन्हे ग्रहण न करे।

संयमशील साधु या साध्वी को चर्म एव रोम से निष्पन्न वस्त्रो के सम्बन्ध मे भी परिज्ञान करना चाहिए। जैसे- सिन्धुदेश के मत्स्य के चर्म और रोमो से बने हुए, सिन्धु देश के सूक्ष्मचर्म वाले पशुओ के चर्म एवं रोमो से बने हुए तथा उस चर्म पर स्थित सूक्ष्म रोमों से बने हुए एव कृष्ण, नील और श्वेत मृग के चर्म और रोमो से बने हुए तथा स्वर्णजल से सुशोभित, स्वर्ण के समान काति और स्वर्ण रस के स्तबकों से विभूषित, स्वर्ण तारों से खचित और स्वर्ण चन्द्रिकाओ से स्पर्शित बहुमूल्य वस्त्र अथवा व्याघ्र या वृक के चर्म से बने हुए, सामान्य और विशेष प्रकार के आभरणो से सुशोभित अन्य प्रकार के चर्म एवं रोमो से निष्पन्न वस्त्रो को मिलने पर भी संयमशील मुनि स्वीकार न करे।

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को देश या विदेश मे बने हुए विशिष्ट रेशम, सूत, चर्म एव रोमो के बहुमूल्य वस्त्रो को ग्रहण नहीं करना चाहिए। ऐसे कीमती वस्त्रो को देखकर चोरो के मन मे दुर्भाव पैदा हो सकता है और साधु के मन मे भी ममत्व भाव जागृत हो सकता है। चर्म एव मुलायम रोमो के वस्त्र के लिए पशुओ की हिसा भी होती है। अत पूर्ण अहिसक साधु के लिए ऐसे कीमती एव महारम्भ से बने वस्त्र ग्राह्य नहीं हो सकते। इसलिए भगवान ने साधु के लिए ऐसे वस्त्र ग्रहण करने का निषेध किया है।

प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय एव भारतीय सीमा के निकट के देशो में वस्त्र उद्योग काफी उन्नति पर था और उस समय मशीनरी युग से भी अधिक सुन्दर और टिकाऊ वस्त्र बनता था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस युग मे भारत आज से अधिक खुशहाल था। उसका व्यापारिक व्यवसाय अधिक व्यापक था। चीन एव उसके निकटवर्ती देशो से वस्त्र का आयात एव निर्यात होता रहता

था। इससे यह स्पष्ट जानकारी मिलती है कि उस युग मे शिल्पकला विकास की चरम सीमा पर पहुच चुकी थी और जनता का जीवनस्तर काफी उन्नत था। भारत मे गरीबी, भुखमरी एव अभाव कम था और अन्य देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध भी काफी अच्छे थे। उस युग के भारतीय औद्योगिक, व्यवसायिक एव व्यापारिक इतिहास की शोध करने वाले इतिहास वेत्ताओ के लिए प्रस्तुत सूत्र बहुत ही महत्वपूर्ण है।

वस्त्र ग्रहण करते समय किए जाने वाले अभिग्रहो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– इच्चेइयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणिज्जा चउहिं पडिमाहिं वत्थं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमापडिमा, से भि० २ उद्देसिय वत्थं जाइज्जा, तं०-जंगियं वा जाव तूलकडं वा, तह० वत्थं सयं वा णं जाइज्जा, परो० फासुयं पडि० , पढमा पडिमा (१) अहावरा दुच्चा पडिमा से भि० पेहाए वत्थं जाइज्जा गाहावई वा० कम्मकरी वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसोत्ति वा २ दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं वत्थं ? तहप्प० वत्थं सयं वा० परो० फासुयं एस० लाभे० पडि० दुच्चा पडिमा, (२) अहावरा तच्चा पडिमा– से भिक्खू वा० से जं पुण० तं अंतरिज्जं वा उत्तरिज्जं वा तहप्पगारं वत्थं सयं० पडि० , तच्चा पडिमा (३) अहावरा चउत्था पडिमा-से० उज्झियधम्मियं वत्थं जाइज्जा जं चऽन्ने बहवे समण० वणीमगा नावकंखंति तहप्प० उज्झिय० वत्थं सयं० परो० फासुयं जाव प० चउत्थापडिमा (४) इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं जहा पिंडेसणाए। सिया णं एताए एसणाए एसमाणं परो वइज्जा-आउसंतो समणा ! इज्जाहि तुमं मासेण वा दसराएण वा पंचराएण वा सुते सुततरे वा तो ते वयं अन्नयरं वत्थं दाहामो, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोइज्जा– आउसोत्ति वा ! २ नो खलु मे कप्पइ एयप्पगारं संगारं पडिसुणित्तए, अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि, से णेवं वयंतं परो वइज्जा-आउ० स० ! अणुगच्छाहि तो ते वयं अन्नं० वत्थं दाहामो, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसोत्ति ! वा २ नो खलु मे कप्पइ संगारवयणे पडिसुणित्तए० से सेवं वयंतं परो णेया वइज्जा-आउसोत्ति वा! भइणित्ति वा ! आहरेयं वत्थं समणस्स वा दाहामो, अवियाइं वयं पच्छावि अप्पणो सयट्ठाए पाणाइं ४ समारंभ-समुद्दिस्स जाव चेइस्सामो, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव नो पडिगाहिज्जा। सिया णं परो नेता वइज्जा ! आउसोत्ति वा ! २ आहर एयं वत्थं सिणाणेण वा ४

आघंसित्ता वा प० समणस्स णं दाहामो, एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा नि० से पुव्वामेव आउ० भ० ! मा एयं तुमं वत्थं सिणाणेण वा जाव पघंसाहि वा, अभि० एमेव दलयाहि, से सेवं वयंतस्स परो सिणाणेण वा पघं सित्ता दलइज्जा, तहप्प० वत्थं अफा० नो० पडिगाहिज्जा ॥ से णं परो नेता वइज्जा -भ० ! आहर एयं वत्थं सीओदगवियडेण वा २ उच्छोलेत्ता वा पहोवेत्ता वा समणस्स णं दाहामो०, एय० निग्घोसं तहेव नवरं मा एयं तुमं वत्थं सीओदग० उसि० उच्छोलेहि वा, पधोवेहि वा, अभिकंखसि० सेसं तहेव जाव नो पडिगाहिज्जा ॥ से णं परो ने० आ० भ० ! आहरेयं वत्थं कंदाणि वा जाव हरियाणि वा विसोहित्ता समणस्स णं दाहामो, एय० निग्घोसं तहेव, नवरं मा एयाणि तुमं कंदाणि वा जाव विसोहेहि, नो खलु मे कप्पइ एयप्पगारे वत्थे पडिगाहित्तए, से सेवं वयंतस्स परो जाव विसोहित्ता दलइज्जा, तहप्प० वत्थं अफासुयं नो पडिगाहिज्जा ॥ सिया से परो नेता वत्थं निसिरिज्जा, से पुव्वा० आ० भ० ! तुमं चेव णं संतयं वत्थं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जिस्सामि, केवली बूया आ०, वत्थंतेण बद्धे सिया कुंडले वा गुणे वा हिरण्णे वा सुवण्णे वा मणी वा जाव रयणावली वा पाणे वा बीए वा हरिए वा अह भिक्खूणं पु० जं पुव्वामेव वत्थं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जा ॥१४६ ॥

छाया– इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य अथ भिक्षुः जानीयात् चतसृभिः प्रतिमाभिः वस्त्रमेषितु (अन्वेष्टुं) तत्र खलु (१) इयं प्रथमा प्रतिमा–स भि० उद्दिश्य वस्त्रं याचेत, तद्यथा– स जागमिक वा यावत् तूलकृत वा तथाप्रकार वस्त्र स्वयं वा याचेत परो० प्रासुकं० प्रति० प्रथमा प्रतिमा (२) अथापरा द्वितीया प्रतिमा–स भिक्षुर्वा० प्रेक्ष्य वस्त्रं याचेत गृहपति वा० कर्मकरी वा स पूर्वमेव आलोचयेत- आयुष्मन् इति वा दास्यसि मे इतः अन्यतरद् वस्त्र ? तथाप्रकार वस्त्र स्वय वा० परो० प्रासुकमेषणीयं लाभे० प्रति०, द्वितीया प्रतिमा (३) अथापरा तृतीया प्रतिमा– स भिक्षुर्वा० स यत् पुन तमन्तरीयं वा उत्तरीय वा तथाप्रकार वस्त्रं स्वय० प्रतिगृह्णीयात्, तृतीया प्रतिमा । (४) अथापरा चतुर्थी प्रतिमा–स० उज्झितधर्मिकं वस्त्रं याचेत यच्च अन्ये बहव. श्रमण० वनीपका· नावकाक्षन्ति तथाप्रकारं उज्झित० वस्त्रं स्वयं परो० प्रासुकं यावत् प्रतिगृह्णीयात्, चतुर्थी प्रतिमा। आसां चतसृणां प्रतिमानां यथा पिंडैषणायां (अर्थात् शेषो विधिः पिंडैषणावन्नेयः)। स्यात् (कदाचित्) एतया एषणया एषयन्तं परो वदेत्–आयुष्मन् श्रमण ! गच्छ त्वं मासेन वा दशरात्रेण वा पञ्चरात्रेण वा श्वः परश्वो वा ततः ते वयं अन्यतरद् वस्त्रं दास्याम. एतद्प्रकारं निर्घोषं श्रुत्वा निशम्य स पूर्वमेव आलोचयेत आयुष्मन्!

इति वा २ न खलु मे कल्पते एतत्प्रकारं संकेतं प्रतिश्रोतुं , अभिकांक्षसि मे दातुमिदानीमेव ददस्व ? तमेवं वदन्त परो वदेत्, आयुष्मन् श्रमण ! अनुगच्छ तावत् ते वय अन्यतरद् वस्त्रं दास्यामः, स पूर्वमेव आलोचयेत आयुष्मन् इति वा २ न खलु मे कल्पते संकेतवचनं प्रतिश्रोतुं तं तदेवं वदन्त परो नेता वदेत्-आयुष्मन् इति वा भगिनि ! इति वा आहर एतद् वस्त्रं श्रमणाय दास्यामः अपि च वयं पश्चादपि आत्मन -स्वार्थं-(आत्मार्थं) प्राणानि ४ समारभ्य समुद्दिश्य यावत् चेतयिष्याम·-करिष्याम·, एतत्प्रकारं निर्घोष श्रुत्वा निशम्य तथाप्रकारं वस्त्रमप्रासुकं यावत् न प्रतिगृह्णीयात्। स्यात् परो नेता वदेत् आयुष्मन् इति वा आहर एतद् वस्त्र स्नानेन वा ४ आघर्ष्य वा प्रघर्ष्य वा श्रमणाय दास्यामः, एतत् प्रकारं निर्घोषं श्रुत्वा निशम्य स पूर्वमेव आयुष्मन् ! इति वा भगिनि ! इति मा एतत् त्व वस्त्र स्नानेन वा यावत् प्रघर्षस्व ? अभिकांक्षसि मे दातु एवमेव ददस्व ! स तस्यैव वदतः पर. स्नानेन वा प्रघर्ष्य दद्यात् तथाप्रकार वस्त्रमप्रासुकं न प्रतिगृह्णीयात्। स परो नेता वदेत् भगिनि ! आहर एतद् वस्त्रं शीतोदकविकटेन वा २ उत्क्षाल्य वा प्रक्षाल्य वा श्रमणाय दास्याम·॰ एतत्प्रकार निर्घोष तथैव नवर मा एतत् त्व वस्त्र शीतोदक॰ उष्णोदक॰ उत्क्षाल्य वा प्रक्षाल्य वा, अभिकाक्षसि, शेषं तथैव यावत् न प्रतिगृह्णीयात्। स परो नेता आ॰ भ॰ आहर एतद् वस्त्र कन्दानि वा यावत् हरितानि वा विशोध्य श्रमणाय दास्याम· एतत्प्रकार निर्घोषं, तथैव, नवरं मा एतानि त्वं कन्दानि वा यावद् विशोध्य। नो खलु मे कल्पते एतत्प्रकाराणि वस्त्राणि प्रतिग्रहीतुं, स तस्यैव वदत. परो यावत् विशोध्य दद्यात्, तथाप्रकारं वस्त्रमप्रासुक न प्रतिगृह्णीयात्। स्यात् स परो नेता वस्त्र निसृजेत्। स पूर्वमेव॰ आ॰ भ॰ ! त्वं चैव सान्तिक वस्त्र अन्तोपान्तेन प्रत्युपेक्षिष्ये, केवली ब्रूयात आदानमेतत् वस्त्रान्तेन बद्धं स्यात्, कुण्डलं वा गुणं वा हिरण्यं वा, सुवर्णं वा मणि वा यावत् रत्नावली वा, प्राणी वा बीजं वा हरित वा, अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्टमेतत् यत् पूर्वमेव वस्त्रं अन्तोपान्तेन प्रतिलेखयेत्।

पदार्थ— इच्चेइयाइं-ये पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण। आयतणाइं-वस्त्रैषणा के स्थान। उवाइकम्म-इनको अतिक्रम करके अर्थात् छोड़कर। अह-अथ। भिक्खू-भिक्षु-साधु। चउहिं पडिमाहिं-चार प्रतिमाओ-अभिग्रह विशेषो से। वत्थं-वस्त्र की। एसित्तए-गवेषणा करनी हो तो वह उन्हे। जाणिज्जा-जाने। तत्थ-उन चार प्रतिमाओ मे से। इमा-यह। पढमा-पहली। पडिमा-प्रतिमा है। से भिक्खू वा २-वह साधु या साध्वी। उद्देसिय-मन मे निश्चित किए हुए। वत्थं-वस्त्र की। जाइज्जा-याचना करे। तंजहा-जैसे कि। जंगिय वा-जगम जीवो के रोमो से निष्पन्न होने वाले। जाव-यावत्। तूलकड वा-अर्कतूल निर्मित वस्त्र। तहप्पगारं-तथाप्रकार के। वत्थं-वस्त्र की। सयं वा णं-स्वयं। जाइज्जा-याचना करे या। परो-गृहस्थ देवे तो। फासुयं-प्रासुक और एषणीय जानकर। पडि॰-उसे ग्रहण कर ले। पढमा पडिमा-यह पहली प्रतिमा है। अहावरा दोच्चा पडिमा-अब दूसरी प्रतिमा के विषय मे कहते है। से भि॰-वह साधु या साध्वी। पेहाए-देखकर। वत्थं-वस्त्र की। जाइज्जा-याचना करे। गाहावई वा॰-गृहपति यावत्। कम्मकरी वा-दास दासी आदि गृहस्थो से। से-वह साधु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोएज्जा-वस्त्र को देखे, देखकर इस तरह कहे। आउसोत्ति वा २-आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा भगिनि !

बहिन! क्या तुम। मे-मुझे। इत्तो-इन वस्त्रों मे से। अन्नयरं-किसी। वत्थं-वस्त्र को। दाहिसि-दोगे ? तहप्प०-तथाप्रकार के। वत्थं-वस्त्र की। सय वा०-स्वय याचना करे या। परो-यदि गृहस्थ बिना मागे ही देवे तो। फासुयं-प्रासुक तथा। एस०-एषणीय जानकर। लाभे०-मिलने पर। पडि०-ग्रहण कर ले। दुच्चा पडिमा-यह दूसरी प्रतिमा-अभिग्रह विशेष है। अहावरा तच्चा पडिमा-अब तीसरी प्रतिमा को कहते हैं। से भिक्खू वा०-वह साधु या साध्वी। से ज पुण०-फिर वस्त्र के सम्बन्ध मे जाने। तं०-जैसे कि। अंतरिज्जं वा-गृहस्थ का भीगा हुआ अथवा। उत्तरिज्ज वा-गृहस्थ के पहनने का उत्तरासन। तहप्पगार-तथाप्रकार के। वत्थ-वस्त्र की। सयं-स्वय याचना करे या गृहस्थ बिना मागे ही स्वय देवे तो प्रासुक और एषणीय जानकर मिलने पर। पडि०-ग्रहण कर ले। तच्चा पडिमा-यह तीसरी प्रतिमा है। अहावरा चउत्था पडिमा-अब चौथी प्रतिमा को कहते है। से भिक्खू वा०-वह-सयमशील साधु या साध्वी। उज्झियधम्मियं-उत्सृष्ट धर्म वाला अर्थात् जो गृहस्थ ने भोग लिया है। और जो फिर उसके काम में आने वाला नहीं इस प्रकार के। वत्थं-वस्त्र की। जाइज्जा-याचना करे। ज च-और जिसको। अन्ने-अन्य। बहवे-बहुत से। समण०-शाक्यादि भिक्षु यावत्। वणीमगा-भिखारी लोग। नावकंखति-नहीं चाहते। तहप्प०-तथाप्रकार के। उज्झिय०-उज्झित धर्म वाले। वत्थं-वस्त्र को। सय-स्वय मांगे। परो०-गृहस्थ दे तो। फासुय-प्रासुक। जाव-यावत् एषणीय जानकर। पडिगा०-ग्रहण कर ले। चउत्था पडिमा-यह चौथी प्रतिमा कही है। इच्चेयाण-इन। चउण्हं पडिमाणं-चार प्रतिमाओं के विषय में। जहा-जैसे। पिण्डेसणाए-पिण्डैषणा अध्ययन मे वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहा समझना चाहिए। ण-वाक्यालंकार मे है। सिया-कदाचित्। एताए-इन पूर्वोक्त। एसणाए-एषणा अर्थात् वस्त्रैषणा से। एसमाण-वस्त्र की गवेषणा करने वाले साधु के प्रति। परो-कोई अन्य गृहस्थ। वइज्जा-कहे कि। आउसंतो समणा-आयुष्मन् श्रमण। तुमं इज्जाहि-तुम इस समय जाओ। किन्तु। मासेण वा-एक मास के बाद अथवा। दसराएण वा-दस दिन के बाद अथवा। पचराएण वा-पाच दिन के बाद अथवा। सुते सुततरे वा-कल या कल के अन्तर से तुम आना। तो-तब। वय-हम। ते-तेरे को। वत्थ-वस्त्र। दाहामो-देवेंगे। एयप्पगार-इस प्रकार के। निग्घोसं-शब्द को। सुच्चा-सुनकर। निसम्म-हृदय मे धारण कर। से-वह-साधु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोइज्जा-देखे और देखकर इस प्रकार कहे। आउसोत्ति वा०-आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनि! नो मे कप्पइ-मुझे नहीं कल्पता। एयप्पगार-इस प्रकार का। सगार-प्रतिज्ञा वचन। पडिसुणित्तए-सुनना अर्थात् मैं आपके इस प्रतिज्ञा वचन को स्वीकार नहीं कर सकता यदि तुम। मे-मुझे। दाउ-देना। अभिकंखसि-चाहते हो तो। इयाणीमेव-इसी समय। दलयाहि-दे दो। से एव वयत-उस साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि। परो-गृहस्थ। वइज्जा-कहे कि। आउ० स०-आयुष्मन् श्रमण! अणुगच्छाहि-अब तो तुम जाओ, थोड़े समय के पश्चात् तुम लेने आ जाना। तो-उस समय पर। वयं-हम। ते-तुझे। अन्न०-कोई। वत्थं-वस्त्र। दाहामो-दे देंगे। से पुव्वामेव आलोइज्जा-वह साधु पहले ही देखे और देखकर गृहस्थ के प्रति कहे। आउसोत्ति वा २-आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनि। संगारवयणे-प्रतिज्ञा युक्त वचन। पडिसुणित्तए०-स्वीकार करना। नो खलु मे कप्पइ-मुझे नहीं कल्पता। यदि मुझे तुम देना चाहते हो तो इसी समय दे दो। सेवं वयतं-इस प्रकार बोलते हुए भिक्षु के प्रति। से परो णेया-वह नेता-गृहस्थ घर के किसी व्यक्ति को यदि। वइज्जा-कहे कि। आउसोत्ति वा-हे आयुष्मन्! अथवा। भइणित्ति वा-हे बहिन! एयं वत्थं-वह वस्त्र। आहर-लाओ। समणस्स-साधु को। दाहामो-देंगे। अवियाइं-यद्यपि। वयं-हम। पच्छावि-पीछे भी। अप्पणो सयट्ठाए-अपने लिए। पाणाइं-प्राणियो का। समारब्भ-समारम्भ करके। समुद्दिस्स-उद्देश्य

करके। जाव-यावत्। चेइस्सामो-वस्त्र बना लेंगे। एयप्पगारं-इस प्रकार के। निग्घोस-शब्द को। सुच्चा-सुन कर। निसम्म-विचार कर। तहप्पगारं-तथाप्रकार के। वत्थ-वस्त्र को। अफासुयं-अप्रासुक। जाव-यावत् अनेषणीय जानकर। नो पडिगाहिज्जा-ग्रहण न करे। णं-वाक्यालंकार मे है। सिया-कदाचित्। परो नेता-अन्य गृहस्थ-गृहस्वामी यदि। वइज्जा-घर के किसी स्त्री या पुरुष को इस प्रकार आमन्त्रित करता हुआ कहे। आउसोत्ति वा २-आयुष्मन्! अथवा बहन! एय वत्थ-वह वस्त्र। आहर-ला, इसको। सिणाणेण वा ४-स्नानादि सुगन्धित द्रव्यो से आघर्षण करके। प०-प्रघर्षण करके। समणस्स-श्रमण-साधु को। दाहामो-देगे। णं-वाक्यालकार मे है। एयप्पगारं-इस प्रकार के निर्घोष शब्द को। सुच्चा-सुनकर। निसम्म-हृदय मे विचार कर। से-वह साधु। पुव्वामेव-पहले ही देख कर कहे कि। आउ०-हे आयुष्मन्! अथवा। भ०-हे भगिनि! तुम-तुम। एयं वत्थं-इस वस्त्र को। सिणाणेण वा-स्नानादि से। जाव-यावत्। मा पघंसाहि-मत प्रघर्षित करो? अभि०-यदि तुम देना चाहते हो तो। एमेव दलयाहि-इसी तरह दे दो? सेव वयतस्स-उसके इस प्रकार कहने पर। से परो-वह गृहस्थ यदि। सिणाणेण वा-स्नानादि से। पघसित्ता-प्रघर्षित करके। दलइज्जा-देवे तो। तहप्प०-तथाप्रकार के। वत्थं-वस्त्र को। अफासुय-अप्रासुक जानकर। नो प०-ग्रहण न करे। ण-वाक्यालकार मे है। से परो-वह गृहस्थ। नेता-गृह स्वामी यदि घर के किसी भी व्यक्ति को। वइज्जा-कहे। भ०-हे भगिनि! आहर-ला। एयं वत्थ-वह वस्त्र उसको। सीओदगवियडेण वा-निर्मल शीतल या उष्ण जल से। उच्छोलेत्ता वा-उत्क्षालन करके। पहोवेत्ता वा-प्रक्षालन करके। समणस्स-श्रमण-साधु को। दाहामो-देंगे। णं-वाक्यालकार मे। एय०-इस प्रकार के। निग्घोस-निर्घोष-शब्दो को सुनकर। तहेव-उसी प्रकार कहे जैसे कि पूर्व कह चुके हैं। नवरं-इतना विशेष है तब साधु उस गृहस्थ या स्त्री के प्रति सम्बोधन करता हुआ कहे। तुम-तुम। एय वत्थं-इस वस्त्र को। सीओदग०-शीतोदक से। उसि०-उष्णोदक से। मा-मत। उच्छोलेहि वा-उत्क्षालन करो तथा। पहोवेहि वा-प्रक्षालन मत करो। अभिकखसि-यदि तुम चाहते हो मुझे देना तो इसी प्रकार दे दो। सेसं-शेष वर्णन। तहेव-उसी प्रकार है जैसे कि पूर्व लिखा जा चुका है। जाव-यावत् धोकर देवे तो। नो पडिगाहिज्जा-उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। से-वह। परो-अन्य गृहस्थ। ने०-घर का स्वामी कहे कि। आ० भ०-हे आयुष्मन्। अथवा हे भगिनि!। आहर-लाओ। एय वत्थं-यह वस्त्र, इसे। कदाणि वा-कन्द। जाव-यावत्। हरियाणि वा-हरी से। विसोहित्ता-विशुद्ध करके। समणस्स-श्रमण-साधु को। दाहामो-देंगे। ण-वाक्यालंकार मे। एयप्पगार-इस प्रकार के। निग्घोसं-निर्घोष-शब्द को सुनकर। तहेव-उसी प्रकार-अर्थात् शेष वर्णन पूर्ववत् ही है। नवरं-इतना विशेष है कि तब साधु गृहस्थ के प्रति कहे कि। तुम-तुम। एयाणि कदाणि-इन कन्दादि से। जाव-यावत् हरियाली से वस्त्र को। मा विसोहेहि-विशुद्ध मत करो। खलु-निश्चयार्थ मे है। मे-मुझे। नो कप्पइ-नहीं कल्पता। एयप्पगारे-इस प्रकार के। वत्थे-वस्त्रो का। पडिगाहित्तए-ग्रहण करना। सेव वयतस्स-इस प्रकार कहते हुए साधु के। से-वह। परो-गृहस्थ। जाव-यावत् कन्दादि से। विसोहित्ता-विशुद्ध कर। दलइज्जा-देवे तो। तहप्प०-तथा प्रकार के-। वत्थं-वस्त्र को। अफासुय-अप्रासुक और अनेषणीय जानकर। नो पडिगाहिज्जा-ग्रहण न करे। सिया-कदाचित्। से-वह। परो-अन्य। नेता-गृहस्वामी। वत्थं-वस्त्र को घर से लाकर। निसिरिज्जा-साधु को देवे तो। से-वह साधु। पुव्वा०-पहले ही देखे और देखकर। आ० भ०-आयुष्मन् गृहस्थ! या हे भगिनि-बहन! तुमं चेव-तुम्हारा ही। संतियं वत्थं-यह वस्त्र है मैं इसकी। अंतोअंतेणं-अन्तप्रान्त अर्थात् चारो कोनो से। पडिलेहिज्जिस्सामि-प्रतिलेखना करूंगा अर्थात् इसे चारों ओर से अच्छी तरह से देखूंगा, क्योंकि। केवली

बूया-केवली भगवान कहते हैं कि। आ०-बिना प्रतिलेखना किए वस्त्र का लेना कर्म बन्धन का कारण है। **सिया**-कदाचित्। **वत्थतेण**-वस्त्र के अन्त मे। **बद्धे**-कुछ बन्धा हुआ हो यथा। **कुंडले वा**-कुडल। **गुणे वा**-धागा-डोरा। **हिरण्णे**-हिरण्य-चादी आदि अथवा। **सुवण्णे वा**-सुवर्ण-सोना अथवा। **मणी वा**-मणिरत्न। **जाव**-यावत्। **रयणावली वा**-रत्नावली-रत्नो की माला आदि। **पाणे वा**-कोई प्राणी। **बीए वा**-बीज अथवा। **हरिए वा**-हरी आदि। **अह**-अथ। **भिक्खूण**-भिक्षुओ के लिए। पु०-पहले ही तीर्थंकरादि ने आदेश दे रक्खा है। **ज**-जो कि साधु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **वत्थं**-वस्त्र को। **अंतोअंतेण**-अन्तप्रान्त से-चारों ओर से। **पडिलेहिज्जा**-प्रतिलेखना करे, अर्थात् प्रतिलेखना करके ग्रहण करे।

मूलार्थ—वस्त्रैषणा के इन पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण दोषो को छोड़कर संयमशील साधु अथवा साध्वी इन चार प्रतिमाओ-अभिग्रह विशेषो से वस्त्र की गवेषणा करे, यथा– ऊन आदि के वस्त्रो का सकल्प कर उद्देश्य रख कर स्वयं वस्त्र की याचना करे या गृहस्थ ही बिना मांगे वस्त्र देवे, यदि प्रासुक होगा तो लूंगा, यह प्रथम प्रतिमा है। दूसरी प्रतिमा– देख कर वस्त्र की याचना करूंगा। तीसरी प्रतिमा– गृहस्थ का पहना हुआ वस्त्र लूंगा। चौथी प्रतिमा -उज्झित धर्म वाला वस्त्र लूगा, जिसे अन्य शाक्यादि श्रमण न चाहते हो। इन प्रतिमाओ– अभिग्रहो को धारण करने वाला साधु अन्य साधुओ की निन्दा न करे तथा स्वयं अहंकार भी न करे, किन्तु जो जिनाज्ञा में चलने वाले है वे सब पूज्य है इस प्रकार की समाधि अर्थात् समभाव से विचरे। वस्त्र की गवेषणा करते हुए साधु को यदि कोई गृहस्थ कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! अब तो तुम चले जाओ। किन्तु मासादि के अन्तर से अर्थात् एक मास या दस दिन अथवा पांच दिन आदि के अनन्तर तुम लेने यहा आना, तब साधु उस गृहस्थ के प्रति कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! मुझे यह प्रतिज्ञापूर्वक वचन सुनना नहीं कल्पता। अत यदि तुम देना चाहते हो तो अभी दे दो। इस पर यदि गृहस्थ कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! अभी तुम जाओ, थोडे समय के अनन्तर आकर वस्त्र ले जाना। तब भी मुनि यही कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! मुझे यह सकेत पूर्वक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता, यदि तुम देना चाहते हो तो इसी समय दे दो। तब गृहस्थ ने किसी निजी पुरुष या बहिन आदि को बुलाकर कहा कि यह वस्त्र इस साधु को दे दो। हम पीछे अपने लिए प्राणियो का समारम्भ करके और बना लेंगे। गृहस्थ के इस प्रकार के शब्दों को सुनकर पश्चात्कर्म लगने से उस वस्त्र को अप्रासुक तथा अनेषणीय जान कर साधु ग्रहण न करे। और यदि घर का स्वामी अपने परिवार से कहे कि लाओ इस वस्त्र को जल से धोकर और सुगन्धित द्रव्यो से घर्षित करके इस साधु को देवें, तब साधु उसे ऐसा करने से मना करे। उसके मना करने-निषेध करने पर भी यदि गृहस्थ उक्त क्रिया करके वस्त्र देना चाहे तो साधु उस वस्त्र को कदापि ग्रहण न करे एवं यदि शीतल अथवा उष्ण जल से धोकर देना चाहे और रोकने पर भी न रुके तो साधु उस वस्त्र को भी स्वीकार न करे। इसी प्रकार यदि वस्त्र में कन्द-मूल आदि वनस्पति बान्धी हुई हो या रखी पड़ी हो उसको अलग कर के देना चाहे तो भी न ले। और यदि गृहस्थ साधु को वस्त्र दे ही दे तो साधु बिना प्रतिलेखना किए, बिना अच्छी तरह देखे-भाले उस वस्त्र को कदापि ग्रहण न करे, कारण कि केवली भगवान कहते हैं कि बिना प्रतिलेखना के वस्त्र का ग्रहण कर्म बन्धन का हेतु होता है, सम्भव है वस्त्र के किसी किनारे में

कुण्डल, डोरा, चान्दी, सोना, मणि यावत् रत्नावली आदि बंधे हुए हों अथवा प्राणी बीज और हरी सब्जी आदि बंधी हुई हों। इसलिए तीर्थंकरादि ने पहले ही मुनियों को आज्ञा प्रदान की है कि साधु बिना प्रतिलेखना किए इन वस्त्रों को ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे वस्त्र ग्रहण करने की चार प्रतिज्ञाओ का वर्णन किया गया है– १ उद्दिष्ट, २ प्रेक्षित, ३ परिभुक्त, ४ उत्सृष्ट धार्मिक। १–अपने मन में पहले सकल्पित वस्त्र की याचना करना उद्दिष्ट प्रतिज्ञा है। २–किसी गृहस्थ के यहा वस्त्र देखकर उस देखे हुए वस्त्र की ही याचना करना प्रेक्षित प्रतिज्ञा है। ३–गृहस्थ के अन्तर परिभोग या उत्तरीय परिभोग या उसके पहने हुए वस्त्र की याचना करना परिभुक्त प्रतिज्ञा है। ४–मैं वही वस्त्र ग्रहण करूगा जो कि उत्सृष्ट धर्म वाला–फैंकने योग्य है। इस तरह के अभिग्रहो को धारण करके वस्त्र की याचना करने की विधि ठीक उसी तरह से बताई गई है, जैसे पिडैषणा अध्ययन मे आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख किया गया है।

इसमे दूसरी बात यह बताई गई है कि यदि कोई गृहस्थ वस्त्र की याचना करते समय साधु से यह कहे कि आप मास या १०–१५ दिन के पश्चात् आकर वस्त्र ले जाना, तो साधु उसकी इस बात को स्वीकार न करे। वह स्पष्ट कहे कि यदि आपकी वस्त्र देने की इच्छा हो तो अभी दे दो, अन्यथा कुछ दिन के बाद नहीं आऊगा। इस निषेध के पीछे दो कारण हैं– एक तो यह है कि यदि उस समय गृहस्थ के पास वस्त्र नहीं है तो वह साधु के लिए नया वस्त्र खरीद कर ला सकता है या उसके लिए और कोई सावद्य क्रिया कर सकता है। दूसरी बात यह है कि किसी कारणवश साधु निश्चित समय पर नहीं पहुच सके तो उसे भाषा समिति मे दोष लगेगा।

यदि किसी गृहस्थ की वस्त्र की दुकान हो और उसमे कुछ दिन मे वस्त्र आने वाला हो तो साधु कुछ समय के बाद भी वहा जाकर वस्त्र ला सकता है। क्योकि, उसमे उसके लिए कोई क्रिया नहीं की गई है। परन्तु, इस कार्य के लिए साधु को निश्चित समय के लिए बन्धना नहीं चाहिए। यदि उसे यह ज्ञात हो जाए कि कुछ समय बाद आने वाला वस्त्र निर्दोष है तो वह गृहस्थ से इतना ही कहे कि जैसा अवसर होगा देखा जाएगा। परन्तु, यह न कहे कि मैं अमुक समय पर आकर ले जाऊगा। वह इतना कह सकता है कि यदि सम्भव हो सका तो मैं अमुक समय पर आने का प्रयत्न करूगा।

इस तरह साधु को सभी दोषो से रहित निर्दोष वस्त्र को अच्छी तरह देखकर ग्रहण करना चाहिए। ऐसा न हो कि उसके किसी कोने मे कोई सचित्त या अचित्त वस्तु बन्धी हो या उस पर कोई सचित्त वस्तु लगी हो। अत: वस्त्र ग्रहण करने से पूर्व साधु को इसका सम्यक्तया अवलोकन कर लेना चाहिए।

इस विषय पर और विस्तार से विचार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि० से जं० सअंडं० ससंताणं तहप्प० वत्थं अफा० नो प०॥ से भि० से जं अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं अनलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं रोइज्जंतं न रुच्चइ तह० अफा० नो प०॥ से भि० से जं० अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं रोइज्जंतं रुच्चइ तह वत्थं फासु० पडि०॥ से भि० नो नवए मे वत्थेत्ति कट्टु नो बहुदेसिएण सिणाणेण वा जाव पघंसिज्जा॥ से भि० नो नवए

मे वत्थेति कट्टु नो बहुदे० सीओदगवियडेण वा २ जाव पहोइज्जा ॥ से भिक्खू वा २ दुब्भिगंधे मे वत्थेत्तिकट्टु नो बहु० सिणाणेण तहेव बहुसीओ० उस्सिं० आलावओ ॥१४७॥

छाया– स भिक्षुः० स यत् साड० ससन्तानक तथाप्रकारं वस्त्रमप्रासुकं न प्रतिगृह्णीयात्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् अल्पाडं यावत् अल्पसन्तानक-मनलमस्थिरमध्रुव-मधारणीय रोच्यमानं न रोचते तथाप्रकारमप्रासुकं० न प्रतिगृह्णीयात्। स भिक्षु० स यत् अल्पांड यावत् अल्पसन्तानकमलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं रोच्यमानं रोचते तथाप्रकारं वस्त्रं प्रासुकं प्रतिगृह्णीयात्। स भिक्षु० नो नवं मे वस्त्रमिति कृत्वा नो बहुदेश्येन स्नानेन वा यावत् प्रघर्षयेत्, स भिक्षु० नो नव मे वस्त्रमितिकृत्वा नो बहुदेश्येन० शीतोदकविकटेन वा यावत् प्रधावेत् (प्रक्षालयेत्)। स भिक्षुर्वा २ दुर्भिगन्ध मे वस्त्रमिति कृत्वा नो बहुदेश्येन० स्नानेन तथैव बहुशीतोदकेन वा उष्णोदकविकटेन वा आलापकः।

पदार्थ– से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। से ज०-वस्त्र के सम्बन्ध मे जाने, जैसे कि-। सअडं-अडो से युक्त। जाव-यावत्। ससताणग-मकड़ी के जाले आदि से युक्त। तहप्प०-तथा प्रकार के। वत्थं-वस्त्र को। अफा०-अप्रासुक जानकर। नो पडि०-ग्रहण न करे। से भि०-वह साधु या साध्वी। से जं०-वस्त्र के सम्बन्ध मे जाने, यथा। अप्पड-अडो से रहित। जाव-यावत्। अप्पसंताणग-मकड़ी के जालो से रहित। अनल-अभीष्ट कार्य करने मे असमर्थ। अथिर-अस्थिर-जीर्ण। अधुवं-अध्रुव-जो कि थोड़े काल की आज्ञा होने से ध्रुव नहीं है। अधारणिज्ज-धारण करने के अयोग्य। रोइज्जत-अच्छा सुन्दर वस्त्र देते हुए भी। न रुच्चइ-दाता को नहीं रुचता अर्थात् दाता का मन प्रसन्न न हो अथवा यदि वह वस्त्र साधु को भी रुचता न हो-अनुकूल न हो तो। तहप्प०-उस वस्त्र को। अफा०-अप्रासुक जानकर। नो पडिगाहिज्जा-ग्रहण न करे।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। से जं०-वस्त्र को जाने, यथा-। अप्पड-अडों से रहित । जाव-यावत्। अप्पसताणग-मकड़ी आदि के जालो से रहित। अलं-अभीष्ट कार्य करने मे समर्थ। थिरं-स्थिर और। धुव-ध्रुव-जिसकी साधु को सदा के लिए आज्ञा दे दी गई हो। धारणिज्ज-धारण करने के योग्य तथा। रोइज्जतं-गृहस्थ की देने की रुचि को देख कर यदि। रुच्चइ-साधु को रुचे तो। तहप्प०-तथाप्रकार के। वत्थ-वस्त्र को। फासु०-प्रासुक जान कर मिलन पर। पडि० -साधु ग्रहण कर ले। से भि० २-वह साधु या साध्वी। तिकट्टु-ऐसा विचार कर कि। मे-मेरे पास। नवए-नवीन। वत्थ-वस्त्र। नो-नहीं है। बहुदेसिएण-थोड़े बहुत। सिणाणेण वा-स्नानादि सुगन्धित द्रव्य से। जाव-यावत्। नो पघसिज्जा-प्रघर्षित न करे। से भि०२-वह साधु अथवा साध्वी। मे-मेरे पास। नो-नही है। नवए-नवीन। वत्थ-वस्त्र। तिकट्टु-ऐसे विचार कर। बहुदेसि०-थोड़े बहुत। सीओदगवियडेण वा-शीतोदक अर्थात् निर्मल शीतल जल से तथा उष्ण जल से। जाव-यावत्। नो पहोइज्जा-प्रक्षालन न करे अर्थात् विभूषा के लिए एक या एक से अधिक बार न धोए। से भिक्खू वा २-वह साधु या साध्वी। मे-मेरा। वत्थ-वस्त्र। दुब्भिगधे-दुर्गन्ध युक्त है। तिकट्टु-ऐसा विचार कर। बहुदे०-थोड़े बहुत। सिणाणेण-सुगन्धित द्रव्य से। तहेव-उसी प्रकार। बहुसीओ०-बहुत से शीतल जल से तथा। उसिणो-उष्ण जल से। नो०-नहीं धोए। आलावओ-यह आलापक भी पूर्ववत् ही है।

मूलार्थ—**यदि कोई वस्त्र अण्डो एवं मकड़ी के जालो आदि से युक्त हो तो सयमनिष्ठ साधु-साध्वी को ऐसा अप्रासुक वस्त्र मिलने पर भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि कोई वस्त्र अण्डो और मकड़ी के जाले आदि से रहित है, परन्तु जीर्ण-शीर्ण होने के कारण अभीष्ट कार्य की सिद्धि मे असमर्थ है, या गृहस्थ ने उस वस्त्र को थोड़े काल के लिए देना स्वीकार किया है, अत· ऐसा वस्त्र जो पहरने के अयोग्य है और दाता उसे देने की पूरी अभिलाषा भी नहीं रखता तथा साधु को भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होता हो तो साधु को ऐसे वस्त्र को अप्रासुक एव अनेषणीय जानकर छोड़ देना चाहिए। यदि वस्त्र अण्डादि से रहित, मजबूत और धारण करने योग्य है, दाता की देने की पूरी अभिलाषा है और साधु को भी अनुकूल प्रतीत होता है तो ऐसे वस्त्र को साधु प्रासुक जानकर ले सकता है। मेरे पास नवीन वस्त्र नहीं है, इस विचार से कोई साधु-साध्वी पुरातन वस्त्र को कुछ सुगन्धित द्रव्यो से आघर्षण-प्रघर्षण करके उसमे सुन्दरता लाने का प्रयत्न न करे। इस भावना को लेकर वे ठंडे (धोवन) या उष्ण पानी से विभूषा के लिए मलिन वस्त्र को धोने का प्रयत्न भी न करे। इसी प्रकार दुर्गन्धमय वस्त्र को भी सुगन्धयुक्त बनाने के लिए सुगन्धित द्रव्यो और जल आदि से धोने का प्रयत्न भी न करे।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को ऐसा वस्त्र स्वीकार करना चाहिए, जो अण्डे एव मकडी के जालो या अन्य जीव- जन्तुओ से युक्त हो। इसके अतिरिक्त वह वस्त्र भी साधु के लिए अग्राह्य है, जो अण्डो आदि से युक्त तो नहीं है, परन्तु जीर्ण-शीर्ण होने के कारण पहनने के अयोग्य है और गृहस्थ भी उसे कुछ दिन के लिए ही देना चाहता है और साधु को भी वह पसन्द नहीं है। अत जो वस्त्र अडो आदि से रहित हो, मजबूत हो, गृहस्थ की देने के लिए पूरी अभिलाषा हो और साधु के मन को भी पसन्द हो तो ऐसा वस्त्र साधु ले सकता है।

इसमे दूसरी बात यह बताई गई है कि यदि कोई वस्त्र मैला हो गया हो या दुर्गन्धमय हो तो साधु को विभूषा के लिए उसे पानी एव सुगन्धित द्रव्यो से रगड कर सुन्दर एव सुवासित बनाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वृत्तिकार ने इस पाठ को जिनकल्पी मुनि से सम्बद्ध माना है। उनका कहना है कि यदि जिनकल्पी मुनि के वस्त्र मैले होने के कारण दुर्गन्धमय हो गए हो तब भी उन्हे उस वस्त्र को पानी एव सुगन्धित द्रव्यो से धोकर साफ एव सुवासित नहीं करना चाहिए[1]।

'अधारणिज्ज' पद की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार का कहना है कि लक्षण हीन उपधि को धारण करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का उपघात होता है[2]। और **'अनल अस्थिरं अध्रुव** और

---

१ अपि च-स भिक्षुर्यद्यपि मलोपचितत्वाद् दुर्गन्धि वस्त्र स्यात्, तथापि तदपनयनार्थं सुगन्धिद्रव्योदकादिना नो धावनादि कुर्याद् गच्छनिर्गत , तदन्तर्गतस्तु यतनया प्रासुकोदकादिना लोकोपघातससक्तिभयात् मलापनयनार्थं कुर्यादपीति।

— आचाराङ्ग वृत्ति।

२ चत्तारि देविया भागा, दोय भागा य माणुसा।
आसुरा य दुवे भागा, मज्झे वत्थस्स रक्खसो ॥१ ॥
देविएसुत्तमो लाभो, माणुसेसु य मज्झिमो।
आसुरेसु अ गेलन्न, मरण जाण रक्खसे ॥२ ॥
स्थापना चेयम्। किञ्च-
लक्खणहीणो उवही उवहणइ नाणदसणचरित्त ॥ इत्यादि,

अधारणीयं' इन चारो पदो के १६ भग बनते हैं, उनमे १५ भग अशुद्ध माने गए हैं और अन्तिम भग शुद्ध माना गया है[१]। कुछ प्रतियो मे '**रोइज्जत**' के स्थान पर '**देइज्जंतं**' और कुछ प्रतियो मे '**वइज्जंतं**' पाठ भी उपलब्ध होता है।

वस्त्र प्रक्षालन करने के बाद उसे धूप मे रखने के सम्बन्ध मे उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

---

१ स्थापनायत्रम्

४	अल	स्थिर	ध्रुव	धारणीय
१	०	०	०	०
२	०	०	०	१
३	०	०	१	०
४	०	०	१	१
५	०	१	०	०
६	०	१	०	१
७	०	१	१	०
८	०	१	१	१
९	१	०	०	०
१०	१	०	०	१
११	१	०	१	०
१२	१	०	१	१
१३	१	१	०	०
१४	१	१	०	१
१५	१	१	१	०
१६	१	१	१	१

मूलम्– से भिक्खू वा० अभिकंखिज्ज वत्थं आयावित्तए वा प० तहप्पगारं वत्थं नो अणंतरहियाए जाव पुढवीए संताणए आयाविज्ज वा प० ॥ से भि० वत्थं आ० प० त० वत्थं थूणंसि वा गिहेलुगंसि वा उसुयालंसि वा कामजलंसि वा अन्नयरे तहप्पगारे अंतलिक्खजाए दुब्बद्धे दुन्निक्खित्ते अणिकंपे चलाचले नो आ० नो प० ॥ से भिक्खू वा० अभि० आयावित्तए वा तह० वत्थं कुडियंसि वा भित्तंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अन्नयरे वा तह० अंतलि० जाव नो आयाविज्ज वा प० ॥ से भि० वत्थं आया० प० तह० वत्थं खंधंसि वा मं० मा० पासा० ह० अन्नयरे वा तह० अंतलि० नो आयाविज्ज वा० प०। से० तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा २ अहेज्झामथंडिल्लंसि वा जाव अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ सं० वत्थं आयाविज्ज वा पया०, एयं० खलु० सया जइज्जासि ॥१४८ ॥ त्तिबेमि ॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकाक्षेत वस्त्रमातापयितुं वा परितापयितुं तथाप्रकारं वस्त्रं नो अनन्तरहिताया यावत् पृथिव्या सतानायाम् आतापयेद् वा परितापयेत्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकांक्षेत वस्त्रमातापयितु वा परितापयितुं वा तथाप्रकार वस्त्रं स्थूणायां वा गिहेलुके वा उदूखले वा कामजले वा अन्यतरस्मिन् तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कंपे चलाचले नो आतापयेत् वा नो परितापयेद् वा। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा० अभिकांक्षेत आतापयितु वा परितापयितुं वा, तथाप्रकारं वस्त्रं कुड्ये वा भित्तौ वा शिलायां वा लेलौ वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते यावत् नो आतापयेत् वा प्रतापयेद् वा। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा वस्त्रमातापयितुं वा प्रतापयितुं वा तथाप्रकारं वस्त्रं स्कन्धे वा मञ्चके वा माले वा प्रासादे वा हर्म्ये वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकार अन्तरिक्षजाते नो आतापयेत् वा परितापयेद् वा। स तदादाय एकान्तमपक्रामेत, अपक्रम्य अध· दग्धस्थंडिले वा यावत् अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थडिले प्रतिलिख्य २ प्रमृज्य २ ततः संयतमेव वस्त्रमातापयेद् वा प्रतापयेद् वा एवं खलु तस्य भिक्षो· भिक्षुक्या वा सामग्र्यं यत् सर्वार्थैः समितः सहित· सदा यतेत इति ब्रवीमि। पंचमस्य प्रथमोद्देशक. समाप्त·।

पदार्थ– से भिक्खू०- वह साधु अथवा साध्वी। अभिकंखिज्जा-चाहे। वत्थं-वस्त्र को। आयावित्तए वा-आताप या। प०-परिताप देना तो। तहप्पगारं-तथाप्रकार के। वत्थ-वस्त्र को। अणतरहियाए-सचित्त पृथ्वी तथा आर्द्र पृथ्वी। जाव-यावत्। पुढवीए-पृथ्वी पर। संताणए-जल आदि से युक्त पृथ्वी पर। नो आयाविज्ज वा० प०-आताप और परिताप न दे अर्थात् धूप मे न सुखाए। से भि०-वह साधु या साध्वी। अभि०-चाहे। वत्थ-वस्त्र को। आ० प०-आताप और परिताप दे तो। त०-तथाप्रकार के। वत्थं-वस्त्र को। थूणंसि वा-स्थूणा-स्तभ,

खूटी आदि पर। **गिहेलुगंसि वा**-गृह के द्वारो पर। **उसुयालंसि वा**-या ऊखल पर। **कामजलसि वा**-स्नान के पीठ पर अर्थात् चौकी पर। **अन्नयरे**-अन्य। **तहप्प०**-तथा प्रकार के। **अतलिक्खजाए**-अन्तरिक्ष भूमि से ऊचे स्थान पर जो। **दुब्बद्धे**-ऊपर भली-भाति से बान्धा हुआ नहीं है। **दुन्निक्खित्ते**-दुष्ट प्रकार से भूमि पर रोपण किया हुआ है और जो। **अणिकंपे**-निश्चल स्थान नहीं है। **चलाचले**-वायु के द्वारा इधर-उधर हो रहा है। **नो आ० नो प०**-आताप या परिताप न दे। **से भिक्खू वा०**-वह साधु या साध्वी। **अभि०**-यदि चाहे वस्त्र को। **आयावित्तए**-आताप दे। **तह०**-तथा प्रकार के। **वत्थं**-वस्त्र को। **कुडियसि वा**-घर की दीवार पर। **भित्तंसि वा**-नदी के तट पर। **सिलसि वा**-शिला पर। **लेलुसि वा**-शिला खड पर अर्थात् किसी पत्थर पर। **अन्नयरे वा**-अथवा अन्य। **तहप्प०**-इसी प्रकार के। **अतलिक्ख०**-अन्तरिक्ष स्थान पर। **जाव**-यावत्। **नो आयाविज्ज वा० प०**-आताप और परिताप न दे-सुखाए नहीं। **से भि०**-वह साधु या साध्वी यदि चाहे। **वत्थ**-वस्त्र को। **आया० प०**-आताप या परिताप देना तो। **तह०**-तथाप्रकार के। **वत्थं**-वस्त्र को। **खधसि वा**-स्तम्भ पर। **मं०**-मजे पर। **मा०**-माले पर। **पासा०**-प्रासाद पर। **ह०**-हर्म्य पर। **अन्नयरे वा**-अन्य। **तहप्प०**-तथा प्रकार के। **अतलिक्ख०**-अन्तरिक्ष भूमि से ऊचे स्थानो पर। **नो आयाविज्ज वा० प०**-आताप और परिताप न दे। **से**-वह-भिक्षु। **तमायाए**-उस वस्त्र को लेकर। **एगतमवक्कमिज्जा**-एकान्त मे चला जाए वहा जाकर। **अहे**-अथ। **ज्झामथडिलसि वा**-जो भूमि अग्नि से दग्ध हो वहा या। **अन्नयरसि**-अन्य। **तहप्पगारसि**-उसी प्रकार की। **थडिलंसि वा**-निर्दोष स्थडिल भूमि का। **पडिलेहिय २**-प्रतिलेखन करके। **पमज्जिय २**-रजोहरणादि से प्रामार्जित करके। **तओ**-तत्पश्चात्। **संजयामेव**-यत्नापूर्वक। **वत्थं**-वस्त्र को। **आयाविज्ज वा पया०**- आताप और परिताप दे अर्थात् सुखाए। **एय खलु**-निश्चय ही यह। **तस्स भिक्खुस्स**-उस साधु और साध्वी का। **सामग्गिय**-सम्पूर्ण आचार है। **ज**-जो। **सव्वट्ठेहिं**-ज्ञान दर्शन चारित्र रूप अर्थों से तथा। **समिए**-पाच समितियो से। **सहिए**-सहित है वह उसके पालन करने मे। **सया**-सदा। **जएज्जासि**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

***मूलार्थ*—सयमशील साधु या साध्वी यदि वस्त्र को धूप मे सुखाना चाहे तो वह गीली जमीन पर यावत् अण्डो और जालो से युक्त जमीन पर न सुखाए तथा न वस्त्र को स्तभ पर, घर के दरवाजे पर, ऊखल और स्नान पीठ (चौकी) पर सुखाए एव इसी प्रकार के अन्य, भूमि से ऊचे स्थान पर-जो कि दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, कंपनशील तथा चलाचल हों उन पर और घर की दीवार पर, नदी के तट पर, शिला और शिलाखंड पर, स्तम्भ पर, मच पर, माल पर, तथा प्रासाद और हर्म्य-प्रासाद विशेष पर वस्त्र को न सुखाए। यदि सुखाना हो तो एकान्त स्थान मे जाकर वहा अग्निदग्ध स्थडिल यावत् इसी प्रकार के अन्य निर्दोष स्थान का प्रतिलेखन और प्रमार्जना करके यत्न पूर्वक सुखाए। यही साधु का समग्र-सम्पूर्ण आचार है, इस प्रकार मैं कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जो स्थान गीला हो, बीज, हरियाली एव अण्डो आदि से युक्त हो तो साधु ऐसे स्थान पर वस्त्र न सुखाए। और वह स्तम्भ पर घर के दरवाजे पर एव ऐसे अन्य ऊचे स्थानो पर भी वस्त्र न सुखाए। क्योकि हवा के झोको से ऐसे स्थानों पर से वस्त्र के गिरने से या उसके हिलने से वायुकायिक एव अन्य जीवो की विराधना होने की सम्भावना है। इसलिए साधु को ऐसे ऊचे स्थानो पर वस्त्र नहीं सुखाना चाहिए। जो अच्छी तरह बन्धा हुआ नहीं है, भली-भाति आरोपित नहीं है, निश्चल नहीं है, चलायमान है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जो अन्तरिक्ष का स्थान सम्यक्तया

बन्धा हुआ, आरोपित, स्थिर एव अचलायमान हो तो अपवाद मार्ग मे वहा पर साधु वस्त्र सुखा भी सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे मचान आदि स्थानो पर भी वस्त्र सुखाने का निषेध किया गया है। इसका उद्देश्य आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पहले अध्ययन के ७वे उद्देशक मे आहार विधि के प्रकरण मे दिया गया उद्देश्य ही है। यदि मञ्च एव मकान आदि की छत पर जाने का मार्ग प्रशस्त है और वहा किसी भी जीव की विराधना होने की सम्भावना नहीं है तो साधु मञ्च एव मकान आदि की छत पर भी वस्त्र सुखा सकता है। वस्तुत सूत्रकार का उद्देश्य यह है कि साधु को प्रासुक एव निर्दोष भूमि पर ही वस्त्र सुखाने चाहिए, जिससे किसी भी प्राणी की हिसा न हो।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

पंचम अध्ययन-वस्त्रैषणा

द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे वस्त्र ग्रहण करने की विधि का वर्णन किया गया था, अब प्रस्तुत उद्देशक मे वस्त्र धारण करने की विधि का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा० अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारिज्जा नो धोइज्जा नो रएज्जा नो धोयरत्ताइं वत्थाइं धारिज्जा, अपलिउंचमाणो गामंतरेसु० ओमचेलिए, एयं खलु वत्थधारिस्स सामग्गियं ॥ से भिक्खू वा० गाहावइकुलं पविसिउकामे सव्वं चीवरमायाए गाहावइकुलं निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा, एवं बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा गामाणुगामं वा दूइज्जिज्जा, अह पु० तिव्वदेसियं वा वासं वासमाणं पेहाए जहा पिंडेसणाए नवरं सव्वं चीवरमायाए० ॥१४९ ॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यथैषणीयानि वस्त्राणि याचेत यथापरिगृहीतानि वस्त्राणि धारयेत्। नो धावेत् नो रंजयेत् नो धौतरक्तानि वस्त्राणि धारयेत् अपरिकुंचमानः ग्रामान्तरेषु अवमचेलक. एव खलु वस्त्रधारिणः सामग्र्यम् ॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुलं प्रवेष्टुकाम· सर्वं चीवरमादाय गृहपतिकुल निष्क्रामेत् वा प्रविशेत् वा एवं बहि. विहारभूमिं वा विचारभूमि वा ग्रामानुग्रामं वा दूयेत-गच्छेत्। अथ पुनः एवं जानीयात्। तीव्रदेशिकां वा वर्षां वर्षन्तं प्रेक्ष्य, यथा पिंडैषणायाम्। नवरं सर्वं चीवरमादाय।

पदार्थ- से भिक्खू वा०-वह साधु अथवा साध्वी। अहेसणिज्जाइं-अथ एषणीय-अर्थात् भगवदाज्ञानुसार। वत्थाइ-जो वस्त्र है उनकी। जाइज्जा-याचना करे फिर। अहापरिग्गहियाइं-यथा परिगृहीत। वत्थाइं-वस्त्रो को। धारेज्जा-धारण करे तथा उन वस्त्रो को विभूषा के लिए। नो धोइज्जा-न तो धोए और। नो रएज्जा-न रंगे, इतना ही नहीं किन्तु। धोयरत्ताइ वत्थाइ-धोए और रगे हुए वस्त्रो को। नो धारिज्जा-धारण भी न करे। गामंतरेसु०-ग्रामादि मे। अपलिउचमाणे-वस्त्रो को न गोपता हुआ विचरे तथा। ओमचेलिए-असार वस्त्र अथवा थोड़ा वस्त्र धारण कर सुखपूर्वक विचरे। एयं-यह। खलु-निश्चय ही। वत्थधारिस्स-वस्त्रधारी मुनि का। सामग्गियं-सम्पूर्ण आचार है।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। गाहावइकुलं-गृहपति कुल मे आहारादि के लिए। पविसिउ-

कामे-प्रवेश करने की इच्छा वाला। **सव्वं**-सर्व। **चीवरमायाए**-वस्त्र लेकर। **गाहावइकुलं**-गृहपति कुल में। **निक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा**-निष्क्रमण और प्रवेश करे अर्थात् उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे। **एवं**-इसी प्रकार। **बहिया**-बस्ती आदि से बाहर। **विहारभूमि वा**-विहार-स्वाध्याय करने की भूमि मे अथवा। **वियारभूमि वा**-मल आदि का त्याग करने की भूमि मे अथवा। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम विहार करते समय वस्त्र लेकर ही। **दूइज्जिज्जा**-प्रयाण करे। **अह पुण**-अथ इस प्रकार जाने। **तिव्वदेसिय वा**-थोड़ी या बहुत। **वास वासमाणं**-वर्षा बरसती हुई को। **पेहाए**-देख कर। **जहा**-जैसे। **पिंडेसणाए**-पिण्डैषणा अध्ययन मे आहार विषयक वर्णन किया है उसी प्रकार यहा पर भी जान लेना चाहिए किन्तु। **नवरं**-इतना विशेष है कि। **सव्व चीवरमायाए**-सर्व वस्त्रो को ग्रहण करके जाए।

मूलार्थ—संयमशील साधु या साध्वी भगवान द्वारा दी गई आज्ञा के अनुरूप एषणीय और निर्दोष वस्त्र की याचना करे और मिलने पर उन्हे धारण करे। परन्तु, विभूषा के लिए वह उन्हे न धोए और न रगे तथा धोए हुए और रगे हुए वस्त्रों को पहने भी नहीं। किन्तु, अल्प और असार [साधारण] वस्त्रों को धारण करके ग्राम आदि मे सुख पूर्वक विचरण करे। वस्त्रधारी मुनि का वस्त्र धारण करने सम्बन्धी यह सम्पूर्ण आचार है अर्थात् यही उसका भिक्षुभाव है।

आहारादि के लिए जाने वाले सयमनिष्ठ साधु-साध्वी गृहस्थ के घर मे जाते समय अपने वस्त्र भी साथ मे लेकर उपाश्रय से निकलें और गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे। इसी प्रकार वस्ती से बाहर , स्वाध्याय भूमि एव जगल आदि जाते समय तथा ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी वे सभी वस्त्र लेकर विचरे। इसी प्रकार थोड़ी या अधिक वर्षा बरसती हुई को देखकर साधु वैसा ही आचरण करे जैसा पिडैषणा अध्ययम में वर्णन किया गया है। केवल इतनी ही विशेषता है कि वह अपने सभी वस्त्र साथ लेकर जाए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि आगम मे वर्जित विधि के अनुसार साधु को निर्दोष एव एषणीय वस्त्र जिस रूप मे प्राप्त हुआ हो वह उसे उसी रूप मे धारण करे। विभूषा[१] की दृष्टि से साधु न तो उस वस्त्र को स्वय धोए और न रगे और यदि कोई गृहस्थ उसे धोकर या रगकर दे तब भी वह उसे स्वीकार न करे। इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को विभूषा के लिए वस्त्र को धोना या रगना नहीं चाहिए। क्योकि, वह वस्त्र का उपयोग केवल लज्जा ढकने एव शीतादि से बचने के लिए करता है, न कि शारीरिक विभूषा के लिए। परन्तु, यदि वस्त्र पर गन्दगी लगी है या उसे देखकर किसी के मन मे घृणा उत्पन्न होती है तो ऐसी स्थिति मे वह उसे विवेक पूर्वक साफ करता है तो उसके लिए शास्त्रकार का निषेध नहीं है। क्योकि, अशुचियुक्त वस्त्र के कारण वह स्वाध्याय भी नहीं कर सकेगा। अत उसका निवारण करना आवश्यक है। विभूषा के लिए वस्त्र धोने का निषेध करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि साधु स्वाध्याय एव ध्यान के समय को केवल अपने शरीर की सजावट के लिए वस्त्र धोने मे समाप्त न करे। क्योकि, साधु की साधना शरीर एव वस्त्रो को सुन्दर बनाने के लिए नहीं, प्रत्युत आत्मा को स्वच्छ एव पूर्ण स्वतत्र बनाने के लिए है। अत: उसे अपना पूरा समय आत्म साधना मे ही लगाना चाहिए।

इस सूत्र मे साधु को यह आदेश भी दिया गया है कि वह आहार के लिए गृहस्थ के घर मे जाते

---

१ निशीथ सूत्र उ॰ १५।

हुए या स्वाध्याय भूमि मे तथा जगल के लिए जाते समय अपने सभी वस्त्र साथ लेकर जाए। इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु के पास आवश्यकता के अनुसार बहुत ही थोडे वस्त्र होते थे। आगम मे भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि साधु को स्वल्प एव साधारण (असार) वस्त्र रखने चाहिए।

इस पाठ से यह भी ध्वनित होता है कि उस युग मे शहर या गाव से बाहर एकान्त मे स्वाध्याय करने की प्रणाली थी। क्योकि एकान्त स्थान मे ही चित्त की एकाग्रता बनी रहती है। यह भी बताया गया है कि साधु को शौच के लिए भी गाव या शहर से बाहर जाने का प्रयत्न करना चाहिए। बिना किसी विशेष कारण के उपाश्रय मे शौच नहीं जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध मे कुछ और विशेष बाते बताते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से एगइओ मुहुत्तगं २ पडिहारियं वत्थं जाइज्जा, जाव एगाहेण वा दु० ति० चउ० पंचाहेण वा विप्पवसिय २ उवागच्छिज्जा, नो तह वत्थं अप्पणो गिण्हिज्जा नो अन्नमन्नस्स दिज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा नो वत्थेण वत्थपरिणामं करिज्जा, नो परं उवसंकमित्ता एवं वइज्जा-आउ० समणा ! अभिकंखसि वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ? थिरं वा संतं नो पलिच्छिंदिय २ परट्ठविज्जा, तहप्पगारं वत्थं ससंधियं वत्थं तस्स चेव निसिरिज्जा नो णं साइज्जिज्जा। से एगइओ एयप्पगारं निग्घोसं सुच्चा नि० जे भयंतारो तहप्पगाराणि वत्थाणि ससंधियाणि मुहुत्तगं २ जाव एगाहेण वा० ५ विप्पवसिय २ उवागच्छंति, तह० वत्थाणि नो अप्पणा गिण्हंति नो अन्नमन्नस्स दलयंति तं चेव जाव नो साइज्जंति, बहुवयणेण भाणियव्वं, से हंता अहमवि मुहुत्तगं पाडिहारियं वत्थं जाइत्ता जाव एगाहेण वा ५ विप्पवसिय २ उवागच्छिस्सामि, अवियाइं एयं ममेव सिया, माइट्ठाणं संफासे नो एवं करिज्जा॥१५०॥

छाया– स एकक: मुहूर्तकं प्रातिहारिक वस्त्रं याचेत याचित्वा यावत् एकाहेन वा द्व्यहेन वा त्र्यहेन वा चतुरहेन वा पंचाहेन वोषित्वा २ उपागच्छेत् नो तथा वस्त्रं आत्मना गृह्णीयात् नो अन्यस्मै दद्यात् नो प्रामृज्यं कुर्यात् नो वस्त्रेण वस्त्रपरिणामं कुर्यात्, नो परमुपसक्रम्य एव वदेत्-आयुष्मन्! श्रमण! अभिकांक्षसि वस्त्रं धारयितुं वा परिहर्तुं वा स्थिरं वा सत् परिच्छिन्द्य २ परिष्ठापयेत् तथाप्रकारं वस्त्रं ससन्धितं वस्त्रं तस्मै चैव निसृजेत् नो स्वादयेत्। स एकक: एतत्प्रकारं निर्घोषं श्रुत्वा निशम्य ये वयत्रातार: तथाप्रकाराणि वस्त्राणि ससन्धितानि, मुहूर्तकं २ यावत् एकाहेन वा० ५ उषित्वा २ उपागच्छन्ति तथाप्रकाराणि वस्त्राणि नो आत्मना गृण्हन्ति, नो अन्योऽन्यस्मै ददति तच्चैव नो स्वादयन्ति बहुवचनेन भाणितव्यं। स हंत अहमपि मुहूर्तकं प्रातिहारिकं वस्त्रं याचित्वा यावत् एकाहेन वा० ५ उषित्वा २ उपागमिष्यामि।

अपि च एतत् ममैव स्यात्, मातृस्थानं संस्पृशेत् नो एवं कुर्यात्।

पदार्थ— **एगइओ**-कोई। **से**-भिक्षु। **मुहुत्तगं २**-मुहूर्त मात्र काल का उद्देश्य कर। **पाडिहारियं**-प्रातिहारक-जो लेकर फिर पीछे उसी को दिया जाए, उसे प्रातिहारक कहते है। **वत्थ**-वस्त्र की। **जाइज्जा**-याचना करे। **जाव**-यावत् वस्त्र की याचना करके वह अकेला ही ग्रामादि मे चला जाए और वहा पर। **एगाहेण वा**-एक दिन। **दु॰**-दो दिन। **ति॰**-तीन दिन। **चउ॰**-चार दिन अथवा। **पचाहेण वा**-पाच दिन। **विप्पवसिय २**-ठहर कर फिर। **उवागच्छिज्जा**-वहा पर ही आ जाए। **तहप्पगार**-तथा प्रकार का। **वत्थं**-वस्त्र, यदि पहनने से फट गया हो, उपहत हो गया हो तो। **अप्पणो**-उस वस्त्र का स्वामी-जिसने वस्त्र दिया था वह, उपहत हुआ जानकर स्वय। **नो गिण्हिज्जा**-ग्रहण न करे। **नो अन्नमन्नस्स दिज्जा**-न परस्पर मे किसी को दे। **नो पामिच्च कुज्जा**-न किसी को उधार तथा। **वत्थेण**-वस्त्र से। **वत्थपरिणाम नो करिज्जा**-वस्त्र का परिणमन अर्थात् अदला-बदला न करे तथा। **नो पर उवसकमित्ता**-न किसी अन्य साधु के पास जाकर। **एव वइज्जा**-इस प्रकार कहे-। **आउ॰ समणा**-हे आयुष्मन् श्रमण ! **अभिकखसि**-क्या तुम चाहते हो। **वत्थ**-वस्त्र को। **धारित्तए वा**-धारण करना अथवा। **परिहरित्तए वा**-पहनना, इस प्रकार कह कर अन्य साधु को भी वस्त्र नहीं दे। **थिर वा**-अथवा स्थिर-दृढ। **सत**-वस्त्र के होने पर। **पलिछिदिय २**-छेदन करके-टुकड़े करके। **नो परिट्ठविज्जा**-परठे नही अर्थात् फैके नहीं। **तहप्पगार**- तथा प्रकार के। **वत्थ**-वस्त्र को। **ससंधिय**-उपहत वस्त्र को। **तस्स चेव**-उसी को ही। **निसिरिज्जा**-दे देवे। **ण**-वाक्यालकार मे है। **नो साइज्जा**-स्वय न भोगे अर्थात् जिससे वस्त्र लिया था यदि वह ग्रहण करना-लेना चाहे तो उसी को दे दे। **से**-वह। **एगइओ**-कोई एक साधु। **एयप्पगार**-इस प्रकार के। **निग्घोस**-निर्घोष-शब्द को। **सुच्चा**-सुनकर। **नि॰**-हृदय मे धारण करके। **जे भयतारो**-जो पूज्य तथा भय से रक्षा करने वाले साधु। **तहप्पगाराणि**-तथा प्रकार के। **वत्थाणि**-वस्त्रो को। **ससधियाणि**-जो उपहत है। **मुहुत्तग २**-मुहूर्त-आदि काल का उद्देश कर। **जाव**-यावत्। **एगाहेण वा॰ ५**-एक दिन से लेकर पाच दिन तक। **विप्पवसिय २**-किसी ग्रामादि मे ठहर कर। **उवागच्छति**-आते है फिर उपहत हुआ वस्त्र। **तह॰ वत्थाणि**-तथा प्रकार के वस्त्रो को। **नो अप्पणा गिण्हति**-स्वय ग्रहण नहीं करते। **नो अन्नमन्नस्स दलयंति**-न परस्पर मे देते है। **त चेव**-शेष वर्णन पूर्ववत्। **जाव**-यावत्। **नो साइज्जति**-न वे स्वय भोगते है अर्थात् उसी को दे देते हैं। **बहुवयणेण वा भाणियव्व**-इसी प्रकार बहुवचन के सम्बन्ध मे जान लेना चाहिए। **से हता**-वह भिक्षु हर्ष पूर्वक स्वीकार करते हुए कहता है कि। **अहमवि**-मैं भी। **मुहुत्तग**-मुहूर्त आदि काल का उद्देश कर। **पडिहारिय**-प्रतिहारक। **वत्थ**-वस्त्र को। **जाइत्ता**-माग कर। **जाव**-यावत्। **एगाहेण वा॰ ५**-एक दिन से लेकर पाच दिन पर्यन्त। **विप्पवसिय २**-ठहर कर के पीछे। **उवागमिस्सामि**-आऊगा। **अवियाइं**-जिससे। **एय**-यह वस्त्र। **ममेव सिया**-मेरा ही हो जाएगा यदि वह ऐसा सोचता है तो। **माइट्ठाण सफासे**-उसे मातृस्थान-माया या छल का स्पर्श होता है। **एवं**-अत इस प्रकार का। **नो करेज्जा**-विचार न करे।

मूलार्थ—**कोई एक साधु मुहूर्त आदि काल का उद्देश्य रख कर किसी अन्य साधु से प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करके एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन और पांच दिन तक किसी ग्रामादि में निवास कर वापिस आ जाए, और वह वस्त्र उपहत हो गया हो तो वह साधु, जिसका वह वस्त्र था वह आप ग्रहण न करे, न परस्पर देवे, न उधार करे और न अदला-बदली करे तथा न अन्य किसी के पास जाकर यह कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! तुम इस वस्त्र को ले लो,**

एवं वस्त्र के दृढ होने पर उसे छिन्न-भिन्न करके परठे भी नहीं, किन्तु उपहत वस्त्र उसी को दे दे।

कोई साधु इस प्रकार के समाचार को सुन कर– अर्थात् अमुक साधु अमुक साधु से कुछ समय के लिए वस्त्र माग कर ले गया था और वह वस्त्र उपहत हो जाने पर उसने नहीं लिया अपितु उसी को दे दिया ऐसा सुनकर वह यह विचार करे कि यदि मै भी मुहूर्त आदि का उद्देश्य रख कर प्रातिहारिक वस्त्र की याचना कर यावत् पांच दिन पर्यन्त किसी अन्य ग्रामादि मे निवास कर फिर वहां पर आ जाऊगा तो वह वस्त्र उपहत हो जाने से मेरा ही हो जाएगा, इस प्रकार के विचार के अनुसार यदि साधु प्रातिहारिक वस्त्र का ग्रहण करे तो उसे मातृस्थान का स्पर्श होता है अर्थात् माया के स्थान का दोष लगता है। इसलिए साधु ऐसा न करे बहुत से साधुओ के सम्बन्ध मे भी इसी तरह समझना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि साधु ने अपने अन्य किसी साधु से कुछ समय का निश्चय करके वस्त्र लिया हो और उतने समय तक वह ग्रामादि मे विचरण करके वापिस लौट आया हो और उसका वह वस्त्र कहीं से फट गया हो या मैला हो गया हो, जिसके कारण वह स्वीकार न कर रहा हो तो उस मुनि को वह वस्त्र अपने पास रख लेना चाहिए। और जिस मुनि ने वस्त्र दिया था उसे चाहिए कि वह या तो उस उपहत (फटे हुए या मैले हुए) वस्त्र को ग्रहण कर ले। यदि वह उसे नहीं लेना चाहे तो फिर वह उसे अपने दूसरे साधुओ मे न बाटे और मजबूत वस्त्र को फाड कर परठे (फैंके) भी नहीं और उसके बदले मे उससे वैसे ही नए वस्त्र को प्राप्त करने की अभिलाषा भी नहीं रखे। और उस लेने वाले मुनि को भी चाहिए कि यदि वह दाता मुनि उसे वापिस न ले तो वह किसी एकलविहारी मुनि को यदि उस वस्त्र की आवश्यकता हो तो उसे दे दे। अन्यथा स्वय उसका उपभोग करे। यह नियम जैसे एक साधु के लिए है उसी तरह अनेक साधुओ के लिए भी यही विधि समझनी चाहिए।

किसी साधु से ऐसा जानकर कि प्रातिहारिक रूप लिया हुआ वस्त्र थोडा सा फट जाने पर देने वाला मुनि वापिस नहीं लेता है, इस तरह वह वस्त्र लेने वाले मुनि का ही हो जाता है। इस भावना को मन मे रख कर कोई भी साधु प्रातिहारिक वस्त्र ग्रहण न करे। यदि कोई साधु इस भावना से वस्त्र ग्रहण करता है, तो उसे माया का दोष लगता है।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि० नो वण्णमंताइं वत्थाइं विवण्णाइं करिज्जा, विवण्णाइं न वण्णमंताइं करिज्जा, अन्नं वा वत्थं लभिस्सामित्तिकट्टु नो अन्नमन्नस्स दिज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा, नो वत्थेण वत्थपरिणामं कुज्जा, नो परं उवसंकमित्तु एवं वदेज्जा-आउसो० ! समभिकंखसि मे वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ! थिरं वा संतं नो पलिच्छिंदिय २ परिट्ठविज्जा, जहा मेयं वत्थं पावगं परो मन्नइ, परं च णं अदत्तहारी पडिपहे पेहाए तस्स वत्थस्स नियाणाय नो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छिज्जा, जाव अप्पुस्सुए, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ॥

से भिक्खू वा० गामाणुगामं दुइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणिज्जा, इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा वत्थपडियाए संपिंडिया गच्छेज्जा, णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छेज्जा जाव गामा० दूइज्जिज्जा। से भि० दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा पडियागच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वदेज्जा– आउसं० ! आहरेयं वत्थं देहि णिक्खिवाहि जहा रियाए णाणत्तं वत्थपडियाए, एयं खलु० जइज्जासि, त्तिबेमि ॥१५१॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा नो वर्णवन्ति वस्त्राणि विवर्णानि कुर्यात् विवर्णानि न वर्णवन्ति कुर्यात् अन्यद् वा वस्त्र लप्स्ये इति कृत्वा नो अन्योन्यस्मै दद्यात्, नो प्रामित्यं कुर्यात् नो वस्त्रेण वस्त्रपरिणाम कुर्यात् नो परम् उपसंक्रम्य एव वदेत्- आयुष्मन् श्रमण! समभिकांक्षसि मे वस्त्रं धारयितुं वा परिहर्तुं वा स्थिरं वा सत् नो परिच्छिन्द्य २ परिष्ठापयेत्, यथा ममेदं वस्त्र पापकं परो मन्यते पर च अदत्ताहारि प्रतिपथे प्रेक्ष्य तस्य वस्त्रस्य निदानाय नो तेभ्यो भीतः उन्मार्गेण गच्छेत् यावत् अल्पोत्सुकः ततः संयतमेव ग्रामानुग्राम दूयेत।

स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा ग्रामानुग्रामं दूयमानः-गच्छन् अन्तरा-अन्तराले विहं - (अरण्यं) स्यात् स यत् पुनः विहं जानीयात्, अस्मिन् खलु विहे बहवः आमोषकाः वस्त्रप्रतिज्ञया संपिंडिताः गच्छेयुः नो तेभ्यो भीतः उन्मार्गेण गच्छेत् यावत् ग्रामानुग्रामं दूयेत। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा दूयमान· अन्तरा तस्य आमोषका· प्रतिज्ञया आगच्छेयु ।ते आमोषका· एवं वदेयु -आयुष्मन् श्रमण ! आहर ? इद वस्त्र ? देहि ? निक्षिप ? यथा ईर्यायां नानात्वं वस्त्रप्रतिज्ञया, एवं खलु तस्य भिक्षो. २ सामग्र्यं यत् सर्वार्थैः समित्या सहितः सदा यतेत, इति ब्रवीमि।

पदार्थ– से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। वण्णमताइ-वर्ण वाले। वत्थाइ-वस्त्रो को। विवण्णाइं-विवर्ण। नो करिज्जा-न करे। विवण्णाइं-वर्ण रहित-सुन्दरता रहित वस्त्रो को। वण्णमताइं-वर्ण युक्त। न करिज्जा-न करे। वा-या। अन्न-अन्य। वत्थं-वस्त्र। लभिस्सामि-प्राप्त करूगा। तिकट्टु-ऐसा विचार करके। अन्नमन्नस्स-परस्पर किसी एक साधु को वस्त्र। नो दिज्जा-न दे। पामिच्च-वस्त्र को उधार न दे। वत्थेण-वस्त्र से। वत्थपरिणामं-वस्त्र की अदला-बदली। नो कुज्जा-न करे। परं उवसकमित्तु-पर-अन्य साधु के पास जाकर। एवं-इस प्रकार। नो वदिज्जा-न कहे। आउसो०-हे आयुष्मन् श्रमण! क्या तू। मे-मेरा। वत्थं-वस्त्र। धारित्तए वा-धारण करना अथवा। परिहरित्तए वा-पहरना। समभिकंखसि-चाहता है। थिरं वा संतं-दृढ वस्त्र होने पर। पलिच्छिंदिय २-खण्ड-खण्ड करके। नो परिट्ठविज्जा-परठे नहीं। जहा-जैसे। मेयं-मेरे इस वस्त्र को यावत्। परो मन्नइ-अन्य व्यक्ति निकृष्ट मानता है ऐसा विचार करके न परठे। च-पुन ।णं-वाक्यालकार में है। पर-अन्य गृहस्थ। अदत्तहारी-बिना दिए लेने वाला अर्थात् चोर। पडिपहे-मार्ग मे सामने आते हुए को। पेहाए-देख कर। तस्स वत्थस्स-उस वस्त्र के। नियाणाय-रखने के लिए। तेसिं-उनसे। भीओ-डर कर।

उम्मग्गेणं-उन्मार्ग से। **नो गच्छिज्जा**-गमन न करे। **जाव**-यावत्। **अप्पुस्सुए**-राग-द्वेष से रहित होकर। **तओ**-तदनन्तर। **संजयामेव**-यतनापूर्वक। **गामाणुगाम**-एक ग्राम से दूसरे ग्राम के प्रति। **दूइज्जिज्जा**-गमन करे-विहार करे।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। **गामाणुगाम**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-गमन करते हुए। **अंतरा**-मार्ग के मध्य में। **से**-उसके। **विहं सिया**-यदि अटवी आ जाए तो। **से जं पुण**-वह फिर। **विहं जाणिज्जा**-अटवी को जाने। **खलु**-निश्चयार्थक है। **इमंसि विहंसि**-इस अटवी में। **बहवे**-बहुत से। **आमोसगा**-चोर। **वत्थपडियाए**-वस्त्र छीनने के लिए। **सपिडिया**-एकत्र होकर। **आगच्छेज्जा**-आए है तो। **तेसिं भीओ**-उनसे डर कर। **उम्मग्गेणं**-उन्मार्ग से। **णो गच्छेज्जा**-गमन न करे। **जाव**-यावत्। **गामा॰**-ग्रामानुग्राम। **दूइज्जेज्जा**-विहार करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम। **दूइज्जमाणे**-विहार करता हुआ। **से**-उसके। **अंतरा**-मार्ग मे। **आमोसगा**-चोर एकत्र होकर। **पडियागच्छेज्जा**-वस्त्र छीनने के लिए आ जाए। **णं**-वाक्यालकार मे है। **ते**-वे। **आमोसगा**-चोर। **एवं**-इस प्रकार। **वदेज्जा**-कहे। **आउसो॰**-आयुष्मन् श्रमण ! **एयं वत्थ**-यह वस्त्र। **आहर**-ला। **देहि**-हमारे हाथ मे दे दे या। **णिक्खिवाहि**-हमारे आगे रख दे तब। **जहा इरियाए**-जैसे ईर्याध्ययन मे वर्णन किया है उसी प्रकार करे। **णाणत्त**-उससे इतना विशेष है। **वत्थपडियाए**-वस्त्र के लिए अर्थात् यहा पर वस्त्र का अधिकार समझना। **एय खलु**-निश्चय ही यह। **तस्स**-साधु और साध्वी का। **सामग्गिय**-सम्पूर्ण आचार है। **ज**-जो। **सव्वट्ठेहिं**-सर्व अर्थों से तथा। **समिए**-पाचो समितियो से। **सहिए**-युक्त। **सया**-सदा सयम पालन का। **जइज्जासि**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—सयमशील साधु और साध्वी सुन्दर वर्ण वाले वस्त्रो को विवर्ण-विगत वर्ण न करे तथा विवर्ण को वर्ण युक्त न करे। तथा मुझे अन्य सुन्दर वस्त्र मिल जाएगा ऐसा विचार कर के अपना पुराना वस्त्र किसी और को न दे। और न किसी से उधारा वस्त्र लेवे एव अपने वस्त्र की परस्पर अदला-बदली भी न करे। तथा अन्य श्रमण के पास आकर इस प्रकार भी न कहे कि आयुष्मन् ! श्रमण ! तुम मेरे वस्त्र को ले लो, मेरे इस वस्त्र को जनता अच्छा नहीं समझती है, इसके अतिरिक्त उस दृढ़ वस्त्र को फाड़ करके फैके भी नहीं तथा मार्ग मे आते हुए चोरों को देखकर उस वस्त्र की रक्षा के लिए चोरो से डरता हुआ उन्मार्ग से गमन न करे, किन्तु राग-द्वेष से रहित होकर साधु ग्रामानुग्राम विहार करे-विचरे। यदि कभी विहार करते हुए मार्ग में अटवी आ जाए तो उसको उल्लघन करते समय यदि बहुत से चोर एकत्र होकर सामने आ जाए तब भी उनसे डरता हुआ उन्मार्ग मे न जाए। यदि वे चोर कहें कि आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र उतार कर हमें दे दो, यहां रख दो, तब साधु वस्त्र को भूमि पर रख दे, किन्तु उनके हाथ मे न दे और उनसे करुणा पूर्वक उसकी याचना भी न करे। यदि याचना करनी हो तो धर्मपूर्वक करे। यदि वे वस्त्र न दे तो नगरादि में जाकर उनके सबन्ध मे किसी से कुछ न कहे। यही वस्त्रैषणा विषयक साधु और साध्वी का सम्पूर्ण आचार है, अत ज्ञान, दर्शन और चारित्र तथा पाच समितियो से युक्त मुनि विवेकपूर्वक आत्म-साधना मे संलग्न रहे। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु उज्ज्वल या मैला जैसा भी वस्त्र मिला

है वह उसे उसी रूप मे धारण करे। किन्तु, वह न तो चोर आदि के भय से उज्ज्वल वस्त्र को मैला करे और न विभूषा के लिए मैले वस्त्र को साफ करे। और नए वस्त्र को प्राप्त करने की अभिलाषा से साधु अपने पहले के वस्त्र को किसी अन्य साधु को न दे और न किसी से अदला-बदली करे तथा उस चलते हुए वस्त्र को फाड कर भी न फैंके।

सूत्रकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि साधु को सदा निर्भय होकर विचरना चाहिए। यदि कभी अटवी पार करते समय चोर मिल जाए तो उनसे अपने वस्त्र को बचाने की दृष्टि से साधु रास्ता छोड कर उन्मार्ग की ओर न जाए। यदि वे चोर साधु से वस्त्र मागे तो साधु उस वस्त्र को जमीन पर रख दे, परन्तु उनके हाथ मे न दे और उसे वापिस लेने के लिए उनके सामने गिडगिड़ाहट भी न करे और न उनकी खुशामद ही करे। यदि अवसर देखे तो उन्हे धर्म का उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करे। इससे यह स्पष्ट होता है कि वस्त्र केवल सयम साधना के लिए है, न कि ममत्व के रूप मे है। अत साधु को किसी भी स्थिति मे उस पर ममत्वभाव नहीं रखना चाहिए। इससे साधु जीवन के निर्ममत्व एव निर्भयत्व का स्पष्ट परिचय मिलता है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझनी चाहिए।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ पञ्चम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन-पात्रैषणा

प्रथम उद्देशक

यह हम देख चुके हैं कि पहले अध्ययन मे आहार ग्रहण करने की विधि का, दूसरे अध्ययन मे आहार करने एव ठहरने के स्थान का, तीसरे अध्ययन मे गमनागमन मे विवेक रखने के लिए ईर्यासमिति का, चौथे मे आहार आदि के लिए गमन करते एव विहार करते समय भाषा मे विवेक रखने के लिए भाषा समिति का और पाचवे अध्ययन मे इस सयम साधना मे प्रवर्तमान साधक को कैसा वस्त्र ग्रहण करना चाहिए इसका उल्लेख किया गया है। अब प्रस्तुत अध्ययन मे आहार ग्रहण करने के लिए कैसा पात्र होना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भिक्खू वा अभिकंखिज्जा पायं एसित्तए, से जं पुण पायं जाणिज्जा, तंजहा-अलाउयपायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापायं वा, तहप्पगारं पायं जे निग्गंथे तरुणे जाव थिरसंघयणे से एगं पायं धारिज्जा, नो बिइयं॥ से भि॰ परं अद्धजोयणमेराए पायपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ से भि॰ से जं ॰ अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं ४ जहा पिंडेसणाए चत्तारि आलावगा, पंचमे बहवे समण॰ पगणिय २ तहेव॥ से भिक्खू वा॰ अस्संजए भिक्खुपडियाए बहवे समणमाहणे॰ वत्थेसणाऽऽलावओ॥ से भिक्खू वा॰ से जाइं पुण पायाइं जाणिज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं, तंजहा-अयपायाणि वा तउपाया॰ तंबपाया॰ सीसगपाया॰ हिरण्णपा॰ सुवण्णपा॰ रीरिअपाया॰ हारपुडपा॰ मणिकायकंसपाया॰ संखसिंगपा॰ दंतपा॰ चेलपा॰ सेलपा॰ चम्मपा॰ अन्नयराइं वा तह॰ विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं पायाइं अफासुयाइं नो पडिगाहिज्जा॥ से भि॰ से जाइं पुण पाया॰ विरूव॰ महद्धणबंधणाइं तं॰ अयबंधणाणि वा जाव चम्मबंधणाणि वा , अन्नयराइं तहप्प॰ महद्धणबंधणाइं अफा॰ नो प॰॥ इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम्म अह भिक्खू जाणिज्जा चउहिं पडिमाहिं पायं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा- से भिक्खू॰ उद्दिसिय२ पायं जाइज्जा, तंजहा-अलाउयपायं वा ३ तह॰ पायं सयं वा णं जाइज्जा जाव

पडि॰ पढमा पडिमा १ ॥ अहावरा॰ से॰ पेहाए पायं जाइज्जा, तं॰-गाहावइं वा कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा, आउ॰ भ॰! दाहिसि मे इत्तो अन्नयरं पायं तं॰-अलाउयपायं वा ३ तह॰ पायं सयं वा जाव पडि॰, दुच्चा पडिमा २ ॥ अहा॰ से भि॰ से जं पुण पायं जाणिज्जा संगइयं वा वेजइयंतियं वा तहप्प॰ पायं सयं वा जाव पडि॰ तच्चा पडिमा ३ ॥ अहावरा चउत्था पडिमा-से भि॰ उज्झियधम्मियं जाएज्जा जावऽन्ने बहवे समणा जाव नावकंखति तह॰ जाएज्जा जाव पडि॰, चउत्था पडिमा ४ ॥ इच्चेइयाणं चउण्हं पडिमाणं अन्नयरं पडिमं जहा-पिंडेसणाए ॥ से णं एयाए एसणाए एसमाणं पासित्ता परो वइज्जा, आउ॰ स॰! एज्जासि तुमं मासेण वा जहा वत्थेसणाए, से णं परो नेता व॰ – आ॰ भ॰! आहरेयं पायं तिल्लेण वा घ॰ नव॰ वसाए व अब्भंगित्ता वा तहेव सिणाणादि तहेव सीओदगाइं कंदाइं तहेव ॥

से णं परो ने॰ – आउ॰ स॰ ! मुहुत्तगं २ जाव अच्छाहि ताव अम्हे असणं वा उवकरेंसु वा उवक्खडेंसु वा, तो ते वयं आउसो॰ ! सपाणं सभोयणं पडिग्गहं दाहामो, तुच्छए पडिग्गहे दिन्ने समणस्स नो सुट्ठु साहु भवइ, से पुव्वामेव आलोइज्जा–आउ॰ भइ॰ ! नो खलु मे कप्पइ आहाकम्मिए असणे वा ४ भुत्तए वा॰, मा उवकरेहि मा उवक्खडेहि, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि, , से सेवं वयंतस्स परो असणं वा ४ उवकरित्ता उवक्खडित्ता सपाणं सभोयणं पडिग्गहगं दलइज्जा तह॰ पडिग्गहगं अफासुयं जाव नो पडिगाहिज्जा ॥ सिया से परो उवणित्ता पडिग्गहगं निसिरिज्जा, से पुव्वामेव आउ॰! भ॰! तुमं चेव णं संतियं पडिग्गहगं अंतोअंतेणं पडिलेहिस्सामि, केवली॰ आयाण॰ अंतो पडिग्गहगंसि पाणाणि वा बीया॰ हरि॰, अह भिक्खूणं पु॰ जं पुव्वामेव पडिग्गहगं अंतोअंतेणं पडि॰ सअंडाइं सव्वे आलावगा भाणियव्वा जहा वत्थेसणाए, नाणत्तं तिल्लेण वा घएण॰ नव॰ वसाए वा सिणाणादि जाव अन्नयरंसि वा तहप्पगा॰ थंडिलंसि पडिलेहिय २ पम॰ २ तओ॰ संज॰ आमज्जिज्जा, एवं खलु॰ सया जएज्जासि त्तिबेमि ॥१५२ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकाक्षेत पात्रमेषितुं (अन्वेष्टुं) तत् यत् पुन. पात्रं जानीयात्, तद्यथा-अलाबुपात्रं वा दारुपात्रं वा मृत्तिकापात्रं वा, तथाप्रकारं पात्रं या

निर्ग्रन्थः तरुणः यावत् स्थिरसहननः स एक पात्रं धारयेत् न द्वितीयम्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा परं अर्द्धयोजनमर्यादायाः पात्रप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा, नत् यत् अस्वप्रतिज्ञया एकं साधर्मिकं समुद्दिश्य प्राणानि ४ यथा पिण्डैषणायां चत्वारः आलापकाः, पंचमे बहवः श्रमण॰ प्रगण्य २ तथैव। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा असयतः भिक्षुप्रतिज्ञया बहव. श्रमण ब्राह्मण॰ वस्त्रैषणाऽऽलापक.। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा तत् यानि पुनः पात्राणि जानीयात्, विरूपरूपाणि महद्धनमूल्यानि, तद्यथा– अयःपात्राणि वा त्रपु.पात्राणि वा ताम्रपात्राणि वा सीसकपात्राणि वा हिरण्यपात्राणि वा॰ सुवर्णपात्राणि वा रीतिपात्राणि वा हारपुटपात्राणि वा मणिकाचकंसपात्राणि वा शखशृगपात्राणि वा दन्तपात्राणि वा चेलपा॰ शिलापा॰ चर्मपात्राणि वा अन्यतराणि वा तथाप्रकाराणि विरूपरूपाणि महद्धनमूल्यानि पात्राणि अप्रासुकानि न प्रतिगृह्णीयात्। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा तद् यानि पुन· पात्राणि विरूपरूपाणि महद्धनबन्धनानि, तद्यथा– अयोबन्धनानि वा यावत् चर्मबन्धनानि वा अन्यतराणि तथाप्रकाराणि महद्धनबन्धनानि अप्रासुकानि न प्रतिगृह्णीयात्, इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य, अथ भिक्षुः जानीयात्, चतसृभिः प्रतिमाभिः पात्रमेषितु (अन्वेष्टु) तत्र खलु इयं प्रथमा प्रतिमा १। स भिक्षु·॰ उद्दिश्य २ पात्रं याचेत् , तद्यथा- अलाबुकपात्र वा ३ तथाप्रकार पात्र स्वयं वा याचेत, यावत् प्रतिगृह्णीयात्, प्रथमा प्रतिमा ॥१ ॥

अथापरा॰ स॰ प्रेक्ष्य पात्र याचेत तद्यथा– गृहपति वा कर्मकरी वा, स पूर्वमेव आलोचयेत्, आयुष्मन् ! भगिनि ! दास्यसि मे इत· अन्यतरत् पात्रं तद्यथा– अलाबुकपात्रं वा ३ तथाप्रकारं पात्रं स्वयं वा यावत् प्रतिगृह्णीयात्, द्वितीया प्रतिमा ॥२ ॥ अथापरा-स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् पुन· पात्रं जानीयात्, स्वांगिकं वा वैजयन्तिकं वा तथाप्रकारं पात्रं स्वयं वा यावत् प्रतिगृह्णीयात्, तृतीया प्रतिमा ॥३ ॥ अथापरा चतुर्थी प्रतिमा-स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा उज्झितधर्मिकं याचेत यावत् अन्ये बहव· श्रमणा. यावत् नावकांक्षन्ति तथाप्रकारं याचेत यावत् प्रतिगृह्णीयात्, चतुर्थी प्रतिमा ॥४॥ इत्येतासां चतसृणा प्रतिमानां अन्यतरां प्रतिमां यथा पिंडैषणायाम्। स एतया एषणया एषमाणं दृष्ट्वा परो वदेत्– आयुष्मन् श्रमण ! एष्यसि त्वं मासेन वा यथा वस्त्रैषणायाम्, स परो नेता वदेत्– आयुष्मति, भगिनि ! आहर एतत् पात्रं तैलेन वा घृतेन वा नवनीतेन वा वसया वा अभ्यज्य, तथैव स्नानादि, तथैव शीतोदकानि कन्दानि तथैव। स परो नेता॰-(एवं वदेत्-) आयुष्मन् श्रमण! मुहूर्तकं यावत् आस्स्व-तिष्ठ ? तावत् वयमशनं वा ४ उपकुर्मः उपस्कुर्मः। ततस्ते वयं आयुष्मन् श्रमण ! सपानं सभोजनं पतद्ग्रह (पात्रं) दास्यामः। तुच्छके प्रतिग्रहे दत्ते श्रमणस्य नो सुष्ठु, साधु भवति। स पूर्वमेव आलोचयेत्, आयुष्मति! भगिनि॰! नो खलु मे कल्पते आधाकर्मिकं अशनं वा ४ भोक्तु वा मा उपकुरु मा उपस्कुरु अभिकाक्षसि मे दातुं एवमेव ददस्व, तस्य एव वदतः पर. अशन वा उपकृत्य उपस्कृत्य सपान सभोजनं पतद्ग्रहं दद्यात् तथाप्रकारं पतद्ग्रहं-पात्रमप्रासुकं

यावत् न प्रतिगृह्णीयात्। स्यात् स पर· उपनीय प्रतिग्रहकं निसृजेत्, स पूर्वमेव आलोचयेत् आयुष्मति! भगिनि ! त्वं चैव स्वांगिकं पतद्ग्रहकं अन्तोन्तेन प्रतिलेखिष्यामि। केवली ब्रूयात् आदानमेतत् अन्त· पतद्ग्रहके प्राणानि वा बीजानि वा हरितानि वा अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्ट यत् पूर्वमेव पतद्ग्रहकं अन्तोन्तेन प्रति॰ साण्डानि, सर्वे आलापका. भणितव्या· यथावस्त्रैषणायाम्, नानात्वं तैलेन वा घृतेन वा नवनीतेन वा वसया वा स्नानादि यावत् अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले प्रतिलिख्य २, प्रमृज्य २ ततः सयतमेव, आमृज्यात्। एवं खलु तस्य भिक्षोः सामग्र्यं सदा यतेत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ– से-यदि वह। भिक्खू वा-साधु अथवा साध्वी। पाय-पात्र की। एसित्तए-गवेषणा करनी। अभिकंखिज्जा-चाहता है तो। से-वह साधु। जं-जो। पुण-फिर। पाय-पात्र के सम्बन्ध मे यह। जाणिज्जा-जाने। तजहा-जैसे कि। अलाउयपायं वा-तूबे का पात्र है अथवा। दारुपाय-काष्ठ का पात्र है अथवा। मट्टिया पाय वा-मिट्टी का पात्र है और। तहप्पगारं पाय-तथाप्रकार के पात्र हैं। जे-जो। निग्गथे-निर्ग्रन्थ। तरुणे-युवक है। जाव-यावत्। थिरसंघयणे-स्थिर संहनन वाला है अर्थात् जिसका शरीर दृढ है। से-वह साधु। एग पाय-एक ही पात्र। धारिज्जा-धारण करे। नो बिइय-दूसरा पात्र न रखे। से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। अद्धजोयणमेराए-अर्द्ध योजन की मर्यादा से। परं-उपरान्त। पायपडियाए-पात्र ग्रहण की प्रतिज्ञा से। गमणाए-जाने के लिए। नो अभिसंधारिज्जा-मन मे विचार न करे।

से भिक्खू वा॰-वह साधु या साध्वी। से-वह। जं-जो फिर। पायं-पात्र को। जाणिज्जा-जाने। अस्सिपडियाए-साधु की प्रतिज्ञा से गृहस्थ ने। एगं साहम्मिय-एक साधर्मी साधु का। समुद्दिस्स-उद्देश्य रख कर अर्थात् साधु के निमित्त से। पाणाइं ४-प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का विनाश करके पात्र तैयार किया है, शेष वर्णन। जहा-जैसे। पिंडेसणाए-पिण्डैषणा अध्ययन मे किया गया है उसी तरह। चत्तारि-चार। आलावगा-आलापक जानने चाहिए। पचमे-पाचवे आलापक मे। बहवे-बहुत से। समण॰-शाक्यादि श्रमण तथा ब्राह्मण आदि के लिए। पगणिय २-गिन-गिन कर अर्थात् उनका उद्देश्य रखकर पात्र बनाए। तहेव-शेष वर्णन जैसे पिण्डैषणा अध्ययन मे आहार के विषय मे किया गया है उसी प्रकार यहा पर अर्थात् पात्र के सम्बन्ध मे भी जान लेना चाहिए।

से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। अस्सजए-असयत, गृहस्थ। भिक्खुपडियाए-साधु की प्रतिज्ञा से। बहवे-बहुत से। समणमाहणे॰-शाक्यादि श्रमण तथा ब्राह्मणादि के विषय मे। वत्थेसणाऽऽलावओ-जैसे वस्त्रैषणा आलापक मे कहा गया है उसी प्रकार पात्रैषणा आलापक भी जानना चाहिए। से भिक्खू वा-वह साधु या साध्वी। से-वह-साधु। जाइं-जो। पुण-फिर। विरूवरूवाइं-नाना प्रकार के। पायाइं-पात्रो के सम्बन्ध मे। जाणिज्जा-जाने। महद्धणमुल्लाइं-जो बहुमूल्य है, कीमती हैं। तंजहा-जैसे कि। अयपायाणि वा-लोहे के पात्र। तउपाया॰-कली के पात्र। तबपाया॰-ताम्बे के पात्र। सीसगपा॰-सीसे के पात्र। हिरण्णपा॰-चान्दी के पात्र। सुवण्णपा॰-सुवर्ण-सोने के पात्र। रीरिअयापा॰-पीतल के पात्र। हारपुडपा॰-लोहविशेष के पात्र। मणिकायकंसपाया॰-मणि, काच और कासी के पात्र। संखसिंगपा॰-सख-शख और शृग के पात्र। दंतपा॰-दान्त के पात्र। चेलपा॰-वस्त्र के पात्र। सेलपा॰-पत्थर के पात्र तथा। चम्मपा॰-चर्म के पात्र और। अन्नयराइं-अन्य। तहप्प॰-इसी तरह के। विरूवरूवाइं-विविध। महद्धणमुल्लाइं-मूल्य वाले। पायाइं-पात्रो को। अफासुय-

अप्रासुक जानकर। **जाव**-यावत्। **नो पडि॰**-ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा-वह साधु अथवा साध्वी। **से**-वह। **जाइ**-जो। **पुण**-फिर। **पाय**-पात्र को। **जाणिज्जा**-जाने। **विरूव॰**-नाना प्रकार के-विविध-भान्ति के। **महद्धणबधणाइ**-जिनके मूल्यवान बन्धन है। **त॰**-जैसे कि। **अयबधणाणि वा**-लोहे के बन्धन। जाव-यावत्। **चम्मबधणाणि वा**-चर्म के बन्धन वाले, तथा। **अन्नयराइ**-अन्य भी। **तहप्प॰**-तथाप्रकार के। **महद्धणबधणाइ**-कीमती बन्धनों को जानकर और उन बन्धनो के कारण इन पात्रो को। **अफा॰**-अप्रासुक मान कर। **नो पडि॰**-ग्रहण न करे। **इच्चेयाइ**-ये सब पूर्वोक्त। **आयतणाइ**-पात्र सम्बन्धी दोषो के स्थान है। इनको। **उवाइक्कम्म**-अतिक्रम करके अर्थात् छोड़कर पात्र ग्रहण करना चाहिए।

अह-अथ। **भिक्खू**-साधु। **जाणिज्जा**-यह जाने कि। **चउहिं पडिमाहि**-उसे चार प्रतिमाओ-अभिग्रह विशेषो से। **पाय**-पात्र की। **एसित्तए**-गवेषणा करनी है। **खलु**-वाक्यालकार मे है। **तत्थ**-उन चारो प्रतिमाओ मे से। **इमा**-यह। **पढमा**-पहली। **पडिमा**-प्रतिमा है। **से**-वह। **भिक्खू॰**-साधु या साध्वी। **उद्दिसिय २**-नाम लेकर। **पाय**-पात्र की। **जाइज्जा**-याचना करे। **तजहा**-जैसे कि। **अलाउयपाय वा ३**-अलाबुक पात्र-तूम्बे का पात्र, काष्ठ का पात्र और मिट्टी का पात्र। **तह॰**-तथाप्रकार के। **पायं**-पात्र की। **सयं वा**-स्वय अपने आप। **जाइज्जा**-याचना करे। **जाव**-यावत्। **पडि॰**-ग्रहण करे। **पढमा पडिमा**-यह पहली प्रतिमा है। **णं**-वाक्यालकार मे है। **अहावरा**-अथ अपर दूसरी प्रतिमा कहते है। **से॰**-वह साधु या साध्वी। **पेहाए**-देखकर। **पायं**-पात्र की। **जाइज्जा**-याचना करे। **तं**-जैसे कि। **गाहावइ वा**-गृहपति यावत्। **कम्मकरि वा**-काम करने वाले दास-दासी आदि। **से**-वह भिक्षु। **पुव्वामेव**-पहले ही गृहस्थ के घर मे। **आलोइज्जा**-देखे और देख कर इस प्रकार कहे। **आउ॰**-आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा। **भ॰**-भगिनि! बहिन। **मे**-मुझे। **इत्तो**-इन पात्रो मे से। **अन्नयर**-अन्यतर कोई एक। **पाय**-पात्र को। **दाहिसि**-दोगे या दोगी? **तंजहा**-जैसे कि। **अलाउपाय वा ३**-तुम्बी का पात्र, लकड़ी और मिट्टी का पात्र। **तह॰**-तथाप्रकार के अन्य। **पायं**-पात्र की। **सय वा**-स्वयमेव याचना करे अथवा बिना मागे कोई देवे। **जाव**-यावत्। **पडि॰**-ग्रहण करे। **दुच्चा पडिमा**-यह दूसरी प्रतिमा है। **अहावरा**-अथ अपर अर्थात् तीसरी प्रतिमा कहते है। **से**-वह। **भि॰**-साधु अथवा साध्वी। **से ज**-वह जो। **पुण**-फिर। **पाय**-पात्र को। **जाणिज्जा**-जाने। **संगइय वा**-गृहस्थ का भोगा हुआ पात्र। **वेजइयतिय वा**-गृहस्थ के भोगे हुए दो वा तीन पात्र जिनमे खाद्य पदार्थ पड़े हुए हो या पड़ चुके हो। **तहप्पगार**-तथाप्रकार के। **पायं**-पात्र को। **सयं वा**-स्वय याचना करे, अथवा गृहस्थ बिना मागे देवे तो। **जाव**-यावत्। **पडि॰**-ग्रहण करे। **तच्चा पडिमा**-यह तीसरी प्रतिमा है। **अहावरा चउत्था पडिमा**-अथ चौथी प्रतिमा कहते है। **से भि॰**-वह साधु या साध्वी। **उज्झियधम्मियं**-उज्झितधर्म वाले पात्र की। **जाएज्जा**-याचना करे। **जाव**-यावत्। **अन्ने**-अन्य। **बहवे**-बहुत। **समणा**-शाक्यादि श्रमण। **जाव**-यावत्। **नावकंखति**-नहीं चाहते। **तह॰**-तथाप्रकार के पात्र की। **जाएज्जा**-स्वय याचना करे अथवा गृहस्थ ही बिना मागे देवे तो। **जाव**-यावत् प्रासुक जानकर। **पडि॰**-ग्रहण करे। **चउत्था पडिमा**-यह चौथी प्रतिमा-अभिग्रह विशेष है। **इच्चेइयाण**-इन पूर्वोक्त। **चउण्ह पडिमाण**-चार प्रतिमाओ में से। **अन्नयर**-किसी एक। **पडिम**-प्रतिमा को, शेष वर्णन। **जहा**-जैसे। **पिंडेसणाए**-पिण्डैषणा अध्ययन मे सात प्रतिमाओ के विषय मे किया गया है उसी प्रकार जानना। **ण**-वाक्यालकार मे है। **से**-साधु को। **एयाए एसणाए**-इस एषणा-पात्रैषणा के द्वारा। **एसमाणं**-गवेषणा पात्र को अन्वेषणा करते हुए को। **पासित्ता**-देखकर यदि। **परो**-कोई गृहस्थ। **वइज्जा**-इस प्रकार कहे। **आउ॰ स॰**-आयुष्मन् श्रमण! **एज्जासि**-अब तुम जाओ। **तुमं**-तुमने। **मासेण वा**-एक मास के बाद आना शेष

वर्णन। जहा-जैसे। वत्थेसणाए-वस्त्रैषणा का है उसी भाति जानना। णं-वाक्यालकार मे है। से-पात्र की गवेषणा करते हुए उस भिक्षु को देखकर। परो-अन्य गृहस्थ । नेता-गृहस्वामी अपने कौटुम्बिक जन को। वइज्जा-इस प्रकार कहे। आउ०-हे आयुष्मन् अथवा। भ०-हे भगिनि-बहिन ! आहरेय पाय-ला यह पात्र, इसको। तिल्लेण वा-तैल से अथवा। घ०-घृत से अथवा। नव०-नवनीत मक्खन से अथवा। वसाए वा-वसा-औषधि के रस विशेष से। अब्भंगित्ता-चोपड़ कर। तहेव-इसी भाति। सिणाणादि-सुगन्धित द्रव्य से स्नानादि। तहेव-उसी प्रकार। सीओदगाइ-शीत व उष्ण जलादि के विषय मे तथा। तहेव-उसी प्रकार। कदाइ-कन्दादि के सम्बन्ध मे जान लेना। ण-वाक्यालकार मे है। से-पात्र की गवेषणा करते हुए भिक्षु को देखकर। परो-गृहस्थ। नेता-गृहस्वामी साधु के प्रति यदि। वइज्जा-कहे। आ उ० स०-आयुष्मन्-श्रमण ! मुहुत्तगं २-मुहूर्त पर्यन्त तुम यहा पर। अच्छाहि-ठहरो। जाव-यावत्। ताव-तब तक। अम्हे-हम। असण वा-अशनादिक चतुर्विध आहार को। उवकरेसु वा-एकत्रित कर अथवा। उवक्खडेसु वा-उपस्कृत करके अर्थात् अन्नादि को तैयार करके। आउसो०-आयुष्मन्-श्रमण! तो-तदनन्तर। ते-तुमको। वय-हम। सपाण-पानी के साथ। सभोयण-भोजन के साथ। पडिग्गह-पात्र को। दाहामो-देगे! कारण कि। तुच्छए-खाली। पडिग्गहे-पात्र में। दिन्ने-दिया हुआ । समणस्स-साधु को। सुट्ठु-अच्छा और। साहु-श्रेष्ठ। नो भवइ-नहीं होता है तब। से-वह साधु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोइज्जा-देखे और देखकर इस प्रकार कहे। आउ०-आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा। भइ०-हे भगिनि-बहन ! खलु-निश्चय ही। आहाकम्मिए-आधाकर्मिक अर्थात् आधाकर्मादि दोषो से युक्त। असणे वा ४-अशनादि चतुर्विध आहार को। भुत्तए वा-भोगना अर्थात् खाना-पीना। मे-मेरे को। नो कप्पइ-नहीं कल्पता अत । मा उवकरेहि-मेरे निमित्त इसे एकत्र न करो यथा। मा उवक्खडेहि-मेरे लिए इसका संस्कार मत करो ? यदि। मे-मुझे। दाउ अभिकखसि-देना चाहते हो तो। एमेव-इसी तरह। दलयाहि-दे दो ? से-वह। परो-गृहस्थ। सेय वयतस्स-साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि। असण वा ४-अशनादि चतुर्विध आहार को। उवकरित्ता-एकत्र कर और। उवक्खडिता-सस्कार करके। सपाण-पानी सहित। सभोयण-भोजन सहित अर्थात् पानी और भोजन से। पडिग्गहग-पात्र को भर कर। दलइज्जा-देवे तो। तह०-तथा प्रकार के। पडिग्गहग-पात्र को। अफासुय-अप्रासुक जानकर। जाव-यावत्। नो पडिगाहिज्जा-ग्रहण न करे। सिया-कदाचित्। से-उस भिक्षु को। परो-गृहस्थ। उवणित्ता-घर के भीतर से लाकर। पडिग्गहग-पात्र को। निसिरिज्जा-दे देवे तो। से-वह भिक्षु। पुव्वामेव-पहले ही। आलोएज्जा-देखे और देख कर इस प्रकार कहे। आउ०-आयुष्मन् गृहस्थ ! अथवा। भ०-हे भगिनि-बहन ! च-पुनरर्थक है। एव-अवधारण अर्थ मे है। ण-वाक्यालकार मे है। सतिय-विद्यमान। तुम-तुम्हारे। पडिग्गहग-पात्र को। अंतोअतेण-सब प्रकार से अर्थात् भीतर और बाहर से। पडिलेहिस्सामि-प्रतिलेखन करूगा अर्थात् देखूगा ? क्योंकि। केवली बूया०-केवली भगवान कहते है कि। आयाण०-यह कर्म बन्धन का कारण है, अर्थात् बिना प्रतिलेखन किए पात्र लेना कर्म बन्धन का हेतु होता है कारण कि। अतोपडिग्गहगंसि-पात्र के भीतर कदाचित्। पाणाणि वा-क्षुद्र जीव हो। बीया०-अथवा बीज हो या। हरि०-हरी हो। अह-इस लिए। भिक्खूणं-भिक्षुओ को। पु०-पूर्वोपदिष्ट अर्थात् तीर्थंकरादि की आज्ञा है कि। जं-जो। पुव्वामेव-पहले ही। पडिग्गहग-पात्र को। अन्तोअतेण-भीतर और बाहर से। पडि०-प्रतिलेखन करे-अच्छी तरह से देखे, यदि। सअंडाइ-वह अडादि से युक्त हो तो उसे ग्रहण न करे। सव्वे आलावगा-यहा पर सभी आलापक। भाणियव्वा-कहने चाहिए। जहा-जैसे कि। वत्थेसणाए-वस्त्रैषणा के विषय मे कथन किया गया है उसी प्रकार पात्रैषणा के सम्बन्ध में जानना।

नाणत्त-इसमे इतना विशेष है यथा। **तिल्लेण वा**-तैल से या। **घए०**-घृत से अथवा। **नव०**-नवनीत से। **वसाए वा**-वसा-चर्बी अथवा औषधि विशेष से। **सिणाणादि**-या सुगन्धित स्नानादि से। **जाव**-यावत्। **अन्नयरंसि वा**-अन्य किसी पदार्थ से पात्र सस्पर्शित हुआ हो तो। **तहप्पगा०**-तथाप्रकार के। **थंडिलसि**-स्थडिल मे जाकर। **पडिलेहिय २**-प्रतिलेखना कर अर्थात् भूमि को देख कर। **पम० २**-उसे प्रमार्जित कर। **तओ०**-तदनन्तर। **सजयामेव**-यत्नापूर्वक। **आमज्जिज्जा**-पात्र को मसले। **एय खलु**-यह निश्चय ही। **तस्स भिक्खुस्स**-उस भिक्षु का। **सामग्गिय**-सम्पूर्ण आचार है। **ज**-जो। **सव्वट्ठेहि**-सर्व अर्थों से। **समिएहिं**-पाच समितियो से युक्त। **सया**-सदा। **जएज्जासि**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी जब कभी पात्र की गवेषणा करनी चाहे तो सब से पहले उन्हे यह जानना चाहिए कि तूबे का पात्र, काष्ठ का पात्र, और मिट्टी का पात्र साधु ग्रहण कर सकता है। और उक्त प्रकार के पात्र को ग्रहण करने वाला साधु यदि तरुण है, स्वस्थ है, स्थिर सहनन वाला है तो वह एक ही पात्र धारण करे, दूसरा नहीं और वह अर्द्धयोजन के उपरान्त पात्र लेने के लिए जाने का मन मे सकल्प न करे।

यदि किसी गृहस्थ ने एक साधु के लिए प्राणियो की हिंसा करके पात्र बनाया हो तो साधु उसे ग्रहण न करे। इसी तरह अनेक साधु, एक साध्वी एवं अनेक साध्वियों के सम्बन्ध मे उसी तरह जानना चाहिए जैसे कि पिण्डैषणा अध्ययन मे वर्णन किया गया है। और शाक्यादि भिक्षुओ के लिए बनाए गए पात्र मे भी पिण्डैषणा अध्ययन के वर्णन की तरह समझना चाहिए। शेष वर्णन वस्त्रैषणा के आलापको के समान समझना चाहिए। अपितु जो पात्र नाना प्रकार के तथा बहुत मूल्य के हो-यथा लोहपात्र, त्रपुपात्र-कली का पात्र, ताम्रपात्र, सीसे, चान्दी और सोने का पात्र, पीतल का पात्र, लोह विशेष का पात्र, मणि, कांच और कासे का पात्र एव शंख और शृंग से बना हुआ पात्र, दात का बना हुआ पात्र, पत्थर और चर्म का पात्र और इसी प्रकार के अधिक मूल्यवान अन्य पात्र को भी अप्रासुक तथा अनैषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे। और यदि लकड़ी आदि के कल्पनीय पात्र पर लोह, स्वर्ण आदि के बहुमूल्य बन्धन लगे हो तब भी साधु उस पात्र को ग्रहण न करे। अत साधु उक्त दोषो से रहित निर्दोष पात्र ही ग्रहण करे।

इसके अतिरिक्त चार प्रतिज्ञाओ के अनुसार पात्र ग्रहण करना चाहिए। १-पात्र देख कर स्वयमेव याचना करूगा। २-साधु पात्र को देख कर गृहस्थ से कहे-आयुष्मन् गृहस्थ ! क्या तुम इन पात्रो मे से अमुक पात्र मुझे दोगे ! या वैसा पात्र बिना मागे ही गृहस्थ दे दे तो मै ग्रहण करूंगा। ३-जो पात्र गृहस्थ ने उपभोग में लिया हुआ है, वह ऐसे दो-तीन पात्र जिनमे गृहस्थ ने खाद्यादि पदार्थ रखे हो वह पात्र ग्रहण करूगा। ४-जिस पात्र को कोई भी नहीं चाहता, ऐसे पात्र को ग्रहण करूंगा।

इन प्रतिज्ञाओ मे से किसी एक का धारक मुनि किसी अन्य मुनि की निन्दा न करे। किन्तु यह विचार करता हुआ विचरे कि जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन करने वाले सभी मुनि आराधक है।

पात्र की गवेषणा करते हुए साधु को देख कर यदि कोई गृहस्थ उसे कहे कि आयुष्मन्

श्रमण ! इस समय तो तुम जाओ। एक मास के बाद आकर पात्र ले जाना, इत्यादि। इस विषय मे शेष वर्णन वस्त्रैषणा के समान जानना।

यदि कोई गृहस्थ साधु को देखकर अपने कौटुम्बिक जनो मे से किसी पुरुष या स्त्री को बुलाकर यह कहे कि वह पात्र लाओ उस पर तेल, घृत, नवनीत या वसा आदि लगाकर साधु को देवें। शेष स्नानादि शीत उदक तथा कन्द-मूल विषयक वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन के समान जानना।

यदि कोई गृहस्थ साधु से इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! आप मुहूर्त पर्यन्त ठहरे। हम अभी अशनादि चतुर्विध आहार को उपस्कृत करके आपको जल और भोजन से पात्र भर कर देगे। क्योंकि साधु को खाली पात्र देना अच्छा नहीं रहता। तब साधु उनसे इस प्रकार कहे कि आयुष्मन् गृहस्थ ! या भगिनि-बहिन ! मुझे आधाकर्मिक आहार-पानी ग्रहण करना नहीं कल्पता। अत मेरे लिए आहारादि सामग्री को एकत्र और उपसस्कृत मत करो। यदि तुम मुझे पात्र देने की अभिलाषा रखते हो तो उसे ऐसे ही दे दो। साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ आहार आदि बना कर उससे पात्र को भर कर दे तो साधु उसे अप्रासुक जानकर स्वीकार न करे।

यदि कोई गृहस्थ उस पात्र पर नई क्रिया किए बिना ही लाकर दे तो साधु उसे कहे कि मै तुम्हारे इस पात्र को चारो तरफ से भली-भांति प्रतिलेखना करके लूगा। क्योंकि बिना प्रतिलेखना किए ही पात्र ग्रहण करने को केवली भगवान ने कर्मबन्ध का कारण बताया है। हो सकता है कि उस पात्र मे प्राणी, बीज और हरी आदि हो, जिस से वह कर्मबन्ध का हेतु बन जाए। शेष वर्णन वस्त्रैषणा के समान जानना। केवल इतनी ही विशेषता है कि यदि वह पात्र तेल से, घृत से, नवनीत से और वसा या ऐसे ही किसी अन्य पदार्थ से स्निग्ध किया हुआ हो तो साधु स्थडिल भूमि मे जाकर वहा भूमि की प्रतिलेखना और प्रमार्जना करे। और तत्पश्चात् पात्र को धूली आदि से प्रमार्जित कर-मसल कर रूक्ष बना ले। यही साधु का समग्र आचार है। जो साधु ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त समितियो से समित है वह इस आचार को पालन करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को तूम्बे, काष्ठ एव मिट्टी का पात्र ही ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त साधु को लोहे, ताम्र, स्वर्ण-चान्दी आदि धातु के तथा काच के पात्र स्वीकार नहीं करने चाहिए। और साधु को अधिक मूल्यवान पात्र एव काष्ठ आदि के पात्र भी जो कि धातु से सवेष्टित हो तो उन्हे भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि काष्ठ आदि के पात्र पर कोई गृहस्थ तेल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थ लगाकर दे या साधु के लिए आहार आदि तैयार करके उस आहार से पात्र भर कर देवे तब भी साधु को उस सदोष आहार आदि से युक्त पात्र को ग्रहण नहीं करना चाहिए। साधु को सब तरह से निर्दोष एव एषणीय पात्र को चारो ओर से भली-भाति देख कर ही ग्रहण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में शेष वर्णन पिंडैषणा प्रकरण की तरह समझना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यदि साधु तरुण, नीरोग, दृढ सहनन वाला हो तो

उसे एक ही पात्र रखना चाहिए। वृत्तिकार ने प्रस्तुत पाठ को जिनकल्प से सम्बद्ध माना है[१]। क्योकि, स्थविरकल्प साधु के लिए तीन पात्र रखने का विधान है। हा, अभिग्रहनिष्ठ साधु अपनी शक्ति के अनुरूप अभिग्रह धारण कर सकता है।

इसमे यह भी बताया गया है कि साधु पात्र ग्रहण करने के लिए आधे योजन से ऊपर न जाए। इसका तात्पर्य यह है कि साधु जिस स्थान मे ठहरा हुआ हो उस समय वह पात्र लेने के लिए आधे योजन से ऊपर जाने का सकल्प न करे। परन्तु, विहार के समय के लिए यह प्रतिबन्ध नही है।

आहार, वस्त्र आदि की तरह साधु-साध्वी को वह पात्र भी ग्रहण नही करना चाहिए जो उनके लिए बनाया गया है। साधु को आधा-कर्म आदि दोषो से रहित पात्र को स्वीकार करना चाहिए।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझनी चाहिए।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ तत्र च य स्थिरसहननाद्यपेत स एकमेव पात्र बिभृयात् न च द्वितीय, स च जिनकल्पिकादि, इतरस्तुमात्रकसद्वितीय पात्र धारयेत्, तत्र सघाटके सत्येकस्मिन् भक्त द्वितीये पात्रे पानक मात्रक त्वाचार्यादिप्रायोग्यकृतेऽशुद्धस्य वेति। – श्री आचाराङ्ग वृत्ति।

षष्ठ अध्ययन-पात्रैषणा

द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे पात्र गवेषणा की विधि का उल्लेख किया गया है, अब प्रस्तुत उद्देशक मे पात्र सम्बन्धी शेष विधि का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पिंड० पविट्ठे समाणे पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहगं अवहट्टु पाणे पमज्जिय रयं तओ सं० गाहावइ० पिंड० निक्ख० प० , केवली० आउ० ! अंतो पडिग्गहगंसि पाणे वा बीए वा हरि० परियावज्जिज्जा, अह भिक्खूणं पु० जं पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहं अवहट्टु पाणे पमज्जिय रयं तओ सं० गाहावइ० निक्खमिज्ज वा २ ॥१५४॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुलं पिडपातप्रतिज्ञया प्रविष्ट सन् पूर्वमेव प्रेक्ष्य पतद्ग्रह अपहृत्य (आहृत्य) प्राणिन प्रमृज्य रज ततः संयतमेव गृहपतिकुल पिंडपातप्रतिज्ञया निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा केवली ब्रूयात् कर्मादानमेतत्। आयुष्मन् ! अन्तः पतद्ग्रहे प्राणिनो वा बीजानि वा हरितानि वा पर्यापद्येरन्। अथ भिक्षूणां पूर्वोपदिष्ट यत् पूर्वमेव प्रेक्ष्य पतद्ग्रह अपहृत्य प्राणिनः प्रमृज्य रजः, ततः संयतमेव गृहपतिकुलं निष्क्रामेद् वा प्रविशेद् वा।

पदार्थ– **से भिक्खू०**-वह साधु या साध्वी। **गाहावइकुल**-गृहस्थ के कुल मे। **पिडवायपडियाए**-आहार प्राप्ति के लिए। **पविट्ठे समाणे**-प्रवेश करता हुआ। **पुव्वामेव**-पहले ही। **पेहाए**-देखकर। **पडिग्गहगं**-पात्र को अर्थात् यदि पात्र में। **पाणे**-प्राणि हो तो उनको। **अवहट्टु**-निकाल कर तथा। **पमज्जिय रयं**-रज को प्रमार्जित कर। **तओ**-तदनन्तर। **सं०**-यतना पूर्वक। **गाहावइ०**-गृहपति के कुल मे। **पिड० प०**-आहार प्राप्ति के लिए। **निक्खमिज्ज वा प०**-निकले या प्रवेश करे क्योंकि। **केवली०**-केवली भगवान कहते हैं। **आउ०**-आयुष्मन् शिष्य ! प्रतिलेखना और प्रमार्जना किए बिना पात्र का ले जाना कर्म बन्धन का कारण है, क्योंकि। **अंतोपडिग्गहगंसि**-पात्र के बीच मे। **पाणे वा**-प्राणी। **बीए वा**-अथवा बीज। **हरि०**-अथवा हरी तथा सचित्त रज यदि हो तो उनका। **परियावज्जिज्जा**-विनाश हो जाएगा। **अह**-इस लिए। **भिक्खूणं**-भिक्षुओं को। **पु०**-तीर्थंकरादि ने पहले ही यह आज्ञा दी है। **ज**-जो कि। **पुव्वामेव**-पहले ही। **पडिग्गहं**-पात्र को। **पेहाए**-देखकर उसमे रहे हुए। **पाणे**-प्राणी

आदि को। **अवहट्टु**-निकाल कर तथा। **रय**-रज आदि को। **पमज्जिय**-प्रमार्जित कर के। **तओ**-तदनन्तर। **सं०**-साधु। **गाहावइ०**-गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए। **पविसेज्ज वा**-प्रवेश करे। **निक्खमिज्ज वा**-निकले।

मूलार्थ—**गृहस्थ के घर मे आहार-पानी के लिए जाने से पहले सयमनिष्ठ साधु- साध्वी अपने पात्र का प्रतिलेखन करे। यदि उसमे प्राणी आदि हो तो उन्हे बाहर निकाल कर एकान्त में छोड़ दे और रज आदि को प्रमार्जित कर दे। उसके बाद साधु आहार आदि के लिए उपाश्रय से बाहर निकले और गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे। क्योंकि भगवान का कहना है कि बिना प्रतिलेखना किए हुए पात्र को लेकर जाने से उसमे रहे हुए क्षुद्र जीव-जन्तु एव बीज आदि की विराधना हो सकती है। अत साधु को आहार-पानी के लिए जाने से पूर्व पात्र का सम्यक्तया प्रतिलेखन करके आहार को जाना चाहिए, यही भगवान की आज्ञा है।**

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु-साध्वी को आहार-पानी के लिए जाने से पहले अपने पात्र का सम्यक्तया प्रतिलेखन करना चाहिए। जब कि साधु सायकाल मे पात्र साफ करके बाधता है और प्रात. उनका प्रतिलेखन कर लेता है, फिर भी आहार-पानी को जाते समय पुन प्रतिलेखन करना अत्यावश्यक है। क्योकि कभी-कभी कोई क्षुद्र जन्तु या रज (धूल) आदि पात्र मे प्रविष्ट हो जाती है। अत जीवो की रक्षा के लिए उसका प्रतिलेखन एव प्रमार्जन करना जरूरी है। यदि पात्र को न देखा जाए और वे क्षुद्र जन्तु उसमे रह जाए तो उनकी विराधना हो सकती है। इस लिए बिना प्रमार्जन किए पात्र लेकर आहार को जाना कर्म बन्ध का कारण बताया गया है। अत· साधु को सदा विवेक पूर्वक पात्र का प्रतिलेखन करके ही गोचरी को जाना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि० जाव समाणे सिया से परो आहट्टु अंतो पडिग्गहगंसि सीओदगं परिभाइत्ता नीहट्टु दलइज्जा, तहप्प० पडिग्गहगं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं जाव नो प०, से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया खिप्पामेव उदगंसि साहरिज्जा, से पडिग्गहमायाए पाणं परिट्ठविज्जा, ससिणिद्धाए वा भूमीए नियमिज्जा। से० उदउल्लं वा ससिणिद्धं वा पडिग्गहं नो आमज्जिज्जा वा २ अह पु० विगओदए मे पडिग्गहए छिन्नसिणेहे तह० पडिग्गहं तओ० सं० आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा। से भि० गाहा० पविसिउकामे पडिग्गहमायाए गाहा० पिंड० पविसिज्ज वा नि०, एवं बहिया वियारभूमिं विहारभूमिं वा गामा० दूइज्जिज्जा, तिव्वदेसियाए जहा बिइयाए वत्थेसणाए नवरं इत्थ पडिग्गहे, एयं खलु तस्स० जं सव्वट्ठेहिं सहिए सया जएज्जासि, त्तिबेमि॥१५४॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा गृहपतिकुलं पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविष्टः सन् स्यात् स परः आहृत्य अन्त. पतद्ग्रहे शीतोदकं परिभाज्य नि.सार्य दद्यात्, तथाप्रकारं पतद्ग्रहं परहस्ते वा परपात्रे वा अप्रासुकं यावत् न प्रतिगृह्णीयात् स च आहृत्य प्रतिगृहीतं स्यात् क्षिप्रमेव

उदके आहरेत् प्रक्षिपेत्। स पतद्ग्रहमादाय पानं परिष्ठापयेत्, सस्निग्धाया वा भूमौ नियमेत्-प्रक्षिपेत्॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा उदकार्द्रं वा सस्निग्धं वा पतद्ग्रहं नो आमृज्येत् २ अथ पुनः एवं जानीयात् विगतोदकं मे पतद्ग्रहं (पात्रं) छिन्नस्नेहं तथाप्रकारं पतद्ग्रहं तत. संयतमेव आमृज्येत वा यावत् परितापयेत् वा॥ स भिक्षुर्वा गृहपतिकुलं प्रवेष्टुकाम. पतद्ग्रहमादाय गृहपतिकुलं पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविशेद् वा निष्क्रामेद् वा, एवं बहिः विचारभूमिं वा विहारभूमिं वा ग्रामानुग्राम दूयेत-गच्छेत्। तीव्रदेशीया यथा द्वितीयायां वस्त्रैषणायां, नवरं अत्र पतद्ग्रहे, एव खलु तस्य भिक्षो· २ सामग्र्यं यत् सर्वार्थैः समितै सहित. सदा यतेत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ— **से भि॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **जाव समाणे**-गृहपति के घर मे प्रवेश करते हुए। **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु को। **परो**-गृहस्थ। **आहट्टु**-घर के भीतर से बाहर लाकर। **अतोपडिग्गहगसि**-गृहस्थ के अन्य किसी पात्र मे। **सीओदग**-सचित्त पानी को। **परिभाइत्ता**-घट आदि के किसी अन्य बर्तन मे डालकर। **निहट्टु**-फिर उसे लाकर। **दलइज्जा**-दे तो। **तहप्पगार**-तथाप्रकार के। **पडिग्गहग**-पात्र को-जो कि पानी से भरा हुआ है। **परहत्थसि वा**-गृहस्थ के हाथ मे है। **परपायंसि वा**-या अन्य पात्र मे है तो। **अफासुय**-उसे अप्रासुक। **जाव**-यावत् अनेषणीय जानकर। **नो प॰**-साधु ग्रहण न करे। **य**-पुन । **से**-वह-पात्र। **आहच्च**-कदाचित्। **पडिग्गाहिए सिया**-ग्रहण कर लिया हो तो। **से**-वह साधु। **खिप्पामेव**-शीघ्र ही। **उदगसि**-उस पानी को डालने योग्य भाजन मे। **साहरिज्जा**-डाल दे। **पडिग्गहमायाए**-यदि गृहस्थ पानी वापिस लेना न चाहे तो पानी युक्त पात्र को लेकर किसी अन्य एकान्त स्थान मे जाकर। **पाण**-पानी को। **परिट्ठविज्जा**-परठ दे। **वा**-अथवा। **ससिणिद्धाए भूमीए**-स्निग्ध भूमि पर। **नियमिज्जा**-परठ दे। **से भि॰**-वह साधु अथवा साध्वी पानी को परठने के बाद। **उदउल्ल वा**-जिससे पानी के बिन्दु टपक रहे हैं अथवा। **ससिणिद्ध वा**-जो पानी से गीला है। **पडिग्गह**-उस पात्र को। **नो आमज्जिज्जा**-मार्जित न करे, मसले नहीं यावत् धूप मे सुखाए नहीं। **अह पुण एव जाणिज्जा**-और यदि इस प्रकार जाने। **मे**-मेरा। **पडिग्गहए**-पात्र। **विगओदए**-पानी से रहित हो गया है और। **छिन्नसिणेहे**-गीला भी नहीं है। **तह॰**-तथाप्रकार के। **पडिग्गह**-पात्र को। **तओ**-तत्पश्चात्। **स॰**-साधु। **आमज्जिज्ज वा**-प्रमार्जित करे। **जाव**-यावत्। **पयाविज्ज वा**-धूप मे सुखाए।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। **गाहा॰**-गृहपति के घर मे। **पविसिउकामे**-प्रवेश करने की इच्छा करता हुआ। **पडिग्गहमायाए**-पात्र को लेकर। **गाहा॰**-गृहपति के घर मे। **पिंड॰**-आहार प्राप्ति के लिए। **पविसिज्ज वा**-प्रवेश करे अथवा। **नि॰**-निकले। **एवं बहिया**-इसी प्रकार बाहर। **वियारभूमि वा**-स्थडिल मे जाना हो तो पात्र लेकर जाए और। **विहारभूमिं वा**-स्वाध्याय भूमि में जाना हो तो पात्र लेकर जाए तथा। **गामा॰ दूइज्जिज्जा**-ग्रामानुग्राम विहार करना हो तब भी पात्र लेकर विहार करे। **तिव्वदेसियाए**-यदि थोड़ी-बहुत वर्षा बरस रही हो तो। **जहा**-जैसे। **बिइयाए**-द्वितीय। **वत्थेसणाए**-वस्त्रैषणा के विषय मे वर्णन किया है, शेष वर्णन उसी तरह समझ लेना चाहिए। **नवर**-इतना विशेष है। **इत्थ**-यहा पर। **पडिग्गहे**-पात्र का अधिकार जानना। **खलु**-निश्चय ही। **एवं**-इस प्रकार। **तस्स भिक्खुस्स वा॰ २**-उस साधु या साध्वी का। **सामग्गियं**-समग्र—सम्पूर्ण आचार है। **ज सव्वट्ठेहिं**-जो सर्व अर्थों से युक्त। **समिएहिं**-समितियों के। **सहिए**-सहित। **सया**-सदा। **जएज्जासि**-इसके पालन में यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मैं कहता हूं।

***मूलार्थ*—गृहस्थ के घर में गए हुए साधु या साध्वी ने जब पानी की याचना की और गृहस्थ घर के भीतर से सचित्त जल को किसी अन्य भाजन मे डाल कर साधु को देने लगा हो तो इस प्रकार के जल को अप्रासुक जानकर साधु ग्रहण न करे। कदाचित्-असावधानी से वह जल ले लिया गया हो तो शीघ्र ही उस जल को वापिस कर दे। यदि गृहस्थ उसे वापिस न ले तो फिर वह उस जल युक्त पात्र को लेकर स्निग्ध भूमि मे अथवा अन्य किसी योग्य स्थान मे जल को परठ दे और पात्र को एकान्त स्थान मे रख दे, किन्तु जब तक उस पात्र से ज्ल के बिन्दु टपकते रहे या वह पात्र गीला रहे तब तक उसे न तो पोछे और न धूप मे सुखाए। जब यह जान ले कि मेरा यह पात्र अब विगत जल और स्नेह से रहित हो गया है तब उसे पोछ सकता है और धूप मे भी सुखा सकता है।**

सयमशील साधु या साध्वी जब आहार लेने के लिए गृहस्थ के घर में जाए तो अपने पात्र साथ लेकर जाए। इसी तरह स्थडिल भूमि और स्वाध्याय भूमि मे जाते समय भी पात्र को साथ लेकर जाए और ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी पात्र को साथ मे ही रखे। और न्यूनाधिक वर्षा के समय की विधि का वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन के दूसरे उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए। यही साधु या साध्वी का समग्र आचार है। प्रत्येक साधु-साध्वी को इसके परिपालन करने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गृहस्थ के घर मे पानी के लिए गए हुए साधु-साध्वी को कोई गृहस्थ सचित्त पानी देने का प्रयत्न करे तो वह उसे स्वीकार न करे। और यदि कभी असावधानी से ग्रहण कर लिया हो तो उसे अपने उपयोग मे न लाए। वह उसे उसी समय वापिस कर दे, यदि गृहस्थ वापिस लेना स्वीकार न करे तो एकान्त स्थान मे स्निग्ध भूमि पर परठ दे और उस पात्र को तब तक न पोछे एव न धूप मे सुखाए जब तक उसमे पानी की बून्दे टपकती हो या वह गीला हो।

सचित्त पानी देने के सम्बन्ध मे वृत्तिकार ने चार कारण बताए हैं– १- गृहस्थ की अनभिज्ञता- वह यह न जानता हो कि साधु सचित्त पानी लेते हैं या नहीं, २- शत्रुता-साधु को बदनाम करके उसे लोगो के सामने सदोष पानी ग्रहण करने वाला बताने की दृष्टि से, ३-अनुकम्पा-साधु को प्यास से व्याकुल देखकर अचित्त जल न होने के कारण दया भाव से और ४-विमर्षता-किसी विचार के कारण उसे ऐसा करने को विवश होना पडा हो। यह स्पष्ट है कि गृहस्थ चाहे जिस परिस्थिति एव भावनावश सचित्त जल दे, परन्तु साधु को किसी भी परिस्थिति मे सचित्त जल का उपयोग नहीं करना चाहिए।

सचित्त जल को परठने के सम्बन्ध मे वृत्तिकार का कहना है कि यदि गृहस्थ उस सचित्त जल को वापिस लेना स्वीकार न करे तो साधु को उसे कूप आदि मे समान जातीय जल मे परठ देना चाहिए। और उपाध्याय पार्श्व चन्द्र ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि यदि साधु के पास दूसरा पात्र हो तो उसे उस सचित्त जल युक्त पात्र को एकान्त मे परठ(छोड) देना चाहिए। परन्तु, ये दोनो कथन आगम सम्मत प्रतीत नहीं होते। क्योकि, आगम मे पानी को परठने के लिए स्पष्ट रूप से स्निग्ध भूमि का उल्लेख किया गया है। अत: उस जल को कुए आदि मे डालना उचित प्रतीत नहीं होता। क्योकि इस क्रिया मे अप्कायिक एव अन्य जीवो की हिसा होगी। और उस सचित्त जल के साथ पात्र को परठना भी उचित प्रतीत नहीं

होता, यदि वह मजबूत है। क्योकि, चलते हुए मजबूत पात्र को परठना एव परठने वाले का समर्थन करना दोष युक्त माना है और उसके लिए आगम मे लघु चातुर्मासी प्रायश्चित बताया है[१]।

इससे स्पष्ट होता है कि साधु उस पानी को न तो कुए आदि मे फैंके, न पात्र सहित ही परठे, परन्तु एकान्त छाया युक्त स्निग्ध स्थान मे विवेक पूर्वक परठे।

वस्त्र आदि की तरह पात्र के सम्बन्ध मे भी यह बताया गया है कि साधु जब भी आहार-पानी के लिए गृहस्थ के घर मे जाए या शौच के लिए बाहर जाए या स्वाध्याय भूमि मे जाए तो अपने पात्र को साथ लेकर जाए। इससे स्पष्ट होता है कि साधु को बिना पात्र के कहीं नहीं जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि पात्र किसी भी समय काम मे आ सकता है। अत उपाश्रय से बाहर जाते समय उसे साथ रखना उपयुक्त प्रतीत होता है।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥

---

१ जे भिक्खू पडिग्गह अल, थिर, धुव, धारणिज्ज णो धरइ धारत वा साइज्जइ।

— निशीथ सूत्र, उद्देशक १४।

सप्तम अध्ययन–अवग्रह प्रतिमा

प्रथम उद्देशक

छठे अध्ययन मे पात्रैषणा का वर्णन किया गया था, परन्तु, साधु पात्र आदि सभी उपकरण किसी गृहस्थ की आज्ञा से ही ग्रहण करता है। क्योकि उसने पूर्णतया चोरी का त्याग कर रखा है। अत प्रस्तुत अध्ययन मे अवग्रह का वर्णन किया गया है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से अवग्रह चार प्रकार का होता है और सामान्य रूप से पाच प्रकार का अवग्रह माना गया है– १ देवेन्द्र अवग्रह, २ राज अवग्रह, ३ गृहपति अवग्रह, ४ शय्यातर अवग्रह और ५ साधर्मिक अवग्रह। उक्त अवग्रहो का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– समणे भविस्सामि अणगारे अकिंचणे अपुत्ते अपसू परदत्तभोई पावं कम्मं नो करिस्सामित्ति समुट्ठाए सव्वं भंते॰ ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा अदिन्नं गिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जेहिवि सद्धिं संपव्वइए तेसिंपि जाइं छत्तगं वा जाव चम्मछेयणगं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुन्नविय अपडिलेहिय २ अपमज्जिय २ नो उग्गिण्हिज्जा वा, परिगिण्हिज्जा वा, तेसिं पुव्वामेव उग्गहं जाइज्जा अणुन्नविय पडिलेहिय पमज्जिय तओ सं॰ उग्गिण्हिज्जा वा प॰ ॥१५५॥

छाया– श्रमणो भविष्यामि अनगार. अकिंचन. अपुत्र अपशु. परदत्त- भोजी पापं कर्म न करिष्यामि, इति समुत्थाय सर्व भदन्त! अदत्तादान प्रत्याख्यामि, स अनुप्रविश्य ग्राम वा यावद् राजधानीं वा नैव स्वयमदत्तं गृह्णीयात्, नैवान्यैः अदत्तं ग्राहयेत्, अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान् न समनुजानीयात्, यैरपि (साधुभि·) सार्द्धं संप्रव्रजित तेषामपि यानि छत्रक वा यावत् चर्मच्छेदनकं वा तेषा पूर्वमेव अवग्रहमननुज्ञाप्याप्रतिलिख्य २ अप्रमृज्य २ नावगृह्णीयाद् वा प्रतिगृह्णीयाद् वा तेषां पूर्वमेव अवग्रह याचेतानुज्ञाप्य प्रतिलिख्य प्रमृज्य तत संयतमेवावगृह्णीयात् प्रतिगृह्णीयाद् वा।

पदार्थ– **समणे भविस्सामि**–मैं श्रमण-तपस्वी साधु बनूंगा। किस प्रकार का ? **अणगारे**–अनगार–

घर से रहित। **अकिंचणे**-अकिंचन-परिग्रह से रहित। **अपुत्ते**-पुत्र आदि से रहित। **अपसू**-और द्विपद चतुष्पदादि पशुओं से रहित एवं। **परदत्तभोई**-दूसरे का दिया हुआ भोजन करने वाला, मै। **पाव कम्म**-पाप कर्म को। **नो करिस्सामि**-नहीं करूगा। **त्ति**-इस प्रकार की। **समुट्ठाए**-प्रतिज्ञा मे उद्यत होकर मैं ऐसी प्रतिज्ञा करता हू। **भते**-हे भगवन्! मै। **सव्वं**-सर्व प्रकार के। **अदिन्नादाणं**-अदत्तादान का। **पच्चक्खामि**-प्रत्याख्यान करता हू, इस प्रतिज्ञा से। **से**-वह-भिक्षु। **गाम वा**-ग्राम और नगर। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **अणुपविसित्ता**-प्रवेश करके। **नेव सय अदिन्न गिण्हिज्जा**-बिना दिए अदत्त-पदार्थ को स्वय ग्रहण न करे तथा। **नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा**-बिना दिए पदार्थ को दूसरो से ग्रहण भी न कराए और। **अदिन्न गिण्हतेवि**-अदत्त को ग्रहण करने वाले। **अन्ने**-अन्य व्यक्तियो का। **नो समणुजाणिज्जा**-अनुमोदन भी न करे, इतना ही नहीं किन्तु। **जेहिवि सद्धि**-जिनके साथ। **सपव्वइए**-प्रवर्जित हुआ या जिनके साथ रहता है। **तेसिंपि**-उनके भी। **जाइ**-जो। **छत्तग वा**-छत्र। **जाव**-यावत्। **चम्मछेयणग वा**-चर्म छेदक आदि उपकरण विशेष है। **तेसि**-उनका। **पुव्वा०**-पहले। **उग्गह**-अवग्रह-आज्ञा विशेष। **अणणुन्नविय**-लिए बिना। **अपडिलेहिय**-बिना प्रतिलेखन किए और। **अपमज्जिय**-बिना प्रमार्जन किए। **नो उग्गिण्हिज्जा वा**-एक बार ग्रहण न करे तथा। **परिगिण्हिज्जा**-बार २ ग्रहण न करे, किन्तु। **पुव्वामेव**-पहले ही। **तेसि**-उनके पास। **उग्गहं**-अवग्रह की। **जाइज्जा**-याचना करे अर्थात् आज्ञा मागे। **अणुन्नविय**-उनकी आज्ञा लेकर तथा। **पडिलेहिय**-प्रतिलेखना और। **पमज्जिय**-प्रमार्जना करके। **तओ**-तदनन्तर। **स०**-यतनापूर्वक। **उग्गिण्हिज्जा वा प०**-एक बार अथवा अधिक बार ग्रहण करे।

***मूलार्थ*—दीक्षित होते समय दीक्षार्थी विचार पूर्वक कहता है कि मैं श्रमण-तपस्वी-तप करने वाला बनूंगा, जो घर से, परिग्रह से, पुत्रादि सम्बन्धियो से और द्विपद-चतुष्पद आदि पशुओं से रहित होकर गोचरी (भिक्षा) लाकर संयम का पालन करने वाला साधक बनूंगा, परन्तु कभी भी पापकर्म का आचरण नहीं करूंगा। हे भदन्त! इस प्रकार की प्रतिज्ञा मे आरूढ़ होकर आज मैं सर्वप्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूं।**

ग्राम, नगर, यावत् राजधानी मे प्रविष्ट संयमशील साधु स्वयं अदत्त— बिना दिए हुए पदार्थों को ग्रहण न करे, न दूसरो से ग्रहण कराए और जो अदत्त ग्रहण करता है उसकी अनुमोदना (प्रशंसा) भी न करे। एवं वह मुनि जिनके पास दीक्षित हुआ है, या जिनके पास रह रहा है उनके छत्र यावत् चर्म छेदक आदि उपकरण विशेष है, उनको बिना आज्ञा लिए तथा बिना प्रतिलेखना और प्रमार्जन किए ग्रहण न करे। किन्तु पहले उनसे आज्ञा लेकर और उसके बाद उनका प्रतिलेखन एव प्रमार्जन करके उन पदार्थों को स्वीकार करे। अर्थात् बिना आज्ञा से वह कोई भी वस्तु ग्रहण न करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे साधु के अस्तेय महाव्रत का वर्णन किया गया है। इसमे बताया गया है कि साधु किसी व्यक्ति की आज्ञा के बिना सामान्य एव विशिष्ट कोई भी पदार्थ स्वीकार न करे। वह दीक्षित होते समय यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं घर, परिवार, धन-धान्य आदि का त्याग करके तप-साधना के तेजस्वी पथ पर आगे बढ़ूंगा और साध्य-सिद्धि तक पहुचने मे सहायक होने वाले आवश्यक पदार्थों एव उपकरणो को बिना आज्ञा के ग्रहण नहीं करूगा। इस तरह साधक जीवन पर्यन्त के लिए चोरी का सर्वथा त्याग करके साधना पथ पर कदम रखता है। यहा तक कि वह अपने साभोगिक साधुओ की किसी

भी वस्तु को उनकी आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करता। यदि किसी साधु के छत्र, चर्म छेदनी आदि पदार्थ पडे हुए हैं और अन्य साधु को उनकी आवश्यकता है, तो वह उस साधु की आज्ञा के बिना उन्हे ग्रहण नहीं करेगा। प्रस्तुत प्रसग मे छत्र का अर्थ है– वर्षा के समय सिर पर लिया जाने वाला ऊन का कम्बल। और स्थविर कल्पी मुनि विशेष कारण उपस्थित होने पर छत्र नी रख सकते हैं। वृत्तिकार ने भी अपवाद मार्ग में छत्र-छाता रखने की बात कही है[१]। अत छत्र शब्द से कम्बल और छत्र दोनो मे से कोई भी पदार्थ हो सकता है। इसी तरह साधु किसी कार्य के लिए गृहस्थ के घर से चर्म छेदनी[२] या असि पत्र (चाकू) आदि लाया हो और दूसरे साधु को इन वस्तुओ की या उसके पास मे स्थित वस्तुओ मे से किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता हो तो वह उक्त मुनि की आज्ञा लेकर उस वस्तु को ग्रहण कर सकता है। इस तरह साधु स्तेय कर्म से पूर्णत निवृत्त होकर साधना पथ मे गति-प्रगति करता हुआ अपने लक्ष्य पर पहुचने का प्रयत्न करता है।

इस विषय को आगे बढाते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि० आगंतारेसु वा ४ अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समहिट्ठए ते उग्गहं अणुन्नविज्जा कामं खलु आउसो०! अहालंदं अहापरिन्नायं वसामो जाव आउसो ! जाव आउसंतस्स उग्गहे जाव साहम्मिया एइ ताव उग्गहं उग्गिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो ॥ से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहयंसि जे तत्थ साहम्मिया संभोइया समणुन्ना उवागच्छिज्जा जे तेण सयमेसित्तए असणं वा ४ तेण ते साहम्मिया ३ उवनिमंतिज्जा, नो चेव णं परवडियाए ओगिज्झिय २ उवनि० ॥१५६ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा आगन्तारेषु वा ४ अनुविचिन्त्य अवग्रह याचेत, यस्तत्र ईश्वरः यस्तत्र समधिष्ठाता तान् अवग्रहं अनुज्ञापयेत्, काम खलु आयुष्मन् गृहपते ! यथालन्द यथापरिज्ञातं वसामः यावद् आयुष्मन् ! यावत् आयुष्मत. अवग्रहे यावत् साधर्मिका. एष्यन्ति [समागमिष्यन्ति] तावदवग्रहमवग्रहीष्यामः तेन पर विहरिष्याम ॥ स कि पुन. तत्रावग्रहे एवावग्रहीते ये तत्र साधर्मिकाः साम्भोगिकाः समनोज्ञाः उपागच्छेयुः ये तेन स्वय एषितुमशन वा ४ तेन तान् साधर्मिकान् ३ उपनिमन्त्रयेत्, नो चैव पराप्रत्ययेन अवगृह्य २ उपनिमन्त्रयेत्।

***पदार्थ*– से भिक्खू०–वह साधु अथवा साध्वी। आगतारेसु वा–धर्मशाला आदि में जाकर। अणुवीइ–**

---

१ 'छत्रकमिति-छद अपवारणे' छादयतीति छत्र-वर्षाकल्पादि यदि वा कारणिक क्वचित् कुकणदेशादावतिवृष्टि सम्भवात् छत्रकमपि गृह्णीयाद्। – आचाराङ्ग वृत्ति।

२ नाखून काटने या अन्य कार्यों के लिए साधु चर्म छेदनी आदि शस्त्र गृहस्थ के यहा से लाते हैं, परन्तु सूर्यास्त पूर्व ही वापिस लौटा देते है। क्योंकि धातु के पदार्थ रात को साधु अपनी निश्राय मे नहीं रखते। अत दिन में जब तक ये पदार्थ जिस साधु के पास हो उसकी आज्ञा के बिना अन्य साधु नहीं ले सकता।

– लेखक

विचार कर। उग्गहं-अवग्रह की। जाइज्जा-याचना करे। तत्थ-उस धर्मशाला का। जे-जो। ईसरे-स्वामी है। तत्थ-उसका। जे-जो। समहिट्ठए-अधिष्ठाता है। ते-उनकी। उग्गह-आज्ञा। अणुन्नविज्जा-मागे। खलु-वाक्यालकार में है। आउसो-आयुष्मन् गृहस्थ ! कामं-यदि आपकी इच्छा हो। अहालदं-जितने समय के लिए आप आज्ञा दें तथा। अहापरिन्नायं-जितने क्षेत्र की आज्ञा दे, उतने समय तक उतने ही क्षेत्र मे। वसामो-हम निवास करेगे। जाव-यावत्। आउसो-आयुष्मन् गृहस्थ ! जाव-यावन्मात्र काल प्रमाण। आउसतस्स-आयुष्मन् का-आपका। उग्गहे-अवग्रह होगा तथा। जाव-यावन्मात्र। साहम्मिया-साधर्मिक-साधु। एइ-आएगे। ताव-तावन्मात्र काल तक। उग्गहं-अवग्रह को। उग्गिणिहस्सामो-ग्रहण करके रहेगे। तेण परं-उसके पश्चात्। विहरिस्सामो-विहार कर जायेगे। से-वह- साधु। कि पुण-फिर क्या करे। तत्थ-वहा। उग्गहंसि-अवग्रह मे। एवोग्गहियसि-प्रकर्ष पूर्वक आज्ञा दिए जाने पर। जे-जो। तत्थ-वहा। साहम्मिया-साधर्मिक-साधु। सभोइया-साभोगिक-सम समाचारी के मानने वाले, तथा एक गुरु के शिष्य। समणुन्ना-उग्र विहार करने वाले अर्थात् क्रिया करने वाले। उवागच्छिज्जा-अतिथि रूप मे आए। जे-जो। तेण-उस-परमार्थी साधु से। सयं-स्वयमेव। एसित्तए-गवेषणा करके। असण वा ४-अशनादिक चतुर्विध आहार लाया गया है। तेण-उसे। ते-उन। साहम्मिए-साधर्मिक साधुओ को। उवनिमतिज्जा-निमन्त्रित करे। ण-वाक्यालकार मे है। एव-अवधारण अर्थ मे है। च-परन्तु। परवडियाए-दूसरे के लाए हुए आहार की। ओगिज्झिय २-अपेक्षा से। नो उवनिमंतिज्ज-निमन्त्रित न करे।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी धर्मशाला आदि में जाकर और विचार कर उस स्थान की आज्ञा मागे। उस स्थान का जो स्वामी या अधिष्ठाता हो उससे आज्ञा मांगते हुए कहे-आयुष्मन् गृहस्थ ! जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो अर्थात् जितने समय के लिए जितने क्षेत्र में निवास करने की तुम आज्ञा दोगे उतने काल तक उतने ही क्षेत्र में हम निवास करेगे, अन्य जितने भी साधर्मिक साधु आएगे वे भी उतने काल तक उतने क्षेत्र मे ठहरेगे। उक्तकाल के बाद वे विहार कर जाएगे।

इस प्रकार गृहस्थ की आज्ञा के अनुसार वहां निवसित साधु के पास यदि अन्य साधु-जो कि साधर्मी है, समग्र समाचारी वाले है और उग्र विहार करने वाले है, अतिथि के रूप मे आ जाएं तो वह साधु अपने द्वारा लाए हुए आहारादि का उन्हे आमंत्रित करे, परन्तु अन्य के लाए हुए आहारादि के लिए उन्हे निमंत्रित न करे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे मकान ग्रहण करने सम्बन्धी अवग्रह का उल्लेख किया गया है। इसमे बताया गया है कि साधु अपने ठहरने योग्य निर्दोष एव प्रासुक स्थान को देखकर उसके स्वामी या अधिष्ठाता[१] से उस मकान मे ठहरने की आज्ञा मागे। आज्ञा मागते समय साधु यह स्पष्ट कर दे कि आप जितने समय के लिए जितने क्षेत्र मे ठहरने एव उसका उपयोग करने की आज्ञा देगे उतने समय तक हम उतने ही क्षेत्र मे ठहरेगे। और यदि हमारे अन्य साभोगिक साधु आएगे तो वे भी उस अवधि तक उतने ही क्षेत्र मे ठहरेगे जितने क्षेत्र को काम मे लेने की आपने आज्ञा दी है। इससे स्पष्ट है कि कोई भी साधु बिना आज्ञा लिए किसी भी मकान मे नहीं ठहरता है।

---

१ स्वामी का अर्थ मकान मालिक से है और अधिष्ठाता का अर्थ है— मकान की देख-रेख के लिए रखा हुआ व्यक्ति अर्थात् अपनी अनुपस्थिति मे जिसे वह मकान देख-रेख रखने के लिए दे रखा है।

उक्त मकान मे स्थित साधु के पास यदि कोई साधर्मिक, साम्भोगिक और समान समाचारी वाला अन्य साधु अतिथि रूप मे आ जाए तो वह अपने लाए हुए आहार-पानी का आमन्त्रण करके उनकी सेवा करे, परन्तु अन्य द्वारा लाए हुए आहार-पानी का आमन्त्रण न करे। इससे दो बाते स्पष्ट होती हैं- एक तो यह है कि साधु को अपने अतिथि साधु की स्वय सेवा करनी चाहिए। इससे पारस्परिक प्रेम-स्नेह मे अभिवृद्धि होती है। दूसरी यह है कि साधु का एक माण्डले पर बैठकर आहार-पानी करने का सम्बन्ध उसी साधु के साथ होता है जो साधर्मिक, साम्भोगिक और समान आचार-विचार वाला है।

अब असम्भोगी साधु के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए, इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से आगंतारेसु वा ४ जाव से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ साहम्मिया अन्नसंभोइया समणुन्ना उवागच्छिज्जा जे तेण सयमेसित्तए पीढे वा फलए वा सिज्जा वा संथारए वा तेण ते साहम्मिए अन्नसंभोइए समणुन्ने उवनिमंतिज्जा नो चेव णं परवडियाए ओगिज्झिय २ उवनिमंतिज्जा॥

से आगंतारेसु वा ४ जाव से किं पुण तत्थुग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ गाहावईण वा गाहा॰ पुत्ताण वा सूई वा पिप्पलए वा कण्णसोहणए वा नहच्छेयणए वा तं अप्पणो एगस्स अट्ठाए पाडिहारियं जाइत्ता नो अन्नमन्नस्स दिज्ज वा अणुपइज्ज वा, सयंकरणिज्जंति कट्टु, से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे कट्टु भूमीए वा ठवित्ता इमं खलु २ त्ति आलोइज्जा, नो चेव णं सयं पाणिणा परपाणिंसि पच्चप्पिणिज्जा॥१५७॥

छाया— स आगन्तारेषु वा ४ यावत् स किं पुनः तत्रावग्रहे एवावग्रहीते ये तत्र साधर्मिकाः अन्यसाम्भोगिकाः समनोज्ञा उपागच्छेयुः ये तेन स्वयमेषितव्याः पीठं वा फलकं वा शय्या वा संस्तारको वा तेन तान् साधर्मिकान् अन्यसाम्भोगिकान् समनोज्ञान् उपनिमन्त्रयेत् नो चैव परप्रत्ययेन अवगृह्य २ उपनिमन्त्रयेत्। स आगन्तारेषु वा ४ यावत् स कि पुनः तत्रावग्रहे एवावग्रहीते ये तत्र गृहपतीनां वा गृहपतिपुत्राणां वा सूची वा पिप्पलकं वा कर्णशोधनको वा नखच्छेदनको वा ते आत्मनः एकस्यार्थाय प्रातिहारिकं याचित्वा नो अन्योन्यस्य दद्याद् वा अनुप्रदद्याद् वा स्वयं करणीयमितिकृत्वा स तदादाय तत्र गच्छेत्, पूर्वमेव उत्तानकं हस्तं कृत्वा भूमौ वा स्थापयित्वा इदं खलु २ इति आलोचयेत् नो चैव स्वयं पाणिना परपाणौ प्रत्यर्पयेत्।

पदार्थ— से-वह साधु। आगतारेसु वा-धर्मशाला आदि मे। जाव-यावत्। से-वह भिक्षु। तत्थोवग्गहसि-वहा अवग्रह लिए जाने पर। एवोग्गहियसि-प्रकर्ष पूर्वक आज्ञा दिए जाने पर। पुण किं-पुन वह वहा क्या करे ? अब सूत्रकार इस सम्बन्ध मे कहते हैं। जे-जो। तत्थ-वहा पर। साहम्मिया-अतिथि रूप मे

साधर्मिक हैं। **अन्नसंभोइया**-अन्य सांभोगिक हैं अर्थात् जिनसे एक माडले पर बैठकर आहार करने का सम्भोग नहीं है किन्तु। **समणुन्ना**-वे उग्र विहारी हैं अर्थात् उत्तम आचार वाले हैं यदि वे। **उवागच्छिज्जा**-आ जाए। **जे**-जो। **तेण**-पहले वहां ठहरे हुए साधु है उनको। **सयमेसित्तए**-स्वय के गवेषणा किए हुए। **पीढे वा**-पीठ। **फलए वा**-फलक-पट्टा। **सिज्जा वा**-शय्या-वस्ती। **संथारए वा**-सस्तारक आदि। **तेण**-उस पीठ फलकादि से। **ते**-उन। **साहम्मिए**-साधर्मिक जो कि। **अन्नसभोइए**-अन्य साभोगिक तथा। **समणुन्ने**-उग्र विहारी-उत्तम आचार वाले हैं। **उवनिमतिज्जा**-प्रेम पूर्वक निमन्त्रित करे। **च**-फिर। **एव**-अवधारणार्थक है। **ण**-वाक्यालकार मे है। **परवडियाए**-परन्तु दूसरे के लाए हुए पीठ-फलकादि। **ओगिज्झिय**-उनकी अपेक्षा से। **नो उवनिमतिज्जा**-निमन्त्रित न करे।

से-वह भिक्षु। **आगतारेसु वा ४**-धर्मशाला आदि के विषय मे। **जाव**-यावत्। **से**-वह। **तत्थुग्गहसि**-आज्ञा लेने पर। **एवोग्गहियंसि**-विशेषता से आज्ञा प्राप्त होने के पश्चात्। उस साधु को क्या करना चाहिए? इस सम्बन्ध में सूत्रकार कहते है कि। **जे**-जो। **तत्थ**-वहा पर। **गाहावईण वा**-गृहपतियो के उपकरण अथवा। **गाहा॰ पुत्ताण वा**-गृहपति के पुत्रो के उपकरण। **सूई वा**-वस्त्रादि के सीने वाली सूई अथवा। **पिप्पलए वा**-कैची-कतरनी। **कण्णसोहणए वा**-कान के मल को निकालने वाली शलाका कर्णशोधक सलाई। **नहच्छेयणए वा**-नख छेदन करने वाला उपकरण आदि पड़े हो तो। **त**-उसको। **अप्पणो**-अपने। **एगस्स**-एक के। **अट्ठाए**-लिए। **पाडिहारियं**-प्रातिहारक-वापिस दिए जाने वाला। **जाइत्ता**-मांग कर। **अन्नमन्नस्स**-परस्पर अन्य साधुओ को। **नो दिज्ज वा**-न दे। **न अणुपइज्ज वा**-बार-बार न दे किन्तु। **सयं करणिज्जंति कट्टु**-अपना कार्य पूरा करके। **से**-वह साधु। **तमायाए**-उस सूई आदि को लेकर। **तत्थ**-वहा गृहस्थ के पास। **गच्छिज्जा २**-जाए और वहा जाकर। **पुव्वामेव**-पहले ही। **उत्ताणए हत्थे कट्टु**-सीधा हाथ पसार कर और सूई आदि को हाथ मे रख कर। **वा**-अथवा। **भूमीए**-पृथ्वी पर। **ठवित्ता**-रख कर फिर गृहस्थ के प्रति कहे। **इमं खलु २ त्ति**-यह निश्चय ही तुम्हारी वस्तु है, ऐसा कह कर वह वस्तु उसको दिखाए परन्तु। **सय पाणिणा**-अपने हाथ से। **परपाणिसि**-गृहस्थ के हाथ मे। **नो पच्चप्पिणिज्जा**-न दे।

_मूलार्थ_—आज्ञा प्राप्त कर धर्मशाला आदि मे ठहरे हुए साधु के पास यदि उत्तम आचार वाले असभोगी साधर्मी-साधु अतिथिरूप मे आ जाए तो वह स्थानीय साधु अपने गवेषणा किए हुए पीढ़, फलक, शय्या-संस्तारक आदि के द्वारा अल्पसाभोगिक साधुओं को निमंत्रित करे, परन्तु दूसरे द्वारा गवेषित पीढ़, फलकादि द्वारा निमत्रित न करे।

यदि कोई साधु गृहस्थ के पास से सूई, कैंची, कर्णशोधनिका और नखछेदक आदि उपकरण अपने प्रयोजन के लिए माग कर लाया हो तो वह उन उपकरणों को अन्य भिक्षुओ को न दे। किन्तु अपना कार्य करके गृहस्थ के पास जाए और लम्बा हाथ करके उन उपकरणो को भूमि पर रख कर गृहस्थ से कहे कि यह तुम्हारा पदार्थ है, इसे सभाल लो, देख लो परन्तु उन सूई आदि वस्तुओ को साधु अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ पर न रखे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गत सूत्र मे कथित विधि से आज्ञा लेकर ठहरे हुए साधु के पास कोई असम्भोगिक एव अपने समान समाचारी का पालन नहीं करने वाले साधु आ जाए तो वह अपने लाए हुए शय्या-सथारे या पाट-तख्त आदि से उसका सत्कार-सम्मान करे अर्थात् उसे

उनका आमन्त्रण करे, परन्तु अन्य के लाए हुए पाट आदि का उसे निमन्त्रण न करे। इससे स्पष्ट होता है कि अपने यहा आए हुए साधर्मिक एव चारित्रनिष्ठ साधक का-जिसके साथ आहार-पानी का सभोग नहीं है और जिसकी समाचारी भी अपने समान नहीं है, शय्या-सस्तारक आदि से सम्मान करना चाहिए। आगम मे बताया गया है कि भगवान पार्श्वनाथ एव भगवान महावीर के साधुओ की समाचारी भिन्न थी, उनका परस्पर साम्भोगिक सम्बन्ध भी नहीं था। फिर भी जब गौतम स्वामी केशी श्रमण के स्थान पर पहुचे तो दीक्षा पर्याय मे ज्येष्ठ होते हुए भी केशी श्रमण ने गौतम स्वामी का स्वागत किया और उन्हे निर्दोष एव प्रासुक पलाल (घास) आदि का आसन लेने की प्रार्थना की[१]। इससे पारस्परिक धर्म स्नेह मे अभिवृद्धि होती है और पारस्परिक मेल-मिलाप एव विचारो के आदान-प्रदान से जीवन का भी विकास होता है। अत चारित्र निष्ठ असम्भोगी साधु का शय्या आदि से सम्मान करना प्रत्येक साधु का कर्त्तव्य है।

प्रस्तुत सूत्र के उत्तरार्ध मे बताया गया है कि यदि साधु अपने प्रयोजन (कार्य) के लिए किसी गृहस्थ से सूई, कैंची, कान साफ करने का शस्त्र आदि लाया हो तो वह उसे अपने काम मे ले, किन्तु अन्य साधु को न दे। और अपना कार्य पूरा होने पर उन वस्तुओ को गृहस्थ के घर जाकर हाथ लम्बा करके भूमि पर रख दे और उसे कहे कि यह अपने पदार्थ सम्भाल लो। परन्तु, वह उन पदार्थो को उसके हाथ मे न दे।

कोष मे 'पिप्पलए'[२] शब्द का अर्थ काटे निकालने का चिपिया, उस्तरा और पिप्पल के पत्तो का बिछौना तथा कैची किया है। और 'उत्ताणए हत्थे' का ऊचा किया हुआ हाथ अर्थ किया है। इसके अतिरिक्त 'उत्ताणक' शब्द के-१ सीधा, २ गहरा न हो, ३ निष्पलक देखना ४ चित्त शयन करने का अभिग्रह करने वाला और ५ उथले पानी वाला समुद्र[३] आदि अर्थ किए हैं।

इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भि० से जं० उग्गहं जाणिज्जा अणंतरहियाए पुढवीए जाव संताणए तह० उग्गहं नो गिण्हिज्जा वा २॥ से भि० से जं पुण उग्गहं थूणंसि वा ४ तह० अंतलिक्खजाए दुब्बद्धे जाव नो उगिण्हिज्जा वा २॥

से भि० से जं० कुलियंसि वा ४ जाव नो उगिण्हिज्ज वा २॥ से भि० खंधंसि वा ४ अन्नयरे वा तह० जाव नो उग्गहं उगिण्हिज्ज वा २॥ से भि० से जं० पुण० ससागारियं० सखुड्डपसुभत्तपाणं नो पन्नस्स निक्खमणपवेसे जाव

---

१ पलाल फासुय तत्थ, पञ्चम कुसतणाणि य।
गोयमस्स निसेज्जाए, खिप्प सपणामए॥

— उत्तराध्ययन सूत्र, २३, १७।

२ पिप्पलअ-काटा निकालने का चिपिया तथा उस्तरा (२) पिप्पल- पिप्पल के पत्तो का बिछौना तथा कतरनी कैची। — अर्द्धमागधी कोष भाग ३।

३ १-सीधा सच्चा, २-जो गहरा-ऊडा न हो वह, ३-पलक मारे बिना आख को खुली रखना, ४-चित्त सोने का अभिग्रह-प्रतिज्ञा वाला, उथले पानी वाला समुद्र इत्यादि अर्थ किए है।

— अर्द्धमागधी कोष भाग २ पृष्ठ २१४।

धम्माणुओगचिंताए, सेवं नच्चा तह॰ उवस्सए ससागारिए॰ नो उग्गहं उगिण्हिज्जा वा २ ॥ से भि॰ से जं॰ गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पंथे पडिबद्धं वा नो पन्नस्स जाव सेवं न॰ ॥ से भि॰ से जं॰ इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अन्नमन्नं अक्कोसंति वा तहेव तिल्लादि सिणाणादि सीओदगवियडादि निगिणयाइ वा जहा सिज्जाए आलावगा, नवरं उग्गहवत्तव्वया ॥ से भि॰ से जं॰ आइन्नसंलिक्खे नो पन्नस्स॰ उगिण्हिज्ज वा २, एयं खलु॰ ॥१५८॥

छाया– स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् अवग्रह जानीयात् अनन्तरहितायां पृथिव्यां यावत् सन्तानक. तथाप्रकारं अवग्रह न गृह्णीयात् वा २। स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् पुन. अवग्रह स्थूणायां वा ४ तथाप्रकार अन्तरिक्षजातं दुर्बद्धं यावत् नो अवगृह्णीयात् वा २।

स भिक्षुर्वा॰ स यत् कुल्यके यावत् नो अवगृह्णीयाद् वा २ ॥ स भिक्षुर्वा॰ स्कन्धे वा ४ अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकार यावत् नो अवग्रह अवगृह्णीयाद् वा २ ॥ स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ पुनः॰ ससागारिकं॰ सक्षुद्रपशुभक्तपान नो प्राज्ञस्य निष्क्रमणप्रवेश. यावत् धर्मानुयोगचिन्ताया तदेवं ज्ञात्वा तथाप्रकारमुपाश्रय ससागारिकं॰ नो अवग्रहं अवगृह्णीयाद् वा २ ॥ स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ गृहपतिकुलस्य मध्य-मध्येन गन्तुं पथि प्रतिबद्ध वा नो प्राज्ञस्य यावत् तदेवं ज्ञात्वा॰ ॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत्॰ इह खलु गृहपतिर्वा यावत् कर्मकर्यो वा अन्योन्यम् आक्रोशन्ति वा तथैव तैलादि, स्नानादि, शीतोदकविकटादि नग्नादि वा यथा शय्यायाम् आलापका. नवरम् अवग्रहवक्तव्यता ॥ स भिक्षुर्वा॰ स यत् ॰ आकीर्णसंलिख्ये नो प्राज्ञस्य॰ अवगृह्णीयाद् वा २ एतत् खलु॰।

पदार्थ– से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी। से-वह। ज॰-जो। पुण॰-फिर अवग्रह को। जाणिज्जा-जाने। अणंतरहियाए-सचित्त। पुढवीए-पृथ्वी के विषय मे। जाव-यावत्। सताणए-मकड़ी के जाले आदि से युक्त पृथ्वी मे। तह॰-तथाप्रकार के। उग्गह-अवग्रह को। नो गिण्हिज्ज वा-ग्रहण न करे या गृहस्थ से आज्ञा न मागे।

से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी। से-वह। ज॰-जो। पुण॰-फिर। उग्गह- अवग्रह को। जाणिज्जा-जाने। थूणंसि वा ४-स्तूप आदि के विषय मे। तह॰-तथाप्रकार के। अतलिक्खजाए-अन्तरिक्ष-भूमि से ऊंचे स्थानो को जो। दुब्बद्धे-अस्थिर है। जाव-यावत् ऐसे अवग्रह को। नो उगिण्हिज्ज वा २-ग्रहण न करे अथवा गृहस्थ से उसकी याचना न करे।

से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी। से-वह। ज-जो फिर अवग्रह को जाने। कुलियसि वा ४-भीत आदि के विषय मे जो कि चलाचल स्वभाव वाले स्थान है। जाव-यावत्। नो उगिण्हिज्ज वा २-अवग्रह को ग्रहण न करे और गृहस्थ से याचना भी न करे।

से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी फिर अवग्रह को जाने। खंधसि वा-स्कन्ध आदि के विषय मे।

अन्नयरे वा-अन्य इसी प्रकार का ऊचा अथवा विषम स्थान। **तह०**-तथाप्रकार के। **जाव**-यावत्। **उग्गह**-अवग्रह को। **नो उगिगण्हिज्ज वा २**-ग्रहण न करे अर्थात् इस प्रकार के अवग्रह की गृहस्थ से याचना न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज० पुण**-वह जो फिर अवग्रह को जाने। **ससागारियं**-जो उपाश्रय गृहस्थो से युक्त, अग्नि और जल से युक्त तथा स्त्री-पुरुष और नपुसक आदि से युक्त हो तथा। **सखुड्डपसुभत्तपाणं**-बालक-पशु और उनके खाने-पीने के योग्य अन्नपानादि से युक्त हो। **पन्नस्स**-प्रज्ञावान् साधु को। **निक्खमणपवेसे**-निकलना और प्रवेश करना। **नो**-नही कल्पता। **जाव**-यावत्। **धम्माणुओगचिंताए**-ऐसे स्थान मे धर्मानुष्ठान एव धर्मानुयोग चिन्ता आदि करनी नही कल्पती। **सेव**-वह-भिक्षु इस प्रकार। **नच्चा**-जानकर। **तह०**-तथा प्रकार के। **उवस्सए**-उपाश्रय म। **ससागारिय**-जो कि गृहस्थ आदि से युक्त है। **उवग्गह**-अवग्रह को। **नो उगिगण्हिज्ज वा २**-ग्रहण न करे और न उसकी याचना करे।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज०**-वह जो फिर अवग्रह को जाने। **गाहावइ०**-गृहपति कुल के। **मज्झमज्झेणा**-मध्य २ से। **गतुं**-जाने का। **पथे**-मार्ग हो। **वा**-अथवा। **पडिबद्ध**-मार्ग स्त्रियो से आकीर्ण हो या स्त्री वर्ग अपनी नाना प्रकार की शारीरिक चेष्टाये कर रहा हो तो। **पन्नस्स**- प्रज्ञावान् साधु को उन्हे उलघ कर जाना। **नो**-नहीं कल्पता अत । **सेव नच्चा**-साधु इस प्रकार जानकर। **तहप्पगारे०**-तथाप्रकार के उपाश्रय के विषय मे अवग्रह की याचना न करे।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज० पुण०**-वह जो फिर अवग्रह को जाने। **इह खलु**-निश्चय ही यहा। **गाहावई वा**-गृहपति। **जाव**-यावत्। **कम्मकरीओ वा**-गृहपति की दासिये। **अन्नमन्न**-परस्पर। **अक्कोसति वा**-आक्रोश करती है, आपस मे लड़ती-झगड़ती है। **तहेव**-उसी प्रकार। **तिल्लादि**-तेल आदि चोपड़ सकती है तथा। **सिणाणादि**-स्नानादि करती है। **सीओदगवियडादि**-शीतल सचित्त जल से वा उष्ण जल से स्नान करती है। **वा**-अथवा। **निगिणाइ**-मैथुन आदि क्रीड़ा के लिए नग्न होती है। **वा**-अथवा। **जहा**-जैसे। **सिज्जाए**-शय्या अध्ययन के। **आलावगा**-आलापक -कथन किए गए है उसी प्रकार यहा भी जान लेना। **नवर**-इतना विशेष है। **उग्गहवत्तव्वया**-यहा पर अवग्रह की वक्तव्यता है, अर्थात् अवग्रह का विषय है।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज०**-वह जो फिर अवग्रह को जाने। **आइन्नसलिक्खे**-जो उपाश्रय चित्रो से आकीर्ण है ऐसे उपाश्रय मे ठहरने के लिए। **पन्नस्स०**-प्रज्ञावान् साधु को तथाप्रकार के उपाश्रय का। **उग्गिण्हिज्जा वा २**-अवग्रह नहीं लेना चाहिए। **एय खलु०**-निश्चय ही यह साधु और साध्वी का समग्र आचार है। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—सयम निष्ठ साधु-साध्वी को सचित्त पृथ्वी या जीव-जन्तु युक्त स्थान की आज्ञा नहीं लेनी चाहिए और जो उपाश्रय भूमि से ऊंचा, स्तम्भ आदि के ऊपर एव विषम हो उसमें भी ठहरने की आज्ञा न लेनी चाहिए और जो उपाश्रय कच्ची भीत पर स्थित हो और अस्थिर हो उसकी भी साधु याचना न करे। जो उपाश्रय स्तम्भ आदि पर अवस्थित और इसी प्रकार के अन्य किसी विषम स्थान मे हो तो उसकी आज्ञा भी नहीं लेनी चाहिए। जो उपाश्रय गृहस्थो से युक्त हो, अग्नि और जल से युक्त हो, एव स्त्री, बालक और पशुओं से युक्त हो तथा उनके योग्य खान-पान की सामग्री से भरा हुआ हो तो बुद्धिमान साधु को ऐसे उपाश्रय में भी नहीं ठहरना चाहिए। जिस उपाश्रय मे जाने के मार्ग मे स्त्रिया बैठी रहती हो या वे नाना प्रकार की शारीरिक चेष्टायें करती हों,

ऐसे उपाश्रय मे भी बुद्धिमान साधु ठहरने की आज्ञा न मांगे। जिस उपाश्रय मे गृहपति यावत् उनकी दासियां परस्पर आक्रोश करती हो, या तेलादि की मालिश करती हों, स्नानादि करती और नग्न होकर बैठती हों इस प्रकार के उपाश्रय की भी साधु याचना न करे। और जो उपाश्रय चित्रों से आकीर्ण हो रहा हो उसकी भी आज्ञा नहीं लेनी चाहिए। यह साधु और साध्वी का समग्र आचार है। इस प्रकार मै कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु को कैसे मकान मे ठहरना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए शय्या अध्ययन मे वर्णित बातो को दोहराया है। जैसे-जो उपाश्रय अस्थिर दीवार एव स्तम्भ पर बना हुआ हो, विषम स्थान पर हो, स्त्रियो से आवृत्त हो, जिसके आने-जाने के मार्ग मे स्त्रिया बैठी हो, परस्पर तेल की मालिश कर रही हो, या अस्त-व्यस्त ढग से बैठी हो, तो ऐसे स्थान की साधु को याचना नहीं करनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि साधु को ऐसे स्थान मे ठहरने का सकल्प नहीं करना चाहिए, जिस मे जीवो की हिसा एव सयम की विराधना होती हो, मन मे विकार उत्पन्न होता हो और स्वाध्याय एव ध्यान मे विघ्न पडता हो।

यह साधु का उत्सर्ग मार्ग है। परन्तु, यदि किसी गाव मे सयम साधना के अनुकूल मकान नहीं मिल रहा है, तो साधु एक-दो रात के लिए परिवार वाले मकान आदि मे भी ठहर सकता है। यह अपवाद मार्ग है। ऐसी स्थिति मे साधु को एक-दो रात्रि से अधिक ऐसे मकान मे ठहरना नहीं कल्पता है[१]।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**कुलियसि एवं थूणंसि**' का अर्थ कोष[२] मे कुड्य दीवार एव स्तम्भ किया है। और 'धम्माणुओगचिताए' का अर्थ है-साधु को उसी स्थान की याचना करनी चाहिए जिसमे धर्मानुयोग भली-भाति साधा जा सके अर्थात् जहा सयम मे बिल्कुल दोष न लगे ऐसे स्थान मे ठहरना चाहिए।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ बृहत्कल्प सूत्र।

२ अर्द्धमागधी कोष भा० २ पृ० ५०७, भा० १, प० १०१

सप्तम अध्ययन-अवग्रह प्रतिमा
द्वितीय उद्देशक

प्रस्तुत अध्ययन अवग्रह से सम्बद्ध है। प्रथम उद्देशक मे अवग्रह के सम्बन्ध मे कुछ विचार किया गया था। उसी विचार धारा को आगे बढाते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– से आगंतारेसु वा ४ अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे० ते उग्गहं अणुन्नविज्जा कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिन्नायं वसामो जाव आउसो ! जाव आउसंतस्स उग्गहे जाव साहम्मिआए ताव उग्गहं उगिण्हिस्सामो, तेण परं वि०, से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ समणाण वा माह० छत्तए वा जाव चम्मछेदणए वा तं नो अन्तोहिंतो बाहिं नीणिज्जा बहियाओ वा नो अंतो पविसिज्जा सुत्तं वा नो पडिबोहिज्जा, नो तेसिं किंचिवि अप्पत्तियं पडिणीयं करिज्जा ॥१५९॥

छाया– स आगन्तागारेषु वा ४ अनुविचिन्त्य अवग्रहं याचेत, यस्तत्र ईश्वर ० तान् अवग्रहमनुज्ञापयेत् काम खलु आयुष्मन् ! यथालन्द यथापरिज्ञात वसाम. यावत् आयुष्मन् ! यावत् आयुष्मत. अवग्रहः यावत् साधर्मिकाः तावत् अवग्रहमवग्रहीष्याम. तेन पर विहरिष्याम., स कि पुन तत्र अवग्रहे एवावग्रहीते ये तत्र श्रमणाना वा ब्राह्मणाना वा छत्रक वा यावत् चर्मच्छेदनक. वा तद् नो अन्तत बहि· निर्णयेत् बहिर्षतो वा नो अन्त· प्रवेशयेत्, सुप्त वा नो प्रतिबोधयेत् नो तेषां किंचिदपि अप्रीतिकं प्रत्यनीकतां कुर्यात्।

पदार्थ– से-वह भिक्षु। आगतारेसु वा ४-धर्मशाला आदि मे। अणुवीइ-विचार कर। उग्गह-अवग्रह की। जाइज्जा-याचना करे। जे-जो। तत्थ-वहा पर। ईसरे०-घर का स्वामी तथा अधिष्ठाता हो। ते-उनको। उग्गह-अवग्रह। अणुन्नविज्जा-बताए जैसे कि। खलु-निश्चय ही। आउसो-हे आयुष्मन् गृहस्थ ! काम-जितने समय तक आपकी इच्छा हो। अहालद-उतने समय तक। अहापरिन्नाय-तावत् प्रमाण क्षेत्र मे। वसामो-हम निवास करेगे। जाव-यावत् काल पर्यन्त तुम्हारी आज्ञा होगी। आउसो !-हे आयुष्मन् ! जाव-यावत् काल पर्यन्त। आउसतस्स-आयुष्मन् का-आपका। उग्गहे-अवग्रह होगा उतने समय तक ही रहेगे, तथा। जाव-जितने भी। साहम्मियाए-और साधर्मिक साधु आयेगे वे भी। ताव-तावन्मात्र। उग्गह-अवग्रह। उगिण्हिस्सामो-ग्रहण करेगे अर्थात् आपकी आज्ञानुसार रहेगे। तेण परं-उसके बाद। विहरिस्सामो-विहार कर

जायेगे। **से**-वह भिक्षु। **तत्थ**-वहा। **उग्गहंसि**-अवग्रह लेने पर तथा। **एवोग्गहियसि**-अवग्रह के ग्रहण करने के पश्चात्। **पुण कि**-उसे फिर क्या करना चाहिए ? इस विषय मे सूत्रकार कहते हैं। **जे**-जो। **तत्थ**-वहा पर। **समणाण वा**-शाक्यादि श्रमणो अथवा। **माह०**-ब्राह्मणो के। **छत्तए वा**-छत्र। **जाव**-यावत्। **चम्मछेदणए वा**-चर्म छेदनक पड़े हो तो। **तं**-उनको। **अंतोहिंतो**-भीतर से। **बाहिं**-बाहर। **नो नीणिज्जा**-न निकाले। **वा**-और। **बहियाओ**-बाहर से। **अंतो**-भीतर। **नो पविसिज्जा**-न रखे। **वा**-अथवा। **सुत्त**-सोए हुए को। **नो पडिबोहिज्जा**-जागृत न करे। **तेसिं**-उनके। **किंचिवि**-किंचिन्मात्र भी। **अप्पत्तिय**-मन को पीड़ा तथा। **पडिणीय**-प्रतिकूलता। **नो करिज्जा**-उत्पन्न न करे।

***मूलार्थ*—साधु धर्मशाला आदि स्थानो मे जाकर और विचार कर अवग्रह की याचना करे। उक्त स्थानो के स्वामी, अधिष्ठाता से याचना करते हुए कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! हम यहा पर ठहरने की आज्ञा चाहते हैं आप हमें जितने समय तक और जितने क्षेत्र मे ठहरने की आज्ञा देगे उतने समय और उतने ही क्षेत्र मे ठहरेगे। हमारे जितने भी साधर्मी साधु यहां आएगे तो वे भी इसी नियम का अनुसरण करेगे। तुम्हारे द्वारा नियत की गई अवधि के बाद विहार कर जाएंगे। उक्त स्थान मे ठहरने के लिए गृहस्थ की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु उस स्थान मे प्रवेश करते समय यह ध्यान रखे कि यदि उन स्थानो मे शाक्यादि श्रमण तथा ब्राह्मणो के छत्र यावत् चर्म छेदक आदि उपकरण पड़े हो तो वह उनको भीतर से बाहर न निकाले और बाहर से भीतर न रखे तथा किसी सुषुप्त श्रमण आदि को जागृत न करे और उनके साथ किंचिन्मात्र भी अप्रीतिजनक कार्य न करे जिस से उनके मन को आघात पहुंचे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि गृहस्थ की आज्ञा प्राप्त करके उसके मकान मे ठहरते समय साधु को कोई ऐसा आचरण नही करना चाहिए जिससे उस गृहस्थ या उसके मकान मे ठहरे हुए शाक्यादि अन्य मत के भिक्षुओ के मन को किसी तरह का आघात पहुचे और उनके मन मे साधु के प्रति दुर्भाव एव अप्रीति पैदा हो। यदि उस मकान मे पहले कोई श्रमण-ब्राह्मण ठहरे हुए हो और उनके छत्र, चामर आदि उपकरण पडे हो तो साधु उन उपकरणो को बाहर से भीतर या भीतर से बाहर न रखे और यदि वे सुषुप्त हो तो साधु उन्हे जागृत न करे और उनके साथ किसी तरह का असभ्य एव अशिष्ट व्यवहार भी न करे। क्योकि साधु का जीवन स्व और पर के कल्याण के लिए है। वह अपने हित के साथ-साथ अन्य प्राणियो को भी सन्मार्ग दिखाकर उनकी आत्मा का हित करने का प्रयत्न करता है। अत· उसे प्रत्येक मानव के साथ बर्ताव करते समय अपनी साधुता को नहीं छोडना चाहिए। उसकी साधुता प्रत्येक मानव के साथ-चाहे वह किसी भी पन्थ, मत, देश, जाति एव धर्म का क्यो न हो, मानवता का, शिष्टता का एव मधुरता का व्यवहार करने मे है। इस लिए साधु को प्रत्येक स्थान मे ठहरते समय इस बात की ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए कि उसके व्यवहार से मकान मालिक एव उसमे स्थित या अन्य आने-जाने वाले व्यक्तियो के मन को किसी तरह का सक्लेश न पहुचे।

यदि आम्र के बगीचे मे ठहरे हुए साधु को आम्र आदि ग्रहण करना हो तो वह उन्हे कैसे ग्रहण करे, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्— से भि० अभिकंखिज्जा अंबवणं उवागच्छित्तए जे तत्थ ईसरे २ ते उग्गहं अणुजाणाविज्जा-कामं खलु जाव विहरिस्सामो, से किं पुण० एवोग्गहियंसि अह भिक्खू इच्छिज्जा अंबं भुत्तए वा से जं पुण अंबं जाणिज्जा सअंडं ससंताणं तह० अंबं अफा० नो प० ॥ से भि० से जं० अप्पंडं अप्पसंताणगं अतिरिच्छछिन्नं अव्वोछिन्नं अफासुयं जाव नो पडिगाहिज्जा ॥ से भि० से जं० अप्पंडं वा जाव संताणगं तिरिच्छछिन्नं वुच्छिन्नं फा० पडि० ॥ से भि० अंबभित्तगं वा अंबपेसियं वा अंबचोयगं वा अंबसालगं वा अंबडालगं वा भुत्तए वा पायए वा, से जं० अंबभित्तगं वा ५ सअंडं अफा० नो पडि० ॥ से भिक्खू वा २ से जं० अंबं वा अंबभित्तगं वा अप्पंडं० अतिरिच्छछिन्नं २अफा० नो प० ॥ से जं० अंबडालगं वा अप्पंडं ५ तिरिच्छच्छिन्नं वुच्छिन्नं फासुयं पडि० ॥ से भि० अभिकंखिज्जा उच्छुवणं उवागच्छित्तए, जे तत्थ ईसरे जाव उग्गहंसि० ॥ अह भिक्खू इच्छिज्जा उच्छुं भुत्तए वा पा०, से जं० उच्छुं जाणिज्जा सअंडं जाव नो प० अतिरिच्छछिन्नं तहेव तिरिच्छछिन्नेवि तहेव ॥ से भि० अभिकंखि० अंतरुच्छुयं वा उच्छुगंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुसा० उच्छुडा० भुत्तए वा पाय० ॥ से जं पु० अंतरुच्छुयं वा जाव डालगं वा सअंडं नो प० ॥ से भि० से जं० अंतरुच्छुयं वा० अप्पंडं वा० जाव पडि०, अतिरिच्छछिन्नं तहेव ॥ से भि० ल्हसुणवणं उवागच्छित्तए, तहेव तिन्निवि आलावगा, नवरं ल्हसुणं ॥ से भि० ल्हसुणं वा ल्हसुणकंदं वा ल्ह० चोयगं वा ल्हसुणनालगं वा भुत्तए वा २ से जं० लसुणं वा जाव लसुणबीयं वा सअंडं जाव नो पडि०, एवं अतिरिच्छछिन्नेवि तिरिच्छछिन्ने जाव प० ॥१६० ॥

छाया— स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकाक्षेत् आम्रवनमुपागतु यस्तत्र ईश्वर· तमवग्रहमनुज्ञापयेत्-काम खलु यावद् विहरिष्याम स कि पुन तत्र अवग्रहे एवावग्रहीते, अथ भिक्षु इच्छेत आम्र भोक्तुं वा स यत् पुन आम्रं जानीयात् साण्ड ससन्तानकं तथाप्रकारं आम्रमप्रासुक नो प्रतिगृण्हीयात्। स भिक्षुर्वा० स यत् पुन. आम्रं जानीयात्-अल्पाण्ड-मल्पसन्तानकमतिरश्चीनछिन्नमव्यवच्छिन्नमप्रासुकं यावत् नो प्रतिगृण्हीयात् ॥ स भिक्षुर्वा० स यत् पुन. आम्र जानीयात् अल्पाण्ड वा यावद् सन्तानक तिरश्चीनछिन्नं व्यवच्छिन्न यावत् प्रासुक प्रतिगृण्हीयात् ॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा स यत् पुन. आम्रं जानीयात् आम्रभित्तकं (आम्रार्द्धम्) वा आमृपेशिकां आम्रत्वचं वा आम्रशालकं वा आम्रडालकं वा भोक्तुं वा पातुं वा स यत्० वा आम्रभित्तक वा ५ साण्डमप्रासुकं० नो प्रतिगृह्णीयात् ॥ स भिक्षुर्वा स यत्०

आम्रं वा आम्रभित्तकं वा अल्पांडं॰ अतिरश्चीनच्छिन्नमव्यवच्छिन्नमप्रासुकं नो प्रतिगृण्हीयात्॥ स भिक्षुर्वा॰ स यत्॰ आम्रडालकं वा अल्पाडं॰ ५ तिरश्चीनछिन्नं व्यवच्छिन्नं प्रतिप्रासुक गृण्हीयात्॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकांक्षेत् इक्षुवनं उपागन्तुं, यस्तत्र ईश्वरः यावत् अवग्रहीते॰॥ अथ भिक्षु॰ इच्छेत् इक्षुं भोक्तुं वा पातुं वा॰ स यत्॰ इक्षुं जानीयात् साण्डं यावत् नो प्रतिगृण्हीयात् अतिरश्चीनछिन्न तथैव तिरश्चीनछिन्नमपि तथैव॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकांक्षेत् अन्तरिक्षुकं वा इक्षुगडिका वा इक्षुत्वचं वा इक्षुशालकं वा इक्षुडालक वा भोक्तुं वा पातुं वा॰ स यत् पुनः अतरिक्षुक वा यावत् डालकं वा साण्डं॰-नो प्रतिगृण्हीयात्॥ स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अभिकांक्षेत् लशुनवनमुपागन्तुं तथैव त्रयोऽपि आलापका॰ नवरं लशुनम्॥ स भिक्षुर्वा २ लशुन वा लशुनकन्द वा लशुनत्वच वा लशुननालकं वा भोक्तुं वा पातुं वा २ स यत्॰ लशुनं वा यावत् लशुनबीजं वा साण्डं वा यावत् नो प्रतिगृण्हीयात् एवं अतिरश्चीनछिन्नमपि तिरश्चीनछिन्न यावत् प्रतिगृण्हीयात्।

पदार्थ– से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी यदि। अभिकखिज्जा-चाहे। अबवण-आम्र वन मे। उवागच्छित्तए-आकर अवग्रह की याचना करे। जे-जो। तत्थ-वहा घर। ईसरे २-आम्रवन का स्वामी अथवा वन का अधिष्ठाता है। ते-उसको। उग्गहं-अवग्रह का। अणुजाणाविज्जा-अनुज्ञापन कराए अर्थात् उससे आज्ञा मागे। काम खलु-जैसे अपनी इच्छा हो वैसे ही। जाव-यावत्। विहरिस्सामो-हम विचरेगे। से-वह भिक्षु। किं-फिर क्या करे ? अब सूत्रकार इस विषय मे कहते है। पुण॰-फिर। तत्थ-वहा पर। एवोग्गहियसि-आज्ञा मिल जाने पर। अह-अथ। भिक्खू-भिक्षु-साधु। अबं भुत्तए वा-आम्र का आहार करना। इच्छिज्जा-चाहे तो। से-वह-भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। अंब-आम्रफल के सम्बन्ध मे यह। जाणिज्जा-जाने कि। सअडं-जो आम अण्डो के सहित है। ससताणगं-जालों से युक्त है तो। तह॰-तथाप्रकार के। अंब-आम्र को। अफा॰-अप्रासुक जानकर। नो प॰-ग्रहण न करे।

से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी। से ज-वह जो फिर। अब जाणिज्जा-आम्र फल को जाने। अप्पड-अण्डो से रहित। अप्पसताणग-जालो से रहित। अतिरिच्छछिन्न-जो तिरछा छेदन नहीं किया हुआ है तथा जो। अव्वोच्छिन्न-अखडित है उसको। अफासुयं-अप्रासुक। जाव-यावत् अनेषणीय जानकर। नो पडिगाहिज्जा-ग्रहण न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। से ज॰-वह फिर आम्र के फल को जाने जो। अप्पड-अडो से रहित। जाव-यावत्। संताणग-जालों से रहित। तिरिच्छछिन्नं-तिरछा छेदन किया हुआ। वुच्छिन्न-खण्ड-खण्ड किया हुआ उसको। फा॰-प्रासुक जान कर। पडि॰-ग्रहण करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी यदि आम्र फल को ग्रहण करना चाहे तो। अबभित्तगं-आम्र का अर्द्ध भाग। वा-अथवा। अबसालगं वा-आम्रफल का रस अथवा। अबडालग वा-आम्रफल के सूक्ष्म-सूक्ष्म खण्ड। भुत्तए वा पायए वा-खाना या पीना चाहे तो। से जं-वह भिक्षु जो। पुण-फिर जाने कि। अंबभित्तगं वा-यदि आधा आम्र फल। सअंडं -अण्डो से युक्त है तो। अफा॰-उसको अप्रासुक जानकर। नो प॰-ग्रहण न करे। से भि॰-वह साधु या साध्वी। से जं॰-वह साधु जो। अंबं-आम्रफल को। अंबभित्तगं वा-अथवा उसके अर्द्ध भाग-

खड को, जो कि। अप्पंडं-अंडादि से रहित होने पर भी। अतिरिच्छछिन्नं २-तिरछा छेदन नहीं किया हुआ और न खण्ड-खण्ड किया गया है तो उसको भी अप्रासुक जानकर। नो प०-ग्रहण न करे।

से जं०-वह साधु या साध्वी फिर आम्र फल को जाने। अबडालग वा-यावत् आम्रफल के सूक्ष्म-सूक्ष्म खण्ड किए हुए हैं। अप्पंड-अडादि से रहित है और। तिरिच्छछिन्न-तिरछा छेदन किया हुआ है। वुच्छिन्नं-खण्ड २ किया हुआ है तथा परिपक्व होने से अचित्त हो गया है उसको। फासुयं-प्रासुक जान कर। पडि०-ग्रहण करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी यदि। अभिकखिज्जा-चाहे। उच्छुवण-इक्षु वन मे। उवागच्छित्तए-जाना। जे-जो। तत्थ-वहा। ईसरे-इक्षु वन का स्वामी है। जाव-यावत्। उग्गहसि०-उसकी आज्ञा मे ठहरे। अह भिक्खू-अत साधु। उच्छु-इक्षु को। भुत्तए वा पा०-खाना या पीना। इच्छिज्जा-चाहे तो। से-वह भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। उच्छु-इक्षु के सम्बन्ध मे यह। जाणिज्जा-जाने कि। सअड-जो इक्षु अडो से युक्त। जाव-यावत् जालो से युक्त है उसको। नो पडि०-ग्रहण न करे। अतिरिच्छछिन्न-जो तिरछा छेदन नहीं किया हुआ। तहेव-उसी प्रकार अर्थात् आम्र फल के समान दूसरा आलापक जानना। तहेव-उसी प्रकार। तिरिच्छन्नेऽवि-तिरछा छेदा हुआ भी आलापक जानना यह आलापक अचित्त विषयक है और इससे पहला सचित विषय मे है।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। अभिकखिज्जा-चाहे। अतरुच्छुय वा-इक्षु के पर्व भाग का मध्य अथवा। उच्छुगंडियं वा-इक्षु की गडिका-कतली। उच्छुचोयगं वा-अथवा इक्षु की छाल। उच्छुसा०-इक्षु का रस। उच्छुडा०-इक्षु के सूक्ष्म खण्ड। भुत्तए वा-भोगने अथवा। पा०-पीने। से-वह भिक्षु। ज-जो। पुण-फिर। जाणिज्जा-जाने। अतरुच्छुयं वा-इक्षु के पर्व का मध्य भाग। जाव-यावत्। डालग वा-इक्षु के सूक्ष्म २ खण्ड। सअंडं-अडादि से युक्त हो तो। नो पडि०-ग्रहण न करे। से भि०-वह साधु या साध्वी। से जं०-यह जाने। अंतरुच्छुय वा-इक्षु के पर्व का मध्य भाग। जाव-यावत्। अप्पड वा-अडादि से रहित हो तो। जाव-यावत्। पडि०-ग्रहण कर ले। अतिरिच्छछिन्न-जो तिरछा छेदन नहीं किया हुआ अत सचित्त होने से। तहेव-उसी प्रकार अग्राह्य है। से भि०-वह साधु या साध्वी। ल्हसुणवण-यदि लशुन के वन मे। उवागच्छित्तए-गमन करना। अभिकखि०-चाहे तो यावत्। तिन्निवि-तीनो ही। आलावगा-आलापक। तहेव-उसी प्रकार पूर्व की भाति जानना। नवर-केवल इतना विशेष है। ल्हसुण-यहा पर लशुन का अधिकार समझना चाहिए। से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। अभिकखिज्जा-चाहे। ल्हसुण वा-लशुन को। ल्हसुणकद वा-लशुन के कन्द को। ल्ह०-चोयगं वा-लशुन की त्वचा-छाल को अथवा। ल्हसुणनालग वा-लशुन की नाल को। भुत्तए वा-भोगना तथा पीना। से ज पुण-वह जो फिर। ल्हसुण वा-लशुन-लशुन कन्द। जाव-यावत्। ल्हसुणबीय वा-लशुन के बीज को, जो। सअड-अडादि से युक्त है। जाव-यावत्। नो पडि०-ग्रहण न करे। एव-इसी प्रकार। अतिरिच्छछिन्नेऽवि-जो तिरछा छेदन नहीं किया हुआ, जो कि सचित्त है उसे ग्रहण न करे। तिरिच्छछिन्ने-तिरछा छेदन किया हुआ है जो कि अचित्त है। जाव-यावत्। पडि०-ग्रहण कर ले।

मूलार्थ—यदि कोई संयम निष्ठ साधु या साध्वी आम के वन में ठहरना चाहे तो वह उस बगीचे के स्वामी या अधिष्ठाता से उसके लिए याचना करते हुए कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ! मैं यहां पर ठहरना चाहता हूं। जितने समय के लिए आप आज्ञा देगे उतने समय ठहर कर बाद में विहार कर दूंगा। इस तरह बागवान की आज्ञा प्राप्त होने पर वह वहां ठहरे। यदि वहा स्थित साधु को

आम्र फल खाने की इच्छा हो तो उसे कैसे आम्रफल को ग्रहण करना चाहिए, इसके सम्बन्ध में बताया गया है कि वह फल अंडादि से युक्त हो तो वह उसे ग्रहण न करे। अडादि से रहित होने-परन्तु यदि उसका तिरछा छेदन न हुआ हो तथा उसके अनेक खण्ड भी न किए गए हों तो भी उसे साधु स्वीकार न करे। परन्तु यदि वह अडादि से रहित हो, तिरछा छेदन किया हुआ हो और खंड २ किया हुआ हो तो अचित्त एवं प्रासुक होने पर साधु उसे ग्रहण कर सकता है। परन्तु आम्र का आधा भाग, उसकी फाड़ी, उसकी छाल और उसका रस एव उसके किए गए सूक्ष्म खंड यदि अंडादि से युक्त हों या अंडादि से रहित होने पर भी तिरछे कटे हुए न हो और खड २ न किए गए हो तो साधु उसे भी ग्रहण न करे। यदि उनका तिरछा छेदन किया गया है, और अनेक खंड किए गए हैं तब उसे अचित्त और प्रासुक जानकर साधु ग्रहण कर ले।

यदि कोई साधु या साध्वी इक्षु वन मे ठहरना चाहे और वन पालक की आज्ञा लेकर वहां ठहरने पर यदि वह इक्षु (गन्ना) खाना चाहे तो पहले यह निश्चय करे कि जो इक्षु अंडादि से युक्त है और तिरछा कटा हुआ नही है तो वह उसे ग्रहण न करे। यदि अडादि से रहित और तिरछा छेदन किया हुआ हो तो उसको अचित्त और प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। इसका शेष वर्णन आम्र के समान ही जानना चाहिए। यदि साधु इक्षु के पर्व का मध्य भाग, इक्षुगडिका, इक्षुत्वचा-छाल, इक्षुरस और इक्षु के सूक्ष्म खंड आदि को खाना-पीना चाहे तो वह अंडादि से युक्त या अडादि से रहित होने पर भी तिरछा कटा हुआ न हो तथा वह खड-खड भी न किया गया हो तो साधु उसे ग्रहण न करे। इसी प्रकार लशुन के सम्बन्ध मे भी तीनो आलापक समझने चाहिए।

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे आम्र फल, इक्षु खण्ड आदि के ग्रहण एव त्याग करने के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। आम्र आदि पदार्थ किस रूप मे साधु के लिए ग्राह्य एव अग्राह्य हैं, इसका नयसापेक्ष वर्णन किया गया है। और इसका सम्बन्ध केवल पक्व आम आदि से है, न कि अर्ध पक्व या अपक्व फलो से। पक्व आम्र आदि फल भी यदि अण्डो आदि से युक्त हो, तिरछे एव खण्ड-खण्ड मे कटे हुए न हो तो साधु उन्हे ग्रहण न करे और यदि वे अण्डे आदि से रहित हो, तिरछे एव खण्ड-खण्ड मे कटे हुए हो तो साधु उन्हे ग्रहण कर सकता है। उस पक्व फल के तिर्यक् एव खण्ड-खण्ड मे कटे होने का उल्लेख उसे अचित्त एव प्रासुक सिद्धि करने के लिए है। निशीथ सूत्र मे यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि साधु सचित्त आम्र एव सचित्त इक्षु ग्रहण करता है तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित आता है[१]। इससे स्पष्ट होता है कि साधु अचित्त एव प्रासुक आम्र आदि ग्रहण कर सकता है। यदि वह पक्व फल जीव-जन्तु से रहित हो और तिर्यक् कटा हुआ हो तो साधु के लिए अग्राह्य नहीं है और न वह सचित्त ही रह जाता है।

अब अवग्रह के अभिग्रह के सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भि० आगंतारेसु वा ४ जावोग्गहियंसि जे तत्थ गाहावईण वा गाहा० पुत्ताण वा इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम्म अह भिक्खू जाणिज्जा,

१ निशीथ सूत्र, उद्देशक १५, ५, १२ उद्देशक १६ ४, ११।

इमाहिं सत्तहिं पडिमाहिं उग्गहं उग्गिण्हित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा-से आगंतारेसु वा ४ अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा जाव विहरिस्सामो पढमा पडिमा ॥१ ॥ अहावरा० जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं उग्गिण्हिस्सामि, अण्णेसिं भिक्खूणं उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि, दुच्चा पडिमा ॥२ ॥ अहावरा० जस्स णं भि० अहं च० उग्गिण्हिस्सामि अन्नेसिं च उग्गहे उग्गहिए नो उवल्लिस्सामि, तच्चा पडिमा ॥३ ॥ अहावरा० जस्स णं भि० अहं च० नो उग्गहं उग्गिण्हिस्सामि, अन्नेसिं च उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि, चउत्था पडिमा ॥४ ॥ अहावरा० जस्स णं अहं च खलु अप्पणो अट्ठाए उग्गहं च उ० नो दुण्हं नो तिण्हं नो चउण्हं नो पंचण्हं पंचमा पडिमा ॥५ ॥ अहावरा० से भि० जस्स एव उग्गहे उवल्लिइज्जा जे तत्थ अहासमन्नागए इक्कडे वा जाव पलाले तस्स लाभे संवसिज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुओ वा नेसज्जिओ वा विहरिज्जा, छट्ठा पडिमा ॥ ६ ॥ अहावरा स० जे भि० अहासंथडमेव उग्गहं जाइज्जा तंजहा पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहासंथडमेव तस्स लाभे संते० तस्स अलाभे उ० ने० विहरिज्जा, सत्तमा पडिमा ॥७ ॥ इच्चेयासिं सत्तण्हं पडिमाणं अन्नयरं जहा पिंडेसणाए ॥१६१ ॥

छाया- स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा आगन्तागारेषु वा ४ यावत् अवग्रहीते ये तत्र गृहपतीनां वा गृहपतिपुत्राणां वा इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य अथ भिक्षु· जानीयात्- आभिः सप्ताभिः प्रतिमाभिः अवग्रहमवग्रहीतुं। तत्र खलु इय प्रथमा प्रतिमा-स आगन्तागारेषु वा ४ अनुविचिन्त्यावग्रहं याचेत यावत् विहरिष्यामः प्रथमा प्रतिमा ॥१ ॥ अथापरा० यस्य भिक्षो एव भवति-अहं च खलु अन्येषां भिक्षूणां अर्थायावग्रहमवग्रहीष्यामि अन्येषां भिक्षूणामवग्रहे अवगृहीते उपालयिष्ये द्वितीया प्रतिमा ॥२ ॥ अथापरा० यस्य भिक्षोः एवं भवति अह च० अवग्रहीष्यामि अन्येषा च अवग्रहे अवगृहीते नो उपालयिष्ये तृतीया प्रतिमा ॥३ ॥ अथापरा० यस्य भि० अहं च० नो अवग्रहमवग्रहीष्यामि, अन्येषां च अवग्रहे अवगृहीते उपालयिष्ये, चतुर्थी प्रतिमा ॥४ ॥ अथापरा० यस्य अहं च खलु आत्मनः अर्थाय अवग्रहं च अवग्रहीष्यामि नो द्वयोः नो त्रयाणां नो चतुर्णां नो पञ्चानां पंचमी प्रतिमा ॥५ ॥ अथापरा० स भि० यस्य एव अवग्रहे उपालयेत् ये तत्र यथा समन्वागते उत्कटः यावत् पलालः तस्य लाभे सवसेत्, तस्य अलाभे उत्कुटुको वा निषण्णो वा विहरेत्, षष्ठी प्रतिमा ॥६ ॥ अथापरा स० यो भिक्षुः यथासंस्तृतमेव अवग्रह याचेत, तद्यथा पृथ्वीशिलां वा काष्ठशिलां वा यथासंस्तृतमेव

तस्य लाभे सति० तस्यालाभे सति० अवग्रहं० नि० विहरेत्, सप्तमी प्रतिमा ॥७॥ इत्येतासां सप्तानां प्रतिमानामन्यतरां यथा पिण्डैषणायाम्।

पदार्थ– **से भि०**-वह साधु अथवा साध्वी। **आगतारेसु वा ४**-धर्मशाला आदि मे। **जाव**-यावत्। **ओग्गहियंसि**-आज्ञा लेने पर। **जे**-जो। **तत्थ**-वहा पर। **गाहावईण वा**-गृहपतियो के। **गाहा० पुत्ताण वा**-अथवा गृहपति के पुत्रो तथा उनके सम्बन्धी जनों। **इच्चेयाइं**-ये जो पूर्वोक्त। **आयतणाइ**-कर्म बन्ध के स्थान हैं उन दोषो को। **उवाइक्कम्म**-अतिक्रम करके उक्त स्थानो मे रहना चाहिए। **अह**-अथ। **भिक्खू**-भिक्षु। **इमाहिं**-ये जो आगे कहे जाते है। **सत्तहिं**-सात। **पडिमाहिं**-प्रतिमा-अभिग्रहविशेषो से। **उग्गहं**-अवग्रह को। **उग्गिणिहत्तए**-ग्रहण करना। **एव जाणिज्जा**-जानना चाहिए। **खलु**-निश्चयार्थक है। **तत्थ**-उन सात प्रतिमाओ मे से। **इमा**-यह। **पढमा**-पहली। **पडिमा**-प्रतिमा है। **से**-वह भिक्षु। **आगंतारेसु वा ४**-धर्मशाला आदि मे। **अणुवीइ**-विचार कर। **उग्गह**-अवग्रह की। **जाइज्जा**-याचना करे। **जाव**-यावत्। **विहरिस्सामो**-विचरूगा। **पढमा पडिमा**-यह पहली प्रतिमा है। **अहावरा०**-अथ अपर इससे अन्य। **दुच्चा पडिमा**-दूसरी प्रतिमा यह है। **णं**-वाक्यालकार मे है। **जस्स**-जिस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु का। **एवं भवइ**-इस प्रकार का अभिग्रह होता है। **च**-पुन । **खलु**-वाक्यालकार मे है। **अह**-मै। **अन्नेसि**-अन्य। **भिक्खूण**-भिक्षुओ के। **अट्ठाए**-अर्थ-प्रयोजन के लिए। **उग्गहं**-अवग्रह की। **उग्गिणिहस्सामि**-याचना करूगा और। **अण्णेसि**-अन्य। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ का। **उग्गहे**-अवग्रह। **उग्गहिए**-अवग्रह की आज्ञा ग्रहण किए जाने पर। **उवल्लिस्सामि**-उसमे बसूगा-निवास करूंगा। **दुच्चा पडिमा**-यह दूसरी प्रतिमा है। **अहावरा**-अथ अपर इससे आगे। **तच्चा पडिमा**-तीसरी प्रतिमा कहते है। **णं**-वाक्यालकार में। **जस्स**-जिस भिक्षु का। **एवं भवइ**-इस प्रकार का अभिग्रह होता है। **च खलु**-पूर्ववत् ही है। **अहं**-मैं अन्य भिक्षुओं के लिए अवग्रह की। **उग्गिणिहस्सामि**-याचना करूगा। **च**-और। **अन्नेसि**-अन्य भिक्षुओ का। **उग्गहे**-अवग्रह। **उग्गहिए**-याचना किए हुए में। **नो उवल्लिस्सामि**-नहीं बसूगा अर्थात् निवास नहीं करूंगा। **तच्चा पडिमा**-यह तीसरी प्रतिमा है। ३। **अहावरा०**-अथ अपर चतुर्थी प्रतिमा यह है। **जस्स**-जिस। **भि०**-भिक्षु का। **एवं भवइ**-इस प्रकार का अभिग्रह होता है। **च खलु**-पूर्ववत्। **अह**-मैं। **अन्नेसिं**-अन्य। **भिक्खूणं**-भिक्षुओ के। **अट्ठाए**-लिए। **उग्गह**-अवग्रह की। **नो उग्गिणिहस्सामि**-याचना नहीं करूगा। **अन्नेसिं**-अन्य भिक्षुओ के। **उग्गहे**-अवग्रह की। **उग्गहिए**-आज्ञा लिए जाने पर। **उवल्लिस्सामि**-उसमे निवास करूगा। **चउत्था पडिमा**-यह चौथी प्रतिमा है। ४। **अहावरा**-अथ अपर-इससे अन्य। **पंचमा पडिमा**-पाचवीं प्रतिमा कहते है। **णं**-वाक्यालकार मे। **जस्स**-जिस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु का। **एवं भवइ**-इस प्रकार का अभिग्रह होता है। **च खलु**-पूर्ववत्। **अहं**-मैं। **अप्पणो अट्ठाए**-अपने वास्ते। **उग्गह च**-अवग्रह की। **उग्गिणिहस्सामि**-याचना करूगा। **नो दुण्ह**-दो के लिए नहीं। **नो तिण्हं**-तीन के लिए नहीं। **नो चउण्ह**-चार के लिए नहीं। **नो पंचण्हं**-पाच के लिए नहीं। **पचमा पडिमा**-यह पाचवीं प्रतिमा है। **अहावरा०**-इससे अन्य। **छट्ठा पडिमा**-छठी प्रतिमा कहते हैं। **से भि०**-वह साधु अथवा साध्वी। **जस्स एव उग्गहे**-जिस उपाश्रय की आज्ञा लेकर। **उवल्लिइज्जा**-रहूगा। **जे तत्थ**-जो वहा पर। **अहासमन्नागए**-समीप मे ही। **इक्कडे वा**-तृण विशेष। **जाव**-यावत्। **पलाले**-पलाल। **तस्स लाभे**-उसके मिलने पर। **संवसिज्जा**-वसे, अर्थात् सस्तारक आदि करे। **तस्स अलाभे**-उसके न मिलने पर। **उक्कुडुओ वा**-उत्कुदुक-आसन अथवा। **नेसज्जिओ वा**-निषद्या आसन पर। **विहरिज्जा**-विचरे। **छट्ठा पडिमा**-यह छठी प्रतिमा है। **अहावरा**-अथ अपर- इससे अन्य। **सत्तमा पडिमा**-सातवीं प्रतिमा कहते हैं। **जे भिक्खू०**-जो साधु या

साध्वी। **अहासथडमेव**-जो पहले ही सस्तृत हो रहा है अर्थात् बिछा हुआ है। **उग्गहं जाइज्जा**-उस अवग्रह की याचना करूंगा। **तं०**-जैसे कि। **पुढविसिल वा**-पृथ्वी शिला। **कट्ठसिलं वा**-काष्ठ शिला अथवा। **अहासंथडमेव**-उस उपाश्रय में पलाल आदि पहले ही बिछा हो। **तस्स लाभे संते०**-उसके लाभ होने पर उस पर आसन करे। **तस्स**-उसके। **अलाभे**-न मिलने पर। **उ०**-उत्कुटुक आसन से अथवा। **नि०**-निषद्यादि आसन पर। **विहरिज्जा**-विचरे। **सत्तमा पडिमा**-यह सातवीं प्रतिमा है। **इच्चेयासि**-इन पूर्वोक्त। **सत्तण्ह**-सात। **पडिमाण**-प्रतिमाओ मे से साधु ने यदि। **अन्नयर**-कोई एक प्रतिमा ग्रहण की हुई है तब वह अन्य साधुओ की निन्दा न करे। शेष वर्णन। **जहा**-जैसे। **पिडेसणाए**-पिण्डैषणा अध्ययन मे सात पिण्डैषणा प्रतिमाओ का वर्णन किया है उसी प्रकार जान लेना चाहिए।

मूलार्थ—संयमशील साधु या साध्वी धर्मशाला आदि में गृहस्थ और गृहस्थो के पुत्र आदि सम्बन्धी स्थान के दोषो को छोडकर इन वक्ष्यमाण सात प्रतिमाओ के द्वारा अवग्रह की याचना करके वहां पर ठहरे।

१-धर्मशाला आदि स्थानो की परिस्थिति को विचार कर यावन्मात्र काल के लिए वहा के स्वामी की आज्ञा हो तावन्मात्र काल वहा ठहरूंगा, यह पहली प्रतिमा है।

२-मैं अन्य भिक्षुओ के लिए उपाश्रय की आज्ञा माँगूगा और उनके लिए याचना किए गए उपाश्रय में ठहरूगा, यह दूसरी प्रतिमा है।

३-कोई साधु इस प्रकार से अभिग्रह करता है कि मै अन्य भिक्षुओ के लिए तो अवग्रह की याचना करूगा, परन्तु उनके याचना किए गए स्थानो मे नहीं ठहरूगा। यह तीसरी प्रतिमा का स्वरूप है।

४-कोई साधु इस प्रकार से अभिग्रह करता है– मै अन्य भिक्षुओ के लिए अवग्रह की याचना नहीं करूगा, परन्तु उनके याचना किए हुए स्थानों मे ठहरूगा। यह चौथी प्रतिमा है।

५-कोई साधु यह अभिग्रह धारण करता है कि मै केवल अपने लिए ही अवग्रह की याचना करूगा, किन्तु अन्य दो, तीन, चार और पाच साधुओ के लिए याचना नही करूगा। यह पाचवीं प्रतिमा है।

६-कोई साधु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं जिस स्थान की याचना करूगा उस स्थान पर यदि तृण विशेष– सस्तारक आदि मिल जाएंगे तो उन पर आसन करूगा, अन्यथा उक्कुटुक आसन आदि के द्वारा रात्रि व्यतीत करूंगा, यह छठी प्रतिमा है।

७-जिस स्थान की आज्ञा ली हो यदि उसी स्थान पर पृथ्वी शिला, काष्ठ शिला तथा पलाल आदि बिछा हुआ हो तब वहा आसन करूंगा, अन्यथा उत्कुटुक आदि आसन द्वारा रात्रि व्यतीत करूगा, यह सातवीं प्रतिमा है।

इन सात प्रतिमाओ मे से यदि कोई भी प्रतिमा साधु स्वीकार करे परन्तु वह अन्य साधुओ की निन्दा न करे। अभिमान एव गर्व को छोड़कर अन्य साधुओ को समभाव से देखे। शेष वर्णन पिंडैषणा अध्ययनवत् जानना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे अवग्रह से सम्बद्ध सात प्रतिमाओ का वर्णन किया गया है।

पहली प्रतिमा मे बताया गया है कि साधु सूत्र में वर्णित विधि के अनुसार मकान की याचना करे और वह गृहस्थ जितने काल तक जितने क्षेत्र मे ठहरने की आज्ञा दे तब तक उतने ही क्षेत्र मे ठहरे। दूसरी प्रतिमा यह है कि मैं अन्य साधुओ के लिए मकान याचना करूगा तथा उनके द्वारा याचना किए गए मकान मे ठहरूगा। तीसरी प्रतिमा मे वह यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं अन्य साधु के लिए मकान की याचना करूगा, परन्तु दूसरे द्वारा याचना किए गए मकान मे नहीं ठहरूगा। चौथी प्रतिमा मे वह दूसरे द्वारा याचना किए गए मकान मे ठहर तो जाता है, परन्तु, अन्य के लिए याचना नहीं करता है। पाचवीं प्रतिमा मे वह केवल अपने लिए ही मकान की याचना करता है, अन्य के लिए नहीं। छठी प्रतिमा मे वह यह प्रतिज्ञा करता है कि जिस मकान मे ठहरूगा उसमे घास आदि रखा होगा तो ग्रहण करूगा, अन्यथा उकड़ू आदि आसन करके रात व्यतीत करूगा और सातवीं प्रतिमा मे वह उन्हीं तख्त, शिलापट एव घास आदि को काम मे लेता है, जो पहले से मकान मे बिछे हुए हो।

इसमे प्रथम प्रतिमा सामान्य साधुओ के लिए है। दूसरी प्रतिमा का अधिकारी मुनि गच्छ मे रहने वाले साम्भोगिक एव उत्कट सयम निष्ठ असाम्भोगिक साधुओ के साथ प्रेम भाव रखने वाला होता है। तीसरी प्रतिमा उन साधुओ के लिए है जो आचार्य आदि के पास रहकर अध्ययन करना चाहते हैं। चौथी प्रतिमा उनके लिए है, जो गच्छ मे रहते हुए जिनकल्पी बनने का अभ्यास कर रहे हैं। पाचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमा केवल जिनकल्पी मुनि से सम्बद्ध है। ये भेद वृत्तिकार ने किए हैं[१]। मूलपाठ मे किसी कल्प के मुनि का सकेत नहीं किया गया है। वहा तो इतना ही उल्लेख किया गया है कि मुनि इन सात प्रतिमाओ को ग्रहण करते हैं, चाहे वे जिन कल्प पर्याय मे हो या स्थविर कल्प पर्याय मे हो। सामान्य रूप से प्रत्येक साधु अपनी शक्ति के अनुसार अभिग्रह ग्रहण कर सकता है। इसी कारण सूत्रकार ने यह उल्लेख किया है कि स्थान सम्बन्धी समस्त दोषो का त्याग करके साधु को अवग्रह की याचना करनी चाहिए।

पिण्डैषणा आदि अध्ययनो की तरह इसमे भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अभिग्रह ग्रहण करने वाले मुनि को अन्य साधुओ को घृणा एव तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। परन्तु सब का सामान्य रूप से आदर करते हुए यह कहना चाहिए कि भगवान की आज्ञा के अनुरूप आचरण करने वाले सभी साधु मोक्ष मार्ग के पथिक हैं।

---

१ यहा पाठको के अवलोकनार्थ वृत्ति का वह समग्र पाठ दिया जाता है– अथ भिक्षु सप्तभि प्रतिमाभिरभिग्रहविशेषैरवग्रह गृह्णीयात्, तत्रेय प्रथमा प्रतिमा, तद्यथा-स भिक्षुरागन्तागारादौ पूर्वमेव विचिन्त्यैवभूत प्रतिश्रयो मया ग्राह्यो, नान्यथाभूत इति प्रथमा। तथान्यस्य च भिक्षोरेवभूतोऽभिग्रहो भवति, तद्यथा– अह न खल्वन्येषा साधूना कृतेऽवग्रह 'ग्रहीष्यामि' याचिष्ये, अन्येषा वावग्रहे गृहीते सति 'उपालयिष्ये' वत्स्यामीति द्वितीया। प्रथमा प्रतिमा सामान्येन, इय तु गच्छान्तर्गताना साधूना साम्भोगिकानामसांभोगिकाना चोद्युक्तविहारिणा, यतस्तेऽन्योऽन्यार्थं याचन्त इति। तृतीया त्विय-अन्यार्थमवग्रहं याचिष्ये, अन्यावगृहीते तु न स्थास्यामीति, एषा त्वाहालन्दिकाना, यतस्ते सूत्रार्थविशेषमाचार्यादभिकाक्षन्त आचार्यार्थं याचन्ते। चतुर्थी पुनरहमन्येषां कृतेऽवग्रहं न याचिष्ये अन्यावगृहीते च वत्स्यामीति, इय तु गच्छे एवाभ्युद्यतविहारीणा जिनकल्पाद्यर्थं परिकर्म कुर्वताम्। अथापरापञ्चमी-अहमात्मकृतेऽवग्रहमवग्रहीष्यामि न चापरेषा द्वित्रिचतुष्पञ्चानामिति, इय तु जिनकल्पिकस्य। अथापरा षष्ठी-यदीयमवग्रह ग्रहीष्यामि, इतरथोत्कुटुको वा निषण्ण उपविष्टो वा रजनीं गमिष्यामीत्ये जिनकल्पिकादेरिति। अथापरा सप्तमी-एषैव पूर्वोक्ता, नवर यथासस्तृतमेव शिलादिक ग्रहीष्यामि नेतरदिति शेषमात्मोत्कर्षवर्जनादि पिण्डैषणावन्नेयमिति॥ – आचाराग वृत्ति।

अब अवग्रह के भेदो का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं पंचविहे उग्गहे पन्नते, तंजहा-देविंदउग्गहे १ रायउग्गहे २ गाहावइउग्गहे ३ सागारियउग्गहे ४ साहम्मियउग्गहे ५ एवं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं ॥१६२॥ उग्गहपडिमा सम्मत्ता ॥

छाया– श्रुतं मया आयुष्मन्! तेन भगवता एवमाख्यातं इह खलु स्थविरै. भगवद्भि. पचविध. अवग्रह: प्रज्ञप्त: तद्यथा-देवेन्द्रावग्रह: १ राजावग्रह· २ गृहपति-अवग्रह· ३ सागारिकावग्रह: ४ साधर्मिकावग्रह: ५ एवं खलु तस्य भिक्षो: भिक्षुक्या: वा सामग्र्यम्॥ अवग्रहप्रतिमा समाप्ता।

पदार्थ– **आउस**-हे आयुष्मन्-प्रिय शिष्य! **मे**-मैने। **सुय**-सुना है। **तेणं भगवया**-उस भगवान ने। **खलु**-निश्चय ही। **इह**-इस जिन प्रवचन मे। **थेरेहिं भगवतेहिं**-स्थविर भगवन्तो अर्थात् पूज्य स्थविरो ने–गणधरो ने। **पचविहे**-पाच प्रकार का। **उग्गहे**-अवग्रह। **पन्नत्ते**-प्रतिपादन किया है। **तजहा**-जैसे कि। **देविदउग्गहे**[१]-देवेन्द्र का अवग्रह। १-**रायउग्गहे** २-राजा का अवग्रह २। **गाहावइउग्गहे** ३-गृहपति का अवग्रह। **सागारियउग्गहे** ४-सागारिक का अवग्रह ४। **साहम्मियउग्गहे** ५-साधर्मिक का अवग्रह ५। **एव खलु**-इस प्रकार निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स**-भिक्षु का साधु का। **वा**-अथवा। **भिक्खुणीए**-भिक्षुकी साध्वी का-आर्या का यह। **सामग्गियं**-समग्र आचार है। **उग्गहपडिमा सम्मत्ता**-यह अवग्रह प्रतिमा समाप्त हुई।

मूलार्थ—हे आयुष्मन्-शिष्य! मैने भगवान से इस प्रकार सुना है कि इस जिन प्रवचन मे पूज्य स्थविरो ने पांच प्रकार का अवग्रह प्रतिपादन किया है १-देवेन्द्र अवग्रह, २-राज अवग्रह, ३-गृहपति अवग्रह, ४-सागारिक अवग्रह और ५-साधर्मिक अवग्रह[१]। इस प्रकार यह साधु और साध्वी का समग्र–सपूर्ण आचार वर्णन किया गया है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे पाच प्रकार के अवग्रह का वर्णन किया गया है– १-देवेन्द्र अवग्रह, २-राज अवग्रह, ३-गृहपति अवग्रह, ४-सागारिक अवग्रह और ५-साधर्मिक अवग्रह। दक्षिण भरत क्षेत्र मे विचरने वाले मुनियो को प्रथम देवलोक के सुधर्मेन्द्र की आज्ञा ग्रहण करना देवेन्द्र अवग्रह कहलाता है। इससे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि तिर्यक् लोक पर भी देवो का आधिपत्य है। आगम मे बताया गया है कि साधु जगल मे या अन्य स्थान मे जहा कोई व्यक्ति न हो, देवेन्द्र की आज्ञा लेकर तृण,

---

१　उग्गहेत्ति–अवगृह्यते स्वामिना स्वीक्रियते य सोऽवग्रह । देविदोग्गहेत्ति देवेन्द्र -शक्र ईशानो वा तस्यावग्रहो-दक्षिण लोकार्धमुत्तरवेति देवेन्द्रावग्रह । राओग्गहेति-राजा-चक्रवर्ती तस्यावग्रह षड्खण्डभरतादि क्षेत्र राजावग्रह । गाहावइउग्गहेति-गृहपति -सागारियउग्गहेत्ति-सहागारेण गेहेन वर्तते इति सागार स एव सागारिकस्तस्यावग्रहो गृहमेवेति सागारिकावग्रह ।साहम्मियउग्गहेति समानेनधर्मेण चरन्तीति साधर्मिका साध्वपेक्षया साधव एव तेषामवग्रह तदाभाव्य पञ्चक्रोशपरिमाण क्षेत्रमृतुबद्धे मासमेक वर्षासु चतुरो मासान् यावदिति साधर्म्मिकावग्रह ।

– भगवती सूत्र, श० १६, उ० २ वृत्ति (आचार्य अभयदेव सूरि।)

२　भगवती सूत्र।

काष्ठ आदि ग्रहण कर सकता है[२]। आज भी साधु बाहर शौच के लिए बैठते समय या विहार के समय मे रास्ते में किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करना हो तो देवेन्द्र (शक्रेन्द्र) की आज्ञा लेकर बैठते हैं। इस तरह साधु कोई भी वस्तु बिना आज्ञा के ग्रहण नहीं करते।

भरत क्षेत्र के ६ खण्डो पर चक्रवर्ती का शासन होता है। अत उसकी आज्ञा से उन देशो मे विचरना यह राज अवग्रह कहलाता है और उस युग मे देश अनेक भागो मे विभक्त था, जैसे आज भारत कई प्रान्तो मे बटा हुआ है, परन्तु, इस समय सब प्रान्त केन्द्र से सम्बद्ध होने से वह अखण्ड कहलाता है। परन्तु, उस समय उन विभागो के स्वतन्त्र शासक थे, अत· उन विभिन्न देशो मे विचरते समय उनकी आज्ञा लेना गृहपति अवग्रह कहलाता है।

जिस व्यक्ति के मकान मे ठहरना हो उसकी आज्ञा ग्रहण करना सागारिक अवग्रह कहलाता है। आगार का अर्थ है-घर, अत· अपने घर या मकान पर आधिपत्य रखने वाले को सागारिय कहते हैं। और इसे शय्यातर अवग्रह भी कहते हैं। क्योकि, साधु जिससे मकान की आज्ञा ग्रहण करता है, उसे आगमिक भाषा मे शय्यातर कहते हैं।

जिस मकान मे पहले से साधु ठहरे हो तो साधु उनकी आज्ञा से ठहर जाता है, यह साधर्मिक अवग्रह है। अपने साम्भोगिक साधुओ की किसी वस्तु को ग्रहण करना हो तो भी साधु को उनकी आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस तरह साधु को बिना आज्ञा के सामान्य एव विशेष कोई भी पदार्थ ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**थेरेहिं भगवतेहिं**' पद मे भगवान को ज्ञान स्वरूप मानकर उनके लिए स्थविर शब्द का प्रयोग किया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। और '**सामग्गियं**' शब्द से साधु के समग्र आचार की ओर निर्देश किया गया है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥ (प्रथम चूला समाप्त)

अष्टम अध्ययन

(उपाश्रय में कायोत्सर्ग कैसे करना)

यह हम पहले देख चुके है कि आचाराङ्ग सूत्र का द्वितीय श्रुतस्कन्ध चार चूलाओ मे विभक्त है। पहली चूला और दूसरी चूला सात-सात अध्ययनो मे विभक्त है और तीसरी और चौथी चूला मे एक-एक अध्ययन है। प्रथम चूला के सातो अध्ययन विभिन्न विषयो एव उद्देशो मे विभक्त थे। परन्तु, द्वितीय चूला के सातो अध्ययन उद्देशो मे विभक्त नही है, सबका विषय एक ही प्रवाह मे गतिमान है। प्रथम चूला के अन्तिम अध्ययन (७वे अध्ययन) मे अभिव्यक्त अवग्रहो से याचना किए गए स्थान मे साधु को किस तरह से कायोत्सर्ग आदि क्रियाए करनी चाहिए इसका वर्णन द्वितीय चूला मे किया गया है। द्वितीय चूला के सातो अध्ययनो का सम्बन्ध अवग्रह के द्वारा ग्रहण किए गए स्थानो मे साधना करने की विधि से है, इस लिए इसका नाम 'सप्तसप्तिकाख्या चूला' रखा गया है। इसके प्रथम अध्ययन मे साधु को उपाश्रय मे कायोत्सर्ग आदि किस प्रकार करना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा॰ अभिकंखेज्जा ठाणं ठाइत्तए, से अणुपविसिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा, से जं पुण ठाणं जाणिज्जा–सअंडं जाव मक्कडासंताणय तं तह॰ ठाणं अफासुयं अणेस॰ लाभे संते नो प॰, एवं सिज्जागमेण नेयव्वं जाव उदयपसूयाइंति ॥ इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म २ अह भिक्खू इच्छिज्जा चउहिं पडिमाहिं ठाणं ठाइत्तए, तत्थिमा पढमा पडिमा– अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा अवलंबिज्जा काएण विप्परिकम्माइ नो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि पढमा पडिमा ॥

अहावरा दुच्चा पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा अवलंबिज्जा काएण विप्परिकम्माइ नो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि दुच्चा पडिमा ॥

अहावरा तच्चा पडिमा– अचित्तं खलु उवसज्जेजा अवलंबिज्जा नो काएण विप्परिकम्माइ नो सवियारं ठाणं ठाइस्सामित्ति तच्चा पडिमा ॥

अहावरा चउत्था पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जेज्जा नो अवलंबिज्जा काएण नो परकम्माइ नो सवियारं ठाणं ठाइस्सामित्ति वोसट्ठकाए वोसट्ठकेस-मंसुलोमनहे संनिरुद्धं वा ठाणं ठाइस्सामित्ति चउत्था पडिमा ॥ इच्चेयासिं चउण्हं

पडिमाणं जाव पग्गहियतरायं विहरिज्जा, नो किंचिवि वइज्जा, एयं खलु तस्स जाव तस्स॰ जाव जइज्जासि त्तिबेमि ॥१६३ ॥

छाया– स भिक्षुर्वा॰ अभिकांक्षेत् स्थानं स्थातुं स अनुप्रविशेद् ग्रामं वा यावत् राजधानीं वा, स यत् पुन. स्थानं जानीयात्-साण्डं यावत् मर्कटासन्तानकं तत् तथाप्रकार स्थानमप्रासुकमणेषणीयं लाभेसति नो प्रतिगृह्णीयात्। एवं शय्यागमेन नेतव्यम्, यावत् उदकप्रसृतानि, इति, इत्येतानि आयतनानि उपातिक्रम्य २ अथ भिक्षु· इच्छेत् चतसृभि. प्रतिमाभिः स्थानं स्थातुम्, तत्र, इयं प्रथमा प्रतिमा-अचित्त खलु उपाश्रयिष्यामि अवलम्बयिष्ये कायेन विपरिक्रमिष्यामि सविचार स्थान स्थास्यामि प्रथमा प्रतिमा ॥१ ॥ अथापरा द्वितीया प्रतिमा-अचित्तं खलु उपाश्रयिष्यामि अवलम्बयिष्ये कायेन विपरिक्रमिष्यामि नो सविचार स्थान स्थास्यामि द्वितीया प्रतिमा ॥२ ॥ अथापरा तृतीया प्रतिमा-अचित्त खलु उपाश्रयिष्यामि अवलम्बयिष्ये नो कायेन विपरिक्रमिष्यामि नो सविचारं स्थानं स्थास्यामीति तृतीया प्रतिमा ॥३ ॥ अथापरा चतुर्थी प्रतिमा-अचित्तं खलु उपाश्रयिष्यामि नो अवलम्बयिष्ये कायेन नो परिक्रमिष्यामि नो सविचारं स्थानं स्थास्यामीति व्युत्सृष्टकायः व्युत्सृष्टकेशश्मश्रुलोमनखः संनिरुद्धं वा स्थान स्थास्यामीति चतुर्थी प्रतिमा ॥४ ॥ इत्येतासा चतसृणा प्रतिमाना यावत् प्रगृहीतान्यतरां विहरेत् नो किंचिदपि वदेत्। एतत् खलु तस्य यावद् तस्य॰ यावत् यतेत, इति ब्रवीमि। स्थानसप्तैकक समाप्तः।

पदार्थ– **से भिक्खू वा**-वह साधु अथवा साध्वी यदि। **ठाणं**-स्थान मे। **ठाइत्तए**-स्थित होना। **अभिकंखेज्जा**-चाहे, तो। **से**-वह भिक्षु। **गाम वा**-ग्राम मे, नगर मे। **जाव**-यावत्। **रायहाणि वा**-राजधानी मे। **अणुपविसिज्जा**-प्रवेश करे और वहा प्रवेश करके। **से ज पुण॰**-वह जो फिर। **ठाण**-स्थान को। **जाणिज्जा**-जाने-अर्थात् स्थान का अन्वेषण करे। **सअड**-जो स्थान अण्डादि से। **जाव**-यावत्। **मक्कडासन्ताणय**-मकड़ी आदि के जाले से युक्त है। **तं**-उस। **तह॰**-तथाप्रकार के। **ठाणं**-स्थान को। **अफासुय**-अप्रासुक तथा। **अणेस॰**-अनेषणीय जानकर। **लाभे सते**-मिलने पर भी। **नो प॰**-ग्रहण न करे अर्थात् ऐसे स्थान मे न ठहरे। **एव**-इसी प्रकार अन्य सूत्र भी। **सिज्जागमेण**-शय्या अध्ययन के समान जान लेना। **जाव**-यावत्। **उदयपसूयाइति**-उदकप्रसूत कन्दादि, अर्थात् जिस स्थान में कन्दादि विद्यमान हो उसे भी ग्रहण न करे। **इच्चेयाइं**-ये पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण जो। **आयतणाई**-कर्मोपादान रूप दोष स्थान है इनको। **उवाइक्कम्म**-छोड़कर अर्थात् इनका उल्लघन करके। **अह**-अथ तदनन्तर। **भिक्खू॰**-भिक्षु-साधु। **चउहिं पडिमाहिं**-वक्ष्यमाण-आगे कही जाने वाली चार प्रतिमाओ के अनुसार। **ठाणं**-स्थान में। **ठाइत्तए**-ठहरने की। **इच्छिज्जा**-इच्छा करे। **तत्थ**-उनमे से। **इमा**-यह। **पढमा**-पहली। **पडिमा**-प्रतिमा है, यथा। **खलु**-निश्चयार्थक है। **अचित्तं**-अचित्त स्थानक मे। **उवसजिज्जा**-आश्रय लूगा और। **अवलंबिज्जा**-अचित भीत आदि का सहारा लूंगा। **काएण**-काया से। **विप्परिकम्माइ**-हाथ-पैर आदि का सकोचन प्रसारण करूंगा तथा। **सवियार**-थोड़ा सा पाद आदि का सप्रसारण-मर्यादित भूमि से बाहर पैरो को थोड़ा सा भी नहीं फैलाऊगा इस प्रकार। **ठाणं**-खड़े होकर। **ठाइस्सामि**-ठहरूंगा-अर्थात् मर्यादित भूमि में ही हाथ

आदि का संचालन एव बैठने, उठने तथा खड़े होने आदि की क्रियाए करूंगा। **पढमा पडिमा**-यह पहली प्रतिमा का स्वरूप है। **अहावरा**-इसके अतिरिक्त अन्य। **दुच्चा पडिमा**-दूसरी प्रतिमा के सम्बन्ध में कहते हैं। **अचित्तं खलु**-अचित्त स्थान में। **उवसज्जेज्जा**-आश्रय लूंगा और। **अवलंबिज्जा**-भीत आदि का अवलम्बन करूगा तथा। **काएण**-काया से। **विप्परिकम्माइ**-हाथ-पैर आदि का संकोचन प्रसारण करूगा किन्तु। **नो वियारं**-पैरो से सक्रमणादि नहीं करूगा अर्थात् भ्रमण नहीं करूंगा, इस प्रकार। **ठाणं ठाइस्सामि**-स्थान मे ठहरूगा या खड़ा रहूगा। **दुच्चा पडिमा**-यह दूसरी प्रतिमा का स्वरूप है। **अहावरा**-अब इससे भिन्न। **तच्चा पडिमा**-तीसरी प्रतिमा यह है। **खलु**-पूर्ववत्। **अचित्तं**-अचित स्थान का। **उवसज्जेज्जा**-आश्रय लूगा और। **अवलंबिज्जा**-अचित भीत आदि का सहारा लूगा किन्तु। **काएण**-काया से। **नो विपरिकम्माइ**-सकोचन प्रसारण आदि क्रियाए नहीं करूंगा। **नो सवियारं**-न पैर आदि से भूमि का सक्रमण करूगा, इस प्रकार। **ठाणं ठाइस्सामि**-स्थान मे ठहरूगा। **इति**-यह। **तच्चा पडिमा**-तीसरी प्रतिमा कही है। **अहावरा चउत्थी पडिमा**-अब चौथी प्रतिमा कहते हैं। **अचित्तं खलु**-अचित स्थान पर। **उवसज्जेज्जा**-खड़े होकर कायोत्सर्गादि करूगा। **नो अवलंबिज्जा**-अचित भीत आदि का आश्रय नहीं लूगा। **नो काएण विपरिकम्माइ**-काया से सकोचन प्रसारण नहीं करूगा और। **नो सिवियारं**-न हाथ-पैर आदि को हिलाऊगा। **इति**-इस प्रकार। **ठाण**-स्थान पर। **ठाइस्सामि**-ठहरूगा तथा। **वोसट्ठकाये**-कुछ काल के लिए काया के ममत्व भाव को त्याग कर और। **वोसट्ठकेसमसुलोमनहे**- केश, दाढी, मूछ, रोम, नख के ममत्व भाव को छोड़ कर। **वा**-अथवा। **संनिरुद्धं**-सम्यक् प्रकार से काया का निरोध करके। **इति**-इस प्रकार। **ठाणं ठाइस्सामि**-स्थान मे ठहरूगा अर्थात् यदि कोई केशादि का भी उत्पाटन करे तो भी ध्यान से विचलित नहीं होऊगा। **चउत्था पडिमा**-यह चौथी प्रतिमा का स्वरूप है। **इच्चेयासि**-इन पूर्वोक्त। **चउण्ह पडिमाण**-चार प्रतिमाओ। **जाव**-यावत् मे से। **पग्गहियतराय**-किसी एक प्रतिमा को ग्रहण करके। **विहरिज्जा**-विचरे किन्तु। **नो किंचिवि वइज्जा**-अन्य किसी मुनि की-जिसने प्रतिमा ग्रहण नहीं की-न तो निन्दा करे और न उनके विषय मे कुछ कहे। वह यह न सोचे कि मैंने उत्कृष्ट भाव से अमुक प्रतिमा ग्रहण की है अत मैं उत्कृष्ट वृत्ति वाला हूं और ये मुनि-जिन्होने प्रतिमा धारण नहीं की शिथिलाचारी है इस प्रकार न कहे। **एयं खलु**-निश्चय ही यह। **तस्स०**-उस भिक्षु का समग्राचार-सम्पूर्ण आचार है। **जाव**-यावत्। **जइज्जासि**-इस का पालन करने मे यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मैं कहता हू। **ठाणसत्तिक्कयं सम्मत्तं**-पहला स्थान सप्तक समाप्त हुआ।

_मूलार्थ_—किसी गाव या शहर में ठहरने का इच्छुक साधु-साध्वी पहले ग्रामादि मे जाकर उस स्थान को देखे, जो स्थान मकड़ी आदि के जालो से या अण्डे आदि से युक्त हो उसके मिलने पर भी उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे। शेष वर्णन शय्या अध्ययन के समान जानना चाहिए।

साधु को स्थान के दोषों को छोड़ कर स्थान की गवेषणा करनी चाहिए और उसे उक्त स्थान पर चार प्रतिमाओ के द्वारा बैठे-बैठे या खड़े होकर कायोत्सर्गादि क्रियाएं करनी चाहिएं। १-मै अपने कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान मे रहूंगा, और अचित्त भीत आदि का सहारा लूंगा, तथा हस्त पादादि का संकोचन प्रसारण भी करूंगा एवं स्तोक मात्र, पादादि से मर्यादित भूमि में भ्रमण भी करूंगा।

२-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित स्थान में ठहरूंगा, अचित्त भीत आदि का आश्रय भी लूंगा, तथा हस्त पाद आदि का संकोचन प्रसारण भी करूंगा, किन्तु पादों से भ्रमण नहीं करूंगा।

३-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूंगा, अचित्त भीत आदि का सहारा भी लूंगा, परन्तु हस्तपादादि का संकोच प्रसारण एवं पादों से भ्रमण नहीं करूंगा।

४-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित स्थान में ठहरूगा, परन्तु भीत आदि का अवलम्बन नहीं लूंगा तथा हस्त-पाद आदि का संचालन और पादों से भ्रमण आदि कार्य भी नहीं करूगा, परन्तु एक स्थान में स्थित होकर कायोत्सर्ग के द्वारा शरीर का सम्यक्तया निरोध करूगा और परिमित काल के लिए शरीर के ममत्व का परित्याग कर चुका हू अत· उक्त समय में यदि कोई मेरे केश, श्मश्रू और नख आदि का उत्पाटन करेगा तब भी मै अपने ध्यान को नहीं तोडूंगा।

इन पूर्वोक्त चार प्रतिमाओ मे से किसी एक प्रतिमा का धारक साधु अन्य किसी भी साधु की-जो प्रतिमा का धारक नहीं-अहकार में आकर अवहेलना न करे किन्तु सब मे समान भाव रखता हुआ विचरे। यही सयमशील साधु का समग्र आचार है, इस प्रकार मै कहता हूँ।

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे कायोत्सर्ग की विधि का उल्लेख किया गया है स्थान के सबन्ध मे पूर्व मे बताई गई विधि को फिर से दोहराया गया है कि साधु को अण्डे एव जालो आदि से रहित निर्दोष स्थान मे ठहरना चाहिए और उसके साथ कायोत्सर्ग के चार अभिग्रहो का भी वर्णन किया गया है।

यह स्पष्ट है कि साधु की साधना मन, वचन और काया योग का सर्वथा निरोध करने के लिए है। परन्तु, यह कार्य इतना सुगम नहीं है कि साधु शीघ्रता से इसे साध सके। अत उस स्थिति तक पहुचने के लिए कायोत्सर्ग एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा साधक सीमित समय के लिए अपने योगो को रोकने का प्रयास करता है। इसमे भी सभी साधको की शक्ति का ध्यान रखा गया है, जिससे प्रत्येक साधक सुगमता के साथ अपने लक्ष्य स्थान तक पहुचने मे सफल हो सके। इसके लिए कायोत्सर्ग करने वाले साधको के लिए चार अभिग्रह बताए गए हैं।

पहले अभिग्रह मे साधक अचित्त भूमि पर खडा होकर कायोत्सर्ग करता है, आवश्यकता पडने पर वह अचित्त दीवार का सहारा भी ले सकता है, हाथ-पैर आदि का सकुचन एव प्रसारण भी कर सकता है और थोडी देर के लिए कुछ कदम चल भी सकता है।

दूसरे अभिग्रह मे साधक कुछ आगे बढता है। अचित्त भूमि पर खडा हुआ साधक आवश्यकता पडने पर अचित्त दीवार का सहारा ले लेता है, हाथ-पैर आदि का सकुचन-प्रसारण भी कर लेता है, परन्तु वह अपने स्थान से क्षण मात्र के लिए भी चलता नहीं है। वह अपनी शारीरिक गति को रोक लेता है।

तीसरे अभिग्रह मे वह अपनी साधना मे थोडा सा और विकास करता है। अब वह हाथ-पैर आदि के सकुचन-प्रसारण आदि को रोक कर स्थिर मन से खडे रहने का प्रयत्न करता है और आवश्यकता पडने पर केवल अचित्त दीवार का सहारा लेता है।

चौथे अभिग्रह मे साधक अपनी कायोत्सर्ग साधना की चरम-सीमा पर पहुच जाता है। वह सीमित काल के लिए बिना किसी सहारे के एव बिना हाथ-पैर आदि का सचालन किए अचित्त भूमि पर स्थिर मन से खडा रहता है। वह इस क्रिया के समय अपने शरीर से सर्वथा ममत्व हटा लेता है। यदि कोई डस-मस उसे काटता है या कोई अज्ञानी व्यक्ति उसके बाल, दाढी, नख आदि उखाडता है या उसे किसी तरह का कष्ट देता है, तब भी वह अपने कायोत्सर्ग से, आत्म चिन्तन से विचलित नहीं होता है। उस समय उसके योग आत्म-चिन्तन मे इतने सलग्न हो जाते हैं कि उसे अपने शरीर पर होने वाली क्रियाओ का पता भी नहीं चलता है। वह उस समय अपने ध्यान को, चिन्तन को, अध्यवसाय को बाहर से हटा कर आत्मा के अन्दर केन्द्रित कर लेता है। अत उस समय उसकी समस्त साधना आत्म-हित के लिए होती है और निश्चय दृष्टि से उतने समय के लिए वह एक तरह से ससार से मुक्त होकर आत्म सुखो मे रमण करने लगता है और अनन्त आत्म आनन्द का अनुभव करने लगता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**सनिरुद्धं**' और '**वोसट्ठकाए**' दो पद योग साधना के मूल हैं, जिनके आधार पर उत्तर काल मे अनेक योग ग्रन्थो का निर्माण हुआ है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझनी चाहिए।

॥ अष्टम अध्ययन समाप्त॥

॥ सप्तसप्तिकाख्या द्वितीय चूला– निषीधिका॥

नवम अध्ययन

(स्वाध्याय-भूमि)

अष्टम अध्ययन मे कायोत्सर्ग का वर्णन किया गया, और प्रस्तुत अध्ययन मे स्वाध्याय पर विचार अभिव्यक्त किए गए हैं। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन का निषीधिका नाम रखा गया है। मूल पाठ मे 'निसीहिय' शब्द का प्रयोग किया गया है, सस्कृत मे इसके ''निषीधिका और निशीथिका'' दोनो रूप बनते हैं। आचाराग वृत्ति के सपादक ने इस बात को नोट मे स्पष्ट कर दिया है[1]। परन्तु, निषीधिका पद अधिक प्रसिद्ध होने के कारण यह अध्ययन 'निषीधिका' के नाम से ही प्रसिद्ध है। अत इस अध्ययन मे स्वाध्याय भूमि कैसी होनी चाहिए तथा साधक को किस तरह से स्वाध्याय मे सलग्न रहना चाहिए, इसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– से भिक्खू वा० अभिकं० निसीहियं फासुयं गमणाए, से पुण निसीहियं जाणिज्जा–सअंडं तह० अफा० नो चेइस्सामि। से भिक्खू० अभिकंखेज्जा निसीहियं गमणाए, से पुण नि० अप्पपाणं अप्पबीयं जाव संताणयं तह० निसीहियं फासुयं चेइस्सामि, एवं सिज्जागमेणं नेयव्वं जाव उदयप्पसूयाइं। जे तत्थ दुवग्गा तिवग्गा चउवग्गा पंचवग्गा वा अभिसंधारिंति निसीहियं गमणाए ते नो अन्नमन्नस्स कायं आलिंगिज्ज वा विलिंगिज्ज वा चुंबिज्ज वा दंतेहिं वा नहेहिं वा अच्छिदिज्ज वा वुच्छिं०, एवं खलु० जं सव्वट्ठेहिं सहिए समिए सया जएज्जा, सेयमिणं मन्निज्जासि त्तिबेमि॥१६४॥

छाया– स भिक्षुर्वा० अभिकां० निषीधिकां प्रासुका गन्तु [गमनाय] सः पुन. निषीधिकां जानीयात्–साण्डां तथा० अप्रा० नो चेतयिष्यामि स भि० अभिकां० निषीधिकां गन्तुं (गमनाय) स पुन) नि० अल्पप्राणां अल्पबीजां यावत् ससन्तानका तथा० निषीधिकां प्रासुकां चेतयिष्यामि। एव शय्यागमेन नेतव्यं यावत् उदकप्रसूतानि॥ ये तत्र द्विवर्गा त्रिवर्गाः चतुर्वर्गा· पञ्चवर्गा. वा अभिसन्धारयन्ति निषीधिका गन्तु (गमनाय) ते नो अन्योऽन्यस्य कायमालिगेयु वा लिंगेयु वा चुम्बेयु. वा दन्तैर्वा नखैर्वा आच्छिन्देयु. वा व्युच्छिंदेयु· वा एव तत् खलु तस्य भिक्षो २ सामग्र्य यत् सर्वार्थैः सहितः समित. सदा यतेत श्रेयं इद मन्येत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ– से भिक्खू वा २–वह साधु अथवा साध्वी। **निसीहियं**–स्वाध्याय करने के लिए उपाश्रय

---

१ निशीथनिषीधयो प्राकृते एकेन निसीहशब्देन वाच्यत्वात् एव निक्षेपवर्णन, तथा च निषीधिका निशीथिकेत्युभयमपि समतमभिधानयो । – आचाराग वृत्ति (टिप्पणी)

से अतिरिक्त। फासुयं-प्रासुक भूमि मे। गमणाए-जाने की। अभकंखे-इच्छा रखता हो तो। से-वह-भिक्षु। पुण-फिर। निसीहियं-स्वाध्याय भूमि के सम्बन्ध मे। जाणिज्जा-जाने। सअंड-जो भूमि अण्डादि से युक्त है तो। तह०-तथाप्रकार की भूमि को। अफासुयं-अप्रासुक और अनेषणीय। लाभे सते-मिलने पर। नो चेइस्सामि-गृहस्थ से कहे कि मै इस प्रकार की भूमि मे नहीं ठहरूगा।

से भिक्खू०- वह साधु या साध्वी। निसीहियं-स्वाध्याय भूमि मे। गमणाए-जाने की। अभिकंखेज्जा-इच्छा करे तो। से-वह। पुण-फिर। नि०-स्वाध्याय भूमि के सम्बन्ध मे यह जाने कि। अप्पपाण-जहा पर द्वीन्द्रियादि प्राणी नहीं है। अप्पबीयं-जहा पर बीजादि नहीं हैं। जाव-यावत्। सताणय-जाले आदि नहीं हैं। तह०-तथाप्रकार की। निसीहिय-स्वाध्याय भूमि। फासुय-प्रासुक और एषणीय मिलने पर। चेइस्सामि-ठहरूगा, इस प्रकार कहे अर्थात् वहा ठहर कर स्वाध्याय करे। एव-इस प्रकार। सिज्जागमेण-शय्या अध्ययन के अनुसार। नेयव्वं-जान लेना चाहिए। जाव-यावत्। उदयप्पसूयाइ-उदक प्रसूत कन्दादि जहा पर हो वहा न रहे।

अब सूत्रकार-जो साधु वहा पर स्वाध्याय करने के लिए गए हुए है उनके विषय में कहते हैं— जे-जो। तत्थ-वहा पर। दुवग्गा-दो साधु। तिवग्गा-तीन साधु। चउवग्गा-चार साधु। पंचवग्गा-अथवा पाच साधु। अभिसधारिंति-सन्मुख हो। निसीहिय-स्वाध्याय भूमि मे। गमणाए-जाने के लिए तैयार हो या वहा चले जाए फिर। ते-वे साधु। अन्नमन्नस्स-परस्पर एक-दूसरे के। कायं-शरीर को। नो आलिंगिज्ज वा-आलिगन न करे अथवा। विलिगिज्ज वा-जिस से मोह का उदय होता हो इस प्रकार का आलिगन न करे तथा। चुबिज्ज वा-मुख चुम्बन न करे अथवा। दतेहि वा-दातो से। नहेहि वा-नखो से। अच्छिदिज्ज वा-शरीर को परस्पर छेदन न करे। वुच्छि०-जिससे विशेष मोहानल प्रदीप्त हो इस प्रकार की पारस्परिक कुचेष्टा न करे। एवं खलु-इस प्रकार निश्चय ही। तस्स-उस। भिक्खुस्स-भिक्षु का समग्र आचार है। जाव-यावत्। ज-जो कि। सव्वट्ठेहि-सर्व अर्थों से। सहिए-सहित है। समिए-पाच समितियो से युक्त है, इस मे। सया-सदा सयम पालन करने मे। जएज्जा-यत्नशील हो तथा। सेयमिण-इस आचार का पालन करना श्रेय है-कल्याण रूप है इस प्रकार। मन्निज्जासि-माने। त्तिबेमि-इस प्रकार मै कहता हू। निसीहिया सत्तिक्कयं-निषीधिका अध्ययन समाप्त हुआ।

मूलार्थ—जो साधु या साध्वी प्रासुक अर्थात् निर्दोष स्वाध्याय भूमि मे जाना चाहे तब वह स्वाध्याय भूमि को देखे और स्वाध्याय भूमि अण्डे आदि से युक्त हो तो इस प्रकार की अप्रासुक, अनेषणीय स्वाध्याय भूमि को जान कर कहे कि मै इसमे नहीं ठहरूगा। यदि स्वाध्याय भूमि में प्राणी, बीज यावत् जाला आदि नहीं है तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जान कर कहे कि मै यहां पर ठहरूगा। शेष वर्णन शय्या अध्ययन के अनुसार जानना चाहिए। जैसे जहा पर उदक से उत्पन्न हुए कन्दादिक हों वहा पर भी न ठहरे।

उस स्वाध्याय भूमि मे गए हुए दो, तीन, चार, पाच साधु परस्पर शरीर का आलिंगन न करें, न विशेष रूप से शरीर का आलिगन करें, न मुख चुम्बन करें, दान्तो से या नखो से शरीर का छेदन भी न करे, और जिस क्रिया या चेष्टा से मोह उत्पन्न होता हो इस तरह की क्रियाए भी न करे। यही साधु और साध्वी का समग्र आचार है। जो साधु साधना के यथार्थ स्वरूप को जानता है, पांच समितियों से युक्त है और इस का पालन करने में सदा प्रयत्न शील है, वह यह माने कि इस आचार का पालन करना ही मेरे लिए कल्याण प्रद है। इस प्रकार मैं कहता हूं।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में स्वाध्याय के स्थान एव स्वाध्याय के समय चित्तवृत्ति को सयत रखने का वर्णन किया गया है। यह हम देख चुके हैं कि आत्मा को सर्व बन्धनो से मुक्त करने के लिए कायोत्सर्ग एक महान् साधन है। परन्तु, उस साधन को स्वीकार करने के लिए आत्मा एव शरीर के स्वरूप तथा सम्बन्ध को जानना भी आवश्यक है और उसके लिए सर्वोत्तम साधन स्वाध्याय है। स्वाध्याय शब्द स्व+अध्याय के सयोग से बना है। स्व का अर्थ आत्मा और अध्याय का अर्थ है अध्ययन या बोध करना। अत स्वाध्याय का अर्थ हुआ अपनी आत्मा का अध्ययन करना या आत्मा के स्वरूप को पहचानना। अस्तु, जो ज्ञान, जो चिन्तन-मनन आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करने मे सहायक होता है, उसे स्वाध्याय कहते हैं।

यह स्पष्ट है कि चिन्तन के लिए एकान्त एव निर्दोष स्थान चाहिए। क्योकि यदि स्थान सदोष है, उसमे कई प्राणियो को पीडा पहुचने की सभावना है तो चित्तवृत्ति शान्त नहीं रह सकती। जहा दूसरे प्राणियो को कष्ट होता हो वहा आत्मा पूर्ण शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता है। इसलिए हिसा को शान्ति के लिए बाधक माना गया है। और साधक को उससे सर्वथा बचकर रहने का आदेश दिया गया है। हिसा की तरह बाह्य कोलाहल भी मन को एकाग्र नहीं रहने देता। इस लिए तत्त्ववेत्ताओ ने साधक को निर्दोष एव शान्त एकान्त स्थान मे स्वाध्याय करने का आदेश दिया है।

एकान्तता जैसे योगो का निरोध करने के लिए सहायक है, वैसे भोगो की वृत्ति को उच्छृखल बनाने मे भी उसका सहयोग रहता है। योगी और भोगी, वैरागी और रागी दोनो को एकान्त स्थान की आवश्यकता रहती है। एकान्त स्थान मे ही मन साधना की ओर भली-भाति प्रवृत्त हो सकता है और विषय विकारों की अभिलाषाओ को पूरा करने के लिए भी मनुष्य एकात स्थान ढूढता है। क्योकि लोगो के सामने उसे अपनी वासना को तृप्त करने मे लज्जा अनुभव होती है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत सूत्र मे साधक को यह शिक्षा दी गई है कि वह उस एकात-शात स्थान का उपयोग मोह कर्म को बढाने मे न करे। उसे अपने साथी साधको के साथ पारस्परिक शारीरिक एव मुख आदि का आलिगन आदि कुचेष्टाए नहीं करनी चाहिए। और न अपने नाखून एव दान्तो से किसी के शरीर का स्पर्श करना चाहिए जिससे कि वासना की जागृति हो। साधु को उस एकात स्थान मे योगो की प्रवृत्ति को उच्छृखल बनाने की चेष्टा न करते हुए योगो को अन्य समस्त प्रवृत्तियो से हटा कर आत्मा की ओर मोडने का प्रयत्न करना चाहिए। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन विद्यार्थी मुनियो के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि साधक को अपने योगो को अन्य प्रवृत्तियो से हटाकर आत्म साधना की ओर लगाना चाहिए, और इसके लिए उसे सर्वथा निर्दोष, प्रासुक एव शान्त-एकान्त स्थान मे स्वाध्याय करना चाहिए।

'**त्तिबेमि**' का अर्थ पूर्ववत् समझे।

॥ नवम अध्ययन समाप्त॥

दशम अध्ययन

(उच्चार प्रस्रवण)

नवम अध्ययन मे निषीधिका-स्वाध्याय का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन मे यह बताया गया है कि स्वाध्याय भूमि मे ठहरे हुए साधक को उच्चार-प्रस्रवण की बाधा हो जाए तो उसे मल-मूत्र को कैसे स्थान पर परिष्ठापन करना (त्यागना) चाहिए। इसी कारण इसे उच्चार-प्रस्रवण अध्ययन भी कहते हैं। मल-मूत्र के त्याग की विधि का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है।

मूलम्- से भि० उच्चारपासवणकिरियाए उब्बाहिज्जमाणे सयस्स पायपुंछणस्स असईए तओ पच्छा साहम्मियं जाइज्जा। से भि० से जं पु० थंडिल्लं जाणिज्जा-सअंडं० तह० थंडिल्लंसि नो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा। से भि० जं पुण थं० अप्पपाणं जाव संताणयं तह० थं० उच्चा० वोसिरिज्जा। से भि० से जं० अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स वा अस्सिं० बहवे साहम्मिया स० अस्सिं प० एगं साहम्मिणिं स० अस्सिंप० बहवे साहम्मिणीओ स० अस्सिं० बहवे समण० पगणिय २ समु० पाणाइं ४ जाव उद्देसियं चेएइ, तह० थंडिल्लं पुरिसंतरकडं जाव बहिया नीहडं वा अनी० अन्नयरंसि वा तहप्पगारंसि थं० उच्चारं नो वोसि०। से भि० से जं० बहवे समणमा० कि० ब० अतिहीसमुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं जाव उद्देसिय चेएइ, तह० थंडिलं पुरिसंतरगडं जाव बहिया अनीहडं अन्नयरंसि वा तह० थंडिल्लंसि नो उच्चारपासवणं०, अह पुण एवं जाणिज्जा-अपुरिसंतरगडं जाव बहिया नीहडं अन्नयरंसि वा तहप्पगारं० थं० उच्चार० वोसि०। से० जं० अस्सिंपडियाए कयं वा कारियं वा पामिच्चियं वा छन्नं वा घट्ठं वा मट्ठं वा लित्तं वा संमट्ठं वा संपधूपियं वा अन्नयरंसि वा तह० थडि० नो उ०। से भि० से जं पुण थं० जाणेज्जा, इह खलु गाहावई वा गाहा० पुत्ता वा कंदाणि वा जाव हरियाणि वा अंतराओ वा बाहिं नीहरंति बहियाओ वा अंतो साहरंति अन्नयरंसि वा तह० थं० नो उच्चा०। से भि० से जं पुण० जाणेज्जा-खंधंसि वा

पीढंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा अट्टंसि वा पासायंसि वा अन्नयरंसि वा० थं० नो उ०। से भि० से जं पुण० अणंतरहियाए पुढवीए ससिणिद्धाए पु० ससरक्खाए पु० मट्टियाए मक्कडाए चित्तमंत्ताए सिलाए चित्तमंत्ताए लेलुयाए कोलावासंसि वा दारुयंसि वा जीवपइट्ठियंसि वा जाव मक्कडासंताणयंसि अन्न० तह० थं० नो उ०।१६५।

छाया– स भिक्षुर्वा० उच्चारप्रस्त्रवणक्रियया बाध्यमान· स्वकीयस्य पादपुञ्छनस्य अस्वकीयः (अस्वकीयस्य) ततः पश्चात् साधर्मिक याचेत। स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः स्थडिल जानीयात्- साण्ड० तथा० स्थंडिले नो उच्चारप्रस्त्रवणं वयुत्सृजेत्॥ स भिक्षुर्वा० यत् पुनः स्थं० अल्पप्राण यावत् ससन्तानकं तथा० स्थ० उच्चार० व्युत्सृजेत्।

स भिक्षुर्वा० स यत्० अस्वप्रतिज्ञया एकं साधर्मिकं समुद्दिश्य वा अस्व० बहून् साधर्मिकान् स० अस्वप्रतिज्ञया एकां साधर्मिणीं स० अस्वप्र० बह्वीः साधर्मिणीः स० अस्व० बहून् श्रमण० प्रगणय्य २ स० प्राणानि ४ यावत् औद्देशिकं चेतयति, तथा० स्थंडिल पुरुषान्तरकृतं यावत् बहिः नीतं वा अनीतं वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थं० उच्चार० नो व्युत्सृ०॥ स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः० बहून् श्रमण-ब्राह्मण-कृपण-वनीपकातिथीन् समुद्दिश्य प्राणानि भूतानि जीवान् सत्त्वानि यावत् औद्देशिकं चेतयति, तथा० स्थंडिलं पुरुषान्तरकृतं यावत् बहि· अनीतं अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्त्रवणं०॥ अथ पुनरेवं जानीयात्-अपुरुषान्तरकृतं यावत् बहिः नीत वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थडिले उच्चार० व्यु०॥ स भिक्षुर्वा यत्० अस्वप्रतिज्ञया कृतं वा कारित वा प्रामित्यं वा छिन्नं वा घृष्टं वा मृष्टं वा लिप्तं वा समृष्ट वा संप्रधूपित वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थं० नो उ०। स भिक्षुर्वा० स यत् पुन. स्थ० जानीयात् इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रा वा कन्दानि वा यावत् हरितानि वा अभ्यन्तरत. वा बहिर्वा निष्काशयंति, बहितो वा अभ्यन्तरे समाहरन्ति अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थं० नो उच्चार०॥ स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः स्थं० जानीयात् स्कन्धे वा पीठे वा मंचे वा माले वा अट्टे वा प्रासादे वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थ० नो उच्चार०॥ स भिक्षुर्वा स यत् पुनः अनन्तरहितायां पृथिव्यां सस्निग्धायां पृथिव्यां सरजस्कायां पृथिव्यां मृत्तिकाया मर्कटायां चितवत्यां शिलायां चित्तवति लेष्टौ घुणावासे वा दारुके वा जीवप्रतिष्ठे वा यावत् मर्कटासन्ताने अन्यतरस्मिन् तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्त्रवणं व्युत्सृजेत्।

पदार्थ– से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। उच्चारपासवणकिरियाए-मल-मूत्र की बाधा से। उब्बाहिज्जमाणे-पीड़ित होता हुआ। सयस्स-स्वकीय-अपने। पायपुंछणस्स-मूत्र आदि परठने वाले पात्र के। असईए-न होने पर। तओ पच्छा-तत्पश्चात्। साहम्मियं-साधर्मिक साधु से पात्र की। जाइज्जा-याचना करे, जिसके द्वारा मल मूत्र की बाधा को टाल सके। इससे यह सिद्ध होता है कि साधु मल-मूत्र के वेग को रोके नहीं। अब

सूत्रकार मलमूत्र के परिष्ठापन के विषय मे कहते हैं। से भि॰-वह साधु या साध्वी। से जं-वह जो। पुण-फिर। थंडिल्लं-स्थडिल भूमि को। जाणिज्जा-जाने। सअंडं-अडों से तथा द्वीन्द्रियादि प्राणियो से युक्त भूमि पर। जाव-यावत् मकड़ी आदि के जालों से युक्त भूमि पर। तह॰-तथाप्रकार के। थंडिलंसि-स्थंडिल में। उच्चारपासवणं-मल-मूत्र का। नो वोसिरिज्जा-व्युत्सर्ग-त्याग न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। से जं-वह जो। पुण-पुन । थंडिल्लं-स्थंडिल के सम्बन्ध मे। जाणिज्जा-जाने। अप्पपाण-जो अण्डे एव द्वीन्द्रियादि जीवों से रहित हो। जाव-यावत्। सताणयं-जालो से रहित हो। तह॰-तथाप्रकार के। थं॰-स्थंडिल मे। उच्चा॰-मलमूत्र का। वोसिरिज्जा-व्युत्सर्ग-त्याग करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। से जं पुण-वह जो फिर जाने। अस्सिंपडियाए साधु की प्रतिज्ञा से। एगं साहम्मियं-एक साधर्मी का। समुद्दिस्स-उद्देश रखकर। वा-अथवा। अस्सिंपडियाए-साधु की प्रतिज्ञा से। बहवे-बहुत से। साहम्मिया-साधर्मियो का। समु॰-उद्देश रखकर तथा। अस्सिंपडि॰-जिन्होने धन का परित्याग किया हुआ है, उन साधुओ की प्रतिज्ञा से। एगं साहम्मिणि-एक आर्या का। समु॰-उद्देश रखकर। अस्सिंपडियाए॰-आर्या की प्रतिज्ञा से। बहवे साहम्मिणीओ-बहुत सी साध्वियों का। समु॰-उद्देश रखकर। अस्सिपडि॰-समान भिक्षुओ का उद्देश रखकर तथा। बहवे-बहुत से। समणमाहण॰-श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, भिखारी और गरीबो को। पगणिय २-गिन २ कर। समु॰-तथा उनके उद्देश से। पाणाइं ४-प्राणि आदि जीवो का विनाश करके। जाव-यावत्। उद्देसियं-औद्देशिक स्थडिल, साधु को। चेएइ-देता है तो। तह॰-तथाप्रकार का। थंडिल्लं-स्थडिल, जो कि। पुरिसंतरकड-पुरुषान्तर कृत है तथा। अपुरिसतरकडं-अपुरुषान्तर कृत। जाव-यावत्। बहिया नीहडं-बाहर निकाला हुआ है। वा-अथवा। अनी॰-नहीं निकाला हुआ है अर्थात् भोगा हुआ है या भोगा हुआ नहीं है। अन्नयरंसि वा-अथवा अन्य कोई सदोष स्थडिल हो। तहप्पगारंसि-तथाप्रकार के। थं॰-स्थडिल मे। उच्चारं॰-मल-मूत्र को। नो वोसि॰-न परठे-त्यागे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी, से जं॰-वह जो फिर स्थंडिल को जाने, यावत्। बहवे -बहुत से। समणमाहण॰-शाक्यादि श्रमण ब्राह्मण। कि॰-कृपण। व॰-भिखारी एवं। अतिहि-अतिथियो का। समुद्दिस्स-उदेश्य रख कर। पाणाइं-प्राणी। भूयाइं-भूत। जीवाइ-जीव। सत्ताइं-सत्वो का विनाश करके। जाव-यावत्। उद्देसियं-औद्देशिक स्थडिल साधु को। चेएइ-देता है। तह॰-तथाप्रकार का। थंडिल्लं-स्थडिल। अपुरिसंतरकड-अपुरुषान्तर कृत है। जाव-यावत्। बहिया अनीहडं-बाहर निकाला हुआ नहीं है अर्थात् भोगा हुआ नहीं है या। अन्नयरसि वा-अन्य इसी प्रकार का सदोष स्थंडिल है तो। तह॰-तथाप्रकार के। थंडिलंसि-स्थडिल मे। नो उच्चारपासवणं॰-मल-मूत्र का त्याग न करे। अह-अथ। पुण-फिर। एवं-इस प्रकार। जाणिज्जा-जाने कि यदि वह। पुरिसंतरगडं-पुरुषान्तर कृत है। जाव-यावत्। बहिया नीहडं-किसी के द्वारा भोगा हुआ है। अन्नयरसि वा-इसी प्रकार का अन्य कोई निर्दोष स्थंडिल है तो। तहप्पगारं-तथा प्रकार के। थं॰-स्थंडिल में। उच्चार॰-मलमूत्र का वोसि॰-त्याग करे।

से भि॰-वह साधु अथवा साध्वी। से जं-वह जो फिर स्थंडिल को जाने। अस्सिंपडियाए-किसी गृहस्थ ने साधु के लिए। कयं वा-स्थंडिल किया अथवा। कारियं वा-कराया अथवा। पामिच्चियं वा-उधार लिया हो अथवा। छन्न वा-उसके ऊपर छत डाली हो। घट्ठं वा-संवारा हो। मट्ठं वा-विशेष रूप से सवारा हो। लित्त वा-लीपा-पोता हो या। संमट्ठं वा-समतल किया हो तथा। संपधूमियं वा-दुर्गन्ध दूर करने के लिए धूप

से सुवासित किया हो। **अन्नयरसि वा**-इस तरह का अन्य कोई सदोष स्थंडिल हो तो। **तह०**-तथाप्रकार के। **थंडि०**-स्थंडिल मे। **नो उ०**-मल-मूत्र को न परठे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज०**-वह जो। **पुण**-फिर। **थं०**-स्थंडिल को। **जाणेज्जा**-जाने, यथा। **इह खलु**-निश्चय ही इस संसार मे। **गाहावई**-गृहपति। **वा**-अथवा। **गाहा० पुत्ता**-गृहपति के पुत्र साधु के वास्ते। **कंदाणि वा**-कन्द अथवा। **जाव**-यावत्। **हरियाणि वा**-हरी वनस्पति इन को। **अंतराओ वा**-अन्दर से। **बाहिं**-बाहर। **नीहरंति**-निकालते है अथवा। **बहियाओ**-बाहर से। **अंतो**-अंदर। **साहरंति**-रखते हैं अथवा। **अन्नयरंसि**-अन्य कोई इसी प्रकार का सदोष स्थडिल है तो। **तह० थ०**-तथाप्रकार के स्थंडिल मे। **नो उच्चा०**-मल-मूत्र का परित्याग न करे।

से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। **से जं**-वह जो। **पुण०**-फिर स्थडिल को। **जाणेज्जा**-जाने। **खंधसि वा**-एक स्तम्भ पर स्थडिल भूमि हो, अथवा स्तम्भो पर हो। **पीढसि वा**-पीठ पर हो अथवा। **मचंसि वा**-मच पर। **मालसि वा**-माले पर। **अट्टसि वा**-अटारी पर। **पासायंसि वा**-प्रासाद पर अथवा इसी प्रकार के। **अन्नयरसि वा**-किसी अन्य स्थान पर हो तो। **तह०**-तथाप्रकार के स्थडिल पर। **नो उ०**-उच्चार प्रस्त्रवण-मल मूत्र का परित्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज**-वह जो। **पुण**-फिर स्थडिल को जाने। **अणंतरहियाए पुढवीए**-सचित्त पृथ्वी पर। **ससिणिद्धाए पु०**-स्निग्ध-गीली पृथ्वी पर। **ससरक्खाए पु०**-सचित्तरज युक्त पृथ्वी पर तथा। **मट्टियाए**-कच्ची मिट्टी से युक्त पृथ्वी पर या। **मक्कडाए**-जहा पर सचित्त मिट्टी का काम किया हुआ हो अर्थात् सचित्त मिट्टी मसली हुई हो या। **चित्तमताए**-सचित्त। **सिलाए**-शिला पर। **चित्तमंताए लेलुयाए**-सचित्त शिला के टुकड़े पर। **कोलावासंसि वा**-जहा पर घुण आदि जीव हो अथवा। **दारुयंसि**-काठ पर अथवा। **जीवपइट्ठियसि वा**-जहा पर जीव रहते हैं। **जाव**-यावत्। **मक्कडासंताणयंसि**-मकड़ी के जालो से युक्त स्थान पर या। **अन्न०**-इस प्रकार अन्य कोई स्थान हो तो। **तह०**-तथाप्रकार के। **थं०**-स्थडिल पर। **नो उ०**-मल मूत्रादि का परित्याग न करे।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी उच्चार प्रस्त्रवण मलमूत्र की बाधा हो तो स्वकीय पात्र मे उससे निवृत्त होकर मूत्रादि को परठ दे। यदि स्वकीय पात्र न हो तो अन्य साधर्मी साधु से पात्र की याचना करके उसमें अपनी बाधा का निवारण करके परठ दे, किन्तु मल-मूत्र का कभी भी निरोध न करे। परन्तु अण्डादि जीवो से युक्त स्थान पर मल-मूत्रादि न परठे-त्यागे। जो भूमि द्वीन्द्रियादि जीवो से रहित है, उस भूमि पर मल-मूत्र का त्याग करे।**

यदि किसी गृहस्थ ने एक साधु या बहुत साधुओ का उद्देश रखकर स्थण्डिल बनाया हो अथवा एक साध्वी या बहुत सी साध्वियों का उद्देश रखकर स्थण्डिल बनाया हो अथवा बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, भिखारी एवं गरीबों को गिन-गिन कर उनके लिए प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसा करके स्थण्डिल भूमि को तैयार किया हो तो इस प्रकार का स्थण्डिल पुरुषान्तर कृत हो या अपुरुषान्तर कृत हो किसी अन्य के द्वारा भोगा गया हो या न भोगा गया हो, उसमें साधु-साध्वी मलमूत्र का परित्याग न करे।

यदि किसी गृहस्थ ने श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, वनीपक-भिखारी, अतिथियों का निमित्त

रखकर प्राणी, भूत, जीव, सत्वों की हिंसा करके स्थंडिल बनाया हो तो इस प्रकार का स्थण्डिल, जब तक वह अपुरुषान्तर कृत है अर्थात् किसी के भोगने में नहीं आया है तब तक इस प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र का परित्याग न करे। यदि इस प्रकार जान ले कि यह पुरुषान्तर कृत है या अन्य के द्वारा भोगा हुआ है तो इस प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र का त्याग कर सकता है।

यदि साधु या साध्वी इस प्रकार जान ले कि गृहस्थ ने साधु की प्रतिज्ञा से स्थण्डिल बनाया या बनवाया है, उधार लिया है, उस पर छत डाली है, उसे सम किया है और संवारा है तथा धूप से सुगंधित किया है तो इस प्रकार के स्थण्डिल मे मल-मूत्र का त्याग न करे।

यदि साधु इस प्रकार जाने कि गृहपति या उसके पुत्र कन्द मूल और हरि आदि पदार्थों को भीतर से बाहर और बाहर से भीतर ले जाते या रखते हैं, तो इस प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्रादि न परठे।

यदि साधु इस प्रकार जाने कि यह स्थण्डिल भूमि स्तम्भ पर है, पीठ पर है, मंच पर है, माले पर है तथा अटारी और प्रासाद पर है अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य विषम स्थान पर है तो इस प्रकार की स्थण्डिल भूमि पर मल-मूत्र का परित्याग न करे। तथा सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध-गीली पृथ्वी पर, सचित्त रज से युक्त पृथ्वी पर, जहा पर सचित्त मिट्टी मसली गई हो ऐसी पृथ्वी पर, सचित्त शिला पर, सचित्तशिला खंड पर, घुण युक्त काष्ठ पर, द्वीन्द्रियादि जीव युक्त काष्ठ पर, यावत् मकड़ी के जाला आदि से युक्त भूमि पर मल-मूत्रादि न परठे।

हिन्दी विवेचन-- प्रस्तुत सूत्र मे उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करने की विधि बताई गई है। मल और मूत्र को क्रमश· उच्चार और प्रस्रवण कहते हैं। साधु को कभी भी इनका निरोध नहीं करना चाहिए। क्योकि इनके निरोध से शरीर मे अनेक व्याधिया एव भयकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं, जिनके कारण आध्यात्मिक साधना मे रुकावट पड सकती है। इसलिए साधु को यह आदेश दिया गया है कि वह अपने मल-मूत्र का त्याग करने के पात्र मे उसकी बाधा को निवारण कर ले। यदि किसी समय उसके पास अपना पात्र नहीं है तो उसे चाहिए कि अपने साधर्मिक साधु से उसकी याचना कर ले। परन्तु, मल-मूत्र को रोक कर न रखे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि साधु को मल-मूत्र का त्याग करने के लिए एक अलग पात्र रखना चाहिए, जिसे मात्रक या समाधि भी कहते हैं।

साधु को ऐसे स्थान पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए, जो हरियाली से, बीजो से, निगोद काय से, क्षुद्र जीव-जन्तुओ से युक्त हो या सचित्त हो, गीला हो, सचित्त मिट्टी वाला हो तथा सचित्त शिला एव शिला खण्ड पर हो। इसके अतिरिक्त साधु को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो मल-मूत्र त्यागने का स्थान एक या अनेक साधु-साध्वियो को उद्देश्य मे रखकर तथा श्रमण-ब्राह्मणो के साथ भी जैन श्रमणो को लक्ष्य मे रखकर बनाया गया हो तो उस स्थान मे भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए, चाहे वह स्थान पुरुषान्तरकृत भी क्यो न हो। यदि वह स्थान केवल अन्य मत के श्रमण-ब्राह्मणो के लिए बनाया गया है तो पुरुषान्तरकृत होने पर साधु उस स्थान मे मल-मूत्र का त्याग कर सकता है।

जो स्थान अन्तरिक्ष मे हो अर्थात् मच, स्तभ आदि पर हो तो ऐसे स्थानो पर भी मल-मूत्र का

त्याग नहीं करना चाहिए। मार्ग की विषमता के कारण ही ऐसे स्थानो पर परठने का निषेध किया गया है, जैसे कि पूर्व के अध्ययनो मे ऐसे स्थानो पर हाथ-पैर आदि धोने एव वस्त्र आदि सुखाने का निषेध किया गया है। अत॰ यदि ऊपर के स्थानो पर जाने का मार्ग प्रशस्त हो, जीवो की विराधना न होती हो तो साधु उन स्थानो का उपभोग भी कर सकता है।

जिस स्थान से कन्द-मूल आदि भीतर से बाहर एव बाहर से भीतर लाए जा रहे हो तो ऐसे स्थान पर भी साधु को मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि सभवत यह क्रिया स्थान को परठने योग्य बनाने के लिए की जा रही हो, अत॰ साधु को ऐसे स्थान का भी परठने के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए।

जिस स्थान पर साधु के उद्देश्य से कोई विशेष क्रियाए की गई हो, जैसे- स्थान को सम बनाया गया हो, छायादार बनाया गया हो, सुवासित बनाया गया हो, तो जब तक ये स्थान पुरुषान्तर कृत न हो जाए तब तक साधु को उनका उपयोग नहीं करना चाहिए।

इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को सचित्त, जीव-जन्तु एव हरियाली युक्त तथा सदोष भूमि पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। उसे सदा अचित्त जीव-जन्तु आदि से रहित, निर्दोष एव प्रासुक भूमि पर ही मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भि॰ से जं॰ जाणे॰- इह खलु गाहावई वा गाहावइपुत्ता वा कंदाणि वा जाव बीयाणि वा परिसाडिंसु वा परिसाडिंति वा परिसाडिस्संति वा, अन्न॰ तह॰ नो उ॰॥ से भि॰ से जं॰ इह खलु गाहावई वा गा॰ पुत्ता वा सालीणि वा वीहीणि वा मुग्गाणि वा मासाणि वा कुलत्थाणि वा जवाणि वा जवजवाणि वा पइरिंसु वा पइरिंति वा पइरिस्संति वा अन्नयरंसि वा तह॰ थंडि॰ नो उ॰॥ से भि॰ २ जं॰ आमोयाणि वा घासाणि वा भिलुयाणि वा विज्जलयाणि वा खाणुयाणि वा कडयाणि वा पगडाणि वा दरीणि वा पडुग्गाणि वा समाणि वा विसमाणि वा अन्नयरंसि तह॰ नो उ॰॥ से भिक्खू॰ से जं॰ पुण थंडिल्लं जाणिज्जा माणुसरंधणाणि वा महिसकरणाणि वा वसहक॰ अस्सक॰ कुक्कुडक॰ मक्कडक॰ हयक॰ लावयक॰ चट्टयक॰ तित्तिरक॰ कवोयक॰ कविंजलकरणाणि वा अन्नयरंसि वा तह॰ नो उ॰॥ से भि॰ से जं॰ जाणे॰ वेहाणसट्ठाणेसु वा गिद्धपट्ठा॰ वा तरुपडणट्ठाणेसु वा॰ मेरुपडणट्ठाणेसु वा॰ विसभक्खणयठा॰ अगणिपडणट्ठा॰ अन्नयरंसि वा तह॰ नो उ॰॥ से भि॰ से जं॰ आरामाणि वा उज्जाणाणि वा वणाणि वा वणसंडाणि वा देवकुलाणि वा सभाणि वा पवाणि वा अन्न॰ तह॰ नो उ॰॥ से भि॰ से जं॰ पुण॰ जा॰ अट्टालयाणि वा चरियाणि वा

दाराणि वा गोपुराणि वा अन्नयरंसि वा तह० थं० नो उ०। से भि० से जं० जाणे० तिगाणि वा चउक्काणि वा चच्चराणि वा चउम्मुहाणि वा अन्नयरंसि वा तह० नो उ०॥ से भि० से जं० जाणे० इंगालदाहेसु वा खारदाहेसु वा मडयदाहेसु वा मडयथूभियासु वा, मडयचेइएसु वा अन्नयरंसि वा तह० थं० नो उ०॥ से जं जाणे० नइयायतणेसु वा पंकाययणेसु वा ओघाययणेसु वा सेयणवहंसि वा अन्नयरंसि वा तह० थं० नो उ०। से भि० से जं जाणे० नवियासु वा मट्टियखाणियासु वा नवियासु गोप्पहेलियासु वा गवाणीसु वा खाणीसु वा अन्नयरंसि वा तह० थं० नो उ०॥ से जं जा० डागवच्चंसि वा सागव० मूलग० हत्थंकरवच्चंसि वा अन्नयरंसि वा तह० नो उ० वो०॥ से भि० से जं असणवणंसि वा सणव० धायइव० केयइवणंसि वा अम्बव० असोगव० नागव० पुन्नागव० चुल्लागव० अन्नयरेसु तह० पत्तोवेएसु वा पुप्फोवेएसु वा फलोवेएसु वा बीओवेएसु वा हरिओवेएसु वा नो उ० वो०॥१६६॥

छाया– स भिक्षुर्वा० स यत् पुनः जानीयात् इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रा वा, कन्दानि वा यावत् बीजानि वा परिशाटितवन्त परिशाटयन्ति, परिशाटयिष्यन्ति वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्त्रवणं व्युत्सृजेत्॥ स भि० वा स यत् पुन. जानीयात् इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रा वा शालीन् वा व्रीहीन् वा मुद्गान् वा माषान् वा कुलत्थानि वा यवान् वा यवयवान् वा उप्तवन्तो वा वपन्ति वा वप्स्यन्ति वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्त्रवणं व्युत्सृजेत्। स भि० स यत् पुनः एवं जानीयात् आमोकानि (कचवरपुञ्जा.) वा घासाः (बृहत्यो भूमिराजय.) वा भिलुकानि [श्लक्ष्णभूमिराजयः] वा विज्जलानि वा स्थाणवो वा कडवानि वा प्रगर्त्ता वा दरयो वा प्रदुर्गाणि वा समानि वा विषमाणि वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले वा नो उच्चारप्रस्त्रवणं व्युत्सृजेत्॥ स भि० स यत् पुन स्थ० जानीयात् मानुषरन्धनानि वा महिषकरणानि वा वृषभक० अश्वक० कुक्कुटक० मर्कटक० हयक० लावकक० चटकक० तित्तरिक० कपोतक० कपिजलक० अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थ० उ० प्रस्त्रवणं नो व्यु०॥ स भि० स यत् पुन. जानीयात् वेहानसस्थानेषु वा गृध्रपृष्ठस्थानेषु वा तरुपतनस्थानेषुवा० मेरुपतनस्थानेषु वा विषभक्षणस्थानेषु वा अग्निपतनस्थानेषु वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थ० नो उ० व्युत्सृजेत्। स भि० स यत् पुन. एवं जानीयात् आरामेषु वा उद्यानेषु वा वनेषु वा वनषंडेषु वा देवकुलेषु वा सभासु वा प्रपासु वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थं० नो उ० व्यु०॥ स भि० स यत् पुन. एवं स्थं० जानीयात् अट्टालिकेषु वा चरिकेषु वा द्वारेषु वा गोपुरेषु वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थ० नो उ० व्यु०। स भि० स यत् पुनः एवं स्थं० जानीयात्

त्रिकेषु वा चतुष्केषु वा चत्वरेषु चतुर्मुखेषु वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थं० नो उ० व्यु०॥ स भि० स यत् पुनः एवं स्थं० जानीयात् अंगारदाहेषु वा क्षारदाहेषु वा मृतकदाहेषु वा मृतकस्तूपिकासु वा मृतकचैत्येषु वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थं० नो उ० व्यु०॥ स भि० स यत् पुन एवं स्थं० जानीयात् नद्यायतनेषु वा पंकायतनेषु वा ओघायतनेषु वा सेचनपथे वा अन्यतरस्मिन् वा तथा० स्थं० नो उ० व्युत्सृजेत्। स भि० स यत् पुन· एव स्थं० जानीयात् नवासु वा मृत्तखानिषु वा नवासु गोप्रहेल्यासु वा गवादनीषु वा खनीषु वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्रवणं व्यु०। स भि० स यत् पुनः एवं स्थं० जानीयात् डालवर्चसि वा शाकवर्चसि वा मूलकवर्चसि वा हस्तंकरवर्चसि वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थंडिले नो उच्चारप्रस्रवणं व्युत्सृजेत्॥ स भि० स यत् पुन. स्थ० जानीयात् अशनवने वा शणवने वा धातकीवने वा केतकीवने वा आम्रवने अशोकवने वा नागवने वा पुन्नागवने वा चुल्लगवने वा अन्यतरेषु वा तथाप्रकारेषु स्थडिलेषु वा पत्रोपेतेषु वा पुष्पोपेतेषु वा फलोपेतेषु वा बीजोपेतेषु वा हरितोपेतेषु वा नो उ० व्यु०।

पदार्थ– **से भि०**–वह साधु अथवा साध्वी। **से जं०**–वह जो फिर। **थडिल्ल जाणेज्जा**–स्थडिल के सम्बन्ध मे जाने। **खलु**–निश्चय। **इह**–इस ससार मे। **गाहावई वा**–गृहपति। **गाहावइपुत्ता वा**–या गृहपति के पुत्र ने। **कदाणि वा**–कद मूल आदि। **जाव**–यावत्। **बीयाणि वा**–बीज आदि। **परिसाडिसु वा**–भूतकाल मे रखे थे। **परिसाडिंति**–वर्तमान काल मे रखते है। **परिसाडिस्सति वा**–और आगामी काल मे रखेगे। **अन्नयरसि वा**–अथवा अन्य कोई। **तह०**–तथाप्रकार के स्थडिल मे। **नो उ०**–उच्चार प्रस्रवण का परित्याग न करे-परठे नहीं।

से भि०–वह साधु या साध्वी। **से ज पुण थ० जाणे०**–वह पुन स्थडिल के सम्बन्ध मे जाने। **इह खलु**–निश्चय ही इस ससार मे। **गाहावई वा**–गृहपति या। **गा० पुत्ता वा**–गृहपति के पुत्र ने। **सालीणि**–शाली-धान्य। **वा**–अथवा। **वीहीणि वा**–व्रीहि-धान्य विशेष। **मुग्गाणि वा**–मूग। **मासाणि वा**–उड़द। **कुलत्थाणि वा**–कुलत्थ पहाड़ी प्रदेश मे उत्पन्न होने वाले धान्य विशेष तथा। **जवाणि वा**–यव अथवा। **जवजवाणि वा**–मोटे यव या ज्वार आदि को। **पइरिंसु वा**–भूतकाल मे वपन किया है। **पइरिंति वा**–अथवा वर्तमान काल में बो रहा है। **पइरिस्सति वा**–या भविष्यत् काल मे बोएगा। **अन्नयरसि**–अथवा अन्य कोई ऐसी क्रिया करता है। **तह०**–तथाप्रकार के। **थंडि०**–स्थडिल मे। **नो उ०**–उच्चार प्रस्रवण का व्युत्सर्ग न करे। **से भि०**–वह साधु या साध्वी। **से जं०**–वह पुन स्थडिल के सम्बन्ध मे जाने कि। **आमोयाणि वा**–जहा पर कचरे का ढेर लगा हो। **घासाणि वा**–भूमि पर बड़ी-बड़ी दरारे पड़ी हुई हो। **भिलुयाणि वा**–भूमि पर सूक्ष्म रेखाए पड़ी हुई हो। **विज्जुलयाणि वा**–या कीचड़ हो। **खाणुयाणि वा**–स्तम्भ और कीलकादि गाड़े हुए हो या। **कडयाणि वा**–इक्षु आदि के डडे पड़े हो। **पगडाणि वा**–बड़े एव गहरे खड्डे हों। **दरीणि वा**–अथवा गुफाए हो। **पदुग्गाणि वा**–किले की दीवार हो। **समाणि वा विसमाणि वा**–पूर्वोक्त स्थान सम हो अथवा विषम हो या। **अन्नयरंसि**–ऐसा ही अन्य कोई स्थान हो तो। **तह०**–तथाप्रकार के स्थडिल मे। **नो उ०**–मल मूत्र आदि का त्याग न करे।

से भि०–वह साधु या साध्वी। **से जं पुण**–वह पुन । **थंडिल्लं जाणिज्जा**–स्थंडिल के सम्बन्ध मे जाने कि। **माणुसरंधणाणि वा**–जहा भोजन तैयार करने के लिए चूल्हा या भट्ठी आदि हो या। **महिसकरणाणि वा**–जहां पर भैंस को रखने एव बान्धने का स्थान हो इसी प्रकार। **वसहक०**–वृषभ आदि के लिए स्थान हो या।

अस्सक०-घोड़ो को बान्धने का स्थान हो या। **कुक्कुडक०**-मुर्गे कुक्कुड़ को रखने की जगह हो या। **मक्कडक०**-बन्दर को रखने का स्थान हो या। **गयक०**-हाथी को बाधने का स्थान हो या। **लावयक०**-लावक पक्षी को रखने का स्थान हो या। **चट्टयक०**-चटक-चिड़िया को रखने का स्थान हो या। **तित्तिरक०**-तित्तर को रखने का स्थान हो या। **कवोयक०**-कपोत-कबूतर को रखने का स्थान हो या। **कविंजलकरणाणि वा**-कपिजल (जीव विशेष) को रखने का स्थान। अर्थात् इन पूर्वोक्त जीवो के रहने के जो स्थान हो तथा इन जीवो का उद्देश्य रखकर जहा पर इनके लिए उक्त क्रियाए की जाती हो अथवा। **अन्नयरंसि वा**-अन्य इसी प्रकार के स्थान हो तो उन स्थानो मे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज० जाणेज्जा**-वह पुन स्थडिल के सम्बन्ध मे जाने कि। **बेहाणसट्ठाणेसु वा०**-जहा पर मनुष्य फासी लेते हो उन स्थानो मे। **गिद्धपट्ठठा० वा**-जहा पर मरने की इच्छा से गृधादि पक्षियो के स्थान पर शरीर को रुधिर से ससृष्ट करके लेट जाते हो ऐसे स्थानो मे। **तरुपडणट्ठाणेसु वा०**-जहा वृक्ष से गिर कर या। **मेरुपडणठा०**-पर्वत से गिर कर मरते हो ऐसे स्थानो मे या। **विसभक्खणयठा०**-जहा पर लोग विष भक्षण कर आत्म हत्या करते हो उन स्थानो मे या। **अगणिपडणट्ठा०**-जहा पर लोग आग मे कूद कर मरते हो उन स्थानो मे या। **अन्नयरंसि वा**-ऐसा अन्य कोई स्थान हो तो। **तह०**-तथाप्रकार के स्थानो मे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से जं०**-वह पुन स्थडिल भूमि के सम्बन्ध मे जाने कि। **आरामाणि वा**-आराम-बाग। **उज्जाणाणि वा**-उद्यान। **वणाणि वा**-वन। **वणसंडाणि वा**-वनखंड बृहद् वन अथवा। **देवकुलाणि वा**-देवकुल-यक्ष आदि के मन्दिर। **सभाणि वा**-या सभा का स्थान जहा पर लोग एकत्रित हो कर बैठते हो या। **पवाणि वा**-पानी पीने का स्थान जहा पर जनता को पानी पिलाया जाता है या। **अन्नयरंसि वा**-अन्य। **तह०**-इसी प्रकार के स्थानों मे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भिक्खू०-वह साधु अथवा साध्वी। **से ज०**-वह। **पुण**-फिर। **जा०**-स्थंडिल भूमि के सम्बन्ध मे जाने कि। **अट्टालयाणि वा**-प्राकार के ऊपर युद्ध करने का स्थान उसमे। **चरियाणि वा**-राजमार्ग मे। **दाराणि वा**-नगर के द्वार पर। **गोपुराणि वा**-नगर को बड़े द्वार पर। **अन्नयरंसि वा**-ऐसा अन्य कोई स्थान हो तो। **तह०**-तथाप्रकार के स्थडिल मे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज० जाणेज्जा**-वह पुन स्थडिल भूमि के सम्बन्ध मे जाने कि। **तिगाणि वा**-जहा नगर मे तीन मार्ग मिलते हो उस स्थान मे या। **चउक्काणि वा**-चौराहे पर। (चौरास्ते मे) तथा। **चच्चराणि वा**-जहा बहुत से मार्ग मिलते हो उस स्थान मे। **चउम्मुहाणि वा**-चार मुख वाले स्थान मे तथा। **अन्नयरंसि वा**-ऐसे ही अन्य किसी। **तह०**-तथाप्रकार के स्थान मे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से ज० जाणे०**-वह पुन स्थडिल भूमि के सम्बन्ध मे जाने कि। **इंगालदाहेसु वा**-जहा पर काष्ठ जला कर कोयले बनाए गए हो या। **खारदाहेसु वा**-जहा पर सब्जी आदि क्षार पदार्थ बनाए जाते हो या। **मडयदाहेसु वा**-श्मशान भूमि मे जहा पर मृतक जलाए जाते हो। **मडयथूभियासु वा**-जहा मृतक-स्तूप हो या। **मडयचेइयेसु वा**-जहा मृतक चैत्य हो। **अन्नयरंसि वा**-अन्य कोई। **तह०**-इसी प्रकार का स्थान हो तो उसमे। **नो उ०**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **से जं पुण जाणेज्जा**-वह फिर स्थडिल भूमि के सम्बन्ध में जाने कि।

नइयायतणेसु वा-नदियो के स्थानो मे अर्थात् जहा पर लोग एकत्रित होकर तट पर स्नानादि करते हैं और उन्हे तीर्थ भी कहते है उन स्थानो मे तथा। **पकाययणेसु वा**-नदी के पास कीचड़ का स्थान हो, जिसमे लोग तीर्थ का कीचड़ जानकर लोटते हैं और उस कीचड़ को शरीर पर लगाते हैं अथवा। **ओघाययणेसु वा**-पानी के प्रवाह के स्थानो मे तथा तालाब मे जल प्रवेश करने वाले मार्ग मे। **सेयणवहंसि वा**-पानी के नाले पर जिससे खेतों को पानी दिया जाता हो या। **अन्नयरंसि वा**-अन्य कोई। **तह॰**-इसी प्रकार का। **थं॰**-स्थान हो तो उसमे। **नो उ॰**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। **से ज॰ पुण॰ जाणे॰**-वह जो फिर स्थंडिलादि भूमि को जाने। **नवियासु वा**-अथवा नई। **मट्टियखणिआसु**-मृत्तिका की खानो मे। **नवियासु वा॰**-नूतन। **गोप्पहेलियासु वा**-गौओ के चरने के स्थानो मे। **गवाणीसु वा**-सामान्य गौओ के चरने के स्थानो मे। **खाणीसु वा**-खानो के स्थानों मे तथा। **अन्नयरसि वा**-अन्य किसी। **तह॰**-ऐसे ही। **थं॰**-स्थडिल मे। **नो उ॰**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। **से ज॰**-वह जो। **पुण॰**-फिर। **जाणे॰**-जाने। **डागवच्चसि वा**-जिस सब्जी के पौधो मे डालिये अधिक हो या। **सागवच्चसि वा**-जिस मे पत्ते अधिक हो ऐसे स्थान पर या। **मूलगवच्चंसि वा**-मूली आदि के खेतो मे। **हत्थकरवच्चसि वा**-कपित्थ-वनस्पति विशेष के स्थानो मे (कपित्थ-वनस्पति विशेष) तथा। **अन्नयरंसि वा**-अन्य। **तह॰**-तथाप्रकार के स्थान हो तो उन मे। **नो उ॰**-मल मूत्रादि का त्याग न करे।

से भि॰-वह साधु या साध्वी। **से जं॰ पुण जाणेज्जा**-वह फिर स्थडिल भूमि के सम्बन्ध मे जाने। **असणवणंसि वा**-बीयक नामक वनस्पति के वनो मे। **सणव॰**-सण (Jute) के वन मे। **धायइव॰**-धातकी वृक्ष के वनो में। **केयइवणसि**-केतकी वृक्षो के वनो मे। **अंबव॰**-आम्रवृक्ष के वनो मे। **असोगव॰**-अशोक वृक्ष के वनो मे। **नागव॰**-नाग वृक्ष के वनो मे। **पुन्नागव॰**-पुन्नाग वृक्ष के वनो मे। **चुल्लगव॰**-चुल्लक वृक्ष के वनो मे। **अन्नयरेसु**-तथा अन्य कोई। **तह॰**-इसी प्रकार का स्थान उसमे अर्थात् स्थंडिल मे जो। **पत्तोवेएसु वा**-पत्रो से युक्त हो। **पुप्फोवेएसु वा**-पुष्पो से युक्त हो। **फलोवेएसु वा**-फलो से युक्त। **बीओवेएसु वा**-बीजो से युक्त और। **हरिओवेएसु वा**-हरि वनस्पति से युक्त ऐसे स्थानो मे। **नो उ॰ वा॰**-मल मूत्रादि का परित्याग नहीं करे।

_मूलार्थ_—सयमशील साधु या साध्वी स्थण्डिल के सम्बन्ध मे यह जाने कि जिस स्थान पर गृहस्थ और गृहस्थ के पुत्रो ने कन्दमूल यावत् बीज आदि रखे हुए है, या रख रहे है या रखेंगे, तो साधु इस प्रकार के स्थानो मे मल-मूत्रादि का त्याग न करे। इसी प्रकार गृहस्थ लोगो ने जिस स्थान पर शाली, ब्रीही, मूग, उड़द, कुलत्थ, यव और ज्वार आदि बीजे हुए है, बीज रहे है और बीजेगे, ऐसे स्थानो पर भी साधु मल-मूत्रादि का त्याग न करे।

जिन स्थानों पर कचरे के ढ़ेर हों, भूमि फटी हुई हो, भूमि पर रेखाएं पड़ी हुई हो, कीचड़ हो, इक्षु के दण्ड हों, खड्डे हों, गुफाएं हों, कोट की भित्ति आदि हो, सम-विषम स्थान हो तो ऐसे स्थानों पर भी साधु मलमूत्र का त्याग न करे।

इसी प्रकार जहां पर चूल्हे हो तथा भैंस, बैल, घोड़ा, कुक्कुड़, बन्दर, हाथी, लावक (पक्षी), चटक, त्तितर, कपोत और कपिंजल (पक्षी विशेष) आदि के रहने के स्थान हों या इनके लिए जहां पर कोई क्रियाएं या कुछ कार्य किए जाते हों ऐसे स्थानों पर भी मल-मूत्र का

त्याग न करे। फांसी देने के स्थान, गीध पक्षी के सामने पड़कर मरने के स्थान, वृक्ष पर से गिर कर मरने के स्थान, पर्वत पर चढ़कर वहा से गिर कर मरने के स्थान, विष भक्षण करने के स्थान, अग्नि मे जल कर मरने के स्थान, इस प्रकार के स्थानो पर भी मल-मूत्र का त्याग न करे। और जहा पर बाग-उद्यान, वन, वनखड, देवकुल, सभा और प्रपा-पानी पिलाने के स्थान आदि हो तो ऐसे स्थानो पर भी मल-मूत्रादि न परठे।

कोट की अटारी, राजमार्ग, द्वार, नगर का बड़ा द्वार इन स्थानो पर मल-मूत्रादि का विसर्जन न करे। नगर मे जहा पर तीन मार्ग मिलते हो और बहुत से मार्ग मिलते हो, और जो स्थान चतुर्मुख हो ऐसे स्थानों पर भी मल-मूत्र का त्याग न करे।

इसी प्रकार जहां काष्ठ जलाकर कोयले बनाए जाते हो, क्षार बनाई जाती हो, मृतक जलाए जाते हो, एव मृतक स्तूप और मृतक चैत्य-मृतक मन्दिर हों, ऐसे स्थानो पर भी मल-मूत्र को न परठे। नदी के तीर्थ स्थानो [तट] पर, नदी के तीर्थ रूप कर्दम स्थान पर और जल के प्रवाह रूप पूज्य स्थानो मे तथा खेत और उद्यान को जल देने वाली नालियों मे मल-मूत्र का परित्याग न करे।

मिट्टी की नई खानो मे, नई गोचर भूमि मे, सामान्य गौओ के चरने के स्थानो और खानो मे, मल-मूत्रादि का परित्याग न करे। डाल प्रधान शाक के खेतों मे, पत्र प्रधान शाक के खेतो मे, और मूली-गाजर आदि के खेतो मे तथा हस्तकर नामक वनस्पति के क्षेत्र मे, इस प्रकार के स्थानो मे भी मल-मूत्र को न त्यागे। बीयक के वन में, शणी के वन मे, धातकी (वृक्ष विशेष) के वन मे, केतकी के वन मे, आम्र वृक्ष के वन मे, अशोक वृक्ष के वन में, नाग और पुन्नाग वृक्ष के वन मे, चूलक वृक्ष के वन मे और इसी प्रकार के अन्य पत्र, पुष्प, फलो, पत्ते तथा बीज और हरी वनस्पति से युक्त वन में मल-मूत्र को न त्यागे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे सार्वजनिक उपयोगी एव धर्म स्थानो पर मल-मूत्र के त्याग करने का निषेध किया गया है। साधु को शाली (चावल), गेहु, आदि के खेत मे, पशुशाला मे, भोजनालय मे, आम्र आदि के बगीचो मे, प्याऊ मे, देव स्थानो पर, नदी पर, कुए आदि स्थानो पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। व्यवहारिक दृष्टि से भी यह कार्य अच्छा नहीं लगता है और उनके रक्षक के मन मे क्रोध आ जाने के कारण अनिष्ट होने की ही सभावना रहती है। देवालय, नदी, सरोवर आदि स्थानो को कुछ लोग पूज्य मानते हैं, केवल नदी के पानी को ही नहीं, कुछ लोग उसके कीचड को भी पवित्र मानते हैं। इसलिए ऐसे स्थानो पर साधु को मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

कूडे-कर्कट के ढेर, खड्डे एव फटी हुई जमीन पर भी न परठे। क्योकि, वहा परठने से अनेक जीवो की हिसा होने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त साधु को ऐसे स्थानो पर भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए, जहा लोगो को फासी दी जाती हो या अन्य तरह से वध किया जाता हो। क्योकि, उनके मन मे घृणा पैदा होने से सघर्ष हो सकता है।

इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि साधु सभ्यता एव स्वच्छता का पूरा ख्याल रखते थे। गाव एव शहर की स्वच्छता नष्ट न हो तथा उनके प्रति किसी के मन मे घृणा की भावना पैदा न हो इसका भी परठते

समय ध्यान रखा जाता था। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि साधु अपनी साधना के लिए किसी भी प्राणी का अहित नहीं करता। वह प्रत्येक प्राणी की रक्षा करने का प्रयत्न करता है।

मल-मूत्र के त्याग के सम्बन्ध मे कुछ और आवश्यक बाते बताते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भि० सयपाययं वा परपाययं वा गहाय से तमायाए एगंतमवक्कमे अणावायंसि असंलोयंसि अप्पपाणंसि जाव मक्कडासंताणयंसि, अहारामंसि वा उवस्सयंसि तओ संजयामेव उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा, से तमायाए एगंतमवक्कमे अणाबाहंसि जाव संताणयंसि अहारामंसि वा झामथंडिल्लंसि वा अन्नयरंसि वा तह० थंडिल्लंसि अचित्तंसि तओ संजयामेव उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा, एयं खलु तस्स० सया जइज्जासि, त्तिबेमि ॥१६७॥

छाया- स भि० स्वकीय पात्रक वा परपात्रकं वा गृहीत्वा स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् अनापाते असलोके अल्पप्राणे यावत् मर्कटासन्ताने यथारामे वा उपाश्रये तत सयतमेव उच्चारप्रस्रवण व्युत्सृजेत्, स तमादाय एकान्तमपक्रामेत् अनाबाधे यावत् सन्तानके यथारामे वा दग्धस्थडिले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे स्थडिले अचित्ते ततः सयतमेव उच्चारप्रस्रवण व्युत्सृजेत्, एतत् खलु तस्य भिक्षो. २ सामग्र्यं यत् सर्वार्थैः समित. सहित. सदा यतेत इति ब्रवीमि।

पदार्थ- से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। सयपायय-स्वकीय पात्र अथवा। परपाययं वा-परकीय पात्र को। गहाय-ग्रहण करके। से-वह भिक्षु। तमायाए-उस पात्र को लेकर। एगंतमवक्कमे-एकात स्थान मे जाए और वहा जाकर। अणावायसि-जहा पर कोई आता-जाता न हो तथा। असंलोयंसि-जहा पर कोई देखता न हो उस स्थान पर। अप्पपाणसि-जहा पर द्वीन्द्रियादि जीवो का अभाव हो। जाव-यावत्। मक्कडासंताणयंसि-मकड़ी आदि के जाले न हो उस स्थान पर अथवा। अहारामसि वा-आराम बगीचे आदि की निचली भूमि मे तथा। उवस्सयसि-उपाश्रय मे। तओ-तत्पश्चात् साधु। सजयामेव-यतना पूर्वक। उच्चारपासवण-मल मूत्र का। वोसिरिज्जा-व्युत्सर्ग-त्याग करे फिर। से-वह भिक्षु। तमायाए-उस पात्र को लेकर। एगतमवक्कमे-एकात स्थान मे चला जाए और वहा जाकर। अणावाहंसि-जहा किसी भी जीव की हिंसा न हो उस स्थान पर। जाव-यावत्। सताणयसि-मकड़ी आदि का जाला न हो उस स्थान पर। अहारामसि वा-उद्यान की अचित्त भूमि पर या। ज्झामथंडिल्लंसि वा-दग्ध भूमि पर या। अन्नयरंसि वा-अन्य कोई। तह०-इसी प्रकार का। थंडिल्लंसि-स्थडिल हो तो। अचित्तसि-जो कि अचित्त है तो उसमे। तओ-तत्पश्चात्। संजयामेव-साधु यतना पूर्वक। उच्चारपासवणं-उच्चार प्रस्रवण-मल मूत्रादि को। वोसिरिज्जा-त्यागे। खलु-निश्चयार्थक है। एवं-इस प्रकार। तस्स-उस साधु अथवा साध्वी का समग्र आचार है। जं-जो। सव्वट्ठेहि-ज्ञानदर्शन और चारित्र रूप अर्थों से तथा। समिए-समितियो से। सहिए-सहित होकर इसकी। सया-सदा। जइज्जासि-पालन करने मे यत्नशील हो। त्तिबेमि-इस प्रकार मै कहता हूं।

मूलार्थ—संयमशील साधु या साध्वी स्वपात्र अथवा परपात्र को लेकर बगीचे या

उपाश्रय के एकान्त स्थान में जाए और जहा पर न कोई देखता हो और न कोई आता-जाता हो तथा जहा पर द्वीन्द्रियादि जीव-जन्तु एव मकड़ी आदि के जाले भी न हो, ऐसी अचित्त भूमि पर बैठकर साधु उच्चार प्रस्त्रवण का परिष्ठापन करे, उसके पश्चात् वह उस पात्र को लेकर एकान्त स्थान में जाए जहा पर न कोई आता-जाता हो और न कोई देखता हो, जहा पर किसी जीव की हिंसा न होती हो यावत् जल आदि न हो, उद्यान-बाग की अचित्त भूमि मे अथवा अग्नि से दग्ध हुए स्थडिल मे, इसी प्रकार के अन्य अचित्त स्थडिल मे -जहा पर किसी भी जीव की विराधना न होती हो, साधु मल-मूत्र का परित्याग करे। इस प्रकार साधु और साध्वी का समग्र आचार वर्णित हुआ है जो कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप अर्थो मे और पाचो समितियो से युक्त है और साधु इन के पालन मे सदैव प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार मै कहता हू।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया है कि साधु को एकान्त एव निर्दोष और निर्वद्य भूमि पर मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए। जिस स्थान पर कोई व्यक्ति आता-जाता हो या देखता हो तो ऐसे स्थान पर मल-मूत्र नहीं करना चाहिए। क्योकि, इससे साधु निस्सकोच भाव से मल-मूत्र का त्याग नही कर सकेगा, उसकी इस क्रिया मे कुछ रुकावट पडेगी, जिससे कई तरह के रोग उत्पन्न हो सकते है। और देखने वाले व्यक्ति के मन मे भी यह भाव उत्पन्न हो सकता है कि यह साधु कितना असभ्य है कि लोगो के आवागमन के मार्ग मे ही मल-मूत्र का त्याग करने बैठ गया है। अत साधु को सब तरह की परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर एकान्त स्थान मे ही मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए।

प्रस्तुत अध्ययन मे मल-मूत्र का त्याग करने के बाद उस स्थान की सफाई का उल्लेख नहीं किया गया। इससे कुछ व्यक्ति यह शका कर सकते हैं कि जैनधर्म मे सफाई को स्थान नहीं दिया गया। परन्तु, वस्तुत ऐसी बात नहीं है। यहा सफाई का उल्लेख नहीं करने का कारण यह है कि प्रस्तुत प्रसग मल-मूत्र का त्याग करने से सबद्ध होने से इसमे सफाई का उल्लेख नही आया। परन्तु इसका यह अर्थ लगाना गलत होगा कि जैन साधु मल-मूत्र का त्याग करने के बाद सफाई नही करते। निशीथ सूत्र मे बताया गया है कि जो साधु या साध्वी शौच जाने के बाद उस स्थान (गुदा) को वस्त्र से साफ करके पानी से साफ नहीं करते या काष्ठ आदि से साफ करते हैं बहुत दूर जाकर साफ करते हैं उन्हे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित आता है[१]। इससे स्पष्ट है कि साधु जिस स्थान पर शौच गया हो उसे उसी स्थान पर जल आदि से साफ कर लेना चाहिए। वह उस स्थान को साफ किए बिना आगे नहीं बढ सकता है।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ दशम अध्ययन समाप्त॥

---

१ जे भिक्खू उच्चारपासवण परिठवेत्ता ण पुच्छइ, ण पुच्छत वा साइज्जइ। जे भिक्खू उच्चारपासवण परिट्ठवेत्ता कट्ठेण वा कविलेण वा अगुलियाए वा सिलागाए वा पुच्छइपुच्छत वा साइज्जइ। जे भिक्खू उच्चारपासवण परिट्ठवित्ता णायमइ णायमत वा साइज्जइ। जे भिक्खू उच्चारपासवण परिट्ठवेत्ता तत्थेव आयमति आयमत वा साइज्जइ। जे भिक्खू उच्चारपासवण परिट्ठवेत्ता अइदूरे आयमइ, अइदूरे आयमतं वा साइज्जइ।

– निशीथ सूत्र, ४, १६१, १६५।

एकादश अध्ययन
(समभाव साधना)

प्रस्तुत अध्ययन मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि निर्दोष स्वाध्याय भूमि मे स्वाध्याय करते हुए या निर्दोष स्थान पर मल- मूत्र का त्याग करते समय कोई साधु मधुर या मनोज्ञ शब्दो को सुनने का प्रयत्न न करे। वह सदा समभाव पूर्वक अपनी साधना मे सलग्न रहे, इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- से भि॰ मुइंगसद्दाणि वा नंदीस॰ झल्लरीस॰ अन्नयराणि वा तह॰ विरूवरूवाइं सद्दाइं वितताइं कन्नसोयणपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ से भि॰ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं॰-वीणासद्दाणि वा विपंचीस॰ पिप्पी (बद्धी) सगस॰ तूणयसद्दा॰ पणयस॰ तुंबवीणियसद्दाणि वा ढंकुणसद्दाइं अन्नयराइं तह॰ विरूवरूवाइं॰ सद्दाइं॰ वितताइं कण्णसोयणपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ से भि॰ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं॰-तालसद्दाणि वा कंसतालसद्दाणि वा लत्तियसद्दा॰ गोधियस॰ किरिकिरियास॰ अन्नयरा॰ तह॰ विरूव॰ सद्दाणि कण्ण॰ गमणाए॥ से भि॰ अहावेग॰ तं॰-संखसद्दाणि वा वेणु॰ बंसस॰-खरमुहिस॰ पिरिपिरियास॰ अन्नय॰ तह॰ विरूव॰ सद्दाइं झुसिराइं कन्न॰ ॥१६८॥

छाया- स भि॰ मृदंगशब्दान् वा नन्दीश॰ झल्लरीश॰ वा अन्यतरान् वा तथा॰ विरूपरूपान् शब्दान् विततान् कर्णश्रवणप्रतिज्ञया न अभिसन्धारयेद् गमनाय॥ से भि॰ यथा वा एककान् शब्दान् शृणोति तद्यथा वीणाशब्दान् वा विपचीश॰ वा पिप्पीसकश॰ वा (वद्धीसक शब्दान् वा) तूणकश॰ वा पणकश॰ वा तुम्बवीणाश॰ वा ढंकुणश॰ वा अन्यतरान् वा तथा॰ विरूपरूपान् शब्दान् विततान् कर्णश्रवणप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय। स भि॰ यथावैककान् श॰ शृणोति तद्यथा-तालश॰ वा कसतालश॰ वा लत्तिका (कशिका) श॰ वा गोहिकश॰ वा किरिकिरियाश ॰ अन्यतरान् वा तथा ॰ विरूपरूपान् विततान् कर्णश्रवणप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय। स भि॰ यथा वैककान् शब्दान् शृणोति तद्यथा-शंखश ॰ वेणुश॰ वा वंशश॰ वा खरमुखी श॰ वा पिरिपिरिया श॰ वा अन्यतरान् वा तथा॰ विरूपरूपान् श॰

शुषिरान् कर्णश्रवणप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय।

पदार्थ– से भि०-वह साधु अथवा साध्वी। मुइंगसद्दाणि वा-मृदग के शब्द। नदीसद्दाणि वा-नन्दी नाम के वाद्यन्तर के शब्द। झल्लरीसद्दाणि वा-झल्लरी या छंणे के शब्द तथा। अन्नयराणि वा-अन्य किसी वाद्ययन्त्र के। तहप्पगाराणि-तथाप्रकार के शब्द। विरूवरूवाइं-नानाप्रकार के। वितताइ-शब्दो को। कण्णसोयणपडियाए-सुनने के लिए। गमणाए-जाने का। नो अभिसधारिज्जा-मन मे सकल्प न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। अहावेगइयाइ-जैसे कई एक। सद्दाइं-शब्दो को। सुणेइ-सुनता है। तजहा-जैसे कि। वीणासद्दाणि वा-वीणा के शब्द। विपचीसद्दाणि वा-विपची-वीणा विशेष के शब्द। पिप्पीसगसद्दाणि वा-बद्धीसक नाम वाले वाद्य के शब्द। तूणयसद्दाणि वा-तूण नाम के वाद्यविशेष के शब्द। पणयसद्दाणि वा-पणक-ढोलक के शब्द। तुबवीणियसद्दाणि वा-तुम्ब वीणा के शब्द। ढकुणसद्दाणि वा-ढकुण नाम के वाद्य के शब्द तथा। अन्नयराइ-अन्य कोई। तह०-तथाप्रकार के वाद्ययत्र के। विरूवरूवाइ-नानाविध। सद्दाइं-शब्दो को। वितताइ-जो कि वितत है। कण्णसोयणपडियाए-सुनने की प्रतिज्ञा से। गमणाए-जाने का। नो अभिसधारिज्जा-मन मे सकल्प न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। अहावेगइयाइं-कई एक। सद्दाइ-शब्दो को। सुणेइ-सुनता है। तजहा-जैसे कि। तालसद्दाणि वा-ताल के शब्द। कसतालसद्दाणि-कस ताल-वाद्य विशेष के शब्द। लत्तियसद्दाणि वा-कंशिका नाम के वाद्य विशेष के शब्द। गोधियस०-काख एव हाथ मे रखकर बजाए जाने वाले वाद्ययत्र के शब्द। किरिकिरिया स०-दशमयी कदम्बिका वाद्य विशेष के शब्द तथा। अन्नयरा०-अन्य कोई। तह०-इसी प्रकार के। विरूव०-विविध भाति के। सद्दाइ-शब्दो को। कण्ण०-श्रवण करने के लिए गमणाए-जाने का। नो अभिसंधारिज्जा-मन मे सकल्प न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। अहावेग०-कई एक शब्दो को सुनता है। तजहा-जैसे कि। संखसद्दाणि वा-शख के शब्द। वेणु०-वेणु के शब्द। वसस०-वंश-बांस के शब्द। खरमुहीस०-खरमुखी नामक वाद्य के शब्द। पिरिपिरियास०-बास की नली के शब्द तथा। अन्न०-अन्य कोई। तह०-तथाप्रकार के। झुसिराइ-शुशिर। सद्दाइ-शब्दो को। कन्नसो०-सुनने के लिए। गमणाए-जाने का। नो अभिसधारिज्जा-मन मे सकल्प न करे। अर्थात् सुनने के लिए न जाए।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी मृदंग के श्ब्द, नन्दी के शब्द और झल्लरी के शब्द, तथा इसी प्रकार के अन्य वितत शब्दो को सुनने के लिए किसी भी स्थान पर जाने का मन मे सकल्प न करे।

इसी प्रकार वीणा के शब्द, विपञ्ची के शब्द, वद्धीसक्क के शब्द तूनक और ढोल के शब्द, तुम्ब वीणा के शब्द, ढुंकण के शब्द इत्यादि शब्दों को एवं ताल शब्द, कंशताल शब्द, कासी का शब्द, गोधी का शब्द, किरिकरी का शब्द तथा शंख शब्द, वेणु शब्द, खरमुखी शब्द और परिपिरिका के शब्द इत्यादि नाना प्रकार के शब्दों को सुनने के लिए भी साधु न जाए। तात्पर्य है कि इन उपरोक्त शब्दो को सुनने की भावना से साधु कभी भी एक स्थान से दूसरे स्थान को न जाए।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वाद्ययत्रो से निकलने वाले मनोज्ञ एव मधुर शब्दो को श्रवण करने का निषेध किया गया है। इसमे चार प्रकार के वाद्ययत्रो का उल्लेख किया गया है- १ वितत, २ तत, ३ घन और ४ सुषिर। मृदग, नन्दी झाल्लर आदि के शब्द 'वितत' कहलाते हैं, वीणा, विपची आदि वाद्य यत्रो के शब्दो को 'तत' सज्ञा दी गई है, हस्तताल, कस ताल आदि शब्दो को 'घन' कहा जाता है और शख, वेणु आदि के शब्द 'सुषिर' कहलाते हैं। इस प्रकार सभी तरह के वाद्ययत्रो से प्रस्फुटित शब्दो को सुनने के लिए साधु प्रयत्न न करे। सूत्रकार ने यहा तक निषेध किया है कि साधु को इन शब्दो को सुनने के लिए मन मे सकल्प भी नही करना चाहिए। क्योकि ये शब्द मोह एव विकार भाव को जागृत करने वाले हैं। अत साधु को इन से सदा बचकर रहना चाहिए।

शब्द के विषय मे कुछ और बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— से भि॰ अहावेग॰ तं॰ वप्पाणि वा फलिहाणि वा जाव सराणि वा सागराणि वा सरसरपंतियाणि वा अन्न॰ तह॰ विरूव॰ सद्दाइं कण्ण॰॥ से भि॰ अहावे॰ तं॰ कच्छाणि वा णूमाणि वा गहणाणि वा वणाणि वा वणदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वयदुग्गाणि वा अन्न॰॥ अहा॰ तं॰ गामाणि वा नगराणि वा निगमाणि वा रायहाणीणि वा आसमपट्टण-संनिवेसाणि वा अन्न॰ तह॰ नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ आरामाणि वा उज्जाणाणि वा वणाणि वा वणसंडाणि वा देवकुलाणि वा सभाणि वा पवाणि वा अन्नय॰ तहा॰ सद्दाइं नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ अट्टाणि वा अट्टालयाणि वा चरियाणि वा दाराणि वा गोपुराणि वा अन्न॰ तह॰ सद्दाइं नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ तंजहा-तियाणि वा चउक्काणि वा चच्चराणि वा चउम्मुहाणि वा अन्न॰ तह॰ सद्दाइं नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ तंजहा—महिसकरणट्ठाणाणि वा वसभक॰ अस्सक॰ हत्थिक॰ जाव कविंजल-करणट्ठा॰ अन्न॰ तह॰ नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ तंज॰ महिसजुद्धाणि वा जाव कविंजलजु॰ अन्न तह॰ नो अभि॰॥ से भि॰ अहावे॰ तं॰ जूहियठाणाणि वा हयजू॰ गयजू॰ अन्न॰ तह॰ नो अभि॰॥१६९॥

छाया— स भि॰ यथावैकक: तद्यथा वप्रान् वा परिखा वा यावत् सरांसि सागरान् वा सर: सर: पंक्ती वा अन्य॰ तथा॰ विरू॰ श॰ कर्ण॰॥ स भि॰ यथा वैकक: त॰ कच्छानि वा नूमानि वा गहनानि वा वनानि वा वनदुर्गाणि वा पर्वतान् वा पर्वतदुर्गाणि वा अन्य॰॥ यथा वा एकक: त॰ ग्रामान् वा नगराणि वा निगमान् वा राजधानी: वा आश्रमपट्टनसन्निवेशान् वा अन्यतरान् वा अन्य॰ तथा॰ शब्दान् कर्ण॰ अभि॰॥ स भि॰ यथा वैकक: आरामान् वा उद्यानानि वा वनानि वा वनषंडानि वा देवकुलानि वा सभा वा प्रपा वा अन्य॰ तथा॰ शब्दान् नाभि॰॥ स

भि॰ यथा वैकक॰ त॰ अट्टानि वा अट्टालकानि वा चरिकानि वा द्वाराणि वा गोपुराणि वा अन्य॰ तथा॰ शब्दान् नाभि॰॥ स भि॰ यथा वा एकक: त॰ त्रिकानि वा चतुष्कानि वा चच्चराणि वा चतुर्मुखानि वा अन्य॰ तथा॰ शब्दान् नाभि॰॥ स भि॰ यथा वैकक: त॰ महिषकरणस्थानानि वा वृषभक॰ अश्व क॰ हस्ति क॰ यावत् कपिजलकरणस्थानानि वा अन्य॰ तथा॰ शब्दान् कर्ण॰ नाभि॰ गमनाय॥ स भि॰ यथा वैकक: त॰ महिषयुद्धानि वा यावत् कपिंजलयुद्धानि वा अन्य॰ तथा॰ नाभि॰। स भि॰ यथा वैकक: तद्यथा यूथस्थानानि वा हययू॰ गजयू॰ अन्य॰ तथा॰ नाभि॰।

पदार्थ– से भि॰–वह साधु अथवा साध्वी। अहावेग॰–यथा कई एक। सद्दाइ–शब्दो को। सुणेइ–सुनता है। तजहा–जैसे कि। वप्पाणि वा–खेत के क्यारो के विषय मे कोई गाता हो अथवा वहा कोई वाद्य बजाता हो। फलिहाणि वा–खाई मे होने वाले शब्द। जाव–यावत्। सराणि वा–सरोवर के शब्द। सागराणि वा–समुद्र के शब्द। सरसरपंतियाणि वा–सरोवर की पक्तियो के शब्द। अन्न॰–अन्य कोई। तह॰–इसी प्रकार के। विरूव॰–नानाविध। सद्दाइं–शब्दो को। कण्ण॰–श्रवण करने के लिए। नो अभिसधारिज्ज गमणाए–जाने का मन मे संकल्प न करे।

से भि॰–वह साधू या साध्वी। अहावे॰–कई तरह के। सद्दाणि–शब्दो को। सुणेइ–सुनता है। त॰–जैसे कि। कच्छाणि वा–नदी के पानी से आवृत्त वन के। णूमाणि वा–वृक्षो के या। गहणाणि वा–वनस्पति के समूह। वणाणि वा–वन के या। वणदुग्गाणि वा–विषम वन के शब्दो को। पव्वयाणि वा–या पर्वत एव। पव्वयदुग्गाणि वा–विषम पर्वत पर होने वाले शब्दो या। अन्न॰–अन्य। तह॰–इसी तरह के। विरूव॰–नाना प्रकार के। सद्दाइं–शब्दो को। कण्ण॰–कान से सुनने की प्रतिज्ञा से। नो अभिसधारिज्ज–गमणाए–उस ओर जाने का मन मे विचार न करे।

से भि॰–वह साधु या साध्वी। अहावे॰–कभी कई प्रकार के। सद्दाणि–शब्दो को सुणेइ–सुनता है। त॰–जैसे कि। गामाणि वा–ग्राम के शब्द अथवा। नगराणि वा–नगर के शब्द। निगमाणि वा–निगम (जहा पर बहुत वणिक निवास करते हों) के शब्द। रायहाणीणि वा–राजधानी के शब्द। आसमपट्टणसनिवेसाणि वा–आश्रम–तापस आदि के स्थान के शब्द, पत्तन के शब्द, सन्निवेश–सराय आदि के शब्द अर्थात् इन स्थानो मे कोई गीत गाता हो या कोई वाद्यतर बजाता हो या। अन्न॰–अन्य कोई। तह॰–इसी प्रकार के। विरूव॰–नाना विध। सद्दाइ–शब्दो को। कण्ण॰–सुनने के लिए। नो अभिसंधारिज्ज गमणाए–जाने का मन मे विचार न करे।

से भि॰–वह साधु या साध्वी। अहावे॰–कभी कई तरह के शब्दो को सुनता है, जैसे कि। आरामाणि वा–आराम मे होने वाले शब्द तथा। उज्जाणाणि वा–उद्यान में होने वाले शब्द और। वणाणि वा–वन मे होने वाले शब्द। वणसडाणि वा–वनषड में होने वाले शब्द। देवकुलाणि वा–देव कुल मे होने वाले शब्द। सभाणि वा–सभा मे होने वाले शब्द। पवाणि वा–प्रपा–जलदान के स्थान में होने वाले शब्द। अन्नय॰ तह॰–अन्य इसी तरह के। विरूव॰–नाना प्रकार के शब्दों को सुनने के लिए। नो अभिसंधा॰–जाने का विचार न करे।

से भि॰–वह साधु या साध्वी। अहावे॰–कभी कई। सद्दाणि–शब्दों को। सुणेइ–सुनता है। तंजहा–

जैसे कि। **अट्टाणि वा**-अटारी पर होने वाले शब्द। **अट्टालयाणि वा**-अटारी की फिरनी मे होने वाले शब्द। **चरियाणि वा**-प्राकार और नगर के मध्य मे होने वाले आठ हाथ प्रमाण राजमार्ग के शब्द। **दाराणि वा**-द्वार मे होने वाले शब्द। **गोपुराणि वा**-नगर के बड़े द्वार पर होने वाले शब्द अथवा। **अन्न०**-अन्य। **तह०**-इसी प्रकार के। **सद्दाइं**-शब्दो को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से। **नो अभि०**-जाने का मन मे सकल्प न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **अहावे०**-कभी कई। **सद्दाणि**-शब्दो को। **सुणेइ**-सुनता है। **त०**-जैसे कि। **तियाणि वा**-जहा पर नगर मे तीन मार्ग मिलते हो वहा पर होने वाले शब्द। **चउक्काणि वा**-चौराहे पर होने वाले शब्द। **चच्चराणि वा**-जहा पर बहुत से मार्ग समिलित होते हो वहा पर होने वाले शब्द तथा। **चउम्मुहाणि वा**-चतुर्मुख मार्ग मे होने वाले शब्द। **अन्न०**-तथा अन्य। **तह०**-इसी प्रकार के। **सद्दाइ**-शब्दो को कान से सुनने के लिए। **नो अभि०**-जाने का मन मे विचार न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **अहावे०**-कभी कई तरह के। **सद्दाणि**-शब्दो को। **सुणेइ**-सुनता है। **तंजहा**-जैसे कि। **महिसकरणट्ठाणाणि वा**-भैंस शाला मे होने वाले शब्द। **वसभकरणट्ठाणाणि वा**-वृषभ शाला मे होने वाले शब्द। **अस्सक०**-घुड़शाला मे होने वाले शब्द। **हत्थिक०**-हस्तीशाला मे होने वाले शब्द। **जाव**-यावत्। **कविजलकरणट्ठा०**-जहा पर कपिजल पक्षी के ठहरने का स्थान है वहा पर होने वाले शब्द तथा। **अन्न**-अन्य। **तह०**-तथाप्रकार के। **सद्दाइ**-शब्दो को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से। **नो० अभि०**-जाने का मन मे विचार न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **अहावे०**-कई तरह के। **सद्दाणि**-शब्दों को। **सुणेइ**-सुनता है। **तंजहा०**-जैसे कि। **महिसजुद्धाणि वा**-भैसो के युद्ध क्षेत्र मे होने वाले शब्द। **जाव**-यावत्। **कविंजलजु०**-कपिजल पक्षियो के युद्ध क्षेत्र मे होने वाले शब्द। **अन्न**-तथा अन्य। **तह०**-तथाप्रकार के। **सद्दाइं**-शब्दो को सुनने की प्रतिज्ञा से। **नो अभि०**-सन्मुख होकर जाने के लिए मन मे विचार न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। **अहावे०**-कई तरह के। **सद्दाणि**-शब्दो को। **सुणेइ**-सुनता है। **तं०**-जैसे कि। **जूहियठाणाणि वा**-वर वधु के मिलन स्थल पर होने वाले शब्द अर्थात् विवाह वेदी के समय पर होने वाले शब्द। **हयजू०**-घोड़ो के यूथ जहा पर रहते हो उन स्थानो मे होने वाले शब्द। **गयजू०**-हाथी के यूथ के स्थान मे होने वाले शब्द तथा। **अन्न०**-अन्य। **तह०**-इसी प्रकार के। **सद्दाइं**-शब्दो को सुनने की प्रतिज्ञा से। **नो अभि०**-जाने का मन मे विचार न करे।

_मूलार्थ_—सयमशील साधु या साध्वी कभी कई तरह के शब्दों को सुनते है। परन्तु उन्हे खेत के क्यारो में एवं खाई यावत् सरोवर, समुद्र और सरोवर की पक्तियां इत्यादि स्थानों मे होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प नहीं करना चाहिए। और साधु जल-बहुल प्रदेश, वनस्पति समूह, वृक्षों के सघन प्रदेश, वन, पर्वत, और विषम पर्वत इत्यादि स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का भी संकल्प न करे।

इसी भांति ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, आश्रम, पत्तन और सन्निवेश आदि स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का भी मन में संकल्प न करे। तथा आराम, उद्यान, वन, वन-खण्ड, देवकुल, सभा और प्रपा (जल पिलाने का स्थान) आदि स्थानों में होने वाले शब्दो

को सुनने की प्रतिज्ञा से वहां जाने के लिए मन मे विचार न करे। एवं अट्टारी, प्राकार, प्राकार के ऊपर की फिरनी और नगर के मध्य का आठ हाथ प्रमाण राजमार्ग, द्वार तथा नगर में प्रवेश करने का बड़ा द्वार इत्यादि स्थानों मे होने वाले शब्दो को सुनने के लिए भी जाने का मन मे भाव न लाए।

इसी तरह नगर के त्रिपथ, चतुष्पथ, बहुपथ और चतुर्मुख मार्ग, इत्यादि स्थानो मे होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का भी मन मे विचार न करे। इसी भाति भैसशाला, वृषभशाला, घुड़शाला, हस्तीशाला और कपिंजल पक्षी के ठहरने के स्थान आदि पर होने वाले शब्दों को सुनने के लिए भी जाने का विचार न करे। तथा वर-वधू के मिलने का स्थान (विवाह-वेदिका) घोड़ों के यूथ का स्थान, हाथी-यूथ का स्थान यावत् कपिजल पक्षी का स्थान इत्यादि स्थानो के शब्दो को सुनने के लिए भी जाने का विचार न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को खेतो मे, जगल मे, घरो मे या विवाह आदि उत्सव के समय होने वाले गीतो को या पशुशालाओ एव अन्य प्रसगो पर होने वाले मधुर एव मनोज्ञ गीतो को सुनने के लिए उन स्थानो पर जाने का सकल्प नहीं करना चाहिए। ये सब तरह के सासारिक गीत मोह पैदा करने वाले हैं, इनके सुनने से मन मे विकार भाव जागृत हो सकता है। अत सयमनिष्ठ साधु-साध्वी को इनका श्रवण करने के लिए किसी भी स्थान पर जाने का सकल्प नहीं करना चाहिए।

इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि उस युग मे विवाहोत्सव मनाने की परम्परा थी और वर-वधू के मिलन के समय राग-रग को बढाने वाले गीत भी गाए जाते थे।

प्रस्तुत सूत्र से उस युग की सभ्यता का स्पष्ट परिज्ञान होता है और विभिन्न उत्सवो एव उन पर गीत आदि गाने की परम्परा का भी परिचय मिलता है। उस युग मे भी जनता अपने मनोविनोद के लिए विशिष्ट अवसरो पर गीत आदि गाकर अपना मनोविनोद करती थी। अत साधु को इन गीतो को सुनने के लिए जाना तो दूर रहा, परन्तु उनके सुनने की अभिलाषा भी नहीं करनी चाहिए।

इस सम्बन्ध मे कुछ और बाते बताते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि॰ जाव सुणेइ, तंजहा-अक्खाइयठाणाणि वा माणुम्माणियट्ठाणाणि वा महताऽऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियपडुप्पवाइयट्ठाणाणि वा अन्न॰ तह॰ सद्दाइं नो अभिसं॰॥ से भि॰ जाव सुणेइ, तं॰ कलहाणि वा डिंबाणि वा डमराणि वा दोरज्जाणि वा वेर॰ विरुद्धर॰ अन्न॰ तह॰ सद्दाइं नो॰॥ से भि॰ जाव सुणेइ, खुड्डियं दारियं परिवुत्तमंडियं अलंकियं निवुज्झमाणिं पेहाए एगं वा पुरिसं वहाए नीणिज्जमाणं पेहाए अन्नयराणि वा तह॰ नो अभि॰॥ से॰ भि॰ अन्नयराइं विरूव॰ महासवाइं एवं जाणेज्जा तंजहा-बहुसगडाणि वा बहुरहाणि वा बहुमिलक्खूणि वा बहुपच्चंताणि वा अन्न॰ तह॰ विरूव॰ महासवाइं

कन्नसोयपडियाए नो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ से भि० अन्नयराइं विरूव० महुस्सवाइं एवं जाणिज्जा, तंजहा-इत्थीणि वा पुरिसाणि वा थेराणि वा डहराणि वा मज्झिमाणि वा आभरणविभूसियाणि वा गायंताणि वा वायंताणि वा नच्चंताणि वा हसंताणि रमंताणि वा मोहंताणि वा विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं परिभुंजंताणि वा परिभायंताणि वा विछड्डियमाणाणि वा विगोवयमाणाणि अन्नय० तह० विरूव० महु० कन्नसोय०॥ से भि० नो इहलोइएहिं सद्देहिं नो परलोइएहिं स० नो सुएहिं स० नो असुएहिं स० नो दिट्ठेहिं स० नो अदिट्ठेहिं स० नो कंतेहिं स० सज्जिज्जा नो गिज्झिज्जा नो मुज्झिज्जा नो अज्झोवव-ज्जिज्जा, एवं खलु जाव जएज्जासि त्तिबेमि॥ सद्दसत्तिक्कओ सम्मत्तो॥१७०॥

छाया– स भि० यावत् शृणोति, तद्यथा आख्यायिकास्थानानि वा मानोन्मानस्थानानि वा महान्ति आहतनाट्यगीतवादित्रतन्त्रीतलतालत्रुटित–प्रत्युत्पन्नास्थानानि वा अन्य० तथा० शब्दान् नो अभिस०॥ स भि० यावत् शृणोति तद्यथा कलहानि वा डिम्बानि वा डमराणि वा द्विराज्यानि वा वैर० विरुद्धराज्यानि वा अन्य० तथा० शब्दान् नो०॥ स भि० यावत् शृणोति त० क्षुल्लिकां वा दरिकां वा परिभुक्तमंडितां, अलकृतां (अश्वादिना) नीयमानां प्रेक्ष्य, एकं वा पुरुषं वधाय नीयमानं प्रेक्ष्य, अन्य० तथा० शब्दान् नो० अभि०॥ स भि० अन्य० विरूपरूपान् वा महाश्रवान् एवं जानीयात् तद्यथा- बहुशकटानि वा बहुरथानि वा बहुम्लेच्छानि वा बहुप्रात्यन्तिकानि वा अन्य० त० विरूप० महाश्रवान् वा कर्णश्रवणप्रतिज्ञया नो अभिसन्धारयेद् गमनाय॥ स भि० अन्य० विरूप० वा महोत्सवान् एवं जानीयात् तद्यथा-स्त्रीः वा पुरुषान् वा स्थविरान् वा बालान् वा मध्यमान् वा आभरणविभूषितान् वा गायतो वा वादयतो वा नृत्यतो वा हसतो वा रममाणान् वा मोहयतो वा विपुलम् अशनं पानं खादिमं स्वादिमं परिभुंजमाणान् वा परिभाजयतो वा विच्छर्पितनान् वा विगोपयतो वा अन्य० तथा० विरूव० मधु० कर्ण० सं०॥ स भि० नो इहलौकिकैः शब्दै· नो पारलौकिकै· श० नो श्रुतै. श० नो अश्रुतैः श० नो दृष्टैः श० नो अदृष्टैः श० नो कान्तैःश० सज्ज्येत् नो गृध्येत् नो मुह्येत् नो अध्युपपद्येत एवं खलु तस्य भिक्षो. यावत् यतेत्। इतिब्रवीमि। शब्द सप्तैकक. समाप्तः॥

पदार्थ– से भि०–वह साधु अथवा साध्वी। जाव-यावत्। सुणेइ–शब्दो को सुनता है। तंजहा–जैसे कि। अक्खाइयठाणाणि वा–कथा करने के स्थान पर। माणुम्माणियट्ठाणाणि वा–तोल-माप करने के स्थान पर या घुड़ दौड़ आदि के स्थान पर। महताऽऽ–महान्। आहय–आहत। नट्ट–नृत्य। गीय–गीत। वाइय–वादित्र। तती–तन्त्री। तल–कासी का वाद्य। ताल–वाद्यविशेष। तुडिय–त्रुटित–ढोल आदि के। पडुप्पवाइयट्ठाणाणि वा–उत्पन्न होते शब्दो को। अन्न०–तथा अन्य। तह०–तथाप्रकार के। सद्दाइं–शब्दों को

सुनने के लिए। नो अभिस०-जाने का मन मे विचार न करे।

से भि०-साधु या साध्वी। जाव-यावत्। सुणेइ-शब्दों को सुनता है। त०-जैसे कि। कलहाणि वा-कलह के शब्द। डिबाणि वा-स्वचक्र-राजा के स्वदेश मे परस्पर होने वाले विरोध के शब्द। डमराणि वा-पर राज्य के विरोधी शब्द। दोरज्जाणि-दो राजाओ के परस्पर विरोधी शब्द। वेर०-परस्पर वैर विरोध के शब्द तथा। अन्न०-अन्य। तह०-तथाप्रकार के। सद्दाइं-शब्दो को सुनने के लिए। नो अभिस०-जाने का मन मे विचार न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। जाव सुणेइ-यावत् विभिन्न प्रकार के शब्दो को सुनता है। त०-जैसे कि। परिवुत्तमंडिय-परिवार से घिरी हुई, आभूषणो से मडित और। अलंकियं-अलकृत हुई। निबुज्झमाणि-घोड़े आदि पर बैठाकर ले जाती हुई को। खुड्डियं वा-छोटी। दारियं-बालिका। पेहाए-देखकर। वा-अथवा। एग पुरिस-किसी एक अपराधी पुरुष को। वहाए-वध के लिए। नीणिज्जमाण-वध्य भूमि मे ले जाते हुए को। पेहाए-देखकर। वा-अथवा। अन्नयराणि-अन्य। तह०-तथाप्रकार के शब्दो को सुनने के लिए। नो अभिस०-जाने का मन मे विचार न करे। से भि०-वह साधु अथवा साध्वी अन्न०-अन्य कोई। विरूव०-नाना प्रकार के। महासवाइं-महान आश्रव के स्थानो को। एवं-इस प्रकार। जाणिज्जा-जाने। त०-जैसे कि। बहुसगडाणि वा-बहुत से शकटो के स्थान। बहुरहाणि वा-बहुत से रथों के स्थान अर्थात् जहा पर शकट और रथ दोनो बहुत सख्या मे रहते है वह स्थान। वा०-या। बहुमिलक्खूणि-बहुत से म्लेछो के स्थान या। बहुपच्चताणि वा-बहुत से प्रान्त निवासियो के स्थान तथा। अन्न०-अन्य कोई। तह०-तथाप्रकार के। विरूवरूवाइ-नाना विध। महासवाइ-महान आश्रवो के स्थान, उनमे जो शब्द होते है उनको। कन्नसोयपडियाए-कानो से सुनने की प्रतिज्ञा से। नो अभिसंधारिज्ज गमणाए-सम्मुख होकर जाने का मन मे विचार न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। अन्न० विरूवरूवाइ-अन्य कई नाना प्रकार के। महुस्सवाइ-महोत्सवो के स्थानों को। एवं जाणिज्जा-इस प्रकार जाने। त०-जैसे कि। इत्थीणि वा-स्त्रिया या। पुरिसाणि वा-पुरुष या। थेराणि वा-वृद्ध या। डहराणि वा-बालक या। मज्झिमाणि वा-मध्यम वय वाले-युवक, जो कि। आभरणविभूसियाणि वा-आभूषणो से शरीर को विभूषित करके। गायताणि वा-गाते। वायताणि वा-बजाते हुए। वा-या। नच्चंताणि-नाचते हुए। हसंताणि-हसते हुए। रमताणि वा-क्रीड़ा करते हुए या। मोहंताणि वा-रतिक्रीड़ा करते हुए या इसी प्रकार। विपुलं-अत्यन्त। असण-अन्न। पाणं-पानी। खाइम-खादिम-खाद्य पदार्थ। साइम-स्वाद्य पदार्थ। परिभुजंताणि वा-भोगते हुए तथा। परिभायताणि वा-आहार-पानी का विभाग या वितीर्ण करते हुए या। विछड्डियमाणाणि वा-उसे फैकते हुए या। विगोवयमाणाणि वा-प्रसिद्ध करते हुए जा रहे हो उस समय के शब्दो तथा। अन्नय०-अन्य। तह०-इसी तरह के। विरूव०-विविध। महु०-महोत्सवो मे होने वाले शब्दो को। कन्नसोय०-कानो से सुनने की प्रतिज्ञा से। नो अभिसं०-जाने का मन मे सकल्प न करे।

से भि०-वह साधु या साध्वी। नो इहलोइएहिंस०-न तो इस लोक के शब्दो को अर्थात् मनुष्यादि के शब्दो मे। नो परलोइएहिंस०-न परलोक के शब्दो मे अर्थात् मनुष्य भिन्न देव और कोकिला आदि तिर्यंचो के शब्दो मे। नो सुएहि स०-न सुने हुए शब्दो मे। नो असुएहिं स०-न अश्रुत नहीं सुने हुए शब्दो में। नो दिट्ठेहिं सद्देहिं-न देखे हुए शब्दों में और। नो अदिट्ठेहिं स०-न अदृष्ट शब्दो मे तथा। नो कंतेहिं सद्देहिं-न कमनीय शब्दो मे। सज्जिज्जा-आसक्त हो। नो गिज्झिज्जा-न उनके सुनने की आकांक्षा करे। नो मुज्झिज्जा-न उनमें

मूर्च्छित हो और। नो अज्झोववज्जिज्जा-न उनमे रागद्वेष करे। **एवं खलु**-इस प्रकार निश्चय ही यह भिक्षु का सम्पूर्ण आचार है। **जाव**-यावत् उसमे। **जएज्जासि**-यत्नशील रहे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हू। **सद्दसत्तिक्कओसमत्तो**-यह शब्द सप्तैकका अध्ययन समाप्त हुआ।

मूलार्थ—सयमशील साधु या साध्वी कथा करने के स्थानो, महोत्सव के स्थानों जहा पर बहुत परिमाण मे नृत्य, गीत, वादित्र, तंत्री, वीणा, तल-ताल, त्रुटित, ढोल इत्यादि वाद्यन्तर बजते हो तो उन स्थानो मे होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन मे विचार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार कलह के स्थान, अपने राज्य के विरोधी स्थान, पर राज्य के विरोधी स्थान, दो राज्यों के परस्पर विरोध के स्थान, वैर के स्थान और जहा पर राजा के विरुद्ध वार्तालाप होता हो इत्यादि स्थानो मे होने वाले शब्दों को सुनने के लिए भी जाने का मन मे सकल्प न करे।

यदि किसी वस्त्राभूषणो से शृगारित और परिवार से घिरी हुई छोटी बालिका को अश्वादि पर बिठा कर ले जाया जा रहा हो तो उसे देखकर तथा किसी एक अपराधी पुरुष को वध के लिए वध्यभूमि मे ले जाते हुए देखकर साधु उन स्थानो मे होने वाले शब्दों को सुनने की भावना से उन स्थानों पर जाने का मन मे विचार न करे।

जो महा आश्रव के स्थान है– जहां पर बहुत से शकट, बहुत से रथ, बहुत से म्लेच्छ, बहुत से प्रान्तीय लोग एकत्रित हुए हों तो साधु-साध्वी वहां पर उनके शब्दो को सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का मन में सकल्प भी न करे।

जिन स्थानो मे महोत्सव हो रहे हो, स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध और युवा आभरणो से विभूषित होकर गीत गाते हो, वाद्यन्तर बजाते हों, नाचते और हसते हो, एव आपस मे खेलते और रतिक्रीड़ा करते हो, तथा विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों को खाते हो, परस्पर बाटते हो, गिराते हो, तथा अपनी प्रसिद्धि करते हो तो ऐसे महोत्सवो के स्थानो पर होने वाले शब्दो को सुनने के लिए साधु वहा पर जाने का कभी भी सकल्प न करे।

वह साधु या साध्वी स्वजाति के शब्दों और परजाति के शब्दो मे आसक्त न बने, एव श्रुत या अश्रुत तथा दृष्ट या अदृष्ट शब्दो और प्रिय शब्दो मे आसक्त न बने। उनकी आकाक्षा न करे और उनमें मूर्च्छित भी न होवे। यही साधु और साध्वी का सम्पूर्ण आचार है और इसी के पालन में उसे सदा संलग्न रहना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि साधु को जहा बहुत से लोग एकत्रित होकर गाते-बजाते हो, नृत्य करते हो, रतिक्रीडा करते हो, हसी-मजाक करते हो, रथ एव घोडो की दौड कराते हो, बालिका को श्रृङ्गारित करके अश्व पर उसकी सवारी निकालते हो, किसी अपराधी को फासी देते समय गधे पर बिठाकर उसकी सवारी निकाल रहे हो और इन अवसरो पर वे जो शब्द कर रहे हो उन्हे सुनने के लिए साधु को उक्त स्थानो पर जाने का सकल्प नही करना चाहिए। और जहा पर अपने देश के राजा के विरोध मे, या अन्य देश के राजा के विरोध मे या दो देशो के राजाओ के पारस्परिक सघर्ष के सम्बन्ध मे बातें होती हो, तो साधु को ऐसे स्थानो मे जाकर उनके शब्द सुनने का सकल्प नहीं

करना चाहिए। क्योकि इन सब कार्यों से मन मे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, चित्त अशात रहता है और स्वाध्याय एव ध्यान मे विघ्न पडता है। अत· सयमनिष्ठ साधक को श्रोत्र इन्द्रिय को अपने वश मे रखने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे इन सब असयम के परिपोषक शब्दो को सुनने का त्याग करके अपनी साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

इस अध्ययन मे यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया गया है कि साधु को राग-द्वेष बढाने वाले किसी भी शब्द को सुनने की अभिलाषा नहीं रखनी चाहिए। साधु का जीवन अपनी साधना को मूर्त रूप देना है, साध्य को सिद्ध करना है। अत· उसे अपने लक्ष्य के सिवाय अन्य विषयो पर ध्यान नहीं देना चाहिए। राग-द्वेष पैदा करने वाले प्रेम-स्नेह एव विग्रह, कलह आदि के शब्दो की ओर उसे अपने मन को बिल्कुल नहीं लगाना चाहिए। यही उसकी साधुता है और यही उसका श्रेष्ठ आचार है।

॥ एकादश अध्ययन समाप्त ॥

॥ सप्तसप्तिकाख्या द्वितीय चूला– रूपसप्तैकका ॥

द्वादश अध्ययन

(चक्षु-इन्द्रिय)

एकादश अध्ययन मे श्रुतेन्द्रिय के विषय का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन मे चक्षु इन्द्रिय से सबद्ध विषय का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भि॰ अहावेगइयाइं रूवाइं पासइ, तं-गंथिमाणि वा वेढिमाणि वा पूरिमाणि वा संघाइमाणि वा कट्ठकम्माणि वा पोत्थकम्माणि वा चित्तक॰ मणिकम्माणि वा दंतक॰ पत्तछिज्जकम्माणि वा विविहाणि वा वेढिमाइं अन्नयराइं विरू॰ चक्खुदंसणपडियाए, नो अभिसंधारिज्ज गमणाए, एवं नायव्वं जहा सद्दपडिमा सव्वा वाइत्तवज्जा रूवपडिमावि त्तिबेमि पंचमं सत्तिक्कयं ॥१७१ ॥

छाया– स भि॰ अथाप्येककानि रूपाणि पश्यति, त॰ ग्रथितानि वा वेष्टिमानि वा पूरिमाणि वा सघातिमानि वा काष्ठकर्माणि वा पुस्तककर्माणि वा चित्रकर्माणि वा मणिकर्माणि वा दन्तकर्माणि वा पत्रछेद्यकर्माणि वा विविधानि वा वेष्टिमानि अन्य॰ विरूप॰ चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया नाभिसन्धारयेद् गमनाय ॥ एव ज्ञातव्य यथा शब्दप्रतिमा सर्वा वादित्रवर्ज्या रूपप्रतिमा अपि। पचम सप्तैककमध्ययनम् समाप्तम्।

पदार्थ– **से भि॰**-वह साधु अथवा साध्वी। **अहावेगइयाइ**-कभी कई तरह के। **रूवाइ**-रूपो को। **पासइ**-देखता है। **त॰**-जैसे कि। **गथिमाणि वा**-गूथे हुए पुष्पो से निष्पन्न स्वस्तिकादि का। **वेढिमाणि वा**-वस्त्र से वेष्टित अथवा निष्पन्न पुत्तलिकादि का। **पूरिमाणि वा**-अनेक पदार्थो से निर्मित पुरुषाकृति। **संघाइमाणि वा**-नानाप्रकार के वर्णो को एकत्रित करके उससे निर्मित्त चोलकादि या। **कट्ठकम्माणि वा**-काष्ठ के द्वारा निर्मित कई पदार्थ। **पोत्थकम्माणि वा**-पुस्तक कर्म ताड़पत्रादि से निष्पन्न पुस्तकादि वस्तु। **चित्तक॰**-चित्रकर्म भीत आदि पर चित्रित चित्र आदि। **मणिकम्माणि वा**-नाना प्रकार की मणियो द्वारा निर्मित स्वस्तिकादि पदार्थ। **दतक॰**-दान्तो से निष्पन्न चूडिया आदि पदार्थ। **पत्तछिज्जकम्माणि वा**-पत्र छेदन क्रिया से उत्पन्न रूपादि तथा अन्य। **विविहाणि**-विविध प्रकार के। **वेढिमाइं**-वेष्टनो से निष्पन्न हुए। **तह॰**-इसी तरह के। **अन्नयराइं**-कई एक। **विरू॰**-विविध रूपो वाले पदार्थों के रूपो को। **चक्खुदसणपडिमाए**-चक्षु से देखने की प्रतिज्ञा से। **नो अभिसधारिज्ज गमणाए**-साधु उस ओर जाने का मन मे विचार न करे। **एव**-इस प्रकार। **नायव्व**-जानना चाहिए। **जहा**-जैसे कि। **सद्दवडियाए**-शब्द सम्बन्धि प्रतिज्ञा का वर्णन किया गया है वह। **सव्वा**-सब।

वाइत्तवजा-वादित्रो को छोड़ कर। रूवपडिमावि-रूपप्रतिज्ञा के विषय में समझें। पचम सत्तिक्कयं-पाचवीं सप्तैकका समाप्त। त्तिबेमि-ऐसा मै कहता हू।

***मूलार्थ*—साधु या साध्वी फूलो से निष्पन्न स्वस्तिकादि, वस्त्रों से निष्पन्न पुत्तलिकादि, पुरिम निष्पन्न पुरुषाकृति और सघात निष्पन्न चोलकादि, इसी प्रकार काष्ठ से निर्मित पदार्थ, पुस्तकें, चित्र, मणियो से, हाथी दात से, पत्रों से तथा बहुत से पदार्थों से निर्मित सुन्दर एव सुरूप पदार्थों के विविध रूपों को देखने के लिए जाने का मन से संकल्प भी न करे। शेष वर्णन शब्द अध्ययन की तरह जानना चाहिए। केवल वाद्ययन्त्र को छोड़कर अन्य वर्णन रूप प्रतिज्ञा के समान ही जानना चाहिए। ऐसा मै कहता हू। पचम सप्तैकका समाप्त।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे रूप-सौन्दर्य को देखने का निषेध किया गया है। इसमे बताया गया है कि चार कारणो से वस्तु या मनुष्य के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि होती है- १-फूलो को गूथकर उनसे माला, गुलदस्ता आदि बनाने से पुष्पो का सौन्दर्य एव उन्हे धारण करने वाले व्यक्ति की सुन्दरता भी बढ जाती है। २ वस्त्र आदि से आवृत्त व्यक्ति भी सुन्दर प्रतीत होता है। विविध प्रकार की पोशाक भी सौन्दर्य को बढाने का एक साधन है। ३ विविध साचो मे ढालने से आभूषणो का सौन्दर्य चमक उठता है और उन्हे पहन कर स्त्री-पुरुष भी विशेष सुन्दर प्रतीत होने लगते हैं। ४ वस्त्रो की सिलाई करने से उनकी सुन्दरता बढ जाती है और विविध फैशनो से सिलाई किए हुए वस्त्र मनुष्य की सुन्दरता को और अधिक चमका देते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि विविध सस्कारो से पदार्थों के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि हो जाती है। साधारण सी लकडी एव पत्थर पर चित्रकारी करने से वह असाधारण प्रतीत होने लगती है। उसे देखकर मनुष्य का मन मोहित हो उठता है। इसी तरह हाथी दात, कागज, मणि आदि पर किया गया विविध कार्य एव चित्रकला आदि के द्वारा अनेक वस्तुओ को देखने योग्य बना दिया जाता है और कला कृतिया उस समय के लिए नहीं, बल्कि जब तक वे रहती है मनुष्य के मन को आकर्षित किए बिना नहीं रहती हैं। इससे उस युग की शिल्प की एक झाकी मिलती है, जो उस समय विकास के शिखर पर पहुच चुकी थी। उस समय मशीनो के अभाव मे भी मानव वास्तु-कला एव शिल्पकला मे आज से अधिक उन्नति कर चुका था।

इन सब कलाओ एव सुन्दर आकृतियो तथा दर्शनीय स्थानो को देखने के लिए जाने का निषेध करने का तात्पर्य यह है कि साधु का जीवन साधना के लिए है, आत्मा को कर्म बन्धनो से मुक्त करने के लिए है। अत यदि वह इन सुन्दर पदार्थो के देखने के लिए इधर-उधर जाएगा या दृष्टि दौडाएगा तो उससे चक्षु इन्द्रिय का पोषण होगा, मन मे राग-द्वेष या मोह की उत्पत्ति होगी और स्वाध्याय एव ध्यान की साधना मे विघ्न पडेगा। अत. सयम निष्ठ साधु को सदा अध्यात्म चिन्तन मे सलग्न रहना चाहिए। उसे अपने मन एव दृष्टि को इधर-उधर नहीं दौडाना चाहिए। चक्षु इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना साधना का मूल उद्देश्य है। अत साधु को विविध वस्तुओ एव स्थानो के रूप सौन्दर्य को देखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

॥ द्वादश अध्ययन समाप्त ॥

॥ सप्तसप्तिकाख्या द्वितीय चूला- परक्रिया ॥

त्रयोदश अध्ययन

(परक्रिया)

प्रस्तुत अध्ययन मे साधु के लिए दूसरे व्यक्ति द्वारा की जाने वाली क्रियाओ के सम्बन्ध मे उल्लेख किया गया है। अत इस अध्ययन का नाम 'परक्रिया' रखा गया है। 'पर' शब्द का ६ प्रकार से कथन किया गया है- १ तत्पर, २ अन्यतर पर, ३ आदेश पर। ४ क्रम पर, ५ बहु पर और ६ प्रधान पर।

१ तत्पर- एक परमाणु दूसरे परमाणु से भिन्न होने के कारण उसे तत्पर कहते हैं अर्थात् वह परमाणु तत्- उस परमाणु से पर-भिन्न है।

२ अन्यतर पर - एक द्रव्य दो परमाणु से युक्त, दूसरा तीन परमाणु से युक्त है और इसी तरह अन्य द्रव्य अन्य अनेक परिमाण वाले परमाणुओ से युक्त है, इस तरह वे परस्पर एक-दूसरे से अन्यतर हैं, यही अन्यतर पर कहलाता है।

३ आदेश पर- किसी व्यक्ति के आदेश पर कार्य करना आदेश पर कहलाता है। क्योकि आदेश का परिपालक आदेश देने वाले से भिन्न है। जैसे- नौकर अपने स्वामी या अधिकारी के आदेश पर कार्य करते है।

४ क्रम पर- जैसे एक प्रदेशी द्रव्य से, द्वि प्रदेशी द्रव्य क्रम पर है। इसी प्रकार इस से आगे की सख्या की भी कल्पना की जा सकती है। सख्या के क्रम से जो पर हो उन्हे क्रम पर कहते हैं।

५ बहु पर- एक परमाणु से तीन या चार परमाणु वाले द्रव्य बहु पर है, क्योकि उनकी भिन्नता एक से अधिक परमाणुओ मे है।

६ प्रधान पर- पद की प्रधानता के कारण जो अपने सजातीय पदार्थो से भिन्न है, उसे प्रधान पर कहते हैं। जैसे- मनुष्यो मे तीर्थकर भगवान प्रधान हैं, पशुओ मे सिह और वृक्षो मे अर्जुन, सुवर्ण और अशोक वृक्ष प्रधान माना गया है।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि जो व्यक्ति अपने से भिन्न है, उसे पर कहते हैं। अत साधु भिन्न गृहस्थ के द्वारा साधु के लिए की जाने वाली क्रिया को पर क्रिया कहते हैं। उक्त परक्रियाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- परकिरियं अज्झत्थियं संसेसियं नो तं सायए नो तं नियमे, सिया से परो पाए आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा नो तं सायए नो तं नियमे। से सिया परो पायाइं संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा नो तं सायए नो तं नियमे। से

सिया परो पायाइं फुसिज्ज वा रइज्ज वा नो तं सायए नो तं नियमे। से सिया परो पायाइं तिल्लेण वा घ० वसाए वा मक्खिज्ज वा अब्भिंगिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो पायाइं लुद्धेण वा कक्केण वा चुन्नेण वा वण्णेण वा उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो पायाइं सीओदगवियडेण वा २ उच्छोलिज्ज वा पहोलिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो पायाइं अन्नयरेण विलेवणजायेण आलिंपिज्ज वा विलिंपिज्ज वा नो तं २। से सिया परो पायाइं अन्नयरेण धूवणजाएण धूविज्ज वा पधू० नो तं २। से सिया परो पायाओ खाणुयं वा कंटयं वा नीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा नो तं २। से सिया परो पायाओ पूयं वा सोणियं वा नीहरिज्ज वा विसो० नो तं० २। से सिया परो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जिज्ज वा नो तं सायए नो तं नियमे। से सिया परो कायं संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो कायं तिल्लेण वा घ० वसा० मक्खिज्ज वा अब्भंगिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो कायं लुद्धेण वा ४ उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो कायं सीओ० उसिणो० उच्छोलिज्ज वा प० नो तं० २। से सिया परो कायं अन्नयरेण विलेवणजाएण आलिंपिज्ज वा २ नो तं २। से० कायं अन्नयरेण धूवणजाएण धूविज्ज वा प० नो तं० २। से० कायंसि वणं आमज्जिज्ज वा २ नो तं० २। से० वणं संवाहिज्ज वा पलि० नो तं० २। से० वणं तिल्लेण वा घ० २ मक्खिज्ज वा अब्भं० नो तं० २। से० वणं लुद्धेण वा ४ उल्लेढिज्ज वा उव्वलेज्ज वा नो तं० २। से सिया परो कायंसि वणं सीओ० उ० उच्छोलिज्ज वा प० नो तं० २। से सिया परो वणं वा गंडं वा अरइं वा पुलइयं वा भगंदलं वा अन्नयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदिज्ज वा विच्छिंदिज्ज वा नो तं० २। से सिया परो अन्न० जाएण अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा नीहरिज्ज वा वि० नो तं० २। से० कायंसि गंडं वा अरइं वा पुलइयं वा भगंदलं वा आमज्जिज्ज वा २ नो तं० २। से० गंडं वा ४ संवाहिज्ज वा पलि० नो तं० २। से० कायं० गंडं वा ४ तिल्लेण वा ३ मक्खिज्ज वा २ नो तं० २। से० गंडं वा ४ लुद्धेण वा ४ उल्लोढिज्ज वा उ० नो तं० २। से० गंडं वा ४ सीओदग० २ उच्छोलिज्ज वा प० नो तं० २। से० गंडं वा ४ अन्नयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदिज्ज वा वि० अन्न० सत्थ० अच्छिंदित्ता वा २ पूयं वा २ सोणियं वा नीह० विसो०

नो तं० सायए २। से सिया परो कायंसि सेयं वा जल्लं वा नीहरिज्ज वा वि० नो तं० २। से सिया परो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा नहम० नीहरिज्ज वा २ नो तं० २। से सिया परो दीहाइं बालाइं दीहाइं वा रोमाइं दीहाइं भमुहाइं दीहाइं कक्खरोमाइं दीहाइं बत्थिरोमाइं कप्पिज्ज वा संठविज्ज वा नो तं० २। से सिया परो सीसाओ लिक्खं वा जूयं वा नीहरिज्ज वा वि० नो तं० २। से सिया परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावित्ता पायाइं आमज्जिज्ज वा पम० एवं हिट्ठिमो गमो पायाइं भाणियव्वो। से सिया परो अंकंसि वा २ तुयट्टावित्ता हारं वा अद्धहारं वा उरत्थं वा गेवेयं वा मउडं वा पालंबं वा सुवन्नसुत्तं वा आविहिज्ज वा पिणहिज्ज वा नो तं० २। से० परो आरामंसि वा उज्जाणंसि वा नीहरित्ता वा पविसित्ता वा पायाइ आमज्जिज्ज वा प० नो तं सायए०॥ एवं नेयव्वा अन्नमन्नरियावि॥१७२।

छाया– परक्रियां आध्यात्मिकीं सांश्लेषिकीं नो ताम् अस्वादयेत् नो तां नियमयेत्। स्यात् तस्य पर· पादौ आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा नो ताम् आस्वादयेत् नो तां नियमयेत्। तस्य स्यात् पर. पादौ संवाहयेत् वा, परिमर्दयेत् वा नो तां आस्वादयेत् नो तां नियमयेत्। स्यात् तस्य परः पादौ स्पर्शयेत् वा रञ्जयेत् वा नो तां नियमयेत्। स्यात् तस्य परः पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा म्रक्षयेत् वा अभ्यञ्जयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः पादौ लोध्रेण वा करकेन वा चूर्णेन वा वर्णेन उल्लोलयेत् वा उद्वर्तयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः पादौ शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उच्छोलयेत् वा प्रधावयेत् वा मो तां० २। तस्य स्यात् परः पादौ अन्यतरेण विलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिंपेद् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः पादौ अन्यतरेण धूपनजातेन धूपयेत् वा प्रधूपयेत् वा नो ता० २। तस्य स्यात् परः पादौ खाणुकं वा कंटक वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः पादौ पूयं वा शोणितं वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं संवाहयेत् वा परिमर्दयेत् वा नो तां २। तस्य स्यात् परः कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा म्रक्षयेत् वा अभ्यजयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं लोध्रेण वा ४ उल्लोलयेत् वा उद्वर्तयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उच्छोलयेत् वा प्रधावयेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं अन्यतरेण विलेपनजातेन आलिम्पेत् वा विलिम्पेत् वा नो तां० २। तस्य स्यात् परः कायं अन्यतरेण धूपनजातेन धूपयेत् वा प्रधूपयेत् वा नो तां २। तस्य स्यात् परः काये व्रणमामृज्यात् वा

प्रमृज्यात् वा नो तां २। तस्य स्यात् परः काये व्रणं संवाहयेत् वा परिमर्दयेत् वा नो तां २। तस्य स्यात् परः काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा प्रक्षयेत् वा अभ्यंजयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः काये ब्रणं लोध्रेण वा ४ उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् पर. काये व्रणं शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उच्छोलयेत् वा प्रधावयेत् नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः काये व्रणं गंडं वा अरतिं वा पुलकितं वा भगन्दरं वा अन्यतरेण शस्त्रजातेन आच्छिन्द्यात् वा विच्छिन्द्यात् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः अन्यतरेण शस्त्रजातेन आच्छिन्द्य वा विच्छिन्द्य वा पूयं वा शोणित वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् पर· काये गंडं वा अरतिं वा पुलकित वा भगंदर वा आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः काये गंडं वा ४ संवाहयेत् वा परिमर्दयेत् वा नो ता॰ २॥ तस्य स्यात् परः काये गंड वा ४ तैलेन वा ३ प्रक्षयेत् वा अभ्यंजयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् पर. काये गड वा ४ लोध्रेण वा ४ उल्लोलयेत् वा उद्वर्तयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः काये गंडं वा ४ शीतोदकविकटेन वा उष्णोदकविकटेन वा उच्छोलयेत् वा प्रधावयेत् वा नो ता॰ २। तस्य स्यात् पर काये गंडं वा ४ अन्यतरेण वा शस्त्रजातेन आच्छिन्द्यात् वा विच्छिन्द्यात् वा अन्यतरेण शस्त्रजातेन आछिन्द्य वा विच्छिन्द्य वा पूयं वा शोणित वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो ता॰ २। तस्य स्यात् परः काये स्वेद वा जल वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो ता॰ २। तस्य स्यात् परः अक्षिमल वा कर्णमल वा दन्तमल वा नखमल वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो ता॰ २। तस्य स्यात् परः दीर्घाणि वालानि दीर्घाणि वा रोमाणि दीर्घे भ्रुवौ दीर्घाणि कक्षरोमाणि दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कृन्तेत् वा सस्थापयेत् वा नो ता॰ २। तस्य स्यात् पर. शीर्षत लिक्षां वा यूकां वा निहरेत् वा विशोधयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् पर. अके वा पर्यंके वा स्वपायित्वा आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा, एवं अधोगम. पादादौ भणितव्य.। तस्य स्यात् परः अके वा पर्यंके वा स्वपयित्वा हारं वा अर्द्धहारं वा उरस्थं वा ग्रैवेयक मुकट वा प्रालम्बं वा सुवर्णसूत्रं वा आबध्नीयात् वा पिधापयेत् वा नो तां॰ २। तस्य स्यात् परः आरामे वा उद्याने वा निहृत्य वा प्रविश्य वा पादौ आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा नो तामास्वादयेत् नो ता नियमयेत्। एव नेतव्या अन्योन्यक्रियापि।

पदार्थ— परकिरिय-अपने से भिन्न अन्य व्यक्ति की चेष्टा को परक्रिया कहते हैं, वह परक्रिया। अज्झत्थिय-अपनी आत्मा मे क्रिया करता हुआ, अर्थात् कोई व्यक्ति साधु के अगोपाग विषयक काय व्यापार रूप चेष्टा, यथा। ससेसियं-साश्लेषिकी क्रिया अर्थात् पापकर्म की जनक। तं-उस क्रिया को। नो सायए-मन से भी न चाहे। त-उस क्रिया को। नो नियमे-वाणी और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-अन्य गृहस्थ। से-उस साधु के। पाए-पैरो को। आमज्जिज्ज वा-वस्त्र से थोड़ा सा झाड़े। पमज्जिज्ज वा-वस्त्रादि से अच्छी तरह प्रमार्जन करे अर्थात् पूछ कर साफ करे तो। तं-उस क्रिया को। नो सायए-साधु मन से भी न चाहे। तं नो नियमे-और वचन एव शरीर से उस क्रिया को न कराए। से सिया परो-कदाचित् गृहस्थ उस साधु के। पायाइं-चरणो

को। सवाहिज्ज वा-समर्दन करे अथवा। पलिमदिज्ज वा-सर्व प्रकार से मर्दन करे तो। तं-साधु उस क्रिया को। नो सायए-मन से भी न चाहे और। तं-उसको। नो नियमे-वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उस साधु के। पायाइ-चरणो को। फुसिज्ज वा-स्पर्शित करे। रइज्ज वा-अथवा रगे तो। त-उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे। तं-उसको। नो नियमे-वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-साधु के। पायाइ-चरणो को। तिल्लेण वा-तैल से। घ०-घृत से। वसाए वा-अथवा वसा-औषधि विशेष से या सुगन्धित द्रव्य से। मक्खिज्ज वा-मसले। अब्भिगिज्ज वा-विशेष रूप से मर्दन करे तो। त-साधु उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे और। त-उस क्रिया को। नो-नियमे-वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके-साधु के। पायाइ-चरणो को। लुद्धेण वा-लोध्र से। कक्केण वा-कर्क नामक द्रव्य विशेष से। चुन्नेण वा-चूर्ण से-गोधूमादि के चूर्ण से। वण्णेण वा-अबीर आदि वर्ण से। उल्लोढिज्ज वा-उद्वर्तन करे अथवा। उव्वल्लिज्ज वा-शरीर को ससृष्ट करे तो। त-उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे तथा। तं-उसको। नो नियमे-वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके-साधु के। पायाइ-पैरो को। सीओदगवियडेण वा-शीतल स्वच्छ एव निर्मल जल से या। उसिणोदगवि०-उष्ण जल से। अच्छोलिज्ज वा-छींटे दे या। पहोविज्ज वा-धोए तो। त-उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे और। त-उसको। नो नियमे-वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उस साधु के। पायाइ-पैरो को। अन्नयरेण-अन्य किसी। विलेवणजाएण-विलेपन से। आलिपिज्ज वा-आलेपित करे। विलिपिज्ज वा-विलेपित करे तो। त-उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे। त नो नियमे-उस क्रिया को वचन और काया से न करावे। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उस साधु के। पायाइ-पैरो को। अन्नयरेण-अन्य किसी। धूवणजाएण-धूप से। धूविज्ज वा-धूपित करे। विधूविज्ज वा-विधूपित करे तो। त नो सायए-उस क्रिया को मन से न चाहे। त नो नियमे-उसको वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उस साधु के। पायाओ-पैरो से। खाणुय वा-खानु या। कटयं-कटक-काटे को। निहरिज्ज वा-निकाले या। विसोहिज्ज वा-चरण को कटक के शल्य से विशुद्ध करे तो। त नो सायए-उसको मन से न चाहे। त नो नियमे-उसको वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके-साधु के। पायाओ-चरणो से। पूयं वा-पीप-राध को। सोणिय वा-या शोणित-खून को। नीहरिज्ज-निकाल कर। विसोहिज्ज वा-चरणो को शुद्ध करे तो। त नो सायए-उस क्रिया को मन से न चाहे। त नो नियमे-उसको वचन और शरीर से न कराए।

सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके-साधु के। कायं-शरीर को। आमज्जेज्ज वा-वस्त्रादि से पोछे। पमज्जिज्ज वा-बार-बार पोछे तो। तं नो सायए-उस क्रिया को मन से न चाहे। तं नो नियमे-उसे वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके। कायं-शरीर को। संवाहिज्ज वा-सवाहन-समर्दन करे। पलिमद्दिज्ज वा-या पूरी तरह से मालिश करे तो। तं नो सायए-उस क्रिया को साधु मन से न चाहे तथा। तं नो नियमे-वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उस साधु के। कायं-शरीर को। तिल्लेण वा-तैल से। घ० वा-या घृत से। वसा०-या वसा-औषधि विशेष से या सुगन्धित द्रव्य से।

मक्खिज्ज वा-मसले या। **अब्भंगिज्ज वा**-चोपड़े। **तं नो सायए**-उस क्रिया को मन से न चाहे। **तं नो नियमे**-वाणी और शरीर से न कराए। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस के-साधु के। **काय**-शरीर को। **लुद्धेण वा ४**- लोध्रादि से। **उल्लोढिज्ज वा**-उद्वर्तन करे या। **उव्वल्लिज्ज वा**-ससृष्ट करे तो। **त नो सायए**- उस क्रिया को साधु न तो मन से चाहे। **त नो नियमे**-और न वचन तथा शरीर से कराए॥ **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस साधु की। **कायं**-काया-शरीर को। **सीओ॰**-शीतल निर्मल जल से या। **उसिणो॰**-उष्ण जल से। **उच्छोलिज्ज वा**-उत्क्षालन करे-छीटे दे। **प॰**-अथवा धोए तो। **त नो सायए**-उस क्रिया को साधु न तो मन से चाहे। **त नो नियमे**-और न वाणी और शरीर से कराए। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस साधु की। **कायं**-काया को। **अन्नयरेण**-अन्य किसी। **विलेवणजाएण**-विलेपन से। **आलिपिज्ज वा**-आलेपन करे। **विलिपिज्ज वा**-या विलेपित करे तो। **त नो सायए नो नियमे**-उसको साधु न तो मन से चाहे और न वचन तथा काया से कराए॥ **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस साधु के। **काय**-शरीर को। **अन्नयरेण**-अन्य किसी। **धूवणजाएण**-धूप से। **धूविज्ज वा**-धूपित करे। **पधूविज्ज वा**-या प्रधूपित करे तो। **त नो सायए**-उस क्रिया को मन से न चाहे तथा। **त नो नियमे**-उस क्रिया को शरीर और वाणी से न कारए॥

सिया-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस साधु के। **कायसि**-शरीर पर हुए। **वण**-व्रण-फोड़े को देखकर। **आमज्जिज्ज वा २** -वस्त्र से थोड़ा सा पोछे या बार-बार पोछे तो साधु। **त नो सायए**-उस क्रिया को मन से न चाहे। **त नो नियमे**-तथा वाणी और शरीर से उक्त क्रिया को न कराए। **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु के। **कायंसि**-शरीर गत। **वण**-व्रण को देखकर। **परो**-अन्य गृहस्थ। **सवाहिज्ज वा**-उसका संवाहन करे या। **पलि॰**-सर्व प्रकार से मर्दन करे तो साधु गृहस्थ की। **त**-उस क्रिया को। **नो सायए**-मन से न तो चाहे तथा। **नो त नियमे**-न उसको वचन और काया से कराए॥ **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु के। **कायंसि**-शरीर मे होने वाले। **वणं**-व्रण को देख कर। **परो**-गृहस्थ उसे। **तिल्लेण वा**-तैल से। **घ॰**-अथवा घृत से या। **वसाए**- सुगन्धित द्रव्य से। **मक्खिज्ज वा**-मसले। **अब्भं॰**-अथवा चोपड़े तो। **तं॰**-उस क्रिया को साधु मन से। **नो सायए**-न चाहे। **त नो नियमे**-तथा वचन और काया से न कराए। **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु के। **कायसि**-काया मे होने वाले। **वण**-व्रण को देख कर। **परो**-गृहस्थ। **लुद्धेण वा ४**- लोध्रादि से। **उल्लोढिज्ज वा**-उद्वर्तन करे। **उव्वल्लेज्ज वा**-अथवा ससृष्ट करे तो साधु गृहस्थ की। **त**-इस क्रिया को। **नो सायए**-न तो मन से चाहे और। **तं नो नियमे**-न उसको वचन तथा काया से कराए। **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु के। **कायसि**-शरीर मे हुए। **वण**-व्रण को देखकर। **परो**-गृहस्थ। **सीओ॰ उ॰**-शीतल निर्मल जल से या उष्ण जल से। **उच्छोलिज्ज वा**-उत्क्षालन करे या धोए तो। **त**-उस क्रिया को। **नो सायए॰ २**- न तो मन से चाहे, न वचन से कहे और न काया से कराए। **सिया**-कदाचित्। **से**-उस साधु के। **कायंसि**-शरीर मे हुए। **वणं**-व्रण को देख कर। **गड वा**-अथवा विशेष जाति के व्रण को देखकर। **परो**-गृहस्थ तथा। **अरइ वा**-अरति-व्रण विशेष। **पुलइयं वा**-पुलक व्रण विशेष अथवा। **भगदल वा**-भगन्दर नाम के व्रण विशेष को देख कर उसे। **अच्छिंदिज वा**-थोड़ा सा छेदन करे। **विच्छिंदिज वा**-विशेष रूप से छेदन करे तो। **त**-गृहस्थ की इस क्रिया को साधु। **नो सायए**-न तो मन से चाहे। **तं नो नियमे**-न वाणी से कहे और न काया से कराए। **सिया**-कदाचित्। **से**-साधु के। **कायंसि**-शरीर गत। **वणं**-व्रण आदि

को देखकर। परो-गृहस्थ उसे। अन्न॰-अन्य किसी। सत्थजाएण-शस्त्र विशेष से। अच्छिदित्ता वा-थोड़ा सा छेदन करके। विच्छिंदित्ता वा-विशेष रूप मे छेदन करके उस मे से। पूयं वा-पीप को। सोणियं वा-या शोणित खून को। नीहरिज्ज वा-निकाले। वि॰-या विशुद्ध करे तो। त-गृहस्थ की उक्त क्रिया को साधु। नो सायए- मन से न चाहे। तं नो नियमे-उक्त क्रिया को वचन तथा काया से न कराए।

सिया-कदाचित्। से-उस साधु के। कायंसि-शरीर मे होने वाले। गंडं वा-गड-व्रण विशेष को। अरइ वा-अरति-अर्श विशेष को। पुलइय वा-पुलक-व्रण विशेष को। भगदलं वा-अथवा भगन्दर नाम के व्रण विशेष को देखकर। परो-गृहस्थ यदि उसे। आमज्जिज्ज वा-वस्त्रादि से थोड़ा सा साफ करे। पमज्जिज्ज वा-अथवा विशेष रूप से प्रमार्जित करे तो साधु। त नो सायए नो नियमे-उसको मन से न चाहे, वाणी से न कहे और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। से-साधु के। कायसि-शरीर मे उत्पन्न हुए। गड वा ४-फोड़े आदि को देखकर। परो-गृहस्थ उसे। संवाहिज्ज वा-सवाहन करे-थोड़ा सा मसले। पलि॰-सर्व प्रकार से समर्दन करे-मसले तो साधु। तं नो सायए त नो नियमे-गृहस्थ की इस क्रिया को न मन से चाहे, न वचन और काया से कराए। सिया-कदाचित्। से-साधु के। कायंसि-शरीर मे उत्पन्न हुए। गड वा ४-गडादि व्रण को देखकर। परो-गृहस्थ उसे। तिल्लेण वा-तैल से। घ॰-घृत से। वसा॰-किसी सुगन्धित द्रव्य से। मक्खिज्ज वा २-मसले तो। तं-उस क्रिया को। नो सायए-मन से न चाहे। तं नो नियमे-उसको वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। से-साधु के। कायसि-शरीर मे उत्पन्न हुए। गड वा ४-गडादि व्रण को देखकर। परो-गृहस्थ उसे। लुद्धेण वा ४- लोध्रादि से। उल्लेढिज्ज वा-उद्वर्तन करे। उ॰-अथवा ससृष्ट करे। त नो सायए-उस क्रिया को मन से न चाहे। तं नो नियमे-उस क्रिया को वचन और काया से न कराए। सिया-कदाचित्। से-उसके-साधु के। कायंसि शरीर मे से उत्पन्न हुए। गड वा-फोडे आदि को देख कर। परो-गृहस्थ उसे। सीओदग॰-शीतोदक से। उ॰-अथवा उष्णोदक से। उच्छोलिज्ज वा-उत्क्षालन करे-छींटे देवे। प॰-अथवा प्रक्षालन करे-धोवे। त-उस क्रिया को साधु। नो सायए-मन से न चाहे। त-उस क्रिया को साधु। नो नियमे-वाणी से न कहे तथा शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। से-उसके-साधु के। कायसि-शरीर मे उत्पन्न हुए। गड वा ४- गडादि व्रणो को देख कर। परो-गृहस्थ उन्हे। अन्नयरेण-किसी। सत्थजाएण-शस्त्र विशेष से। अच्छिदिज्ज वा-थोड़ा सा छेदन करे। वि॰-विशेष छेदन करे, तथा। अन्न॰ सत्थ॰-अन्य किसी शस्त्र विशेष से उस व्रण को। अच्छिदित्ता वा २-थोड़ा या अधिक छेदन करके उसमे से। पूय वा-पीप को। सोणिय वा-या शोणित को। नीहरि॰-निकाल कर। विसोहि॰-उसे विशुद्ध करे तो। तं-उस क्रिया को। नो सायए-साधु मन से न चाहे। तं॰-उस क्रिया को साधु। नो नियमे-वाणी से न कहे और शरीर से न कराए।

सिया-कदाचित्। से-उसके-साधु के। कायंसि-शरीर मे उत्पन्न हुए। सेयं वा-स्वेद को देखकर। परो-गृहस्थ अथवा शरीर मे उत्पन्न हुए। जल्लं वा-मलयुक्त जल को देखकर उसे। नीहरिज्ज वा-निकाले। वि॰-विशुद्ध करे तो। तं-उस क्रिया को। नो सायए-साधु मन से न चाहे। तं नो नियमे-उस क्रिया को वाणी और शरीर से न कराए। सिया-कदाचित्। परो-गृहस्थ। से-उसके-साधु के। अच्छिमलं वा-आंख के मैल को। कण्णमलं वा-कान के मैल को। नहमलं वा-नखो के मैल को। नीहरिज्ज वा-दूर करे। वि॰-अथवा विशुद्ध

करे तो। तं-उस क्रिया को। **नो सायए**-मन से न चाहे तथा। **तं नो नियमे**-उस क्रिया को वचन और काया से न कराए। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उसके-साधु के। **दीहाइ**-दीर्घ। **वालाइं**-बालो को। **दीहाइं**-दीर्घ। **रोमाइं**-रोमो को। **दीहाइं भमुहाइं**-दीर्घ भ्रुवो को तथा। **दीहाइं कक्खरोमाइ**-दीर्घ कक्षा के रोमों को। **दीहाइ**-दीर्घ। **वत्थिरोमाइ**-वस्ति के रोमो को-गुह्य प्रदेश के रोमो को। **कप्पिज्ज वा**-काटे। **सठविज्ज वा**-अथवा संवारे अर्थात् कैंची उस्तरे आदि से काट कर सवारे, सुशोभित करे तो। **त**-उस क्रिया को। **नो सायए**-साधु मन से न चाहे। **तं**-उसको। **नो नियमे**-वाणी और शरीर से न करावे॥ **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उसके-साधु के। **सीसाओ**-सिर मे से। **लिक्ख**-लीखो। **वा**-अथवा। **जूय वा**-जूओ को। **नीहरिज्ज वा**-निकाले। **वि॰**-अथवा विशुद्ध करे तो। **त**-उस को साधु। **नो सायए**-मन से न चाहे। **त नो नियमे**-तथा उस क्रिया को वचन से और शरीर से न कराए।

सिया-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस को-साधु को। **अकंसि वा**-अपनी गोद मे। **पलियंकसि वा**-अथवा पर्यंक पर। **तुयट्टावित्ता**-सुलाकर अर्थात् गोद आदि मे लिटा कर उसके। **पायाइ**-चरणो को। **आमज्जिज्ज वा**-थोड़ा सा वस्त्रादि से झाड़े अथवा। **पम॰**-अच्छी तरह से प्रमार्जित करे तो। **एवं**-इस प्रकार। **हिट्ठिमो**-पूर्वोक्त। **गमो**-पाठ जो कि। **पायाइं**-पैरो के विषय मे कहा है वह सब यहा पर भी। **भाणियव्वो**-कहना चाहिए। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उस साधु को। **अंकसि वा**-अपनी गोद मे। **पलियकसि वा**-पर्यंक मे। **तुयट्टावित्ता**-लिटा कर। **हार वा**-१८ लड़ी के हार को। **अद्धहा॰**-नौ लड़ी के हार को। **उरत्थ वा**-छाती पर लटका कर। **गेवेय वा**-या गले में डाल कर। **मउड वा**-मुकुट तथा। **पालब वा**-झुमके आदि से युक्त करके या। **सुवण्णसुत्तं वा**-सुवर्ण के सूत्र को। **आविहिज्ज वा**-बान्धे। **पिणहिज्ज वा**-या पहनावे तो। **त**-उस क्रिया को साधु। **नो सायए**-मन से न चाहे। **तं**-तथा उसको। **नो नियमे**-वचन और काया से न कराए।

सिया-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **से**-उसको-साधु को। **आरामसि वा**-आराम मे। **उज्जाणसि वा**-अथवा उद्यान मे। **नीहरित्ता वा**-ले जाकर। **पविसित्ता वा**-अथवा प्रवेश कराकर उसके। **पायाइ**-चरणो को। **आमज्जिज्ज वा**-थोड़ा सा झाड़े। **पमज्जिज्ज वा**-अथवा विशेष रूप से प्रमार्जित करे तो। **तं**-उस क्रिया को साधु। **नो सायए**-न तो मन से चाहे तथा। **नो त**-नाहीं उसको। **नियमे**-वाणी और शरीर द्वारा करावे। **एव**-इसी प्रकार। **अन्नमन्नकिरियावि**-परस्पर साधुओ की क्रिया के विषय में भी। **नेयव्वा**-जान लेना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार पर-गृहस्थ सम्बन्धि क्रिया के विषय में कथन किया है, उसी प्रकार साधुओ की परस्पर क्रिया के सम्बन्ध मे जान लेना चाहिए।

मूलार्थ—यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर कर्मबन्धन रूप क्रिया करे तो मुनि उसको मन से न चाहे और न वचन से तथा काया से उसे कराए। जैसे– कोई गृहस्थ मुनि के चरणो को साफ करे, प्रमार्जित करे, आमर्दन या समर्दन करे - तेल से, घृत से या वसा (औषधिविशेष) से मालिश करे। एवं लोध्र से, कर्क से, चूर्ण से या वर्ण से उद्वर्तन करे या निर्मल शीतल जल से, उष्ण जल से प्रक्षालन करे या इसी प्रकार विविध प्रकार के विलेपनों से आलेपन और विलेपन करे। धूप

विशेष से धूपित और प्रधूपित करे, मुनि के पैर में लगे हुए कंटक आदि को निकाले और शल्य को शुद्ध करे तथा पैरो से पीप और रुधिर को निकाल कर शुद्ध करे तो मुनि गृहस्थ से उक्त क्रियाएं कदापि न कराए।

इसी तरह यदि कोई गृहस्थ साधु के शरीर मे उत्पन्न हुए व्रण-सामान्य फोडा, गंड, अर्श, पुलक और भगदर आदि व्रणो को शस्त्रादि के द्वारा छेदन करके पूय और रुधिर को निकाले तथा उसको साफ करे एव जितनी भी क्रियाए चरणो के सम्बन्ध मे कही गई हैं वे सब क्रियाए करे, तथा साधु के शरीर पर से स्वेद और मल युक्त प्रस्वेद को दूर करे, एवं आख, कान, दात और नखो के मल को दूर करे तथा शिर के लम्बे केशो, और शरीर पर के दीर्घ रोमो को अथच बस्ति (गुदा आदि गुह्य प्रदेश) गत दीर्घ रोमो को कतरे अथवा सवारे, तथा सिर मे पड़ी हुई लीखों और जुओ को निकाले। इसी प्रकार साधु को गोद मे या पलग पर बिठा कर या लिटाकर उसके चरणो को प्रमार्जन आदि करे, तथा गोद मे या पलंग पर बिठा कर हार (१८ लड़ी का) अर्द्धहार (९ लड़ी का) छाती पर पहनाने वाले आभूषणो (गहने) गले मे डालने के आभूषणो एवं मुकुट, माला और सुवर्ण के सूत्र आदि को पहनाए, तथा आराम और उद्यान मे ले जाकर चरण प्रमार्जनादि पूर्वोक्त सभी क्रियाए करे, तो मुनि उन सब क्रियाओं को न तो मन से चाहे और न वाणी अथच शरीर द्वारा उन्हे करवाने का प्रयत्न करे। तथा इसी प्रकार साधु भी परस्पर मे पूर्वोक्त क्रियाओ का आचरण न करे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे परक्रिया के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन किया गया है। इस मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ साधु के पैर आदि का प्रमार्जन करके उसे गर्म या ठण्डे पानी से धोए और उस पर तेल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थो की मालिश करे या उसके घाव आदि को साफ करे या बवासीर आदि की विशेष रूप से शल्य चिकित्सा आदि करे, या कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद मे या पलग पर बैठा मालिश कर उसे आभूषणो से सुसज्जित करे, या उसके सिर के बाल, रोम, नख एव गुप्तागो पर बढे हुए बालो को देखकर उन्हे साफ करे, तो साधु उक्त क्रियाओ को न मन से चाहे और न वाणी एव काया से उनके करने की प्रेरणा दे। वह उक्त क्रियाओ के लिए स्पष्ट इन्कार कर दे।

यह सूत्र विशेष रूप से जिन कल्पी मुनि से सबद्ध है, जो रोग आदि के उत्पन्न होने पर भी औषध का सेवन नहीं करते। स्थविर कल्पी मुनि निरवद्य एव निर्दोष औषध ले सकते हैं। ज्ञातासूत्र मे शैलक राजऋषि के चिकित्सा करवाने का उल्लेख है। परन्तु साधु को बिना किसी विशिष्ट कारण के गृहस्थ से तेल आदि का मर्दन नहीं करवाना चाहिए। और इसी दृष्टि से सूत्रकार ने गृहस्थ के द्वारा चरण स्पर्श आदि का निषेध किया है। यह निषेध भक्ति की दृष्टि से नहीं, बल्कि तेल आदि की मालिश करने की अपेक्षा से किया गया है। यदि कोई गृहस्थ श्रद्धा एव भक्तिवश साधु का चरण स्पर्श करे तो इसके लिए भगवान ने निषेध नहीं किया है। उपासकदशाग सूत्र मे बताया गया है कि जब गौतम आनन्द श्रावक को दर्शन देने गए तो आनन्द ने उनके चरणो का स्पर्श किया था। इससे स्पष्ट होता है कि यदि कोई गृहस्थ वैयावृत्य करने या पैर आदि प्रक्षालन करने के लिए पैरो का स्पर्श करे तो साधु उसके लिए इन्कार कर दे। यह वैयावृत्य करवाने का प्रकरण जिनकल्पी एव स्थविर कल्पी सभी मुनियो से सम्बन्धित है अर्थात्

किसी भी मुनि को गृहस्थ से पैर आदि की मालिश नहीं करवानी चाहिए और गृहस्थ से उनका प्रक्षालन भी नहीं करवाना चाहिए।

इसी तरह यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद मे या पलग पर बैठाकर उसे आभूषण आदि से सजाए या उसके सिर के बाल, रोम, नख आदि को साफ करे तो साधु ऐसी क्रियाए न करवाए। इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि यह जिनकल्पी मुनि के प्रकरण का है, और वह केवल मुखवस्त्रिका और रजोहरण लिए हुए है। क्योकि इस पाठ मे बताया गया है कि कोई गृहस्थ मुनि के सिर के, कुक्षि के तथा गुप्तागो के बढे हुए बाल देखकर उन्हें साफ करना चाहे तो साधु-ऐसा न करने दे। यहा पर मूछ एव दाढी के बालो का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुखवस्त्रिका के कारण उसके दाढी एव मूछो के बाल दिखाई नहीं देते हैं और चादर एव चोलपट्टक नहीं होने के कारण कुक्षि एव गुप्तागो के बाल परिलक्षित हो रहे हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सर्वथा नग्न रहने वाले जिनकल्पी मुनि भी मुखवस्त्रिका और रजोहरण रखते थे अत यदि कोई गृहस्थ कुक्षि आदि के बाल साफ करे तो साधु उससे साफ न कराए।

इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को गृहस्थ से पैर दबाने आदि की क्रियाए नहीं करवानी चाहिए। क्योकि यह कर्म बन्ध का कारण है, इसलिए साधु मन, वचन और शरीर से इनका आसेवन न करे। और बिना किसी विशेष कारण के परस्पर मे भी उक्त क्रियाए न करे। क्योकि दूसरे साधु के शरीर आदि का स्पर्श करने से मन मे विकार भाव जागृत हो सकता है और स्वाध्याय का महत्वपूर्ण समय यो ही नष्ट हो जाता है। अत साधु को परस्पर मे मालिश आदि करने मे समय नहीं लगाना चाहिए। परन्तु विशेष परिस्थिति मे साधु अपने साधर्मिक साधु की मालिश आदि कर सकता है, उसके घावो को भी साफ कर सकता है। अस्तु, यह पाठ उत्सर्ग मार्ग से सबद्ध है और उत्सर्ग-मार्ग मे साधु को परस्पर मे ये क्रियाए नहीं करनी चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं-

मूलम्- से सिया परो सुद्धेणं असुद्धेणं वा वइबलेण वा तेइच्छं आउट्टे से॰ असुद्धेणं वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे॰। से सिया परो गिलाणस्स सचित्ताणि वा कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा हरियाणि वा खणित्तु वा कड्ढित्तु वा कड्ढावित्तु वा तेइच्छं आउट्टाविज्ज नो तं सा॰ २ कडुवेयणा पाणभूयजीवसत्ता वेयणं वेइंति, एयं खलु॰ समिए सया जए सेयमिणं मन्निज्जासि। त्तिबेमि ॥१७३॥

छाया- तस्य स्यात् परः शुद्धेन अशुद्धेन वा वाग्बलेन चिकित्साम् आवर्तेत (व्याध्युपशमं कर्तुमभिलषेत्) तस्य स्यात् परः अशुद्धेन वाग्बलेन चिकित्सामावर्तेत॥ तस्य स्यात् पर. ग्लानस्य सचित्तानि वा कन्दानि वा मूलानि वा त्वचो वा हरितानि वा खनित्वा कर्षित्वा वा कर्षयित्वा वा चिकित्सामावर्वेत (कर्तुमभिलषेत्) नो तामस्वादयेत् नो तां नियमयेत्। कटुकवेदनां प्राणिभूतजीवसत्त्वा वेदनां वेदयन्ति। एतत् खलु॰ समितः सदा यतेत

श्रेय इदं मन्येत। इति ब्रवीमि।

पदार्थ— **से**-उस साधु की। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **सुद्धे णं**-शुद्ध। **असुद्धेण**-या अशुद्ध। **वइबलेणं**-मंत्रादि के बल से। **तेइच्छं**-चिकित्सा। **आउट्टे**- करनी चाहे। **से**-उस साधु की। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **असुद्धेणं**-अशुद्ध। **वइबलेणं**-मत्रादि के बल से। **तेइच्छं**-चिकित्सा। **आउट्टे**-करनी चाहे। **से**-उस साधु को। **सिया**-कदाचित्। **परो**-गृहस्थ। **गिलाणस्स**-रोगी जान कर। **सचित्ताणि वा**-सचित्त। **कंदाणि वा**-कन्द या। **मूलाणि वा**-मूल। **तयाणि वा**-त्वचा-वृक्ष की छाल या। **हरियाणि वा**-हरि-वनस्पति काय को। **खनित्तु**-खोद करके। **कड्ढित्तु**-निकाल कर या। **कड्ढावित्तु**-निकलवा कर। **तेइच्छं**-चिकित्सा। **आउट्टाविज्ज वा**-करनी चाहे तो साधु। **तं**-उस क्रिया को। **नो सायए**-मन से न चाहे तथा। **तं**-उसको। **नो नियमे**-वाणी से और शरीर से न कराए किन्तु मुनि यह भावना भावे कि। **कडुवेयणा**-यह जीव अशुभ कर्म का उपार्जन करके उसके फल स्वरूप कटुक वेदना का अनुभव करता है और सभी। **पाणभूयजीवसत्ता**-प्राणी, भूत, जीव और सत्व अपने किए हुए अशुभ कर्म के अनुसार। **वेयण**-वेदना का। **वेइंति**-अनुभव करते हैं। इस प्रकार की विचारणा से उत्पन्न हुए रोगपरीषह की वेदना को समभाव से सहन करे। **एय**-इस प्रकार। **खलु**-निश्चय ही। **तस्स**-उस। **भिक्खुस्स** २-साधु और साध्वी का यह। **सामग्गियं**-सम्पूर्ण आचार है। **जाव**-यावत्। **समिए**-पाच समितियो से युक्त साधु। **सया**-सदा इसके पालन करने मे। **जएज्जासि**-यत्न करे और। **सेयमिण**-यह अनुप्रेक्षा मेरे लिए कल्याण प्रद है। **मन्निज्जासि**-ऐसा माने। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हूँ।

मूलार्थ—यदि कोई सद्गृहस्थ शुद्ध अथवा अशुद्ध मत्रबल से साधु की चिकित्सा करनी चाहे, इसी प्रकार किसी रोगी साधु को कन्द-मूल आदि सचित्त वृक्ष, छाल और हरी वनस्पति का अवहनन करके चिकित्सा करनी चाहे तो साधु उसकी इस क्रिया को न तो मन से चाहे और न वाणी तथा शरीर से ऐसी सावद्य चिकित्सा कराए। किन्तु उस समय इस अनुप्रेक्षा से आत्मा को सान्त्वना देने का यत्न करे कि प्रत्येक प्राणी अपने पूर्व जन्म के किए हुए अशुभ कर्मों के फलस्वरूप कटुक वेदना का उपभोग करते हैं। अत मुझे भी स्वकृत अशुभकर्म के फलस्वरूप इस रोग जन्य वेदना को शान्ति पूर्वक सहन करना चाहिए। मेरे लिए यही कल्याणकारी है और इस प्रकार का चिन्तन करते हुए समभाव से वेदना को सहन करने मे ही मुनि भाव का संरक्षण है। इस प्रकार मै कहता हूँ।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ शुद्ध या अशुद्ध मत्र से या सचित्त वस्तुओ से चिकित्सा करे तो साधु उसकी अभिलाषा न रखे और न उसके लिए वाणी एव शरीर से आज्ञा दे। जिस मत्र आदि की साधना या प्रयोग के लिए पशु-पक्षी की हिसा आदि। सावद्य क्रिया करनी पडे उसे अशुद्ध मत्र कहते हैं। और जिसकी साधना एव प्रयोग के लिए सावद्य अनुष्ठान न करना पडे उसे शुद्ध मत्र कहते हैं, परन्तु साधु उभय प्रकार की मत्र चिकित्सा न करे और न अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए सचित्त औषधियो का ही उपयोग करे। वह प्रत्येक स्थिति मे अपनी आत्मशक्ति को बढाने का प्रयत्न करे। वेदनीय कर्म के उदय से उदित हुए रोगो को समभाव पूर्वक सहन करे। वह यह सोचे कि पूर्व मे बन्धे हुए अशुभ कर्म के उदय से रोग ने मुझे आकर घेर लिया है। इस वेदना का कर्ता मैं ही हूँ। जैसे मैंने

हसते हुए इन कर्मों का बध किया है उसी तरह हसते हुए इनका वेदन करूगा। परन्तु इनकी उपशान्ति के लिए किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दूगा और न तत्र-मत्र का सहारा ही लूगा।

वृत्तिकार ने यही कहा है कि हे साधक, तुझे यह दुख समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए। क्योकि बन्धे हुए कर्म समय पर अपना फल दिए बिना नष्ट नहीं होते हैं। और इन सब कर्मों का कर्ता भी तू ही है। अत· उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले सुख-दुख को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए। क्योकि सदसद् का ऐसा विवेक तुझे अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होता है। इसलिए विवेक पूर्वक तुम्हे वेदना को समभाव से सहन करना चाहिए[१]।

'**त्तिबेमि**' की व्याख्या पूर्ववत् समझे।

॥ त्रयोदश अध्ययन समाप्त ॥

---

१ पुनरपि सहनीयो दु खपाकस्तवाय।
न खलु भवति नाश कर्मणा सचितानाम्।
इति सहगणयित्वा यद्यदायाति सम्यक्।
सदसदिति विवेकोऽन्यत्र भूय कुतस्ते। १।

— आचाराग वृत्ति।

चतुर्दश अध्ययन
(पारस्परिक क्रिया)

त्रयोदशवे अध्ययन मे पर क्रिया का निषेध किया गया है और प्रस्तुत अध्ययन मे स्थविर कल्पी साधुओ को पारस्परिक क्रिया करने का निषेध किया गया है। जिनकल्पी एव प्रतिमा सपन्न मुनि एकाकी विचरते हैं, इसलिए यह अध्ययन उनसे सबद्ध नही है। क्योकि उन्हे औषध आदि की आवश्यकता ही नही होती है। इसलिए इसका सबध स्थविर कल्पी मुनियो से है और उन्हे परस्पर औषध आदि क्रियाओ के प्रयोग करने का निषेध किया गया है। परन्तु किसी की सेवा शुश्रूषा एव वैयावृत्य के लिए की जाने वाली क्रिया के लिए निषेध नही किया है। सामान्यत सूत्रकार का उद्देश्य साधु को स्वावलम्बी बनाने का है। उसके जीवन मे आलस्य एव प्रमाद न आए और वह आराम तलब होकर दूसरो पर आधारित न रहे, इस दृष्टि से ही पारस्परिक क्रिया करने का निषेध किया है। इस विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भिक्खू वा २ अन्नमन्नकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं नो तं सायए० २। से अन्नमन्नं पाए आमज्जिज्ज वा नो तं०, सेसं तं चेव एयं खलु० जइज्जासि, त्तिबेमि ॥१७४॥

छाया– स भिक्षुर्वा २ अन्योन्यक्रिया आध्यात्मिकी सांश्लेषिकी नो तामास्वादयेत् नो ता नियमयेत्। स अन्योऽन्य· पादौ आमृज्यात् वा प्रमृज्यात् वा नो तामास्वादयेत् नो ता नियमयेत्। शेष तच्चैव, एतत् खलु तस्य भिक्षो. सामग्र्य यत् सर्वार्थै. यावत् सदा यतेत इति ब्रवीमि ॥

पदार्थ– से-वह। **भिक्खू वा २**-साधु अथवा साध्वी। **अन्नमन्नकिरिय**-परस्पर सम्बन्धि क्रिया जो कि। **अज्झत्थिय**-आध्यात्मिकी-अपने आत्मा के विषय मे की हुई। **ससेसिय**-साश्लेषिकी-पाप कर्म को उत्पन्न करने वाली है। **त**-उस क्रिया को। **नो सायए**-मन से न चाहे। **त**-उस क्रिया को। **नो नियमे**-वचन से न कहे, और काया से न कराए जैसे कि। **से**-वह साधु। **अन्नमन्न**-परस्पर। **पाए**-चरणो को। **आमज्जिज्ज वा**-थोडा सा मसले। **पमज्जिज्ज वा**-अथवा विशेष रूप से मसले तो। **त**-उस क्रिया को। **नो सायए**-मन से न चाहे। **तं नो नियमे**-तथा उस क्रिया को वचन और काया से न कराए। **सेस**-शेष वर्णन। **त चेव**-पूर्ववत् ही जानना चाहिए। **खलु**-निश्चय मे है। **एवं**-यह। **तस्स भिक्खुस्स २**-उस साधु और साध्वी का। **सामग्गियं**-सम्पूर्ण आचार है। **ज०**-जो कि। **सव्वट्ठेहिं**-ज्ञानदर्शन और चारित्र रूप अर्थों से युक्त है। **जाव**-यावत्। **सया**-वह सदा इस का पालन करने का। **जइज्जासि**-यत्न करे। **त्तिबेमि**-इस प्रकार मै कहता हू।

मूलार्थ—वह साधु या साध्वी परस्पर अपनी आत्मा के विषय में की हुई क्रिया-जो कि कर्म बन्धन का कारण है, को न मन से चाहे, न वचन से कहे, और न काया से कराए। जैसे कि परस्पर चरणो का प्रमार्जन आदि करना। शेष वर्णन त्रयोदशवे अध्ययन के समान जानना चाहिए। यह साधु का सपूर्ण आचार है, उसे सदा सर्वदा संयम को परिपालन करने मे प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस प्रकार मैं कहता हूं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे पारस्परिक क्रिया का निषेध किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि साधु एक-दूसरे साधु को यह न कहे कि तू मेरे पैर आदि की मालिश कर और मैं तेरे पैर की मालिश करू। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि साधु किसी साधु की बीमारी आदि की अवस्था मे गुरु आदि की आज्ञा से उसकी सेवा भी नहीं करे। यह निषेध केवल बिना कारण ऐसी क्रियाए करने के लिए किया गया है। जिससे जीवन मे आरामतलबी एव प्रमाद न बढे और स्वाध्याय का समय केवल शरीर को सजाने एव सवारने मे ही पूरा न हो जाए। इससे स्पष्ट होता है कि विशेष कारण उपस्थित होने पर की जाने वाली सेवा-शुश्रूषा का निषेध नहीं किया गया है। क्योकि आगम मे वैयावृत्य करने से मिलने वाले फल का निर्देश करतें हुए बताया है कि यदि वैयावृत्य करते हुए उत्कृष्ट भावना आ जाए तो आत्मा तीर्थंकर गोत्र कर्म का बन्ध करता है[१]। इस प्रकार वैयावृत्य से महानिर्जरा का होना भी बताया गया है[२]। इससे स्पष्ट होता है कि राग-द्वेष से ऊपर उठकर बिना स्वार्थ से की जाने वाली सेवा-शुश्रूषा का सूत्रकार ने निषेध नहीं किया है।

'**त्तिबेमि**' का अर्थ पूर्ववत् समझे।

॥ चतुर्दश अध्ययन (द्वितीया चूला) समाप्त ॥

१ वेयावच्चेण भते जीवे कि जणयइ ? वेयावच्चेणं तित्थयर नामगोत्त कम्म निबंधइ।

– उत्तराध्ययन सूत्र २९, ४३।

२ व्यवहार सूत्र, उद्देशक १०।

पञ्चदश अध्ययन
(भगवान महावीर की साधना)

आचाराग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के नवम अध्ययन मे भगवान महावीर की साधना का महत्त्वपूर्ण वर्णन मिलता है। उसमे भगवान महावीर की उत्कट साधना का सजीव रूप देखने को मिलता है। उसमे साधना के वर्णन के साथ भगवान के जीवन का परिचय नही दिया है। अत उसकी पूर्ति प्रस्तुत अध्ययन मे की गई है। इस मे भगवान महावीर के जन्म एव जीवन-चर्या का उल्लेख करके उनके द्वारा स्वीकृत ५ महाव्रतो की २५ भावनाओ का वर्णन किया गया है। इसमे भगवान को कुमार ग्राम से लेकर जृभिका तक क्या २ कष्ट आए इसका वर्णन नहीं किया गया है। क्योकि यह विवरण उपधान अध्ययन मे किया जा चुका है, अत उसे यहा फिर से नही दोहराया गया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत अध्ययन तीसरी चूला के रूप मे सन्निहित होने के कारण उपधान अध्ययन की सपूर्ति रूप कहा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन का महत्त्व भगवान के दिव्य, भव्य एव कल्याण कारी जीवन की अलौकिकता को दिखाने मे है और उस आदर्श जीवन की साधना से प्रेरणा लेकर साधक के जीवन मे साधना का उज्ज्वल प्रकाश फैलाने मे है। अत भगवान महावीर के जीवन का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था, तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए, हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने, साइणा भगवं परिनिव्वुए ॥१७५ ॥

छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः पचहस्तोत्तरश्चापि अभूत्। तद्यथा हस्तोत्तरासु च्युत च्युत्वा गर्भे व्युत्क्रान्त ।१। हस्तोत्तरासु गर्भाद् गर्भे संहृत. ।२। हस्तोत्तरासु जातः ।३। हस्तोत्तरासु मुण्डो भूत्वा अगारादनगारतां प्रव्रजितः ।४। हस्तोत्तरासु, कृत्स्नं प्रतिपूर्णं अव्याघातं निरावरणमनन्तमनुत्तर केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम् ।५। स्वातौ भगवान् परिनिवृत. ।

पदार्थ– **तेण कालेणं**-उस काल और। **तेण समएण**–उस समय। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान्। **महावीरे**–महावीर स्वामी के। **पचहत्थुत्तरा होत्था**–पाच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए। **तंजहा**–जैसे। **हत्थुत्तराहिं चुए**-उत्तराफाल्गुनी में देवलोक से च्युत हुए। **चइत्ता**–च्युत होकर। **गब्भ वक्कते**–गर्भ मे उत्पन्न हुए। **हत्थुत्तराहिं**–उत्तरा फाल्गुनी मे। **गब्भाओ**–गर्भ से। **गब्भ**–गर्भ मे अर्थात् एक गर्भ से दूसरे गर्भ मे। **साहरिए**–संहरण किए गए। **हत्थुत्तराहि**–उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे। **जाए**–उत्पन्न हुए। **हत्थुत्तराहि**–उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में।

अणंते-अनन्त। अणुत्तरे-प्रधान। अव्वाघाए-निर्व्याघात-व्याघात रहित। निरावरणे-निरावरण-आवरण रहित। कसिणे-सम्पूर्ण। पडिपुण्णे-प्रतिपूर्ण। वर-प्रधान। केवलवरनाण-केवल ज्ञान। दसणे-केवल दर्शन से। समुप्पण्णे-समुत्पन्न हुए और। साइणा-स्वाति नक्षत्र मे। भगवं-भगवान। परिनिव्वुए-मोक्ष को प्राप्त हुए।

***मूलार्थ*—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के पाच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए। जैसे कि-भगवान उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे देवलोक से च्यव कर गर्भ मे उत्पन्न हुए, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे ही गर्भ से गर्भान्तर मे सहरण किए गए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही भगवान ने जन्म लिया। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे ही भगवान मुंडित हो कर सागार से अनगार-साधु बने और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे ही भगवान ने अनन्त, प्रधान, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त किया और स्वाति नक्षत्र मे भगवान मोक्ष पधारे।**

हिन्दी विवेचन- प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर के पाच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए और एक स्वाति नक्षत्र मे हुआ। भगवान का गर्भ मे आना, गर्भ का गर्भान्तर मे सहरण, जन्म, दीक्षा एव केवल ज्ञान की प्राप्ति ये पाचो कार्य उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए और स्वाति नक्षत्र मे निर्वाण पद प्राप्त किया। इससे ६ कल्याणक सिद्ध होते हैं, परन्तु वस्तुत. देखा जाए तो कल्याणक ५ ही हुए हैं। गर्भ सहरण को नक्षत्र साम्य की दृष्टि से साथ मे गिन लिया गया है। परन्तु, इसे कल्याणक नहीं कह सकते। यह तो एक आश्चर्य जनक घटना है। यदि इसके उल्लेख मात्र से इसे कल्याणक माना जाए तो फिर भगवान ऋषभ देव के भी ६ कल्याणक मानने पडेगे। क्योकि आगम मे लिखा है कि भगवान के पाच कार्य उत्तराषाढा नक्षत्र मे और एक अभिजित् नक्षत्र मे हुआ है[1]। परन्तु इतना उल्लेख मिलने पर भी उनके ५ कल्याणक माने जाते हैं। क्योकि विशिष्ट बात को कल्याणक नही माना जाता है। केवल नक्षत्र की समानता के कारण उसका साथ मे उल्लेख कर दिया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे 'उस काल और उस समय मे' इन दो शब्दो का प्रयोग किया गया है। इसमे 'काल' चौथे आरे का बोधक है और 'समय' जिस समय भगवान गर्भ आदि मे आए उस समय का ससूचक है। काल से पूरे युग का और समय से वर्तमान काल का परिज्ञान होता है।

भग-सपन्न व्यक्ति को भगवान कहा गया है। भग शब्द के १४ अर्थ होते हैं- १ अर्क, २ ज्ञान, ३ महात्मा, ४ यश, ५ वैराग्य, ६ मुक्ति, ७ रूप, ८ वीर्य (शक्ति), ९ प्रयत्न, १० इच्छा, ११ श्री, १२ धर्म, १३ ऐश्वर्य और १४ योनि। इनमे प्रथम और अन्तिम। (अर्क और योनि) दो अर्थों को छोडकर शेष सभी अर्थ भगवान मे सघटित होते हैं।

'हत्थुत्तरे' शब्द का अर्थ है जिस नक्षत्र के आगे हस्त नक्षत्र है उसे 'हत्थुत्तरे' नक्षत्र कहते हैं। गणना करने से उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र ही आता है।

इस विषय को विस्तार से स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

---

१ **पच उत्तरासाढे अभीइ छट्ठे। – जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति।**

मूलम्– समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमदुस्समाए समाए वीइक्कंताए, दूसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए पन्नहत्तरीए वासेहि मासेहि य अद्धनवमेहि सेसेहिं जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढ-सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं महाविजय-सिद्धत्थपुप्फुत्तरवरपुंडरीयदिसासोवत्थियवद्धमाणाओ, महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे दाहिणमाहणकुंडपुरसंनिवेसंमि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्सगुत्ताए सीहुब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिंसि गब्भं वक्कंते।

छाया– श्रमणो भगवान् महावीरः अस्यां अवसर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायां व्यतिक्रान्ताया, सुषमाया समाया व्यतिक्रान्ताया, सुषमदुषमायां समायां व्यतिक्रान्तायां, दुषमसुषमायां समायां बहुव्यतिक्रान्ताया पंचसप्तति वर्षेषु मासेषु च अर्द्धनवमेषु शेषेषु योऽसौ ग्रीष्मस्य चतुर्थो मासः अष्टमः पक्षः आषाढ़शुद्ध· (आषाढ़ शुक्लः) तस्य आषाढ़शुद्धस्य षष्ठीपक्षेण हस्तोत्तराभि· नक्षत्रेण योगमुपागते महाविजयसिद्धार्थपुष्पोत्तरवरपुण्डरीकदिक्-स्वस्तिक वर्द्धमानात् महाविमानात् विंशतिसागरोपमानि आयुष्कं पालयित्वा आयुःक्षयेण स्थितिक्षयेण भवक्षयेण च्युत· च्युत्वा इह खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे दक्षिणार्द्धभरते दक्षिणब्राह्मणकुण्डपुरसंनिवेशे ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य कुडालगोत्रस्य देवानन्दाया ब्राह्मण्याः जालन्धरगोत्रायाः सिंहोद्भवभूतेन आत्मना कुक्षौ गर्भे व्युत्क्रान्तः।

पदार्थ– **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर। **इमाए**-इस। **ओसप्पिणीए**-अवसर्पिणी काल के। **सुसमसुसमाए**-सुषम-सुषम नाम वाले चार कोटा-कोटी सागर प्रमाण वाले। **समाए**-प्रथम आरे के। **वीइक्कंताए**-व्यतीत हो जाने पर, तथा। **सुसमाए समाए वीइक्कंताए**-सुषमा नाम वाले तीन कोटा-कोटी सागर प्रमाण वाले दूसरे आरे के बीत जाने पर। **सुसमदुस्समाए समाए वीइक्कताए**-सुषम-दुषम नाम वाले दो कोटा-कोटी सागर प्रमाण वाले तीसरे आरे के बीत जाने पर तथा। **दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए**-दुषम-सुषम नाम वाले चतुर्थ आरे के बहुत बीत जाने पर, अर्थात् चतुर्थ आरक बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटा कोटी सागरोपम प्रमाण का होता है, उसके केवल। **पन्नहत्तरीए वासेहिं**-७५ वर्ष। **य**-और। **अद्धनवमेहिं मासेहिं**-साढ़े आठ मास। **सेसेहिं**-शेष रहने पर। **जे**-जो। **से**-यह। **गिम्हाणं**-ग्रीष्म ऋतु का। **चउत्थे मासे**-चौथा मास। **अट्ठमे पक्खे**- आठवां पक्ष। **आसाढसुद्धे**-आषाढ़ शुक्ल। **णं**-वाक्यालकार मे है। **तस्स**-उस।

आसाढसुद्धस्स-आषाढ़ शुक्ल पक्ष की। **छट्ठीपक्खेणं**-छठी रात्रि में। **हत्थुतराहिं नक्खत्तेणं**-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ। **जोगमुवागएणं**-चन्द्रमा का योग आ जाने पर अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी मे चन्द्रमा के आ जाने पर। **महाविजयसिद्धत्थपुप्फुत्तरवरपुण्डरीयदिसासोवत्थियवद्धमाणाओ**-महाविजय सिद्धार्थ, पुष्पोत्तर प्रधान, पुंडरीक-कमलवत् श्वेत, दिक्, स्वस्तिक, वर्द्धमान नाम वाले। **महाविमाणाओ**-महा विमान से। **वीससागरोवमाई**-बीस सागरोपम की। **आउयं**-आयु को। **पालइत्ता**-पूर्ण कर के। **आउक्खएणं**-देवायु को क्षय करके। **ठिइक्खएणं**-वैक्रिय शरीर की स्थिति का क्षय करके। **भवक्खएणं**- और देवगति नाम कर्म का क्षय करके अर्थात् देव भव को समाप्त करके। **चुए**-वहा से च्यवे। **चइत्ता**-च्यवकर। **खलु**-निश्चयार्थक है। **इह**-इस। **जबुद्दीवेदीवे**-जम्बूद्वीप नाम के द्वीप मे। **भारहे वासे**-भारत वर्ष के भरत क्षेत्र के। **दाहिणड्ढभरहे**-दक्षिणार्द्ध भरत खण्ड मे। **दाहिणमाहणकुंडपुरसंनिवेसंमि**-दक्षिण दिशा मे ब्राह्मण कुडपुर सन्निवेश मे। **कोडालगोत्तस्स**-कोडाल गोत्री। **उसभदत्तस्स**-ऋषभ दत्त। **माहणस्स**-ब्राह्मण की। **जालधरस्सगुत्ताए**-जालन्धर गोत्रवली। **देवानन्दाए**-देवानन्दा। **माहणीए**-ब्राह्मणी की। **कुच्छिंसि**-कुक्षी मे। **सीहुब्भवभूएणं**-सिह की तरह अर्थात् गुफा मे प्रवेश करते हुए सिह की भाति। **अप्पाणेणं**-अपनी आत्मा से। **गब्भं वक्कंते**-गर्भपने उत्पन्न हुए अर्थात् गर्भ मे आए।

मूलार्थ—**श्रमण भगवान् महावीर इस अवसर्पिणी काल के सुषम-सुषम नामक आरक, सुषम आरक, सुषम-दुषम आरक के व्यतीत होने पर और दुषम-सुषम आरक के बहु व्यतिक्रान्त होने पर, केवल ७५ वर्ष, साढ़े आठ मास शेष रहने पर ग्रीष्म ऋतु के चौथे मास, आठवे पक्ष आसाढ़ शुक्ला षष्ठी की रात्री को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, महाविजय सिद्धार्थ, पुष्पोत्तर वर पुण्डरीक, दिक्स्वस्तिक, वर्द्धमान नाम के महाविमान से बीस सागरोपम की आयु को पूरी करके देवायु, देवस्थिति और देव भव का क्षय करके, इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के दक्षिणार्द्ध भारत के दक्षिण ब्राह्मण कुन्ड पुर सन्निवेश मे कुडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धरगोत्रीय देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी की कुक्षि मे सिंह की तरह गर्भ मे उत्पन्न हुए।**

हिन्दी विवेचन— इस सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरक के ७५ वर्ष साढे आठ महीने शेष रहने पर ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा की कुक्षि मे आए। यहा काल चक्र के सम्बन्ध मे कुछ उल्लेख किया गया है। यह हम देखते हैं कि काल (समय) सदा अपनी गति से चलता है। और समय के साथ इस क्षेत्र मे (भरत क्षेत्र मे) परिस्थितियो एव प्रकृति मे भी कुछ परिवर्तन आता है। कभी प्रकृति मे विकास होता है, तो कभी ह्रास होता है। जिस काल मे प्रकृति उत्थान से ह्रास की ओर गतिशील होती है उस काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिसमें प्रकृति ह्रास से उन्नति की ओर बढती है उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। प्रत्येक काल चक्र ६ आरक मे विभक्त है और १० कोटा-कोटी (१० करोड × १० करोड) सागरोपम का होता है। इस तरह पूरा काल चक्र २० कोटा-कोटी सागरोपम का होता है। भगवान महावीर अवसर्पिणी काल चक्र के चौथे आरे के-जो ४२ हजार वर्ष कम एक कोटा-कोटी सागर का है, ७५ वर्ष ८॥ महीने शेष रहने पर प्राण नामक १० वे स्वर्ग

से जिसे-महाविजय, सिद्धार्थ वर पुण्डरीक, दिक्स्वास्तिक और वर्द्धमान भी कहते हैं, अपने आयुष्य को पूरा करके भारतवर्ष के दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर मे ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा की कुक्षि मे उत्पन्न हुए।

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे 'सीहब्भवभूएणं' के स्थान में 'सीहइव भूतेण' उपलब्ध होता है और यह पाठ असदिग्ध प्रतीत होता है।

इसी विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि हुत्था, चइस्सामित्ति जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, सुहुमेणं से काले पन्नत्ते।

छाया– श्रमणो भगवान् महावीरः त्रिज्ञानोपगतश्चापि अभवत् च्योष्ये इति जानाति, च्युतोस्मीति जानाति, च्यवमानो न जानाति सूक्ष्मः स कालः प्रज्ञप्तः।

पदार्थ– **समणे**-श्रमण। **भगवं**-भगवान्। **महावीरे**-महावीर स्वामी। **तिन्नाणोवगए यावि होत्था**-तीन ज्ञानों से युक्त थे अत । **चइस्सामित्ति जाणइ**-वे ऐसा जानते थे कि मै यहा से च्यव कर मनुष्य लोक मे जाऊगा तथा। **चुएमित्ति जाणइ**-वे यह भी जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्यव कर गर्भ मे आया हू परन्तु। **चयमाणे न जाणइ**-वे यह नहीं जानते थे कि मैं च्यव रहा हूँ क्योंकि। **सुहुमेणं से काले पन्नत्ते**-यह काल अर्थात् च्यवन काल अत्यन्त सूक्ष्म कहा गया है।

मूलार्थ—**श्रमण भगवान महावीर तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि ज्ञान) से युक्त थे, वे यह जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्यवकर मनुष्य लोक में जाऊंगा, मै वहा से च्यव कर अब गर्भ मे आ गया हू। परन्तु वे च्यवन समय को नहीं जानते थे। क्योंकि वह समय अत्यन्त सूक्ष्म होता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर गर्भ मे आए उस समय तीन ज्ञान से युक्त थे– १ मतिज्ञान, २ श्रुतज्ञान और ३ अवधि ज्ञान। मति और श्रुत ज्ञान मन और इन्द्रियो की सहायता से पदार्थों का ज्ञान कराता है। परन्तु, अवधि ज्ञान मे मन और इन्द्रियो के बिना सहयोग के ही आत्मा मर्यादित क्षेत्र मे स्थित रूपी पदार्थों को जान और देख सकता है। भगवान महावीर को भी स्वर्ग में एव जिस समय गर्भ में आए तब से लेकर गृहस्थ अवस्था मे रहे तब तक तीन ज्ञान थे। वे स्वर्ग के आयुष्य को पूरा करके मनुष्य लोक मे आने के समय को जानते थे और गर्भ मे आने के बाद भी वे इस बात को जानते थे कि मैं स्वर्ग से यहा आ गया हूँ। परन्तु जिस समय वे स्वर्ग से च्युत हो रहे थे उस समय को नहीं जान रहे थे। क्योकि यह काल बहुत ही सूक्ष्म होता है, ऋजु गति मे एक समय लगता है और वक्रगति मे आत्मा जघन्य दो और उत्कृष्ट ४ समय मे अपने स्थान पर पहुँच जाता है। और इतने सूक्ष्म समय मे छद्मस्थ के ज्ञान का उपयोग नहीं लगता। अत. च्यवन के समय वे अपने ज्ञान का उपयोग नहीं लगा सकते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान गर्भ काल मे तीन ज्ञान से युक्त थे।

इस विषय मे कुछ और बाते बताते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तओ णं समणे भगवं महावीरे हियाणुकंपएणं देवेणं जीयमेयं तिकट्टु जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं बासीहिं राइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिणमाहणकुंडपुरसन्निवेसाओ उत्तरखत्तियकुंडपुरसंनिवेसंसि नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करित्ता सुभाणं पुग्गलाणं पक्खेवं करित्ता कुच्छिंसि गब्भं साहरइ जे विय से तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे तंपि य दाहिणमाहणकुंडपुरसंनिवेसंसि उस० को० देवा० जालन्धरायणगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भं साहरइ।

छाया– ततः श्रमणो भगवान् महावीरः हितानुकम्पकेन देवेन जीतमेतत् इति कृत्वा य. स. वर्षाणां तृतीयः मासः पंचमः पक्ष. आश्विनकृष्णा. तस्य आश्विनकृष्णास्य त्रयोदशीपक्षेण उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रेण योगमुपागतेन द्व्यशीतौ रात्रिन्दिवे व्यतिक्रान्ते त्र्यशीतितमस्य रात्रिन्दिवस्य पर्याये वर्तमाने दक्षिणब्राह्मणकुण्डपुरसंनिवेशात् उत्तरक्षत्रियकुण्डपुरसन्निवेशे ज्ञाताना क्षत्रियाणां सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य काश्यपगोत्रस्य त्रिशलाया. क्षत्रियाण्याः वासिष्ठगोत्रायाः अशुभानां पुद्गलाना अपहारं कृत्वा शुभानां पुद्गलानां प्रक्षेपं कृत्वा कुक्षौ गर्भं समाहरति (मुञ्चति)। योऽपि च तस्या त्रिशलायाः क्षत्रियाण्या. कुक्षौ गर्भ तमपि च दक्षिण-ब्राह्मणकुण्डपुरसनिवेशे ऋषभदत्तस्य कोडालगोत्रस्य देवानंदाया ब्राह्मण्या. जालन्धरायणगोत्राया. कुक्षौ गर्भं समाहरति (मुञ्चति)।

पदार्थ– ण-वाक्यालकार मे है। **तओ**-तत् पश्चात्। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर स्वामी के। **हियाणुकंपएण देवेण**-हित और अनुकम्पा करने वाले देव ने। **जीयमेयति कट्टु**-यह हमारा जीत आचार है इस प्रकार कहकर तथा इस प्रकार कर के। **जे से**-जो यह। **वासाण**-वर्षा काल का। **तच्चे मासे**-तीसरा मास। **पचमे पक्खे**-पाचवा पक्ष। **आसोयबहुले**-आश्विन मास का कृष्ण पक्ष। **ण**-वाक्यालकार मे है। **तस्स**-उस। **आसोयबहुलस्स**-आश्विन कृष्ण पक्ष के। **तेरसीपक्खेण**-त्रयोदशी के दिन। **हत्थुत्तराहि नक्खत्तेणं**-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ। **जोगमुवागएणं**-चन्द्रयोग के होने पर। **बासीहिं**-८२। **राइंदिएहिं**-अहोरात्र-रातदिन के। **विइक्कतेहिं**-व्यतीत होने पर। **तेसीइमस्स**-८३ वे। **राइंदियस्स**-दिन के। **परियाए**-पर्याय के। **वट्टमाणे**-बरतने पर अर्थात् ८३ वे दिन की रात्रि मे। **दाहिणमाहणकुण्डपुरसंनिवेसाओ**-दक्षिण ब्राह्मण कुण्ड पुर सनिवेश से। **उत्तरखत्तियकुण्डपुरसंनिवेसंसि**-उत्तर क्षत्रिय कुंड पुर सनिवेश मे। **खत्तियाणं**-क्षत्रियो मे प्रसिद्ध। **नायाणं**-ज्ञात वशीय। **कासवगुत्तस्स**-काश्यप गोत्र वाले। **सिद्धत्थस्स**-सिद्धार्थ।

खत्तियस्स-क्षत्रिय की भार्या। **वासिट्ठगुत्ताए**-वासिष्ठ गोत्र वाली। **तिसलाए खत्तियाणीए**-त्रिशला क्षत्रियाणी के। **असुभाण पुग्गलाणं**-अशुभ पुद्गलो को। **अवहार करित्ता**-दूर करके। **सुभाणं पुग्गलाणं**-शुभ पुद्गलो का। **पक्खेवं करित्ता**-प्रक्षेपण करके उसकी। **कुच्छिंसि**-कुक्षी गर्भाशय मे। **गब्भ साहरइ**-उस गर्भ को छोड़ता-प्रतिष्ठित करता है। **य**-और। **जे वि**-जो फिर। **से**-उस। **तिसलाए**-त्रिशला। **खत्तियाणीए**-क्षत्रियाणी की। **कुच्छिसि**-कुक्षि मे। **गब्भे**-गर्भ था। **य**-और। **तपि**-फिर उसको। **दाहिणमाहणकुण्डपुरसंनिवेससि**-दक्षिण ब्राह्मण कुण्ड पुर सनिवेश मे ले जाकर। **कोडालगोत्तस्स**-कोडाल गोत्रीय। **उसभदत्तस्स**-ऋषभ दत्त। **माहणस्स**-ब्राह्मण की भार्या। **जालधरायणगुत्ताए**-जालन्धर गोत्र वाली। **देवानन्दामाहणीए**-देवानन्दा ब्राह्मणी की। **कुच्छिसि**-कुक्षि मे। **गब्भ साहारइ**-उस गर्भ को छोड़ता -प्रतिष्ठित करता है।

_मूलार्थ_—देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ मे आने के बाद श्रमण भगवान महावीर के हित और अनुकपा करने वाले देव ने, यह जीत आचार है, ऐसा कहकर वर्षाकाल के तीसरे मास, पाचवे पक्ष अर्थात्– आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर ८२ रात्रिदिन के व्यतीत होने और ८३ वे दिन की रात को दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर संनिवेश से, उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश मे ज्ञातवशीय क्षत्रियों में प्रसिद्ध काश्यपगोत्री सिद्धार्थ राजा की वासिष्ठ गोत्र वाली पत्नी त्रिशला महाराणी के अशुभपुद्गलो को दूर करके उनके स्थान में शुभ पुद्गलो का प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षि मे गर्भ को रखा, और जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे गर्भ था उसको दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश मे जाकर कोडालगोत्रीय ऋषभ दत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्र वाली देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी मे स्थापित किया।

_हिन्दी विवेचन_– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान महावीर के गर्भ को स्थानान्तर मे रखने का वर्णन किया गया है। ८२ दिन तक भगवान महावीर देवानन्दा के गर्भ मे रहे थे। उसके बाद ब्राह्मण कुल को तीर्थंकरो के जन्म योग्य न जानकर इन्द्र की आज्ञा से भगवान महावीर के एक हितचिन्तक देव ने उन्हे देवानन्दा के गर्भ से निकाल कर त्रिशला के गर्भ मे रख दिया।

यह घटना आश्चर्यजनक अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं है। आज भी हम देखते हैं कि वैज्ञानिक आप्रेशन के द्वारा गर्भ का परिवर्तन करते हैं और इस क्रिया मे गर्भ का नाश नहीं होता है। एक गर्भ स्थान से स्थानान्तरित किए जाने पर भी उसका विकास रुकता नही है। और भगवान महावीर के गर्भ का परिवर्तन करने का वर्णन आगमो मे अनेक जगह मिलता है[1]। भगवती सूत्र मे देवानन्दा ब्राह्मणी के सम्बन्ध मे गौतम के द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि यह मेरी माता है[2]। इसके अतिरिक्त कल्प सूत्र मे गर्भ सहारण के सबन्ध मे विस्तार से वर्णन किया गया है। और कल्प सूत्र में वर्णित वीर वाचना (महावीर के चरित्र) का आधार आचाराग का प्रस्तुत अध्ययन ही है। कल्प सूत्र के कई पाठ आचाराङ्ग के पाठ से अक्षरश· मिलते हैं। और विषय का साम्य तो प्राय: सर्वत्र मिलता ही है। इस से ऐसा प्रतीत होता है कि आचाराग के प्रस्तुत अध्ययन का कल्प सूत्र मे कुछ विस्तार से वर्णन किया

१ स्थानाग सूत्र, स्थान ५ उ॰ १, स्था॰ १०, समवायांग सूत्र, ८२-८३, दशाश्रुतस्कध सूत्र, दशा ८।

२ तएणं सा देवानन्दा माहणी आगयपण्हया पप्फुयलोयणा सवरिय वलिय वाहा, कचुय–

गया है। और समवायाग सूत्र मे उत्तम पुरुषो का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कल्प सूत्र का उल्लेख किया गया है, इससे कल्प सूत्र की रचना का आधार आगम ही प्रतीत होते हैं[१]। इस तरह हम कह सकते हैं कि आगमो मे अनेक स्थलो पर गर्भ सहारण का उल्लेख प्राप्त होने के कारण इस घटना को घटित होने मे सन्देह को अवकाश नहीं रह जाता।

अब सूत्रकार आगे कहते हैं-

मूलम्- समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि होत्था साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ, साहरिएमित्ति जाणइ समणाउसो।

छाया- श्रमणो भगवान् महावीरः त्रिज्ञानोपगतश्चापि अभवत्, समाहरिष्ये इति जानाति, समाह्रियमाणोऽपि जानाति,समाहृतोऽस्मीति जानाति श्रमणायुष्मन्।

***पदार्थ*- समणाउसो !**-आयुष्मन् श्रमण ! **समणे**-श्रमण। **भगवं**-भगवान्। **महावीरे**-महावीर। **तिन्नाणोवगए यावि होत्था**-तीन-मति श्रुत और अवधि ज्ञानो से युक्त थे। **साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ**-मै इस स्थान से अन्य स्थान मे सहृत किया जाऊगा यह जानते थे। **साहरिज्जमाणे वि जाणइ**-वर्तमान मे सहृत किए जाने को भी जानते हैं तथा। **सहरिएमित्ति जाणइ**-मै सहृत हो चुका हू , एक स्थान से दूसरे स्थान मे स्थापित किया जा चुका हूँ। अर्थात् देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षी मे प्रतिष्ठित किया जा चुका हू यह भी जानते थे।

***मूलार्थ*—हे आयुष्मन् श्रमणो ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी गर्भावास मे तीन ज्ञान, मति श्रुत अवधि-से युक्त थे। मैं इस स्थान से सहरण किया जाऊगा, तथा मेरा सहरण हो रहा है और मै संहृत किया जा चुका हू। यह सब जानते थे।**

***हिन्दी विवेचन*-** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर गर्भावास मे मति-श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानो से युक्त थे। वे अपने अवधिज्ञान से यह जानते थे कि मेरे गर्भ का सहरण किया जाएगा और जिस समय देव उनके गर्भ का सहरण कर रहा था उस समय भी वे जानते थे कि मुझे स्थानान्तरित किया जा रहा है और त्रिशला की कुक्षि मे रखने के बाद भी वे जानते थे कि मुझे देवानन्दा की कुक्षि से यहा लाया गया है। इस तरह वे अपने गर्भ सहरण के सम्बन्ध मे हुई समस्त क्रियाओ को जानते

परिकिरवत्तिया धाराहतकलबपुप्फगपिव समुस्ससियरोमकूवा, समण भगव महावीर अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी २ चिट्ठइ ॥१२॥ भते ! त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ,णमसइ वदित्ता णमसित्ता एव वयासी, कि ण भते! एसा देवाणदा माहणी आगयपण्हया तचेव जाव रोमकूवा, देवाणुप्पिए अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी २ चिट्ठइ ? ॥१३॥ गोयमादि समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी, एवं खलु गोयमा ! देवाणदा माहणी मम अम्मगा, अहं ण देवाणदाए माहणीए अत्तए, तएण सा देवाणदा माहणी पुव्वपुत्तसिणेहाणुरागेण आगयपण्हया जाव समुस्ससियरोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी २ चिट्ठइ। — भगवती सूत्र, श० ९, उ० ३३, सूत्र १४१।

१ तेण कालेणं तेण समएणं कप्पस्स समोसरण णे यव्व जाव गणहरा, सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा।

— समवायांग सूत्र।

थे।

आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचाराग सूत्र मे एव कल्प सूत्र मे "साहरिज्जमाणे जाणइ" के स्थान पर 'साहरिज्जमाणे नो जाणइ' पाठ छपा है। परन्तु प्राचीन हस्त लिखित एव अन्य मुद्रित प्रतियो मे 'साहरिज्जमाणे जाणइ' पाठ उपलब्ध होता है। आगमोदय समिति से प्रकाशित आचाराग का पाठ कल्पसूत्र एव उसकी सुबोधिका व्याख्या के आधार पर रखा गया है। परन्तु यह पाठ उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योकि स्वर्ग से गर्भ मे आते समय का काल बहुत सूक्ष्म होने के कारण वे उसे नहीं जानते हैं। परन्तु गर्भ सहरण काल इतना सूक्ष्म नहीं होता है। देव द्वारा की जाने वाली सहरण की क्रिया मे अन्तर-मुहूर्त्त का समय लग जाता है। अत. इस काल मे होने वाली क्रिया को वे जान सकते हैं। और कल्प सूत्र की 'सुबोधिका टीका' के लेखक उपाध्याय श्री विनय विजय जी उस पर चर्चा करते हुए प्राचीन प्रतियो के पाठ का ही समर्थन करते हैं[१]। इससे यह स्पष्ट होता है कि "साहरिज्जमाणे जाणइ" पाठ ही प्रामाणिक है।

इस प्रसग पर यह प्रश्न हो सकता है कि गर्भ का सहरण करते समय गर्भ को कोई कष्ट तो नहीं होता ? आगम मे इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इस क्रिया से गर्भ को कोई कष्ट नहीं हुआ[२]। यह क्रिया देव द्वारा निष्पन्न हुई थी, इसलिए गर्भस्थ जीव को बिल्कुल त्रास नहीं पहुचा। उसे सुख पूर्वक एक गर्भ से दूसरे गर्भ मे स्थानान्तरित कर दिया गया।

भगवान के जन्म के विषय का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसलाए खत्तियाणीए अहऽन्नया कयाई नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं वीइक्कंताणं जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसीपक्खेणं हत्थु॰ जोग॰ समणं भगवं महावीरं आरोग्गा आरोग्गं पसूया।

छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः अथ अन्यदा कदाचित् नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अर्धाष्टमरात्रिन्दिवे व्यतिक्रान्ते योऽसौ ग्रीष्माणां प्रथमो मासः द्वितीयः पक्षःचैत्रशुक्लःतस्य चैत्रशुक्लस्य त्रयोदशी पक्षः (दिवसः) उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रेण समं योगमुपागते चन्द्रमसि आरोग्या आरोग्यं प्रसूता।

---

१ ननु संह्रियमाणो न जानातीति कथ युक्त ? सहरणस्य असंख्यसामयिकत्वात्, भगवतश्च सहरण कर्तृ देवापेक्षया विशिष्टज्ञानवत्वात् ? उच्यते, इदं वाक्य सहरणस्य कौशलज्ञापकम्, तथा तेन संहरण कृत भगवत यथा भगवता ज्ञातमपि अज्ञातमिवाभूत् पीडाऽभावात्, यथा कश्चिद् वदति त्वया मम पादात्तथा कटक उद्धृत यथा मया ज्ञात एव नेति, सौख्यातिशये च सत्येव विधो व्यपदेश सिद्धान्तेऽपि दृश्यते, तथा हि– 'तहिं देवा वतरीआ, वरतरुणीगीयवाइपरवेण। निच्च सुहिअपमुइआ, गयंपि कालं न जाणति। – कल्पसूत्र, सुबोधिका व्याख्या।

२ पभूण भंते ! हरिणेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भ नहसिरसि वा रोमकूवंसि वा साहरित्तए वा नीहरित्तए वा ? हता पभू, नो चेव ण तस्स गब्भस्स आबाह वा विबाह वा उप्पाएज्जा, छविच्छेय पुण करिज्जा।

– श्री भगवती सूत्र,श॰ ५, सूत्र १८६।

पदार्थ– **तेण कालेण**-उस काल मे। **तेणं समएण**-उस समय में। **तिसलाए खत्तियाणीए**-त्रिशला क्षत्रियाणी ने। **अह**-अथ। **अन्नया कयाई**-अन्य किसी समय। **नवण्ह मासाणं**-नव मास। **बहुपडिपुण्णाणं**-परिपूर्ण होने पर। **अद्धट्ठमाणराइदियाणं** साढे सात अहोरात्र अधिक। **विइक्कंताणं**-व्यतीत होने पर। **जे**-जो। **से**-वह। **गिम्हाण**-ग्रीष्म ऋतु के। **पढमे मासे**-प्रथम मास। **दुच्चे पक्खे**-दूसरे पक्ष। **चित्तसुद्धे**-चैत्र शुक्ल पक्ष मे। **ण**-वाक्यालकार मे है। **तस्स**-उस। **चित्तसुद्धस्स**-चैत्र शुक्ल की। **तेरसीपक्खेणं**-त्रयोदशी तिथि के दिन। **हत्थु०**-उत्तरा फाल्गुनी। **णक्खत्तेण**-नक्षत्र के साथ। **जोगमुवागएण**-चन्द्रमा का योग आ जाने पर। **समणं**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीर**-महावीर को। **आरोग्गा आरोग्ग पसूया**-रोग रहित अर्थात् सुख-पूर्वक माता ने प्रसव किया अर्थात् भगवान को सुख पूर्वक जन्म दिया।

***मूलार्थ*—उस काल और उस समय में त्रिशला क्षत्राणी ने अन्य किसी समय नव मास साढ़े सात अहोरात्र के व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष मे अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास और द्वितीय पक्ष अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे त्रिशला महाराणी ने बिना किसी प्रकार की पीडा के, सुखपूर्वक बाधा-पीडा से रहित पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्म के समय माता एव पुत्र को कोई कष्ट नहीं हुआ। दोनो स्वस्थ, नीरोग एव प्रसन्न थे।

भगवान के जन्म से देव-देवियो के मन मे होने वाले हर्ष का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– जण्णं राइं तिसला ख० समणं० महावीरं अरोया अरोयं पसूया तण्णं राइं भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं देवीहि य ओवयंतेहिं उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसन्निवाए देवकहक्कहए उप्पिंजलभूए यावि होत्था।

छाया– यस्या रात्रौ त्रिशला क्षत्रियाणी श्रमणं भगवन्तं महावीरं अरोग्या अरोग्यं प्रसूता (सुषुवे) तस्यां रात्रौ भवनपतिवाणव्यन्तरज्योतिषिकविमानवासिदेवैः देवीभिश्च अवपतद्भिः उत्पतद्भिश्च एको महान् दिव्यः देवोद्योत. देवसन्निपातः देवकहकहकः उत्पिंजलभूतश्चापि अभवत्।

पदार्थ– **जण्णं राइ**-जिस रात्रि मे। **तिसला खत्तियाणी**-त्रिशला क्षत्रियाणी ने। **समणं**-श्रमण। **भगवं**-भगवान। **महावीरं**-महावीर को। **अरोया अरोयं**-सुखपूर्वक। **पसूया**-जन्म दिया। **तण्णं राइं**-उस रात्रि मे। **भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं**-भवन पति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों तथा। **देवीहि य**-देवियो के। **ओवयंतेहिं**-स्वर्ग से भूमि पर आने। **य**-और। **उप्पयंतेहिं**-मेरु पर्वत पर जाने से भूमि पर।

एगे-एक। महं-महान। दिव्वे-प्रधान। देवुज्जोए-देव विमानो का उद्योत प्रकाश हुआ और। देवसन्निवाए-देवो के एकत्र होने से। देवकहक्कहए-देवो द्वारा अवर्णनीय कोलाहल करने से। उप्पिंजलभूए यावि होत्था-वह रात्रि देवो के अट्टहास एव उद्योत से युक्त हो गई।

***मूलार्थ*—जिस रात्रि मे रोग रहित त्रिशला क्षत्रियाणी ने रोग् रहित श्रमण भगवान महावीर को जन्म दिया उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवो और देवियों के स्वर्ग से आने और मेरूपर्वत पर जाने से एक महान तथा प्रधान देवोद्योत और देव सन्निपात के कारण महान कोलाहल और मध्य एवं उर्ध्व लोक मे उद्योत हो रहा था।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान के जन्म से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक चारो जाति के देवो के मन मे हर्ष एव उल्लास छा गया और वे प्रसन्नता पूर्वक भगवान का जन्मोत्सव मनाने को आने लगे। उन देव-देवियो के रत्न-जटित विमानो की ज्योति एव मधुर ध्वनि से वह रात्रि ज्योतिर्मय हो गई और चारो ओर मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी।

देवो ने वहा आकर क्या किया इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जण्णं रयणिं तिसला ख॰ समणं॰ पसूया तण्णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च १ गंधवासं च २ चुन्नवासं च ३ पुप्फवा॰ ४ हिरन्नवासं च ५ रयणवासं च ६ वासिंसु।

छाया– यस्यां रजन्या त्रिशला क्षत्रियाणी श्रमणं भगवन्तं महावीरं प्रसूता (प्रसूतवती) तस्यां रजन्यां बहवो देवाश्च देव्यश्च एकं महद् अमृतवर्ष च, गन्धवर्षं च, चूर्णवर्षं च, पुष्पवर्षं च, हिरण्या वर्षं च, रत्नवर्षं च अवर्षयन्।

***पदार्थ*– जणण रयणि-जिस रात्रि मे। तिसला ख॰-त्रिशला क्षत्राणी ने। समणं भगवं महावीर-श्रमण भगवान महावीर को। पसूया-जन्म दिया। तणण रयणिं-उसी रात्रि मे। बहवे-बहुत से। देवा-देव। य-और। देवीओ-देवियो ने। एग महं-एक बड़ी भारी। अमयवासं च-अमृत वृष्टि की और। गंधवास च-सुगन्धित द्रव्यो की। चुन्नवासं च-सुगन्धि मय चूर्ण की। पुप्फवासं च-पुष्पो की। हिरन्नवास च-तथा हिरण्य सोने-चांदी की और। रयणवासं च-रत्नो की। वासिंसु-वर्षा बरसाई।**

***मूलार्थ*—जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान महावीर को जन्म दिया, उसी रात्रि में बहुत से देव और देवियों ने अमृत, सुगन्धित पदार्थ, चूर्ण, पुष्प, चान्दी, स्वर्ण और रत्नों की बहुत भारी वर्षा की।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर के जन्म पर हर्षविभोर होकर देवो ने अमृत, सुवासित पदार्थ, पुष्प, चादी, स्वर्ण एव रत्नो आदि की वर्षा की। उन्होने उस क्षेत्र को सुवासित एव रत्नमय बना दिया। महान् आत्माओ के प्रबल पुण्य से यह सब सभव हो सकता है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जण्णं रयणिं तिसला ख० समणं० पसूया तण्णं रयणिं भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सूइकम्माइं तित्थयराभिसेयं च करिंसु।

छाया– यस्यां रजन्या त्रिशला क्षत्रियाणी श्रमणं भगवन्तं महावीरं प्रसूता (प्रसूतवती) तस्यां रजन्यां भवनपतिवाणव्यन्तर-ज्योतिषिकविमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य शुचिकर्माणि तीर्थंकराभिषेकं च अकार्षुः।

पदार्थ– **जण्णं रयणि**-जिस रात्रि मे। **तिसला ख०**-त्रिशला क्षत्रियाणी ने। **समण भगव महावीरं**-श्रमण भगवान महावीर को। **पसूया**-जन्म दिया। **तण्ण रयणि**-उस रात्रि मे। **भवणवइवाणमतर-जोइसियविमाणवासिणो**-भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और विमान वासी। **देवा य**-देव और। **देवीओ य**-देवियो ने। **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान महावीर का। **सूइकम्माइं**-शुचिकर्म। **च**-और। **तित्थयराभिसेयं**-तीर्थंकराभिषेक। **करिंसु**-किया।

मूलार्थ—**जिस रात में त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान महावीर को जन्म दिया, उसी रात्रि में भवन पति, वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियो ने श्रमण भगवान महावीर का शुचि कर्म और तीर्थंकराभिषेक किया।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान के जन्मोत्सव का उल्लेख किया गया है। भगवान का जन्म होने पर ५६ दिशा कुमारियो ने भगवान का शुचि कर्म किया और ६४ इन्द्रो ने भगवान को मेरु पर्वत के पण्डक वन मे ले जाकर उनका जन्म अभिषेक किया। इसका विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे किया गया है[१] और उसी के आधार पर कल्पसूत्र मे भी उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत सूत्र मे तो केवल प्रासगिक सकेत रूप से उल्लेख किया गया है।

कुछ प्रतियो मे ''**सूइकम्माइ**'' के स्थान पर ''**कोतुगभूतिकम्माइं**'' पाठ उपलब्ध होता है। जिसका अर्थ है– देव-देवियो ने विभिन्न मागलिक कार्य किए।

भगवान के नाम सस्कार के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जओ णं पभिइ भगवं महावीरे तिसलाए ख० कुच्छिसि गब्भं

---

१ खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवताओ वासहरपव्वयाओ गोसीसचदण कट्ठाइं साहरह, तएण ते अभिओगा देवा बाहिरुयग मज्झवत्थव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारी महत्तरिआहि० एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा । जाव विणएण वयण पडिच्छति २ त्ता खिप्पामेव चुल्ल हिमवताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइ गोसीस चन्दण कट्ठाइ साहरन्ति, तएण ताओ मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चतारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सरग करेंति २ त्ता अरणिं घडेंति २ अरणिं घडित्ता सरएण अरणि महिंति २ त्ता अग्गि पाडेति २ त्ता अग्गि संधुक्खेंति २ त्ता गोसीस चदण कट्ठे पक्खिवति २ त्ता अग्गि उज्जालति २ त्ता समिहाकट्ठाइ पक्खिवति २ त्ता अग्गिहोम करेंति २ त्ता भूतिकम्म करेंति २ त्ता-रक्खापोट्टलियं बधन्ति बन्धेत्ता णाणा मणिरयणभत्ति चित्ते दुविहे पाहाणवट्टगोलए गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टिआवेंति भवउ भयव पव्वयाउए २।
— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र।

आगए तओ णं पभिइ तं कुलं विपुलेणं हिरन्नेणं सुवन्नेणं धणेणं धन्नेणं माणिक्केणं मुत्तिएणं संखसिलप्पवालेणं अईव २ परिवड्ढइ, तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो एयमट्ठं जाणित्ता निव्वत्तदसाहंसि वुक्कंतंसि सुइभूयंसि विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति २ त्ता मित्तनाइसयण-संबंधिवग्गं उवनिमंतंति मित्त० उवनिमंतित्ता बहवे समणमाहणकिवण-वणीमगाहिं भिच्छुंडगपंडरगाईण विच्छड्डंति विग्गोविंति विस्साणिंति दायारेसु दाणं पज्जभाइंति विच्छड्डित्ता विग्गो० विस्साणित्ता दाया० पज्जभाइत्ता मित्तनाइ० भुंजाविंति मित्त० भुंजावित्ता मित्त० वग्गेण इममेयारूवं नामधिज्जं कारविंतिं-जओ णं पभिइ इमे कुमारे ति० ख० कुच्छिंसि गब्भे आहूए तओ णं पभिइ इमं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं० संखसिलप्पवालेणं अतीव २ परिवड्ढइ, ता होउ णं कुमारे वद्धमाणे।

छाया— यतः प्रभृति भगवान् महावीरः त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः कुक्षौ गर्भमागतः तत. प्रभृति तत् कुलं विपुलेन हिरण्येन सुवर्णेन धनेन, धान्येन माणिक्येन मौक्तिकेन शंखशिलाप्रवालेन अतीव २ परिवर्द्धते, ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अम्बापितरौ एतमर्थं ज्ञात्वा निवर्तितदशाहे व्युत्क्रान्ते शुचीभूते विपुलाशनपानखादिमस्वादिम मुपस्कारयंति उपस्कार्य मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिवर्गमुपनिमंत्रयन्ति मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिवर्गमुपनिमंत्र्य बहून् श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् भिक्षोडुगपंडरगादीन् विच्छर्दयन्ति विगोपयन्ति विश्राणयन्ति, दातृषु दानं परिभाजयन्ति, विच्छर्द्य विगोप्य विश्राण्य दातृषु परिभाज्य मित्रज्ञातिस्व-जनसम्बन्धिवर्गं परिभोजयन्ति मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिवर्गं भोजयित्वा मित्रज्ञातिस्वजन-सम्बन्धिवर्गेण, इदमेतद्रूपं नामधेयं कारयन्ति, यत. प्रभृति अयं कुमारः त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः कुक्षौ गर्भे आहूतः तत. प्रभृति इदं कुलं विपुलेन हिरण्येन सुवर्णेन धनेन धान्येन माणिक्येन मौक्तिकेन शंखशिलाप्रवालेन अतीव २ परिवर्द्धते तावत् भवतु कुमार. वर्द्धमानः।

पदार्थ— णं-वाक्यालकार मे है। जओ पभिइ-जब से। समणे-श्रमण। भगवं-भगवान। महावीरे-महावीर। तिसलाए-त्रिशला। खत्तियाणीए-क्षत्रियाणी की। कुच्छिंसि-कुक्षि मे। गब्भं-गर्भ रूप मे। आगए-आए हैं। णं-वाक्यालंकार मे है। तओ पभिइ-उसी दिन से लेकर। त कुलं-वह ज्ञातवशीय कुल। विपुलेणं-विशेष रूप से। हिरण्णेणं-हिरण्य-चान्दी से। सुवण्णेणं-सुवर्ण से। धणेणं-धन से रूप्यकादि से। धन्नेणं-शालि आदि धान्य से। माणिक्केणं-माणिक से। मोत्तिएणं-मोतियो से। संखसिलप्पवालेणं-शख शिला और प्रवाल से। अईव२-बहुत-बहुत। परिवड्ढइ-समृद्ध हो रहा है। णं-वाक्यालकार मे है। तओ-तदनन्तर। समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान महावीर के। अम्मापियरो-माता-पिता ने। एयमट्ठं जाणित्ता-

इस परमार्थ को जानकर। **निव्वत्तदसाहंसि**-दस दिनो के निर्वर्तित होने तथा। **वुक्कंतंसि**-व्युत्क्रान्त हो जाने एवं। **सूइभूयंसि**-शुद्ध होने पर। **विपुलं**-बहुत। **असणपाणखाइमसाइमं**-अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थ। **उवक्खडाविंति २ त्ता**-तैयार करवा कर। **मित्त**-मित्र। **नाइ**-ज्ञाति। **सयण**-स्वजन। **संबधिवग्गं**-सम्बन्धि वर्ग को। **उवनिमतंति**-निमंत्रित करते है। **उवनिमंतित्ता**-और उन्हे निमत्रण करके फिर। **बहवे**-बहुत से। **समणमाहणकिवणवणीमगाहि**-शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, भिखारी तथा। **भिच्छुंडगपंडरगाईण**-भस्म आदि को शरीर मे लगाकर भिक्षा मागने वाले अन्य भिक्षुगणो को। **विच्छड्डति**-भोजन कराते हैं। **विगोविंति**-विगोपन करते हैं। **विस्साणिति**-विशेष रूप से आस्वादन करते हैं। **दायारेसु दाणं पज्जभाइंति**-याचक जनो मे बाटते हैं और सब को भोजन कराते हैं फिर। **विच्छड्डित्ता**-शाक्यादि को देकर। **विग्गो०**-विगोपन कर। **विसाणित्ता**-आस्वादन कर। **दाया० पज्जभाइत्ता**-याचक जनो मे बाट करके। **मित्तेनाइ०**-मित्र ज्ञाति जनो को। **भुजाविति** भोजन कराया। **मित्त० भुजावित्ता**-मित्रादि को भोजन करवा कर फिर। **वग्गेण**-वर्ग आदि के सन्मुख। **इमेयारूव**-इस प्रकार। **नामधिज्ज**-नाम करण। **कारविंति**-करते हैं। **जओ ण पभिइ**-जिस दिन से लेकर। **इमे कुमारे**-यह कुमार। **ति० ख०**-त्रिशला क्षत्रियाणी की। **कुच्छिंसि**-कुक्षि मे। **गब्भे**-गर्भपने। **आहूए**-आया है। **तओ ण**-तब से। **पभिइ**-लेकर। **इम कुल**-हमारा यह कुल। **विपुलेणं**-विपुल विस्तीर्ण रूप से। **हिरन्नेणं**-हिरण्य-चान्दी। **सुवण्णेणं**-सुवर्ण। **धणेणं**-धन। **धन्नेण**-धान्यादि से तथा। **माणिक्केणं**-माणिक्य से। **मुत्तएणं**-मोतियों से और। **संखसिलप्पवालेणं**-शख शिला तथा प्रवाल-मूगा आदि से। **अतीव २**-अत्यन्त। **परिवड्ढइ**-वृद्धि को प्राप्त हुआ है। **णं**-वाक्यालकार मे है। **ता**-अत । **कुमारे वद्धमाणे**-इस कुमार का नाम वर्द्धमान हो अर्थात् मैं इस कुमार का वर्द्धमान नाम रखता हू।

मूलार्थ—जिस रात को श्रमण भगवान महावीर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में आए उसी समय से उस ज्ञातवंशीय क्षत्रिय कुल में हिरण्य-चादी, स्वर्ण, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंखशिला और प्रवालादि की अभिवृद्धि होने लगी। श्रमण भगवान महावीर के जन्म के ग्यारहवे दिन शुद्ध हो जाने पर उनके माता-पिता ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थ बनवाए और अपने मित्र , ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धि वर्ग को निमंत्रित किया और बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, वनीपक तथा अन्य तापसादि भिक्षुओ को भोजनादि, पदार्थ दिए। अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बधि वर्ग को प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजन आदि कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात् उनके सामने कुमार के नामकरण का प्रस्ताव रखते हुए सिद्धार्थ न बताया कि यह बालक जिस दिन से त्रिशला देवी की कुक्षि मे गर्भ रूप से आया है तब से हमारे कुल मे हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंख, शिला और प्रवालादि पदार्थों की अत्यधिक वृद्धि हो रही है। अत इस कुमार का गुण सम्पन्न 'वर्द्धमान' नाम रखते हैं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान महावीर के नामकरण का उल्लेख किया गया है। भगवान के जन्म के दस दिन के पश्चात् शुद्धि कर्म किया गया और अपने स्नेही-स्वजनो को बुला कर उन्हे भोजन कराया और अनेक श्रमण-ब्राह्मणो एव भिक्षुओ को भी यथेष्ट भोजन दिया गया। उसके बाद सिद्धार्थ राजा ने सबको यह बताया कि इस बालक के गर्भ मे आते ही हमारे कुल मे धन-धान्य आदि की

वृद्धि होती रही है। अत· इसका नाम 'वर्द्धमान' रखते हैं

प्रस्तुत सूत्र में केवल गुण सपन्न नाम देने का उल्लेख किया गया है। परन्तु नाम करण की परम्परा का अनुयोगद्वार सूत्र मे विस्तार से विवेचन किया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नाम सस्कार की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है।

भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्व नाथ के श्रावक थे। फिर भी उन्होने अन्य मत के श्रमण भिक्षुओ आदि को बुलाकर दान दिया। इससे स्पष्ट होता है कि आगम मे श्रावक के लिए अनुकम्पा दान आदि का निषेध नहीं किया गया है। गृहस्थ का द्वार बिना किसी भेद भाव के सब के लिए खुला रहता है। वह प्रत्येक प्राणी के प्रति दया एव स्नेह भाव रखता है।

इसी विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तओ णं समणे भगवं महावीरे पंचधाइपरिवुडे तं० १ खीरधाईए, २ मज्जणधाईए, ३ मंडणधाईए, ४ खेलावणधाईए, ५ अंकधाईए, अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे रम्मे मणिकुट्टिमतले गिरिकंदरसमल्लीणेविव चंपयपायवे अहाणुपुव्वीए संवड्ढइ, तओ णं समणे भगवं० विन्नायपरिणय-(मित्ते) विणियत्तबालभावे अप्पुस्सुयाइं उरालाइं माणुस्सगाइं पंचलक्खणाइं कामभोगाइं सद्दफरिसरसरूवगन्धाइं परियारेमाणे एवं च णं विहरइ ॥१७६ ॥

छाया– ततः श्रमणो भगवान् महावीरः पंचधात्रीपरिवृत्तः तद्यथा १ क्षीरधात्र्या, २ मज्जनधात्र्या, ४ मंडनधात्र्या, ४ क्रीड़नधात्र्या, ५ अंकधात्र्या, अंकाद् अंकं समाह्रियमाण. रम्ये मणिकुट्टिमतले गिरिकन्दरसंलीन इव चम्पकपादप· यथानुपूर्व्या संवर्धते। तत· श्रमणो भगवान् महावीर. विज्ञातपरिणत्त विनिवृत्तबालभाव. अल्पौत्सुक्यान् उदारान् मानुष्यकान् पञ्चलक्षणान् कामभोगान् शब्दस्पर्शरसरूपगंधान् परिचरन् एवं च विहरति।

पदार्थ– **णं**-वाक्यालकार मे है। **तओ**-तदनन्तर। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर। **पंचधाइपरिवुडे**-पाच धाय माताओ से परिवृत्त हुए। **तंजहा**-जैसे कि। **खीरधाईए**-दूध पिलाने वाली धाय माता से। **मज्जणधाईए**-स्नान कराने वाली माता से। **मंडणधाईए**-वस्त्र और अलकार पहनाने वाली माता से। **खेलावणधाईए**-क्रीड़ा कराने वाली माता से और। **अकधाईए**-गोद मे खेलाने वाली माता से, इस प्रकार। **अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे**-एक गोद से दूसरी गोद मे सहृत होते हुए। **रम्मे**-रमणीय। **मणिकुट्टिमतले**-मणिजटित आगन में इस तरह वृद्धि को प्राप्त कर रहे हैं। **गिरिकंदर- समल्लीणेविव**-जैसे पर्वत की गुफा मे उत्पन्न हुआ। **चंपयपायवे**-चम्पक नाम का प्रधान वृक्ष विघ्न बाधाओ से रहित हो कर वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर भी। **अहाणुपुव्वीए**-यथानुक्रम। **संवड्ढइ**-निर्विघ्नतया वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। **णं**-वाक्यालंकार में है। **तओ**-तदनन्तर। **समणे भगवं महावीरे**-श्रमण भगवान महावीर। **विन्नायपरिणय०**-स्वयमेव विज्ञान को प्राप्त हुए। **विणियत्तबालभावे**-बाल भाव को त्याग कर यौवन मे पदार्पण करते हुए।

अप्पुस्सुयाइं-उत्सुकता से रहित अर्थात् उदासीनता से। **उरालाइं**-प्रधान। **माणुस्सगाइ**-मनुष्य सम्बन्धि। **पंचलक्खणाइ**-पाच प्रकार के। **सद्दफरिसरसरूवगंधाइं**-शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से युक्त। **कामभोगाइं**-काम भोगों का। **परियारेमाणे**-उपभोग करते हुए। **एव**-इस प्रकार से। **विहरइ**-विहरण करते हैं। **च**-समुच्चय अर्थ मे है। **णं**-वाक्यालंकार में है।

***मूलार्थ*—जन्म के बाद भगवान महावीर का पांच धाय माताओं के द्वारा लालन-पालन होने लगा। दूध पिलाने वाली धाय माता, स्नान कराने वाली धाय माता, वस्त्रालंकार पहनाने वाली धाय माता, क्रीड़ा कराने वाली और गोद में खिलाने वाली धाय माता, इन ५ धाय माताओ की गोद में तथा मणिमंडित रमणीय आगन प्रदेश में खेलने लगे और पर्वत गुफा मे स्थित चम्पक बेल की भान्ति विघ्न बाधाओं से रहित होकर यथाक्रम बढ़ने लगे। उसके पश्चात् ज्ञान-विज्ञान संपन्न भगवान महावीर बाल भाव को त्याग कर युवावस्था में प्रविष्ट हुए और मनुष्य सम्बन्धि उदार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्धादि से युक्त पांच प्रकार के काम भोगो का उदासीन भाव से उपभोग करते हुए विचरने लगे।**

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान सुख पूर्वक बढने लगे। उनके लालन-पालन के लिए ५ धाय माताए रखी हुई थीं। दूध पिलाने वाली, स्नान कराने वाली, वस्त्रालकार पहनाने वाली, क्रीडा कराने वाली और गोद मे खिलाने वाली, इन विभिन्न धाय माताओ की गोद मे आमोद-प्रमोद से खेलते हुए भगवान ने बाल भाव का त्याग कर यौवन वय मे कदम रखा। यौवन का नशा बडा विचित्र होता है। परन्तु, भगवान ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न थे। अत. प्राप्त भोगो मे भी वे आसक्त नहीं हुए। वे शब्द, रस, स्पर्श आदि भोगो का उदासीन भाव से उपभोग करते थे। इस कारण वे सक्लिष्ट कर्मों का बन्धन नहीं करते थे। क्योकि भोगो के साथ जितनी अधिक आसक्ति होती है, कर्म बन्धन भी उतना ही प्रगाढ होता है। भगवान उदासीन भाव से रहते थे, अत उन का कर्म बन्धन भी शिथिल ही होता था।

अब भगवान के गुण निष्पन्न नाम एव उनके परिवार का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— **समणे भगवं महावीरे कासवगुत्ते, तस्स णं इमे तिन्नि नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे (१) सहसंमुइए समणे (२) भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परीसहंसहइत्तिकट्टु देवेहिं से नामं कयं समणे भगवं महावीरे (३) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिया कासवगुत्तेणं, तस्स णं तिन्नि नाम० तं० सिद्धत्थे इ वा, सिज्जंसे इ वा, जसंसे इ वा। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठस्सगुत्ता तीसे णं तिन्नि ना० तं०-तिसला इ वा, विदेहदिन्ना इ वा, पियकारिणी इ वा। समणस्स णं भ० पित्तिअए सुपासे कासवगुत्तेणं। समण० जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासवगुत्तेणं, समणस्स णं जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगुत्तेणं, समणस्स णं भग० भज्जा जसोया**

कोडिन्नागुत्तेणं, समणस्स णं धूया कासवगोत्तेणं, तीसे णं दो नामधिज्जा एवमा० – अणुज्जा इ वा, पियदंसणा इ वा, समणस्स णं भ० नत्तुई कोसियागुत्ते-णं, तीसे णं दो नाम० तं० सेसवई इ वा, जसवई इ वा ॥१७७॥

छाया– श्रमणो भगवान् महावीर. काश्यपगोत्रः तस्य इमानि त्रीणि नामधेयानि एवमाख्यायन्ते, तद्यथा अम्बापितृसत्कं वर्द्धमानः, सहसंमुदितः श्रमणः। भीमं भयभैरवं उदारमचलं परीषहसह इतिकृत्वा देवैः तस्यनाम कृतं श्रमणो भगवान् महावीरः। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पिता काश्यपगोत्रः तस्य त्रीणि नामधेयानि एवमाख्यायन्ते तद्यथा– सिद्धार्थ इति वा श्रेयास इति वा यशस्वी इति वा। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अम्बा, वासिष्ठ गोत्रा तस्याः त्रीणि नामधेयानि एवमाख्यायन्ते, त्रिशला इति वा, विदेहदत्ता इति वा, प्रियकारिणी इति वा। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पितृव्यः, सुपार्श्वः काश्यपगोत्रः, श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठो भ्राता नन्दिवर्द्धनः काश्यपगोत्रः, श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठा भगिनी सुदर्शना काश्यपगोत्रा। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य भार्या यशोदा कौडिन्यगोत्रा। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य दुहिता काश्यपगोत्रा, तस्याः द्वे नामधेये, एवमाख्यायेते, तद्यथा अनोज्जा इति वा प्रियदर्शना इति वा। श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य दौहित्री काश्यपगोत्रा तस्या. द्वे नामधेये एवमाख्यायेते तद्यथा-शेषवती इति वा यशस्वती इति वा।

पदार्थ– समणे भगव महावीरे-श्रमण भगवान महावीर। कासवगुत्ते-काश्यप गोत्री। ण-वाक्यालकार मे है। तस्स-उसके। इमे-ये। तिन्नि-तीन। नामधिज्जा-नाम। एवमाहिज्जति-इस प्रकार कहे जाते है। तजहा-जैसे कि। अम्मापिउसतिए-माता-पिता की ओर से दिया गया। वद्धमाणे-वर्द्धमान नाम था। सहसंमुइए समणे-स्वाभाविक गुण से उत्पन्न हुआ श्रमण अर्थात् सम भाव धारण करने से तथा अत्यन्त घोर तप करने से श्रमण कहलाए एव। भीम-रौद्र। भयभेरव-अत्यन्त भय के उत्पन्न करने वाला। उरालं-प्रधान। अचेलयं-अचल। परीसहंसहतिकट्टु-परीषहों के सहन करने से। देवेहिं-देवो ने। से-उनका-वर्द्धमान का। समणे भगवं महावीरे-श्रमण भगवान महावीर ऐसा। नामकयं-नाम रखा। समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान् महावीर के। पिया-पिता। कासवगुत्तेणं-काश्यप गोत्रीय थे। तस्स णं-उसके। तिन्नि-तीन। नाम०-नाम कहे गए हैं। तं०-जैसे कि। सिद्धत्थे इ वा-सिद्धार्थ यह। सिज्जंसे इ वा-श्रेयास यह। जसंसे इ वा-और यशस्वी यह तीन नाम थे। समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान महावीर की। अम्मा-माता। वासिट्ठस्सगुत्ता-वासिष्ठ गौत्र वाली। तीसे णं-उसके। तिन्नि नाम०-तीन नाम कहे गए हैं। तं०-जैसे कि। तिसला इ वा-त्रिशला इति। विदेहदिन्ना इ वा-विदेह दत्ता और। पियकारिणी इ वा-प्रियकारिणी इति। समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान महावीर के। पित्तिअए-पितृव्य-पिता के भाई। कासवगुत्तेणं -काश्यप गोत्री का। सुपासे-सुपार्श्व नाम था। समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान महावीर के।

जिट्ठे भाया-ज्येष्ट भ्राता। **कासवगुत्तेणं**-काश्यप गोत्री का। **नंदिवद्धणे**-नन्दीवर्द्धन नाम था। **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान की। **जेट्ठा भइणी**-ज्येष्ठ बहन। **कासवगुत्तेणं**-काश्यप गोत्रीया का। **सुदंसणा**-सुदर्शना नाम था। **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान महावीर की। **भज्जा**-भार्या। **कोडिन्नागुत्तेणं**-कौडिन्य गोत्रीया का। **जसोया**-यशोदा नाम था। **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान महावीर की। **धूया**-पुत्री । **कासवगोत्तेण**-काश्यप गोत्रीय थी। **तीसे णं**-उसके। **दो नामधिज्जा**-दो नाम । **एवमाहिज्जंति**-इस प्रकार कहे जाते है। **अणुज्जा इ वा**-अनोज्जा इति। **पियदसणा इ वा**-प्रियदर्शना इति अर्थात् अनोज्जा और प्रियदर्शना ये दो नाम थे। **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान् महावीर की। **नत्तुई**-दौहित्री। **कोसियागुत्तेणं**-कौशिक गोत्र वाली थी। **तीसेणं**-उसके। **दो नामधिज्जा एवमा॰**-दो नाम इस प्रकार कहे गए हैं। **तं॰**-जैसे कि। **सेसवई इ वा**-शेषवती इति और। **जसवई इ वा**-यशवती इति।

***मूलार्थ*—काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार से तीन नाम कहे गए हैं– माता-पिता का दिया हुआ वर्द्धमान, स्वाभाविक समभाव होने से श्रमण और अत्यन्त भयोत्पादक परीषहों के समय अचल रहने एवं उन्हे समभाव पूर्वक सहन करने से देवो के द्वारा प्रणिष्ठित महावीर। श्रमण भगवान् महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी ये तीन नाम थे। श्रमण भंगवान महावीर की वासिष्ठ गोत्र वाली माता के त्रिशला, विदेह-दत्ता और प्रियकारिणी ये तीन नाम थे। श्रमण भगवान महावीर के पितृव्य-पिता के भाई का नाम सुपार्श्व था, श्रमण भगवान महावीर स्वामी के काश्यपगोत्री ज्येष्ठ भ्राता का नाम नन्दीवर्द्धन था। भगवान की ज्येष्ठ भगिनी का नाम सुदर्शना था। भगवान की भार्या-जो कि कौडिन्य गोत्र वाली थी-का नाम यशोदा था। भगवान की पुत्री के अनोजा और प्रियदर्शना ये दो नाम कहे जाते हैं तथा श्रमण भगवान महावीर के दौहित्री जिसका-कौशिक गौत्र था-के शेषवती और यशवती ये दो नाम थे।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे भगवान के नाम एव परिवार का परिचय दिया गया है। भगवान के वर्द्धमान, श्रमण और महावीर इन तीन नामो का उल्लेख किया गया है। वर्द्धमान नाम माता-पिता द्वारा दिया गया था। और दीक्षा ग्रहण करने के बाद भगवान की समभाव पूर्वक तपश्चर्या करने की प्रवृत्ति थी, उससे उन्हे श्रमण कहा गया और देवो द्वारा दिए गए घोर परीषहो मे भी वे आत्म चिन्तन से विचलित नहीं हुए तथा उन्हे समभाव पूर्वक सहते रहे, इससे उन्हे महावीर कहा गया। आगमो मे एव जन साधारण मे उनका यही नाम अधिक प्रचलित रहा है। और आज भी वे महावीर के नाम से ससार मे विख्यात हैं।

भगवान महावीर के पिता के तीन नाम थे– सिद्धार्थ, श्रेयास और यशस्वी। उनकी माता के त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी ये तीन नाम थे। उनके पिता के भाई का नाम सुपार्श्व था और उनके बडे भाई का नाम नदीवर्द्धन था। उनके सुदर्शना नाम की एक ज्येष्ठ बहन थी। उनकी पत्नी का नाम यशोदा है। उनकी पुत्री के अनोजा और प्रियदर्शना ये दो नाम थे, जिसका विवाह जमाली के साथ किया गया था। उनके एक दौहित्री भी थी, जिसके शेषवती और यशवती ये दो नाम थे। इस तरह से भगवान महावीर का विशाल परिवार था।

अब उनके माता -पिता के सम्बन्ध मे कुछ बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार लिखते हैं-

मूलम्— समणस्स णं ३ अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि हुत्था, ते णं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पालइत्ता छण्हं जीवनिकायाणं सारक्खणनिमित्तं आलोइत्ता निंदित्ता गरिहित्ता पडिक्कमित्ता अहारिहं उत्तरगुणपायच्छित्ताइं पडिवज्जित्ता कुससंथारगं दुरूहित्ता भत्तं पच्चक्खायंति २ अपच्छिमाए मारणंतियाए संलेहणाए ज्झूसियसरीरा कालमासे कालंकिच्चा तं सरीरं विप्पजहित्ता अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ना, तओ णं आउक्खएणं भव० ठि० चुए चइत्ता महाविदेहे वासे चरमेणं उस्सासेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥१७८॥

छाया— श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अम्बापितरौ पार्श्वापत्ये श्रमणोपासकौ चापि अभूताम्। तौ बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं पालयित्वा षण्णां जीवनिकायानां संरक्षणनिमित्तम् आलोच्य निन्दित्वा गर्हित्वा प्रतिक्रम्य यथार्हं उत्तरगुणप्रायश्चितानि प्रतिपद्य कुशसस्तारकं दुरूह्य भक्तं प्रत्याख्यात: २ अपश्चिमया मारणन्तिकया संलेखनया ज्झोषितशरीरौ कालमासे कालं कृत्वा तच्छरीरं विप्रजह्य अच्युते कल्पे देवतया उपपन्नौ, ततः आयुः क्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण, च्युतौ त्यक्त्वा महाविदेहवर्षे चरमेण उच्छ्वासेन सेत्स्यत: भोत्स्यत: मोक्ष्यत: परिनिर्वास्यत: सर्वदुखानामन्तं करिष्यत:।

पदार्थ— **समणस्स भगवओ महावीरस्स**-श्रमण भगवान महावीर के। **अम्मापियरो**-माता-पिता। **पासावच्चिज्जा**-भगवान पार्श्वनाथ के साधुओ के। **समणोवासगा यावि हुत्था**-श्रमणोपासक थे। च-पुनरर्थक है। अवि-समुच्चयार्थक है। **णं**-वाक्यालकार मे है। **ते**-वे दोनो। **बहूइ**-बहुत। **वासाइ**-वर्षों की। **समणोवासग-परियागं**-श्रमणोपासक की पर्याय को-श्रावक धर्म को। **पालइत्ता**-पालकर। **छण्हं जीवनिकायाणं**-छ प्रकार की जीवनिकाय-समूह की। **सारक्खणनिमित्तं**-रक्षा के निमित्त। **आलोइत्ता**-आलोचना कर के। **निंदित्ता**-आत्मा की साक्षी से निन्दा करके। **गरिहित्ता**-गुरु आदि को साक्षी से गर्हणा कर के। **पडिक्कमित्ता**-पाप कर्म से प्रतिक्रमण करके। **अहारिहं**-यथा योग्य। **उत्तरगुणपायच्छित्ताइं**-उत्तर गुण सम्बन्धि प्रायश्चित को। **पडिवज्जित्ता**-ग्रहण करके। **कुससंथारगं**-कुशा के सस्तारक पर। **दुरूहित्ता**-बैठकर। **भत्तं पच्चक्खायति**-भक्त प्रत्याख्यान स्वीकार करते हैं। भक्त प्रत्याख्यान के पश्चात्। **अपच्छिमाए**-अन्तिम। **मारणंतियाए**-मारणान्तिक। **संलेहणाए**-शरीर की संलेखना से। **ज्झूसियसरीरा**-शरीर को सुखा कर। **कालमासे**-काल के समय। **कालं किच्चा**-काल करके। **तं सरीरं**-उस शरीर को। **विप्पजहित्ता**-त्याग कर। **अच्चुए कप्पे**-अच्युत नामा बारहवे देवलोक में। **देवत्ताए**-देवपने। **उववन्ना**-उत्पन्न हुए। **णं**-वाक्यालकार में है। **तओ**-तदनन्तर। **आउक्खएणं**-देवलोक की आयु का क्षय करके। **भव०**-देव भव का क्षय करके। **ठि०**-देव स्थिति का क्षय करके। **चुया**-वहां से च्यवे और।

चइत्ता-च्यव कर-च्युत होकर। महविदेहे वासे-महाविदेह क्षेत्र मे। चरमेणं-अन्तिम। उस्सासेणं-श्वासोच्छ्वास से। सिज्झिस्संति-सिद्ध होगे। बुज्झिस्सति-बुद्ध होगे। मुच्चिस्संति-कर्मों से मुक्त होगे। परिनिव्वाइस्संति-निर्वाण को प्राप्त होगे। सव्वदुक्खाणमत करिस्सति-सर्व प्रकार के दुखों का अन्त करेगे।

***मूलार्थ*—श्रमण भगवान महावीर स्वामी के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथ के साधुओं के श्रमणोपासक-श्रावक थे। उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन करके छ: जीवनिकाय की रक्षा के निमित्त आलोचना करके,आत्म-निन्दा और आत्मगर्हा करके पापो से प्रतिक्रमण कर के पीछे हटकर के, मूल और उत्तर गुणो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित ग्रहण करके, कुशा के आसन पर बैठकर, भक्त प्रत्याख्यान नामक अनशन को स्वीकार किया। और अन्तिम मारणान्तिक शारीरिक सलेखना द्वारा शरीर को सुखाकर अपनी आयु पूरी करके उस औदारिक शरीर को छोड़ कर अच्युत नामक १२ वें देवलोक मे देवपने उत्पन्न हुए। तदनन्तर वहा से देव सम्बन्धि आयु, भव और स्थिति का क्षय करके वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र मे चरम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध-बुद्ध मुक्त एवं परिनिवृत होगे और सर्वप्रकार के दु खों का अन्त करेगे।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान महावीर के माता-पिता जैन श्रावक थे, वे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के उपासक थे। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर के पूर्व भी जैन धर्म का अस्तित्व था। अत भगवान महावीर उसके सस्थापक नहीं, प्रत्युत जैन धर्म के प्रचारक थे, अनादि काल से प्रवहमान धार्मिक प्रवाह को प्रगति देने वाले थे। उनका कुल जैनधर्म से सस्कारित था। अत भगवान के माता-पिता के लिए 'पार्श्वापत्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'अपत्य' शब्द शिष्य एव सन्तान दोनो के लिए प्रयुक्त होता रहा है।

महाराज सिद्धार्थ एव महाराणी त्रिशला श्रावक-धर्म की आराधना करते हुए अन्तिम समय मे विधि पूर्वक आलोचना एव अनशन ग्रहण करके १२ वे स्वर्ग मे गए और वहा से महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष जाएगे। इससे स्पष्ट है कि साधु एव श्रावक दोनो मोक्ष के पथिक हैं। चतुर्थ गुणस्थान का स्पर्श करने के बाद यह निश्चित हो जाता है कि वह आत्मा अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करेगा। यह ठीक है कि सम्यक्त्व एव श्रावकत्व की साधना से ऊपर उठकर ही आत्मा निर्वाण पद को पा सकती है। श्रावक की साधना मे मुक्ति प्राप्त नहीं होती। क्योकि, उक्त साधना मे आत्मा पचम गुणस्थान से आगे नहीं बढती और समस्त कर्म बन्धनो एव कर्म-जन्य साधनो से सर्वथा मुक्त होने के लिए १४वे गुणस्थान को स्पर्श करना आवश्यक है। और उस स्थान तक साधुत्व की साधना करके ही पहुचा जा सकता है। अत: भगवान के माता-पिता यहा के आयुष्य को पूरा करके १२ वे स्वर्ग मे गए, वहा से महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्य भव करके दीक्षा ग्रहण करेगे और श्रमणत्व की साधना करके समस्त कर्म बन्धनो को तोड कर सिद्ध-बुद्ध एव मुक्त बनेगे।

कल्पसूत्र की सुबोधिका वृत्ति मे लिखा है कि आवश्यक निर्युक्ति मे बताया है कि भगवान के

माता-पिता चौथे स्वर्ग में गए और आचाराग मे १२ वा स्वर्ग बताया गया है[1]। यदि निर्युक्तिकार ने चौथे स्वर्ग का उल्लेख चतुर्थ जाति के (वैमानिक) देवो के रूप मे किया है, तब तो आचाराग से विपरीत नहीं कहा जा सकता। क्योकि १२ वा स्वर्ग वैमानिक देवों मे ही समाविष्ट हो जाता है और यदि उनका अभिप्राय चौथे देवलोक से ही है तो वह मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि आगम में स्पष्ट रूप से १२ वे स्वर्ग का उल्लेख किया गया है। अत आगम का कथन ही प्रामाणिक माना जा सकता है।

अब भगवान के दीक्षा महोत्सव का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भ० नाए नायपुत्ते नायकुल-निव्वत्ते विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसित्ति कट्टु अगारमज्झे वसित्ता अम्मापिऊहिं कालगएहिं देवलोगमणुपत्तेहिं, समत्तपइन्ने चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवन्नं चिच्चा बलं चिच्चा वाहणं चिच्चा धणकणगरयणसंतसारसावइज्जं विच्छड्डित्ता विग्गोवित्ता विस्साणित्ता दायारेसु दाणं दाइत्ता परिभाइत्ता संवच्छरं दलइत्ता जे से हेमताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं, हत्थुत्तरा० जोग० अभिनिक्खमणाभिप्पाए यावि होत्था।

छाया- तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः ज्ञातः ज्ञातपुत्रः ज्ञातकुलनिर्वृत्तः विदेहः विदेहदत्तः विदेहार्चः विदेहसुकुमालः त्रिंशद् वर्षाणि विदेहे इति कृत्वा अगारमध्ये उषित्वा अम्बापित्रौः कालगतयोः देवलोकमनुप्राप्तयोः समाप्तप्रतिज्ञः त्यक्त्वा हिरण्यं त्यक्त्वा सुवर्णं, त्यक्त्वा बलं, त्यक्त्वा वाहनं, त्यक्त्वा धनकनकरत्नसत्सारस्वापतेयं विच्छर्द्य विगोप्य विश्राण्य दातृषु दानं दत्वा परिभाज्य सम्वत्सरं दत्त्वा यः सः हेमन्तानां प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः मार्गशीर्षबहुल. तस्य मार्गशीर्षबहुलस्य दशमीपक्षेण हस्तोत्तरानक्षत्रेण योगमुपागतेन अभिनिष्क्रमणाभिप्रायश्चापि अभवत्।

पदार्थ- तेणं कालेण तेण समएणं-उस काल और उस समय मे। समणे भगवं महावीरे-श्रमण भगवान महावीर। नाए-ज्ञात-प्रसिद्ध। नायपुत्ते-ज्ञात पुत्र। नायकुलनिव्वत्ते-ज्ञात कुल मे चन्द्रमा के समान आल्हाद उत्पन्न करने वाले। विदेहे-वज्र नाराच-संहनन तथा समचतुरस्र सस्थान के अति सुन्दर होने से विदेह-अर्थात् विशिष्ट देह-शरीर वाले। विदेहदिन्ने-त्रिशला देवी के पुत्र होने से विदेह दिन्न अर्थात् भगवान को विदेह दिन्न या विदेह दत्त कहते हैं। विदेहजच्चे-विदेहार्च-अर्थात् त्रिशला माता के शरीर से उत्पन्न होने या कामदेव पर विजय प्राप्त करने से भगवान को विदेहार्च कहा गया है। विदेहसूमाले-विदेहसुकुमाल अर्थात् गृहस्थावास

---

१ अष्टाविंशति वर्षातिक्रमे भगवतो मातापितरौ आवश्यकाभिप्रायेण तूर्यं स्वर्गं आचारांगाभिप्रायेण तु अनशनेन अच्युत गतौ। - कल्पसूत्र सुबोधिका वृत्ति।

में अतिसुकुमार होने से विदेह सुकुमाल भी कहते हैं ऐसे भगवान। **तीसं वासाइं**-तीस वर्ष पर्यन्त। **विदेहंसित्तिकट्टु**-घर में इस प्रकार से किया। **अगारमज्झे**-घर के मध्य मे। **वसित्ता**-निवास कर के। **अम्मापिऊहिं**-माता-पिता के। **कालगएहिं**-स्वर्गवास होने और। **देवलोगमणुपत्तेहिं**-देवलोक को प्राप्त करने से। **समत्तपइन्ने**-भगवान की प्रतिज्ञा समाप्त हो गई। भगवान ने गर्भ में यह प्रतिज्ञा की थी कि माता-पिता के रहते हुए दीक्षा ग्रहण नहीं करुगा। अत अब इस प्रतिज्ञा के समाप्त होने पर। **चिच्चाहिरण्ण**-भगवान हिरण्य को छोड़ कर। **चिच्चा सुवण्ण**-सुवर्ण को छोड़ कर। **चिच्चा बलं**-बल सेना को छोड़ कर। **चिच्चा वाहण**-वाहन को छोड़ कर अर्थात् पालकी आदि की सवारी का त्याग कर के तथा। **धणकणगरयणसतसारसावइज्ज**-धन, कनक, रत्न आदि सार भूत लक्ष्मी को। **विच्छड्डित्ता**-छोड़ कर। **विग्गोवित्ता**-धन को प्रकट कर तथा। **विसाणित्ता**-दान देकर। **दायारेसु दाण दाइत्ता**-याचको को देकर। **परिभाइत्ता**-ज्ञाति जनो मे बाट कर और। **सवच्छर दलइत्ता**-साम्वत्सरिक दान देकर। **जे**-जो। **से**-वह। **हेमंताण**-हेमन्त ऋतु का। **पढमे मासे**-प्रथम मास। **पढमे पक्खे**-प्रथम पक्ष। **मग्गसिरबहुले**-मार्ग शीर्ष कृष्ण पक्ष। **तस्स णं**-उस। **मग्गसिरबहुलस्स**-मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की। **दसमीपक्खेणं**-दशमी के दिन। **हत्थुत्तरा॰**-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ। **जोग॰**-चन्द्रमा का योग आने पर। **अभिनिक्खमणभिप्पाए यावि होत्था**-भगवान के मन मे दीक्षा लेने का सकल्प उत्पन्न हुआ।

***मूलार्थ*—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान महावीर प्रसिद्ध ज्ञात पुत्र, ज्ञात कुल मे चन्द्रमा के समान, वज्रऋषभ नाराच संहनन के धारक, त्रिशला देवी के पुत्र, त्रिशला माता के अगजात, घर मे सुकुमाल अवस्था मे रहने वाले तीस वर्ष तक घर मे निवास करके माता-पिता के देव लोक हो जाने पर अपनी ली हुई प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने से हिरण्य, स्वर्ण-बल और वाहन, धन-धान्य, रत्न आदि प्राप्त वैभव को त्यागकर, याचको को यथेष्ट दान देकर तथा अपने सम्बन्धियो मे यथायोग्य विभाग करके एक वर्ष पर्यन्त दान देकर हेमन्त ऋतु के प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान ने दीक्षा ग्रहण करने का अभिप्राय प्रकट किया।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान के दीक्षा सबधी सकल्प का वर्णन किया गया है। इसमे बताया गया है कि भगवान के माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने पर भगवान ने सम्पूर्ण वैभव का त्याग करके दीक्षित होने का विचार प्रकट किया। जिस समय भगवान गर्भ मे आए थे, उस समय उन्होने यह सोचकर अपने शरीर को स्थिर कर लिया कि मेरे हलन-चलन करने से माता को कष्ट न हो। परन्तु इस क्रिया का माता के मन पर विपरीत प्रभाव पडा। गर्भ का हलन-चलन बन्द हो जाने से उसे यह सन्देह होने लगा कि कहीं मेरा गर्भ नष्ट तो नहीं हो गया है। और परिणाम स्वरूप माता का दु.ख और बढ गया और उसे दु.खित देखकर सारा परिवार शोक मे डूब गया। अपनी अवधि ज्ञान से माता की इस दुखित अवस्था को देखकर भगवान ने हलन-चलन शुरु कर दिया और साथ मे यह प्रतिज्ञा भी ले ली कि जब तक माता-पिता जीवित रहेगे, तब तक मैं दीक्षा नहीं लूगा। वे अपने लिए अपनी माता को जरा भी कष्ट देना नहीं चाहते थे। अब माता-पिता के स्वर्गवास होने पर उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई, अत. वे अपने

साधना पथ पर गतिशील होने के लिए तैयार हो गए।

कुछ प्रतियो मे '**नाय कुल निव्वत्ते**' के स्थान पर '**नायकुलचन्दे**' पाठ भी उपलब्ध होता है। और प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त '**विदेहदिन्ने**' आदि पदो पर वृत्तिकार ने यह अर्थ किया है कि वज्र ऋषभ नाराच सहनन और समचौरस सस्थान से जिसका देह शोभायमान है उसे विदेह कहते हैं। और भगवान की माता का नाम विदेहदत्ता था, अत इस दृष्टि से भगवान को विदेह दिन्न भी कहते हैं[1]। 'विच्छड्डिता'- आदि पदो का कल्प सूत्र की वृत्ति मे विस्तार से वर्णन किया गया है[2]।

अब भगवान द्वारा दिए गए सावत्सरिक दान का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– संवच्छरेण होहिइ अभिनिक्खमणं तु जिणवरिंदस्स।
तो अत्थसंपयाणं, पवत्तई पुव्वसूराओ।१।
एगा हिरण्णकोडी, अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासुत्ति।२।
तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा, एयं संवच्छरे दिन्नं।३।
वेसमणकुंडधारी, देवा लोगंतिया महिड्ढीया।
बोहिंति य तित्थयरं पन्नरससु कम्मभूमीसु।४।
बंभंमि य कप्पंमी बोद्धव्वा कण्हराइणो मज्झे।
लोगंतिया विमाणा, अट्ठसु वत्था असंखिज्जा।५।
एए देवनिकाया भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं।
सव्वजगज्जीवहियं अरिहं ! तित्थं पवत्तेहि।६।

छाया– सम्वत्सरेण भविष्यति अभिनिष्क्रमणं तु जिनवरेन्द्रस्य।
ततः अर्थसम्पदा प्रवर्तते पूर्वं सूर्यात्।१।
एका हिरण्यकोटिः अष्टैव अन्यूनका. शतसहस्राः।
सूर्योदयादादौ दीयते या प्रातराश इति।२।

---

१ विदेहे वज्रऋषभनाराचसहननसमचतुरस्रसस्थानमनोहरत्वात् विशिष्टो देहो यस्य स विदेह विदेहदिन्ने-विदेहदिन्ना त्रिशला तस्या अपत्य वैदेहदिन्न·। विदेहजच्चे विदेहा त्रिशला तस्यां जाता अर्चा-शरीर यस्य स । —आचाराग वृत्ति।

२ विच्छड्डइत्ता-विच्छर्द्य-विशेषेण त्यक्त्वा, पुन कि कृत्वा ? विगोवइत्ता-विगोप्य तदेव गुप्त सद्दानातिशयात् प्रकटीकृत्येति भाव , अथवा विगोप्य-कुत्सनीयमेतदस्थिरत्वादित्युक्त्वा, पुन कि कृत्वा ? दाण दायारेहिं परिभाइत्ता-दीयते इति दानं तत् दायाय-दानार्थ आर्च्छति आगच्छन्तीति दायारा-याचकास्तेभ्य परिभाज्य विभागैर्दत्वा, यद्वा परिभाव्य-आलोच्य, इद अमुकस्य देयं, इद अमुकस्यैवं विचार्येत्यर्थ पुन कि कृत्वा ? दाण दाइयाणं परिभाइत्ता-दानं धनं दायिका-गोत्रिकास्तेभ्य. परिभाज्य-विभागशो दत्वा इत्यर्थ । — कल्पसूत्र, सुबोधिका वृत्ति।

त्रीण्येव च कोटि शतानि, अष्टाशीतिश्च भवन्ति कोटयः।
अशीतिश्च शत सहस्राणि एतत् सम्वत्सरे दत्तम्।३।
वैश्रमणकुण्डलधरा देवाः, लोकान्तिका महर्धिकाः।
बोधयन्ति च तीर्थंकरं, पंचदशसु कर्मभूमिषु।४।
ब्राह्मे च कल्पे बोधव्याः कृष्णराजेः मध्ये।
लोकान्तिका विमाना· अष्टसु विस्ताराः असंखेयाः।५।
एते देवनिकायाः भगवन्तं बोधयन्ति जिनवर वीरम्।
सर्वजगज्जीवहितं, अर्हन्! तीर्थं प्रवर्तय।६।

पदार्थ– **अभिनिक्खमणं तु**-दीक्षा लेने का समय। **जिणवरिंदस्स**-जिनेन्द्र देव का। **संवच्छरेण होहिइ**-आज से एक वर्ष पश्चात् होगा। **तो**-तत्पश्चात्। **अत्थसपयाण**-अर्थ सपदा-धन सम्पत्ति का दान। **पुव्वसूराओ पवत्तइ**-जब पूर्व दिशा मे सूर्य का उदय होता है तब से आरम्भ होता है।

मूलार्थ—श्री भगवान दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले साम्वत्सरिक दान-वर्षी दान देना आरम्भ कर देते हैं, और वे प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक पहर दिन चढ़ने तक दान देते है।

पदार्थ– **एगा हिरण्णकोडी**-एक करोड़ मुद्रा और। **अणूणगा**-सम्पूर्ण। **अट्ठेव**-आठ ही। **सयसहस्सा**-लाख अधिक मुद्रा का दान। **सूरोदयमाईय**-सूर्योदय से लेकर। **जा**-जो। **पायरासुत्ति**-एक प्रहर पर्यन्त। **दिज्जइ**-दिया जाता है।

मूलार्थ—एक करोड़ आठ लाख मुद्रा का दान सूर्योदय से लेकर एक प्रहर पर्यन्त दिया जाता है।

पदार्थ– **तिन्नेव**-तीन। **य**-पुन। **कोडिसया**-सौ क्रोड़। **च**-और। **अट्ठासीइं हुंति कोडीओ**-अठासी ८८ क्रोड़ होते है। **च**-पुन-फिर। **असिइ सयससहस्सा**-अस्सी ८० लाख एव। **सवच्छरे दिन्नं**-भगवान ने एक वर्ष मे इतनी स्वर्ण मुद्रा दान मे दी।

मूलार्थ—भगवान ने एक वर्ष मे ३८८ करोड़ ७० लाख मुद्रा का दान दिया।

पदार्थ– **वेसमणकुण्डधारी देवा**-कुण्डल धारण करने वाले वैश्रमण देव और। **महिड्ढिया**-महा ऋद्धि वाले। **लोगंतिया**-लौकान्तिक देव। **पन्नरस्सु कम्मभूमिसु**-१५ कर्म भूमि मे होने वाले। **तित्थयरं**-तीर्थंकर भगवान को। **य**-पुन। **बोहिंति**-प्रतिबोधित करते हैं।

मूलार्थ—कुण्डल के धारक वैश्रमण देव और महाऋद्धि वाले लोकांतिक देव १५ कर्म-भूमि में होने वाले तीर्थंकर भगवान को प्रतिबोधित करते हैं।

पदार्थ– **य**-पुन। **बंभंमि कप्पंमी**-ब्रह्म कल्प मे। **कण्हराइणो मज्झे**-कृष्णराजि के मध्य मे। **अट्ठसु**-आठ प्रकार के। **असंखिज्जा**-असख्यात। **वत्था**-विस्तार वाले। **लोगंतिया विमाणा**-लौकान्तिक देवों के विमानो को। **बोधव्वा**-जानना चाहिए।

मूलार्थ—ब्रह्मकल्प मे कृष्णराजि के मध्य में आठ प्रकार के लौकान्तिक विमान

असख्यात विस्तार वाले जानने चाहिएं।

***पदार्थ*– एए देवनिकाया-यह सब देवो का समूह। भगवं-भगवान। जिणवर-जिनवर। वीरं-वीर को। बोहिंति-बोध देते हैं। अरिह-हे अर्हन् ! सव्वजगज्जीवहियं-सर्व जगत के जीवो को हितकारी। तित्थं-तीर्थ की। पवत्तेहि-प्रवृत्ति करो ? अर्थात् ससारवर्ति समस्त जीवो के हित के लिए धर्म रूप तीर्थ की स्थापना करो।**

***मूलार्थ*—यह सब देवो का समूह जिनेश्वर भगवान महावीर को बोध देने के लिए सविनय निवेदन करते हैं कि हे अर्हन् देव ! आप जगत् वासी जीवो के हितकारी तीर्थ-धर्म रूप तीर्थ की स्थापना करो।**

***हिन्दी विवेचन*–** पहली तीन गाथाओ मे यह बताया गया है कि भगवान एक वर्ष तक प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर तक एक करोड, आठ लाख स्वर्ण मुद्रा का दान करते हैं। उन्होने एक वर्ष मे ३८८ करोड ८० लाख स्वर्ण मुद्रा का दान दिया था।

इससे यह स्पष्ट होता है कि केवल साधु को दिया जाने वाला आहार-पानी वस्त्र-पात्र आदि का दान ही महत्वपूर्ण नही, बल्कि अनुकम्पा दान भी अपना महत्व रखता है। यदि दीन दु खी एव अपाहिज को दान देना पाप का एव ससार बढाने का कार्य होता, तो ससार का त्याग करने वाले तीर्थंकर ऐसा क्यो करते। भगवान द्वारा दिया गया दान इस बात को स्पष्ट करता है कि अनुकम्पा दान भी पुण्य बन्ध एव आत्म -विकास का साधन है। इससे आत्मा की दया एव अहिसक भावना का विकास होता है और इस वृत्ति का विकास आत्मा के लिए अहितकर नहीं हो सकता। आगमो मे भी अनेक स्थलो पर अनुकम्पा दान का उल्लेख मिलता है। तुगिया नगरी के श्रावको की धर्म भावना एव उदारता का उल्लेख करते हुए उनके लिए '**अभंगद्वारे**' का विशेषण दिया गया है। अर्थात् उनके घर के दरवाजे अतिथियो के लिए सदा खुले रहते थे। इससे स्पष्ट होता है कि वे बिना किसी साप्रदायिक एव जातीय भेद भाव के अपने द्वार पर आने वाले प्रत्येक याचक को यथाशक्ति दान देते थे। अत तीर्थंकरो के द्वारा दिए जाने वाले दान को केवल प्रशसा प्राप्त करने के लिए दिया जाने वाला दान कहना उचित प्रतीत नहीं होता। क्योकि, महापुरुष कभी भी प्रशसा के भूखे नहीं होते। वे जो कुछ भी करते हैं, दया एव त्याग भाव से प्रेरित होकर ही करते हैं। अत: भगवान के दान से उनकी उदारता, जगत्वत्सलता एव अनुकम्पा दान के महत्व का उज्ज्वल आदर्श हमारे सामने उपस्थित होता है, जो प्रत्येक धर्म-निष्ठ सद्गृहस्थ के लिए अनुकरणीय है।

चौथी गाथा मे दो बातो का उल्लेख किया गया है– १ भगवान एक वर्ष मे जितना दान करते हैं, उस धन की व्यवस्था वैश्रमण देव करते हैं। उनके आदेश से उनकी आज्ञा मे रहने वाले लोकपाल देव उनके कोष को भर देते हैं। यह परपरा अनादि काल से चली आ रही है। प्रत्येक तीर्थंकर के लिए ऐसा किया जाता है। २ प्रत्येक तीर्थंकर भगवान के हृदय मे जब दीक्षा लेने की भावना पैदा होती है, तब लौकान्तिक देव अपनी परपरा के अनुसार आकर उन्हें धर्म तीर्थ की स्थापना करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

कुछ प्रतियो मे '**वेसमणकुण्डधारी**' के स्थान पर '**वेसमणकुण्डलधरा**' पाठ भी उपलब्ध होता है।

पाचवीं गाथा मे लौकान्तिक देवो के निवास स्थान का उल्लेख किया गया है। अरुणोदधि समुद्र से उठकर तमस्काय ब्रह्म (५ वे) देवलोक तक गई है और उस मे नव तरह की कृष्ण राजिए हैं वे ही नव लौकान्तिक देवो के विमान माने गए हैं। उन्हीं विमानो मे लौकान्तिक देवो की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म देवलोक के समीप होने से उन्हे लौकान्तिक कहते है। कुछ आचार्यो का अभिमत है कि लोक-ससार का अन्त करने वाले अर्थात् एक भव करके मोक्ष जाने वाले होने के कारण इन्हे लौकान्तिक कहते हैं[१]। ये नव प्रकार के होते हैं- १ सारश्वत, २ आदित्य, ३ वन्हय, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ त्रुटित, ७ अव्याबाध, ८ आग्नेय और ९ अरिष्ट।

छठी गाथा मे **यह** बताया गया है कि लौकान्तिक देव अपने आवश्यक आचार का पालन करने के लिए तीर्थंकर भगवान को तीर्थ की स्थापना करने की प्रार्थना करते हैं। यह तो स्पष्ट है कि गृहस्थ अवस्था मे भी भगवान तीन ज्ञान से युक्त होते हैं और अपने दीक्षा काल को भली-भाति जानते हैं। अत उन्हे सावधान करने की आवश्यकता ही नहीं है। फिर भी जो लौकान्तिक देव उन्हे प्रार्थना करते हैं, वह केवल अपनी परम्परा का पालन करने के लिए ही ऐसा करते हैं।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका चारो को तीर्थ कहा गया है और इस चतुर्विध सघ रूप तीर्थ की स्थापना करने के कारण ही भगवान को तीर्थंकर कहते हैं[२]।

इसके आगे का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– तओ णं समणस्स भ० म० अभिनिक्खमणाभिप्पायं जाणित्ता भवणवइवा० जो० विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं २ रूवेहिं सएहिं २ नेवत्थेहिं सए० २ चिंधेहिं सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलसमुदएणं सयाइं २ जाणविमाणाइं दुरूहंति सया० दुरूहित्ता अहाबायराइं पुग्गलाइं परिसाडंति २ अहासुहुमाइं पुग्गलाइं परियाइंति २ उड्ढं उप्पयंति उड्ढं उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए सिग्घाए चवलाए तुरियाए दिव्वाए देवगईए अहे णं ओवयमाणा २ तिरिएणं असंखिज्जाइं दीवसमुद्दाइं वीइक्कममाणा २ जेणेव जंबुद्दीवे दीवे तेणेव उवागच्छंति २ जेणेव उत्तरखत्तियकुंडपुरसंनिवेसे तेणेव उवागच्छंति, उत्तरखत्तियकुंडपुर-संनिवेसस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए तेणेव झत्ति वेगेण ओवइया।

---

१ लोकान्ते- ससारान्ते भवा लोकान्तिका एकावतारत्वात्।

– कल्पसूत्र, सुबोधिका वृत्ति (उपा० विनय विजय जी)

२ तित्थ भते! तित्थे तित्थकरे तित्थे? गोयमा! अरहा ताव नियमा तित्थंगरेति। तित्थे पुण चउवण्णाइण्णे समणसघे, तजहा-समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ। – भगवती सूत्र २०, ८।

छाया– ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अभिनिष्क्रमणाभिप्रायं ज्ञात्वा भवनपतिवाणव्यन्तरज्योतिषिविमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च स्वकैः २ रूपैः स्वकैः २ नेपथ्यैः स्वकैः २ चिन्है. सर्वर्द्धया सर्वद्युत्या सर्वबलसमुदयेन स्वकानि २ यानविमानानि आरोहन्ति स्वकानि यानविमानानि आरुह्य यथाबादरान् (असारान्) पुद्गलान् परिशातयन्ति परिशात्य यथासूक्ष्मान् पुद्गलान् पर्याददते पर्यादाय ऊर्ध्वम् उत्पतन्ति ऊर्ध्वम् उत्पत्य तया उत्कृष्टया शीघ्रया चपलया त्वरितया दिव्यया देवगत्या अध. अवपतन्तः तिर्यग् असंखेयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिक्रमन्तः २ यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीप. तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यत्रैव उत्तरक्षत्रिय-कुण्डपुरसन्निवेशः तत्रैव उपागच्छन्ति उत्तरक्षत्रियकुण्डपुरसन्निवेशस्य उत्तरपौरस्त्यो दिग्भागः तत्रैव झटिति वेगेन अवपतिताः।

पदार्थ– ण-वाक्यालकारार्थक है। तओ-तत् पश्चात्। समणस्स-श्रमण। भगवओ-भगवान। महावीरस्स-महावीर के। अभिनिक्खमणाभिप्पाय-दीक्षा लेने के अभिप्राय को। जाणित्ता-जानकर। भवणवइ-भवनपति। वा०-वाणव्यन्तर। जो०-ज्योतिषी। विमाणवासिणो-वैमानिक। देवा-देव। य-और। देवीओ-देविया। सएहिं २-अपने २। रूवेहिं-रूपो से। सएहिं २-अपने २। नेवत्थेहिं-वेशो से। सए० २ चिंधेहिं-अपने २ चिन्हो से युक्त होकर तथा। सव्विड्ढीए-सर्व ऋद्धि से। सव्वजुईए-सर्व ज्योति से। सव्वबलसमुदएणं-सर्व बल समुदाय से। सयाइ २ जाणविमाणाइं-अपने २ विमानो पर। दुरूहति-चढ़ते हैं। सया०-अपने २ विमानो पर। दुरूहित्ता-चढकर। अहाबायराइ-यथा बादर अर्थात् स्थूल-निस्सार। पुग्गलाइ-पुद्गलो को। परिसाडंति-गिरा कर। अहासुहुमाइ-सूक्ष्म। पुग्गलाइ-पुद्गलो को। परियाइति २-ग्रहण करते है और उन्हे ग्रहण करके। उड्ढ-ऊपर ऊचे। उप्पयंति-उत्पतन करते हैं। उड्ढ उप्पइत्ता-ऊचे उत्पतन कर के। ताए-उस। उक्किट्ठाए-उत्कृष्ट। सिग्घाए-शीघ्र। चवलाए-चपल। तुरियाए-त्वरित। दिव्वाए-दिव्य। देवगईए-देव गति से। अहेणं-नीचे की ओर। ओवयमाणा २-उतरते हुए। तिरिएणं-तिर्यक् लोक मे स्थित। असंखिज्जाइ-असख्यात। दीवसमुद्दाइं-द्वीप समुद्रो को। वीइक्कममाणा-व्यतिक्रम करते हुए-उल्लघते हुए। जेणेव-जहा पर। जंबुद्दीवे दीवे-जम्बू द्वीप नामा द्वीप है। तेणेव-वहा पर। उवागच्छंति-आते है, आकर। जेणेव-जहा पर। उत्तरखत्तियकुण्डपुरसंनिवेसे-उत्तर क्षत्रिय कुडपुर सन्निवेश है । तेणेव-वहा। उवागच्छंति-आते हैं फिर। उत्तरखत्तियकुडपुरसंनिवेसस्स-उत्तर क्षत्रिय कुडपुर सन्निवेश के। उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए-उत्तर पूर्व दिशा के मध्य भाग अर्थात् ईशान कोण मे जो स्थान है। तेणेव-वहा पर। अतिवेगेण-बड़े तीव्र वेग से। ओवइया-उत्तरते हैं।

मूलार्थ—तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी के दीक्षा लेने के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियां अपने-अपने रूप, वेष और चिन्हो से युक्त होकर तथा अपनी २ सर्व प्रकार की ऋद्धि, द्युति और बल समुदाय से युक्त होकर अपने २ विमानों पर चढ़ते हैं और उनमें चढ़कर बादर पुद्गलों को छोड़कर सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके ऊंचे होकर उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरित और दिव्य प्रधान देवगति से नीचे उतरते

हुए तिर्यक् लोक में स्थित असख्यात द्वीप समुद्रो को उल्लघन करते हुए जहां पर जम्बूद्वीप नामक द्वीप है वहां पर आते है। जम्बूद्वीप मे भी उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश में आकर उसके ईशान कोण में जो स्थान है वहा पर बड़ी शीघ्रता से उतरते है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान के दीक्षामहोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए चारो जाति के देव क्षत्रिय कुड ग्राम मे एकत्रित होते हैं। यह स्पष्ट है कि देव अपने मूल रूप मे मृत्युलोक मे नहीं आते। वे उत्तर वैक्रिय करके मनुष्यलोक मे आते हैं और उत्तर वैक्रिय मे वे १६ प्रकार के विशिष्ट रत्नो के सूक्ष्म पुद्गलो को ग्रहण करते हैं[१]।

इस विषय को आगे बढाते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तओ णं सक्के देविंदे देवराया सणियं २ जाणविमाणं पट्ठवेति सणियं २ जाण विमाणं पट्ठवेत्ता सणियं २ जाणविमाणाओ पच्चोरुहति सणियं २ एगंतमवक्कमइ एगंतमवक्कमित्ता महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणइ २ एगं महं नाणामणिकणगरयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं, देवच्छंदयं विउव्वइ, तस्स णं देवच्छंदयस्स बहुमज्झदेसभाए एगं महं सपायपीढं नाणामणिकणगरयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं सीहासणं विउव्वइ २, त्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं गहाय जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ सणियं २ पुरत्थाभिमुहं सीहासणे निसीयावेइ सणियं २ निसीयावित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेइ गंधकासाइएहिं- उल्लोलेइ २ सुद्धोदएण मज्जावेइ २ जस्स णं मुल्लं सयसहस्सेणं तिपडोलतित्तिएणं साहिएणं सीतेण गोसीसरत्तचंदणेणं अणुलिंपइ २ ईसिं निस्सासवायवोज्झं वरनयरपट्टणुग्गयं कुसलनरपसंसियं अस्सलालापेलवं छेयारियकणगखइयंतकम्मं हंसलक्खणं पट्टजुयलं नियंसावेइ २ हारं अद्धहारं उरत्थं नेवत्थं एगावलिं पालंबसुत्तं पट्टमउडरयणमालाओ आविंधावेइ आविंधावित्ता गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समलंकरेइ २ त्ता दुच्चंपि महया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ एगं महं चंदप्पहं सिवियं सहस्सवाहणियं विउव्वति, तंजहा–ईहा–

---

१ इस प्रकरण को समझने के लिए जिज्ञासु राजप्रश्नीय सूत्र का अवलोकन करें।

मिग-उसभ-तुरग-नर-मकर-विहग-वानरकुंजर-रुरु-सरभ-चमर-सद्दूलसीह-वणलय-भत्तिचित्तलय-विज्जाहर-मिहुणजुयलजंतजोगजुत्तं अच्चीसहस्समालिणीयं सुनिरूवियं मिसिमिसिंतरूवगसहस्सकलियं ईसिं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं मुत्ताहलमुत्ताजालंतरोवियं तवणीयपवरलंबूसगपलंबंतमुत्तदामं हारद्धहारभूसणसमोणयं अहियपिच्छणिज्जं पउमलयभत्तिचित्तं असोगवणभत्तिचित्तं कुंदलयभत्तिचित्तं नाणालयभत्ति॰ विरइयं सुभं चारुकंतरूवं नाणामणिपंचवन्नघंटापडायपडिमंडियग्गसिहरं पासाईयं दरिसणिज्जं सुरूवं।

छाया– ततः शक्र देवेन्द्र. देवराज. शनै. २ यानविमानं प्रस्थापयति शनै. २ यान-विमान प्रस्थाप्य शनैः २ यानविमानतः प्रत्यवतरति २, शनै. २ एकांतमपक्रामति एकान्तमपक्रम्य महता वैक्रियेण समुद्घातेन समवहन्यते २ एकं महत् नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रं शुभ चारुकान्तरूपं, देवच्छंदकं विकुरुते तस्य देवच्छन्दकस्य बहुमध्यदेशभाग एकं महत् सपादपीठं नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रं शुभं चारुकान्तरूपं सिंहासनं विकुरुते विकृत्य यत्रैव श्रमणो भगवान महावीर. तत्रैवोपागच्छति उपागत्य श्रमणं भगवन्त महावीरं त्रिकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिण करोति कृत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीर गृहीत्वा यत्रैव देवच्छन्दकस्तत्रैवोपागच्छति शनै· २पौरस्त्याभिमुखं सिंहासने निषीदयति शनै. २ निषाद्य शतपाकसहस्रपाकै. तैलै. अभ्यंगयति गन्धकाषायिकै. उल्लोलयति उल्लोल्य शुद्धोदकेन मज्जयति मज्जयित्वा यस्य मूल्यं शतसहस्रेण त्रिपटोलतिक्तकेन साधिकेन शीतेन गोशीर्ष रक्तचन्दनेन अनुलिम्पति अनुलिम्प्य ईषत् निश्श्वासवातवाह्यं वरनगरपट्टनोद्गतं कुशलनरप्रशंसितं अश्वलालापेलवं (श्वेतं) छेकाचार्यकनक-खचितान्तकर्म हंसलक्षणं पट्टयुगल परिधापयति, परिधाप्य हारमर्द्धहारमुरस्थं नेपथ्यम् एकावलिं प्रालम्बसूत्रं पट्टमुकुटरत्नमाला आबन्धापयति आबन्धाप्य ग्रन्थिमवेष्टिमपूरिमसंघातेन माल्येन कल्पवृक्षमिव समलंकरोति समलंकृत्य, द्वितीयमपि महता वैक्रियसमुद्घातेन समवहन्यते समवहत्य एकां महतीं चन्द्रप्रभां शिविकां सहस्रवाहनीयां विकुरुते। तद्यथा--ईहा-मृग-वृषभ-तुरग-नर-मकर-विहग-वानर-कुंजर-रुरु-शरभ-चमर-शार्दूलसिंहवनलताभक्तिचित्रलता-विद्याधरमिथुन-युगलयंत्रयोगयुक्तां, अर्चिसहस्रमालनीया सुनिरूपितां मिसीमिसन्तरूपक-सहस्रकलितां ईषद्-भिसमानां भिभिसमानां चक्षुर्लोचनलोकनीया मुक्ताफलमुक्ता-जालान्तरोपितां तपनीयप्रवरलम्बूसकप्रलम्बमानमुक्तादामां हाराद्धहारभूषणसमन्वितां अधिकप्रेक्षणीयां पद्मलताभक्तिचित्राम् अशोकवनभक्तिचित्रां, कुंदलताभक्तिचित्रां

नानालताभक्तिचित्रां विरचितां शुभां चारुकान्तरूपां, नानामणिपञ्चवर्णघंटापताका-प्रतिमंडिताग्रशिखरां प्रासादीयां दर्शनीयां सुरूपाम्।

पदार्थ– णं–वाक्यालकार मे है। तओ–तदनन्तर। सक्के–शक्र। देविंदे–देवेन्द्र। देवराया–देवराज। सणियं २–शनै -शनै -धीरे-धीरे। जाणविमाणं–विमान। पट्ठवेति–स्थापित करता है फिर। सणिय २–धीरे-धीरे। जाणविमाण–विमान को। पट्ठवेत्ता–चार अगुल प्रमाण भूमि से ऊचा स्थापित करके फिर। सणियं २–शनै २। जाणविमाणाओ–विमान से। पच्चोरुहति–नीचे उतरता है और वहा उतर कर। सणिय २–शनै २। एगतमवक्कमइ–एकान्त मे अपक्रमण करता है। एगंतमवक्कमित्ता–एकान्त मे अपक्रमण करके। महया–महान्। वेउव्विएण–वैक्रिय। समुग्घाएणं–समुद्घात को। समोहणइ–फोड़ता है अर्थात् वैक्रिय समुद्घात करता है और वैक्रिय समुद्घात करके। एग–एक। महं–महान–बड़ा। नानामणिकणगरयणभत्तिचित्त–नाना प्रकार के मणि, कनक, रत्नादि से चित्रित दीवार वाले। सुभ–शुभ। चारु–मनोहर। कतरूव–कान्त रूप वाले। देवच्छंदयं–देवच्छन्दक को। विउव्वइ–बनाता है। तस्स ण–उस। देवच्छंदयम्स–देवच्छदक के–चौतरे के। बहुमज्झदेसभाए–मध्य देश भाग मे अर्थात् मध्य मे। एग मह–एक बड़ा भारी। सपायपीढ–पाद पीठ से युक्त। नानामणिकणगरयणभत्तिचित्तं–नाना विध मणि, स्वर्ण, रत्नादि से चित्रित भित्ति वाले। सुभ–शुभ। चारुकतरूवं–मनोहर कान्त स्वरूप। सिहासणं विउव्वइ–सिहासन को बनाता है उसे बनाकर। जेणेव–जहा पर। समणे भगवं महावीरे–श्रमण भगवान महावीर हैं। तेणेव–वहा पर। उवागच्छइ–आता है और वहा आकर। समणं भगव महावीर–श्रमण भगवान महावीर को। तिक्खुत्तो–तीन बार। आयाहिणं–आदक्षिणा। पयाहिण–प्रदक्षिणा। करेइ–करता है और प्रदक्षिणा करके। समणं भगव महावीर–श्रमण भगवान महावीर को। वदइ–वन्दना करता है। णमंसइ–नमस्कार करता है फिर वन्दना नमस्कार करके। समण भगव महावीर–श्रमण भगवान महावीर को। गहाय–लेकर। जेणेव–जहा पर। देवच्छदए–देवच्छदक है। तेणेव–वहा पर। उवागच्छइ–आता है और वहा आकर। सणियं २–शनै २। पुरत्थाभिमूह–पूर्वाभिमुख–पूर्व दिशा को मुख करवा कर भगवान को। सीहासणे–सिहासन पर। निसीयावेइ–बैठाता है फिर। सणियं–सणिय–शनै २। निसीयावित्ता–उन्हे वहा बैठा कर। सयपागसहस्सपागेहिं–शत और सहस्र औषधियो के योग से बने हुए शतपाक, सहस्रपाक नाम से प्रसिद्ध। तिल्लेहिं–तैलो की। अब्भगेइ–मालिश करता है और मालिश करके। गंधकासाइएहिं–सुगन्धि युक्त द्रव्यो से। उल्लोलेइ–उद्वर्तन करता है और उद्वर्तन करने के पश्चात्। सुद्धोदएणं–शुद्ध–निर्मल जल से। मज्जावेइ २–स्नान कराता है उन्हे स्नान कराकर फिर सुगन्ध युक्त वस्त्र से शरीर को पोछता है और शरीर पोछ कर। जस्स मुल्लं–जिसका मूल्य। ण–वाक्यालकार मे है। सयसहस्सेण साहिएण–एक लाख सुवर्ण मुद्रा से भी अधिक है। तिपडोलतित्तिएणं–इस प्रकार बहुमूल्य रूप। सीतेण–अत्यन्त शीतल। गोसीसरत्तचंदणेणं–गोशीर्ष रक्त चन्दन से। अणुलिंपइ–लेपन करता है गोशीर्ष चन्दन का लेपन करके। ईसि–थोड़ा। निस्सासवायवोज्झं–नाक की हवा से उड़ने वाले। वरनयरपट्टणुग्गय–विशिष्ट शहर में निर्मित एव। कुसलनरपसंसिय–कुशल पुरुषो द्वारा प्रशसित। अस्सलालापेलवं–अश्व की लाला के समान श्वेत और मनोहर। छेयारियकणगखइयंतकम्मं–विद्वान शिल्पाचार्य द्वारा जिस वस्त्र के किनारे सुवर्ण की तारों से खचित है। हसलक्खणं–हस के समान श्वेत वर्ण

वाला ऐसा। **पट्टजुयलं**-वस्त्र युगल को। **नियंसावेइ**-पहनाता है उसे पहना कर। **हारं अद्धहारं**-हार-अठारा लड़ी का, अद्धहार-नौं लड़ी का। **उरत्थं**-वक्षस्थल में। **नेवत्थं**-सुन्दर वेष। **एगावलिं**-एकावली हार। **पालंबसुत्तं**-प्रालम्बसूत्र अर्थात् लटके हुए झुमके। **पट्टमउडरयणमालाओ**-कटि सूत्र, मुकुट, रत्न मालाए आदि। **आविंधावेइ**-पहनाता है। **अविंधावित्ता**-उन्हे पहना कर फिर। **गंथिमवेढिमपूरिमसघाइमेणं**-ग्रन्थित, वेष्टित, पूरिम औ सघातिम इन चार प्रकार के पुष्पों की। **मल्लेणं**-मालाओ से विभूषित। **कप्परुक्खमिव**-कल्पवृक्ष की भाति **अलकरेइ २ त्ता**-भगवान को अलकृत करता है उन्हे अलकृत करने के अनन्तर। **दुच्चंपि**-द्वितीय बार। **महया**-बहुत विस्तृत। **वेउव्विय समुग्घाएण**-वैक्रिय समुद्घात। **समोहणइ**-करता है वह वैक्रिय समुद्घात करके। **एग महं**-एक बड़ी। **चंदप्पहं**-चन्द्रप्रभा नाम की। **सिविय**-शिविका। **सहस्सवाहणिय**-सहस्त्र वाहनिका अर्था हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने वाली पालकी को। **विउव्वति**-वैक्रिय समुद्घात से बनाता है जो कि विविध भाति वे चित्रो से चित्रित की गई है। **त**-जैसे कि। **ईहा**-बृक विशेष। **मिग**-हिरण। **उसभ**-वृषभ-बैल। **तुरग**-अश्व घोड़ा। **नर**-मनुष्य। **मगर**-मगर मच्छ। **विहग**-पक्षी। **वानर**-बन्दर। **कुंजर**-हाथी। **रुरु**-मृग विशेष। **सरभ** शरभ-अष्टापद जीव विशेष और। **चमर**-चमरी गाय। **सद्दूल**-शार्दूल। **सीह**-सिह-शेर। **वणलय**-वनलता **भत्तिचित्तलय**-भक्ति चित्र लता-नाना प्रकार की वन लताओ से चित्रित, अर्थात् इन चित्रो से वह शिविक चित्रित हो रही है, इसी प्रकार। **विज्जाहर**-विद्याधर तथा। **मिहुणजुयल**-मिथुन युगल अर्थात् स्त्री-पुरुष क जोड़ा। **जंत**-यत्र विशेष का चित्र। **जोगजुत्त**-योगयुक्त अर्थात् युगलो से युक्त। **अच्चीसहस्समालिणीय** सहस्त्र सूर्य की किरणो से युक्त। **सुनिरूवियं**-भली प्रकार से निरूपण किया है। **मिसिमिसितरूवगसहस्सकलियं**-प्रदीप्त सहस्त्ररूपो से युक्त जो। **ईसि**-थोड़ा। **भिसमाणं**-देदीप्यमान। **भिब्भिसमाणं**-और अत्यन्त देदीप्यमान **चक्खुल्लोयणलेसं**-चक्षुओ द्वारा जिसका तेज देखा नहीं जा सकता इस प्रकार की वह शिविका तथा **मुत्ताहलमुत्ताजालंतरोवियं**-मुक्ताफल-मोती और मुक्ताजाल-मोतियो के जालो से युक्त तथा **तवणीयपवरलंबूसपलंबंतमुत्तदाम**-सुवर्णमय पाखड युक्त चारो ओर लटकती हुई मोतियो की माला जिसा दीख रही है और। **हारद्धहारभूसणसमोणय**-हार, अर्द्धहार आदि भूषणो से विभूषित। **अहियपिच्छणिज्जं** अधिक प्रेक्षणीय उसमे देखने योग्य। **पउमलयभत्तिचित्त**-पद्मलता की भाति चित्रित। **असोगवणभत्तिचित्त** अशोक वन की भाति चित्रित। **कुदलयभत्तिचित्त**-कुदलता की भाति चित्रित। **नाणालयभत्तिचित्तं**-नान प्रकार की पुष्पलताओं की भाति चित्रित। **विरइयं**-विरचित। **सुभ**-शुभ। **चारुकंतरूव**-मनोहर कान्त रूप तथा। **नाणामणिपंचवन्नघंटापडायपडिमंडियग्गसिहरं**-नाना प्रकार की पाच वर्ण वाली मणियो, घण्ट तथा पताकाओ से जिसका शिखर भाग मडित हो रहा है, अर्थात् पाच वर्ण की मणियो, घण्टियो और ध्वजा तथ पताकाओ से जिसका शिखर भाग सुशोभित हो रहा है इस प्रकार की। **पासाइय**-प्रासादीय। **दरिसणिज्जं** दर्शनीय **सुरूवं**-वह शिविका सुन्दर एव सुरूप वाली है।

***मूलार्थ*—तत् पश्चात् शक्र देवों का इन्द्र देवराज शनै· २ अपने विमान को स्थापि करता है, फिर शनै· २ विमान से नीचे उतरता है और एकान्त में जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है उससे नाना प्रकार की मणियों तथा कनक, रत्नादि से जटित एक बहुत बड़े कान्त मनोहर रू**

वाले देवछंदक का निर्माण करता है। उस देवछन्दक के मध्य भाग मे नाना विध मणि, कनक, रत्नादि से खचित, शुभ, चारु और कान्तरूप एक विस्तृत पादपीठ युक्त सिंहासन का निर्माण किया। उसके पश्चात् जहां पर श्रमण भगवान महावीर थे वहां वह आया और आकर भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और श्रमण भगवान महावीर को लेकर देवछन्दक के पास आया और धीरे-धीरे भगवान को उस देवछन्दक मे स्थित सिंहासन पर बैठाया और उनका मुख पूर्व दिशा की ओर रखा। शतपाक और सहस्त्र पाक तेलो से उनके शरीर की मालिश की और सुगन्धित द्रव्य से शरीर को उद्वर्तन करके शुद्ध निर्मल जल से भगवान को स्नान कराया, उसके बाद एक लाख की कीमत वाले विशिष्ट गोशीर्ष चन्दनादि का उनके शरीर पर अनुलेपन किया, उसके बाद भगवान को नासिका की वायु से हिलने वाले, तथा विशिष्ट नगरों मे निर्मित, प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रशसित और कुशल कारीगरों के द्वारा स्वर्णतार से विभूषित, हंस के समान श्वेत, वस्त्र युगल को पहनाया। फिर हार, अर्द्धहार पहनाए तथा एकावली हार, लटकती हुई मालाए, कटि सूत्र, मुकुट और रत्नों की मलाएं पहनाईं। नदनन्तर ग्रन्थिम, वेष्टिम, पुरिम और सघातिम इन चार प्रकार की पुष्प मालाओ से कल्पवृक्ष की भान्ति भगवान को अलंकृत किया।

इस प्रकार अलंकृत करने के पश्चात् इन्द्र ने पुन· वैक्रियसमुद्घात किया और उससे चन्द्रप्रभा नाम की एक विराट् सहस्त्र वाहिनी शिविका (पालकी) का निर्माण किया। वह शिविका ईहामृग, वृषभ, अश्व, मगरमच्छ, पक्षी, बन्दर, हाथी, रुरु, शरभ, चमरी, शार्दूल और सिंह आदि जीवो तथा वनलताओ एवं अनेक विद्याधरो के युगल, यंत्र योग आदि से चित्रित थी। सूर्य ज्योति के समान तेज वाली, तथा रमणीय जगमगाती हुई, हजारो चित्रो से युक्त और देदीप्यमान होने के कारण मनुष्य उसकी ओर देख नहीं सकता था, वह स्वर्णमय शिविका मोतियो के हारो से सुशोभित थी। उस पर मोतियो की सुदर मालाए झूल रही थीं तथा पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता एव नाना प्रकार की अन्य वन लताओ से चित्रित थी। पांच प्रकार के वर्णों वाली मणियो, घंटियो और ध्वजा पताकाओं से उसका शिखर भाग सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार वह शिविका दर्शनीय और परम सुन्दर थी।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे भगवान की दीक्षा के पूर्व शक्रेन्द्र द्वारा की गई प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया गया है। शक्रेन्द्र ने उत्तर वैक्रिय करके एक देवछन्दक बनाया और उस पर सिहासन बनाकर भगवान को बैठाया और शतपाक एव सहस्त्रपाक (सौ या हजार विशिष्ट औषधियो एव जडी-बूटियो से बनाया गया) तेल से भगवान के शरीर की मालिश की, सुगन्धित द्रव्यो से उबटन किया और उसके बाद स्वच्छ, निर्मल एव सुवासित जल से भगवान को स्नान कराया। उसके पश्चात् भगवान को बहुमूल्य एव श्रेष्ठ श्वेत वस्त्र युगल पहनाया[१]। और विविध आभूषणो से विभूषित करके हजार व्यक्तियो द्वारा उठाई जाने वाली शक्रेन्द्र द्वारा बनाई गई विशाल शिविका (पालकी) पर भगवान को बैठाया। उस

१ इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में पुरुष सिलाई किया हुआ वस्त्र कम पहनते थे। उपासकदशाग में श्रावको की वस्त्र मर्यादा मे रखे गए वस्त्रों में क्षोम युगल वस्त्र का उल्लेख मिलता है एक वस्त्र पहनने के लिए और दूसरा चादर के रूप मे ओढने के लिए। अन्य मत के ग्रथो में कृष्ण के लिए पीताम्बर का उल्लेख मिलता है। यह सूत्र उस युग की वस्त्र परम्परा पर प्रकाश डालता है।

तरह शक्रेन्द्र ने अपनी भक्ति एव श्रद्धा को अभिव्यक्त किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि महान पुरुषो की सेवा के लिए मनुष्य तो क्या देव भी सदा उपस्थित रहते हैं।

कुछ प्रतियो मे '**मज्जावेइ**' के पश्चात् '**गन्धकासाएहिं गायाइ लूहेइ लूहित्ता**' पाठ भी उपलब्ध होता है और यह शुद्ध एव प्रामाणिक प्रतीत होता है। इसी तरह '**मुल्लं सयसहस्सेण तियडोल-तित्तिएणं**' के स्थान पर '**पलसयसहस्सेण तिपलो लाभितएणं**' पाठ भी उपलब्ध होता है।

इस विषय मे कुछ और बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– सीया उवणीया जिणवरस्स, जरमरणविप्पमुक्कस्स ।
ओसत्तमल्लदामा , जलथलयदिव्वकुसुमेहिं ॥ १ ॥
सिवियाइ मज्झयारे, दिव्वं वररयणरूवचिंचइयं।
सीहासणं महरिहं, सपायपीढं जिणवरस्स॥ २ ॥
आलइयमालमउडो , भासुरबुंदी वराभरणधारी।
खोमियवत्थनियत्थो, जस्स य मुल्लं सयसहस्सं॥ ३ ॥
छट्ठेण उ भत्तेणं, अज्झवसाणेण सुंदरेण जिणो।
लेसाहिं विसुज्झंतो, आरुहइ उत्तमं सीयं॥ ४ ॥
सीहासणे निविट्ठो, सक्कीसाणा य दोहि पासेहिं।
वीयंति चामराहिं, मणिरयणविचित्तदंडाहिं ॥ ५ ॥
पुव्विं उक्खित्ता माणुसेहिं, साहट्टु रोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति देवा, सुरअसुरगरुलनागिंदा॥ ६ ॥
पुरओ सुरा वहंति असुरा पुण दाहिणंमि पासंमि।
अवरे वहंति गरुला नागा पुण उत्तरे पासे॥ ७ ॥
वणसंडं व कुसुमियं पउमसरो वा जहा सरयकाले।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गगणयलं सुरगणेहिं॥ ८ ॥
सिद्धत्थवणं व जहा कणयारवणं व चंपयवणं वा।
सोहइ कुसुमभरेणं इय गगणयलं सुरगणेहिं॥ ९ ॥
वरपडहभेरिज्झल्लरिसंखसयसहस्सिएहिं तूरेहिं।
गगणयले धरणियले तूरनिनाओ परमरम्मो॥ १० ॥
ततविततं घणज्झुसिरं आउज्जं चउव्विहं बहुविहीयं।
वाइंति तत्थ देवा, बहूहिं आनट्टगसएहिं॥ ११ ॥

छाया— शिविका उपनीता, जिनवरस्य जरामरणविप्रमुक्तस्य।
अवसक्तमाल्यदामा, जलस्थलजदिव्यकुसुमैः ॥ १ ॥
शिविकायां मध्यभागे, दिव्यं वररत्नरूपप्रतिबिम्बितं।
सिंहासनं महार्हं, सपादपीठं जिनवरस्य॥ २ ॥
अलंकृतमालामुकुटः, भासुरशरीरो वराभरणधारी।
परिहितक्षौमिकवस्त्रः, यस्य च मूल्यं शतसहस्रम्॥ ३ ॥
षष्ठेन तु भक्तेन, अध्यवसानेन सुन्दरेण जिनः।
लेश्याभिः विशुद्धान्तः, आरोहति उत्तमां शिविकां॥ ४ ॥
सिहासने निविष्टः शक्रेशानौ च द्वाभ्यां पार्श्वाभ्याम्।
वीजयतः चामरैः मणिरत्नविचित्रदण्डैः॥ ५ ॥
पूर्वम् उत्क्षिप्ता मानुषैः संहृष्टरोमकूपैः।
पश्चाद् वहन्ति देवाः, सुरासुरगरुडनागेन्द्रा.॥ ६ ॥
पुरतः सुरा वहन्ति असुराः पुनः दक्षिणे पार्श्वे।
अपरे वहन्ति गरुड़ाः नागा. पुनरुत्तरे पार्श्वे॥ ७ ॥
वनषंड मिव कुसुमितं, पद्मसर इव यथा शरत्काले।
शोभते कुसुमभरेण, इति गगनतल सुरगणैः॥ ८ ॥
सिद्धार्थवनमिव यथा, कर्णिकारवनमिव चम्पकवनमिव।
शोभते कुसुमभरेण, इति गगनतलं सुरगणैः॥ ९ ॥
वरपटहभेरिज्झल्लरीशंखशतसहस्रै. तूर्यं।
गगनतले धरणीतले, तूर्य निनादः परमरम्यः॥ १० ॥
ततविततं घनज्झुषिरम्, आतोद्यं चतुर्विधं बहुविधं वा।
वादयन्ते तत्र देवा., बहुभिः आनर्तक शतैः॥ ११ ॥

पदार्थ— **जिणवरस्स**-जिनेश्वर की। **जरमरणविप्पमुक्कस्स**-जरा और मृत्यु से विमुक्ति के लिए। **सीया**-शिविका। **उवणीया**-लाई गई। **जलथलयदिव्वकुसुमेहिं**-उसमे जल और स्थल मे उत्पन्न होने वाले दिव्य पुष्पो के समान वैक्रियलब्धि से उत्पन्न किए गए पुष्पो से। **ओसत्तमल्लदामा**-गूथी हुई मालाये बान्धी गईं। कहने का तात्पर्य यह है कि वैक्रियलब्धि जन्य पुष्पो की मालाओ से वह शिविका अलकृत हो रही है।

सिवियाइ-शिविका के। **मज्झयारे**-मध्य भाग मे। **जिणवरस्स**-जिनेश्वर का। **दिव्वं**-दिव्य तथा। **वररयणरूवचिंचइयं**-श्रेष्ठ रत्नो से प्रतिबिम्बित तथा। **महरिहं**-बहुमूल्यवान। **सपायपीढं**-पाद पीठिका सहित। **सीहासण**-सिहासन है। अर्थात् शिविका के मध्य भाग मे भगवान के लिए एक दिव्य सिहासन का निर्माण किया गया।

आलइयमालमउडो-मालाओ तथा मुकुट से अलंकृत होने से। **भासुरबुंदी**-जिनका शरीर देदीप्यमान

हो रहा है। **वराभरणधारी**-उन्होंने श्रेष्ठ आभूषणों को धारण कर रखा है। **खोमियवत्थनियत्थो**-जो क्षौमिक-कपास से उत्पन्न हुए वस्त्र को पहने हुए है **य**-और। **जस्स**-जिसका। **मुल्लं**-मूल्य। **सयसहस्सं**-एक लाख है।

छट्ठेणं भत्तेणं-षष्ट भक्त के साथ तथा। **सुंदरेण**-सुन्दर। **अज्झवसाणेण**-अध्यवसाय और। **लेसाहिं**-लेश्याओं से युक्त। **विसुज्झंतो**-विशुद्ध ऐसे। **जिणो**-जिनेन्द्र भगवान। **उत्तमं सीयं**-उत्तम शिविका में। **आरुहइ**-बैठते है-शिविका गत सिहासन पर बैठते हैं।

सीहासणे निविट्ठो-जब भगवान शिविका मे रक्खे हुए सिहासन पर विराजमान हो गए तब। **य**-पुन। **सक्कीसाणा**-शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र। **दोहिं पासेहिं**-दोनो और। **चामराहिं**-चामरो को। **वीयंति**-बुलाते हैं। **मणिरयणविचित्तदडाहिं**-चामरो के दण्ड मणिरत्नादि से चित्रित है।

साहट्टुरोमकूवेहिं-जिनके रोम कूप हर्ष वश विकसित हो रहे है ऐसे। **माणुसेहिं**-मनुष्यो ने। **पुव्विं**-प्रथम। **उक्खित्ता**-उस शिविका को उठाया और। **पच्छा**-पीछे। **देवा**-देव। **सुर**-वैमानिक देव। **असुर**-असुर कुमार देव। **गरुल**-गरुड़ कुमार देव। **नागिंदा**-नाग कुमारो के इन्द्र। **वहंति**-उठाते है।

चारो दिशाओ से जिस प्रकार देवो ने शिविका को उठाया है उसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है-**पुराओ**-पूर्व दिशा मे। **सुरा**-वैमानिक देव। **वहति**-उठाते है। **पुण**-फिर। **असुरा दाहिणमि पासंमि**-दक्षिण दिशा की ओर से असुर कुमार देव उठाते है। **अवरे**-पश्चिम दिशा मे। **गरुला**-सुवर्ण कुमार देव। **वहंति**-वहन करते है। **पुण**-फिर। **नागा उत्तरे पासे**-उत्तर दिशा की ओर नाग कुमार देव वहन करते है।

व-जैसे। **कुसुमिय**-विकसित हुआ। **वणसडं**-वनषड शोभता है। **वा**-या। **जहा**-जैसे। **सरयकाले**-शरत् काल मे। **कुसुमभरेणं**-विकसित पुष्प समूह से युक्त। **पउमसरो**-पद्म सरोवर। **सोहइ**-सुशोभित होता है। **इय**-इसी प्रकार। **सुरगणेहिं**-देवो के समूह से। **गगणयल**-आकाश मडल सुशोभित हो रहा है।

व-अथवा। **कुसुमभरेणं**-पुष्पो के समूह से। **सिद्धत्थवण**-सरसो का वन। **जहा**-जैसे। **कणियारवणं**-कचनार अथवा कनेर का वन। **वा**-अथवा। **चपयवणं**-चम्पक वन। **सोहइ**-सुशोभित होता है। **इय**-इसी प्रकार। **गगणयलं**-आकाश मडल। **सुरगणेहिं**-देवो के समूह से शोभा पा रहा है।

वरपडह-प्रधान पटह। **भेरी**-भेरी। **झल्लरी**-झाज एक प्रकार का वाद्यन्तर। **सख**-शख। **सयसहस्सेहिं**-लाखो। **तूरेहिं**-वाद्यो-वाजन्तरो से। **गगणयले**-आकाश मडल तथा। **धरणियले**-अवनी तल। **तूरनिनाओ**-वाद्यत्रो के शब्दो से। **परमरम्मो**-परमरमणीक हो रहा है।

तत्थ-वहा पर। **ततविततं**-तत-वीणा आदि, वितत-मृदगादि वाद्य। **घण**-ताल आदि। **झुसिरं**-वश ओर शखादि। **आउज्ज**-वाद्यन्तर। **चउव्विह**-चार प्रकार के अथवा। **बहुविहीय**-बहुत प्रकार के वाद्यन्तर को। **देवा**-देव। **वायति**-बजाते हैं और। **बहूहिं**-वे विविध प्रकार के। **आनट्टगसएहिं**-नाटक करने वालो के साथ हैं।

_मूलार्थ_—जरा मरण से विप्रमुक्त जिनवर के लिए शिविका लाई गई, जो कि जल और स्थल पर पैदा होने वाले श्रेष्ठ फूलों और वैक्रिय लब्धि से निर्मित पुष्प मालाओं से अलंकृत थी।

उस शिविका के मध्य मे प्रधान रत्नों से अलंकृत यथा योग्य पाद पीठिकादि से युक्त,

जिनेन्द्र देव के लिए सिंहासन का निर्माण किया गया था।

जिनेन्द्र भगवान महावीर एक लाख रूपए की कीमत वाले क्षौम युगल (कार्पास) के वस्त्र को धारण किए हुए थे और आभूषणो, मालाओं तथा मुकुट से अलंकृत थे।

उस समय प्रशस्त अध्यवसाय एव लेश्याओ से युक्त भगवान षष्ट भक्त बेले की तपश्चर्या ग्रहण करके उस शिविका-पालकी मे बैठे।

जब श्रमण भगवान महावीर शिविका पर आरूढ हुए तो शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र शिविका के दोनो तरफ खडे होकर मणियों से जटित डंडे वाली चामरों को भगवान के ऊपर झूलाने लगे।

सब से पहले मनुष्यो ने हर्ष एव उल्लास के साथ भगवान की शिविका उठाई। उसके पश्चात् देव, सुर, असुर, गरुड़ और नागेन्द्र आदि देवो ने उसे उठाया।

शिविका को पूर्व दिशा से सुर-वैमानिक देव उठाते है, दक्षिण से असुर कुमार, पश्चिम से गरुड़ कुमार और उत्तर दिशा से नाग कुमार उठाते हैं।

उस समय देवो के आगमन से आकाश मडल वैसा ही सुशोभित हो रहा था जैसे खिले हुए पुष्पो से युक्त उद्यान या शरद् ऋतु में कमलों से भरा हुआ पद्म सरोवर शोभित होता है।

जिस प्रकार से सरसो, कचनार तथा चम्पक वन फूलो से सुहावना प्रतीत होता है, उसी तरह उस समय आकाश मंडल देवो से सुशोभित हो रहा था।

उस समय पटह, भेरी, झाझ, शख आदि श्रेष्ठ वादिंत्रों से गुजायमान आकाश एव भूभाग बड़ा ही मनोहर एवं रमणीय प्रतीत हो रहा था।

उस समय देव तत, वितत, घन और झुषिर इत्यादि अनेक तरह के बाजे बजा रहे थे तथा विभिन्न प्रकार के नृत्य कर रहे थे एव नाटक दिखा रहे थे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथाओ मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि भगवान देव निर्मित सहस्र वाहिका शिविका मे बैठे और देवो एव मनुष्यो ने उस शिविका को उठाया। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र उस शिविका के दोनो और खडे थे और भगवान के ऊपर रत्न एव मणियो से विभूषित डडो से युक्त चमर झुला रहे थे। उस समय देव एव मनुष्य सभी के चेहरो पर उल्लास एव हर्ष परिलक्षित हो रहा था और आज सब अपने आपको धन्य मान रहे थे।

जिस समय भगवान शिविका मे बैठकर जा रहे थे, उस समय, देव, असुर, किन्नर, गन्धर्व आदि बडे हर्ष के साथ बाजे बजा रहे थे और विभिन्न प्रकार के नृत्य कर रहे थे। सारा वातावरण हर्ष एव उल्लास से भरा हुआ था।

इतने हर्ष एव आनन्द के वातावरण में भी भगवान प्रशस्त अध्यवसायो के साथ शान्त बैठे हुए थे। उस समय भगवान ने षष्ठ भक्त-बेले का तप स्वीकार कर रखा था।

अब भगवान की दीक्षा से सबधित विषय का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तेणं कालेणं तेणं समएणं जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं

विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तरानक्खत्तेणं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए बिइयाए पोरिसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं एगसाडगमायाए चंदप्पभाए सिवियाए सहस्सवाहिणियाए सदेव मणुयासुराए परिसाए समणिज्जमाणे उत्तरखत्तियकुंडपुरसंनिवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ जेणेव नायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ईसिं रयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभाएणं सणियं २ चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणिं ठवेइ २ त्ता सणियं २ चंदप्पभाओ सीयाओ सहस्सवाहिणीओ पच्चोयरइ २ त्ता सणियं २ पुरत्थाभिमुहे सीहासणे निसीयइ आभरणालंकारं ओमुअइ, तओ णं वेसमणे देवे जन्नुव्वायपडिओ भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणेणं पडेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ, तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, तओ णं सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स जन्नुवायपडियाए वइरामएणं थालेणं केसाइं पडिच्छइ २ अणुजाणेसि भंतेत्ति कट्टु खीरोयसागरं साहरइ, तओ णं समणे जाव लोयं करित्ता सिद्धाणं नमुक्कारं करेइ २ सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मंति कट्टु सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ २ देवपरिसं च मणुयपरिसं च, आलिक्खचित्तभूयमिव ठवेइ।

छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये यः स हेमन्तस्य प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः मार्गशीर्षबहुलः तस्य मार्गशीर्षबहुलस्य दशमीपक्षे सुव्रते दिवसे विजयमुहूर्ते हस्तोत्तरानक्षत्रेण योगोपगते प्राचीनगामिन्यां छायाया द्वितीयायां पौरुष्यां षष्ठेन भक्तेन अपानकेन एकशाटकमादाय चन्द्रप्रभाया शिविकाया सहस्रवाहिन्या सदेवमनुजासुरया परिषदा समन्वीयमान. उत्तरक्षत्रियकुण्डपुरसन्निवेशस्य मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य च यत्रैव ज्ञातखण्डमुद्यानं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य ईषत् रत्निप्रमाणम् अस्पर्शेन भूमिभागेन शनैः २ चन्दप्रभां शिविकां सहस्रवाहिनी स्थापयति स्थापयित्वा शनैः २ चन्दप्रभातः शिविकातः सहस्रवाहिनिकातः प्रत्यवतरति प्रत्यवतीर्य शनैः २ पूर्वाभिमुखः सिंहासने निषीदति, आभरणालंकारमवमुञ्चति, ततो वैश्रमणो देवः जानुपादपतितः भगवतो महावीरस्य हंसलक्षण पटेन आभरणालंकारान् प्रतीच्छति, ततः श्रमणो भगवान् महावीरः दक्षिणेन दक्षिणं वामेन वामं पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य जानुपादपतितः वज्रमयेन स्थालेन केशान् प्रतीच्छति प्रतीच्छ्य अनुजानीहि भदन्त इति कृत्वा क्षीरोदकसागरे संहरते, ततः श्रमणो यावत् लोचं कृत्वा सिद्धेभ्यः नमस्कारं करोति, कृत्वा

सर्वं मे अकरणीयं पाप कर्म, इति कृत्वा सामायिकंचारित्रं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य देवपरिषदं च मनुजपरिषदं च आलेख्य चित्रभूतमिवस्थापयति।

पदार्थ– **तेणं कालेण तेणं समएणं**–उस काल और उस समय मे। **जे से**–जो वह। **हेमताणं**–हेमन्तऋतु का–शीतकाल का। **पढमे मासे**–प्रथम मास। **पढमे पक्खे**–पहला पक्ष। **मग्गसिरबहुले**–मार्गशीर्ष का पहला पक्ष अर्थात् कृष्ण पक्ष का। **णं**–वाक्यालंकारार्थक है। **तस्स**–उस। **मग्गसिरबहुलस्स**–मार्ग शीर्ष कृष्ण पक्ष के। **दसमी पक्खेण**–दशमी के दिन। **सुव्वएण**–सुव्रत नाम वाले। **दिवसेणं**–दिन मे। **विजएण मुहुत्तेणं**–विजय मुहूर्त मे तथा। **हत्थुत्तरानक्खत्तेणं**–उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ। **जोगोवगएणं**–चन्द्रमा का योग आने पर। **पाईणगामिणीए छायाए**–पूर्व दिशा गामी छाया के होने पर। **बिइयाए पोरिसीए**–द्वितीय प्रहर के बीत जाने पर। **अपाणएणं**–निर्जल–बिना पानी के। **छट्ठेणं भत्तेणं**–षष्ट भक्त दो उपवास से युक्त। **एगसाडगमायाए**–केवल एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर। **चंदप्पभायाए**–चन्द्रप्रभा नामक। **सिवियाए**–शिविका जो कि। **सहस्सवाहिणीयाए**–सहस्त्र पुरुषो से उठाई जा सकती है, उस मे बैठकर। **सदेवमणुयासुराए**–देव, मनुष्य और असुर कुमारो की। **परिसाए**–परिषद् के साथ। **समणिज्जमाणे**–निकलते हुए। **उत्तर-खत्तियकुंडपुरसनिवेसस्स**–उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश के। **मज्झंमज्झेणं**–मध्य २ मे से होकर। **निग्गच्छइ २**–निकलते हैं और वहा से निकल कर। **जेणेव**–जहा पर। **नायसंडे उज्जाणे**–ज्ञात खण्ड नामक उद्यान था। **तेणेव**–वहा पर। **उवागच्छइ २ त्ता**–आते हैं और वहा आकर। **ईसि**–थोड़ी सी। **रयणिप्पमाण**–हाथ प्रमाण। **अच्छोप्पेणं**–ऊंची। **भूमिभाएणं**–भूमि भाग से। **सणिय २**–शनै २। **चदप्पभ**–चन्द्रप्रभा नाम की। **सिविय**–शिविका। **सहस्सवाहिणि**–सहस्त्र वाहिनी को। **ठवेइ २**–स्थापन करते है उसे स्थापन करने के बाद फिर। **सणियं २**–शनै २। **चदप्पभाओ**–भगवान उस चन्द्रप्रभा। **सीयाओ**–शिविका। **सहस्सवाहिणीओ**–सहस्त्र वाहिनी से। **पच्चोरुहइ २**–नीचे उतरते है और उस से उतर कर फिर। **सणिय २**–शनै २। **पुरत्थाभिमुहे**–पूर्वाभिमुख होकर। **सीहासणे**–सिहासन पर। **निसीयइ २ त्ता**–बैठते है उस पर बैठने के अनन्तर। **आभरणालकारं**–भगवान आभरण और अलकारो को। **ओमुअइ**–उतारते है। **ण**–वाक्यालकारार्थक है। **तओ**–तत्पश्चात्। **वेसमणे देवे**–वैश्रमण देव। **जन्नुवाय-पडिओ**–भक्ति पूर्वक जानु को नीचे कर विनय पूर्वक। **भगवओ महावीरस्स**–भगवान महावीर के। **आभरणालकार**–आभरण और अलकारो को। **हसलक्खणेण**–हसलक्षण–हस के समान श्वेत उज्ज्वल हस चिन्ह युक्त। **पडेणं**–पट के द्वारा। **पडिच्छइ**–ग्रहण करता है। **तओ णं**–तदनन्तर। **समणे**–श्रमण। **भगव**–भगवान। **महावीरे**–महावीर। **दाहिणेणं**–दक्षिण हाथ से। **दाहिणं**–दक्षिण दिशा के। **वामेण**–और वाम हाथ से। **वामं**–वाम दिशा के केशो का। **पंचमुट्ठिय**–पाच मौष्टिक। **लोयं करेइ**–लोच करते है। **तओ**–तदनन्तर। **सक्के**–शक्र। **देविंदे**–देवेन्द्र। **देवराया**–देवराज। **समणस्स**–श्रमण। **भगवओ**–भगवान। **महावीरस्स**–महावीर के। **जन्नुवायपडियाए**–जानु नीचे करके चरण कमलो मे पड़कर अर्थात् विनय पूर्वक। **वइरामएण**–वज्रमय। **थालेण**–थाल में। **केसाइं**–भगवान के केशो को। **पडिच्छइ २ त्ता**–ग्रहण करता है, वह उन्हें ग्रहण करके कहता है। **भंते**–हे भगवन्! **अणुजाणेसि**–आपकी आज्ञा हो तो मैं इन्हें ग्रहण करू। **त्तिकट्टु**–ऐसा कहकर उन केशों को। **खीरोयसागरं**–क्षीरोदधि समुद्र मे ले जाकर। **साहरइ**–प्रवाहित कर देता है। **तओ णं**–तदनन्तर। **समणे**–

श्रमण। **जाव**-यावत्। **लोयं करित्ता**-लोचकर अर्थात् केशो का लुचन करके फिर। **सिद्धाण**-सिद्धों को। **नमुक्कारं**-नमस्कार। **करेइ २ त्ता**-करते हैं उन्हे नमस्कार करके फिर। **मे**-मुझे। **सव्वं**-सर्व प्रकार से। **पावकम्मं**-पाप कर्म। **अकरणिज्जं**-अकरणीय है। **तिकट्टु**-ऐसा कहकर भगवान। **सामाइयं चरित्तं**-सामायिक चारित्र को। **पडिवज्जइ**-ग्रहण करते है और सामायिक चारित्र को ग्रहण करके फिर उस समय भगवान ने। **देवपरिस च**-देव परिषद् और। **मणुयपरिस च**-मनुज परिषद् को। **आलिक्खचित्तभूयमिव**-भीत पर लिखे हुए चित्र की भाति। **ठवेइ**-बना दिया अर्थात् भगवान को दीक्षित होते देख कर देवो की और मनुष्यो की परिषदा भित्ति-चित्र की तरह चेष्टा रहित स्तब्ध सी हो गई।

***मूलार्थ*—उस काल और उस समय मे जब हेमन्त ऋतु का प्रथम मास प्रथमपक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मास का कृष्ण पक्ष था, उसकी दशमी तिथि के सुव्रत दिवस विजय मुहूर्त मे उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर पूर्वगामिनी छाया और द्वितीय प्रहर के बीतने पर निर्जल-बिना पानी के दो उपवासो के साथ एक मात्र देवदूष्य वस्त्र को लेकर चन्द्रप्रभा नाम की सहस्त्र वाहिनी शिविका मे बैठे। उसमें बैठकर वे देव मनुष्य तथा असुर कुमारों की परिषद् के साथ उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश के मध्य २ मे से होते हुए जहा ज्ञात खण्ड नामक उद्यान था वहां पर आते है। वहा आकर देव थोड़ी सी-हाथ प्रमाण ऊची भूमि पर भगवान की शिविका को ठहरा देते है। तब भगवान उसमे से शनै २ नीचे उतरते हैं और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ जाते है। उसके पश्चात् भगवान् अपने आभरणालकारों को उतारते हैं तब वैश्रमण देव भक्ति पूर्वक भगवान के चरणो मे बैठकर उनके आभरण और अलकारों को हंस के समान श्वेत वस्त्र मे ग्रहण करता है। तत् पश्चात् भगवान ने दाहिने हाथ से दक्षिण की ओर के केशो का और वाम कर से बाईं ओर के केशो का पाच मुष्टिक लोच किया, तब देवराज शक्रेन्द्र श्रमण भगवान महावीर के चरणों मे पड़ कर घुटनो को नीचे टेक कर वज्रमय थाल मे उन केशो को ग्रहण करता है और हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, ऐसा कहकर उन केशों को क्षीरोदधि-क्षीर समुद्र मे प्रवाहित कर देता है। इसके पश्चात् भगवान सिद्धों को नमस्कार करके सर्वप्रकार के सावद्यकर्म का परित्याग करते हुए सामायिक चारित्र ग्रहण करते है। उस समय देव और मनुष्य दोनो भीत पर लिखे हुए चित्र की भाति अवस्थित हो गए, अर्थात् चित्रवत् निश्चेष्ट हो गए।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान की दीक्षा के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। जब भगवान की शिविका ज्ञात खण्ड बगीचे मे पहुची तो भगवान उससे नीचे उतर गए और एक वृक्ष के नीचे पूर्व दिशा की ओर मुह करके बैठ गए और क्रमश अपने सभी वस्त्राभूषणो को उतार कर वैश्रमण देव को देने लगे। सभी आभूषणो को उतारने के पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को तृतीय प्रहर के समय विजय मुहूर्त मे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर भगवान ने स्वय पञ्च मुष्टि लुचन करके सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हुए सामायिक चारित्र ग्रहण किया। समस्त सावद्य योगो का त्याग करके भगवान ने साधना के पथ पर कदम रखा। उस समय भगवान ने केवल देवदूष्य वस्त्र स्वीकार किया। भगवान के केशो को शक्रेन्द्र ने ग्रहण किया और उन्हे क्षीरोदधि समुद्र में विसर्जित कर दिया।

इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि उस युग मे भी दिवस, मुहूर्त एव नक्षत्र आदि देखने की परम्परा थी। और पच मुष्टि लोच एव अलकारो आदि के उतारने का उल्लेख करके भगवान की सहिष्णुत्ता, त्याग एव तप भावना को दिखाया है।

कुछ प्रतियो मे '**जन्नुवायपडियाए**' के स्थान पर '**भत्तुव्वायपडियाए**' पाठ उपलब्ध होता है।

भगवान की दीक्षा के समय वातावरण को शान्त बनाए रखने के लिए इन्द्र के द्वारा सभी वादित्रो को बन्द करने का आदेश देने का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्–दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियनिनाओ य सक्कवयणेणं।
खिप्पामेव निलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं॥ १॥
पडिवज्जित्तु चरित्तं अहोनिसं सव्वपाणभूयहियं।
साहट्टु लोमपुलया सव्वे देवा निसामिंति॥ २॥

छाया– दिव्यो मनुष्यघोष , तूर्यनिनादश्च शक्रवचनेन।
क्षिप्रमेव निर्लुप्त , यदा प्रतिपद्यते चरित्रम्॥ १॥
प्रतिपद्य चरित्र अहर्निश सर्वप्राणिभूतहितम्।
संहृत्य रोमपुलका· सर्वे देवा निशामयंति॥ २॥

***पदार्थ*– जाहे**-जब भगवान। **चरित्त**-चारित्र को। **पडिवज्जइ**-ग्रहण करने लगे तो। **दिव्वो**-देवो के श्रेष्ठ शब्द तथा। **मणुस्सघोसो**-मनुष्यो के शब्द। **य**-और। **तुरियनिनाओ**-वाजन्तरो के शब्द। **सक्कवयणेण**-शक्रेन्द्र के वचन से। **खिप्पामेव**-शीघ्र ही। **निलुक्को**-बन्द कर दिए गए।

चरित्त-चारित्र को। **पडिवज्जित्तु**-ग्रहण करके। **अहोनिस**-रात-दिन। **सव्वपाणभूयहिय**-भगवान ने सर्व प्राण,भूत, जीवो के हित के लिए चारित्र ग्रहण किया। **साहट्टुलोमपुलया**-जिनकी रोम राजी पुलकित हो रही है ऐसे। **सव्वे देवा**-सभी देव। **निसामिंति**-इसे सुनते है अर्थात् सहर्ष श्रवण करते है

***मूलार्थ*—जिस समय भगवान सामायिक चारित्र ग्रहण करने लगे, उस समय शक्रेन्द्र की आज्ञा से सभी वादित्रो आदि से होने वाले शब्द बन्द कर दिए गए।**

सामायिक चारित्र ग्रहण करके भगवान रात-दिन सब प्राणियों के हित मे सलग्न हुए, अर्थात् वे सभी प्राणियो की रक्षा करने लगे। सभी देवों ने हर्षित भाव से यह सुना कि भगवान ने सयम स्वीकार कर लिया है।

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत उभय गाथाओ मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि जिस समय भगवान सामायिक चारित्र ग्रहण करने लगे उस समय शक्रेन्द्र ने सभी प्रकार के वादित्रो को बन्द करने का आदेश दिया और उसके आदेश से सभी देव एव मानव शान्त चित्त से भगवान के चारित्र ग्रहण करने के उद्देश्य को सुनने लगे। इस मे यह स्पष्ट बताया गया है कि चारित्र सर्व प्राणियो का हितकारक है, प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव को अभिव्यक्त करने तथा प्राणिमात्र की रक्षा करने के उद्देश्य से ही साधक साधना के या साधुत्व के पथ पर कदम रखता है।

समस्त सावद्य योगो का त्याग करके सयम स्वीकार करते ही भगवान को चतुर्थ मन पर्यव ज्ञान हो गया, इस का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खओवसमियं चरित्तं पडिवन्नस्स मणपज्जवणाणे नामं नाणे समुप्पन्ने अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहि य समुद्देहिं सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ।

छाया– ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सामायिकं क्षायोपशमिकं चरित्रं प्रतिपन्नस्य मन·पर्यवज्ञान नाम ज्ञान समुत्पन्नं, अर्द्धतृतीये द्वीपे द्वयोः च समुद्रयो. संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्ताना व्यक्तमनसा मनोगतान् भावान् जानाति।

पदार्थ– **ण**-प्राग्वत्। **तओ**-तत् पश्चात्। **समणस्स**-श्रमण। **भगवओ**-भगवान। **महावीरस्स**-महावीर को। **सामाइय**-सामायिक। **खओवसमिय**-क्षायोपशमिक। **चरित्त**-चारित्र। **पडिवन्नस्स**-ग्रहण करते ही। **मणपज्जवनाणे**-मन पर्याय ज्ञान। **नामं**-नाम का। **नाणे**-ज्ञान। **समुप्पन्ने**-उत्पन्न हुआ, उस ज्ञान से भगवान। **अड्ढाइज्जेहिं**-अढाई। **दीवेहि**-द्वीपो मे। **य**-और। **दोहिं समुद्देहिं**-दो समुद्रो मे। **सन्नीण**-मनयुक्त। **पज्जत्ताण**-पर्याप्त। **पचिदियाण**-पञ्चेन्द्रिय। **वियत्तमणसाण**-व्यक्त मन वालो के। **मणोगयाइ**-मनोगत। **भावाइ**-भावों को। **जाणेइ**-जानते है।

मूलार्थ—**क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही श्रमण भगवान महावीर को मन पर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिसके द्वारा वे अढाई द्वीप, दो समुद्रो मे स्थित संज्ञीपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय जीवो के मनोगत भावो को स्पष्ट जानने लगे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे मन पर्याय ज्ञान का वर्णन किया गया है। इस ज्ञान से व्यक्ति अढाई द्वीप और दो समुद्रो मे स्थित पर्याप्त सन्नी पञ्चेन्द्रिय जीवो के मनोगत भावो को जान सकता है जिस समय भगवान ने सामायिक चारित्र स्वीकार किया उसी समय उन्हे यह ज्ञान प्राप्त हो गया और वे मन वाले प्राणियो के मानसिक भावो को देखने जानने लगे।

इस से यह स्पष्ट हो गया कि मन पर्याय ज्ञान क्षेत्र एव विषय की दृष्टि से ससीम है और इससे उन्हीं प्राणियो के मानसिक भावो को जाना जा सकता है, जिन के मन है। क्योकि मन वाले प्राणी ही स्पष्ट रूप से मानसिक चिन्तन कर सकते हैं। अत उनके चिन्तन से मनोवर्गणा के पुद्गलो के बनते हुए आकारो के द्वारा उनके चिन्तन का, उनके मानसिक विचारो का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

इस मे दूसरी बात यह बताई गई है कि सामायिक चारित्र की प्राप्ति क्षयोपशम भाव में हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक साधना का ग्रहण क्षायोपशमिक भाव मे ही किया जा सकता है, औदयिक भाव मे नहीं। क्योकि सम्यग्ज्ञान पूर्वक की गई आध्यात्मिक क्रियाए ही सम्यग् होती हैं और सम्यग् ज्ञान क्षयोपशम भाव मे ही प्राप्त होता है। अत: सामायिक चारित्र को क्षायोपशमिक भाव मे माना

गया है।

भगवान ने दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जो अभिग्रह ग्रहण किया, उसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइए समाणे मित्तनाइ-सयणसंबंधिवग्गं पडिविसज्जेइ, २ त्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-बारस वासाइं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जंति तंजहा-दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि अहियासइस्सामि।

छाया– ततः श्रमणो भगवान् महावीर. प्रव्रजितः सन् मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिवर्गं प्रतिविसर्जयति प्रतिविसर्ज्य इम एतद्रूपं अभिग्रह अभिगृण्हाति, द्वादश वर्षाणि व्युत्सृष्टकाय. त्यक्तदेह· ये केचिद् उपसर्गा· समुत्पद्यन्ते, तद्यथा-दिव्याः वा मानुष्या वा तैरिश्चिका वा तान् सर्वान् उपसर्गान् समुत्पन्नान् सतः सम्यक् सहिष्ये क्षमिष्ये अधिसहिष्ये।

पदार्थ– **ण**-वाक्यालकार मे है। **तओ**-तदनन्तर। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर। **पव्वइए समाणे**-प्रव्रजित-दीक्षित होने पर। **मित्तनाइ**-मित्र ज्ञाति और। **सयणसबधिवग्ग**-स्वजन सम्बन्धि वर्ग को। **पडिविसज्जेइ**-विसर्जित करके। **इम**-यह। **एयारूव**-एतादृश इस प्रकार के। **अभिग्गह**-अभिग्रह-प्रतिज्ञा विशेष को। **अभिगिण्हइ**-ग्रहण करते है। **बारस वासाइ**-बारह वर्ष पर्यन्त। **वोसट्ठकाए**-काया शरीर का व्युत्सर्ग तथा। **चियत्तदेहे**-शरीर गत ममत्व को छोड़ते हुए। **जे केइ**-जो कोई भी। **उवसग्गा**-उपसर्ग। **समुप्पज्जति**-उत्पन्न होगा। **तंजहा**-जैसे कि। **दिव्वा वा**-देवसम्बन्धि। **माणुस्सा वा**-अथवा मनुष्य सम्बन्धि। **तेरिच्छिया वा**-अथवा तिर्यंच सम्बन्धि। **ते सव्वे**-उन सभी। **उवसग्गे**-उपसर्गों के। **समुप्पन्ने समाणे**-उत्पन्न होने पर उन सब को। **सम्म**-सम्यक् प्रकार से। **सहिस्सामि**-सहन करूगा। **खमिस्सामि**-क्षमा करूगा। **अहियासइस्सामि**-खेद रहित हो कर सहन करूगा।

मूलार्थ—**श्रमण भगवान महावीर ने प्रव्रजित होने के पश्चात् अपने मित्र ज्ञाति और स्वजन सम्बन्धि वर्ग को विसर्जित किया और उन सब के चले जाने के बाद भगवान ने इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया कि मैं आज से लेकर बारह वर्ष तक अपने शरीर पर ममत्व नहीं रखूंगा और देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धि जो भी उपसर्ग उत्पन्न होगे, उन सभी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करूगा, सदा क्षमा भाव रखूंगा, और स्थिरता पूर्वक उन कष्टों पर विजय प्राप्त करूंगा अर्थात् उनके सहन करने में किसी प्रकार से खिन्न एवं अप्रसन्न नहीं होऊंगा।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान महावीर की महान् साधना एव सहिष्णुता का उल्लेख किया गया है। भगवान ने दीक्षा ग्रहण करते ही अपने शरीर पर से सर्वथा आसक्ति हटा दी। उन्होने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि मैं १२ वर्ष तक अर्थात् सर्वज्ञता प्राप्त नहीं होने तक देव-दानव, मानव और तिर्यञ्च-

पशु, पक्षी एवं क्षुद्र जन्तुओ द्वारा होने वाले किसी भी परीषह का, उपसर्ग का प्रतिकार नहीं करूगा, आने वाले समस्त कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करूगा, सब प्राणियो के प्रति क्षमा एव मैत्री भाव रखूगा। अपने को कष्ट देने वाले किसी भी प्राणी के अहित का सकल्प नहीं करूगा। वस्तुत· यह भावना उनकी उत्कट साधना एव महान् शक्ति की परिचायक है। इसी विशिष्ट शक्ति के कारण आप वर्द्धमान एव श्रमणत्व से आगे बढकर महावीर बने। भगवान की महावीरता प्राणियो को दण्डे से दबाने मे नहीं, प्रत्युत महान् कष्टो को समभाव पूर्वक सहने, दुखो की सतप्त दोपहरी मे भी शान्त एव अटल भाव से आत्म चिन्तन मे सलग्न रहने, आततायियो को भी मित्र समझ कर उन्हे क्षमा करने तथा राग-द्वेष एव कषाय रूप आध्यात्मिक शत्रुओ का नाश करने मे थी।

इस प्रकार अनेक उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते हुए भगवान विहार करते हैं, उनकी विहार चर्या का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- तओ णं स० भ० महावीरे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता वोसट्ठचत्तदेहे दिवसे मुहुत्तसेसे कुम्मारगामं समणुपत्ते।

छाया- ततः श्रमणो भगवान महावीरः, इमम् एतद्रूपम् अभिग्रहम् अभिगृह्य व्युत्सृष्टत्यक्तदेहः दिवसे मुहूर्तशेषे कुमारग्रामं समनुप्राप्त.।

पदार्थ- **ण**-वाक्यालकारार्थक है। **तओ**-तत् पश्चात्। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर। **इम**-यह। **एयारूव**-एतादृग्रूप। **अभिग्गहं**-अभिग्रह-प्रतिज्ञा विशेष को। **अभिगिण्हित्ता**-ग्रहण करके। **वोसट्ठचत्तदेहे**-जिसने शरीर के ममत्व और देह का सस्कार करने का भी त्याग कर दिया है। **मुहुत्तसेसे दिवसे**-एक मुहूर्त दिन के रहने पर। **कुम्मारगाम**-कुमार नामक ग्राम को। **समणुपत्ते**-प्राप्त हुए-पहुचे।

***मूलार्थ*—शरीर पर से ममत्व त्याग के अभिग्रह से युक्त श्रमण भगवान महावीर ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, उसी दिन वे शाम को एक मुहूर्त (४८ मिनट) दिन रहते कुमार ग्राम पहुंचे।**

हिन्दी विवेचन- इसमे यह बताया गया है कि भगवान ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन पहला विहार कुमार ग्राम की ओर किया और सूर्यास्त से एक मुहूर्त (४८ मिनट) पहले कुमार ग्राम पहुच गए।

विहार के समय भगवान की क्या वृत्ति थी, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्- तओ णं स० भ० म० वोसट्ठचत्तदेहे अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं एवं संजमेणं पग्गहेणं संवरेणं तवेणं बंभचेरवासेणं खंतीए मुत्तीए समिईए गुत्तीए तुट्ठीए ठाणेणं कमेणं सुचरियफलनिव्वाणमुत्तिमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

छाया- ततः श्रमणो भगवान् महावीरः व्युत्सृष्टत्यक्तदेहः अनुत्तरेण आलयेन अनुत्तरेण विहारेण एवं संयमेन प्रग्रहेण संवरेण तपसा ब्रह्मचर्यवासेन क्षान्त्या मुक्त्या समित्या गुप्तया

तुष्ट्या स्थानेन क्रमेण सुचरितफलनिर्वाणमुक्तिमार्गेण आत्मानं भावयन् विहरति।

पदार्थ– णं-वाक्यालकारार्थक मे है। तओ-तदनन्तर। स० भ० म०-श्रमण भगवान महावीर। वोसट्ठचत्तदेहे-जिस ने देह के ममत्व और शरीर के सस्कार का परित्याग किया हुआ है। अणुत्तरेणं-प्रधान अथवा अनुपम। आलएणं-स्त्री, पशु, पडक (नपुसक) आदि से रहित वसती के सेवन से। अणुत्तरेणं-प्रधान-अनुपम। विहारेणं-विहार से। एव-इसी प्रकार। सजमेणं-अनुपम सयम से। पग्गहेणं-अनुपम प्रयत्न से। संवरेणं-अनुपम सवर से। तवेण-अनुपम तप से। बभचेरवासेणं-अनुपम ब्रह्मचर्य वास। खतीए-अनुपम क्षमा से। मुत्तीए-अनुपम निर्लोभता से। समिईए-अनुपम समिति से। गुत्तीए-अनुपम गुप्ति से। तुट्ठीए-अनुपम तुष्टि से। ठाणेण-एक स्थान मे कायोत्सर्गादि करके ध्यान करने से। कमेण-अनुपम क्रियानुष्ठान करने से। सुचरियफलनिव्वाण-मुत्तिमग्गेण-सदाचरण से-जिसका फल निर्वाण है,और मुक्ति जिसका लक्षण है-तथा ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप मुक्ति मार्ग के सेवन से युक्त होकर। अप्पाणं-आत्मा को। भावेमाणे-भावित करते हुए। विहरइ-विचरते हैं।

मूलार्थ—तदनन्तर शरीर के ममत्व और संस्कार का परित्याग करने वाले श्रमण भगवान महावीर अनुपम वसती के सेवन से, अनुपम विहार से, एवं अनुपम संयम, सवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, समिति, गुप्ति, सन्तोष, कायोत्सर्गादि स्थान और अनुपम क्रियानुष्ठान से तथा सच्चरित के फल रूप निर्वाण और मुक्ति मार्ग-ज्ञान दर्शन चारित्र के सेवन से युक्त होकर आत्मा को भावित करते हुए विचरते है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान महावीर की महान् एव विशुद्ध साधना का उल्लेख किया गया है। वे सदा निर्दोष, प्रासुक एव एषणीय स्थानो मे ठहरते थे और वे ईर्या के सभी दोषो से निवृत्त होकर सदा अप्रमत्त भाव से विहार करते थे और उत्कृष्ट तप, सयम, समिति-गुप्ति, क्षमा, स्वाध्याय-कायोत्सर्ग आदि से आत्मा को शुद्ध बनाते हुए विचर रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर स्वामी का प्रत्येक क्षण आत्मा को राग-द्वेष एव कर्म बन्धनो से सर्वथा मुक्त-उन्मुक्त बनाने मे लगता था।

भगवान की सहिष्णुता का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– एवं वा विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जंति दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे अणाउले अव्वहिए अद्दीणमाणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहइ, खमइ तितिक्खइ अहियासेइ॥

छाया– एवं वा विहरमाणस्य ये केचित् उपसर्गाः समुत्पद्यन्ते दिव्या वा मानुष्या वा तैरिश्चिका वा तान् सर्वान् उपसर्गान् समुत्पन्नान् सतः अनाकुलः अव्यथितः अदीनमानसः त्रिविधमनोवचनकायगुप्तः सम्यक् सहते क्षमते तितिक्षते अध्यास्ते।

पदार्थ– एव-इस प्रकार का। वा-समुच्चय अर्थ मे आया है। विहरमाणस्स-विचरते हुए भगवान

को। जे केइ-जो कोई। उवसग्गा-उपसर्ग। समुप्पज्जंति-उत्पन्न होते हैं। दिव्वा वा-देव सम्बन्धि। माणुस्सा वा-अथवा मनुष्य सम्बन्धि। तिरिच्छिया वा-तिर्यक् सम्बन्धि। ते-उन। सव्वे-सब। उवसग्गे-उपसर्गों को। समुप्पन्ने समाणे-प्राप्त होने पर उन्हें। अणाउले-अनाकुलता से-शान्त चित्त से। अव्वहिए-स्थिरता पूर्वक। अद्दीणमाणसे-अदीन चित्त होकर तथा। तिविहमणवयकायगुत्ते-मन वचन और काया से गुप्त होकर। सम्मं-सम्यक् प्रकार से। सहइ-उन उपसर्गों को सहन करते है। खमइ-उपसर्ग प्रदाताओ को क्षमा करते है। तितिक्खइ-अदीन मन से सहन करते हैं। अहियासेइ-निश्चल भावो से सहन करते है।

मूलार्थ—इस प्रकार विचरते हुए श्रमण भगवान महावीर को देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धि जो कोई भी उपसर्ग प्राप्त हुए वे उन सब उपसर्गों को खेद रहित बिना दीनता के समभाव पूर्वक सहन करते रहे। और वे मन-वचन तथा काया से गुप्त होकर उन उपसर्गों को भली-भान्ति सहन करते और उपसर्ग दाताओं को क्षमा करते तथा सहिष्णुता और स्थिर भावों से उन पर विजय प्राप्त करते थे।

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे भगवान की सहिष्णुता, क्षमा एव आध्यात्मिक साधना के विकास का वर्णन किया गया है। वे सदा समभाव पूर्वक विचरते थे। कभी भी कष्टो से विचलित नहीं हुए और न भयकर वेदना देने वाले व्यक्ति के प्रति उन्होने द्वेष भाव रखा। वे क्षमा के अवतार प्रत्येक प्राणी को तन, मन और वचन से क्षमा ही करते रहे। वह अभय का देवता सब प्राणियो को अभय दान देता रहा। यही भगवान महावीर की साधना थी कि दु'ख देने वाले के प्रति द्वेष मत रखो, सब के प्रति मैत्री भाव रखो, सब को क्षमा दो और आने वाले दु'ख-सुख को समभाव पूर्वक सहन करो।

इस महान् साधना एव घोर तपश्चर्या के द्वारा राग-द्वेष एव चार घातिक कर्मों का क्षय करके भगवान ने केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया। इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स बारस वासा वीइक्कंता, तेरसमस्स य वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दुच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वेसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए जंभियगामस्स नगरस्स बहिया नईए उज्जुवालियाए उत्तरकूले सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि उड्ढंजाणू अहोसिरस्स झाणकोट्ठोवगयस्स वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे सालरुक्खस्स अदूरसामंते उक्कुडुयस्स गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कसिणे पडिपुन्ने अव्वाहए निरावरणे अणंते अणुत्तरे

केवलवरणाणदंसणे समुप्पन्ने।

छाया— ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य एतेन विहारेण विहरमाणस्य द्वादश वर्षा व्यतिक्रान्ताः त्रयोदशस्य च वर्षस्य पर्याये वर्तमानस्य योऽसौ ग्रीष्मस्य द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः वैशाखशुक्ल. तस्य वैशाखशुक्लस्य दशमीपक्षे सुव्रते दिवसे विजये मुहूर्ते हस्तोत्तरेण नक्षत्रेण योगोपगते प्राचीनगामिन्यां छायायां व्यक्तायां पौरुष्याम् (पाश्चात्यपौरुष्यां) जृम्भिकग्रामस्य नगरस्य बहिस्तात् नद्या. ऋजुवालुकायाः उत्तरकूले श्यामाकस्य गृहपतेः ऊर्ध्वंजानुअध.शिरसः ध्यानकोष्ठोपगतम्य व्यावृत्तस्य चैत्यस्य उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे शालवृक्षस्य अदूरसामन्ते उत्कुटुकस्य गोदोहिकया आतापनया आतापयत· षष्ठेन भक्तेन अपानकेन शुक्लध्यानान्तरे वर्तमानस्य निर्वाणे कृत्स्ने प्रतिपूर्णे अव्याहते निरावरणे अनन्ते अनुत्तरे केवलवरज्ञानदर्शने समुत्पन्ने।

पदार्थ— **ण**-वाक्यालकारार्थक है। **तओ**-तदनन्तर। **समणस्स**-श्रमण। **भगवओ**-भगवान। **महावीरस्स**-महावीर को। **एएण**-इस प्रकार के। **विहारेण**-विहार से। **विहरमाणस्स**-विचरते हुओ को। **बारस वासा**-द्वादश वर्ष। **वीइक्कता**-व्यतीत हो गए। **य**-पुन । **तेरसमस्स**-तेरहवे। **वासस्स**-वर्ष के। **परियाए**-मध्य मे। **वट्टमाणस्स**-वर्तते हुए। **जे**-जो। **से**-यह। **गिम्हाणं**-ग्रीष्म ऋतु के। **दुच्चे मासे**-दूसरे मास मे। **चउत्थे पक्खे**-चतुर्थ पक्ष मे। **वइसाहसुद्धे**-वैशाख शुक्ल पक्ष मे। **ण**-प्राग्वत्। **तस्स**-उस। **वेसाहसुद्धस्स (पक्खस्स)** -वैशाख शुक्ल पक्ष को। **दसमी पक्खेणं**-दशमी के दिन। **सुव्वएण दिवसेण**-सुव्रत नामक दिवस में। **विजएण मुहुत्तेण**-विजय मुहूर्त्त मे। **हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं**-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ। **जोगोवगएणं**-चन्द्रमा का योग आने पर। **पाईणगामिणीए छायाए**-दिन के पिछले प्रहर में। **वियत्ताए पोरिसीए**-वियत नाम वाली पौरूषी के आने पर अर्थात् पाश्चात्य पौरुषी मे। **जभियगामस्स**-जृम्भकग्राम नाम के। **नगरस्स**-नगर के। **बहिया**-बाहर। **उज्जुवालियाए**-ऋजू वालुका नामक। **नईए**-नदी के। **उत्तरकूले**-उत्तर तट पर। **सामागस्स**-श्यामाक नाम के। **गाहावइस्स**-गृहपति के। **कट्ठकरणंसि**-क्षेत्र मे। **उड्ढजाणुअहोसिरस्स**-ऊपर को जानु और नीचे को सिर इस प्रकार। **झाणकोट्ठोवगयस्स**-ध्यान रूपी कोष्ट मे प्रविष्ट हुए भगवान को। **वेयावत्तस्स**-वैयावृत्य नामक। **चेइयस्स**-चैत्य-यक्ष मदिर के। **उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे**-उत्तर पूर्व दिग् भाग अर्थात् ईशान कोण मे। **सालरुक्खस्स**-शाल वृक्ष के। **अदूरसामंते**-न अति दूर न अति समीप। **उक्कुडुयस्स**-उत्कुटुक और। **गोदोहियाए**-गोदोहिक आसन से। **आतावणाए**-आतापना। **आयावेमाणस्स**-लेते हुए। **अपाणएण**-निर्जल-पानी रहित। **छट्ठेणं भत्तेण**-षष्ठभक्त-दो उपवास पूर्वक। **सुक्कज्झाण तरियाए**-शुक्ल ध्यान मे। **वट्टमाणस्स**-आरुढ हुए भगवान को। **निव्वाणे**-निर्दोष। **कसिणे**-सपूर्ण अर्थ का ग्राहक। **पडिपुन्ने**-प्रतिपूर्ण। **अव्वाहए**-व्याघात रहित। **निरावरणे**-आवरण रहित। **अणते**-अनन्त। **अणुत्तरे**-सब से प्रधान। **केवलवरनाणदंसणे**-सर्व श्रेष्ठ केवल ज्ञान और केवल दर्शन। **समुप्पन्ने**-उत्पन्न हुए।

मूलार्थ—श्रमण भगवान महावीर को इस प्रकार के विहार से विचरते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए। तेरहवें वर्ष के मध्य में ग्रीष्म ऋतु के दूसरे मास और चौथे पक्ष मे अर्थात् वैशाख

शुक्ला दशमी के दिन सुव्रत नामक दिवस में विजय मुहूर्त मे, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर दिन के पिछले प्रहर, जृम्भक ग्राम नगर के बाहर ऋजु बालिका नदी के उत्तर तट पर, श्यामाक गृहपति के क्षेत्र मे वैयावृत्य नामक यक्ष मन्दिर के ईशान कोण मे शाल वृक्ष के कुछ दूरी पर ऊंचे गोडे और नीचा शिर कर के ध्यान रूप कोष्ट मे प्रविष्ट हुए तथा उत्कुटुक और गोदोहिक आसन से सूर्य की आतापना लेते हुए, निर्जल छट्‌ठ भक्त तप युक्त शुक्ल ध्यान ध्याते हुए भगवान को निर्दोष, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, निर्व्याघात, निरावरण, अनत, अनुत्तर, सर्वप्रधान केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधना के बारह वर्ष कुछ महीने बीतने पर वैशाख शुक्ला १० को जृम्भक ग्राम के बाहर, ऋजु बालिका नदी के तट पर, श्यामाक गृहपति के क्षेत्र (खेत) मे, जहा जीर्ण व्यन्तरायतन था, दिन के चतुर्थ प्रहर मे, सुव्रत नामक दिन, विजय मुहुर्त एव उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर उक्कडु और गोदुह आसन से शुक्ल ध्यान[1] मे सलग्न भगवान ने राग-द्वेष एव ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिक कर्मों का सर्वथा क्षय करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया।

प्रस्तुत प्रसग मे मुहूर्त आदि के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय लौकिक पचाग की ज्योतिष गणना को स्वीकार किया जाता था। ग्राम, नदी आदि के नाम के साथ देश (प्रान्त) के नाम का उल्लेख कर दिया जाता तो वर्तमान मे उस स्थान का पता लगाने मे कठिनाई नहीं होती और इससे लोगो मे स्थान सम्बन्धी भ्रान्तिया नहीं फैलतीं और ऐतिहासिको में विभिन्न मतभेद पैदा नही होता। परन्तु इसमे देश का नामोल्लेख नहीं होने से यह पाठ विद्वानो के लिए चिन्तनीय एव विचारणीय है।

केवल ज्ञान के सामर्थ्य का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– से भगवं अरहं जिणे केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पज्जाए जाणइ, तं०–आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च णं विहरइ॥

छाया– स भगवान् अर्हन् जिनः केवली सर्वज्ञ सर्वभावदर्शी सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य पर्यायान् जानाति, तद्यथा-आगतिं गति स्थितिं च्यवनं उपपातं भुक्त पीतं कृतं प्रतिसेवितं आविःकर्म रहःकर्म लपितं कथितं मनोमानसिकं सर्वलोके सर्वजीवानां सर्वभावान् जानन् पश्यन् एवं च विहरति-विचरति।

पदार्थ– **से-वह। भगवं-भगवान। अरह-अर्हन्-पूज्य। जिणे-जिन-राग-द्वेष को जीतने वाले। केवली-सम्पूर्ण ज्ञान वाले। सव्वन्नू-सर्वज्ञ-सब कुछ जानने वाले। सव्वभावदरिसी-सर्व भावो-पदार्थों को**

---

१ शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं –पृथकत्ववितर्क सविचार, २ एकत्ववितर्कअविचार, ३ सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपत्ति और, ४ उच्छिन्नक्रियाऽनिवर्ति। इसमे से भगवान पहले दो भेदो के चिन्तन मे, ध्यान मे सलग्न थे। – आचाराग वृत्ति

देखने वाले। **सदेवमणुयासुरस्स**-देव, मनुष्य और असुर कुमार देवों के। **लोगस्स**-तथा सर्व लोक के। **पज्जाए**-पर्यायों को। **जाणइ**-जानते हैं। **तंजहा**-जैसा कि। **आगइं**-जीवो की आगति को। **गइं**-गति को। **ठिइं**-स्थिति को। **चवणं**-च्यवन अर्थात् देवलोक से देवों के च्यवन को। **उववायं**-उपपात अर्थात् नारकी और देव के जन्म स्थान को। **भुत्तं**-खाद्य। **पीयं**-पेय पदार्थों को। **कडं**-किए हुए कार्य को अर्थात् चौर्यादि कर्म को। **पडिसेवियं**-मैथुनादि सेवन को। **आविकम्मं**-प्रकट कार्य को। **रहोकम्मं**-गुप्त कार्य को। **लवियं**-प्रलाप करते हुए को। **कहियं**-गुप्त वार्ता को। **मणोमाणसियं**-जीवो के चित्त और मन के भावों को। **सव्वलोए**-सर्व लोक के विषय को। **सव्वजीवाणं**-सर्व जीवो के। **सव्वभावाइं**-सर्व भावों को। **जाणमाणे**-जानते हुए। **पासमाणे**-देखते हुए। **एवं**-इस प्रकार। **विहरइ**-विचरते हैं। **च णं**-प्राग्वत्।

_मूलार्थ_—वे भगवान अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी, देव, मनुष्य और असुरकुमार तथा लोक के सभी पर्यायों को जानते हैं, जैसे कि– जीवो की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उत्पाद तथा उनके द्वारा खाए पीए-गए पदार्थों एवं उनके द्वारा सेवित प्रकट एवं गुप्त सभी क्रियाओं को तथा अन्तर रहस्यों को एवं मानसिक चिन्तन को प्रत्यक्ष रूप से जानते-देखते हैं। वे सम्पूर्ण लोक मे स्थित सर्व जीवों के सर्व भावों को तथा समस्त पुद्गलों-परमाणुओं को जानते देखते हुए विचरते हैं।

हिन्दी विवेचन– इसमे बताया गया है कि भगवान समस्त लोकालोक को तथा लोक मे स्थित समस्त जीवो को, उनकी पर्यायो को, ससारी जीवो के प्रत्येक प्रकट एव गुप्त कार्यों तथा विचारो को तथा अनन्त-अनन्त परमाणुओ एव उन से निर्मित पुद्गलो एव उनकी पर्यायो को जानते-देखते हैं। उनके ज्ञान मे दुनिया का कोई भी पदार्थ छिपा हुआ नहीं है। लोक के साथ-साथ अलोक मे स्थित अनन्त आकाश प्रदेशो को भी वे जानते देखते हैं।

केवल ज्ञान एव केवल दर्शन सपन्न आत्मा को अर्हन्त, जिन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आदि कहते हैं। केवल ज्ञान का अर्थ है– वह ज्ञान जो पदार्थों की जानकारी के लिए पूर्ववर्ती मति, श्रुत, अवधि एव मन पर्याय चारो ज्ञानो मे से किसी की अपेक्षा नहीं रखता है। वह केवल अर्थात् अकेला ही रहता है, और किसी अन्य ज्ञान की सहायता के बिना ही समस्त पदार्थों के समस्त भावो को जानता-देखता है।

प्रस्तुत सूत्र मे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि सर्वज्ञ को पहले समय मे ज्ञान होता है और दूसरे समय दर्शन होता है। जब कि छद्मस्थ को प्रथम समय मे दर्शन और द्वितीय समय ज्ञान होता है। इस पर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे विस्तार से विचार किया गया है और वृत्तिकार ने उस पर विशेष रूप से प्रकाश डाला[१] है।

---

१ अतएव सर्वज्ञो-विशेषांश पुरस्कारेण सर्वज्ञाता, सर्वदर्शी-सामान्यांशपुरस्कारेण सर्वज्ञाता, नन्वर्हता केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयो क्षीणामोहान्त्यसमय एव क्षीणत्वेन युगपदुत्पत्तिकत्वेनोपयोगस्वभावात् क्रमप्रवृती च सिद्धायां 'सव्वन्नू सव्वदरिसी' इतिसूत्र यथा ज्ञानप्राथम्यसूचकमुपन्यस्त तथा 'सव्वदरिसी सव्वन्नू' इत्येवं दर्शनप्राथम्यस्यसूचक कि न ? तूल्यन्यायत्वात्, नैव, 'सव्वाओ लद्धीओ सागारोवउत्तस्स उव्वजंति, णो अणगारोवउत्तस्स'-(सर्वा लब्धय साकारोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते नानाकारोपयुक्तस्य) इत्यागमादुत्पत्तिक्रमेण सर्वदा जिनाना प्रथमे समये ज्ञानं ततो द्वितीये दर्शनं भवतीति ज्ञापनार्थत्वादित्थमुपन्यासस्येति, छद्मस्थाना प्रथमे समये दर्शनं द्वितीये ज्ञानमिति प्रसगाद् बोध्यम्।

– जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वृत्ति, द्वितीय वक्षस्कार।

भगवान को केवल ज्ञान होने के बाद देवों ने उसका महोत्सव मनाया, उसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जण्णं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणे कसिणे जाव समुप्पन्ने तण्णं दिवसं भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं य देवीहि य उवयंतेहिं जाव उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

छाया– यद् दिवसं श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणः कृत्स्नः यावत् समुत्पन्नः तद् दिवसं भवनपतिवाणव्यन्तरज्योतिषिकविमानवासिदेवैश्च देवीभिश्च उत्पतद्भिः यावद् उत्पिंजलकभूतश्चापि अभवत्।

पदार्थ– **जण्णं दिवसं**-जिस दिन। **समणस्स**-श्रमण। **भगवओ**-भगवान। **महावीरस्स**-महावीर स्वामी को। **निव्वाणे**-निर्वाण-निर्मल। **कसिणे**-सम्पूर्ण। **जाव**-यावत् केवल ज्ञान-केवल दर्शन। **समुप्पन्ने**-उत्पन्न हुआ। **तण्णं दिवसं**-उसी दिन। **भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं**-भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवो। **य**-और। **देवीहि**-देवियों से। **य**-पुन । **उवयंतेहिं**-आकाश से देवो और देवियो के आने-जाने से। **जाव**-यावत्। **उप्पिजलगभूए यावि होत्था**-आकाश मे उद्योत और देवो से आकाश आकीर्ण हो गया था।

मूलार्थ—जिस दिन श्रमण भगवान महावीर स्वामी को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ उसी दिन भवनपति, वाण व्यन्तर-ज्योतिषी और वैमानिक देवों के आने से आकाश आकीर्ण हो रहा था और वहां का सारा आकाश प्रदेश जगमगा रहा था।

हिन्दी विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि जब भगवान को केवल ज्ञान, केवल दर्शन हुआ तो उनके द्वारा होने वाले अनन्त उपकार का स्मरण करके तथा उस पूर्ण आत्मा के चरणो मे अपनी श्रद्धा अर्पण करने के लिए भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव वहा आए और उन्होने कैवल्य महोत्सव मनाया।

अब भगवान द्वारा दी गई धर्मदेशना (उपदेश) का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नवरनाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख पुव्वं देवाणं धम्ममाइक्खइ, तओ पच्छा मणुस्साणं।

छाया– ततः श्रमणो भगवान् महावीरः उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधरः आत्मानं च लोकं च अभिसमीक्ष्य पूर्व देवानां धर्ममाख्याति ततः पश्चात् मनुष्याणाम्।

पदार्थ– **णं**-वाक्यालंकार में है। **तओ**-तदनन्तर। **उप्पन्नवरनाणदंसणधरे**-उत्पन्न प्रधान ज्ञान दर्शन के धारक। **समणे**-श्रमण। **भगवं**-भगवान। **महावीरे**-महावीर ने। **अप्पाणं च**-अपनी आत्मा को और। **लोगं च**-लोक को। **अभिसमिक्ख**-केवल ज्ञान द्वारा जान कर। **पुव्व देवाणं**-पहले देवों को। **तओ पच्छा**-तदनन्तर। **मणुस्साणं**-मनुष्यों को। **धम्ममाइक्खइ**-धर्म का उपदेश दिया।

मूलार्थ—**तदनन्तर उत्पन्न प्रधान ज्ञान और दर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने केवल ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा तथा लोक को भली-भांति देखकर पहले देवों को और पश्चात् मनुष्यों को धर्म का उपदेश दिया।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान ने अपनी सेवा मे उपस्थित चारो जाति के देवो को धर्मोपदेश दिया। उसके बाद उन्होने जनता (मनुष्यो) को धर्मोपदेश दिया। इससे दो बाते स्पष्ट होती हैं, एक तो यह कि महापुरुष अपने पास आने वाले देव, मानव आदि प्रत्येक व्यक्ति को धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग बताते हैं, उन्हे समस्त बन्धनो से मुक्त होने की राह बताते हैं। दूसरी बात यह है कि तीर्थंकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उपदेश देते हैं। वे जब सपूर्ण पदार्थो के यथार्थ स्वरूप को जानने-देखने लगते हैं, तभी वे प्रवचन करते हैं। जिससे उनके प्रवचन मे विरोध एव विपरीतता को अवकाश नहीं रहता और उसमे यथार्थता होने के कारण जनता के हृदय पर भी उसका असर होता है।

स्थानाग सूत्र मे बताया गया है कि भगवान के प्रथम प्रवचन मे केवल देव ही उपस्थित थे, उस समय कोई मानव वहा उपस्थित नहीं था। और देव त्याग, व्रत, नियम आदि को स्वीकार नहीं कर सकते। इस कारण भगवान का प्रथम प्रवचन व्रत स्वीकार करने की (आचार की) अपेक्षा से असफल रहा था। इसलिए इस घटना को आगम मे अन्य आश्चर्यकारी घटनाओ के साथ आश्चर्य जनक माना गया है[१]।

अब मानव को दिए गए धर्मोपदेश के सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्— तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे गोयमाईणं समणाणं पंच महव्वयाइं सभावणाइं छज्जीवनिकाया आतिक्खति भासइ परूवेइ, तं०-पुढविकाए जाव तसकाए।

छाया— ततः श्रमणो भगवान् महावीर. उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः गौतमादीनां श्रमणानां पंचमहाव्रतानि सभावनानि षड्जीवनिकायान् आख्याति भाषते प्ररूपयति तद्यथा पृथिवीकायः यावत् त्रसकायः।

पदार्थ— **णं**-वाक्यालकारार्थक है। **तओ**-तदनन्तर। **उप्पन्ननाणदसणधरे**-उत्पन्न हुए प्रधान ज्ञान और दर्शन को धरने वाले। **समणे**-श्रमण। **भगव**-भगवान। **महावीरे**-महावीर ने। **गोयमाईणं**-गौतमादि। **समणाण**-श्रमणो को। **सभावणाइ**-भावनाओ से युक्त। **पचमहव्वयाइं**-पाच महाव्रत और। **छज्जीवनिकाया**-षट् जीव निकाय का। **आतिक्खति**-सामान्य रूप से उपदेश दिया। **भासइ**-भगवान ने अर्द्धमागधी भाषा मे भाषण किया। **परूवेइ**-विस्तार से तत्वो का प्रतिपादन किया। **तंजहा**-जैसे कि। **पुढवीकाए**-पृथिवीकाय। **जाव**-यावत्। **तसकाए**-त्रसकाय।

१ स्थानाग सूत्र, स्थान १०।

***मूलार्थ*—तत् पश्चात् केवल ज्ञान और दर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर ने गौतमादि श्रमणो को भावना सहित पांच महाव्रतों और पृथ्वी आदि षट् जीव निकाय स्वरूप का सामान्य प्रकार से तथा विशेष प्रकार से अर्द्धमागधी भाषा में प्रतिपादन किया।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे भगवान द्वारा दिए गए उपदेश का वर्णन किया गया है। इसमे बताया गया है कि देवो को उपदेश देने के बाद भगवान ने गौतम आदि गणधरो, साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाओ के सामने ५ महाव्रत एव उसकी २५ भावनाओ तथा षट्जीवनिकाय आदि का उपदेश दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान को सर्वज्ञता प्राप्त होने के बाद इन्द्रभूति गौतम आदि विद्वान उनके पास आए और विचार-चर्चा करने के बाद भगवान के शिष्य बन गए। अत: उन्हे एव अन्य जिज्ञासु मनुष्यो को मोक्ष का यथार्थ मार्ग बताने के लिए सयम साधना के स्वरूप को बताना आवश्यक था। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध मे कहा गया है कि भगवान ऋषभदेव कहते हैं कि जैसे यह सयम साधना या मोक्ष मार्ग मेरे लिए हितप्रद, सुखप्रद, एव सर्व दुखो का नाशक है, उसी तरह जगत के समस्त प्राणियो के लिए भी अनन्त सुख-शान्ति का द्वार खोलने वाला है[१]। अत सभी तीर्थंकर जगत के सभी प्राणियो की रक्षा रूप दया के लिए उपदेश देते हैं[२]। उनका यही उद्देश्य रहता है सभी प्राणी साधना के यथार्थ स्वरूप को समझकर उस पर चलने का प्रयत्न करे।

इसी दृष्टि से भगवान महावीर गौतम आदि सभी साधु-साध्वियो एव अन्य मनुष्यो के सामने उपदेश देते हैं और साधना के प्रशस्त पथ का-जिस पर चलकर आत्मा अनन्त शान्ति को पा सके, प्रसार एव प्रचार करने के लिए चार तीर्थ-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की स्थापना करते हैं। प्रत्येक तीर्थकर सर्वज्ञ बनने के बाद तीर्थ की स्थापना करते हैं, इसे सघ भी कहते हैं। जिसके द्वारा विश्व मे धर्म का, अहिसा का और शान्ति का प्रचार किया जा सके।

इस तरह साधना के मार्ग का यथार्थ रूप बताते हुए भगवान महावीर प्रथम महाव्रत के सम्बन्ध मे कहते हैं–

---

१ तस्स ण भगवतस्स एतेण विहारेण विहारमाणस्स एगे वाससहस्से वीइक्कते समाणे पुरिमतालस्स नगरस्स बहिया सगडमुहसि उज्जाणसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे ज्झाणतरियाए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमयसि अट्ठमेण भत्तेण अपाणएण उत्तरासाढानक्खत्तेण जोगमुवागएण अणुत्तरेण नाणेण जाव चरित्तेण अणुत्तरेण तवेण बलेण वीरिएण आलएण विहारेण भावणाए खतीए मुत्तीए गुत्तीए तुट्ठीए अज्जवेण मद्दवेण लाघवेण सुचरिअसोवचिअफलनिव्वाणमग्गेण अप्पाण भावेमाणस्स अणते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदसणे समुप्पन्ने, जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी सणेरइअतिरिअनरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ तजहा-आगइ गइ ठिइ उववाय भूत कड पडिसेविय आवीकम्मं रहोकम्म त त काल मणवयकाये जोगे एवमादी जीवाणवि सव्वभावे अजीवाणवि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसि च जीवाण हियसुहणिस्सेसकरे सव्वदुक्खविमोक्खणे परमसुहसमाणए भविस्सइ। तते ण से भगव समणाण निग्गथाण य णिग्गथीण य पच महव्वयाइ सभावणाइ छज्जीवनिकाए धम्म देसमाणो विहरति, तजहा पुढविकाइए भावणागमेण पच महव्वयाइ सभावणगाइ भाणिअव्वाइति।

– जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र

२ सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय।

– प्रश्नव्याकरण सूत्र, सवरद्वार।

मूलम्– पढमं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं पाणाइवायं से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणाइवायं करिज्जा ३ जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

छाया– प्रथमं भदन्त ! महव्रतं प्रत्याख्यामि सर्व प्राणातिपात तत् सूक्ष्मं वा बादरं वा त्रसं वा स्थावरं वा नैव स्वयं प्राणातिपातं कुर्यात्-करोमि ३ यावज्जीवं त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वचसा कायेन तस्य भदन्त! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि।

पदार्थ– **भंते**-हे भगवन्। **पढमं**-मैं प्रथम। **महव्वयं**-महाव्रत को। **पच्चक्खामि**-ज्ञ प्रज्ञा से प्राणातिपात को अनिष्ट जानकर प्रत्याख्यान प्रज्ञा से उस का प्रत्याख्यान करता हू। **सव्वं**-सर्व प्रकार के। **पाणाइवायं**-प्राणातिपात का त्याग करता हू। **से**-वह। **सुहुम वा**-सूक्ष्म जीव अथवा। **बायरं वा**-बादर-स्थूल जीव। **तसं वा**-त्रस या। **थावरं वा**-स्थावर जीव। **वा**-समुच्चयार्थ मे है। **एव**-निश्चय ही। **सयं**-स्वय-अपने आप। **पाणाइवायं**-प्राणातिपात-प्राणियो का वध। **न करिज्जा ३**-नहीं करुंगा, न अन्य से वध कराऊगा। वध करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूगा। **जावज्जीवाए**-जीवन पर्यन्त। **तिविहं**-तिन करण। **तिविहेणं**-तीन योग जैसे कि। **मणसा**-मन से। **वयसा**-वचन से। **कायसा**-काया से। **भन्ते**-हे भगवन्! **तस्स**-उस पाप से। **पडिक्कमामि**-निवृति करता हूं। पीछे हटता हूं। **निंदामि**-आत्मा की साक्षी से उसकी निन्दा करता हू। **गरिहामि**-गुरु की साक्षी से गर्हणा करता हू। **अप्पाणं**-अपनी आत्मा को पाप से। **वोसिरामि**-पृथक् करता हू।

_मूलार्थ_—हे भगवन् मै प्रथम महाव्रत मे प्राणातिपात से सर्वथा निवृत होता हूँ, मै सूक्ष्म, बादर, त्रस-स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात-हनन-करूंगा, न दूसरो से कराऊंगा और न उनका हनन करने वालो की अनुमोदना करूगा। हे भगवन् ! मैं यावज्जीव अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिए तीन करण और तीन योग से–मन से, वचन से और काया से इस पाप से प्रतिक्रमण करता हूँ, पीछे हटता हूँ, आत्म साक्षी से इस पाप की निन्दा करता हूँ और गुरू साक्षी से गर्हणा करता हूँ। तथा अपनी आत्मा को हिंसा के पाप से पृथक् करता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम महाव्रत का वर्णन किया गया है। इस महाव्रत को स्वीकार करते समय साधक गुरु के सामने हिसा से सर्वथा निवृत्त होने की प्रतिज्ञा करता है। वह जीवन पर्यन्त के लिए सूक्ष्म या बादर (स्थूल), त्रस या स्थावर किसी भी प्राणी की मन, वचन और काया से किसी भी तरह की हिसा नहीं करता, न अन्य प्राणी से हिसा करवाता है और न हिसा करने वाले प्राणी का अनुमोदन– समर्थन ही करता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'प्राणातिपात' का अर्थ है, प्राणों का नाश करना। क्योंकि, प्रत्येक प्राणी मे स्थित आत्मा का अस्तित्व सदा काल बना रहता है। अत: प्राणी की हिसा का अर्थ है, उसके प्राणो का नाश कर देना। और प्राणों की अपेक्षा से ही ससारी जीव को प्राणी कहा जाता है। क्योंकि, वह प्राणो को

धारण किए हुए है।

महाव्रतो का निर्दोष परिपालन करने के लिए उनकी भावनाओ का आचरण करना आवश्यक है। इसलिए प्रथम महाव्रत की भावनाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति, तत्थिमा पढमा भावणा इरियासमिए से निग्गंथे नो अणइरियासमिएत्ति, केवली बूया॰ अणइरियासमिए से निग्गंथे पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणिज्ज वा वत्तिज्ज वा परियाविज्ज वा लेसिज्ज वा उद्दविज्ज वा, इरियासमिए से निग्गंथे नो अणइरियासमिइत्ति पढमा भावणा ॥१ ॥

छाया– तस्य इमा. पञ्च भावना भवन्ति, तत्र इयं प्रथमा भावना-ईर्यासमितः स निर्ग्रन्थः नो अनीर्यासमित. इति केवली ब्रूयात् आदानमेतत् अनीर्यासमितः सः निर्ग्रन्थः प्राणिनः भूतानि, जीवान् सत्त्वानि अभिहन्याद् वा वर्तयेद् वा परितापयेत् वा श्लेषयेत् वा अपद्रापयेद् वा, ईर्यासमितः सः निर्ग्रन्थः नो अनीर्यासमितः इति प्रथमा भावना।

पदार्थ– **तस्स**-उस प्रथम महाव्रत की। **इमा**-ये-आगे कही जाने वाली। **पंच**-पाच। **भावणाओ**-भावानाएं। **भवंति**-होती है। **तत्थिमा**-उन पाचो मे से यह-जो कि आगे। कही जाती हैं। **पढमा**-प्रथम। **भावणा**-भावना है। **इरियासमिए**-ईर्यासमिति से युक्त। **से**-वह। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ। **नो अणइरियासमिएत्ति**-ईर्यासमिति से रहित साधु नहीं कहा जाता, इस प्रकार से। **केवली बूया॰**-केवली भगवान कहते हैं और यह कर्म आने का कारण है क्योंकि। **अणइरियासमिए**-ईर्या समिति से रहित। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ-साधु। **पाणाइं**-प्राणियो को। **भूयाइं**-भूतों को । **जीवाइं**-जीवो को। **सत्ताइ**-सत्त्वो को। **अभिहणिज्ज वा**-अभिहनन करता है। **वत्तिज्ज वा**-एकत्रित करता है तथा। **परियाविज्ज वा**-परितापना देता है। **लेसिज्ज वा**-भूमि से संश्लिष्ट करता है। **उद्दविज्ज वा**-जीवन से रहित करता है, अत वह निर्ग्रन्थ नहीं, परन्तु। **इरियासमिए**-ईर्या समिति से युक्त साधु। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ होता है अर्थात् वह किसी जीव की हिंसा नहीं करता है। **नो अणइरियासमिइत्ति**-वह ईर्या समिति से रहित नहीं होता है इस प्रकार। **पढमा भावणा**-यह प्रथम भावना है।

_मूलार्थ_—प्रथम महाव्रत की ५ भावनाएं होती हैं। उनमें से पहली भावना यह है-निर्ग्रन्थ ईर्या समिति से युक्त होता है, न कि उससे रहित। भगवान कहते हैं कि ईर्या समिति का अभाव कर्म आने का द्वार है। क्योंकि इससे रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्व की हिंसा करता है उन्हें एक स्थान से स्थानान्तर में रखता है, परिताप देता है, भूमि से संश्लिष्ट करता है और जीवन से रहित करता है । इसलिए निर्ग्रन्थ को ईर्या समिति युक्त होकर संयम का आराधन करना चाहिए, यह प्रथम भावना है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र में पहले महाव्रत की प्रथम भावना का उल्लेख किया गया है। भावना साधु की साधना को शुद्ध रखने के लिए होती है। प्रथम महाव्रत की प्रथम भावना ईर्यासमिति से

सबद्ध है। इस मे बताया गया है कि साधु को विवेक एव यतना पूर्वक चलना चाहिए। यदि वह विवेक पूर्वक ईर्या समिति का पालन करते हुए चलता है, तो पाप कर्म का बन्ध नहीं करता है[१]। और इसके अभाव मे यदि अविवेक से गति करता है तो पाप कर्म का बन्ध करता है। अत· साधक को ईर्यासमिति के परिपालन मे सदा सावधान रहना चाहिए। इससे वह प्रथम महाव्रत का सम्यक्तया परिपालन कर सकता है। ईर्या समिति गति से सबद्ध है[२]। अत: चलने-फिरने मे विवेक एव यत्ना रखना साधु के लिए आवश्यक है।

अब सूत्रकार द्वितीय भावना के सम्बन्ध मे कहते हैं-

मूलम्– अहावरा दुच्चा भावणा–मणं परियाणइ से निग्गंथे, जे य मणे पावए सावज्जे सकिरिए अण्हयकरे छेयकरे भेयकरे अहिगरणिए पाउसिए पारियाविए पाणाइवाइए भूओवघाइए, तहप्पगारं मणं नो पधारिज्जा गमणाए, मणं परियाणइ से निग्गन्थे, जे य मणे अपावएत्ति दुच्चा भावणा ॥२॥

छाया– अथापरा द्वितीया भावना मन. परिजानाति स: निर्ग्रन्थ: यच्च मन. पापक सावद्यं सक्रियं आश्रवकरं छेदकरं भेदकर आधिकरणिक प्राद्वेषिकं पारितापिक प्राणातिपातक भूतोपघातिकं तथाप्रकारं मन. नो प्रधारयेत् गमनाय मन. परिजानाति स निर्ग्रन्थ· यच्च मन· अपापकम् इति द्वितीया भावना।

पदार्थ– **अहावरा**-अब इससे भिन्न। **दुच्चा भावणा**-दूसरी भावना को कहते है। **मण परियाणइ**-जो पाप मयी विचारणा से मन को हटाए। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **य**-पुन । **जे**-जो। **मणे**-मन। **पावए**-पापयुक्त। **सावज्जे**-सावद्य-पापरूप। **सकिरिए**-क्रियायुक्त। **अण्हयकरे**-आश्रव के करने वाला। **छेयकरे**-प्राणियो के छेदन करने वाला। **भेयकरे**-भेदन करने वाला। **अहिगरणिए**-कलह करने वाला। **पाउसिए**-द्वेष करने वाला। **परियाविए**-परिताप का देने वाला। **पाणाइवाइए**-प्राणातिपात के करने वाला। **भूओवघाइए**-भूतो का उपघात करने वाला है तो साधु। **तहप्पगार**-तथाप्रकार के। **मण**-मन को। **नो पधारिज्जा**-धारण न करे। **मण परिजाणइ**-जो मन को हिंसा से हटाता है। **य**-पुन । **जे**-जिसका। **मणे**-मन। **अपावएत्ति**-पाप से रहित है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **दुच्चा भावणा**-यह दूसरी भावना है।

_मूलार्थ_—अब दूसरी भावना को कहते हैं-जो मन को पापो से हटाता है वह निर्ग्रन्थ है। साधु ऐसे मन (विचारो) को धारण न करे, पापकारी, सावद्यकारी, क्रिया युक्त, आश्रव करने वाला, छेदन तथा भेदन करने वाला, कलहकारी, द्वेषकारी, परितापकारी, प्राणों का अतिपात

---

१ जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए। जय भुञ्जन्तो भासन्तो पावकम्म न बधइ॥

– दशवैकालिक सूत्र, ४, ८।

२ ईरण-गमन ईर्या तस्या समितो-दत्तावधान पुरतो-युगमात्रभूभागन्यस्तदृष्टिगामीत्यर्थ ॥

– आचाराग वृत्ति।

करने वाला और जीवों का उपघातक है। जो अपने मन को पाप से हटाता है वह निर्ग्रन्थ है, यह दूसरी भावना है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे मन शुद्धि का वर्णन किया गया है। पहले महाव्रत को निर्दोष एव शुद्ध बनाए रखने के लिए मन को शुद्ध रखना आवश्यक है। मन के बुरे सकल्प-विकल्पो से हिसा को प्रोत्साहन मिलता है और उसके कारण साधु की प्रवृत्ति मे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। क्योकि कर्म बन्ध का मुख्य आधार मन (परिणाम) है, क्रिया से कर्म वर्गणा के पुद्‌गल आते हैं, परन्तु उनका बन्ध परिणामो की शुद्धता एव अशुद्धता या तीव्रता एव मन्दता पर आधारित है[१]। अन्य दार्शनिको एव विचारको ने भी मन को बन्धन एव मुक्ति का कारण माना है[२]। बुरे मन से आत्मा पाप कर्मों का सग्रह करके ससार मे परिभ्रमण करता है और शुभ सकल्प एव मानसिक चिन्तन मनन से अशुभ कर्म बन्धनो को तोड कर आत्मा मुक्ति की ओर बढता है। अस्तु, साधक को सदा मानसिक सकल्प एव चिन्तन को शुद्ध बनाए रखना चाहिए। क्योकि, वाचिक एव कायिक प्रवृत्ति को विशुद्ध बनाए रखने के लिए मन के चिन्तन को विशेष शुद्ध बनाए रखना आवश्यक है। मानसिक चिन्तन जितना अधिक शुद्ध होगा, प्रवृति उतनी ही अधिक निर्दोष होगी।

अत मानसिक चिन्तन की शुद्धता के बाद वचन शुद्धि का उल्लेख करते हुए सूत्रकार तीसरी भावना के सम्बन्ध मे कहते हैं–

मूलम्– अहावरा तच्चा भावणा-वइं परिजाणइ से निग्गंथे जा य वई पाविया सावज्जा सकिरिया जाव भूओवघाइया तहप्पगारं वइं नो उच्चारिज्जा, जे वइं परिजाणइ से निग्गंथे, जा य वई अपावियति तच्चा भावणा॥३॥

छाया– अथापरा तृतीया भावना वाच परिजानाति स. निर्ग्रन्थः या च वाक् पापिका सावद्या सक्रिया यावत् भूतोपघातिका तथाप्रकारां वाचं नो उच्चारयेत् यो वाच परिजानाति स निर्ग्रन्थ· या च वाक् अपापिकेति तृतीया भावना।

पदार्थ– **अहावरा**-अब दूसरी के बाद। **तच्चा**-तीसरी। **भावणा**-भावना को कहते है। **वइं परिजाणइ**-पापमय वचन को जो छोड़ता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **जा य**-और जो। **वई**-वाणी। **पाविया**-पाप युक्त है। **सावज्जा**-सावद्य है। **सकिरिया**-क्रिया युक्त। **जाव**-यावत्। **भूओवघाइया**-भूतो-जीवो का उपघात करने वाली है। **तहप्पगार**-तथाप्रकार की। **वइ**-वाणी-वचन का। **नो उच्चारिज्जा**-उच्चारण न करे। **जे**-जो। **वइं परिजाणइ**-सदोष वाणी वचन को 'ज्ञ' प्रज्ञा से जान कर और 'प्रत्याख्यान' प्रज्ञा से त्याग करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **जाव**-यावत्। **वई**-साधु की वाणी। **अपावियत्ति**-पाप से रहित हो इस प्रकार यह। **तच्चा भावणा**-तीसरी भावना है।

---

१ परिणामे बन्धो।

२ मन एव कारणं बन्ध-मोक्षयो ।

मूलार्थ—**अब तीसरी भावना का स्वरूप कहते हैं-जो साधक सदोष वाणी-वचन को छोड़ता है, वह निर्ग्रन्थ है। जो वचन पापमय, सावद्य और सक्रिय यावत् भूतों-जीवों का उपघातक, विनाशक हो, साधु उस वचन का उच्चारण न करे। जो वाणी के दोषों को जानकर उन्हें छोड़ता है और पाप रहित निर्दोष वचन का उच्चारण करता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। यह तीसरी भावना है।**

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वाणी की निर्दोषता का वर्णन किया गया है। इसमे स्पष्ट कर दिया गया है कि सावद्य, सदोष एव पापकारी भाषा का प्रयोग करने वाला व्यक्ति निर्ग्रन्थ नहीं हो सकता। क्योकि सदोष एव पापयुक्त भाषा से जीव हिसा को प्रोत्साहन मिलता है। अत: साधु को अपने वचन का प्रयोग करते समय भाषा की निर्दोषता पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। उसे कर्कश, कठोर, व्यक्ति-व्यक्ति मे छेद-भेद एव फूट डालने वाले, हास्यकारी, निश्चयकारी, अन्य प्राणियो के मन मे कष्ट, वेदना एव पीडा देने वाली, सावद्य एव पापमय भाषा का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रथम महाव्रत की शुद्धि के लिए भाषा की शुद्धता एव निर्दोषता का परिपालन करना आवश्यक है।

अब चौथी भावना का विश्लेषण करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– अहावरा चउत्था भावणा-आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए से निग्गंथे, नो आणायाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, केवली बूया० आयाणभंडमत्तनिक्खेवणाअसमिए से निग्गंथे, पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा, तम्हा आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए से निग्गंथे नो आयाणभंडमत्तनिक्खेवणाअसमिए्त्ति चउत्था भावणा।४।

छाया– अथापरा चतुर्थी भावना-आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमित: स निर्ग्रन्थ: नो अनादानभांडमात्रनिक्षेपणाऽसमित केवली ब्रूयात् आदानमेतत् आदानभांडमात्र-निक्षेपणाअसमित: स निर्ग्रन्थ: प्राणिन: भूतानि, जीवान् सत्त्वानि अभिहन्याद् वा यावत् अपद्रापयेद् वा तस्मात् आदानभांडमात्रनिक्षेपणासमित: स निर्ग्रन्थ: नो आदानभाण्डमात्र-निक्षेपणाअसमित: इति चतुर्थी भावना।

पदार्थ— **अहावरा**-तीसरी भवना से आगे अब। **चउत्था भावणा**-चौथी भावना को कहते हैं यथा। **आयाणभंडमत्तनिक्खेवणा समिए**-भण्डोपकरण समिति से युक्त है अर्थात् यतना पूर्वक वस्त्र-पात्रादि उपकरणों को ग्रहण करता है तथा यतना पूर्वक उन्हें उठाता एवं रखता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो आणायाणभडमत्तनिक्खेवणाअसमिए**-साधु आदान भाण्डमात्र निक्षेपण असमिति वाला न हो क्योंकि। **केवली**-केवली भगवान। **बूया**-कहते है कि यह कर्म बन्धन का कारण है अत जो साधु। **आयाणभंडमत्तनिक्खेवणाअसमिए**-भाण्डोपकरण लेता हुआ और रखता हुआ समिति से रहित होता है। **से निग्गंथे**-वह साधु। **पाणाइ**-प्राणी। **भूयाइं**-भूत। **जीवाइं**-जीव और। **सत्ताइं**-सत्वो को। **अभिहणिज्ज वा**-अभिहनन करता है। **जाव**-यावत्। **उद्दविज्ज वा**-प्राणो से पृथक करता है। **तम्हा**-इस लिए।

आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए-जो आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति से युक्त है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ साधु है। **नो आयाणभंडमत्तनिक्खेवणाअसमिएत्ति**-अत साधु आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा असमिति से युक्त न हो अर्थात् समिति से युक्त हो यह। **चउत्थी भावणा**-चौथी भावना कही गई है।

***मूलार्थ*—अब चतुर्थ भावना को कहते हैं-जो आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति से युक्त होता है वह निर्ग्रन्थ है। अतः साधु आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति से रहित न हो, क्योंकि केवली भगवान कहते हैं कि जो इससे रहित होता है, वह निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव, और सत्वों का हिंसक होता है यावत् उनको प्राणों से रहित करने वाला होता है। अतः जो साधु इस समिति से युक्त है वह निर्ग्रन्थ है। यह चौथी भावना है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र में शारीरिक क्रिया की शुद्धि का उल्लेख किया गया है। साधु को मन, वचन की शुद्धि के साथ शारीरिक प्रवृत्ति को भी सदा शुद्ध रखना चाहिए। उसे अपनी साधना मे आवश्यक भडोपकरण आदि ग्रहण करना पडे या कहीं रखने एव उठाने की आवश्यकता पडे तो उसे यह कार्य विवेक एव यतना पूर्वक करना चाहिए। अयतना से कार्य करने वाला साधु प्रथम महाव्रत को शुद्ध नहीं रख सकता और वह पाप कर्म का बन्ध करता है। क्योकि अविवेक से जीवो की हिसा का होना सभव है और जीव हिसा पाप बन्धन का कारण है तथा इससे प्रथम महाव्रत का भी खडन होता है। अतः साधु को प्रत्येक उपकरण विवेक से उठाना एव रखना चाहिए।

अब पाचवी भावना का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– अहावरा पंचमा भावणा– आलोइयपाणभोयणभोई से निग्गंथे नो अणालोइयपाणभोयणभोई, केवली बूया०–अणालोइयपाणभोयणभोई से निग्गंथे पाणाणि वा ४ अभिहणिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा, तम्हा आलोइयपाणभोयणभोई से निग्गंथे, नो अणालोइयपाणभोयणभोईति पंचमा भावणा ॥५ ॥

छाया– अथापरा पंचमी भावना आलोकितपानभोजनभोजी सः निर्ग्रन्थः नो अनालोकितपानभोजनभोजी, केवली ब्रूयात् आदानमेतत् अनालोकितपानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः प्राणिनः वा ४ अभिहन्याद् वा यावत् अपद्रापयेद् वा तस्मात् आलोकितपानभोजनभोजी सः निर्ग्रन्थः नो अनालोकितपानभोजनभोजी इति पंचमी भावना।

पदार्थ– **अहावरा पंचमा भावणा**-अब पांचवीं भावना को कहते हैं। **आलोइयपाणभोयणभोई**-जो विवेक पूर्वक देखकर आहार-पानी करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो अणालोइयपाणभोयणभोई**-और बिना देखे आहार-पानी करने वाला निर्ग्रन्थ नहीं है क्योंकि। **केवली बूया०**-केवली भगवान कहते हैं कि यह कर्म बन्ध का हेतु है। **अणालोइयपाणभोयणभोई**-जो बिना देखे आहार-पानी करता है। **से**-वह। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ। **पाणाणि वा ४**-प्राणि, भूत, जीव और सत्वों का। **अभिहणिज्ज वा**-अभिहनन करने। **जाव**-यावत्।

उद्दविज्ज वा-प्राणो से रहित करने वाला होता है। तम्हा-इसलिए। आलोइयपाणभोयणभोई-जो देखकर आहार-पानी करता है। से-वह। निग्गथे-निर्ग्रन्थ है। नो अणालोइयपाणभोयणभोईति-न कि बिना देखे आहार, पानी करने वाला, इस प्रकार। पंचमा भावणा-यह पाचवीं भावना है।

***मूलार्थ*—अब चौथी के बाद पांचवीं भावना को कहते हैं-जो विवेक पूर्वक देख कर आहार-पानी करता है वह निर्ग्रन्थ है और जो बिना देखे आहार-पानी करता है, वह निर्ग्रन्थ प्राणी आदि जीवों की हिंसा करता है, उन्हे प्राणो से पृथक् करता है। इसलिए देखकर आहार-पानी करने वाला ही निर्ग्रन्थ होता है। यह पांचवीं भावना है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि साधु को बिना देखे खाने-पीने के पदार्थो का उपयोग नहीं करना चाहिए। आहार को जाने के पूर्व मुनि को अपने पात्र भी भली-भाति देख लेने चाहिए और उसके बाद प्रत्येक खाद्य एव पेय पदार्थ सम्यक्तया देख कर ही ग्रहण करना चाहिए और उन्हे देख कर ही खाना-पीना चाहिए। बिना देखे पदार्थ लेने एव खाने से जीवो की हिसा होने एव रोग आदि उत्पन्न होने की सभावना है। अत साधु को इस मे पूरा विवेक रखना चाहिए। ये पाचो भावनाए प्रथम महाव्रत को शुद्ध एव निर्दोष रखने के लिए आवश्यक हैं। इनके सम्यक् आराधन से साधक अपनी साधना मे तेजस्विता ला सकता है।

प्रथम महाव्रत का उपसहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– एतावता महव्वए सम्मं काएण फासिए पालिए तीरिए किट्टिए अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवइ, पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं॥

छाया– एतावता महाव्रतं सम्यक् कायेन स्पर्शितं पालितं तीर्णं कीर्तितम् अवस्थितं आज्ञया आराधितं चापि भवति, प्रथमे भदन्त ! महाव्रते प्राणातिपाताद् विरमणम्।

पदार्थ– **एतावता**-इस प्रकार। **महव्वए**-प्रथम महाव्रत को। **सम्म**-सम्यक्तया। **कायेण**-काया से। **फासिए**-स्पर्शित किया। **पालिए**-पालन किया। **तीरिए**-पार पहुचाया। **किट्टिए**-कीर्तन किया। **अवट्ठिए**-अवस्थित रखा जाता है और। **आणाए**-उसका आज्ञा पूर्वक। **आराहिए**-आराधन किया। **यावि भवइ**-जाता है। च, पुन और अपि-समुच्चय अर्थ मे जानना। **भते**-हे भगवन्। **पढमे महव्वए**-मै प्रथम महाव्रत मे। **पाणाइवायाओ**-प्राणातिपात से। **वेरमण**-निवृत होता हू अर्थात् प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरमण रूप है।

***मूलार्थ*—साधक द्वारा स्वीकृत प्राणातिपात (हिंसा) के त्याग रूप प्रथम महाव्रत को इस प्रकार काया से स्पर्शित करके उसका पालन किया जाता है, उसे तीर पर पहुंचाया जाता है, उसका कीर्तन किया जाता है, उसे अवस्थित रखा जाता है और उसका आज्ञा के अनुरूप आराधन किया जाता है। इस प्रकार प्रथम महाव्रत में साधु प्राणातिपात से निवृत्त होता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यह अभिव्यक्त किया गया है कि प्रत्येक साधना का महत्त्व उसका परिपालन करने मे है। प्रथम महाव्रत का सम्यक्तया आचरण करने से ही आत्मा का विकास हो

सकता है। जब तक वह जीवन मे साकार रूप ग्रहण नहीं करता तब तक साधक की साधना मे तेजस्विता नहीं आ सकती। इसलिए साधक को चाहिए कि वह आगम मे दिए गए आदेश के अनुसार प्रथम महाव्रत को आचरण मे उतारकर जीवन पर्यन्त उसका परिपालन करे, उसका सम्यक्तया आराधन करे।

अब द्वितीय महाव्रत का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– अहावरं दुच्चं महव्वयं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं वइदोसं, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं भासिज्जा, नेवन्नेणं मुसं भासाविज्जा, अन्नंपि मुसं भासंतं न समणुजाणिज्जा तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा, तस्स भंते ! पडिक्कमामि जाव वोसिरामि॥

छाया– अथापरं द्वितीय महाव्रत प्रत्याख्यामि सर्वं मृषावादं वाग्दोषं सः क्रोधाद् वा लोभाद् वा भयाद् वा हासाद् वा नैव स्वय मृषा भाषेत, नैवान्येन मृषा भाषयेत् , अन्यमपि मृषा भाषमाण न समनुजानीयात् त्रिविध त्रिविधेन मनसा वचसा कायेन तस्य भदन्त! प्रतिक्रमामि यावत् व्युत्सृजामि।

पदार्थ– **अहावर**-अब अन्य। **दुच्चं**-दूसरे। **महव्वयं**-महाव्रत को कहते है। **सव्वं मुसावाय**-सर्व प्रकार के मृषावाद। **वइदोस**-वाणी-वचन के दोषो का। **पच्चक्खामि**-प्रत्याख्यान करता हू अर्थात् ज्ञ प्रज्ञा से उन्हे जानकर प्रत्याख्यान प्रज्ञा से उनका प्रत्याख्यान करता हू-त्याग करता हू। **से**-वह साधु। **कोहा वा**-क्रोध से। **लोहा वा**-लोभ से। **भया वा**-भय से। **हासा वा**-हास्य से। **एव**-निश्चयार्थक है। **सय**-स्वय अपने आप। **मुसं**-मृषा-झूठ। **न भासिज्जा**-न बोले। **अन्नेणं**-दूसरो से। **मुसं**-मृषा-झूठ। **न भासाविज्जा**-न बुलावे तथा। **मुसं**-मृषा। **भासत**-भाषण करते हुए। **अन्नंपि**-अन्य व्यक्ति का। **न समणुजाणिज्जा**-अनुमोदन भी न करे। **तिविहं**-तीन करण और। **तिविहेण**-तीन योग से। **मणसा**-मन से। **वयसा**-वचन से। **कायसा**-काया से। **भंते**-हे भगवन् मैं। **तस्स**-उस मृषा वाद रूपी पाप से। **पडिक्कमामि**-पीछे हटता हू। **जाव**-यावत् आत्म साक्षी से उसकी निन्दा और गुरुसाक्षी से गर्हणा करता हुआ। **वोसिरामि**-मृषावाद से अपने आत्मा को पृथक् करता हू।

_मूलार्थ_—इस द्वितीय महाव्रत मे साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि भगवन्! मैं आज से मृषावाद और सदोष वचन का सर्वथा परित्याग करता हूं। अत· साधु क्रोध से, लोभ से, भय से, और हास्य से न स्वय झूठ बोलता है न अन्य व्यक्ति को असत्य बोलने की प्रेरणा देता है और न मृषा भाषण करने वालो का अनुमोदन करता है। इस तरह साधक तीन करण एवं तीन योग से मृषावाद का त्याग करके यह प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं मृषावाद से पीछे हटता हू, आत्म साक्षी से उसकी निन्दा करता हूं और गुरु साक्षी से उसकी गर्हणा करता हूं और अपनी आत्मा को मृषावाद से सर्वथा पृथक् करता हूं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे दूसरे महाव्रत का वर्णन किया गया है। असत्य आत्मा के लिए पतन का कारण है। उससे आत्मा मे अनेक दोष आते हैं और पाप कर्म का बन्ध होता है। इसलिए साधक

उसका सर्वथा त्याग करता है और उसके साथ उसके कारणो का भी त्याग करता है। इसमें बताया गया है कि व्यक्ति क्रोध, मान, माया और लोभ के वश होकर झूठ बोलता है। अत: साधक को इन कषायो का त्याग कर देना चाहिए। और यदि कर्मोदय से कभी कषाय का उदय हो रहा हो तो मौन ग्रहण करके पहले कषाय को उपशान्त करना चाहिए, उसके बाद भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि जो साधक असत्य भाषा का सर्वथा त्याग नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ नहीं कहला सकता। वस्तुत: असत्य से पूर्णत. निवृत्त साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है।

उक्त महाव्रत की भावनाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति। तत्थिमा पढमा भावणा- अणुवीइभासी से निग्गंथे, नो अणणुवीइभासी, केवली बूया॰-अणणुवीइभासी से निग्गंथे समावइज्ज मोसं वयणाए, अणुवीइभासी से निग्गंथे नो अणणुवीइभासित्ति पढमा भावणा॥१॥

अहावरा दुच्चा भावणा-कोहं परियाणइ से निग्गंथे, न य कोहणे सिया, केवली बूया-कोहपत्ते कोहत्तं समावइज्जा मोसं वयणाए, कोहं परियाणइ से निग्गंथे, न य कोहणे सियत्ति दुच्चा भावणा॥२॥

अहावरा तच्चा भावणा-लोभं परियाणइ से निग्गंथे, नो अ लोभणए सिया, केवली बूया॰-लोभपत्ते लोभी समावइज्जा मोसं वयणाए, लोभं परियाणइ से निग्गंथे, नो य लोभणए सियत्ति तच्चा भावणा॥३॥

अहावरा चउत्था भावणा-भयं परिजाणइ से निग्गंथे, नो भयभीरुए सिया, केवली बूया॰-भयपत्ते भीरू समावइज्जा मोसं वयणाए, भयं परिजाणइ से निग्गंथे, नो भयभीरुए सिया, चउत्था भावणा॥४॥

अहावरा पंचमा भावणा-हासं परियाणइ से निग्गंथे, नो य हासणए सिया, केव॰ हासपत्ते हासी समावइज्जा मोसं वयणाए, हासं परिजाणइ से निग्गंथे, नो हासणए सियत्ति पंचमी भावणा॥५॥

छाया– तस्येमा: पंच भावना भवन्ति–

तत्र इयं प्रथमा भावना-अनुविचिंत्यभाषी स निर्ग्रन्थ: नो अननुविचिन्त्य भाषी, केवली ब्रूयात् आदानमेतत् अननुविचिंत्यभाषी स निर्ग्रन्थ: समापद्येत मृषावचनं, अनुविचिन्त्यभाषी स निर्ग्रन्थ: नो अननुविचिन्त्यभाषीति प्रथमा भावना।

अथापरा द्वितीया भावना-क्रोधं परिजानाति स निर्ग्रन्थ:, न च क्रोधन: स्यात्,

केवली ब्रूयात्आदानमेतत् , क्रोधप्राप्तः क्रोधत्वं समावदेत् मृषावचनं, क्रोधं परिजानाति स निर्ग्रन्थः, न च क्रोधनः स्यात् इति द्वितीया भावना।

अथापरा तृतीया भावना-लोभं परिजानाति स निर्ग्रन्थः, न च लोभनः स्यात्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत् , लोभप्राप्तः लोभी समावदेत् मृषावचनं, लोभं परिजानाति स निर्ग्रन्थः, न च लोभनः स्यात् इति तृतीया भावना।

अथापरा चतुर्थी भावना-भयं परिजानाति सः निर्ग्रन्थः, नो भयभीरुकः स्यात्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत्, भयप्राप्तः भीरुः समावदेत् मृषावचनम्, भयं परिजानाति सः निर्ग्रन्थः, नो भयभीरुकः स्यात् चतुर्थी भावना।

अथापरा पंचमी भावना-हासं परिजानाति स निर्ग्रन्थः, न च हसनकः स्यात्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत् , हासं प्राप्त. हासी समावदेत् मृषावचनं, हास परिजानाति स निर्ग्रन्थः, नो हसनकः स्यादिति पंचमी भावना।

पदार्थ– तस्स-उस द्वितीय महाव्रत की। इमा-ये आगे कही जाने वाली। पंच भावणाओ-पाच भावनाएं। भवन्ति-होती हैं। तत्थिमा-उन पाच भावनाओ मे से यह। पढमा भावणा-पहली भावना है। अणुवीइभासी-जो विचार कर भाषण करता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ है। नो अणणुवीइभासी-जो बिना विचारे भाषण करता है। केवली बूया॰-केवली भगवान कहते हैं कि यह कर्म बन्धन का हेतु है। अणणुवीइभासी-बिना विचार किए बोलने वाला। से-वह। निग्गंथे-निर्ग्रन्थ-साधु। मोस-मृषावाद। वयणाए-वचन को। समावइज्ज-प्राप्त होता है, अत । अणुवीइभासी-जो विचार पूर्वक बोलता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ है। नो अणणुवीइभासित्ति-न कि जो बिना विचारे बोलता है। पढमा भावणा-यह प्रथम भावना है।

अहावरा-अब अन्य। दुच्चा भावणा-दूसरी भावना को कहते हैं। कोहं-क्रोध को। परियाणइ-ज्ञ प्रज्ञा से-इस के कटु परिणाम को जान कर प्रत्याख्यान प्रज्ञा से उसका जो त्याग करता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ है। नो कोहणे सिया-साधु क्रोधी-क्रोधशील न हो। केवली बूया-केवली भगवान कहते हैं यह कर्म बन्ध का कारण है। कोहपत्ते-क्रोध को प्राप्त हुआ। कोहत्तं-साधु क्रोध भाव को प्राप्त कर। मोस वयणाए-मृषा वचन। समावइज्जा-बोलता है अत साधु क्रोध न करे। कोहं परियाणइ-जो क्रोध के कटुफल को जान कर उसे छोड़ता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ है। य-पुन । न कोहणे सियत्ति-साधु क्रोधी-क्रोध करने वाला न हो। दुच्चा भावणा-यह दूसरी भावना है।

अहावरा तच्चा भावणा-अब तीसरी भावना को कहते हैं। लोभं परियाणइ-जो लोभ के कटुफल को जानकर लोभ का परित्याग करता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ है। य-और। नो लोभणए सिया-साधु लोभ शील न होवे। केवली बूया-केवली भगवान कहते हैं। लोभपत्ते-लोभ को प्राप्त हुआ। लोभी-लोभी-लोभ करने वाला। मोसं वयणाए समावइज्जा-मृषा वचन बोलता है अत । लोभं परियाणइ-जो साधु लोभ के कटुफल को जान कर लोभ का परित्याग करता है। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ। नो य लोभणए सियत्ति-साधु लोभ शील-लोभी न हो इस प्रकार यह। तच्चा भावणा-तीसरी भावना है।

अहावरा चउत्था भावणा-अब चतुर्थ भावना को कहते हैं। **भयं परिजाणइ**-भय को जानकर उसका परित्याग करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो भवभीरुए सिया**-साधु भय से भीरु न बने। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **भयपत्ते**-भय को प्राप्त हुआ। **भीरू**-डरने वाला साधु। **मोसं वयणाए**-मृषा वचन। **समावइज्जा**-बोल देता है अत । **भयं परियाणइ**-जो भय का परित्याग करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है इसलिए। **नो भयभीरुए सिया**-भय से भीरु न हो। **त्ति**-इस प्रकार। **चउत्था भावणा**-यह चतुर्थ भावना है।

अहावरा पंचमा भावणा-अब पाचवीं भावना को कहते है। **हासं परियाणइ**-हस्य को जान कर जो हास्य का परित्याग करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो य हासणए सिया**-और फिर वह निर्ग्रन्थ हसन शील न हो क्योंकि। **केवली॰**-केवली भगवान कहते है, यह कर्म बन्धन का हेतु है। **हासपत्ते**-हास्य को प्राप्त होकर। **हासी**-हास्य करने वाला। **मोसं**-मृषा। **वयणाए**-वचन। **समावइज्जा**-बोलने वाला होता है अर्थात् वह झूठ भी बोल देता है अत जो। **हासं परियाणइ**-हास्य का परित्याग करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो हासणए सियत्ति**-न कि हास्य शील होने वाला। **पचमा भावणा**-यह पाचवीं भावना कही है।

***मूलार्थ*—इस द्वितीय महाव्रत की ये पांच भावनाए है—**

उन पांच भावनाओ मे से प्रथम भावना यह है जो विचार पूर्वक भाषण करता है वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे भाषण करने वाला निर्ग्रन्थ नही है। केवली भगवान कहते है कि बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थ को मृषा भाषण की सप्राप्ति होती है अर्थात् मिथ्या भाषण का दोष लगता है अत. विचार पूर्वक बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है।

द्वितीय महाव्रत की दूसरी भावना यह है कि जो साधक क्रोध के कटु फल को जानकर उसका परित्याग करता है, वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान का कहना है कि क्रोध एव आवेश के वश व्यक्ति असत्य वचन का प्रयोग कर देता है। अत क्रोध से निवृत साधक ही निर्ग्रन्थ होता है।

तीसरी भावना यह है कि लोभ का परित्याग करने वाला साधक निर्ग्रन्थ होता है। लोभ के वश होकर भी व्यक्ति झूठ बोल देता है, अतः साधक को लोभ नहीं करना चाहिए।

चौथी भावना यह है कि भय का सर्वथा परित्याग करने वाला व्यक्ति निर्ग्रन्थ कहलाता है। भय से युक्त व्यक्ति अपने बचाव के लिए झूठ बोल देता है। अत मुनि को सदा पूर्णत भय से रहति रहना चाहिए।

पाचवीं भावना यह है कि हास्य का त्याग करने वाला साधक निर्ग्रन्थ कहलाता है। हास्यवश भी व्यक्ति असत्य भाषण कर सकता है। इस लिए मुनि को हास्य-हंसी मजाक का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रथम महाव्रत की तरह द्वितीय महाव्रत की भी ५ भावनाए हैं– १ विवेक-विचार से बोलना, २ क्रोध के वश, ३ लोभ के वश, ४ भय के वश, ५ हास्य के वश असत्य नहीं बोलना चाहिए। भाषा बोलने के पूर्व विवेक रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिए हितकर है। परन्तु असत्य का सर्वथा त्याग करने वाले साधक के लिए यह अनिवार्य है कि वह विवेक पूर्वक एव भाषा की सदोषता तथा निर्दोषता का विचार करके बोले। वह सदा इस बात का ख्याल रखे कि किसी भी तरह असत्य एव सदोष

भाषा का प्रयोग न होने पाए।

यह भी स्पष्ट है कि क्रोध और लोभ के वश भी व्यक्ति झूठ बोल जाता है। उस समय उसे बोलने का विवेक नहीं रहता है। इसी तरह भय भी मनुष्य के विवेक को विलुप्त कर देता है। उससे छुटकारा पाने के लिए भी असत्य का सहारा ले लेता है। अत साधु को इन सब दोषो से मुक्त रहना चाहिए। उसे क्रोध, लोभ, एव भय आदि विकारो से उन्मुक्त होकर विचरना चाहिए।

हम देखते हैं कि हसी-मजाक के वश भी लोग झूठ बोलते हैं। अत साधक को इससे भी दूर रहना चाहिए। हसी-मजाक से एक तो जीवन की गम्भीरता नष्ट होती है। दूसरे वह लोगो की दृष्टि मे छिछला व्यक्ति प्रतीत होता है। स्वाध्याय एव ध्यान का समय भी व्यर्थ ही नष्ट होता है और साथ मे असत्य का भी प्रयोग हो जाता है। इसलिए साधक को हसी-मजाक का परित्याग करके सदा आत्म साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

अब द्वितीय महाव्रत का उपसहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– एतावता दोच्चे महव्वए सम्मं काएण फासिए जाव आणाए आराहिए यावि भवइ, दुच्चे भंते! महव्वए॰॥

छाया– एतावता द्वितीयं महाव्रतं सम्यक् कायेन स्पर्शित यावत् आज्ञया आराधितं चापि भवति द्वितीयं भदन्त महाव्रतम्॰।

पदार्थ– **एतावता**-इस प्रकार। **दोच्चे महव्वए**-द्वितीय महाव्रत को। **सम्मं**-सम्यक् प्रकार से। **काएण**-काया से। **फासिए**-स्पर्शित कर। **जाव**-यावत्। **आणाए**-आज्ञा का। **आराहिए**-आराधक। **भवइ**-होता है। **भते !**-हे भगवन् ! **दोच्चे**-दूसरा। **महव्वए**-महाव्रत स्वीकार करता हू।

***मूलार्थ*—इस प्रकार दूसरे महाव्रत को सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्शित कर यावत् आज्ञा पूर्वक आराधित करने से हे भदन्त ! यह दूसरा महाव्रत होता है। अर्थात् उक्त महाव्रत की सम्यक्तया अराधना होती है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यही बताया गया है कि द्वितीय महाव्रत का महत्त्व उसके आराधन मे है। आगम मे दिए गए आदेश के अनुसार काया से उसका आचरण करना ही दूसरे महाव्रत का परिपालन करना है। अत. वचन के बताए गए समस्त दोषो का परित्याग करके दूसरे महाव्रत का पालन करने वाला साधक ही वास्तव मे निर्ग्रन्थ एव आराधक कहलाता है।

अब सूत्रकार तीसरे महाव्रत के सबध मे कहते हैं–

मूलम्– अहावरं तच्चं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं अदिन्नादाणं, से गामे वा नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं अन्नंपि गिण्हंतं न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए जाव वोसिरामि॥

छाया– अथापरं तृतीयं भदन्त ! महाव्रत प्रत्याख्यामि सर्वम् अदत्तादानं तद् ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा अल्पं वा बहुं वा अणुं वा स्थूलं वा चित्तवद् वा अचित्तमद् वा नैव स्वयं अदत्तं गृह्णीयात् नैवान्यैः अदत्तं ग्राहयेत अदत्तं अन्यमपि गृह्णन्तं न समनुजानामि यावज्जीवं यावत् व्युत्सृजामि।

पदार्थ– **अहावरं**-अथ अपर। **भंते**-हे भगवन्। **तच्चं**-तृतीय। **महव्वयं**-महाव्रत के विषय मे। **सव्वं**-सर्व प्रकार के। **अदिन्नादाणं**-अदत्तादान का। **पच्चक्खामि**-प्रत्याख्यान करता हू। **से**-वह। **गामे वा**-ग्राम मे। **नगरे वा**-नगर मे अथवा। **रन्ने वा**-अरण्य मे। **अप्प वा**-स्वल्प या। **बहु वा**-बहुत या। **अणुं वा**-सूक्ष्म या। **थूल वा**-स्थूल पदार्थ या। **चित्तमंतं वा**-सचित्त या। **अचित्तमत वा**-अचित्त पदार्थ। **एव**-निश्चयार्थक है। **अदिन्न**-किसी के दिए बिना। **सय**-स्वय-अपने आप। **न गिण्हिज्जा**-ग्रहण नहीं करूगा तथा। **अन्नेहिं**-औरो से। **नेव गिण्हाविज्जा**-ग्रहण नहीं कराऊगा। **अदिन्नं**-अदत्त को। **गिण्हत**-ग्रहण करने वाले। **अन्नपि**-अन्य व्यक्ति का। **न समणुजाणिज्जा**-अनुमोदन नहीं करूगा। **जावज्जीवाए**-जीवन पर्यन्त। **जाव**-यावत् (शेष पाठ पूर्ववत् जानना)। **वोसिरामि**-अदत्तादान से अपने को पृथक् करता हू।

मूलार्थ—**हे भगवन्। मै तृतीय महाव्रत के विषय में सर्व प्रकार से अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूं। वह अदत्तादान-चोरी से ग्रहण किया जाने वाला पदार्थ चाहे ग्राम मे, नगर मे अरण्य-अटवी मे हो, स्वल्प हो, बहुत हो, स्थूल हो, एव सचित अथवा अचित हो उसे न तो स्वय ग्रहण करूंगा, न दूसरों से ग्रहण कराऊगा और न ग्रहण करने वाले व्यक्ति का अनुमोदन करूगा, मैं जीवन पर्यन्त के लिए इस महाव्रत को तीन करण और तीन योग से ग्रहण करता हू। और इस अदत्तादान (चौर्य कर्म) के पाप से मै अपनी आत्मा को सर्वथा पृथक करता हू।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे स्तेय (चौर्य कर्म) के त्याग का उल्लेख किया गया है। चोरी आत्मा को पतन की ओर ले जाती है। इस कार्य को करने वाला व्यक्ति साधना मे सलग्न होकर आत्म शान्ति को नहीं पा सकता। क्योकि इससे मन सदा अनेक सकल्प-विकल्पो मे उलझा रहता है। अत. साधक को कभी भी अदत्त ग्रहण नही करना चाहिए चाहे वह पदार्थ साधारण हो या मूल्यवान हो, छोटा हो या बडा हो, कैसा भी क्यो न हो, साधु को बिना आज्ञा के या बिना दिया हुआ कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए। वह न स्वय चोरी करे, न दूसरे व्यक्ति को चोरी करने के लिए कहे और न चोरी करने वाले का समर्थन ही करे। इस तरह वह सर्वथा इस पाप से निवृत्त होकर सयम मे सलग्न रहे।

इस महाव्रत की भावनाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

तत्थिमा पढमा भावणा–अणुवीइ मिउग्गहजाई से निग्गंथे नो अणणुवीइ मिउग्गहजाई, केवली बूया०–अणणुवीइमिउग्गहजाई निग्गंथे अदिन्नं गिण्हेज्जा, अणुवीइमिउग्गहजाई से निग्गंथे नो अणणुवीइमिउग्गहजाइत्ति पढमा

भावणा ॥१ ॥

अहावरा दुच्चा भावणा– अणुन्नवियपाणभोयणभोई से निग्गंथे, नो अणणुन्नवियपाणभोयणभोई, केवली बूया॰-अणणुन्नवियपाणभोयणभोई से निग्गंथे अदिन्नं भुंजिज्जा,तम्हा अणुन्नवियपाणभोयणभोई से निग्गंथे नो अणणुन्नवियपाणभोयणभोई ति दुच्चा भावणा ॥२ ॥

अहावरा तच्चा भावणा-निग्गंथेणं उग्गहंसि उग्गहियंसि एतावताव उग्गहणसीलए सिया, केवली बूया॰-निग्गंथेणं उग्गहंसि अणुग्गहियंसि एतावताव अणुग्गहणसीले अदिन्नं ओगिण्हिज्जा, निग्गंथेणं उग्गहं उग्गहियंसि एतावताव उग्गहणसीलए त्ति तच्चा भावणा ॥३ ॥

अहावरा चउत्था भावणा-निग्गंथेणं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं २ उग्गहणसीलए सिया, केवली बूया॰-निग्गंथेणं उग्गहंसि उ अभिक्खणं २ अणुग्गहणसीले अदिन्नं गिण्हिज्जा, निग्गंथे उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं २ उग्गहणसीलए त्ति चउत्था भावणा ॥४ ॥

अहावरा पंचमा भावणा– अणुवीइमिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु, नो अणणुवीइमिउग्गहजाई, केवली बूया॰ अणणुवीइमिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु अदिन्नं उगिण्हिज्जा अणुवीइमिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु नो अणणुवीइमिउग्गहजाई इइ पंचमा भावणा ॥५ ॥

छाया– तस्येमाः पच भावना. भवन्ति–

तत्र इय प्रथमा भावना-अनुविचिंत्य मितावग्रहयाची स निर्ग्रन्थः न अननुविचिन्त्य-मितावग्रहयाची स निर्ग्रन्थः केवली बूयात् अननुविचिंत्यमितावग्रहयाची निर्ग्रन्थः अदत्त गृण्हीयात् अनुविचिन्त्य मितावग्रहयाची स निर्ग्रन्थ. नो अननुविचिन्त्य मितावग्रहयाचीति प्रथमा भावना।

अथापरा द्वितीया भावना-अनुज्ञाप्य पानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः नो अननुज्ञाप्यपानभोजनभोजी। केवली ब्रूयात्-अननुज्ञाप्यपानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः अदत्तं भुञ्जीत, तस्मात् अनुज्ञाप्य पानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः न अननुज्ञाप्य पानभोजनभोजीति द्वितीया भावना।

अथापरा तृतीया भावना-निर्ग्रन्थेन अवग्रहे अवगृहीते एतावता अवग्रहणशीलः स्यात्, केवली ब्रूयात् निर्ग्रन्थेन अवग्रहे अनवगृहीते एतावता अनवग्रहणशीलः अदत्तमवगृण्हीयात्,

निर्ग्रन्थेन अवग्रहे अवगृहीते एतावता अवग्रहण-शीलक इति तृतीया भावना।

अथापरा चतुर्थी भावना-निर्ग्रंथेन अवग्रहे अवगृहीते अभीक्ष्णं २ अवग्रहणशीलकः स्यात् केवली ब्रूयात् निर्ग्रन्थेन अवग्रहे तु अभीक्ष्णं २ अनवग्रहणशीलः अदत्तं गृण्हीयात्, निर्ग्रन्थः अवग्रहे अवगृहीते अभीक्ष्णं २ अवग्रहणशीलक इति चतुर्थी भावना।

अथापरा पंचमी भावना-अनुविचिन्त्य मितावग्रहयाची स निर्ग्रन्थः साधर्मिकेषु नो अननुविचिन्त्य मितावग्रहयाची, केवली ब्रूयात् अननुविचिन्त्य मितावग्रहयाची सः निर्ग्रन्थः साधर्मिकेषु अदत्तम् अवगृण्हीयात्, अनुविचिन्त्य मितावग्रहयाची स निर्ग्रन्थः साधर्मिकेषु नो अननुविचिन्त्य मितावग्रहयाची ति पंचमी भावना।

पदार्थ— **तस्सिमाओ**-इस तीसरे महाव्रत की ये। **पंच**-पांच। **भावणाओ**-भावनाएं। **भवंति**-हैं।

तत्थिमा-उन पाच भावनाओ मे से यह। **पढमा**-प्रथम। **भावणा**-भावना है। **अणुवीइ**-जो विचार कर। **मिउग्गह**-मित-प्रमाण पुरस्सर अवग्रह की। **जाई**-याचना करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो अणणुवीइ**-जो बिना विचारे। **मिउग्गह**-मितावग्रह की। **जाई**-याचना करने वाला नहीं होता। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ। **केवली बूया०**-केवली भगवान कहते हैं। **अणणुवीइ**-बिना विचारे। **मिउग्गह**-मित अवग्रह की। **जाई**-याचना करने वाला। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ। **अदिन्नं**-अदत्तादान का। **गिण्हेज्जा**-ग्रहण करता है, अत जो। **अणुवीइ**-विचार कर। **मिउग्गहजाई**-मित अवग्रह की याचना करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ होता है। **नो अणणुवीइमिउग्गहजाई**-न कि बिना विचारे मितावग्रह की याचना करने वाला भी। **त्ति**-इस प्रकार। **पढमा भावणा**-यह प्रथम भावना कही गई है।

अहावरा दुच्चा भावणा-अथ अपर द्वितीय भावना को कहते हैं। **अणुन्नविय**-गुरु आदि की आज्ञा ले कर। **पाणभोयणभोई**-जो आहार-पानी करता है। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो अणणुन्नवियपाणभोयणभोई**-न कि गुरुजनो की आज्ञा के बिना आहार-पानी करने वाला। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है। **अणणुन्नविय**-गुरुजनो की आज्ञा प्राप्त किए बिना जो। **पाणभोयणभोई**-आहार-पानी करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ। **अदिन्नं**-अदत्तादान का। **भुंजिज्जा**-भोगने वाला होता है। **तम्हा**-इस लिए। **अणुन्नविय**-गुरुजनों की आज्ञा ले कर जो। **पाणभोयणभोई**-आहार-पानी करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **नो अणणुन्नवियपाणभोयणभोई**-न कि बिना आज्ञा के आहार-पानी करने वाला। **त्ति**-इस प्रकार। **दुच्चा भावणा**-यह दूसरी भावना कही गई है।

अहावरा तच्चा भावणा-अब तीसरी भावना को कहते है। **निग्गंथेणं**-साधु। **उग्गहंसि**-अवग्रह मांगने पर। **उग्गहियंसि**-प्रमाण पूर्वक क्षेत्र और काल प्रमाण अवग्रहण को। **एतावताव**-इस प्रकार। **उग्गहणसीलए सिया**-प्रमाण पूर्वक अवग्रह के ग्रहण करने के स्वभाव वाला हो। **केवली बूया०**-केवली भगवान कहते हैं। **निग्गथेण**-निर्ग्रन्थ। **उग्गहंसि**-अवग्रह के। **अणुग्गहियंसि**-प्रमाण पूर्वक ग्रहण न करने से। **एतावता**-इस प्रकार। **अणुग्गहणसीले**-आज्ञा न लेने के स्वभाव वाला होने से। **अदिन्नं**-अदत्त का। **ओगिण्हिज्जा**-ग्रहण करता है अर्थात् अदत्तादान का सेवन करने वाला होता है। **निग्गंथेणं**-निर्ग्रन्थ-साधु। **उग्गहं**-अवग्रह के। **उग्गहियंसि**-

प्रमाण पूर्वक ग्रहण करने पर। एतावताव-इस प्रकार। उग्गहणसीलएत्ति-अवग्रहण शील होता है इस प्रकार यह। तच्चा भावणा-तीसरी भावना कथन की गई है।

अहावरा चउत्था भावणा-अब चौथी भावना को कहते हैं। निग्गंथे-निर्ग्रन्थ। उग्गहंसि-अवग्रह के। उग्गहियंसि-लेने पर। अभिक्खणं २-बारंबार। उग्गहणसीलए सिया-अवग्रहण शील से अर्थात् पदार्थों की बार-बार आज्ञा लेने के स्वभाव वाला हो क्योंकि केवली बूया-केवली भगवान कहते हैं। निग्गंथेणं-निर्ग्रन्थ-साधु। उग्गहंसि-अवग्रह के। उग्गहियंसि-ग्रहण कर लेने पर। अभिक्खणं-बार-बार। अणुग्गहणसीले-आज्ञा न लेने वाला। अदिन्नं गिण्हिज्जा-अदत्त का ग्रहण करता है अत । निग्गंथे-निर्ग्रन्थ। उग्गहंसि-अवग्रह की। उग्गहियंसि-याचना करे किन्तु। अभिक्खणं २-बार-बार। उग्गहणसीलएत्ति-अवग्रह के ग्रहण करने वाला हो इस प्रकार। चउत्था भावणा-यह चौथी भावना कही गई है।

अहावरा पचमा भावणा-अब पाचवीं भावना को कहते है। से निग्गथे-वह निर्ग्रन्थ। साहम्मिएसु-साधर्मियो से। अणुवीइ-विचार कर। मिउग्गहजाई-मितावग्रह की याचना करे। नो अणुवीइ-न कि बिना विचारे। मिउग्गह-मित्त-प्रमाण पूर्वक अवग्रह की। जाई-याचना करे। केवली बूया॰-केवली भगवान कहते हैं। अणणुवीइ-बिना विचार। मिउग्गहजाई-मितावग्रह की याचना करने वाला। से निग्गंथे-वह निर्ग्रन्थ। साहम्मिएसु-साधर्मिको मे। अदिन्न-अदत्त का। उग्गिण्हिज्जा-ग्रहण करता है अत । अणुवीइमिउग्गहजाई-विचार कर मितावग्रह की जो याचना करता है। से निग्गन्थे-वह निर्ग्रन्थ है। साहम्मिएसु-साधर्मिको में। नो अणणुवीइ-विचार न करके। मिउग्गहजाई-मितावग्रह की याचना करने वाला निर्ग्रन्थ नहीं होता। इइ-इस प्रकार यह। पंचमा भावणा-पाचवीं भावना कही गई है।

मूलार्थ—इस तीसरे महाव्रत की ये पांच भावनाएं हैं–

उन पाच भावनाओ मे से प्रथम भावना यह है– जो विचार कर मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला है, वह निर्ग्रन्थ है, न कि बिना विचार किए मितावग्रह की याचना करने वाला। केवली भगवान कहते हैं कि बिना विचार किए अवग्रह की याचना करने वाला निर्ग्रन्थ अदत्त को ग्रहण करता है। इसलिए निर्ग्रन्थ को विचार पूर्वक ही अवग्रह की याचना करनी चाहिए।

अब दूसरी भावना को कहते हैं– गुरुजनों की आज्ञा लेकर आहार-पानी करने वाला निर्ग्रन्थ होता है, न कि बिना आज्ञा के आहार-पानी करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ गुरु आदि की आज्ञा प्राप्त किए बिना आहार-पानी आदि करता है वह अदत्तादान का भोगने वाला होता है। इसलिए आज्ञा पूर्वक, आहार-पानी करने वाला ही निर्ग्रन्थ होता है।

अब तृतीया भावना का स्वरुप कहते हैं– निर्ग्रन्थ-साधु क्षेत्र और काल के प्रमाण पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला होता है। केवली भगवान कहते हैं कि जो साधु मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला नहीं होता वह अदत्तादान को सेवन करने वाला होता है, अतः प्रमाण पूर्वक अवग्रह का ग्रहण करना यह तीसरी भावना है।

अब चौथी भावना को कहते हैं– निर्ग्रन्थ अवग्रह के ग्रहण करने वाला हो। केवली भगवान कहते हैं कि निर्ग्रन्थ बार-बार अवग्रह के ग्रहण करने वाला हो यदि वह ऐसा न होगा तो

उसको अदत्तादान का दोष लगेगा। अत· जो बार-बार मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला होता है, वही इस व्रत की आराधना करने वाला होता है।

पांचवीं भावना यह है कि जो साधक साधर्मियों से भी विचार पूर्वक मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करता है। वह निर्ग्रन्थ है, न कि बिना विचारे आज्ञा लेने वाला। केवली भगवान कहते है कि साधर्मियो से भी विचार कर मर्यादा पूर्वक आज्ञा लेने वाला निर्ग्रन्थ ही तृतीय महाव्रत की आराधना कर सकता है। यदि वह उनसे विचार पूर्वक आज्ञा नहीं लेता है तो उसे अदत्तादान का दोष लगता है। इसलिए मुनि को सदा विचार पूर्वक ही आज्ञा लेनी चाहिए।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे तृतीया महाव्रत की ५भावनाओ का उल्लेख किया गया है। पहले और दूसरे महाव्रत की तरह तीसरे महाव्रत की भी पाच भावनाए होती हैं– १ साधु किसी भी आवश्यक एव कल्पनीय वस्तु को बिना आज्ञा ग्रहण न करे। २ प्रत्येक वस्तु के ग्रहण करने को जाने के पूर्व गुरु की आज्ञा ग्रहण करना, ३ क्षेत्र और काल की मर्यादा को ध्यान मे रखकर वस्तु ग्रहण करने जाना, ४ बार-बार आज्ञा ग्रहण करना और ५ साधर्मिक साधु की कोई वस्तु ग्रहण करनी हो तो उसकी (साधर्मिक की) आज्ञा लेना। इस तरह साधु को बिना आज्ञा के कोई भी पदार्थ नहीं ग्रहण करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि साधु अपनी आवश्यकता के अनुसार कल्पनीय वस्तु की याचना कर सकता है। परन्तु, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने गुरु या साथ के बडे साधु की आज्ञा लेकर ही उस वस्तु को ग्रहण करने के लिए जाए। इसी तरह वस्तु ग्रहण करने को जाते समय क्षेत्र एव काल का भी अवश्य ध्यान रखे। आहार, पानी, वस्त्र-पात्र आदि को ग्रहण करने के लिए अर्ध योजन से ऊपर न जाए। इस तरह जिस समय घरो मे आहार-पानी का समय न हो, उस समय आहार-पानी के लिए नहीं जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त साधु का जितनी बार वस्तु को ग्रहण करने के लिए जाना हो उतनी ही बार गुरु की आज्ञा लेकर जाना चाहिए और किसी अपने साथी मुनि की वस्तु ग्रहण करनी हो तो उसके लिए उसकी आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए। इस तरह जो विवेक पूर्वक वस्तु को ग्रहण करता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है। इसके विपरीत आचरण को अदत्तादान कहा गया है। अत मुनि को सदा विवेक पूर्वक सोच-विचार कर ही वस्तु ग्रहण करनी चाहिए। बिना आज्ञा के उसे कभी भी कोई पदार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए।

अब तृतीय महाव्रत का उपसहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– एतावताव तच्चे महव्वए सम्मं॰ जाव आणाए आराहिए यावि भवइ, तच्चं भंते महव्वयं॰।

छाया– एतावता तृतीयं महाव्रत सम्यक् यावत् आज्ञया आराधितं चापि भवति तृतीय भदन्त ! महाव्रतम्॰।

पदार्थ– **एतावता-इस प्रकार। तच्चे-तीसरे। महव्वए-महाव्रत का। सम्मं-सम्यक्तया। जाव-यावत्। आणाए-आज्ञापूर्वक। आराहिए यावि भवइ-आराधन किया जाता है। भंते-हे भगवन् ! मैं। तच्चं-**

तृतीय। महव्वय-महाव्रत के विषय मे सर्व प्रकार से अदत्तादान से निवृत्त होता हूँ।

मूलार्थ—इस प्रकार साधु सम्यग् रूप से तीसरे महाव्रत का आराधन किया करे। शिष्य यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं जीवन पर्यन्त के लिए अदत्तादान से निवृत होता हूँ।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे यही बताया गया है कि इस तरह विवेक पूर्वक आचरण करके ही साधक तीसरे महाव्रत का परिपालन कर सकता है।

अब चतुर्थ महाव्रत का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– अहावरं चउत्थं महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मेहुणं, से दिव्वं वा माणुस्सं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं गच्छेज्जा तं चेव अदिन्नादाणवत्तव्वया भाणियव्वा जाव वोसिरामि।

छाया– अथापरं चतुर्थं महाव्रतं प्रत्याख्यामि सर्वं मैथुन तद् दिव्य वा मानुष्यं वा तिर्यग्योनिकं वा नैव स्वयं मैथुन गच्छेत् तच्चैवम् अदत्तादानवक्तव्यता भणितव्या यावत् व्युत्सृजामि।

पदार्थ– अहावर-अब अन्य। चउत्थ-चतुर्थ। महव्वयं-महाव्रत मे। सव्व मेहुण-सर्वप्रकार के मैथुन का–विषय सेवन का। पच्चक्खामि-प्रत्याख्यान करता हू। से-वह। दिव्व वा-देव सम्बन्धि। माणुस्सं-मनुष्य सम्बन्धि। तिरिक्खजोणिय वा-तिर्यंच सम्बन्धि। मेहुण-मैथुन को। नेव-न। सयं-स्वय-अपने आप। गच्छेज्जा-सेवन करूगा। त चेव-अन्य सब। अदिन्नादाणवत्तव्वया-अदत्तादान विषयक प्रकरण में जैसा कहा है उसी प्रकार। भाणियव्वा-यहा मैथुन के सम्बन्ध मे भी जान लेनी चाहिए। जाव-यावत्। वोसिरामि-अपने आत्मा को मैथुन धर्म से पृथक करता हू।

मूलार्थ—अब चतुर्थ महाव्रत के विषय मे कहते है- हे भगवन् ! मै देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी सर्वप्रकार के मैथुन का तीन करण और तीन योग से प्रत्याख्यान करता हू, शेष वर्णन अदत्तादान के समान जानना चाहिए। साधक गुरु के सामने यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं मैथुन से अपनी आत्मा को सर्वथा पृथक् करता हूं।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। भोग की प्रवृत्ति से मोह कर्म को उत्तेजना मिलती है। इससे आत्मा कर्म बन्ध से आबद्ध होता है और ससार मे परिभ्रमण करता है। अत साधु को अब्रह्मचर्य-विषय -भोग से सर्वथा निवृत्त होना चाहिए। मैथुन कर्म का सर्वथा परित्याग करने वाला व्यक्ति ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है। क्योकि इसका त्याग करके वह मोह कर्म की गाठ से छूटने का, मुक्त होने का प्रयत्न करता है। इसलिए साधक न तो स्वय विषय-भोग का सेवन करे, न दूसरे व्यक्ति को विषय-वासना की ओर प्रवृत्त करे और न उस ओर प्रवृत्त व्यक्ति का समर्थन ही करे। इस तरह साधु प्रतिज्ञा करता है कि भगवन ! मै गुरु एव आत्म-साक्षी से उसका त्याग-प्रत्याख्यान करता हू एव उसकी निन्दा एवं गर्हणा करता हूँ।

अब चौथे महाव्रत की भावनाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

तत्थिमा पढमा भावणा–नो निग्गंथे अभिक्खणं २ इत्थीणं कहं कहित्तए सिया, केवली बूया॰, निग्गंथेणं अभिक्खणं २ इत्थीणं कहं कहेमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवलीपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा, नो निग्गंथेणं अभिक्खणं-२ इत्थीणं कहं कहित्तए सियत्ति पढमा भावणा॥१॥

अहावरा दुच्चा भावणा–नो निग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोइत्तए निज्झाइत्तए सिया, केवली बूया–निग्गंथे णं इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोएमाणे निज्झाएमाणे संतिभेया संतिविभंगा जाव धम्माओ भंसिज्जा, नो निग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोइत्तए निज्झाइत्तए सियत्ति दुच्चा भावणा॥२॥

अहावरा तच्चा भावणा–नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरित्तए सिया, केवली बूया॰ निग्गंथे णं इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा, नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरित्तए सियत्ति तच्चा भावणा॥३॥

अहावरा चउत्था भावणा–नाइमत्तपाणभोयणभोई से निग्गंथे न पणीयरसभोयणभोई से निग्गंथे, केवली बूया॰–अइमत्तपाणभोयणभोई से निग्गंथे, पणियरसभोयणभोई संतिभेया जाव भंसिज्जा, नाइमत्तपाणभोयणभोई से निग्गंथे नो पणीयरसभोयणभोइत्ति चउत्था भावणा॥४॥

अहावरा पंचमा भावणा–नो निग्गंथे इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सिया, केवली बूया– निग्गंथे णं इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवेमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा॰ नो निग्गंथे इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सियत्ति पंचमा भावणा॥५॥

एतावया चउत्थे महव्वए सम्मं काएण फासिए जाव आराहिए यावि भवइ चउत्थं भंते ! महव्वय॰।

छाया– तस्येमा. पंच भावना. भवन्ति–

तत्र इय प्रथमा भावना–नो निर्ग्रन्थः अभीक्ष्णं २ स्त्रीणां कथां कथयिता स्यात्, केवली ब्रूयात् निर्ग्रन्थ. अभीक्ष्णं २ स्त्रीणा कथा कथयन् शान्तिभेदाः शान्तिविभंगाः

शान्तिकेवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत नो निर्ग्रन्थः अभीक्ष्णं स्त्रीणां कथां कथयिता स्यादिति प्रथमा भावना।

अथापरा द्वितीया भावना-नो निर्ग्रन्थ· स्त्रीणां मनोहराणि २ इन्द्रियाणि आलोकयिता निर्ध्याता स्यात् केवली ब्रूयात्-निर्ग्रन्थ स्त्रीणां मनोहराणि २ इन्द्रियाणि आलोकयन् निर्ध्यायन् शान्तिभेदाः शान्तिविभंगा यावत् धर्माद् भ्रश्येत् नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणां मनोहराणि २ इन्द्रियाणि आलोकयिता, निर्ध्याता स्यादिति द्वितीया भावना।

अथापरा तृतीया भावना-नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणां पूर्वरतानि पूर्वक्रीडितानि स्मरन् स्यात्, केवली ब्रूयात् निर्ग्रन्थः स्त्रीणा पूर्वरतानि पूर्वक्रीडितानि स्मरन् शान्तिभेदा यावत् भ्रश्येत्, नो निर्ग्रन्थ· स्त्रीणां पूर्वरतानि पूर्वक्रीडितानि स्मर्ता स्यात् इति तृतीया भावना।

अथापरा चतुर्थी भावना-नातिमात्रपानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः न प्रणीतरसभोजनभोजी स निर्ग्रन्थः, केवली ब्रूयात् अतिमात्रपानभोजनभोजी सः निर्ग्रन्थः प्रणीतरसभोजनभोजी शान्तिभेदा यावत् भ्रश्येत, नातिमात्रपानभोजनभोजी स निर्ग्रन्थ. नो प्रणीतरसभोजनभोजीति चतुर्थी भावना।

अथापरा पचमी भावना-नो निर्ग्रन्थः स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तानि शयनासनानि सेविता स्यात्, केवली ब्रूयात् आदानमेतत् निर्ग्रन्थ· स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तानि शयनासनानि सेवमानः शान्तिभेदा· यावद् भ्रश्येत् , नो निर्ग्रन्थः स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तानि शयनासनानि सेविता स्यादिति पचमी भावना।

एतावता चतुर्थं महाव्रतं सम्यक् कायेन स्पर्शित यावत् आराधितं चापि भवति चतुर्थं भदन्त महाव्रतम्०।

पदार्थ– तस्स-उस महाव्रत की। इमाओ-ये। पंच-पाच। भावणाओ-भावनाए। भवन्ति-होती है।

तत्थिमा-उन पांच भावनाओ मे से यह। पढमा-प्रथम। भावणा-भावना कही गई है। निग्गंथे-निर्ग्रन्थ-साधु। अभिक्खणं २-बार-बार। इत्थीण-स्त्रियो की। कहं-कथा। कहित्तए-करने वाला। नो सिया-न हो अर्थात् बार २ स्त्रियो की कामोत्पादक कथा न करे, क्योंकि। केवली बूया०-केवली भगवान कहते हैं। ण-वाक्यालंकारार्थक है। निग्गथे-निर्ग्रन्थ साधु। अभिक्खणं-बार २। इत्थीणं-स्त्रियो की। कहं-कथा। कहेमाणे-करता हुआ। संतिभेया-शान्ति-चारित्र समाधि का भेद करता है तथा। सतिविभंगा-शाति-ब्रह्मचर्य का भग करता है। संतिकेवलिपन्नत्ताओ-शांतिरूप केवली भगवान के प्रतिपादन किए हुए। धम्माओ-धर्म से। भंसिज्जा-भ्रष्ट हो जाता है। ण-वाक्यालंकारार्थक है अत । निग्गंथे-निर्ग्रन्थ साधु। अभिक्खणं २-पुन पुन । इत्थीणं-स्त्रियों की। कहं-कथा को। कहित्तए-करने वाला। नो सिय-न हो। त्ति-इस प्रकार। पढमा भावणा-यह प्रथम भावना कही गई है।

अहावरा-अथ अपर। दुच्चा भावणा-दूसरी भावना को कहते हैं। निग्गंथे-निर्ग्रन्थ-साधु। इत्थीण-

स्त्रियो की। **मणोहराइं २**-मनोहर तथा मनोरम। **इंदियाइं**-इन्द्रियो को। **आलोइत्तए**-काम दृष्टि से अवलोकन तथा। **निज्झाइत्तए**-ध्यान या स्मरण करने वाला। **नो सिया**-न हो। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **ण**-वाक्यालकार में है। **निग्गथे**-जो निर्ग्रन्थ। **इत्थीणं**-स्त्रियो की। **मणोहराइं २**-मनोहर तथा मनोरम। **इंदियाइ**-इन्द्रियो को। **आलोएमाणे**-देखता हुआ। **निज्झाएमाणे**-आसक्ति पूर्वक देखता हुआ विचरता है वह। **संतिभेया**-शाति रूप चारित्र का भेदन करता है और। **संतिविभंगा**-शाति रूप ब्रह्मचर्य का भग करता हुआ। **जाव**-यावत्। **धम्माओ**-केवलि प्रज्ञप्त धर्म से भी। **भंसिज्जा**-भ्रष्ट हो जाता है अत । **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ-साधु। **इत्थीण**-स्त्रियो की। **मणोहराइ २**-मनोहर तथा मनोरम-मन को लुभाने वाली । **इंदियाइ**-इन्द्रियो को। **आलोइत्तए**-अवलोकन करने। **निज्झाइत्तए**-विशेष रूप से देखने या ध्यान करने की वृत्ति वाला। **नो सिया**-न बने। **त्ति**-इस प्रकार। **दुच्चा भावणा**-यह दूसरी भावना कही गई है।

अहावरा-अथ द्वितीय भावना से आगे अब। **तच्चा भावणा**-तीसरी भावना को कहते हैं। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ-साधु। **इत्थीणं**-स्त्रियो की। **पुव्वरयाइं**-पूर्व रति को। **पुव्वकीलियाइं**-तथा पूर्व क्रीडा को। **सुमरित्तए**-स्मरण करने वाला। **नो सिया**-न हो, क्योंकि। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है। **णं**-प्राग्वत्। **निग्गथे**-निर्ग्रन्थ। **इत्थीण**-स्त्रियो की। **पुव्वरयाइ**-पूर्व रति का। **पुव्वकीलियाइ**-पूर्व क्रीडा का। **सरमाणे**-स्मरण करता हुआ। **संतिभेया**-शाति का भेदक। **जाव**-यावत्। **भसिज्जा**-केवली भाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अत । **निग्गथे**-निर्ग्रन्थ-साधु। **इत्थीणं**-स्त्रियो की। **पुव्वरयाइ**-पूर्व रति और। **पुव्वकीलियाइं**-पूर्व क्रीड़ा का। **सरित्तए**-स्मरण करने वाला। **नो सियत्ति**-न बने इस प्रकार यह। **तच्चा भावणा**-चतुर्थ महाव्रत की तीसरी भावना कही गई है।

अहावरा-अथ अपर। **चउत्था भावणा**-चौथी भावना को कहते हैं। **नाइमत्तपाणभोयणभोई**-जो साधु मात्रा-प्रमाण से अधिक आहार-पानी नहीं करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है। **न पणीयरसभोयणभोई**-जो प्रणीत रस-प्रकाम भोजन का उपभोग करने वाला नहीं है, अर्थात् सरस आहार नहीं करता है। **से निग्गथे**-वह निर्ग्रन्थ है-साधु है। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं, कि यह कर्म बन्धन का हेतु है। **अइमत्तपाण-भोयणभोई**-प्रमाण से अधिक आहार-पानी करने वाला। **से निग्गंथे**-वह निर्ग्रन्थ-साधु। **पणीयरसभोयणभोई**-प्रणीत रस युक्त भोजन करने वाला। **संतिभेया**-शान्ति रूप ब्रह्मचर्य व्रत का विघातक। **जाव**-यावत्। **भसिज्जा**-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अत । **नाइमत्तपाणभोयणभोई**-जो प्रमाण से अधिक आहार-पानी करने वाला नहीं है। **से**-वह। **निग्गथे**-निर्ग्रन्थ है। **नो पणीयरसभोयणभोई**-जो प्रणीत रस युक्त भोजन को भोगने वाला भी नहीं है। **से**-वह। **निग्गथे**-निर्ग्रन्थ है। **त्ति**-इस प्रकार। **चउत्था भावणा**-यह चौथी भावना का स्वरूप कहा गया है।

अहावरा पंचमा भावणा-अब पांचवीं भावना को कहते हैं। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ साधु। **इत्थी**-स्त्री। **पसु**-पशु। **पण्डग**-पडक-नपुसक आदि से। **संसत्ताइं**-ससक्त-सयुक्त। **सयणासणाइं**-शय्या आसनादि के। **सेवित्तए**-सेवन करने वाला। **न सिया**-न हो। **केवली॰**-केवली भगवान कहते है कि। **इत्थिपसुपण्डगसंसत्ताइं**-स्त्री, पशु और नपुसक आदि से युक्त। **सयणासणाइं**-शय्या-उपाश्रय आसनादि का। **सेवेमाणे**-सेवन करने वाला। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ। **संतिभेया**-शान्ति का भेदक अर्थात् ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला। **जाव**-यावत् धर्म से।

भंसिज्जा-भ्रष्ट हो जाता है इस लिए। निग्गंथे-निर्ग्रन्थ। इत्थिपसुपंडगसंसत्ताइं-स्त्री, पशु और नपुसक आदि से युक्त। सयणासणाइ-उपाश्रय और आसनादि को। सेवित्तए-सेवन करने वाला। नो सिया-न हो। त्ति-इस प्रकार यह। पचमा-पाचवीं। भावणा-भावना कही गई है।

एतावया-इस प्रकार। चउत्थे महव्वए-चतुर्थ महाव्रत को। काएण-काया से। फासिए-स्पर्शित करता हुआ। जाव-यावत्। आराहिए यावि भवइ-आराधित होता है। भंते !-हे भगवन् ! चउत्थे-चतुर्थ। महव्वए०-महाव्रत को मै स्वीकार करता हू।

मूलार्थ—चतुर्थ महाव्रत की ये पाच भावनाएं हैं–

उन पांच भावनाओ में से प्रथम भावना इस प्रकार है– निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की काम जनक कथा न कहे। केवली भगवान कहते हैं कि बार-बार स्त्रियो की कथा कहने वाला साधु शान्ति रूप चारित्र और ब्रह्मचर्य का भग करने वाला होता है तथा शान्ति रूप केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अत साधु को स्त्रियो की बार-बार कथा नहीं करनी चाहिए यह प्रथम भावना है।

अब चतुर्थ महाव्रत की दूसरी भावना कहते हैं– निर्ग्रन्थ-साधु कामराग से स्त्रियो की मनोहर-तथा मनोरम इन्द्रियो को सामान्य अथवा विशेष रूप से न देखे। केवली भगवान कहते है– जो निर्ग्रन्थ-साधु स्त्रियों की मनोहर-मन को लुभाने वाली इन्द्रियों को आसक्ति पूर्वक देखता है वह चारित्र और ब्रह्मचर्य का भंग करता हुआ सर्वज्ञ प्रणीत धर्म से भी भ्रष्ट हो जाता है। अत निर्ग्रन्थ-साधु को स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों को काम दृष्टि से कदापि नहीं देखना चाहिए। यह दूसरी भावना का स्वरूप है।

अब तीसरी भावना का स्वरूप कहते है– निर्ग्रन्थ-साधु स्त्रियो के साथ की हुई पूर्व रति और क्रीडा-काम क्रीडा का स्मरण न करे। केवली भगवान कहते है जो निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियो के साथ की गई पूर्व रति और क्रीडा आदि का स्मरण करता है वह शान्तिरूप चारित्र का भेद करता हुआ यावत् सर्वज्ञ प्रणीत धर्म से भी भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए संयमशील मुनि को पूर्व रति और क्रीडा आदि का स्मरण नहीं करना चाहिए। यह तीसरी भावना का स्वरूप है।

अब चतुर्थ भावना का स्वरूप वर्णन करते हैं– वह निर्ग्रन्थ प्रमाण से अधिक आहार-पानी तथा प्रणीत रस-प्रकाम भोजन न करे। क्योंकि केवली भगवान कहते है कि इस प्रकार के आहार-पानी एवं प्रणीत-रस प्रकाम भोजन के भोगने से निर्ग्रन्थ चारित्र का विघातक और धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अत. निर्ग्रन्थ को अति मात्रा में आहार-पानी और सरस आहार नहीं करना चाहिए।

पांचवीं भावना का स्वरूप इस प्रकार है– निर्ग्रन्थ-साधु स्त्री, पशु और नपुंसक आदि से युक्त शय्या और आसन आदि का सेवन न करे, केवली भगवान कहते हैं कि ऐसा करने से वह ब्रह्मचर्य का विघातक होता है और केवली भाषित धर्म से पतित हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु, पंडक आदि से संसक्त शयनासनादि का सेवन न करे। यह पांचवीं भावना कही गई है।

इस तरह सम्यक्तया काया से स्पर्श करने से सर्वथा मैथुन से निवृत्ति रूप चतुर्थ महाव्रत का आराधन एव पालन होता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे चतुर्थ महाव्रत की ५ भावनाओ का उल्लेख किया गया है– १ स्त्रियो की काम विषयक कथा नहीं करना, २ विकार दृष्टि से स्त्रियो के अग-प्रत्यगो का अवलोकन नहीं करना, ३ पूर्व मे भोगे हुए विषय-भोगो का स्मरण नहीं करना, ४ प्रमाण से अधिक तथा सरस आहार का आसेवन नहीं करना और ५ स्त्री, पशु एव नपुसक से युक्त स्थान मे रात को नहीं रहना।

स्त्रियो की काम विषयक कथा करने से मन मे विकार भाव की जागृति होना सभव है और उससे उसका मन एव विचार साधना से विपरीत मार्ग की ओर भटक सकता है। और परिणाम स्वरूप वह साधक कभी कायिक रूप से भी चारित्र से गिर सकता है। इसलिए साधक को कभी काम विकार से सबद्ध स्त्रियो की कथा नहीं करनी चाहिए।

स्त्रियो के रूप एव श्रृगार का अवलोकन करने की भावना से उनके अगो को नहीं देखना चाहिए। क्योकि, मन मे रही हुई आसक्ति से काम-वासना के उदित होने का खतरा बना रहता है। अत साधक को कभी भी अपनी दृष्टि को विकृत नहीं होने देना चाहिए और उसे आसक्त भाव से किसी स्त्री के अग-प्रत्यगो का अवलोकन नहीं करना चाहिए।

साधु को पूर्व मे भोगे गए भोगो का भी चिन्तन-मनन नहीं करना चाहिए। क्योकि, इससे मन की परिणति मे विकृति आती है और उससे उपशान्त विकारो को जागृत होने का अवसर भी मिल सकता है। इसी तरह साधक को श्रृगार रस से युक्त या वासना को उद्दीप्त करने वाले उपन्यास, नाटक आदि का भी अध्ययन,श्रवण एव मनन नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए साधु को सदा प्रमाण से अधिक एव सरस तथा प्रकाम भोजन भी नहीं करना चाहिए। क्योकि प्रतिदिन अधिक आहार करने से तथा प्रकाम आहार करने से शरीर में आलस्य की वृद्धि होगी, आराम कग्ने की भावना जागेगी, स्वाध्याय एव ध्यान से मन हटेगा। इससे उसकी भावना मे विकृति भी आ जाएगी। अत· इन दोषो से बचने के लिए उसे सदा सरस आहार नहीं करना चाहिए तथा प्रमाण से भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। सादे एव प्रमाण युक्त भोजन से वह ब्रह्मचर्य का भी ठीक २ परिपालन कर सकेगा और साथ मे प्राय बिमारियो से भी बचा रहेगा और आलस्य भी कम आएगा जिससे वह निर्बाध रूप से स्वाध्याय एव ध्यान आदि साधना मे सलग्न रह सकेगा।

यह उत्सर्ग सूत्र है और ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ही सरस आहार का निषेध किया गया है। अपवाद मार्ग मे अर्थात् साधना के मार्ग मे कभी आवश्यकता होने पर साधु सरस आहार स्वीकार भी कर सकता है। जैसे-अरिष्टनेमिनाथ के ६ शिष्यो ने महाराणी देवकी के घर से सिह केसरी मोदक ग्रहण किए थे। काली आदि महाराणियो ने अपने तप की प्रथम परिपाटी में पारणे मे सभी तरह की विगय (दूध, दही

आदि) ग्रहण की थी[१]। भगवान महावीर ने एक महीने की तपस्या के पारणे के दिन सरस आहार ग्रहण किया था[२]। और आशातना के विषय का वर्णन करते हुए आगम मे बताया गया है कि यदि शिष्य गुरु के साथ आहार करने बैठे तो वह सरस आहार को शीघ्रता से न खाए[३]। और छेद सूत्रो मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यदि साधु मैथुन सेवन की दृष्टि से घी, दूध आदि विगय का सेवन करता है तो उसे प्रायश्चित आता है[४]। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपवाद मार्ग मे साधु सरस आहार ग्रहण कर सकता है। परन्तु उत्सर्ग मार्ग मे ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए उसे सरस आहार नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए साधु को स्त्री, पशु एव नपुसक से रहित मकान मे ठहरना चाहिए। क्योकि स्त्री आदि का अधिक ससर्ग रहने से मन मे विकारो की जागृति होना सभव है। इससे उसकी साधना का मार्ग अवरूद्ध हो जाएगा। अत साधु को इनसे रहित स्थान मे ही ठहरना चाहिए।

इस तरह चौथे महाव्रत के सम्बन्ध मे दिए गए आदेशो का आचरण करना तथा उनका सम्यक्तया परिपालन करना ही चौथे महाव्रत की आराधना करना है और इस तरह उसका परिपालन करने वाला निर्ग्रन्थ ही आत्मा का विकास कर सकता है।

अब पाचवे महाव्रत का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– अहावरं पंचमं भंते ! महव्वयं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं गिण्हाविज्जा, अन्नंपि परिग्गहं, गिण्हंतं न समणुजाणिज्जा जाव वोसिरामि॥

छाया– अथापरं पंचमं भदन्त ! महाव्रतं, सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि तद् अल्पं वा बहुं वा अणुं वा स्थूलं वा चित्तवन्तं वा अचित्तं वा नैव स्वयं परिग्रहं गृहीण्यात् नैवान्यैः परिग्रह ग्राहयेत् अन्यमपि परिग्रहं गृण्हन्तं न समनुजानीयात् यावत् व्युत्सृजामि।

***पदार्थ*– अहावरं–अथ अपर। पचमं–पाचवां। महव्वयं–महाव्रत कहते है। भंते–हे भगवन्। सव्वं–सर्व प्रकार के। परिग्गह–परिग्रह का। पच्चक्खामि–परित्याग करता हू। से–वह–साधु। अप्पं वा–अल्प। बहुं वा–बहुत। अणु–अणु–सूक्ष्म। वा–अथवा। थूलं वा–स्थूल। चित्तमतमचित्तमंत वा–सचित्त या अचित्त अर्थात् चेतना युक्त शिष्यादि अथवा अचित्त–चेतना रहित वस्तु। एव–निश्चयार्थक है, इस प्रकार के। परिग्गहं–परिग्रह को। सयं–स्वयं। न गिण्हिज्जा–ग्रहण नहीं करूगा। नेवन्नेहिं–न अन्य व्यक्ति से। परिग्गह–परिग्रह को। गिण्हाविज्जा–ग्रहण कराऊगा। परिग्गहं–परिग्रह को। गिण्हंत–ग्रहण करने वाले। अन्नंपि–अन्य व्यक्ति का। न**

---

१ अन्तगड सूत्र।

२ भगवती सूत्र शतक १५।

३ समवायांग सूत्र, ३३, दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, दशा ३।

४ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए खीर वा दहिं वा णवणीयं वा सप्पि वा गुडं वा खडं वा सक्कर वा मच्छंडियं वा अण्णयरं वा पणीयं आहार आहारेइ आहारत वा साइज्जइ। – निशीथ सूत्र ७१।

समणुजाणिज्जा-अनुमोदन भी नहीं करूगा। **जाव**-यावत्। **वोसिरामि**-परिग्रह से अपनी आत्मा को पृथक् करता हू-परिग्रह रूप आत्मा का व्युत्सर्जन करता हू।

मूलार्थ—**हे भगवन्! पाचवे महाव्रत के विषय में सर्व प्रकार के परिग्रह का परित्याग करता हूं। मैं अल्प, बहुत, सूक्ष्म, स्थूल तथा सचित्त और अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को न स्वय ग्रहण करुंगा, न दूसरों से ग्रहण कराऊगा और न ग्रहण करने वालो का अनुमोदन करूंगा। मैं अपनी आत्मा को परिग्रह से सर्वथा पृथक् करता हूं।**

हिन्दी विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे साधक को परिग्रह से निवृत्त होने का आदेश दिया गया है। परिग्रह से आत्मा मे अशान्ति बढती है। क्योकि, रात-दिन उसके बढाने एव सुरक्षा करने की चिन्ता बनी रहती है। जिससे साधक निश्चिन्त मन से स्वाध्याय आदि की साधना भी नहीं कर सकता है। इसलिए भगवान ने साधक को परिग्रह से सर्वथा मुक्त रहने का आदेश दिया है। साधु को थोडा या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल किसी भी तरह का परिग्रह नहीं रखना चाहिए। इसके साथ आगम मे यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि साधु साधना मे सहायक उपकरणो को स्वीकार कर सकता है। वस्त्र का परित्याग करने वाले जिनकल्पी मुनि भी कम से कम मुखवस्त्रिका और रजोहरण ये दो उपकरण अवश्य रखते हैं। वर्तमान मे दिगम्बर मुनि भी मोर पिच्छी और कमण्डल तो रखते ही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सयम मे सहायक होने वाले पदार्थों को रखना या ग्रहण करना परिग्रह नहीं है। परन्तु उन पर ममता, मूर्च्छा एव आसक्ति रखना परिग्रह है। आगम मे स्पष्ट कहा गया है कि सयम एव आध्यात्मिक साधना मे तेजस्विता लाने वाले उपकरण (वस्त्र-पात्र आदि) परिग्रह नहीं हैं। मूर्च्छा एव उन पर आसक्ति करना परिग्रह है[१]। तत्वार्थ सूत्र मे भी वस्त्र रखने को परिग्रह नहीं कहा है। उन्होने भी आगम मे अभिव्यक्त मूर्च्छा, या ममत्व को ही परिग्रह माना है[२]। वस्त्र एव पात्र ही क्यो, यदि अपने शरीर पर भी ममत्व है, अपनी साधना पर भी ममत्व है तो वह भी परिग्रह का कारण बन जाएगा। अत॰ साधक को मूर्च्छा-ममता एव आसक्ति का सर्वथा त्याग करके सयम साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

अब पचम महाव्रत की भावनाओ का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

तत्थिमा पढमा भावणा-सोयओ णं जीवे मणुन्नामणुन्नाइं सद्दाइं सुणेइ मणुन्नामणुन्नेहिं सद्देहिं नो सज्जिज्जा नो रज्जिज्जा नो गिज्झेज्जा नो मुज्झिज्जा नो अज्झोववज्जिज्जा नो विणिघायमावज्जेज्जा, केवली बूया॰-निग्गंथेणं मणुन्नामणुन्नेहिं सद्देहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया

---

१ न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्त महेसिणा॥
— श्री दशवैकालिक सूत्र।

२ मूर्छा परिग्रह। — तत्त्वार्थ सूत्र।

संतिविभंगा संतिकेवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा, न सक्का न सोउं सद्दा, सोतविसयमागया। रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।१। सोयओ जीवे मणुन्नामणुन्नाइं सद्दाइं सुणेइत्ति पढमा भावणा॥१॥

अहावरा दुच्चा भावणा– चक्खुओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं रूवाइं पासइ, मणुन्नामणुन्नेहिं रूवेहिं सज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा-नो सक्का रूवमदट्ठुं चक्खुविसयमागयं। राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए, चक्खुओ जीवो मणुन्ना २ इं रूवाइं पासइत्ति, दुच्चा भावणा।

अहावरा तच्चा भावणा-घाणओ जीवे मणुन्नामणुन्नाइं गंधाइं अग्घायइ मणुन्नामणुन्नेहिं गंधहिं नो सज्जिज्जा नो रज्जिज्जा जाव नो विणिघायमावज्जिज्जा, केवली बूया-मणुन्नामणुन्नेहिं गंधेहिं सज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा-न सक्का गंधमग्घाउं, नासाविसयमागयं। रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।१। घाणओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं गंधाइं अग्घायइत्ति तच्चा भावणा॥३॥

अहावरा चउत्था भावणा-जिब्भाओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं रसाइं अस्साएइ, मणुन्नामणुन्नेहिं रसेहिं नो सज्जिज्जा जाव विणिघायमावज्जिज्जा, केवली बूया-निग्गंथे णं मणुन्नामणुन्नेहिं रसेहिं सज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा–न सक्का रसमस्साउं, जीहाविसयमागयं। रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।१। जीहाओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं रसाइं अस्साएइत्ति चउत्था भावणा॥४॥

अहावरा पंचमा भावणा-फासओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं फासाइं पडिसंवेदेइ मणुन्नामणुन्नेहिं फासेहिं ने सज्जिज्जा जाव नो विणिघायमावज्जिज्जा, केवली बूया-निग्गंथे णं मणुन्नामणुन्नेहिं फासेहिं सज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवलीपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा न सक्का फासमवेएउं, फासविसयमागयं। रागदोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए।१। फासओ जीवो मणुन्नामणुन्नाइं फासाइं पडिसंवेदेइ पंचमा

भावणा ।।५ ।।

एतावताव पंचमे महव्वते सम्मं काएण फासिए॰ अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवइ, पंचमं भंते ! महव्वयं ! इच्चेएहिं पंचमहव्वएहिं पणवीसाहि व भावणाहिं संपन्ने अणगारे अहासुयं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आणाए आराहित्ता यावि भवइ। त्ति बेमि ।।

छाया– तस्येमा· पंच भावना: भवन्ति–

तत्र इय प्रथमा भावना-श्रोत्रत. जीव मनोज्ञामनोज्ञान् शब्दान् शृणोति मनोज्ञामनोज्ञेषु शब्देषु नो सज्जेत नो रज्जेत नो गृध्येत् नो मूर्च्छेत् नो अध्युपपद्येत नो विनिघातमापद्येत, केवली ब्रूयात्-आदानमेतत्, निर्ग्रन्थः मनोज्ञामनोज्ञेषु शब्देषु सज्जमान रज्जमान यावत् विनिघातमापद्यमानः, शान्तिभेदाः शान्तिविभगाः शान्ति केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्मात् भ्रश्येत्, न शक्या· न श्रोतुं शब्दाः श्रोत्रविषयमागताः रागद्वेषास्तु ये तत्र तान् भिक्षु परिवर्जयेत्। श्रोत्रत. जीवः मनोज्ञामनोज्ञान् शब्दान् शृणोति प्रथमा भावना।

अथापरा द्वितीया भावना-चक्षुष्टो जीवः मनोज्ञामनोज्ञानि रूपाणि पश्यति मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु सज्जमान यावत् विनिघातमापद्यमानः शान्तिभेदा यावद् भ्रश्येत्। न शक्यं रूपमद्रष्टुं चक्षुर्विषयमागतं, रागद्वेषास्तु ये तत्र तान् भिक्षु. परिवर्जयेत्। चक्षुष्टो जीवो मनोज्ञामनोज्ञानि रूपाणि पश्यति द्वितीया भावना।

अथापरा तृतीया भावना-घ्राणतो जीवो मनोज्ञामनोज्ञान् गंधान आजिघ्रति, मनोज्ञामनोज्ञेषु गन्धेषु नो सज्जेत यावत् नो रज्जयेत यावत् नो विनिघातमापद्येत केवली ब्रूयात्- आदानमेतत् मनोज्ञामनोज्ञेषु गधेषु सज्जमान. यावत् विनिघातमापद्यमान· शान्तिभेदा यावत् भ्रश्येत्। न शक्यो गन्धनाघ्रातुं, नासाविषयमागतं, रागद्वेषास्तु ये तत्र तान् भिक्षु. परिवर्जयेत्। घ्राणतो जीव मनोज्ञामनोज्ञान् गधान् आजिघ्रति इति तृतीया भावना।

अथापरा चतुर्थी भावना– जिह्वातो जीवः मनोज्ञामनोज्ञान् रसान् आस्वादयति, मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु नो सज्जेत यावत् नो विनिघात-मापद्येत केवली ब्रूयात्-निर्ग्रन्थः मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु सज्जमान· यावद् विनिघातमापद्यमानः शान्तिभेदा यावत् भ्रश्येत्। न शक्यः रसआस्वादयितुं जिह्वाविषयमागत. । रागद्वेषास्तु ये तत्र तान् भिक्षुः परिवर्जयेत्। जिह्वातो जीवः मनोज्ञामनोज्ञान् रसान् आस्वदते इति चतुर्थी भावना।

अथापरा पंचमी भावना-स्पर्शतः जीवः मनोज्ञामनोज्ञान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति मनोज्ञामनोज्ञेषु स्पर्शेषु न सज्जेत यावत् नो विनिघातमपाद्येत केवली ब्रूयात् आदानमेतत् , निर्ग्रन्थ. मनोज्ञामनोज्ञेषु स्पर्शेषु सज्जमानः यावत् विनिघातमापद्यमानः शान्तिभेदाः, शान्ति- विभंगाः केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् न शक्यः स्पर्शोऽवेदितुं स्पर्शविषयमागतः। रागद्वेषा-

स्तु ये तत्र तान् भिक्षुः परिवर्जयेत्। स्पर्शत. जीवः मनोज्ञामनोज्ञान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति, इति पंचमी भावना।

एतावता पंचमे महाव्रतं सम्यक् अवस्थितः आज्ञाया आराधकश्चापि भवति, पंचमं भदन्त महाव्रतम्ः। इत्येतैः पंच महाव्रतैः पंचविंशत्या च भावनाभि. सम्पन्न. अनागार. यथाश्रुतं यथाकल्प यथामार्गं कायेन स्पृष्ट्वा पालयित्वा तीर्त्वा कीर्तयित्वा आज्ञाया आराधक-श्चापि भवति।

पदार्थ— **तस्सिमाओ**-उस महाव्रत की ये। **पंच**-पाच। **भावणाओ**-भावनाए। **भवंति**-है।

तत्थिमा-उन पाच भावनाओ मे से। **पढमा भावणा**-प्रथम भावना यह है। **ण**-वाक्यालकारार्थक है। **जीवे**-जीव। **सोयओ**-श्रोत्र इन्द्रिय से। **मणुन्नामणुन्नाइ**-मनोज्ञामनोज्ञ अर्थात् प्रिय और अप्रिय। **सद्दाइं**-शब्दो को। **सुणेइ**-सुनता है किन्तु। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-प्रिय और अप्रिय। **सद्देहिं**-शब्दो मे। **नो सज्जिज्जा**-आसक्त न हो। **नो रज्जिज्जा**-अनुरक्त-राग युक्त न हो। **नो गिज्झेज्जा**-गृद्धि वाला न हो। **नो मुज्झिज्जा**-मोहित या मूर्च्छित न हो। **नो अज्झोववज्जिज्जा**-अत्यन्त आसक्त न हो। **नो विणिघायमावज्जिज्जा**-और विनाश को प्राप्त न हो अर्थात् राग-द्वेष न करे कारण कि। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते है कि यह कर्म बन्ध का हेतु है। **णं**-पूर्ववत्। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ-साधु। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-मनोज्ञामनोज्ञ-प्रिय और अप्रिय। **सद्देहिं**-शब्दो मे। **सज्जमाणे**-आसक्त होता हुआ। **रज्जमाणे**-राग करता हुआ। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जमाणे**-राग-द्वेष करता हुआ। **सतिभेया**-शांति का भेदक। **संतिविभगा**-शान्ति रुप अपरिग्रहव्रत का भेदक। **संति केवलीपन्नत्ताओ**-शान्ति रूप केवलि प्रणीत-केवली भाषित। **धम्माओ**-धर्म से। **भंसिज्जा**-भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् धर्म से पतित हो जाता है। **सोतविसयभागया**-श्रोत्र विषय मे आए हुए। **सद्दा**-शब्द। **न सक्का**-समर्थ नहीं। **न सोउं**-न सुनने को अर्थात् आने वाले शब्द अवश्य सुने जाते है किन्तु। **जे**-जो। **तत्थ**-यहा पर। **रागदोसा**-राग-द्वेष है। **उ**-वितर्क मे है। **त**-उसको अर्थात् राग-द्वेष को। **भिक्खू**-भिक्षु-साधु। **परिवज्जए**-छोड़ दे। **सोयओ**-श्रोत्र से। **जीवे**-जीव-साधु। **मणुन्नामणुन्नाइं**-प्रिय और अप्रिय। **सद्दाइ**-शब्दो को। **सुणेइ**-सुनता है किन्तु उन पर रागद्वेष नहीं लाता। **पढमा भावणा**-यह प्रथम भावना है।

अहावरा दुच्चा भावणा-अब दूसरी भावना को कहते है। **जीवो**-जीव। **चक्खुओ**-चक्षु से-चक्षु द्वारा। **मणुन्नामणुन्नाइं**-मनोज्ञामनोज्ञ प्रिय और अप्रिय। **रूवाइ**-रूयो को। **पासइ**-देखता है, फिर। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-मनोज्ञामनोज्ञ। **रूवेहिं**-रूपों में। **सज्जमाणे**-आसक्त होता हुआ। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जमाणे**-राग-द्वेष के वशीभूत हो कर विनाश को प्राप्त होता हुआ। **संतिभेया**-शान्ति भेद। **जाव**-यावत्। **भंसिज्जा**-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। **चक्खुविसयमागयं**-चक्षु विषय को प्राप्त हुआ। **रूवं**-रूप। **अदट्ठुं न सक्का**-अदृष्ट नहीं रह सकता अर्थात् वह दिखाई देगा ही किन्तु। **तत्थ**-वहां पर। **जे**-जो। **रागदोसा**-रागद्वेष उत्पन्न होता है। **तं**-उसको। **भिक्खू**-भिक्षु-साधु। **परिवज्जए**-त्याग दे-छोड़ दे। **उ**-वितर्क मे है।

अहावरा तच्चा भावणा-अथ अपर तीसरी भावना यह है। **जीवे**-जीव। **घाणओ**-घ्राण इन्द्रिय से। **मणुन्नामणुन्नाइं**-मनोज्ञामनोज्ञ प्रिय और अप्रिय। **गंधाइं**-गधो को। **अग्घायइ**-सूघता है। **मणुन्नामणुन्नेहि**-मनोज्ञामनोज्ञ। **गंधेहि**-गधों मे। **नो सज्जिज्जा**-आसक्त न हो। **नो रज्जिज्जा**-राग भाव न करे। **जाव**-यावत्। **नो विणिघायमावज्जिज्जा**-द्वेष से विनाश को प्राप्त न हो। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-प्रिय तथा अप्रिय। **गंधेहिं**-गधो मे। **सज्जमाणे**-आसक्त होता हुआ। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जमाणे**-विनिघात-विनाश को प्राप्त होता हुआ। **संतिभेया**-शाति रूप चारित्र का भेद करता है। **जाव**-यावत्। **भंसिज्जा**-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। **नासाविसयमागय**-नासिका के विषय को प्राप्त हुआ। **गंध**-गन्ध। **न सक्का अग्घाउ**-अगन्ध नहीं हो सकता अर्थात् नासिका के सन्निधान को प्राप्त हुआ गन्ध नासिका के छिद्रो मे प्रविष्ट होता है किन्तु। **तत्थ**-उस मे। **जे**-जो। **रागदोसा**- रागद्वेष उत्पन्न होता है। **ते**-उसे। **भिक्खू**-साधु। **परिवज्जए**-त्याग दे अर्थात् उसमे राग-द्वेष न करे। **घाणओ**-घ्राणेन्द्रिय से। **जीवो**-जीव। **मणुन्नामणुन्नाइ गधाइ**-प्रिय और अप्रिय गन्ध को। **अग्घायइ**-ग्रहण करता है, सूघता है। **त्ति**-इस प्रकार यह। **तच्चा भावणा**-तीसरी भावना कही गई है।

अहावरा चउत्था भावणा-अब यह चौथी भावना कही जाती है। **जीवो**-जीव। **जिब्भाओ**-जिव्हा से। **मणुन्नामणुन्नाइ**-मनोज्ञामनोज्ञ-प्रिय तथा अप्रिय। **रसाइं**-रसो का। **अस्साएइ**-आस्वादन करता है-स्वाद लेता है किन्तु। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-प्रिय और अप्रिय। **रसेहि**-रसो मे। **नो सज्जिज्जा**-आसक्त न हो। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जिज्जा**-विनिघात-विनाश को प्राप्त न होवे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **णं**-वाक्यालकार अर्थ में है। **निग्गथे**-निर्ग्रन्थ साधु। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-प्रिय तथा अप्रिय। **रसेहिं**-रसो मे। **सज्जमाणे**-आसक्त होता हुआ। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जमाणे**-विनाश को प्राप्त होता हुआ। **संतिभेया**-शान्ति भेद। **जाव**-यावत्। **भसेज्जा**-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। **जीहाविसयमागयं**-जिव्हा के सन्निधान मे आए हुए। **रस**-रस के पुद्गल। **न सक्कमस्साउ**-अनास्वादित नहीं रह सकते अर्थात् जिव्हा के विषय को प्राप्त हुआ कोई रस ऐसा नहीं है कि जिसका आस्वादन न किया जा सके किन्तु। **तत्थ**-उस मे। **जे**-जो। **रागदोसा**-राग-द्वेष उत्पन्न होते है। **ते**-उनका। **भिक्खू**-भिक्षु-साधु। **परिवज्जए**-परित्याग करे अर्थात् उनमें राग-द्वेष न करे। **जीहाओ**-जिव्हा से। **जीवो**-जीव। **मणुन्नोमणुन्नाइं**-प्रिय और अप्रिय। **रसाइं**-रसो का। **अस्साएइ**-आस्वादन करता है। **त्ति**-इस प्रकार यह। **चउत्था भावणा**-चतुर्थ भावना कही गई है।

अहावरा पचमा भावणा-अब अन्य पाचवीं भावना को कहते हैं। **जीवो**-जीव। **फासाओ**-स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा। **मणुन्नामणुन्नाइ**-प्रिय और अप्रिय। **फासाइं**-स्पर्शों को। **पडिसंवेएइ**-अनुभव करता है अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय से मृदु कर्कशादि स्पर्शों को अवगत करता है परन्तु वह जीव। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-मनोज्ञामनोज्ञ। **फासेहिं**-स्पर्शों मे। **नो सज्जिज्जा**-आसक्त न हो। **जाव**-यावत्। **नो विणिघायमावज्जिज्जा**-विनाश को प्राप्त न होवे। **केवली बूया**-केवली भगवान कहते हैं। **ण**-वाक्यालकार अर्थ में है। **निग्गंथे**-निर्ग्रन्थ। **मणुन्नामणुन्नेहिं**-प्रिय और अप्रिय। **फासेहिं**-स्पर्शों में। **सज्जमाणे**-आसक्त होता हुआ। **जाव**-यावत्। **विणिघायमावज्जमाणे**-विनाश

को प्राप्त होता हुआ। **संतिभेया**-शांति का भेद। **संतिविभंगा**-शाति विभग। **सतिकेवलीपन्नत्ताओ**-शान्ति रूप केवली भाषित। **धम्माओ**-धर्म से। **भसिज्जा**-भ्रष्ट हो जाता है। **फासविसयमागय**-स्पर्शेन्द्रिय के विषय को प्राप्त हुआ। **फासं**-स्पर्श। **अवेएउं**-बिना स्पर्शित हुए। **न सक्का**-नहीं रहता अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय के सन्निधान मे आए हुए स्पर्शनीय पुद्गलो का स्पर्श हुए बिना नहीं रहता, परन्तु। **तत्थ**-वहा पर। **जे**-जो। **रागदोसा**-राग-द्वेष उत्पन्न होता है। **ते**-उनको। **भिक्खू**-भिक्षु-साधु। **परिवज्जए**-सर्व प्रकार से त्याग दे, छोड़ दे। **जीवो**-जीव। **मणुन्नामणुन्नाइं**-प्रिय तथा अप्रिय। **फासाइ**-स्पर्शों को। **फासाओ**-स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा। **पडिसवेएइ**-अनुभव करता है, परन्तु उन के विषय मे राग-द्वेष नहीं करना यह। **पचमा**-पाचवीं। **भावणा**-भावना कही गई है।

एतावता-इस प्रकार। **पंचमे महव्वए**-पचम महाव्रत मे। **सम्म०**-सम्यक् प्रकार से। **अवट्ठिए**-अवस्थित। **आणाए**-आज्ञा का। **आराहिए**-आराधक। **यावि भवइ**-होता है। **पचम भंते महव्वय**-हे भगवन्! ये पाचवा महाव्रत है। **इच्चेएहिं पंचमहव्वएहिं**-इन पाच महाव्रतो से, तथा। **पणवीसाहि य भावणाहिं**-पच्चीस भावनाओ से। **सपन्ने**-युक्त। **अणगारे**-साधु। **अहासुय**-श्रुत के अनुसार। **अहाकप्प**-कल्प के अनुसार। **अहामग्गं**-मार्ग के अनुसार। **सम्म**-अच्छी तरह से। **काएण**-काया द्वारा। **फासित्ता**-स्पर्शित कर। **पालित्ता**-पालन कर। **तीरित्ता**-तीरित कर। **किट्टित्ता**-कीर्तित कर के। **आणाए**-आज्ञा का। **आराहित्ता**-आराधन करने वाला। **यावि भवइ**-होता है।

मूलार्थ—इस पचम महाव्रत की ये पांच भावनाए है– श्रोत्र से यह जीव प्रिय तथा अप्रिय शब्दों को सुनता है, परन्तु वह प्रिय तथा अप्रिय शब्दो मे आसक्त न हो, राग भाव न करे, गृद्ध न हो, मूर्च्छित न हो. तथा अत्यन्त आसक्ति एवं राग-द्वेष न करे, केवली भगवान कहते है कि साधु मनोज्ञामनोज्ञ शब्दों मे आसक्त होता हुआ, राग करता हुआ यावत् विद्वेष करता हुआ शान्ति भेद एव शान्ति विभग करता है और केवली भाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है तथा श्रोत्र विषय में आए हुए शब्द ऐसे नहीं जो सुने न जाए किन्तु उनके सुनने पर जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, भिक्षु उसका परित्याग कर दे। अत जीव के श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मे आए हुए प्रिय और अप्रिय शब्दो मे राग-द्वेष न करे। यह प्रथम भावना कही गई है।

चक्षु के द्वारा यह जीव प्रिय तथा अप्रिय रूपो को देखता है, प्रिय सुन्दर रूपों में आसक्त होता हुआ यावत् द्वेष करता हुआ शान्ति भेद यावत् धर्म से पतित हो जाता है। तथा चक्षु के विषय मे आया हुआ रूप अदृष्ट नहीं रह सकता अर्थात् वह अवश्य दिखाई देगा, परन्तु उसको देखने से उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष का भिक्षु परित्याग कर दे। इस तरह चक्षु के द्वारा देखे जाने वाले प्रिय और अप्रिय रूपों पर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए, यह द्वितीय भावना है।

तीसरी भावना यह है– नासिका के द्वारा जीव प्रिय तथा अप्रिय गंधों को सूंघता है, परन्तु प्रिय तथा अप्रिय गंधों को सूंघता हुआ उनमे राग-द्वेष न करे, क्योंकि केवली भगवान कहते हैं कि प्रिय तथा अप्रिय गंधों मे राग-द्वेष करता हुआ साधु शांति का भेदन करता हुआ धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। तथा ऐसे भी नहीं कि नासिका के सन्निधान मे आए हुए गंध के परमाणु पुद्गल सूंघे

न जा सकें। परन्तु इसका तात्पर्य इतना ही है कि साधु उनमें राग-द्वेष न करे।

चतुर्थ भावना इस प्रकार वर्णन की गई है-जीव जिह्वा से प्रिय तथा अप्रिय रसों का आस्वाद लेता है किन्तु उनमें रागद्वेष न करे। केवली भगवान कहते हैं कि प्रिय तथा अप्रिय रसों में आसक्त एवं राग-द्वेष करने वाला निर्ग्रन्थ शान्ति भेद और धर्म से पतित हो जाता है। तथा जिह्वा को प्राप्त हुआ रस अनास्वादित नहीं रह सकता किन्तु उसमे जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है उसका भिक्षु परित्याग कर दे। और जिव्हा से आस्वादित होने वाले प्रिय तथा अप्रिय रसो मे राग-द्वेष से रहित होना यह चतुर्थ भावना है।

अब पांचवीं भावना को कहते हैं– यह जीव स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा प्रिय और अप्रिय स्पर्शों का अनुभव करता है, किन्तु प्रिय स्पर्श मे राग और अप्रिय स्पर्श मे द्वेष न करे। केवली भगवान कहते है कि साधु प्रिय स्पर्श मे राग और अप्रिय मे द्वेष करता हुआ शान्ति भेद, शान्ति विभंग करता हुआ शान्तिरूप केवलि भाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। स्पर्शेन्द्रिय के सन्निधान मे आए हुए स्पर्श के पुद्गल बिना स्पर्शित हुए– बिना अनुभव किए नहीं रह सकते, किन्तु वहां पर जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है साधु उसको सर्वथा छोड दे। स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा जीव प्रिय तथा अप्रिय स्पर्शों का अनुभव करता है, उनमे राग और द्वेष का न करना यह पाचवीं भावना कही गई है।

इस प्रकार यह पाचवां महाव्रत सम्यक् प्रकार से काया द्वारा स्पर्श किया हुआ, पालन किया हुआ, तीर पहुंचाया हुआ, कीर्तन किया हुआ, अवस्थित रखा हुआ और आज्ञा पूर्वक आराधन किया हुआ होता है। इस पांचवें महाव्रत मे सर्व प्रकार के परिग्रह का त्याग किया जाता है।

इन पाच महाव्रत और उनकी पच्चीस भावनाओ से सम्पन्न हुआ साधु यथा श्रुत यथा कल्प और यथामार्ग अर्थात् श्रुत-कल्प और मार्ग के अनुसार इनका सम्यक्तया काया से स्पर्श कर, पालन कर और तीर पहुंचा कर और भगवान की आज्ञानुसार इनका आराधन करके आराधक बन जाता है, इस प्रकार मै कहता हू।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे पाचवे महाव्रत की पाच भावनाए बताई गई हैं– १ प्रिय और अप्रिय शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस और ५ स्पर्श पर राग-द्वेष न करे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि साधक कान, आख, नाक आदि बन्द करके चले। उसे अपनी इन्द्रियो को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। शब्द कान मे पडते रहे, इसमे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु, उन प्रिय या अप्रिय शब्दो के ऊपर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। मधुर एव कर्ण प्रिय गीतो को सुनने या इसी तरह दूसरे व्यक्ति की निन्दा-चुगली सुनने के लिए उस ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। इससे स्वाध्याय का अमूल समय नष्ट होता है एव मन मे रागद्वेष की भावना भी उत्पन्न हो सकती है। अत. साधक को किसी भी तरह के शब्दो पर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए।

इसी तरह अपनी आखो के सामने आने वाले सुन्दर एव कुत्सित रूप पर भी राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। उसे सुन्दर, सुहावने दृश्यो एव लावण्यमयी स्त्रियो आदि के रूप को देखकर उस पर मुग्ध एव आसक्त नहीं होना चाहिए और न घृणित दृश्यो को देखकर नाक-भौं सिकोडना चाहिए। साधक को

सदा राग-द्वेष से ऊपर उठकर तटस्थ रहना चाहिए।

इसी तरह वायु के साथ पदार्थों मे से आने वाली सुगन्ध एव दुर्गन्ध के समय भी साधु को मध्यस्थ भाव रखना चाहिए। सुवासित पदार्थों मे राग भाव नहीं रखना चाहिए और न दुर्गन्ध मय पदार्थों पर द्वेष भाव। साधक को सदा राग-द्वेष से ऊपर उठकर सयम साधना मे सलग्न रहना चाहिए।

इसी प्रकार साधक को रसो मे आसक्त नहीं होना चाहिए। स्वादिष्ट या अस्वादिष्ट जैसा भी निर्दोष आहार प्राप्त हुआ हो उसे समभाव पूर्वक भोगना चाहिए। उसे सुस्वादु एव रस युक्त आहार पर राग भाव नहीं रखना चाहिए और न नीरस आहार पर द्वेष। साधक को कभी भी स्वाद के वशीभूत नहीं होना चाहिए।

साधक को अनेक तरह के प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्श होते रहते हैं। परन्तु उसे किसी भी स्पर्श पर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। न मनोज्ञ स्पर्श पर राग भाव रखना चाहिए और अमनोज्ञ स्पर्श पर द्वेष भाव। यही साधक की साधना का वास्तविक स्वरूप है।

इस तरह साधक जब इन आदेशो को आचरण मे उतारता है, उन्हे जीवन मे साकार रूप देता है, तभी अपरिग्रह महाव्रत की आराधना कर पाता है।

इस प्रकार इस अध्ययन मे वर्णित ५ महाव्रत एव २५ भावनाओ का सम्यक्तया परिपालन करने वाला साधक ही आराधक होता है और वह क्रमश आत्मा का विकास करता हुआ कर्म बन्धनो से युक्त होता हुआ, एक दिन अपने साध्य को पूर्णतया सिद्ध कर लेता है।

प्रस्तुत भावना अध्ययन मे भगवान महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। भगवान महावीर के जीवन एव साधना मे सबद्ध होने के कारण प्रस्तुत अध्ययन मे भावनाओ का उल्लेख किया गया है। ऐसे प्रश्न व्याकरण सूत्र के पाचवे सवर द्वार मे भावनाओ का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यहा केवल दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन भगवान महावीर के जीवन एव साधना से सबधित होने के कारण प्रत्येक साधक के लिए मननीय एव चिन्तनीय है। इससे साधक की साधना मे तेजस्विता आएगी और उसे अपने पथ पर बढने मे बल मिलेगा। अत. प्रत्येक साधक को इसका गहराई से अध्ययन करके भगवान महावीर की साधना को जीवन मे साकार रूप देने का प्रयत्न करना चाहिए। सक्षेप मे महाव्रतो एव उनकी भावनाओ का महत्व आचरण करने से है। उनका सम्यक्तया आचरण करके ही साधक सर्व प्रकार के कर्म-बन्धनो से मुक्त-उन्मुक्त हो सकता है।

पञ्चदश अध्ययन (तृतीया चूला) समाप्त।

॥ चतुर्थ चूला– विमुक्ति ॥

सोलहवां अध्ययन
(विमुक्ति)

पन्द्रहवे अध्ययन मे ५ महाव्रत और उसकी २५ भावनाओ का उल्लेख किया गया है। अब प्रस्तुत अध्ययन मे विमुक्ति–मोक्ष के साधन रूप साधनो का उल्लेख किया गया है। यह स्पष्ट है कि महाव्रतो की साधना कर्मो से मुक्त होने के लिए ही है। अत इस अध्ययन मे निर्जरा के साधनो का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इस वर्णन को पाच अधिकारो मे विभक्त किया गया है– १ अनित्य अधिकार, २ पर्वत अधिकार, ३ रूप्य (चादी) अधिकार, ४ भुजगत्वग् अधिकार और ५ समुद्र अधिकार। इस तरह समस्त साधना का उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति भी देश मुक्ति एव सर्व मुक्ति अपेक्षा से दो प्रकार की कही गई है। सामान्य साधु से लेकर भवस्थ केवली पर्यन्त की देश मुक्ति मानी गई है और अष्ट कर्मबन्धन का सर्वथा क्षय करके निर्वाण पद को प्राप्त करना सर्व मुक्ति कहलाती है। उक्त उभय प्रकार की मुक्ति की प्राप्ति कर्म निर्जरा से होती है। अत निर्जरा के साधनो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है–

मूलम्– अणिच्चमावासमुविंति जंतुणो, पलोयए सुच्चमिणं अणुत्तरं।
विऊसिरे विन्नु अगारबंधणं, अभीरु आरंभपरिग्गहं चए॥१॥

छाया– अनित्यमावासमुपयान्ति जन्तव·, प्रलोकयेत् श्रुत्वा इदमनुत्तरम्।
व्युत्सृजेत् विज्ञ· अगारबन्धनं, अभीरु· आरम्भपरिग्रह त्यजेत्॥१॥

पदार्थ– **इण**–इस–जिन प्रवचन को, जो। **अणुत्तर**–सर्व श्रेष्ठ है, जिसमे यह कहा गया है कि। **जतुणो**–जीव। **आवास**–मनुष्य आदि जन्मो को प्राप्त करते है, वे। **अणिच्च**–अनित्य है ऐसा। **सुच्चं**–सुनकर। **पलोयए**–उस पर गभीरता एव अन्तर हृदय से विचार कर के। **विन्नु**–विद्वान व्यक्ति। **आगारबधण वा**–पारिवारिक स्नेह बन्धन को। **विऊसिरे**–त्याग दे, और वह। **अभीरु**–सात प्रकार के भय एव परीषहो से नहीं डरने वाला साधक। **आरभपरिग्गह**–समस्त प्रकार के सावद्य कर्म एव परिग्रह को भी। **चए**–छोड़ दे।

मूलार्थ—**सर्व श्रेष्ठ जिन प्रवचन में यह कहा गया है कि आत्मा मनुष्य आदि जिन योनियो मे जन्म लेता है, वे स्थान अनित्य है। ऐसा सुनकर एवं उस पर हार्दिक चिन्तन करके समस्त भयो से निर्भय बना हुआ विद्वान पारिवारिक स्नेह बन्धन का, समस्त सावद्य कर्म एवं परिग्रह का त्याग कर दे।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा मे अनित्यता के स्वरूप का वर्णन किया गया है। भगवान ने

अपने प्रवचन मे यह स्पष्ट कर दिया है कि ससार मे जीवो के उत्पन्न होने की जितनी भी योनिए हैं, वे अनित्य हैं। क्योकि अपने कृत कर्म के अनुसार जीव उन योनियो मे जन्म ग्रहण करता है और अपने उस भव के आयु कर्म के समाप्त होते ही उस योनि के प्राप्त शरीर को छोड देता है। इस तरह समस्त योनिया कर्म जन्य हैं, इस कारण वे अनित्य हैं। जब तक जीव ससार मे परिभ्रमण करता रहता है। तब तक वह अपने कृत कर्म के अनुसार एक योनि से दूसरी योनि मे परिभ्रमण करता रहता है। इससे योनि की अनित्यता स्पष्ट हो जाती है। परन्तु इससे उसके अस्तित्व का नाश नहीं होता इसलिए उसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि ससार अनित्य है, ससार मे स्थित जीव एक योनि से दूसरी योनि में भटकता रहता है। इससे हम नि.सदेह कह सकते हैं कि ससार मिथ्या नहीं, अनित्य एव परिवर्तन शील है। परन्तु इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि परिभ्रमण के कारण जीव के आत्म प्रदेशो मे किसी तरह का अन्तर नहीं आता है। उसकी योनि की पर्याए, शरीर आदि की पर्याए एव ज्ञान-दर्शन की पर्याए परिवर्तित होती रहती हैं, परन्तु इन परिवर्तनो के कारण आत्म द्रव्य नहीं बदलता, उसके असख्यात प्रदेशो मे किसी भी तरह की न्यूनाधिकता नहीं आती है।

इस तरह ससार की अनित्यता के स्वरूप को सुन कर और उस पर गहराई से चिन्तन मनन करके विद्वान एव निर्भय व्यक्ति ससार से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है। फिर वह पारिवारिक स्नेह बन्धन मे बधा नहीं रहता है। वह मृत्यु के समय जबरदस्ती टूटने वाले स्नेह बन्धन को स्वेच्छा से तोड देता है। वह अनासक्त भाव से पारिवारिक ममता का एव सावद्य कर्मो का तथा समस्त परिग्रह का त्याग करके साधना के मार्ग पर कदम रख देता है।

इस गाथा मे आत्मा की द्रव्य रूप से नित्यता एव योनि आदि पर्यायो या ससार की अनित्यता, अस्थिरता एव परिवर्तनशीलता को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। और साथ मे यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि विद्वान एव निर्भय व्यक्ति ही उसके यथार्थ रूप को समझ कर सासारिक सबधो एव साधनो का परित्याग कर सकता है।

अब पर्वत अधिकार का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– तहागयं भिक्खुमणंतसंजयं, अणेलिसं विन्नु चरंतमेसणं।
तुदंति वायाहिं अभिद्दवं नरा, सरेहिं संगामगयं व कुंजरं ॥२॥

छाया– तथागतं भिक्षुमनंतसंयतं, अनीदृशं विज्ञः चरंतमेषणाम्।
तुदन्ति वाग्भिः अभिद्रवन्तो नराः, शरैः संग्राममगतमिव कुंजरं॥ २॥

***पदार्थ*– तहागयं**-तथा भूत अनित्यादि भावनायुक्त। **भिक्खु**-भिक्षु-साधु जो। **अणतसंजयं**-एकेन्द्रियादि जीवो में अर्थात् उनकी रक्षा में सदैव यत्नशील है। **अणेलिसं**-अनुपम सयमशील। **विन्नु**-विद्वान मुनि को जो। **चरंतमेसणं**-शुद्धाहार की गवेषणा करने वाला है। **नरा**-कोई अनार्य पुरुष। **वायाहिं** -असभ्य वचनो से। **तुदन्ति**-व्यथित करते हैं-व्यथा पहुचाते हैं और। **अभिद्दवं**-लोष्टपाषाणादि से प्रहार करते है। **व**-जैसे। **संगामगयं**-संग्राम में गए हुए। **कुंजरं**-हस्ती को। **सरेहिं**-शरो-बाणो से तोड़ते हैं।

***मूलार्थ*—अनित्यादि भावनाओं से भावित, अनन्त जीवों की रक्षा करने वाले अनुपम**

सयमी और जिनागमानुसार शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले भिक्षु को देखकर कतिपय अनार्य व्यक्ति साधु पर असभ्य वचनो एवं पत्थर आदि का इस तरह प्रहार करते है, जैसे संग्राम में वीर योद्धा शत्रु के हाथी पर बाणो की वर्षा करते है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे साधु की सहिष्णुता एव समभाव वृत्ति का उल्लेख किया गया है। इसमे बताया गया है जैसे युद्ध के समय वीर योद्धा शत्रु पक्ष के हाथी पर शस्त्रो एव बाणो का प्रहार करते हैं और वह हाथी उन प्रहारो को सहता हुआ उन पर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार यदि कोई असभ्य, अशिष्ट या अनार्य पुरुष किसी साधु के साथ अशिष्टता का व्यवहार करे, उसे अभद्र गालिया दे या उस पर पत्थर आदि फैंके तो साधु समभाव पूर्वक उस वेदना को सहता हुआ राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करे। उस समय साधु उत्तेजित न हो और न आवेश मे आकर उनके साथ वैसा ही व्यवहार करे और न उन्हे श्राप-अभिशाप दे। क्योकि, इससे उसकी आत्मा मे राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढेगी और परस्पर वैर भाव मे अभिवृद्धि होगी और कर्म बन्ध होगा। अत साधु अपनी प्रवृत्ति को राग-द्वेष की ओर न बढने दे। उस समय वह क्षमा एव शान्ति के द्वारा राग-द्वेष एव कषायो पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करे। जिसके वश मे हो कर वे दुष्ट एव असभ्य व्यक्ति दुर्व्यवहार कर रहे हैं और इसके द्वारा कर्मबन्ध करके ससार परिभ्रमण बढा रहे है। साधु रागद्वेष के इस भयकर परिणाम को जानकर आत्मा के इन महान शत्रुओ को दबाने का, नष्ट करने का प्रयत्न करे। इसका तात्पर्य यह है कि साधु को हर हालत मे, प्रत्येक परिस्थिति मे अपनी अहिसा वृत्ति का परित्याग नहीं करना चाहिए। उसे सदा समभाव एव निर्भयता पूर्वक प्रत्येक प्राणी को क्षमा करते हुए राग-द्वेष पर विजय पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधु को और परीषहो के उत्पन्न होने पर भी पर्वत की तरह अचल, अटल एव निष्कप रहना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्–तहप्पगारेहिं जणेहिं हीलिए, ससद्दफासा फरुसा उईरिया।
तितिक्खए नाणि अदुट्ठचेयसा, गिरिव्व वाएण न संपवेवए॥३॥

छाया– तथाप्रकारै जनैर्हीलित , सशब्दस्पर्शा. परुषा· उदीरिता·।
तितिक्षते ज्ञानी अदुष्टचेता , गिरिरिव वातेन न संप्रवेपते॥ ३॥

पदार्थ– **तहप्पगारेहिं**-नथाप्रकार के। **जणेहिं**-जनो के द्वारा। **हीलिए**-हीलित अर्थात् तर्जित और ताड़ित किया हुआ तथा। **फरुसा मसद्दफामा**-तीव्र आक्रोश और शीतोष्णादि के स्पर्श से। **उईरिया**-उदीरित मुनि। **तितिक्खए**-उन परीषहो को सम्यक् प्रकार से सहन करता है, क्योंकि वह। **नाणी**-ज्ञानवान् है अर्थात् यह मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है अत मुझे ही इसे भोगना होगा ऐसा जानता है अत । **अदुट्ठचेयसा**-अदुष्ट-कलुषता रहति मन वाला वह मुनि अनार्य पुरुषो द्वारा किए जाने वाले उपद्रवों से। **वाएण**-वायु से। **गिरिव्व**-पर्वत की भाति। **न सपवेवए**-कम्पित नहीं होता अर्थात् जैसे पर्वत वायु से कम्पायमान नहीं होता ठीक उसी प्रकार सयमशील मुनि भी उक्त परीषहोपसर्गों से चलायमान नहीं होता है।

मूलार्थ—**असस्कृत एव असभ्य पुरुषो द्वारा आक्रोशादि शब्दो से या शीतादि स्पर्शों से पीड़ित या व्यथित किया हुआ ज्ञानयुक्त मुनि उन परीषहोपसर्गों को शान्ति पूर्वक सहन करे। जिस**

प्रकार वायु के प्रबल वेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार संयमशील मुनि भी इन परीषहों से कम्पित-विचलित न हो अर्थात् अपने सयम व्रत मे दृढ़ रहे।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे पूर्व गाथा की बात दोहराई गई है। इसमे यह बताया गया है कि जैसे प्रचण्ड वायु के वेग से भी पर्वत कपायमान नहीं होता, उसी तरह ज्ञान सपन्न मुनि असभ्य एव असस्कृत व्यक्तियो द्वारा दिए गए परीषहो-कष्टो से कम्पित नहीं होता, अपनी समभाव की साधना से विचलित नहीं होता। वह कष्टो के भयकर तूफानो मे भी अचल, अटल एव स्थिर भाव से अपनी आत्म साधना मे सलग्न रहता है। वह उन परीषहो को अपने पूर्व कृत कर्म का फल जानकर समभाव पूर्वक उन्हे सहन करता है और उन कर्मों को या कर्म बन्ध के कारण राग-द्वेष और कषायो को क्षय करने का प्रयत्न करता है।

प्रस्तुत गाथा मे प्रयुक्त 'नाणी अदुट्ठचेयसा' पद का अर्थ यह है कि ज्ञानी उन कष्टो को पूर्व-कृत कर्म का फल समझकर उसे समभाव पूर्वक सहन करता है। वह इस घोर सकट के समय भी विषमता की ओर गति नहीं करता है। वृत्तिकार ने भी इसी बात को स्वीकार किया है।

साधु की सब प्राणियो के प्रति रही हुई समभाव की भावना का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– उवेहमाणे कुसलेहिं संवसे, अकंतदुक्खी तसथावरा दुही।
अलूसए सव्वसहे महामुणी, तहाहि से सुस्समणे समाहिए॥४॥

छाया– उपेक्षमाण कुशलै· सवसेत् अकान्तदु·खिनः त्रसस्थावरान् दुःखिन.।
अलूषयन् सर्वसह. महामुनिः, तथाह्यसौ सुश्रमणः समाहित·॥ ४॥

पदार्थ– **उवेहमाणे**-मध्यस्थ भाव का अवलम्बन करता हुआ या परीषहो को सहन करता हुआ। **कुसलेहिं**-गीतार्थ मुनियो के साथ। **सवसे**-रहे। **अकंतदुक्खी**-अनिष्ट दु ख-असाता वेदनीय जिनको हो रहा है ऐसे। **दुही**-दु खी त्रस और स्थावर जीवो को। **अलूसए**-किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ। **सव्वसहे**-पृथ्वी की भाति सर्व प्रकार के परीषहोपसर्गों को सहन करे। **तहाहि**-इसी कारण से ही। **से**-वह। **महामुणी**-महामुनि। **सुस्मणे**-श्रेष्ठ श्रमण। **समाहिए**-कहा गया है।

मूलार्थ—**परीषहोपसर्गों को सहन करता हुआ अथवा मध्यस्थ भाव का अवलम्बन करता हुआ वह मुनि गीतार्थ मुनियो के साथ रहे। सब प्राणियो को दुःख अप्रिय लगता है ऐसा जानकर त्रस और स्थावर जीवों को दुःखी देखकर उन्हे किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथ्वी की भांति सर्व प्रकार के परीषहोपसर्गों को सहन करने वाला महामुनि-लोकवर्ति पदार्थों के स्वरूप का ज्ञाता होता है। अतः उसे सुश्रमण-श्रेष्ठश्रमण कहा गया है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मुनि ससार के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता एव द्रष्टा है। अत: वह कष्टो एव परीषहो से विचलित नहीं होता है। क्योकि वह यह भी जानता है कि प्रत्येक प्राणी को सुख प्रिय लगता है, दु:ख अप्रिय लगता है और ससार मे स्थित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि प्राणी दुखों से सत्रस्त हैं, इसलिए वह किसी भी प्राणी को सक्लेश एव परिताप नहीं देता। वह अन्य प्राणियो से

मिलने वाले दु:खो को समभाव पूर्वक सहन करता है, परन्तु अपनी तरफ से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देता। यह उसकी साधुता का उज्ज्वल आदर्श है। और इस विशिष्ट साधना के द्वारा वह अपनी आत्मा का विकास करता हुआ अन्य प्राणियो को कर्म बन्धन से मुक्त करने मे सहायक बनता है।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि साधु को सदा मध्यस्थ भाव रखना चाहिए। दुष्ट एव असभ्य व्यक्तियो पर भी क्रोध नहीं करना चाहिए और उसे सदा गीतार्थ एव विशिष्ट ज्ञानियो के साथ रहना चाहिए। क्योकि मूर्खो के ससर्ग से समय एव शक्ति का दुरुपयोग होने की सम्भावना बनी रहती है। अत. साधक को ज्ञानी पुरुषो के सहवास मे रहना चाहिए, उनके साथ रहकर वह अपनी साधना को आगे बढा सकता है। इससे उसके ज्ञान मे भी विकास होगा और ज्ञानवान एव चिन्तनशील साधक लोक के यथार्थ स्वरूप को जानकर कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता है। अत साधक को गीतार्थ मुनियो के साथ मे रहकर अपनी साधना को आगे बढाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– विऊ नए धम्मपयं अणुत्तरं, विणीयतण्हस्स मुणिस्स झायओ।
समाहियस्सऽग्गिसिहा व तेयसा, तवो य पन्ना य जसो य वड्ढइ॥ ५॥

छाया– विद्वान् नत. धर्मपदमनुत्तरं, विनीततृष्णस्य मुनेःध्यायतः।
समाहितस्याग्निशिखेव तेजसा, तपश्च प्रज्ञा च यशश्च वर्द्धते॥ ५॥

पदार्थ– नए-विनयवान। विऊ-समयज्ञ। अणुत्तर-प्रधान। धम्मपयं-धर्मपदयति धर्मक्षमा मार्दव आदि के विषय मे प्रवृति करने वाले। विणीयतण्हस्स-तृष्णा को दूर करने वाले। ज्झायओ-धर्मध्यान करने वाले। समाहियस्स-समाधिमान। मुणिस्स-मुनि के। अग्गिसिहा व-अग्नि शिखा के समान। तेयसा-तेज। य-और। तवो-तप और। य-पुन । पन्ना-प्रज्ञा बुद्धि और। जसो-यश। वड्ढइ-अभिवृद्ध होते है अथवा अग्नि शिखा की भाति तेज से प्रदीप्त हुए मुनि का तप, प्रज्ञा और यश वृद्धि को प्राप्त होते है।

मूलार्थ—क्षमा मार्दवादि दश प्रकार के श्रेष्ठ यति-श्रमण धर्म मे प्रवृत्ति करने वाला विनयवान एव ज्ञान सपन्न मुनि-जो तृष्णा रहित होकर धर्म ध्यान में संलग्न है और चारित्र को परिपालन करने मे सावधान है, उसके तप, प्रज्ञा और यश अग्नि शिखा के तेज की भाति वृद्धि को प्राप्त होते है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा मे सयम से होने वाले लाभ का उल्लेख किया गया है। क्षमा, मार्दव आदि दश धर्मो से युक्त एव तृष्णा से रहित होकर धर्म ध्यान मे सलग्न विनय सपन्न मुनि की तपश्चर्या, प्रज्ञा एव यश-प्रसिद्धि आदि मे अभिवृद्धि होती है। वह निधूर्म अग्नि शिखा की तरह तेजस्वी एव प्रकाश-युक्त बन जाता है। उसकी साधना मे तेजस्विता आ जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि क्षमा, मार्दव आदि से आत्मा के ऊपर लगा हुआ कर्म मैल दूर होता है और परिणाम स्वरूप उसकी उज्ज्वलता, ज्योतिर्मयता और तेजस्विता प्रकट हो जाती है।

इस विषय मे कुछ और बातो का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– दिसोदिसंऽणंतजिणेण ताइणा, महव्वया खेमपया पवेइया।
महागुरू निस्सयरा उईरिया, तमेव तेउत्तिदिसं पगासगा॥६॥

छाया– दिशोदिशं अनन्तजिनेन त्रायिना महाव्रतानि क्षेमपदानि प्रवेदितानि।
महागुरूणि नि.स्वकराणि उदीरितानि तम इव तेज इति त्रिदिशं प्रकाशकानि॥६॥

पदार्थ– **दिसोदिसं**-सर्व एकेन्द्रिय आदि भाव दिशाओ में। **खेमपया**-रक्षा के पद-स्थान। **महव्वया**-अहिंसादि महाव्रत। **पवेइया**-प्रतिपादन किए है। **ताइणा**-षट्काय की रक्षा करने वाले। **अणंतजिणेण**-अनन्त ज्ञान युक्त जिनेन्द्र भगवान को, अर्थात् जिनेन्द्र देव ने अनन्त आत्माओ की रक्षा के लिए पच महाव्रतो का प्रतिपादन किया है वे महाव्रत। **महागुरू**-महान पुरुषो द्वारा पालन किए जाने से महागुरू हैं। **निस्सयरा**-अनादि काल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म बन्धन को तोड़ने वाले हैं। **उईरिया**-आविष्कृत किए है प्रकट किए है। **तमेवतेउत्ति**-जिस प्रकार तेज अन्धकार को दूर करता है और। **दिस पगासगा**-तीन दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर तीनो दिशाओ १ ऊर्ध्व दिशा, २ अधो दिशा और ३ तिर्यक दिशा मे प्रकाश करता है ठीक उसी प्रकार कर्म रूपी अन्धकार को विनष्ट करके वे महाव्रत तीन लोक मे प्रकाश करने वाले हैं।

_मूलार्थ_—षट्काय के रक्षक, अनन्त ज्ञान वाले जिनेन्द्र भगवान ने एकेन्द्रियादि भाव दिशाओ में रहने वाले जीवों के हित के लिए तथा उन्हें अनादि काल से आबद्ध कर्म बन्धन से छुड़ाने वाले महाव्रत प्रकट किए है। जिस प्रकार तेज तीनो दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश करता है, उसी प्रकार महाव्रत रूप तेज से अन्धकार रूप कर्म समूह नष्ट हो जाता है और ज्ञानवान् आत्मा तीनो लोक मे प्रकाश करने वाला बन जाता है।

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा मे महाव्रतो के महत्व का उल्लेख किया गया है। इसमे बताया गया है कि एकेन्द्रियादि भाव दिशाओ मे स्थित जगत के जीवो के हित के लिए भगवान ने महाव्रतो का उपदेश दिया है। जिसका आचरण करके आत्मा अनादि काल से लगे हुए कर्म बन्धनो को तोडकर पूर्णतया मुक्त हो सकता है। क्योकि भगवान का प्रवचन प्रकाशमय है, ज्योतिर्मय है। इससे समस्त अज्ञान अन्धकार नष्ट हो जाता है, जिस अज्ञान अन्धकार मे आत्मा अनादि काल से भटकता रहा है, उससे छूटने का मार्ग मिल जाता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञो का उपदेश प्राणी जगत के हितार्थ होता है। इसमे यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि ससार मे आत्मा एव कर्म सबन्ध भी अनादि है। परन्तु, यह अनादिता एक कर्म या एक गति की अपेक्षा नहीं बल्कि कर्म प्रवाह की अपेक्षा से है। बन्धने वाला प्रत्येक कर्म अपनी स्थिति के अनुसार फल देकर आत्मा से पृथक् हो जाता है, परन्तु साथ मे अन्य कर्म बन्धते रहते हैं। इस तरह आत्मा पहले के बाधे हुए कर्मों को यथा समय भोग कर क्षय करता है और फिर नए कर्मो का बन्ध करता रहता है। इस प्रकार कर्मों का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। इस बात को इससे स्पष्ट कर दिया गया है कि महाव्रतो का आचरण करके साधक उस प्रवाह को सर्वथा नष्ट कर सकता है। यदि एक ही कर्म अनादि काल से चला आता हो तो उसे नष्ट करना असंभव था। परन्तु एक कर्म अनादि नहीं है। व्यक्ति की दृष्टि से वह सादि है, अर्थात् अमुक समय मे बधा है और अपने बन्धे हुए काल पर फल देकर

क्षय हो जाता है। इस तरह कर्म व्यक्ति की दृष्टि से सादि है, परन्तु समष्टी -प्रवाह की अपेक्षा से अनादि है। क्योकि ससार मे स्थित जीव एक के बाद दूसरी, तीसरी-कर्म प्रकृतियो का बन्ध करता रहता है। इस कारण उसे नष्ट भी किया जा सकता है और उसे नष्ट करने का साधन है- महाव्रत। क्योकि, राग-द्वेष, कषाय एव हिसा आदि प्रवृत्तियो से कर्म का बन्ध होता है और महाव्रत इन प्रवृत्तियो के-आश्रव के द्वार को रोकने एव पूर्व बन्धे कर्मो को क्षय करने का महान् साधन हैं। इस तरह सवर के द्वारा आत्मा जब अभिनव कर्म प्रवाह के स्रोत का आना बन्द कर देता है और पुरातन कर्म जल को तप, स्वाध्याय एव ध्यान आदि साधना से सर्वथा सुखा देता है, क्षय कर देता है, तब वह कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त-उन्मुक्त हो जाता है।

अस्तु, महाव्रत की साधना आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करती है और इसका उपदेश सर्वज्ञ पुरुष देते हैं। क्योकि वे राग-द्वेष से मुक्त है और अपने निरावरण ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को सम्यक्तया देखते जानते हैं। अत· उनका उपदेश तेज-अग्नि की तरह प्रकाशमान है और प्रत्येक आत्मा को प्रकाशमान बनने की प्रेरणा देता है।

महाव्रतो को शुद्ध रखने के लिए उत्तर गुणो मे सावधानी रखने का आदेश देते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– सिएहिं भिक्खू असिए परिव्वए, असज्जमित्थीसु चइज्ज पूयणं।
अणिस्सिओ लोगमिणं तहा परं, न मिज्जई कामगुणेहिं पंडिए॥७॥

छाया– सितै भिक्षु असित परिव्रजेत्, असज्जन् स्त्रीषु त्यजेत् पूजनम्।
अनिश्रित. लोकमिम तथा पर, न मीयते कामगुणै पंडित:॥७॥

पदार्थ– **सिएहिं**-कर्म एव गृह पाश मे आबद्ध व्यक्तियो के साथ। **असिए**-नहीं बन्धा हुआ। **भिक्खू**-भिक्षु अर्थात् उनका सग न करता हुआ साधु। **परिव्वए**-सयम ग्रहण कर के विचरे तथा। **इत्थीसु**-स्त्रियो मे। **असज्ज**-आसक्त न होता हुआ अर्थात् उनका सग न करता हुआ। **पूयण**-अपने पूजा-मान सम्मान की अभिलाषा को। **चइज्ज**-त्याग कर। **अणिस्सिओ**-स्त्री ससर्ग से असम्बद्ध होकर। **लोगमिण**-इस लोक मे। **तहा**-तथा। **पर**-पर लोक मे अर्थात् इस लोक तथा परलोक के विषय मे आशा रहित हो कर। **कामगुणेहिं**-काम गुणो-प्रिय शब्दादि विषयो को। **न मिज्जइ**-स्वीकार न करे। **पंडिए**-जो साधु काम गुणो को स्वीकार नहीं करता तथा उनके परिणाम को जानता है वह पडित है।

***मूलार्थ*—साधु कर्मपाश से बन्धे हुए गृहस्थो या अन्य तीर्थियों के सम्पर्क से रहित होकर तथा स्त्रियो के ससर्ग का भी त्याग करके विचरे और वह पूजा सत्कार आदि की अभिलाषा न करे। और लोक तथा परलोक के सुख की कामना भी न रखे। वह मनोज्ञ शब्दादि के विषय में भी प्रतिबद्ध न हो। इस तरह उनके कटुविपाक को जानने के कारण वह मुनि पंडित कहलाता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा में बताया गया है कि साधु को राग-द्वेष से युक्त एव कम पाश मे आबद्ध गृहस्थ एव अन्य तीर्थियो का ससर्ग नहीं करना चाहिए और उसे स्त्रियो के ससर्ग का भी त्याग कर देना चाहिए। उसे पूजा-प्रतिष्ठा एव ऐहिक या पारलौकिक सुखो की अभिलाषा भी नहीं रखनी

चाहिए। परन्तु इन सब से मुक्त-उन्मुक्त होकर सयम साधना में सलग्न रहना चाहिए। क्योकि गृहस्थ एव अन्य मत के भिक्षुओ के सम्पर्क से उसके मन में राग-द्वेष की भावना जागृत हो सकती है और आध्यात्मिक साधना पर सशय हो सकता है। दूसरे मे उसका स्वाध्याय एव चिन्तन करने का अमूल्य समय-जिसके द्वारा वह आत्मा के ऊपर पडे हुए कर्म आवरण को अनावृत करता हुआ आध्यात्मिक साधना के पथ पर आगे बढता है, व्यर्थ की बातो में नष्ट होगा। और कभी साधु की उत्कृष्ट साधना को देखकर अन्यमत के भिक्षु के मन मे ईर्ष्या की भावना जाग उठी तो वह साधु को शारीरिक कष्ट भी पहुचा सकता है। इस तरह उनका ससर्ग आत्म साधना मे बाधक होने के कारण त्याज्य बताया गया है।

इसी तरह स्त्रियो के ससर्ग से भी विषय वासना उद्दीप्त हो सकती है और मान-पूजा प्रतिष्ठा की भावना एव ऐहिक तथा पारलौकिक सुखो की अभिलाषा भी पतन का कारण है। क्योकि इसके वशीभूत आत्मा अनेक तरह के अच्छे-बुरे कर्म करता है। इसलिए साधक को इन सब के कटु परिणामो को जान कर इनसे मुक्त रहना चाहिए। जो साधक इनके विषाक्त एव दु.ख परिणामो को सम्यक्तया समझकर इनसे सर्वथा पृथक् रहता है, वही श्रमण वास्तव मे पडित है, ज्ञानी है और वही साधक कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता है।

एक उदाहरण के द्वारा इस विषय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्– तहा विमुक्कस्स परिन्नचारिणो,
धिईमओ दुक्खखमस्स भिक्खुणो।
विसुज्झई जंसि मलं पुरेकडं,
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥८॥

छाया– तथा विप्रमुक्तस्य परिज्ञाचारिणो,
धृतिमतः दुःखक्षमस्य भिक्षोः।
विशुध्यति यस्य मलं पुराकृतं,
समीरितं रूप्यमलमिव ज्योतिषा॥ ८॥

***पदार्थ*– तहा-तथा। विमुक्कस्स-विप्रमुक्त-सग से रहित। परिन्नचारिणो-ज्ञान पूर्वक क्रिया करने वाला। दुक्खखमस्स-दुख को सहन करने वाला। धिईमओ-धैर्यवान। भिक्खुणो-भिक्षु का। पुरेकडं-पूर्वकृत। मलं-कर्म रूप मल। विसुज्झई-दूर हो जाता है। व-जैसे। जोइणा-अग्नि द्वारा। समीरियं-प्रेरित किया हुआ। रुप्पमलं-चान्दी का मल अर्थात् जैसे अग्नि द्वारा चान्दी का मल उससे पृथक हो जाता है ठीक उसी प्रकार तप संयम के द्वारा कर्ममल दूर हो जाता है।**

***मूलार्थ*—जिस तरह अग्नि चांदी के मैल को जलाकर उसे शुद्ध बना देती है, उसी प्रकार सब संसर्गों से रहित ज्ञान पूर्वक क्रिया करने वाला, धैर्यवान एवं सहिष्णु साधक अपनी साधना से आत्मा पर लगे हुए कर्ममल को दूर करके आत्मा को निरावरण बना लेता है।**

***हिन्दी विवेचन*–** प्रस्तुत सूत्र मे कर्म मल को हटाने के साधनो का उल्लेख किया गया है।

कर्म बन्ध का कारण राग-द्वेष है। अत. इसका परिज्ञान रखने वाला साधक ही सम्यक् साधना के द्वारा उसे हटा सकता है। जैसे चादी पर लगे हुए मैल को अग्नि द्वारा नष्ट किया जा सकता है। उसी प्रकार कर्म के मैल को ज्ञान पूर्वक क्रिया करके ही हटाया जा सकता है। उसके लिए साधक को धैर्य के साथ सहिष्णुता को रखना भी आवश्यक है। क्योकि अधीरता, आतुरता, अस्थिरता एवं असहिष्णुता अथवा परीषह एव दु·खो के समय हाय-त्राय एव विविध सकल्प-विकल्प आदि की प्रवृत्ति कर्म बन्ध का कारण है। इससे आत्मा कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकती है। उसके लिए साधना आवश्यक है। और साधक को साधना के समय आने वाले कष्टो को भी धैर्य एव समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए। क्योकि इससे कर्मो की निर्जरा होती है। जैसे चान्दी आग मे तप कर शुद्ध होती है, उसी तरह तप एव परीषहो की आग मे तपकर साधक की आत्मा भी शुद्ध बन जाती है।

इससे यह स्पष्ट हो गया है कि ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया ही आत्म विकास मे सहायक होती है और साधना के साथ धैर्य एव सहिष्णुता का होना भी आवश्यक है।

अब सर्पत्वग् का उदाहरण देते हुए सूत्रकार कहते हैं।

मूलम्– से हु परिन्नासमयंमि वट्टई, निराससे उवरयमेहुणो चरे।
भुयंगमे जुन्नतयं जहा चए, विमुच्चई से दुहसिज्ज माहणे॥९॥

छाया– सः हि परिज्ञासमये वर्तते, निराशंस उपरतः मैथुनात् चरेत्।
भुजंगमः जीर्णत्वचं यथा त्यजेत्, विमुच्यते सः दुःखशय्यात माहन·॥ ९॥

पदार्थ– से-वह-भिक्षु। हु-निश्चयार्थक है। **परिन्नासमयंसि**-मूलोत्तर गुणो के विषय मे वर्तने वाला तथा पिण्डैषणा की शुद्धि करने वाला सम्यग् ज्ञान के विषय मे। **वट्टई**-प्रवृत्त हो रहा है तथा। **निराससे**-इस लोक और परलोक के विषयो की आशा से रहित और। **मेहुणो**-मैथुन से। **उवरय**-उपरत-विरत हुआ। **चरे**-सयम मार्ग में विचरता है। **जहा**-जैसे। **भुयगमे**-सर्प। **जुन्नतयं**-जीर्ण त्वचा-काचली को। **चए**-त्याग देता है। **से**-उसी प्रकार वह। **माहणे**-अहिंसा का उपदेष्टा साधु। **दुहसिज्ज**-दुखरूप शय्या से। **विमुच्चई**-विमुक्त हो जाता है अर्थात् ससार चक्र से छूट जाता है।

मूलार्थ—**जिस प्रकार सर्प अपनी जीर्ण त्वचा-कांचली को त्याग कर उससे पृथक् हो जाता है, उसी तरह महाव्रतो से युक्त, शास्त्रोक्त क्रियाओं का परिपालक, मैथुन से सर्वथा निवृत्त एव लोक-परलोक के सुख की अभिलाषा से रहित मुनि नरकादि दुःख रूप शय्या या कर्म बन्धनो से सर्वथा मुक्त हो जाता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा मे सर्प का उदाहरण देकर बताया गया है कि जिस प्रकार सर्प अपनी त्वचा-काचली का त्याग करने के बाद शीघ्रगामी एव हलका हो जाता है। उसी तरह साधक भी सावद्य कार्यों, विषय-विकारो एव भौतिक सुखो की अभिलाषा का त्याग करके निर्मल, पवित्र एव शीघ्र गति से मोक्ष की ओर बढने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। क्योकि सावद्य कार्य एव विषय विकार आदि कर्म बन्ध के कारण हैं। इससे आत्मा कर्मों से बोझिल बनती है और फल स्वरूप उसकी ऊपर उठने की गति अवरुद्ध हो जाती है। अत· इस गाथा मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि साधक को आगम में बताए

गए महाव्रतो एव अन्य क्रियाओ का पालन करना चाहिए। इससे आत्मा पर पडा हुआ कर्मों का बोझिल आवरण दूर हो जाता है। जिससे आत्मा मे अपने आपको सर्वथा अनावृत्त करने की महान् शक्ति प्रकट हो जाती है।

अब समुद्र का उदाहरण देते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जमाहु ओहं सलिलं अपारयं, महासमुद्दं व भुयाहि दुत्तरं।
अहे य णं परिजाणाहि पंडिए, से हु मुणी अंतकडेत्ति वुच्चई॥१०॥

छाया– यमाहु. ओघं सलिलं अपारम्, महासमुद्रमिव भुजाभ्यां दुस्तरम्।
अथैनं च परिजानीहि पंडितः, स खलु मुनिः अन्तकृत् इति उच्यते॥ १०॥

पदार्थ– ज-जो। आहु-अनन्त तीर्थंकरादि ने कहा है। **ओहं**-ओघरूप। **सलिल**-जल। **अपारयं**-जिसका पार नहीं आता ऐसे। **महासमुद्द**-महा समुद्र को। **भुयाहि**-भुजाओ से तैरना। **दुत्तरं**-दुस्तर है। **व**-इसी प्रकार ससार रूप समुद्र को पार करना कठिन है। **अहे य ण**-च-पुन। **ण**-वाक्यालकारार्थक है। **परिजाणाहि**-अत साधु ज्ञ प्रज्ञा से ससार के स्वरूप को जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका परित्याग करे। **से पंडिए**-सत्य और असत्य के स्वरूप को जानने वाला वह पडित। **मुणी**-मुनि। **हु**-निश्चय ही। **अतकडेत्ति**-कर्मों का अन्त करने वाला। **वुच्चई**-कहा जाता है।

***मूलार्थ*—महासमुद्र की भांति संसार रूप समुद्र को पार करना दुष्कर है, हे शिष्य! तू इस ससार के स्वरूप को ज्ञ परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका त्याग कर दे। इस प्रकार त्याग करने वाला पण्डित मुनि कर्मों का अन्त करने वाला कहलाता है।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत सूत्र मे समुद्र का उदाहण देकर ससार के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। समुद्र मे अपरिमित जल है, अनेक नदिया आकर मिलती हैं। इसलिए उसे भुजाओ से तैर कर पार करना कठिन है उसी तरह यह ससार सागर भी सामान्य आत्माओ के लिए पार करना कठिन है। इस ससार सागर मे आस्रव के द्वारा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद कषाय और योग रूप जल आता रहता है। इसलिए साधक को यह आदेश दिया गया है कि इस दुस्तर ससार सागर को पार करने के लिए तू इसके स्वरूप का परिज्ञान कर। अर्थात् ससार समुद्र मे परिभ्रमण एव उसे पार होने के स्वरूप का ज्ञान कर। आस्रव ससार परिभ्रमण का कारण है और सवर अर्थात्, आस्रव का त्याग ससार से पार होने का साधन है। अत: तू ज्ञ परिज्ञा के द्वारा आस्रव के स्वरूप का ज्ञान कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा के द्वारा उसका त्याग कर। इस तरह तू आस्रव के स्वरूप को जानकर उसका सर्वथा त्याग कर देगा तो ससार सागर से पार हो जाएगा। क्योकि, ज्ञान पूर्वक क्रिया करने वाला साधक ही ससार समुद्र को उल्लघ कर निर्वाण पद को प्राप्त करता है। इसलिए उसे ससार का अन्त करने वाला कहा गया है। इससे दो बाते सिद्ध होती हैं– १ ज्ञान और क्रिया का समन्वय ही मुक्ति का मार्ग है और, २ संसार अनादि होते हुए भी सान्त है, आत्मा सम्यक् साधना के द्वारा उसका अन्त करके निर्वाण पद को प्राप्त कर सकता है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– जहाहि बद्धं इहमाणवेहिं, जहाय तेसिं तु विमुक्ख आहिए।
अहातहा बंधविमुक्ख जे विऊ, से हु मुणी अंतकडेत्ति वुच्चई॥११॥

छाया– यथा हि बद्धं इहमानवैः, यथा च तेषां तु विमोक्ष. आख्यातः।
यथा तथा बन्धविमोक्षयो. यो विद्वान् , स खलु मुनिरन्तकृदिति उच्यते॥११॥

***पदार्थ*– हि–निश्चयार्थक है। जहा–जिस प्रकार। इह–इस ससार मे। माणवेहिं–मनुष्यो ने। बद्धं–मिथ्यात्वादि के द्वारा बान्धे है। य–और। जहा–जैसे। तेसिं–उन कर्मों का बन्धा हुआ है। तु–पुन । विमुक्ख–उन कर्मों के बन्ध से विमुक्त होना। आहिए–कहा गया है। जे–जो साधु। बंधविमुक्ख–बन्ध और मोक्ष के। अहातहा–यथार्थ स्वरूप का। विऊ–वेत्ता है–सम्यक् प्रकार से जानने वाला है। हु–निश्चय ही। से–वह। मुणी–मुनि। अतकडेत्ति–कर्मों का अन्त करने वाला। वुच्चई–कहा जाता है।**

***मूलार्थ*—इस संसार मे आत्मा ने आस्त्रव का सेवन करके जिस प्रकार कर्म बांधे हैं उसी तरह सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की आराधना करके उन आबद्ध कर्मों से वह मुक्त हो सकती है। जो मुनि बन्ध और मोक्ष के यथार्थ स्वरूप को जानता है, वह निश्चय ही कर्मों का अन्त करने वाला कहा गया है।**

***हिन्दी विवेचन*–प्रस्तुत गाथा मे बन्ध और मोक्ष के स्वरूप का वर्णन किया गया है। आत्मा जिस प्रकार कर्म को बान्धता है और साधना से जिस प्रकार तोडता है, उसका परिज्ञाता मुनि ही इस ससार का अन्त करता है। यह हम देख चुके हैं कि कर्म बन्ध का कारण आस्त्रव है। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद और योगरूप आस्त्रव से कर्म वर्गणा के पुद्‌गलो का आत्म प्रदेशो के साथ बन्ध होता है। जैसे आग मे रखे हुए लोहे के गोले में अग्नि के परमाणु प्रविष्ट हो जाते हैं और वह लोहे का गोला आग के गोले जैसा दिखाई देता है। उसी तरह कर्म वर्गणा के परमाणुओ से आवृत्त आत्मा अपने स्वरूप को भूल कर कर्मों के अनुरूप गति करता है। परन्तु सम्यग् ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की साधना से आत्मा कर्म आवरण से अनावृत्त हो जाता है। क्योकि, आस्त्रव कर्म के आने का द्वार है, तो सवर कर्म के आगमन को रोकने का कारण है और तप आदि निर्जरा के साधन हैं। इस प्रकार साधक बन्ध और मोक्ष के यथार्थ स्वरूप को जान कर सम्यक् प्रवृत्ति करता है, तो वह ससार का अन्त करके निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है। अत· सर्वज्ञ पुरुषो ने ऐसे साधक को ससार का अन्त करने वाला कहा है।

इससे स्पष्ट होता है कि साधक के लिए ससार मे परिभ्रमण कराने वाले और कर्म बन्धन से मुक्त कराने वाले दोनो साधनो की जानकारी करना आवश्यक है। क्योकि वह आस्त्रव का यथार्थ ज्ञान करके उससे निवृत्त होकर सवर की साधना से अभिनव कर्मों के आगमन को रोक लेता है और निर्जरा के द्वारा पूर्व बधे हुए कर्मों को समाप्त कर देता है। इस तरह वह कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

अब विमुक्ति अध्ययन का उपसहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्– इमंसि लोए परए य दोसुवि, न विज्जई बंधण जस्स किंचिवि।
से हु निरालंबणमप्पइट्ठिए कलंकली भावपहं विमुच्चई॥१२॥

त्तिबेमि॥
विमुत्ती सम्मत्ता॥
आचारांग सूत्रं समाप्तम्॥ ग्रन्थाग्रं॥२५५४॥

छाया– **अस्मिन्लोके परस्मिन् च द्वयोरपि, न विद्यते बन्धनं यस्य किंचिदपि।**
स खलु निरालम्बनमप्रतिष्ठितः, कलंकली भावपथात् विमुच्यते॥ १२॥
इति ब्रवीमि। विमुक्तिः समाप्ता। आचारांग सूत्रं समाप्तम् ग्रन्थाग्रं॥२५५४।

पदार्थ– इमंसि-इस। लोए-लोक में। य-और। परए-परलोक मे तथा। दोसुवि-दोनो लोको मे। अपि-पुनरर्थक है। जस्स-जिसका। किचिवि-किचिन्मात्र भी राग-द्वेष आदि का। बधण-बन्धन। न विज्जई-नहीं है। से-वह। हु-निश्चय ही। निरालंबणं-आलम्बन रहित अर्थात् लोक-परलोक सम्बन्धि आशा से रहित तथा। अप्पइट्ठिए-प्रतिबन्ध से रहित साधु। कलकली भावपहं-जन्म-मरण रूप ससार के पर्यटन से। विमुच्चई-छूट जाता है। त्तिबेमि-इस प्रकार मैं कहता हू।

मूलार्थ—**इस लोक तथा परलोक एव दोनों लोकों में जिसका किंचिन्मात्र भी राग आदि का बन्धन नहीं है तथा जो लोक तथा परलोक की आशाओं से रहित है, अप्रतिबद्ध है, वह साधु निश्चय ही गर्भ आदि के पर्यटन से छूट जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार मैं कहता हूँ।**

हिन्दी विवेचन– प्रस्तुत गाथा मे पूर्व गाथाओ मे अभिव्यक्त विषय को दोहराते हुए बताया गया है कि जो साधक इस लोक और परलोक के सुखो की अभिलाषा नहीं रखता है, जो राग-द्वेष से सर्वथा निवृत्त हो चुका है और जो अप्रतिबद्ध विहारी है, वह गर्भावास मे नहीं आता अर्थात् जन्म-मरण का सर्वथा उच्छेद करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त बन जाता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुक्ति का मार्ग न तो अकेले ज्ञान पर आधारित है और न केवल क्रिया पर। यह ठीक है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान भी साधन है और क्रिया भी साधन है। दोनो मोक्ष के लिए आवश्यक हैं। परन्तु दोनो की विभाजित रूप से नहीं, समन्वित रूप से आवश्यकता है। यदि उनमे समन्वय नहीं है, तो वह मोक्ष मार्ग मे सहायक नहीं हो सकते। कुछ व्यक्ति मुक्ति के लिए ज्ञान साधना पर जोर देते हैं, परन्तु क्रिया का निषेध करते हैं। और कुछ क्रिया को सर्वोपरि मानते हैं परन्तु ज्ञान को आवश्यक नहीं मानते। ज्ञानवादियो का कहना है कि आत्मा एव ससार के स्वरूप का ज्ञान करना ही मुक्ति है, क्रिया करने की कोई आवश्यकता नहीं है। और इधर क्रियावादी कहते हैं कि मुक्ति के लिए क्रिया ही आवश्यक है। किसी व्यक्ति के आयुर्वेद ग्रन्थ कण्ठस्थ हैं, परन्तु वह उसमे अभिव्यक्त विधि के अनुसार औषध ग्रहण नहीं करता है, तो उसका कोरा ज्ञान उसे रोग से मुक्त नहीं कर सकता है। इसी तरह आचरण के अभाव में सिर्फ ज्ञान ही आत्मा को ससार से छुटकारा नहीं दिला सकता है। दोनो के कथन में सत्याश हैं, परन्तु वे उस सत्यांश को पूर्ण सत्य मान रहे हैं, इसी कारण उनका कथन मिथ्या माना गया है।

जैन दर्शन ज्ञान और क्रिया के समन्वय को मोक्ष मार्ग मानता है[१]। ज्ञान से दृष्टि मिलती है, मार्ग का बोध होता है, परन्तु वह साध्य तक पहुचाने में असमर्थ है और क्रिया गतिशील है, परन्तु दृष्टि से रहित होने से सन्मार्ग और कुमार्ग का भेद नहीं कर सकती। इसी अपेक्षा से अकेले ज्ञान को पगु और अकेली क्रिया को अन्धी माना गया है। और दोनो की समन्वित साधना से साधक अपने साध्य को सिद्ध कर सकता है। इसलिए आगम मे कहा गया है कि जो साधक सब नयो को सुनकर जानकर ज्ञान और क्रिया की साधना करता है वही मुक्ति को प्राप्त करता है[२]। स्थानाग सूत्र में भी बताया है कि जो साधक ज्ञान और चारित्र से युक्त है, वह ससार बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि ज्ञान और क्रिया की समन्वित साधना से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। यही पूरे आचाराग सूत्र का सार है। इसे हम यो भी कह सकते हैं कि द्वादशागी का निचोड भी यही है कि ज्ञान और क्रिया की समन्वित साधना से ही आत्मा निर्वाण पद को पा सकता है। क्योंकि, साधक का मुख्य लक्षण निर्वाण पद प्राप्त करना है और आगम या द्वादशागी के प्रवचन का उद्देश्य भी यही है कि उसके अध्ययन एव चिन्तन-मनन से साधक ज्ञान और क्रिया को अपने जीवन मे साकार रूप देकर कर्म बन्धन से मुक्त हो सके। अस्तु, ज्ञान और क्रिया का सम्यक्तया आराधन एव परिपालन करना ही मोक्ष मार्ग है।

सोलहवां अध्ययन (चतुर्थ चूला) समाप्त[३]

॥ श्री आचाराग सूत्रम् समाप्तम् ॥

---

१ ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष । – आचाराग वृत्ति।

२ सव्वेसिं पि नयाणं बहुविहवत्तव्वय निसामित्ता।
त सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू।

३ श्री आचाराग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध की 'निशीथ' नामक पांचवीं चूला का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु वर्तमान मे यह चूला आचाराग के साथ सबद्ध नहीं है। उसे छेद सूत्रो में स्थान दे दिया गया है। क्योंकि उसका विषय आचाराग से सबद्ध नहीं है। आचाराग में साधु के आचार का उल्लेख किया गया है और निशीथ में यह बताया गया है कि यदि प्रमादवश कोई साधु आचार पथ से भटक जाता है, तो उसे क्या प्रायश्चित देना चाहिए। इस तरह प्रायश्चित से संबद्ध प्रकरण होने के कारण उसे स्वतंत्र रूप से छेद शास्त्रो के साथ जोड़ दिया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है और ऐसा करना उचित भी जचता है।

पारिभाषिक शब्द कोश

1 **अचित्त**-निर्जीव, अचेतन
2 **अटवी**-जगल, वन
3 **अदृष्ट**-अदृश्य, प्रत्यक्ष मे दिखाई न देने वाला
4 **अध्यवसाय**-परिणाम
5 **अनगार**-मुनि, साधु, भिक्षु
6 **अनन्त**-जिसका कहीं भी अन्त न हो
7 **अनभिज्ञ**-अनजान, हिताहित को नहीं जानने वाला
8 **अनवरत**-निरन्तर, लगातार
9 **अनादि**-जिस की आदि न हो
10 **अनार्य**-हिसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों मे प्रवृत्त व्यक्ति
11 **अनासेवित**-किसी के द्वारा भोगोपभोग मे नहीं लिया हुआ पदार्थ
12 **अनुत्तर**-सर्व श्रेष्ठ, जिसकी समानता करने वाला दूसरा पदार्थ न हो।
13 **अनुमोदन**-समर्थन
14 **अनेषणीय**-आधाकर्म आदि दोष युक्त, अशुद्ध पदार्थ
15 **अन्तराय**-विघ्न, पुरुषार्थ करने पर भी इच्छित वस्तु का नहीं मिलना
16 **अपक्व**-कच्चे
17 **अपुरुषान्तरकृत**-जिस पदार्थ को दूसरे व्यक्ति ने अपने उपभोग मे नहीं लिया हो
18 **अप्कायिक**-पानी के जीव
19 **अप्रमत्त**-प्रमाद से रहित, निरन्तर सावधान रहना
20 **अभिग्रह**-किसी पदार्थ विशेष को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करना
21 **अभिलाषा**-इच्छा, कामना
22 **अर्द्ध योजन**-चार मील
23 **अर्ध पक्व**-जो पदार्थ पूर्ण रूप से नहीं पका हो
24 **अल्पारंभी**-महा-हिसा से दूर रहने वाला गृहस्थ
25 **अवग्रह**-पदार्थ, साधु के ग्रहण करने योग्य वस्तुएँ
26 **अवधि ज्ञान**-मन और इद्रियो की सहायता के बिना मर्यादित क्षेत्र मे स्थित रूपी पदार्थों को जानने-देखने वाला ज्ञान।
27 **असत्यामृषा**-व्यवहार भाषा, झूठ और सत्य से रहित लोक व्यवहार मे बोली जाने वाली भाषा
28 **असख्यात**-सख्यातीत, जिसकी कोई सख्या या गणना न हो
29 **असस्कृत**-सस्कार हीन, असभ्य
30 **अशस्त्र-परिणत**-शस्त्र के प्रयोग से रहित, जिस पदार्थ पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हुआ हो
31 **आगम**-शास्त्र, सूत्र, आप्त वाणी
32 **आघर्षण-प्रघर्षण**-विशेष रूप से घर्षण करना, रगडना
33 **आचार्य**-सघ के शास्ता-सचालक
34 **आजीवक**-गोशालक के मत के साधु या श्रावक, गोशालक का मत
35 **आधाकर्मी**-साधु के निमित्त से बनाया गया आहार, पानी, मकान आदि
36 **आवृत्त**-आच्छादित, ढका हुआ, भीड से युक्त मार्ग
37 **आसेवित**-जिस पदार्थ को गृहस्थ ने अपने काम मे ले लिया है।
38 **आस्रव**-कर्म वर्गणा के पुद्गलो के आने का मार्ग।
39 **इर्या समिति**-भली-भाँति देखकर एव प्रमार्जन करके चलना
40 **उत्सर्जन**-त्याग करना, फैंकना
41 **उपरत**-निवृत्त, पाप कार्यों से हटा हुआ
42 **उपसर्ग**-देव, मनुष्य या पशु-पक्षी द्वारा दिए जाने वाले कष्ट
43 **उपस्कृत**-बनाए हुए, तैयार किए हुए
44 **उपाध्याय**-श्रमण-सघ के श्रमण-श्रमणियो के शिक्षक
45 **उपाश्रय**-साधु-साध्वियों के ठहरने या रहने का स्थान
46 **ऋजु गति**-सरल एव सीधी गति
47 **ऋषभदेव**-जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर या अवतार
48 **एषणीय**-आधाकर्म आदि दोषो से रहित पदार्थ
49 **औदारिक शरीर**-हाड-मास आदि औदारिक वर्गणा के पुद्गलो-परमाणुओ से बना हुआ शरीर
50 **औद्देशिक**-साधु-साध्वी के उद्देश्य से बनाए गए पदार्थ

51 **कायोत्सर्ग**-मन, वचन एव काय के व्यापार का त्याग करके आत्म चिन्तन में सलग्न होना, ध्यान
52 **क्रियावादी**-केवल क्रिया को ही मुक्ति का मार्ग मानने वाले विचारक
53 **केवल ज्ञान**-लोक मे स्थित समस्त द्रव्यो के समस्त पर्यायों एवं भावों को जानने-देखने वाला ज्ञान, पूर्ण ज्ञान
54 **गच्छ**-सघ, सम्प्रदाय
55 **ग्राम धर्म**-प्रस्तुत प्रसग में इसका अर्थ मैथुन है
56 **ग्राम पिडोलक**-भिखारी
57 **गीतार्थ**-आगम एव द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को सम्यक् रूप से जानने वाला साधक
58 **गुप्ति**-मन, वचन और काय-शरीर को गोपकर रखना
59 **गोचरी**-भिक्षाचरी
60 **ज्ञानवादी**-ज्ञान मात्र को मुक्ति का कारण मानने वाले विचारक
61 **घातिक कर्म**-आत्मा के मूल गुणो की घात करने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म
62 **चरक सहिता**-आयुर्वेद का एक ग्रन्थ
63 **चिल्मिलिका**-मच्छरदानी
64 **चोलपट्टक**-धोती के स्थान मे बाँधने का वस्त्र
65 **छट्ठ भक्त**-दो दिन का उपवास, बेला
66 **छ काय**-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस-द्वीन्द्रियादि जीव
67 **जिनकल्पी**-जिन अर्थात् तीर्थंकर के समान आचार का परिपालन करने वाले मुनि
68 **तीन करण**-कृत, कारित और अनुमोदित, किसी कार्य को करना, करवाना और उसका समर्थन करना
69 **तीन योग**-मन, वचन और काय-शरीर
70 **त्रस जीव**-त्रास प्राप्त होने पर दु ख से बचने के लिए सुख के स्थान पर आ-जा सकने वाले प्राणी, द्वीन्द्रिय, तेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव
71 **दीक्षाचार्य**-साधुत्व की दीक्षा देने वाले आचार्य
72 **दीक्षार्थी**-सयम-साधना स्वीकार करने का इच्छुक साधक, वैरागी
73 **देव-छन्दक**-देवों द्वारा निर्मित चौंतरा
74 **नय**-वस्तु में स्थित अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म को लक्ष्य करके समझना
75 **निगोद काय**-वनस्पति के जीवो की एक जाति
76 **निघन्टु**-आयुर्वेद का एक ग्रन्थ
77 **निरावरण**-आवरण से रहित
78 **निर्ग्रन्थ**-द्रव्य और भाव ग्रन्थि-परिग्रह अथवा धन-धान्य आदि पदार्थों एव क्रोधादि कषायों से निवृत्त साधु
79 **निर्जरा**-बन्धे हुए कर्मों का एक देश से क्षय होना
80 **निर्वाण**-बन्धे हुए कर्मों का सर्वथा क्षय करके कर्म-बन्धन से मुक्त होना
81 **निर्व्याघात**-व्याघात रहित
82 **परठना**-विवेकपूर्वक डाल देना, फैंकना
83 **परीषह**-भूख, प्यास, शीत, उष्ण, डसमस आदि कष्ट
84 **प्रकाम भोजन**-विकारोत्पादक सरस आहार
85 **प्रणीत रस**-सरस पदार्थ
86 **प्रतिक्रमण**-दिन एव रात मे लगे हुए दोषो की आलोचना
87 **प्रतिलेखित**-भली भाँति देखे हुए पदार्थ
88 **प्रवर्तिनी**-साध्वी सघ की सचालिका
89 **पश्चात् कर्म**-साधु-साध्वी को आहार आदि पदार्थ देने के बाद पुन अपने लिए आहार आदि बनाना।
90 **पडक**-नपुसक, हिजडा, पुरुषत्व एव नारीत्व से रहित
91 **प्रासुक**-दोष रहित, शुद्ध पदार्थ
92 **पार्श्वापत्य**-भगवान् पार्श्वनाथ के अपत्य-उपासक या श्रावक
93 **पार्श्वस्थ**-शिथिल आचार वाले, ढीले-पासत्थे
94 **पिंडैषणा**-आहारादि की गवेषणा करना
95 **पुद्गल**-परमाणु या परमाणुओ के मेल से बना हुआ स्कध
96 **पुरीष**-मल-मूत्र
97 **पुरुषान्तरकृत**-नव निर्मित स्थान-मकान आदि, जिनका गृहस्थ ने उपयोग कर लिया है
98 **भक्त-पान**-आहार-पानी, खाने-पीने के पदार्थ
99 **भक्त-प्रत्याख्यान**-जीवन पर्यन्त के लिए आहार-पानी का त्याग करना
100 **मतिज्ञान**-मन और इद्रियों की सहायता से होने वाला सम्यग्ज्ञान

101 **मन पर्यव ज्ञान**-अढाई द्वीप-समुद्र मे स्थित सन्नी-मन युक्त पञ्चेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानने-देखने वाला ज्ञान
102 **मातृ स्थान**-माया, छल-कपट
103 **मिश्र भाषा**-जिस भाषा मे सत्य और असत्य का मिश्रण हो
104 **मुक्ति**-कर्म बधन से सर्वथा मुक्त होना, मुक्त जीवो के रहने का स्थान
105 **मुखवस्त्रिका**-वायु काय के जीवो की रक्षा के लिए मुँह पर बान्धने का वस्त्र
106 **मोक**-मूत्र
107 **मोह**-सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का अवरोधक, राग-द्वेष, आसक्ति
108 **योग**-मन, वचन और काय-शरीर
109 **योनि**-ससारी जीवो के उत्पन्न होने का स्थान
110 **रत्नाधिक**-अपने से दीक्षा मे ज्येष्ठ मुनि
111 **लेश्या**-मन के परिणाम
112 **वर्द्धमान**-भगवान महावीर का जन्म के समय माता-पिता द्वारा दिया गया नाम
113 **वाचनाचार्य**-आगमो का अध्ययन कराने वाले आचार्य
114 **विकथा**-व्यर्थ की कथा-वार्तालाप, विका-रोत्पादक कथा
115 **विराधना**-सयम एव सम्यग्दर्शन में दोष लगाना
116 **विहार**-साधु-साध्वी का एक गाँव से दूसरे गाँव को पैदल जाना
117 **वृत्तिकार**-आगमो की सक्षिप्त व्याख्या करने वाले
118 **वेदनीय कर्म**-जिस कर्म के उदय से प्राणी सुख-दु ख का सवेदन करता है।
119 **सचित्त**-सजीव-जीव युक्त, सचेतन-चेतना युक्त
120 **सद्धर्म-मण्डन**-जिसमे वीतराग प्ररूपित सत्य धर्म का वर्णन है, स्व आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० द्वारा रचित ग्रन्थ
121 **सन्निवेश**-मोहल्ला
122 **समिति**-विवेक पूर्वक, चलने, बोलने, आहार ग्रहण करने, उपकरण लेने-रखने, मल-मूत्र का त्याग करने आदि की क्रियाए करना, विवेक पूर्वक की जाने वाली शुभ प्रवृत्ति
123 **सर्वभावदर्शी**-विश्व में स्थित समस्त पदार्थों के भावो एव पर्यायों का ज्ञाता
124 **सर्वज्ञ प्रणीत**-सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित या उपदिष्ट
125 **सहधर्मी**-समान धर्म या आचार वाला
126 **सागार**-घर-बार सहित गृहस्थ, श्रावक
127 **सागारिक सथारा**-आगार सहित जीवन पर्यन्त अनशन व्रत स्वीकार करना
128 **सान्त**-अन्त सहित, सीमा युक्त, जिसका अन्त होता है
129 **सामायिक**-४८ मिनट या जीवन पर्यन्त के लिए की जाने वाली समभाव की साधना
130 **सुश्रुत सहिता**-आयुर्वेद का एक ग्रथ
131 **सक्लिष्ट कर्म**-तीव्र कषाय, प्रगाढ आसक्तिपूर्वक बाधे गए कर्म
132 **सथारा**-जीवन पर्यन्त के लिए आहार-पानी एव पाप कर्मों का त्याग करना
133 **सलेखना**-आत्मा का सम्यक् प्रकार से लेखन अवलोकन् करना, कषायो को पतला करना
134 **सवर**-कर्मों के आगमन को रोकने की साधना
135 **सस्तारक**-घास-फूस का बिछौना तृण शय्या
136 **स्तेय**-चौर्य कर्म
137 **स्थावर**-स्थिर काय वाले प्राणी-जिनके सिर्फ काया-शरीर ही होता है।
138 **स्थडिल भूमि**-शौच जाने का स्थान
139 **शय्यातर**-साधु को मकान की आज्ञा देने वाला
140 **शस्त्र परिणत**-जो पदार्थ शस्त्र के प्रयोग से अचित्त हो गया है
141 **षट् जीवनिकाय**-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय जीव
142 **श्रमण**-कषायो को उपशान्त करने वाला तथा समभाव की साधना करने वाला साधु
143 **श्रमणोपासक**-श्रमण की उपासना करने वाला
144 **श्रुतज्ञान**-द्वादशागी का ज्ञान, सम्यग् दर्शन और ज्ञान
145 **श्रोत्रेन्द्रिय**-कान
146 **हरित काय**-हरियाली, वनस्पति

सागर-वर-गम्भीर
आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

प्रस्तुति- श्रमण सघीय सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

जैन शासन मे "आचार्य पद" एक शिरसि-शेखरायमाण स्थान पर शोभायमान रहा है। जैनाचार्यो को जब मणि-माला की उपमा से उपमित किया जाता है, तब आचार्य सम्राट् आराध्य स्वरूप गुरुदेव श्री आत्माराम जी महाराज उस महिमाशालिनी मणिमाला मे एक ऐसी सर्वाधिक व दीप्तिमान दिव्य-मणि के रूप में रूपायित हुए, जिसकी शुभ्र आभा से उस माला की न केवल शोभा-वृद्धि हुई, अपितु वह माला भी स्वय गौरवान्वित हो उठी, मूल्यवान एव प्राणवान हो गई।

श्रद्धास्पद जैनाचार्य श्री आत्माराम जी म॰ का व्यक्तित्व जहाँ अनन्त-असीम अन्तरिक्ष से भी अधिक विराट् और व्यापक रहा है, वहाँ उनका कृतित्व अगाध-अपार अमृत सागर से भी नितान्त गहन एव गम्भीर रहा है। यथार्थ मे उनके महतो-महीयान् व्यक्तित्व और बहु आयामी कृतित्व को कतिपय पृष्ठ सीमा मे शब्दायित कर पाना कथमपि सभव नही है। तथापि वर्णातीत व्यक्तित्व और वर्णनातीत कृतित्व को रेखाकित किया जा रहा है।

भारतवर्ष के उत्तर भारत मे पजाब प्रान्त के क्षितिज पर वह सहस्रकिरण दिनकर उदीयमान हुआ। वह मयूख-मालिनी मार्तण्ड सर्व-दिशा से प्रकाशमान है। वि॰ स॰ 1939 भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, राहो ग्राम मे, वह अनन्त ज्योति-पुज अवतरित हुआ। आप श्री जी क्षत्रिय जातीय चौपडा -वश के अवतश थे। माता-पिता का क्रमश नाम -श्री परमेश्वरी देवी और सेठ मन्शाराम जी था। यह निर्धूम ज्योति एक लघु ग्राम मे आविर्भूत हुई। किन्तु उनकी प्रख्याति अन्तर्राष्ट्रीय रही, देशातीत एव कालातीत रही।

महामहिम आचार्यश्री जी के जीवन का उष काल विकट-सकट के निर्जन वन मे व्यतीत हुआ। दुष्कर्म के सुतीक्ष्ण प्रहारो ने आपश्री जी को नख-शिखान्त आक्रान्त कर दिया। दो वर्ष की अल्पायु मे आपश्री जी की माता जी ने इस ससार से विदाई ली और जब आप अष्टवर्षीय रहे, तब पिता जी इस लोक से उस लोक की ओर प्रस्थित हुए। उस सकटापन्न समय मे आपश्री जी को एकमात्र दादी जी की छत्रच्छाया प्राप्त हुई। किन्तु इस सघन वट की छत्रच्छाया दो वर्ष तक ही रही और दादी जी का भी देहावसान हो गया। इस रूप मे आपश्री जी का बाल्य-काल व्यथाकथा से आपूरित रहा।

यह ध्रुव सत्य है कि माता-पिता और दादी के सहसा, असह्य वियोग ने पूज्यपाद आचार्यश्री जी के अन्तर्मन-विहग को सयम-साधना के निर्मल-गगन मे उड्डयन हेतु उत्प्रेरित कर दिया। उन्होने जागतिक-कारागृह से उन्मुक्ति का निर्णय लिया और अन्तत· द्वादश वर्ष की स्वल्प आयु मे सवत् 1951 में पचनद पजाब के बनूड ग्राम मे जिनशासन के तेजस्वी नक्षत्र स्वामी श्री शालिग्राम जी म॰ के चरणारविन्द मे आर्हती-प्रव्रज्या अगीकृत की। आप श्री जी के विद्या-गुरु आचार्य श्री मोतीराम जी म॰ थे। आप श्री ने दीक्षा-क्षण से ही त्रिविध सलक्ष्य निर्धारित किए-सयम साधना, ज्ञान-आराधना और शासन-सेवा। आप

इन्हीं क्षेत्रो में उत्तरोत्तर और अनुत्तर रूप से पदन्यास करते हुए प्रकृष्टरूपेण उत्कर्षशील रहे, वर्धमान हुए।

आप श्री जी ने सस्कृत और प्राकृत जैसी प्रचुर प्राचीन भाषाओ पर आधिपत्य सस्थापित किया, अन्यान्य-भाषाओ का अधिकृत रूप मे प्रतिनिधित्व किया। आप श्री आगम-साहित्य के एक ऐसे आदित्य के रूप मे सर्वतोभावेन प्रकाशमान हुए कि आगम-साहित्य के प्रत्येक अध्याय, प्रत्येक अध्याय के प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पक्ति, प्रत्येक पक्ति के प्रत्येक शब्द के प्रत्येक अर्थ और उसके भी प्रत्येक व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ के तल छट किवा अन्तस्तल तक प्रविष्ट हुए। परिणाम-स्वरूप आपकी ज्ञान-चेतना व्यापक से व्यापक, ससीस से असीम और लघीयान् से महीयान् होती गई। निष्पत्तिरूपेण आप श्री जी अष्टदश-वर्षीय दीक्षाकाल मे, गणधर के समकक्ष "उपाध्याय" जैसे गरिमा प्रधान पद से अलकृत हुए। यह वह स्वर्णिम-प्रसग है, जो आपके पाण्डित्य-पयोधि के रूप मे उपमान है और प्रतिमान है।

आप श्री जी ने अपने सयम-साधना की कतिपय वर्षावधि मे जो साहित्य-सर्जना की, वह ग्रन्थ-सख्या अर्धशतक से भी अधिक रही है। आप श्री जी विशिष्ट और वरिष्ठ निर्ग्रन्थ के रूप मे भी ग्रन्थो और सूत्रो के जैन विद्यापीठ थे, विचारो के विश्वविद्यालय थे और चारित्र के विश्वकोष थे। आप यथार्थ अर्थ मे एक सृजन धर्मी युगान्तकारी साहित्य-साधक थे। वास्तव मे आप श्री जी अपने आप मे अप्रतिम थे। आपने आगम साहित्य के सन्दर्भ मे सस्कृत छाया, शब्दार्थ, मूलार्थ, सटीक टीकाएँ निर्मित कीं। आप द्वारा प्रणीत वाङ्मय का अध्येता इस सत्यपूर्ण तथ्य से परिचित हुए बिना नहीं रहेगा कि आप श्री विद्या की अधिष्ठात्री दिव्य देवी माता शारदा के दत्तक तनय नहीं, अपितु अगजात आज्ञानिष्ठ यशस्वी अतिजात पुत्र थे। कि बहुना आचार्य देव प्रतिभाशाली पुरुष थे।

महिमा-मण्डित आचार्यश्री वि० स० 2003 मे पजाब-प्रान्तीय आचार्य पद से विभूषित हुए। तदनन्तर वि० स० 2009 मे आप श्री जी श्रमण-सघ के प्रधानाचार्य के पद पर समासीन हुए जो आपके व्यक्तित्व और कृतित्व की अर्थवत्ता और गुणवत्ता का जीवन्त रूप था। यह एक ऐतिहासिक स्वर्णिम प्रसग सिद्ध हुआ। आप श्री जी ने गम्भीर विद्वत्ता, अदम्य-साहस, उत्तम रूपेण कर्त्तव्य निष्ठा, अद्वितीय त्याग, असीम सकल्प, अद्भुत-सयम, अपार वैराग्य, सघ-सघटन की अविचल एकनिष्ठा से एक दशक-पर्यन्त श्रमण सघ को अधि-नायक के रूप मे कुशल नेतृत्व प्रदान किया।

आप श्री जी जब जीवन की सान्ध्यवेला मे थे, तब कैंसर जैसे असाध्य रोग से आक्रान्त हुए। उस दारुण-वेदना मे, आपने जो सहिष्णुता का साक्षात् रूप अभिव्यक्त किया, वह वस्तुत· यह स्वत: सिद्ध कर देता है कि आप सहिष्णुता के अद्वितीय पर्याय हैं, समता के जीवन्त आयाम हैं और सहनशीलता के मूर्तिमान् सजीव रूप हैं। कि बहुना, कोई इतिहासकार जब भी जैन शासन के प्रभावक ज्योतिर्मय आचार्यों का अथ से इति तक आलेखन करेगा तब आप जैसी विरल विभूति का अक्षरश· वर्णन करने मे अक्षम सिद्ध होगा।

जिन-शासन का यह महासूर्य वि० स० 2019 मे अस्तगत हुआ। जिससे जो रिक्तता आई है वह अद्यावधि भी यथावत् है। ऐसे ज्योतिर्मय आलोक-लोक के महायात्री के प्रति, हम शिरसा-प्रणत हैं, सर्वात्मना-समर्पण भावना से श्रद्धायुक्त वन्दना करते हैं।

जैन धर्म दिवाकर,
आचार्य सम्राट् श्री आत्माराज जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	–	राहो (पजाब)
पिता	–	लाला मनसारामजी चौपडा
माता	–	श्रीमती परमेश्वरी देवी
वश	–	क्षत्रिय
जन्म	–	विक्रम स॰ 1939 भाद्र सुदि वामन द्वादशी (12)
दीक्षा	–	वि॰ स॰ 1951 आषाढ शुक्ला 5
दीक्षा स्थल	–	बनूड (पटियाला)
दीक्षा गुरु	–	मुनि श्री सालिगराम जी महाराज
विद्या गुरु	–	आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज (पितामह गुरु)
साहित्य सृजन	–	अनुवाद, सकलन-सम्पादन-लेखन द्वारा लगभग 60 ग्रन्थ
आगम अध्यापन	–	शताधिक साधु-साध्वियो को।
कुशल प्रवचनकार	–	तीस वर्ष से अधिक काल तक।
शिष्य सम्पदा	–	समाज सुधारक श्री खजान चन्द्र जी म॰, पडित प्रवर श्री ज्ञान चन्द्र जी म॰, प्रकाण्ड पडित श्री हेमचन्द्र जी म॰, श्रमण सघीय सलाहकार श्री ज्ञान मुनि जी म॰, सरल आत्मा श्री प्रकाश मुनि जी म॰, श्रमण सघीय सलाहकार सेवाभावी श्री रत्न मुनि जी म॰, उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी म॰, तपस्वी श्री मथुरा मुनि जी महाराज
आचार्य पद	–	पजाब श्रमण सघ, वि स॰ 2003, चैत्र शुक्ला 13 लुधियाना।
आचार्य सम्राट् पद	–	अखिल भारतीय श्री वध स्था जैन श्रमण सघ सादडी (मारवाड) 2009 वैशाख शुक्ला 3
आचार्य सम्राट् चादर समारोह	–	बाग खजानचीया लुधियाना वि॰ स॰ 2011 मार्ग शीर्ष शुक्ला 3
सयम काल	–	67 वर्ष लगभग।
स्वर्गवास	–	वि॰ स॰ 2019 माघवदि 9 (ई॰ 1962) लुधियाना।
आयु	–	79 वर्ष 8 मास, ढाई घटे।
विहार क्षेत्र	–	पजाब, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि।
स्वभाव	–	विनम्र-शान्त-गभीर-प्रशस्त विनोद।
समाज कार्य	–	नारी शिक्षण प्रोत्साहन स्वरूप कन्या महाविद्यालय एव पुस्तकालय आदि की प्रेरणा

जैनभूषण, पंजाब केसरी, बहुश्रुत, गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	–	साहोकी (पजाब)
जन्म तिथि	–	वि॰ स॰ 1979 वैशाख शुक्ला 3 (अक्षय तृतीया)
दीक्षा	–	वि॰ स॰ 1993 वैशाख शुक्ला 13
दीक्षा स्थल	–	रावलपिडी (वर्तमान पाकिस्तान)
गुरुदेव	–	आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज
अध्ययन	–	प्राकृत, सस्कृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, हिन्दी, पजाबी, अग्रेजी आदि भाषाओ के जानकार तथा दर्शन एव व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, भारतीय धर्मों के गहन अभ्यासी।
परमशिष्य	–	आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज।
सृजन	–	हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण पर भाष्य, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना आदि कई आगमों पर बृहद् टीका लेखन तथा तीस से अधिक ग्रन्थो के लेखक।
प्रेरणा	–	विभिन्न स्थानकों, विद्यालयो, औषधालयो, सिलाई केन्द्रो के प्रेरणा स्रोत।
विशेष	–	आपश्री निर्भीक वक्ता थे, सिद्धहस्त लेखक थे, कवि थे। समन्वय तथा शान्तिपूर्ण क्रान्त जीवन के मगलपथ पर बढ़ने वाले धर्मनेता थे, विचारक थे, समाज सुधारक थे, आत्मदर्शन की गहराई में पहुचे हुए साधक थे, पजाब तथा भारत के विभिन्न अचलो मे बसे हजारों जैन-जैनेतर परिवारो मे आपके प्रति गहरी श्रद्धा एव भक्ति थी। आप स्थानकवासी जैन समाज के उन गिने-चुने प्रभावशाली सतो मे प्रमुख थे जिनका वाणी-व्यवहार सदा ही सत्य का समर्थक रहा है। जिनका नेतृत्व समाज को सुखद, सरक्षक और प्रगति पथ पर बढ़ाने वाला रहा है।
स्वर्गवास	–	मन्डी गोबिन्दगढ़ (पंजाब) 23 अप्रैल 2003 (रात 11.30 बजे)

आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी महाराज : संक्षिप्त परिचय

जैन धर्म दिवाकर गुरुदेव आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी म० वर्तमान श्रमण सघ के शिखर पुरुष हैं। त्याग, तप, ज्ञान और ध्यान आपकी सयम-शैया के चार पाए हैं। ज्ञान और ध्यान की साधना मे आप सतत साधनाशील रहते हैं। श्रमणसघ रूपी बृहद्-सघ के बृहद् -दायित्वो को आप सरलता, सहजता और कुशलता से वहन करने के साथ-साथ अपनी आत्म-साधना के उद्यान मे निरन्तर आत्मविहार करते रहते हैं।

पजाब प्रान्त के मलौट नगर मे आपने एक सुसमृद्ध और सुप्रतिष्ठित ओसवाल परिवार मे जन्म लिया। विद्यालय प्रवेश पर आप एक मेधावी छात्र सिद्ध हुए। प्राथमिक कक्षा से विश्वविद्यालयी कक्षा तक आप प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होते रहे।

अपने जीवन के शैशवकाल से ही आप श्री मे सत्य को जानने और जीने की अदम्य अभिलाषा रही है। महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी सत्य को जानने की आपकी प्यास को समाधान का शीतल जल प्राप्त न हुआ। उसके लिए आपने अमेरिका, कनाडा आदि अनेक देशो का भ्रमण किया। धन और वैषयिक आकर्षण आपको बाध न सके। आखिर आप अपने कुल-धर्म-जैन धर्म की ओर उन्मुख हुए। भगवान महावीर के जीवन, उनकी साधना और उनकी वाणी का आपने अध्ययन किया। उससे आपके प्राण आन्दोलित बन गए और आपने ससार से सन्यास मे छलाग लेने का सुदृढ सकल्प ले लिया।

ममत्व के असख्य अवरोधो ने आपके सकल्प को शिथिल करना चाहा। पर श्रेष्ठ पुरुषो के सकल्प की तरह आपका सकल्प भी वज्रमय प्राचीर सिद्ध हुआ। जैन धर्म दिवाकर आगम-महोदधि आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज के सुशिष्य गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज से आपने दीक्षा-मत्र अगीकार कर श्रमण धर्म मे प्रवेश किया।

आपने जैन-जैनेतर दर्शनो का तलस्पर्शी अध्ययन किया। 'भारतीय धर्मो मे मुक्ति विचार' नामक आपका शोध ग्रन्थ जहाँ आपके अध्ययन की गहनता का एक साकार प्रमाण है वहीं सत्य की खोज मे आपकी अपराभूत प्यास को भी दर्शाता है। इसी शोध-प्रबन्ध पर पजाब विश्वविद्यालय ने आपको पी-एच० डी० की उपाधि से अलकृत भी किया।

दीक्षा के कुछ वर्षों के पश्चात् ही श्रद्धेय गुरुदेव के आदेश पर आपने भारत भ्रमण का लक्ष्य बनाया और पजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, उडीसा, तमिलनाडु , गुजरात आदि अनेक प्रदेशो मे विचरण किया। आप जहाँ गए आपके सौम्य-जीवन और सरल-विमल साधुता को देख लोग गद् गद् बन गए। इस विहार -यात्रा के दौरान ही सघ ने आपको पहले युवाचार्य और क्रम से आचार्य स्वीकार किया। आप बाहर मे ग्रामानुग्राम विचरण करते रहे और अपने भीतर सत्य के शिखर सोपानों पर सतत आरोहण करते रहे। ध्यान के माध्यम से आप गहरे और गहरे पैठे। इस अन्तर्यात्रा मे आपको सत्य और समाधि के अद्‌भुत अनुभव प्राप्त हुए। आपने यह सिद्ध किया कि पचमकाल में भी सत्य को जाना और जीया जा सकता है।

वर्तमान मे आप ध्यान रूपी उस अमृत-विद्या के देश-व्यापी प्रचार और प्रसार में प्राणपण से जुटे हुए हैं जिससे स्वय आपने सत्य से साक्षात्कार को जीया है। आपके इस अभियान से हजारो लोग लाभान्वित बन चुके हैं। पूरे देश से आपके ध्यान-शिविरो की माग आ रही है।

जैन जगत आप जैसे ज्ञानी, ध्यानी और तपस्वी सघशास्ता को पाकर धन्य-धन्य अनुभव करता हैं।

आचार्य सम्राट् (डॉ॰) श्री शिवमुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म स्थान	–	मलौटमडी, जिला फरीदकोट (पजाब)
जन्म	–	18 सितम्बर 1942 (भादवा सुदी सप्तमी)
माता	–	श्रीमती विद्यादेवी जैन
पिता	–	स्व श्री चिरजीलाल जैन
वर्ण	–	वैश्य ओसवाल
वश	–	भाबू
दीक्षा	–	17 मई, 1972 समय : 12 00 बजे
दीक्षा स्थान	–	मलौटमडी (पजाब)
दीक्षा गुरु	–	बहुश्रुत, जैनागम रत्नाकर राष्ट्र सत श्रमणसघीय सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी महाराज
शिष्य	–	श्री शिरीष मुनि जी, श्री शुभम मुनि जी, श्री श्रीयश मुनि जी, श्री सुव्रत मुनि जी, श्री शमित मुनि जी
पौत्र शिष्य	–	श्री निशात मुनि जी, श्री निरजन मुनि जी, श्री निपुण मुनि जी
युवाचार्य पद	–	13 मई, 1987 पूना–महाराष्ट्र
श्रमणसघीय आचार्य		
पदारोहण	–	9 जून, 1999 अहमदनगर, (महाराष्ट्र)
चादर महोत्सव	–	7 मई 2001 ऋषभ विहार, नई दिल्ली
अध्ययन	–	डबल एम ए , पी–एच डी , डी लिट् , आगमो का गहन गंभीर अध्ययन, ध्यान–योग–साधना मे विशेष शोध कार्य
विहार क्षेत्र	–	पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात:।

श्रमण श्रेष्ठ कर्मठयोगी, मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज जी का
संक्षिप्त परिचय

श्री शिरीषमुनि जी महाराज आचार्य भगवन ध्यान योगी श्री शिवमुनि जी महाराज के प्रमुख शिष्य हैं। वर्ष 1987 के आचार्य भगवन् के मुम्बई (खार) के वर्षावास के समय आप पूज्य श्री के सम्यक् सम्पर्क मे आए। आचार्य श्री की सन्निधि में बैठकर आपने आत्मसाधना के तत्त्व को जाना और हृदयगम किया। उदयपुर से मुम्बई आप व्यापार के लिए आ ्थे और व्यापारिक व्यवसाय मे स्थामित हो रहे थे। पर आचार्य भगवन् के सान्निध्य मे पहुँचकर आपने अनुभव किया कि अध्यात्म ही परम व्यापार है। भौतिक व्यापार का कोई शिखर नहीं है जबकि अध्यात्म व्यापार स्वय एक परम शिखर है और आपने स्वय के स्व को पूज्य आचार्य श्री के चरणो पर अर्पित-समर्पित कर दिया।

पारिवारिक आज्ञा प्राप्त होने पर 7 मई, सन् 1990 यादगिरी (कर्नाटक) मे आपने आर्हती दीक्षा मे प्रवेश किया। तीन वर्ष की वैराग्यावस्था मे आपने अपने गुरुदेव पूज्य आचार्य भगवन से ध्यान के माध्यम से अध्यात्म में प्रवेश पाया। दीक्षा के बाद ध्यान के क्षेत्र मे आप गहरे और गहरे उतरते गए। साथ ही आपने हिन्दी, अग्रेजी, सस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओ का भी तलस्पर्शी अध्ययन जारी रखा। आपकी प्रवचन शैली आकर्षक है। समाज मे विधायक क्राति के आप पक्षधर हैं और उसके लिए निरतर समाज को प्रेरित करते रहते हैं।

आप एक विनय गुण सम्पन्न, सरल और सेवा समर्पित मुनिराज हैं। पूज्य आचार्य भगवन् के ध्यान और स्वाध्याय के महामिशन को आगे और आगे ले जाने के लिए कृत् सकल्प हैं। अहर्निश स्व-पर कल्याण साधना रत रहने से अपने श्रमणत्व को साकार कर रहे हैं।

शब्द चित्र में आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है--

जन्म स्थान	नाई (उदयपुर राज)
जन्मतिथि	19-02-1964
माता	श्रीमती सोहनबाई
पिता	श्रीमान् ख्यालीलाल जी कोठारी
वश, गोत्र	ओसवाल, कोठारी
दीक्षा तिथि	7 मई 1990
दीक्षा स्थल	यादगिरि (कर्नाटक)
गुरु	श्रमण सघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य (डॉ०) श्री शिवमुनि जी म
दीक्षार्थ प्रेरणा	दादी जी मोहन बाई कोठारी द्वारा।
शिक्षा	एम० ए० (हिन्दी साहित्य)
अध्ययन .	आगमो का गहन गभीर अध्ययन, जैनेतर दर्शनो मे सफल प्रवेश तथा हिन्दी, सस्कृत, अग्रेजी, प्राकृत, मराठी, गुजराती भाषाविद्।
उपाधि	श्रमण श्रेष्ठ कर्मठ योगी, साधुरत्न एव मन्त्री श्रमण सघ
शिष्य सम्पदा .	श्री निशात मुनि जी, श्री निरजन मुनि जी, श्री निपुण मुनि जी
विशेष प्रेरणादायी कार्य	ध्यान योग साधना शिविरो का सचालन, बाल सस्कार शिविरो और स्वाध्याय शिविरो के कुशल संचालक, आचार्य श्री के अन्यतम सहयोगी।

आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी म॰ का प्रकाशित साहित्य

आगम सपादन

श्री उपासकदशाग सूत्रम	(व्याख्याकार आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज)
श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग एक)	"
श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग दो)	"
श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग तीन)	"
श्री अन्तकृद्दशाग सूत्रम्	"
श्री दशवैकालिक सूत्रम्	"
श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्रम्	"
श्री आचाराग सूत्रम् (भाग एक)	"
श्री आचाराग सूत्रम् (भाग दो)	"

साहित्य (हिन्दी)–

भारतीय धर्मो मे मुक्ति	(शोध प्रबन्ध)
ध्यान · एक दिव्य साधना	(ध्यान पर शोध-पूर्ण ग्रन्थ)
ध्यान-पथ	(ध्यान सम्बन्धी चिन्तनपरक विचारबिन्दु)
ध्यान साधना	(ध्यान-सूत्र)
समय गोयम मा पमायए	(चिन्तन प्रधान निबन्ध)
अनुशीलन	(निबन्ध)
योग मन सस्कार	(निबन्ध)
जिनशासनम्	(जैन तत्त्व मीमासा)
पढम णाण	(चिन्तन परक निबन्ध)
अहासुह देवाणुप्पिया	(अन्तकृद्दशाग-सूत्र प्रवचन)
शिव-धारा	(प्रवचन)
अन्तर्यात्रा	"
नदी नाव सजोग	"
शिव वाणी	"
अनुश्रुति	"

अनुभूति	(प्रवचन)
मा पमायए	,,
अमृत की खोज	,,
आ घर लौट चले	,,
सबुज्झह कि ण बुज्झह	,,
सद्गुरु महिमा	,,
प्रकाश पुञ्ज महावीर	(सक्षिप्त महावीर जीवन-वृत्त)
अध्यात्म सार	(आचाराङ्ग सूत्र के रहस्यो पर एक बृहद् आलेख)

साहित्य (अग्रेजी)–

दी जैना पाथवे टू लिब्रेशन

दी फण्डामेन्टल प्रिसीपल्स ऑफ जैनिज्म

दी डॉक्ट्रीन ऑफ द सेल्फ इन जैनिज्म

दी जैना ट्रेडिशन

दी डॉक्ट्रीन ऑफ लिब्रेशन इन इडियन रिलिजन

दी डॉक्ट्रीन ऑफ लिब्रेशन इन इडियन रिलिजन विथ रेफरेस टू जैनिज्म

स्परीच्युल प्रक्टेसीज ऑफ लॉर्ड महावीरा